

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली



क्रम संख्या

४४३०

काल नं०

२२
५२५१

खण्ड

जैन श्वेताम्बर तैरापंथी महासभा
आगम-अनुसन्धान ग्रन्थमाला
ग्रन्थ : ९

उत्तरजङ्घयणाणि

(भाग १)

[मूल पाठ, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद]

वाचना प्रमुख
आचार्य तुलसी

अनुवादक और सम्पादक
मुनि नथमल
(निकाय-सचिव)

प्रकाशक :
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
(आगम-साहित्य प्रकाशन समिति)
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१

प्रबन्ध संपादक :

श्रीचन्द्र रामपुरिया, बी० कॉम०, बी० एल्०

संकलक :

आदर्श साहित्य संघ,

भूख (राजस्थान)

आर्थिक सहायक :

श्री रामलाल हंसराज गोलेछा

विराटनगर (नेपाल)

प्रकाशन तिथि :

१, दिसम्बर, १९६७

प्रति संख्या :

१५००

पृष्ठाङ्क :

६७२

मुद्रक :

रेकिल आर्ट प्रेस,

३१, बडतल्ला स्ट्रीट,

कलकत्ता-७

मूल्य :

रु० २०

JAIN SWETAMBAR TERAPANTHI MAHASABHA AGAM-GRANTHAMALA
GRANTHA : 2

UTTARAJJHAYANANI
(THE UTTARADHYAYANA SUTRA)

PART I

Text with variant readings, Sanskrit renderings and Hindi translation.

VACANA PRAMUKH
ACARYA TULASI

EDITED & TRANSLATED
B1
MUNI NATHMAL
Nikaya Saciva

PUBLISHER
JAIN SWETAMBAR TERAPANTHI MAHASABHA
AGAM-SAHITYA PRAKASHAN SAMITI
3 Portuguese Church Street
CALCUTTA-1 (INDIA)

First Edition : 1967
Copies Printed : 1500

Price : Rs. 20.00/-

Managing Editor :

Shreechand Rampuria, B. Com., B.L.



Manuscript compiled by :

Adarsha Sahitya Sangha

Churu (Rajasthan)



Financial Assistance :

Sri Ramlal Hanshraj Golchha

Biratnagar (Nepal)

Printer :

Raphael Art Press

31, Burtolla Street,

CALCUTTA-7

All Rights Reserved

समर्पण

॥१॥

पुढो बि पण्णा-पुरिसो सुवक्खो,
आण्णा-पहाणो जणि जस्स निच्चं ।
सच्चय्ययोगे पवरासयस्स,
भिव्वसुस्स तस्स प्पणिहाण पुब्बं ॥

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पट्ट,
होकर भी आगम-प्रधान था ।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से ॥

॥२॥

बिलोडियं आगम दुद्ध मेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीय मच्छं ।
सञ्जायसञ्जाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाण पुब्बं ॥

जिसने आगम-दोहन कर कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत ।
श्रुत-सद्ध्यान लीन बिर चित्त,
जयाचार्य को विमल भाव से ॥

॥३॥

पवाहिया जेण सुयस्स वारा,
गणे समत्थे मम माणसे बि ।
जो हेउभूओ स्स पढायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाण पुब्बं ॥

जिसने श्रुत की वार बहाई,
सकल संघ में मेरे मन में ।
हेतुसूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से ॥

विनयावमतः

आचार्य तुलसी

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिवार्य होता है, उस माली का जो अपने हाथों से उस और सिद्धिद द्रुम-निष्ठुत को पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है, उस कलाकार का जो अपनी तुलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का तोष-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमें लगें। संकल्प फलवान् बना और बैसा हो हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा शर्म-परिवार उस कार्य में संलग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभावो बनाना चाहता हूँ, जो इस प्रवृत्ति में संविभागी रहे हैं। संक्षेप में वह संविभाग इस प्रकार है—

अनुवादक और सम्पादक :	सहयोगी :	मुनि नथमल (निकाय-सचिव)
		मुनि मीठालाल
	”	मुनि दुलहराज
पाठ-सम्पादन :	”	मुनि सुदर्शन
	”	मुनि मधुकर
	”	मुनि हीरालाल
संस्कृत छाया :	”	मुनि सुमेरमल 'लाडनू'
	”	मुनि श्रीचन्द्र 'कमल'
पदानुक्रम :	”	साध्वी जयधो
	”	साध्वी कनकश्री
विषयानुक्रम :	”	मुनि रूपचन्द्र

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिनने इस गुह्य प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सबको आशीर्वाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

—आचार्य सुलसी

ग्रन्थानुक्रम

समर्पण			
अस्तस्तोष			
प्रकाशकीय			
सम्पादकीय	पृ० १-४
भूमिका	पृ० १-३
मूल	पृष्ठ १-५४६
परिशिष्ट			
पदानुक्रम	१-५६
शुद्धि-पत्रक	१-६
आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची	१-३

प्रकाशकोय

‘उत्तरजम्भयाणि’ (उत्तराभ्ययन सूत्र) मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणियों सहित दो भागों में आपके हाथों में है ।

बाचना प्रमुख आचार्य श्री तुलसी एवं उनके इतिहास और आकार पर सब कुछ न्योछावर कर देने वाले मुनि-मुक्त की बहु समवेत कृति आगमिक कार्य-क्षेत्र में युगान्तरकारी है । इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं, पर सत्य है । बहुमुखी प्रवृत्तियों के केन्द्र प्राणतुल्य आचार्य श्री तुलसी ज्ञान-सिद्धि के एक महान् तैलस्वी रवि हैं और उनका मण्डल भी शुभ्र मन्त्रों का तपोतुल्य है । यह इस अत्यन्त अम-साध्य कृति से स्वयं फलीभूत है ।

गुरुदेव के शरणों में मेरा विनम्र सुस्माव रहा—आपके तत्वावधान में आगमों का सम्पादन और अनुवाद हो—यह भारत के सांस्कृतिक अम्युदय की एक मूल्यवान् कड़ी के रूप में चिर-अपेक्षित है । यह अत्यन्त स्थायी कार्य होगा, जिसका लाभ एक-दो-तीन नहीं अपितु अविनश्य आभी पीढ़ियों को प्राप्त होता रहेगा । मुझे इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि मेरी मनोभावना अंकुरित ही नहीं, पर फलवती और रसवती भी हुई है ।

प्रस्तुत ‘उत्तरजम्भयाणि’ आगम-अनुसंधान ग्रन्थमाळा का द्वितीय ग्रन्थ है । इससे पूर्व प्रकाशित ‘दसवेआलियं’ (मूल पाठ, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण युक्त) को अब अनुसन्धान ग्रन्थमाळा का प्रथम ग्रन्थ समझना चाहिए ।

‘दसवेआलियं’ एक जिल्द में प्रकाशित है । उसमें टिप्पण प्रत्येक अध्यायन के बाद में है । ‘उत्तरजम्भयाणि’ में टिप्पणों की अलग जिल्द द्वितीय भाग के रूप में प्रकाशित है ।

‘दसवेआलियं’ में पाठान्तर नहीं दिये गये थे । ‘उत्तरजम्भयाणि’ में पाठान्तर दे दिये गये हैं ।

‘दसवेआलियं’ की तरह ही ‘उत्तरजम्भयाणि’ में भी प्रत्येक अध्यायन के आरम्भ में परिशिष्टपूर्ण आमुख दे दिया गया है, जिससे अध्ययन के विषय का सांगोपाङ्ग आभास हो जाता है । प्रत्येक आमुख एक अध्ययनपूर्ण निबन्ध-सा है । परिशिष्ट में आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची दे दी गई है, जिससे आमुखों को लिखने में जो परिश्रम उठाया गया है, उसका सहज ही आभास हो जाता है । चारों शरणों का पदानुक्रम भी दे दिया गया है । आरम्भ में अध्ययन-अनुक्रमिका के साथ-साथ अध्ययन विषयानुक्रम भी दे दिया गया है, जिससे प्रत्येक श्लोक का विषय जाना जा सकता है ।

द्वितीय भाग में टिप्पण है । टिप्पणों के प्रस्तुत करने में पूर्णि, टीकाएँ आदि के उपयोग के साथ-साथ अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का भी सहारा लिया गया है, जिनकी सूची द्वितीय भाग के अन्त में दे दी गई है । प्रथम परिशिष्ट में शब्द-विमर्श और द्वितीय परिशिष्ट में पाठान्तर-विमर्श समाहित हैं । इस तरह टिप्पण भाग अपूर्व अध्ययन के साथ पाठकों के सामने उपस्थित हो रहा है । प्रयुक्त ग्रन्थों के संदर्भ सहित उद्धरण पाद-टिप्पणियों में दे दिये गये हैं, जिससे जिज्ञासु पाठक की तृप्ति हाथों हाथ हो जाती है और उसे संदर्भ देखने के लिए इधर-उधर दौड़ना नहीं पड़ता ।

तेरापंच के आचार्यों के बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने प्राचीन पूर्णि, टीका आदि ग्रन्थों का बहुष्कार कर दिया । वास्तव में इसके पीछे तथ्य नहीं था । सत्य जहाँ भी हो वह आवरणहीन है, वही तेरापंच आचार्यों की दृष्टि रही । चतुर्थ आचार्य जयाचार्य ने पुरानी टीकाओं का कितना उपयोग किया था, यह उनकी भगवती जोड़ आदि रचनाओं से प्रकट है । ‘दसवेआलियं’ तथा ‘उत्तरजम्भयाणि’ तो इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि निर्मुक्ति, भाष्य, पूर्णि, टीकाओं आदि का जितना उपयोग प्रथम बार बाचना प्रमुख आचार्य श्री तुलसी एवं उनके चरणों में सम्पादन-कार्य में लगे हुए निकाय सचिव मुनि श्री नयमलक्ष्मी तथा उनके सहयोगी साधुओं ने किया है, उतना किसी भी अध्यापिका प्रकाशित सामुदाय संस्करण में नहीं हुआ है । सारा अनुवाद एवं लेखन-कार्य अविनम्र कल्पना को लिए हुए हैं । मौलिक चिन्तन भी उनमें कम नहीं है । बहुमुत्तला एवं यंभीर अन्वेषण प्रति पृष्ठ से फलकते हैं । हम आशा करते हैं कि पाठकों को दो भागों में प्रकाशित होने वाला यह ग्रन्थ अनेक नई सामग्री प्रदान करेगा और वे इसे बड़े ही आदर के साथ अपनायेंगे ।

पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि

आचार्य श्री के तत्त्वावधान में सन्तो द्वारा प्रस्तुत पाण्डुलिपि को नियमानुसार अवधार कर उसकी प्रतिलिपि करने का कार्य आचार्य साहित्य संघ, (पूरु) द्वारा सम्पन्न हुआ है, जिसके लिए हम संघ के संभालकों के प्रति कृतज्ञ हैं।

अर्थ-व्यवस्था

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्यय बिराटनगर (नेपाल) निवासी श्री रामलालजी हंसराजजी गोलछा द्वारा श्री हंसराजजी गोलछा चन्दजी गोलछा की स्वर्गीया माता श्री बापीदेवी (धर्मपत्नी श्री रामलालजी गोलछा) की स्मृति में प्रयत्न निधि से हुआ है। एतदर्थ इस अनुकरणीय अनुदान के लिए गोलछा-परिवार हार्दिक धन्यवाद का पात्र है।

आगम-साहित्य प्रकाशन समिति की ओर से उक्त निधि से होने वाले प्रकाशन-कार्य की देल-रेल के लिए निम्न सजनों की एक उपसमिति गठित की गई है :—

- १—श्रीमान् गोलछा चन्दजी गोलछा
- २—,, मोहनलालजी बाँडिया
- ३—,, श्रीचन्द रामपुरिया
- ४—,, गोपीचन्दजी चौपड़ा
- ५—,, कैवलचन्दजी नाहटा

सर्व श्री श्रीचन्द रामपुरिया एवं कैवलचन्दजी नाहटा उक्त समिति के संयोजक चुने गये हैं।

आगम-साहित्य प्रकाशन-कार्य

महासभा के अन्तर्गत आगम-साहित्य प्रकाशन समिति का प्रकाशन-कार्य ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहा है, त्यों-त्यों हृदय में आनन्द का पारावार नहीं। मैं तो अपने जीवन की एक साथ ही पूरी होते देख रहा हूँ। इस अवसर पर मैं अपने अनन्य बन्धु और साथी सर्व श्री गोविन्दरामजी सरावगी, मोहनलालजी बाँडिया एवं खेमचन्दजी सेठिया को उनकी मुक्त सेवाओं के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

आभार

आचार्य श्री को सुदीर्घ दृष्टि अत्यन्त भेदिनी है। जहाँ एक ओर जन-मानस को आध्यात्मिक और नैतिक चेतना की जागरूकता के व्यापक आन्दोलनों में उनके अमूल्य जीवन-अणु लग रहे हैं वहाँ दूसरी ओर आगम-साहित्य-गत जैन-संस्कृति के मूल सन्देश को जन-व्यापी बनाने का उनका उपक्रम भी अनन्य और स्तुत्य है। जैन-धार्मिकों को अभिलषित रूप में भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के सम्मुख ला देने की धार्मिका में वाचना प्रयत्न के रूप में आचार्य श्री सुलसी ने जो अथक परिश्रम अपने कर्णों पर लिया है, उसके लिए जैन ही नहीं अपितु सारी भारतीय जनता उनके प्रति कृतज्ञ रहेगी।

निकाय सचिव मुनि श्री नमसलजी का सम्पादन-कार्य एवं तेरापंथ-संघ के अग्र्य विद्वान् मुनि-बुद्ध के सक्रिय सहयोग श्री बस्तुतः अभिनन्दनीय है।

हम आचार्य श्री और उनके साधु-परिवार के प्रति इस जन-हितकारी पवित्र प्रवृत्ति के लिए नतमस्तक हैं।

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१

श्रीचन्द रामपुरिया

संयोजक

आगम-साहित्य प्रकाशन समिति

सम्पादकीय

आगम-सम्पादन की प्रेरणा

विक्रम सम्वत् २०११ का वर्ष और चैत्र मास। आचार्य श्री तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे। पूना से नारायण गाँव की ओर जाते-जाते मध्याह्नि में एक दिन का प्रवास मंचर में हुआ। आचार्य श्री एक जैन परिवार के भवन में ठहरे थे। वहाँ मासिक पत्रों की फाइलें पड़ी थी। गृह-स्वामी की अनुमति ले, हम लोग उन्हें पढ़ रहे थे। साँक की वेला, लगभग छह बजे होंगे। मैं एक पत्र के किसी अंश का निवेदन करने के लिए आचार्य श्री के पास गया। आचार्य श्री पत्रों को देख रहे थे। जैसे ही मैं पहुँचा, आचार्य श्री ने धर्मदूत के सदस्क अंक की ओर संकेत करते हुए पूछा—“यह देखा कि नहीं?” मैंने उत्तर में निवेदन किया—“नहीं, अभी नहीं देखा।” आचार्य श्री बहुत गम्भीर हो गए। एक क्षण रुक कर बोले—“इसमें बौद्ध-पिटकों के सम्पादन की बहुत बड़ी योजना है। बौद्धों ने इस दिशा में पहले ही बहुत कार्य किया है और अब भी बहुत कर रहे हैं। जैन-आगमों का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से अभी नहीं हुआ है और इस ओर अभी ध्यान भी नहीं दिया जा रहा है।” आचार्य श्री की वाणी में अन्तर-वेदना टपक रही थी, पर उसे पकड़ने में समय की अपेक्षा थी।

आगम-सम्पादन का संकल्प

रात्रि-कालीन प्रार्थना के पश्चात् आचार्य श्री ने साधुओं को आमंत्रित किया। वे आए और वन्दना कर पंक्ति-बद्ध बैठ गए। आचार्य श्री ने सार्य-कालीन चर्चा का स्पर्श करते हुए कहा—“जैन-आगमों का कायाकल्प किया जाय, ऐसा संकल्प उठा है। उसकी पूर्ति के लिए कार्य करना होगा, पूर्ण श्रम करना होगा। बोले, कौन तैयार है?”

सारे हृदय एक साथ बोल उठे—“सब तैयार हैं।”

आचार्य श्री ने कहा—“महान् कार्य के लिए महान् साधना चाहिए। कल ही पूर्व तैयारी में लग जाओ, अपनी-अपनी रुचि का विषय चुनो और उसमें गति करो।”

मंचर से विहार कर आचार्य श्री संगमनेर पहुँचे। पहले दिन वैयक्तिक बातचीत होती रही। दूसरे दिन साधु-साध्वियों की परिषद् बुलाई गई। आचार्य श्री ने परिषद् के सम्मुख आगम-सम्पादन के संकल्प की चर्चा की। सारी परिषद् प्रफुल्ल हो उठी। आचार्य श्री ने पूछा—“क्या इस संकल्प को अब निर्णय का रूप देना चाहिए?”

समलये से प्रार्थना का स्वर निकला—“अवरय, अवरय।” आचार्य श्री औरंगाबाद पधारे। सुराणा-भवन, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (वि० सं० २०११), महावीर-जयंती का पुण्य-मय। आचार्य श्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इस चतुर्विध-संघ की परिषद् में आगम-सम्पादन की विधिवत् घोषणा की।

आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ

वि० सं० २०१२ श्रावण मास (उज्जैन चातुर्मास) से आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ हो गया। न तो सम्पादन का कोई अनुभव और न कोई पूर्व तैयारी। अकस्मात् धर्मदूत का निमित्त पा आचार्य श्री के मन में संकल्प उठा और उसे सबने शिरोधार्य कर लिया। चिन्तन की भूमिका से इसे निरी भावुकता ही कहा जाएगा, किन्तु भावुकता का मूल्य चिन्तन से कम नहीं है। हम अनुभव-विहीन थे, किन्तु आत्म-विश्वास से शून्य नहीं थे। अनुभव आत्म-विश्वास का अनुगमन करता है, किन्तु आत्म-विश्वास अनुभव का अनुगमन नहीं करता।

प्रथम दो-तीन वर्षों में हम अज्ञात दिशा में यात्रा करते रहे। फिर हमारी सारी दिशाएँ और कार्य-प्रवृत्तियाँ निश्चित व सुस्थिर हो गईं। आगम-सम्पादन की दिशा में हमारा कार्य सर्वाधिक विशाल व गुरुतर कठिनाइयों से परिपूर्ण है, यह कह कर मैं स्वल्प भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ। आचार्य श्री के अदम्य उत्साह व समर्थ प्रयत्न से हमारा कार्य निरन्तर गतिशील हो रहा है। इस कार्य में हमें अन्य अनेक विद्वानों की सद्भावना, समर्थन व प्रोत्साहन मिल रहा है। मुझे विश्वास है कि आचार्य श्री की यह वाचना पूर्ववर्ती वाचनाओं से कम अर्थवान् नहीं होगी।

आगम-सम्पादन की रूपरेखा

प्रस्तुत ग्रंथ उत्तराध्ययन का सानुवाद संस्करण है। यह आगम-ग्रन्थ-माला का दूसरा ग्रन्थ है। आगम-साहित्य के अध्येता दोनों प्रकार के लोग हैं—विद्वद्-जन और साधारण-जन। दोनों को दृष्टि में रख कर हमने सम्पादन कार्य को छह ग्रन्थ-माला में वंशित किया है। उसका आधार यह है—

- (१) आगम-सुप्त ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के मूलपाठ, पाठान्तर, शब्दानुक्रम आदि होंगे।
- (२) आगम ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के मूलपाठ, पाठान्तर, संस्कृत-छाया, हिन्दी अनुवाद, पदानुक्रम या सूत्रानुक्रम आदि होंगे।
- (३) आगम-अनुसन्धान ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के टिप्पण होंगे।
- (४) आगम-अनुशीलन ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के समीक्षात्मक अध्ययन होंगे।
- (५) आगम-कथा ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों से सम्बन्धित कथाओं का संकलन होगा।
- (६) वर्गीकृत-आगम ग्रंथ-माला— इस ग्रन्थ-माला में आगमों के वर्गीकृत और संक्षिप्त संस्करण होंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका बहुत ही लघुकाय है। उसका प्रतिपाद्य विषय 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन' (आगम-अनुशीलन ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-२) तथा 'दसवेजालियं तह उत्तराध्ययनाणि' (आगम-सुप्त ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-१) की भूमिका में प्रतिपादित हो चुका है। प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में आमुख है, उनमें भी अध्ययन की प्रासंगिक चर्चा की गई है। इसलिए भूमिका में चर्चित विषयों की पुनः चर्चा करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

मूलपाठ

प्रस्तुत ग्रन्थ में मूलपाठ वही है, जिसका प्रयोग हमने आगम-सुप्त ग्रन्थ-माला, ग्रन्थ-१ में किया है। पाठ-संशोधन में प्रयुक्त आदर्शों का परिचय उस ग्रन्थ में दिया जा चुका है। पाठान्तर पाद-टिप्पणों में दिए गए हैं। उनके आगे कोष्ठक में संशोधन में प्रयुक्त आदर्शों के संकेत हैं।

हस्तलिखित प्रतियों के संकेत

- अ—मूलपाठ सावचूरी।
 आ—उत्तराध्ययन मूलपाठ।
 इ—उत्तराध्ययन मूल।
 उ—उत्तराध्ययन पाठ, अवचूरी सहित।
 श—उत्तराध्ययन पाठ, अवचूरी सहित।
 स—उत्तराध्ययन सर्वार्थसिद्धि टीका सहित।

मुद्रित प्रतियों के संकेत

- सु—सुखबोधा टीका, नेमिचन्द्राचार्य कृत, प्र०—देवचन्द लालभाई।
 वृ—वृहद्बुद्धि, शान्त्याचार्य कृत, प्र०—देवचन्द लालभाई जैन, पुस्तकोद्धार, ग्रंथांक-११।
 चू—चूर्णि, गोपालिक महारशिष्य कृत, प्र०—देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रंथांक-११।

संस्कृत-छाया

संस्कृत-छाया को हमने वस्तुतः छाया रखने का ही प्रयत्न किया है। कुछ भ्रूढ़ित पुस्तकों में संस्कृत-छाया टीकाओं के आधार पर की गई है, किन्तु यह कई स्थलों पर छाया न हो कर संस्कृत पर्यायान्तर हो जाता है। टीकाकार प्राकृत शब्द की व्याख्या करते हैं अथवा उसका संस्कृत पर्यायान्तर देते हैं। छाया में वैसा नहीं हो सकता।

मूलपाठ में कुछ शब्द देशी भाषा के हैं। संस्कृत-छाया तत्सम प्राकृत शब्दों की हो सकती है, किन्तु देशी शब्दों की नहीं हो सकती। वहाँ हमने अर्थानुसार संस्कृत पर्याय का प्रयोग किया है। देखें—१३।२१ और २९।२२ में 'घणिय' शब्द का संस्कृत पर्याय। जिनके लिए संस्कृत का एक शब्द नहीं मिलता, वैसे देशी शब्दों को उभयवर्ती व्यवच्छेदों (कोमा) के अन्तर्गत रखा गया है। देखें १।५ का 'कणकुण्डग'। परिभाषार्थ शब्दों को भी उभयवर्ती व्यवच्छेदों के अन्तर्गत रखा गया है।

हिन्दी-अनुवाद

उत्तराध्ययन का हिन्दी-अनुवाद मूलस्पर्शी है। इसमें कोरे शब्दानुवाद की सी विरसता और जटिलता नहीं है तथा भावानुवाद जैसा विस्तार भी नहीं है। सूत्र का आशय जितने शब्दों में प्रतिबिम्बित हो सके, उतने ही शब्दों की योजना करने का प्रयत्न किया गया है। मूल शब्दों की सुरक्षा के लिए कहीं-कहीं उनका प्रचलित अर्थ कोष्ठकों में किया गया है। सूत्रगत हादों की स्पष्टता टिप्पण के संस्करण में की गई है। देखें—उत्तराध्ययन के टिप्पण। सभी सूत्रों ४. टिप्पण अनुवाद के तत्काल बाद नहीं लिखे जा सकते। इस कठिनाई के कारण टिप्पणों के संकेत अनुवाद के साथ संहन्ध नहीं किये जा सके। इससे पाठकों के सामने किञ्चित् कठिनाई होती है। हमारी कठिनाई उससे कहीं अधिक है, इसलिए वैसा करना हमारे लिए संभव नहीं।

परिशिष्ट

इस संस्करण में तीन परिशिष्ट हैं—

- (१) पदानुक्रम — इसमें प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक चरण का अनुक्रम किया गया है।
- (२) प्रयुक्त-ग्रन्थ—इसमें आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची है।
- (३) शुद्धि-पत्रम्।

ग्रन्थाद्य—ग्रन्थ-परिमाण

उत्तराध्ययन का अक्षर-परिमाण कुल ६५५१२।

उत्तराध्ययन अनुष्टुप् श्लोक-परिमाण २०५०।१२ अक्षर।

प्रस्तुत सम्पादन में सहयोगी

उत्तराध्ययन सर्वाधिक प्रसिद्ध आगम है। यह सरस, सरल और हृदयग्राही है। इसका अनुवाद भी हमने प्राञ्जल हिन्दी में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अनुवाद-कार्य में मुनि मीठालालजी व दुलहराजजी ने पूरा योग दिया है। आचार्य श्री ने इसे स्व-रुचि तथा जन-रुचि दोनों कसौटियों से कसा है।

इसका पदानुक्रम साध्वी जयश्री, कनकश्री ने किया है। उसके संशोधन में मुनि हनुमानमलजी (सरदारशहर), हीरालालजी, श्रीचन्द्रजी, किशनलालजी, मोहनलालजी (आमेट), साध्वी कमलश्रीजी तथा सरोजकुमारीजी ने योग दिया है।

इसका विषयानुक्रम मुनि रूपचन्द्रजी ने किया है। अनुवाद की प्रतिलिपि में मुनि सुमेरमलजी 'सुमन' ने मेरा सहयोग किया है। ग्रन्थ-परिमाण की गणना मुनि सागरमलजी 'श्रमण', मुनि मोहनलालजी (आमेट) ने की है।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक साधु-साध्वियों की पवित्र अँगुलियों का योग है। आचार्य श्री के वरदहस्त की छाया में बैठ कर कार्य करने वाले हम सब संभागी हैं, फिर भी मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूँ, जिनका इस काय में योग है और आशा करता हूँ कि वे इस महान् कार्य के अधिम चरण में और अधिक दक्षता प्राप्त करेंगे।

आगमों के प्रबन्ध-सम्पादक श्री श्रीचन्द्रजी रामपुरिया तथा स्वर्गीय मदनचन्द्रजी गोठी का भी इस कार्य में निरन्तर सहयोग रहा है ।

आदर्श साहित्य संघ के संचालक व व्यवस्थापक श्री हनूतमलजी सुराना व बबूचन्द्रलालजी दफ्तरी का भी अविरल योग रहा है । आदर्श साहित्य संघ की सहयुक्त सामग्री ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है । इस लक्ष्य के लिए समान गति से चलने वालों की सम-प्रवृत्ति में योगदान की परम्परा का उल्लेख व्यवहार-भूति मात्र है । वास्तव में यह हम सबका पवित्र कर्तव्य है और उसी का हम सबने पालन किया है ।

आचार्य श्री प्रेरणा के अनन्त स्रोत हैं । हमें इस कार्य में उनकी प्रेरणा और प्रत्यक्ष योग दोनों प्राप्त हैं, इसलिए हमारा कार्य-पथ बहुत श्रुत हुआ है । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं कार्य की शुरुआत को बढ़ा नहीं पाऊँगा । उनका आशीर्वाद दीप बन कर हमारा कार्य-पथ प्रकाशित करता रहे, यही हमारी आशा है ।

—सुनि नथमल

सागर-सदन,
शाहीबाग,
अहमदाबाद-४
२० अगस्त, १९६७



भूमिका

जैन-आगम चार वर्गों में विभक्त हैं—(१) अंग, (२) उपांग, (३) मूल और (४) शेष। यह वर्गीकरण बहुत प्राचीन नहीं है। विक्रम की १३-१४वीं शताब्दी से पूर्व इस वर्गीकरण का उल्लेख प्राप्त नहीं है।

उत्तराध्ययन 'मूल वर्ग' के अन्तर्गत परिगणित होता है।

पूर्णि-कालीन भूत-पुरुष की स्थापना के अनुसार मूल-स्थानीय (चरण-स्थानीय) दो सूत्र हैं—(१) आचारांग और (२) सूत्रकृतांग। परन्तु जिस समय पेंतालीस आगमों की कल्पना स्थिर हुई, उस समय भूत-पुरुष की स्थापना में भी परिवर्तन हुआ और भूत-पुरुष की अर्वाचीन प्रतिकृतियों में दशवैकालिक और उत्तराध्ययन—ये दो सूत्र चरण-स्थानीय माने जाने लगे।

नाम

इस सूत्र का नाम उत्तराध्ययन है। यह दो शब्दों—'उत्तर' और 'अध्ययन'—से बना है। इसी सूत्र के अन्तिम श्लोक तथा निर्युक्ति आदि में इसका नाम बहुवचनात्मक मिलता है।

रचना-काल और कर्तृत्व

निर्युक्तिकार के अनुसार उत्तराध्ययन किसी एक कर्त्ता की कृति नहीं है। कर्तृत्व की दृष्टि से इसके अध्ययन चार वर्गों में विभक्त होते हैं। जैसे—(१) अंग-प्रभव—दूसरा अध्ययन, (२) जिन-भाषित—दसव अध्ययन, (३) प्रत्येक-बुद्ध-भाषित—आठवों अध्ययन और (४) संवाद-समुत्थित—नौवाँ तथा तेईसवाँ अध्ययन। इस सूत्र के अध्ययन कब और किसके द्वारा रचे गए, इसकी प्रामाणिक जानकारी के लिए साधन-सामग्री सुलभ नहीं है।

उत्तराध्ययन की विषय-वस्तु के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तराध्ययन के अध्ययन ई० पू० ६०० से ईसवी सन् ४००, लगभग हजार वर्ष की धार्मिक व दार्शनिक धारा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

कई विद्वान् ऐसा मानते हैं कि उत्तराध्ययन के पहले आठव अध्ययन प्राचीन हैं और उत्तरवर्ती आठव अध्ययन अर्वाचीन। किन्तु इस मत की पुष्टि के लिए कोई पुष्ट साक्ष्य प्राप्त नहीं है। यह सही है कि कई अध्ययन बहुत प्राचीन हैं और कई अर्वाचीन।

वीर निर्वाण की एक सहस्राब्दी के बाद देवद्विगणी क्षमाभ्रमण ने प्राचीन और अर्वाचीन अध्ययनों का संकलन कर उसे एक रूप दिया।

उत्तराध्ययन धर्मकथानुयोग में परिगणित होता है। इससे यह अनुमान लगता है कि इसके प्राचीन संस्करण का मुख्य भाग कथा-भाग था।

वर्तमान में प्राप्त उत्तराध्ययन में अनेक अनुयोगों का समावेश है। इसमें १४ अध्ययन धर्मकथात्मक (७, ८, ९, ११, १३, १४, १८ से २३, २५ से २७), छह अध्ययन उपदेशात्मक (१, ३, ४, ५, ६ और १०), नौ अध्ययन आचारात्मक (२, ११, १५, १६, १७, २४, २६, ३२ और ३५) तथा सात अध्ययन (२८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ३६) सैद्धान्तिक हैं।

इन तथ्यों से यह कालित होता है कि यह संकलन-सूत्र है, एक-कर्तृक नहीं।

आकार और विषय-वस्तु

इसमें छत्तीस अध्ययन हैं और १६३८ श्लोक तथा ८६ सूत्र हैं । प्रत्येक अध्ययन का विषय भिन्न-भिन्न है । उसका विवरण इस प्रकार है—

अध्ययन	श्लोक	विषय
१—विणयसूयं	४८	विनय
२—परीसङ्ग	४६ सू० ३	प्राप्त-कष्ट-सङ्गन का विधान
३—आउरंगिजं	२०	चार दुर्लभ अंगों का प्रतिपादन
४—असंख्यं	१३	प्रमाद और अप्रमाद का प्रतिपादन
५—अकाममरणिजं	३२	मरण-विभक्ति—अकाम और सकाम-मरण
६—पुरिसविज्जा	१७	विद्या और आचरण
७—उरक्किजं	३०	रस-गुह्य का परित्याग
८—काविलिजं	२०	लाम और लोभ के योग का प्रतिपादन
९—नमिपठवज्जा	६२	संयम में निष्प्रकम्प भाव
१०—दुमपचयं	२७	अनूशासन
११—बहुसुयपूजा	३२	बहुश्रुत की पूजा
१२—हरिसिउजं	४७	तप का रोदन्य
१३—अससंभूयं	३५	निदान—भोग-संकल्प
१४—उमुकारिजं	५३	अनिदान - भोग-असंकल्प
१५—समिवत्तुगं	१६	मिदु के गुण
१६—समाहिठणाङ्गं	१७ सू० १२	ब्रह्मचर्य की गुणियाँ
१७—पावसमणिजं	२१	पाप-वर्जन
१८—संजङ्गजं	५३	भोग और ऋद्धि का त्याग
१९—मियचारिता	६८	अपारिकर्म—देहाध्यास का परित्याग
२०—अणाङ्गपठवज्जा	६०	अनाद्यता
२१—समुद्पाळिजं	२४	विचित्र चर्या
२२—रहमेमिजं	४९	चरण का स्थिरीकरण
२३—गोयमकेसिजं	८६	धर्म—आतुर्याम और पंचयाम
२४—समिलीओ	२७	समिलियों-गुणियाँ
२५—जन्नतिजं	४३	ब्राह्मण के गुण
२६—सामाचारी	५२	सामाचारी
२७—खलुंकिजं	१७	अज्ञता
२८—मोक्खमगगई	३६	मोक्ष-मार्ग-गति
२९—अप्पमाओ	सू० ७४	आवश्यक में अप्रमाद
३०—तवोमग्गो	३७	तप

भूमिका

३

३१—चरणविह्वी	२१	चारित्र
३२—पमायडाणाङ्ग	१११	प्रमाद-स्थान
३३—कम्मपगणी	२५	कर्म
३४—लेसउभयणं	६१	लेख्या
३५—अणगारमग्गे	२१	मिथु के गुण
३६—जीवाजीवविमयी	२६८	जीव और अजीव का प्रतिपादन

इस सूत्र में भाषा के विशिष्ट प्रयोग उपलब्ध होते हैं। इसकी मूल भाषा अर्द्धमागधी प्राकृत है, परन्तु यत्र-तत्र महाराष्ट्री-प्राकृत के प्रयोग भी बहुलता से मिलते हैं।

इन पृष्ठों में चर्चित विषय-वस्तु का विशद विवेचन 'देसवेआलियं तह उत्तरउभयणं' की भूमिका (पृष्ठ १-४६) में किया जा चुका है। व्याकरण, छन्द, तुलनात्मक, भूगोल और व्यक्ति-परिचय—इनका विमर्श 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षामक अध्ययन' में किया जा चुका है।

वाव

२६ अप्रैल, १९६७

—आचार्य तुलसी

उत्तरज्झयणाणि

अध्ययन अनुक्रमणिका

१—विणय-सूर्य
२—परीसह-पविमल्ली
३—काउरगिज
४—असंख्य
५—अकास-सरणिज
६—खुट्टाग नियंठिज
७—उरविमज
८—काविलीय
९—नमिपञ्चउज्जा
१०—दुमपत्तय
११—बहुस्सुयपुजा
१२—हरिणसिज
१३—चित्तसम्भूदुज
१४—उमुयारिज
१५—समिबल्लुय
१६—बम्भवेरसमाहिठाण
१७—पावसमणिज
१८—संजइज
१९—मियापुत्तिज
२०—महानियपिठिज
२१—समुहवालीय
२२—रहनेमिज
२३—केसिगोयमिज
२४—पवयण-माया
२५—जन्मइज
२६—सामायारी
२७—खलुंकिज
२८—मोक्खमग्गई
२९—सम्मत्तपरक्कमे
३०—तबदग्गई
३१—वरणविही
३२—पमायट्ठाण
३३—कम्मपयडी
३४—ऐसउभयण
३५—अणगारमग्गई
३६—जीवाजीवविमली

पृष्ठ	१-१६
	१७-३६
	३७-४६
	४७-५४
	५५-७२
	७३-८०
	८१-९२
	९३-१०२
	१०३-११६
	११६-१२८
	१२९-१३८
	१३९-१५२
	१५३-१६८
	१६९-१८४
	१८५-१९२
	१९३-२१०
	२११-२१८
	२१९-२३४
	२३५-२५६
	२५७-२७२
	२७३-२८२
	२८३-२९६
	२९७-३१८
	३१९-३३०
	३३१-३४२
	३४३-३६०
	३६१-३६८
	३६९-३८०
	३८१-४१६
	४१७-४२८
	४२९-४३६
	४३७-४६०
	४६१-४७२
	४७३-४८८
	४८९-४९६
	४९७-५४६

अध्ययन-विषयानुक्रम

प्रथम अध्ययन : विनय-श्रुत (विनय का विधान, प्रकार और महत्त्व)

पृ० १-१६

- श्लोक १—विनय-प्ररूपण की प्रतिज्ञा ।
२—विनीत की परिभाषा ।
३—अविनीत की परिभाषा ।
४—अविनीत का गण से निष्कासन ।
५—अज्ञानी भिक्षु का सूअर की तरह आचरण ।
६—विनय का उपदेश ।
७—विनय का परिणाम ।
८—भिक्षु का आचार्य के पास विनय और मौन-भाव से सार्थक पदों का अध्ययन ।
९—अमा की आराधना और क्षुद्र व्यक्तियों के साथ संसर्ग-त्याग ।
१०—चण्डालोचित कर्म का निषेध ।
अधिक बोलने का निषेध ।
स्वाध्याय और ध्यान का विधान ।
११—ऋजुता तथा मूल की स्वीकृति ।
१२—अविनीत और विनीत घोड़े से शिष्य के आचरण की तुलना ।
१३—अविनीत शिष्य द्वारा कोनल प्रकृति वाले आचार्य को भी क्रोधी बना देना ।
विनीत शिष्य द्वारा प्रचण्ड प्रकृति वाले आचार्य को भी प्रसन्न करना ।
१४—बोलने का विवेक ।
१५, १६—संयम और तप द्वारा आत्म-दमन ।
१७—आचार्य के प्रतिकूल वर्तन का वर्जन ।
१८, १९—आचार्य के प्रति विनय-पद्धति का निरूपण ।
२०-२२—आचार्य द्वारा आमंत्रित शिष्य के आचरण का निरूपण ।
२३—विनीत शिष्य को ही सूत्र, अर्थ और तदुभय देने का विधान ।
२४, २५—भाषा-दोषों के वर्जन का उपदेश ।
२६—अकेली स्त्री से आलाप-संलाप का निषेध ।
२७—अनुशासन का स्वीकार ।
२८, २९—प्रज्ञावान् मुनि के लिए अनुशासन हित का हेतु ।
असाधु, अज्ञानी के लिए द्वेष का हेतु ।
३०—गृह के समस्त बैठने की विधि ।
३१—व्याससमय कार्य करने का निर्देश ।
३२-३४—आहार सम्बन्धी विधि-निषेध ।
३५—आहार का स्थान और विधि ।

- ३६—साधन-साधन का निवेद्य ।
 ३७—विनीत और अविनीत शिष्य की उत्तम और दुष्ट बोद्धे के साथ तुलना ।
 ३८—पाप-दृष्टि मुनि के द्वारा अनुशासन की अवहेलना ।
 ३९—अनुशासन के प्रति दृष्टि-भेद ।
 ४०—न आचार्य को न स्वयं को कुपित करने का उपदेश ।
 ४१—कुपित आचार्य को प्रसन्न करने का उपक्रम ।
 ४२—व्यवहार-धर्म का पालन करने वाले मुनि की सर्वत्र प्रशंसा ।
 ४३—आचार्य के मनोमुक्त व्रत का उपदेश ।
 ४४—विनीत द्वारा आदेशानुसार कार्य-सम्पन्नता ।
 ४५—विनीत की कीर्ति और आचार्य भूतता ।
 ४६—विनय से पूज्य आचार्य की कृपा और श्रुत-ज्ञान का लाभ ।
 ४७—विनीत की सर्व-गुण-सम्पन्नता ।
 ४८—विनयी के लिए मोक्ष की सुलभता का प्रतिपादन ।

द्वितीय अध्ययन : परीषद्-प्रतिभक्ति (श्रमण-चर्या में होने वाले परीषदों का प्ररूपण)

पृ० १६-४२

सूत्र १-३—परीषद्-निरूपण का उपक्रम और परीषदों का नाम-निर्देश ।

श्लोक १—परीषद्-निरूपण की प्रतिज्ञा ।

२, ३—क्षुधा-परीषद् ।

४, ५—पिपासा-परीषद् ।

६, ७—शीत-परीषद् ।

८, ९—उष्ण-परीषद् ।

१०, ११—वृक्षमशक-परीषद् ।

१२, १३—अचेल-परीषद् ।

१४, १५—अरति-परीषद् ।

१६, १७—स्त्री-परीषद् ।

१८, १९—चय-परीषद् ।

२०, २१—निषीधका-परीषद् ।

२२, २३—शय्या-परीषद् ।

२४, २५—आक्रोश-परीषद् ।

२६, २७—वध-परीषद् ।

२८, २९—याचना-परीषद् ।

३०, ३१—अलाम-परीषद् ।

३२, ३३—रोग-परीषद् ।

३४, ३५—तृण-स्पर्श-परीषद् ।

३६, ३७—जल-परीषद् ।

३८, ३९—सत्कार-पुरस्कार-परीषद् ।

४०, ४१—प्रज्ञा-परीषद् ।

४२, ४३—अज्ञान-परीषद् ।

४४, ४५—वर्धन-परीषद् ।

४६—परीषद् को समभाव से सहने का उपदेश ।

तृतीय अध्ययन : चतुरंगीय (चार दुर्लभ अंगों का आख्यान)

पृ० ३७-४६

१—दुर्लभ अंगों का नाम-निर्देश ।

२-७—मनुष्यत्व-प्राप्ति की दुर्लभता ।

८—धर्म-श्रवण की दुर्लभता ।

९—श्रद्धा की दुर्लभता ।

१०—वीर्य की दुर्लभता ।

११—दुर्लभ अंगों की प्राप्ति से कर्म-मुक्त होने की संभवता ।

१२—धर्म-स्थिति का आधार ।

१३—कर्म-हेतुओं को दूर करने से ऊर्ध्व विद्या की प्राप्ति ।

१४-१९—शील की आराधना से देवलोको की प्राप्ति । वहाँ से प्युत होकर सत्त्व व समुद्र कुलों में जन्म और फिर विबुद्ध बोधि का लाभ ।

२०—दुर्लभ अंगों के स्वीकार से सर्व कर्मों-श-मुक्तता ।

चतुर्थ अध्ययन : असंस्कृत (जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण का प्रतिपादन)

पृ० ४७-५४

१—जीवन की असंस्कृता और अप्रमाद का उपदेश ।

२—पाप-कर्म से धन-अर्जन के अस्मिष्ट परिणाम ।

३—कृत कर्मों का अवश्यभावी परिणाम ।

४—कर्मों की फल-प्राप्ति में पर की असमर्थता ।

५—धन की अज्ञानता और उसके व्यामोह से दिम्बुद्धता ।

६—भारण्ड पक्षी के उपमान से क्षण भर प्रमाद न करने का उपदेश ।

७—गुणोपलब्धि तक शरीर-पोषण का विधान, फिर अनक्षान का उपदेश ।

८—छन्द-निरोध से मोक्ष की संभवता ।

९—शास्वत-वाद का निरसन ।

१०—विवेक-आवरण के लिए एक क्षण भी न खोने का आह्वान ।

११, १२—श्रमण के लिए अनुकूल और प्रतिकूल परीषद् को समभाव से सहने का निर्देश ।

१३—जीवन को शाश्वत मानने वालों का निरसन और शरीर-मेव तक गुणाराधना का आदेश ।

पंचम अध्ययन : अकाम-मरणीय (मरण के प्रकार और स्वरूप-विधान)

पृ० ५५-७२

श्लोक १, २—अध्ययन का उपक्रम और मरण के प्रकारों का नाम-निर्देश ।

३—मरण का काल-निर्धारण ।

४-७—कामासक्त व्यक्ति द्वारा मिथ्या-भाषण का आश्रय ।

८,६—कामासक्ति हिंसा का हेतु । हिंसा से दोष-परम्परा का विस्तार ।

१०—काम-रस व्यक्ति द्वारा विधुनाग की तरह दुःख कर्म-मूल संभव ।

११,१२—रोगातंक होने पर कर्म के अनिष्ट परिणामों की आशंका से भय-मुक्त अनुयाय ।

१४-१६—विषम मार्ग में पड़े हुए गाड़ोबान की तरह धर्म-च्युत व्यक्ति द्वारा लोकानुभूति और परलोक-भय से संवस्त अवस्था में अकाम-मृत्यु ।

१७—अकाम-मरण का उपसंहार और सकाम-मरण का आरम्भ ।

१८—संयमी पुरुषों का प्रसाद-मुक्त और आघात-रहित मरण ।

१९—सकाम-मरण की दुर्लभता ।

२०—साधु और गृहस्थ का तुलनात्मक विवेचन ।

२१—शास्त्राचार्यों से साधुत्व की रक्षा अवसंभव ।

२२—दुःखाल और शील के निष्पन्न परिणाम ।

२३—श्रावक-आचार का निर्देश ।

२४—सुजती मनुष्य की सुगति-प्राप्ति ।

२५-२८—सद्वृत्त-मनुष्य का अवसर्ग या स्वर्ग-मगन । देवताओं की समृद्धि और सम्पदा का वर्णन । देव-आवासी की प्राप्ति में उपशम और संयम की प्रधानता ।

२९,३०—बहुश्रुत मुनि की मरण-काल में सम-साधता तथा उद्विग्न न होने का उपदेश ।

३१—संलेखना में शरीर-भेद की आकांक्षा ।

३२—सकाम-मरण के प्रकारों में से किसी एक के स्वीकार का उपदेश ।

षष्ठ अध्यायन : क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय (ग्रन्थ-त्याग का संक्षिप्त निरूपण)

पृ० ७३-८०

श्लोक १—अविद्या भव-प्रवण का हेतु ।

२—सत्य की गवेषणा और जोषों के प्रति मैत्री का उपदेश ।

३—कर्म-कर्मों के विपाक के समय स्वजन-परिजनो की असमर्थता ।

४—पद्मगुद्घोषन वाले पुरुष द्वारा आन्तरिक परिग्रह का त्याग ।

५—बाह्य परिग्रह-त्याग से काम-रूपता की प्राप्ति ।

६—अहिंसा के विचार का व्यावहारिक आधार ।

७—परिग्रह का निषेध और प्रदत्त भोजन का ग्रहण ।

८,९—क्रिया-रहित ज्ञान से दुःख-मुक्ति मानने वालों का निरसन ।

१०—माया और धनुषासन की त्राण देने में असमर्थता ।

११—आसाक्त दुःखोत्पत्ति का कारण ।

१२—सब दिशाओं को देख कर अप्रमाद का उपदेश ।

१३—बाह्य की अनाशांसा और देह-धारणा का उद्देश्य ।

१४—कर्म-हेतुओं पर विचार । भित और निर्दोष अन्न-पानी का ग्रहण ।

१५—असंग्रह का विधान ।

१६—अनियत बिहार करते हुए पिच्छपात की गवेषणा ।

१७—उपसंहार ।

अध्ययन-विषयानुक्रम

६

सप्तम अध्ययन : उरग्रोय (उरग्र, काकिणी, आन्नफल, व्यवहार और सागर—पाँच उदाहरण) पृ० ८१-१२

श्लोक १-१०—उरग्र दृष्टान्त से विषय-भोगों के कटु विपाक का दर्शन ।

११-१३—काकिणी और आन्नफल दृष्टान्त से शेष-भोगों के सामने मानवीय-भोगों की तुच्छता का दर्शन ।

१४-२२—व्यवहार (व्यवसाय) दृष्टान्त से ज्ञान-अध्यय के विषय में कुशलता का दर्शन ।

२३-२४—सागर दृष्टान्त से ज्ञान-अध्यय की तुलना का दर्शन ।

२५—काम-भोगों की अनिवृत्ति से आत्म-प्रयोजन का नाश ।

२६-२७—काम-भोगों की निवृत्ति से देवत्व और अनन्तर सुख वाले मनुष्य कुलों की प्राप्ति ।

२८—बाल जीवों का मरक-गमन ।

२९—घीर-पुरुष का देव-गमन ।

३०—बाल और अवाल-भाव की तुलना और पण्डित मुनि द्वारा अवाल-भाव का सेवन ।

अष्टम अध्ययन : कापिलीय (संसार की असारता और ग्रन्थि-त्याग)

पृ० ६३-१०२

श्लोक १—दुःख-बहुल संसार से छूटने की जिज्ञासा ।

२—स्नेह-त्याग से दोष-मुक्ति ।

३—कपिल मुनि द्वारा पाँच सौ चोरों को उपदेश ।

४—ग्रन्थि-त्याग का उपदेश ।

५—आसक्त मनुष्य की कर्म-बद्धता ।

६—सुप्रती द्वारा संसार-समुद्र का पार ।

७, ८—कुलीयिकों की अज्ञता का निरसन ।

९, १०—अहिंसा का विवेक ।

११, १२—संयम-निर्वाह के लिए भोजन की एवणा ।

१३—स्वल्प-शास्त्र, लक्षण-शास्त्र और अंग-विद्या के प्रयोग का निषेध ।

१४, १५—समाधि-अष्ट व्यक्तित्व का संसार-भ्रमण और बोधि-पुल्लभता ।

१६, १७—तृष्णा की दुष्पूरता ।

१८, १९—स्त्री-संग का त्याग ।

२०—उपसंहार ।

नवम अध्ययन : नमि-प्रब्रज्या (इन्द्र और नमि राजर्षि का संवाद)

पृ० १०३-११८

श्लोक १—नमि का जन्म और पूर्व जन्म की स्मृति ।

२—धर्म की आराधना के लिए अनिनिष्क्रमण ।

३, ४—प्रवर भोगों का त्याग और एकान्तवास का स्वीकार ।

५—नमि के अनिनिष्क्रमण से मिथिला में कोलाहल ।

६—देवेन्द्र का ब्राह्मण रूप में आकर नमि से प्रसन्न ।

७-१०—मिथिला में हो रहे कोलाहल के प्रति देवेन्द्र की जिज्ञासा । नमि राजर्षि द्वारा आश्रय-हीन हुए पक्षियों के साथ मिथिला वासियों की तुलना ।

११-१६—देवेन्द्र द्वारा बल रहे अन्तःपुर की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न । नमि राजर्षि का उदासीन-भाव ।

- १७-२२—देवेन्द्र द्वारा नगर-सुरक्षा के प्रति कर्तव्य-बोध । नमि राजर्षि द्वारा आत्म-नगर की सुरक्षापूर्वक मुक्ति-बोध ।
 २२-२६—देवेन्द्र द्वारा प्रसाद, वर्धमान-गृह आदि बताने की प्रेरणा । नमि राजर्षि द्वारा मार्ग में बनाए घर के प्रति सहिष्णुलता और शाश्वत घर की ओर संकेत ।
 २७-३०—देवेन्द्र द्वारा नगर में न्याय और शान्ति-स्थापन का अनुरोध । राजर्षि द्वारा जगत् में होने वाले अन्याय-प्राण का उल्लेख ।
 ३१-३६—देवेन्द्र द्वारा स्वतंत्र राजाओं को जीत कर मुनि बनने का अनुरोध । राजर्षि द्वारा आत्म-विजय ही परम विजय है, इसलिए अपनी आत्मा के साथ युद्ध करने का उपदेश ।
 ३७-४०—देवेन्द्र द्वारा यज्ञ, दान और भोग की प्रेरणा । राजर्षि द्वारा दान देने वाले के लिए भी संयम श्रेयस्करता का प्रतिपादन ।
 ४१-४४—देवेन्द्र द्वारा गृहस्थाश्रम में रहते हुए तप की प्रेरणा । राजर्षि द्वारा सम्यक्-चारित्र्य सम्पन्न मुनि-वर्ग का महत्त्व-स्थापन ।
 ४५-४९—देवेन्द्र द्वारा परिग्रह के संग्रह का उपदेश । राजर्षि द्वारा आकाश के समान इच्छा की अनन्तता का प्रतिपादन और पदार्थों से इच्छा-पूर्ति की असंभवता का निरूपण ।
 ५०-५४—देवेन्द्र द्वारा प्राप्त भोगों के त्याग और अप्राप्त भोगों की अभिलाषा से उत्पन्न विरोध का प्रतिपादन ।
 राजर्षि द्वारा काम-भोगों की भयंकरता और उसके अनिष्ट परिणामों का स्थापन ।
 ५५-५९—देवेन्द्र का अपने मूल रूप में प्रकटीकरण । राजर्षि की हृदयसाही स्तुति और वन्दन ।
 ६०—घन का आकाश-गमन ।
 ६१—राजर्षि की श्रामध्य में उपस्थिति ।
 ६२—संबुद्ध लोगों द्वारा इसी पथ का स्वीकार ।

दशम अध्यायन : द्रुम-पत्रक (जीवन की अस्थिरता और आत्म-बोध)

पृ० ११६-१२८

श्लोक १,२—जीवन की अस्थिरता और अप्रमाद का उद्बोध ।

- ३—आयुष्य की क्षण भंगुरता ।
 ४—मनुष्य-भव की दुर्लभता ।
 ५-९—स्थावर-काय में उत्पन्न जीव की उत्कृष्ट स्थिति ।
 १०-१४—जल-काय में उत्पन्न जीवन की उत्कृष्ट स्थिति ।
 १५—प्रमाद-बहुल जीव का जन्म-मृत्यु-मय संसार में परिभ्रमण ।
 १६—मनुष्य-भव मिलने पर भी आर्य-देश की दुर्लभता ।
 १७—आर्य-देश मिलने पर भी पूर्ण पाँचों इन्द्रियों की दुर्लभता ।
 १८—उत्तम धर्म के श्रवण की दुर्लभता ।
 १९—श्रद्धा की दुर्लभता ।
 २०—शाचरण की दुर्लभता ।
 २१-२६—इन्द्रिय-बल की उत्तरोत्तर क्षीणता ।
 २७—अनेक शीघ्र-घाती रोगों के द्वारा शरीर का स्पर्श ।
 २८—स्नेहापनयन की प्रक्रिया ।
 २९, ३०—वात-भोगों के पुनः न सेवन का उपदेश ।
 ३१, ३२—प्राप्त शिरालः काय-पथ पर अप्रमादपूर्वक बढ़ने की प्रेरणा ।
 ३३—विषम-मार्ग पर न चले जाने की सूचना ।
 ३४—किनारे के निकट पङ्क्ति पर प्रमाद न करने का उपदेश ।
 ३५—आपक-प्रेषि से सिद्धि-लोक की प्राप्ति ।

३६—पाँच, नगर में उपस्थान्त होकर विचरते हुए शान्ति का संदेश ।

३७—गीतम की सिद्धि-प्राप्ति ।

एकादश अध्ययन : बहुश्रुत-पूजा (बहुश्रुत व्यक्ति का महत्त्व-ख्यापन)

पृ० १२६-१३८

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—अबहुश्रुत की परिभाषा ।

३—शिक्षा-प्राप्त न होने के पाँच कारण ।

४,५—शिक्षा-शील के आठ लक्षण ।

६-९—अविनीत के चौदह लक्षण ।

१०-१३—मुविनीत के पन्द्रह लक्षण ।

१४—शिक्षा-प्राप्त की अर्हता ।

१५—दाँस में रखे हुए दूध की तरह बहुश्रुत की दोनों ओर से शोभा ।

१६—कन्यक घोड़े की तरह भिक्षुओं में बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

१७—जातिमान् अश्व पर आसक्त योद्धा की तरह बहुश्रुत की अजेयता ।

१८—साठ वर्ष के बलवान् हाथी की तरह बहुश्रुत की अपराजेयता ।

१९—गुह्य स्कन्ध वाले यथाधिपति बेल की तरह बहुश्रुत आचार्य की सुशोभनीयता ।

२०—मुवा सिंह के समान बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

२१—वामदेव के समान बहुश्रुत की बलवत्ता ।

२२—चौदह रत्नों के अधिपति चक्रवर्ती के साथ चौदह प्रबंधर बहुश्रुत की तुलना ।

२३—देवाधिपति शक्र के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२४—उगते हुए सूर्य के तेज के साथ बहुश्रुत के तेज की तुलना ।

२५—प्रतिपूर्ण चन्द्रमा के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२६—साम्राजिकों के कोष्ठागार के समान बहुश्रुत की परिपूर्णता ।

२७—सुदर्शना नामक जम्बू के साथ बहुश्रुत की तुलना ।

२८—शीता नदी की तरह बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

२९—मंदार पर्वत के समान बहुश्रुत की सर्वश्रेष्ठता ।

३०—रत्नों से परिपूर्ण अक्षय जल वाले स्वयंभूरमण समुद्र के साथ बहुश्रुत के अक्षय ज्ञान की तुलना ।

३१—बहुश्रुत मुनियों का मोक्ष-गमन ।

३२—श्रुत के आश्रयण का उपदेश ।

द्वादश अध्ययन : हरिकेशीय (जाति की अतात्त्विकता का संबोध)

पृ० १३६-१५२

श्लोक १,२—हरिकेशवल्गु मुनि का परिचय ।

३—मुनि का भिक्षा के लिए यज्ञ-मण्डप में गमन ।

४-६—मलिन मुनि को देख कर ब्राह्मणों का हँसना और मुनि के बैस और शरीर के बारे में परस्पर व्यंग्य-संलाप ।

७—मुनि को अपमानजनक वाद्यों से बापस चले जाने की प्रेरणा ।

८—प्रसन्न का मुनि के शरीर में प्रवेश ।

- ६,१०—यज्ञ द्वारा मुनि का परिचय और आगमन का उद्देश्य-कथन ।
 ११—सोमदेव ब्राह्मण द्वारा भोजन न देने का उत्तर ।
 १२-१७—यज्ञ और सोमदेव के बीच दान के अधिकारी के बारे में चर्चा ।
 १८—सोमदेव द्वारा मुनि को मार-पीट कर बाहर निकालने का आदेश ।
 १९—कुमारों द्वारा मुनि पर प्रहार ।
 २०-२३—भद्रा द्वारा कुमारों को समझाने का प्रयत्न । ऋषि का वास्तविक परिचय और अवहेलना से होने वाले अनिष्ट की ओर संकेत ।
 २४—यज्ञ द्वारा कुमारों को भूमि पर गिराना ।
 २५—यज्ञ द्वारा कुमारों पर संघर्ष प्रहार ।
 भद्रा का पुनः कुमारों को समझाना ।
 २६-२८—मिश्र का अपमान करने से होने वाले अनिष्ट परिणाम की ओर संकेत ।
 २९—छानों की दुर्दशा ।
 ३०,३१—सोमदेव का मुनि से विनम्र निवेदन ।
 ३२—मुनि द्वारा स्पष्टीकरण ।
 ३३-३५—सोमदेव का पुनः क्षमा देने का निवेदन ।
 मिश्रा-प्रहण करने का आग्रह ।
 मुनि द्वारा मिश्रा-स्वीकार ।
 ३६—देवी द्वारा दिव्य दृष्टि और दिव्य घोष ।
 ३७—तप की महत्ता का प्रतिपादन, जाति की महत्ता का निरसन ।
 ३८,३९—अग्नि का समारम्भ और जल का स्पर्श पाप-वन्ध का हेतु ।
 ४०—सोमदेव द्वारा यज्ञ के बारे में जिज्ञासा ।
 ४१-४२—मुनि द्वारा वास्तविक यज्ञ का निरूपण ।
 ४३—सोमदेव द्वारा अ्योति और उसकी सामग्री के बारे में जिज्ञासा ।
 ४४—मुनि द्वारा आत्म-परक अ्योति का विश्लेषण ।
 ४५—सोमदेव द्वारा तीर्थ के बारे में जिज्ञासा ।
 ४६,४७—मुनि द्वारा तीर्थ का निरूपण ।

त्रयोदश अध्यायन : चित्र-सम्भूति (चित्र और सम्भूति का संवाद)

पृ० १५३-१६८

- श्लोक १,२—सम्भूत का ऋतुदत्त षड्वर्ती के रूप में काम्यत्व में और चित्र का प्रसिद्धता में अस्ति-कुल में जन्म ।
 ३—चित्र और सम्भूति का मिलन और सुख-दुःख के विपाक की बातों ।
 ४-७—ऋतुदत्त द्वारा पूर्व भवों का वर्णन ।
 ८—मुनि द्वारा पूर्व जन्म में कृत निदान की स्मृति विलाप ।
 ९—षड्वर्ती द्वारा पूर्व कृत शुभ वस्तुधर्मा से प्राप्त सुख-मोहों का वर्णन । मुनि से सुख के बारे में प्रश्न ।
 १०-१२—मुनि द्वारा कृत कर्मों को सोचने की अनिवार्यता ।
 अपनी षड्वर्ती-सम समृद्धि का उल्लेख ।
 स्वयिर्गों की गाथा से आत्मस्थ-स्वीकार ।

१३,१४—चक्रवर्ती द्वारा प्रचुर धन-सम्पदा और स्त्री-परिवृत्त होकर भोग भोगने का आग्रह ।

प्रव्रज्या की कष्टमयता ।

१५—मुनि का चक्रवर्ती को बेराध्य-उपदेश ।

१६—काम-राग की दुःखकरता ।

१७—काम-गुण-रत की अपेक्षा विरक्त को अधिक सुख ।

१८—बाण्डाल-जाति में उत्पत्ति और लोगों का विद्वेष ।

१९—वर्तमान की उच्चता पूर्व संघित शुभ कर्मों का फल ।

२०—अशास्त्रित भोगों को छोड़ने का उपदेश ।

२१—शुभ अनुष्ठानों के अभाव में भविष्य में पश्चात्ताप ।

२२—अन्त काल में मृत्यु द्वारा हरण । माता-पिता आदि की असहायता ।

२३—कर्म द्वारा कर्ता का अनुगमन ।

२४—केवल कर्मों के साथ आत्मा का परभव-गमन ।

२५—शरीर को जला कर शक्तियों द्वारा दूसरे दाता का अनुसरण ।

२६—जीवन की निरन्तर अणभंगुरता । बुढ़ाया द्वारा कान्ति का अपहरण । कर्म अर्जन न करने का उपदेश ।

२७-३०—चक्रवर्ती द्वारा अपनी पुर्वलता का स्वीकार ।

सनत्कुमार को देख कर निदान करने का उल्लेख ।

प्रायश्चित्त न कर पाने के कारण दलदल में फँसे हाथी की तरह धर्मानुसरण करने में असमर्थता और काम-मूच्छा ।

३१—जीवन की अस्थिरता । भोगों द्वारा मनुष्य का त्याग ।

३२—आर्य-कर्म करने का उपदेश ।

३३—राजा की भोग छोड़ने में असमर्थता और मुनि का वहाँ से गमन ।

३४—चक्रवर्ती का नरक-गमन ।

३५—चित्र की अनुत्तर सिद्धि-प्राप्ति ।

चतुर्दश अध्ययन : इषुकारीय (ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति का भेद-दर्शन)

पृ० १६८-१८४

श्लोक १-३—अध्ययन का उपक्रम और निष्कर्ष ।

४,५—पुरोहित-कुमारों द्वारा निर्झव्यों को देखना । पूर्व-जन्म की स्मृति और काम-गुणों से विरक्ति ।

६—धर्म-श्रद्धा से प्रेरित होकर पिता से निवेदन ।

७—जीवन की अनित्यता । मुनि-चर्या के लिए अनुमति ।

८—पिता द्वारा समझाने का प्रयास । अपुत्र की गति नहीं ।

९—वेदाध्ययन, ब्राह्मणों को दान और पुरोहित के बाद मुनि बनने का परामर्श ।

१०,११—कुमारों का पुरोहित को उत्तर ।

१२—वेदाध्ययन, ब्राह्मण-भोजन और औरस पुत्र की अनागतता ।

१३—काम-भोगों द्वारा क्षण भर सुख तथा विरकाल तक दुःख की प्राप्ति ।

१४,१५—कामना जन्म और मृत्यु की हेतु ।

१६—प्रचुर धन और स्त्री की सुलभता में श्रमण बनने की उत्कण्ठा के लिए पिता का प्रश्न ।

१७—धर्म-चुरा में धन और विधियों की निष्प्रयोजनता ।

- १८—पिता द्वारा शरीर-नाश के साथ जीव-नाश का प्रतिपादन ।
- १९—कुमारों द्वारा आत्मा की अमूर्तता का प्रतिपादन ।
आत्मा के आन्तरिक दोष ही संसार-बन्धन के हेतु ।
- २०—धर्म की अबाधकारी में पाप का आचरण ।
- २१—वीरहित लोक में सुख की प्राप्ति नहीं ।
- २२—लोक की वीक्षा क्या ?
- २३—लोक की पीड़ा—मृत्यु ।
- २४—अधर्म-रत व्यक्ति की रात्रियाँ निष्फल ।
- २५—धर्म-रत व्यक्ति की रात्रियाँ सफल ।
- २६—योगन वीरने पर एक साथ वीक्षा लेने का पिता का सुभाष ।
- २७—मृत्यु को वश में करने वाला ही कल की इच्छा करने में समर्थ ।
- २८—आज ही मुनि-धर्म स्वीकारने का संकल्प ।
- २९, ३०—पिता की भी साथ ही रह-त्याग की भावना ।
शाखा-रहित वृक्ष, बिना पंख का पक्षी, सेना-रहित राजा और धन-रहित व्यापारी की तरह असहायता ।
- ३१—वाशिष्ठी द्वारा प्राप्त भोगों को भोगने के बाद मोक्ष-पथ के स्वीकार का सुभाष ।
- ३२—पुरोहित द्वारा भोगों की असारता । मुनि-धर्म के आचरण का संकल्प ।
- ३३—भोग न भोगने से बाद में अनुताप ।
- ३४—पुत्रों का अनुगमन क्यों नहीं ?
- ३५—रोहित मच्छ की तरह धीरे पुरुष ही संसार-जाल को काटने में समर्थ ।
- ३६—वाशिष्ठी की भी पुत्र और पति के अनुगमन की इच्छा ।
- ३७-३८—पुरोहित-परिवार की प्रव्रज्या के बाद राजा द्वारा धन-सामग्री लेने की इच्छा ।
रानी कमलावती की कटक़ार ।
- ३९—समूचा जगत् भी इच्छा की पूर्ति के लिए असमर्थ ।
- ४०—पदार्थ-जगत् की अज्ञातता । धर्म की ज्ञातता ।
- ४१—रानी द्वारा स्नेह-जाल को तोड़ कर मुनि-धर्म के आचरण की इच्छा ।
- ४२, ४३—राग-द्वेष युक्त प्राणियों की संसार में मूढता ।
- ४४—विषेकी पुरुषों द्वारा अप्रतिबद्ध विहार ।
- ४५—रानी द्वारा राजा को भ्रष्ट पुरोहित की तरह बनने की प्रेरणा ।
- ४६—निरामिष बनने का संकल्प ।
- ४७—काम-भोगों से संशंकित रहने का उपदेश ।
- ४८—बन्धन-मुक्त हाथी की तरह स्व-स्थान की प्राप्ति का उद्बोध ।
- ४९—राजा और रानी द्वारा विपुल राज्य और काम-भोगों का त्याग ।
- ५०—तीर्थङ्कर द्वारा उपदिष्ट मार्ग में चोर पराक्रम ।
- ५१—दुःखों के अन्त की कोश ।
- ५२—राजा, रानी, पुरोहित, ब्राह्मणों, पुरोहित-कुमारों द्वारा दुःख-विमुक्ति ।

पंचदश अध्ययन : समिक्षक (भिक्षु के लक्षणों का निरूपण)

पृ० १८५-१६२

श्लोक १—मुनि व्रत का संकल्प । स्नेह-परिचय-त्याग तप आदि का परिचय दिए बिना भिक्षा की एवणा ।

२—रात्रि-भोजन या रात्रि-विहार का वर्णन । वस्तु के प्रति अमूच्छी-भाव ।

३—हर्ष और शोक में अनाकुलता ।

४—परीवह-विषय और समवाय की साधना ।

५—सत्कार, पूजा और प्रशंसा के प्रति उपेक्षा-भावना ।

६—स्त्री-पुरुष की संगति का त्याग ।

७—विद्याओं द्वारा आजीविका करने का निषेध ।

८—मंत्र, मूल आदि द्वारा चिकित्सा का निषेध ।

९—गृहस्थों की श्लाघा का निषेध ।

१०—इहलौकिक फल-प्राप्त के लिए परिचय का निषेध ।

११—गृहस्थ द्वारा वस्तु न दिए जाने पर श्रद्धेय का निषेध ।

१२—गृहस्थ द्वारा वस्तु दिए जाने पर आशीर्वाद का निषेध ।

१३—नीरस अन्न-पान की निन्दा का निषेध और सामान्य घरों की भिक्षा ।

१४—अमय की साधना ।

१५—आत्म-तुल्य साधना का विकास ।

१६—शिल्प-जीवी न होने, घर, मित्र और परिग्रह से मुक्त, मन्थ कषाय और असार भोजी होने का उपदेश ।

षोडश अध्ययन : ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान (ब्रह्मचर्य के दस समाधि-स्थानों का वर्णन)

पृ० १६३-२०६

सूत्र १-३—अध्ययन का प्रारम्भ और दस समाधि-स्थानों का नाम-निर्देश ।

४—स्त्री-कथा वर्जन ।

५—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने का वर्जन ।

६—दृष्टि-संयम ।

७—स्त्री-शब्द सुनने पर संयम ।

८—पूर्वकृत काम-क्रीडा की स्मृति पर संयम ।

९—प्रणीत आहार का निषेध ।

१०—मात्रा से अधिक आहार का निषेध ।

११—विभूषा-वर्जन ।

१२—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श-विजय ।

श्लोक १—एकान्त-वास ।

२—स्त्री-कथा-वर्जन ।

३—स्त्री-परिचय और बातलाप का वर्जन ।

४—स्त्री का शरीर, अंग-प्रसंगों को देखने के प्रयत्न का निषेध ।

५—स्त्री के शब्द, गीत आदि का श्रवण-वर्जन ।

६—पूर्व कृत क्रीडा-रति का स्मरण-त्याग ।

७—प्रणीत भोजन का वर्जन ।

८—परिमित भोजन का विधान ।

९—विभूषा-वर्जन ।

१०—सावद, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श-काम-गुणों का वर्जन ।

११-१३—दस स्थानों के सेवन की तालुटुट विधि से तुलना ।

१४—तुर्जय काम-मोग और ब्रह्मचर्य में हांका उत्पन्न करने वाले सभी स्थानों के वर्जन का उपदेश ।

१५—भिक्षु का घर्म-आराम में विचरण ।

१६—ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला देव आदि सभी से बन्दीय ।

१७—ब्रह्मचर्य की साधना से सिद्धत्व की प्राप्ति ।

सप्तदश अध्ययन : पाप-श्रमणीय (पाप-श्रमण के स्वरूप का निरूपण)

पृ० २१०-२१८

श्लोक १-३—ज्ञान-आचार में प्रमाद ।

४—आचार्य, उपाध्याय की अवहेलना ।

५—दर्शन-आचार में प्रमाद ।

६-१४—चारित्र-आचार में प्रमाद ।

१५, १६—तप-आचार में प्रमाद ।

१७-१९—वीर्य-आचार में प्रमाद ।

२०—पाप-श्रमण की इहलोक और परलोक में व्यर्थता ।

२१—सुब्रती द्वारा इहलोक और परलोक को आराधना ।

अष्टादश अध्ययन : संजयीय (जैन-शासन की परम्परा का संकलन)

पृ० २१९-२३३

श्लोक १-३—संजय राजा का परिचय ।

सिंहास के लिए राजा का वन-गमन ।

४—केदार उद्यान में ध्यानलीन मुनि की उपस्थिति ।

५—राजा द्वारा मुनि के पास आए हुए हिरण पर प्रहार ।

६—राजा का मुनि-दर्शन ।

७—भय-भ्रान्त मन से तुच्छ कार्य पर पश्चात्ताप ।

८-१०—मुनि से क्षमा-प्रार्थना । मोत होने पर अधिक भयानकता ।

११—मुनि का अभय-दान । अभय-दाता बनने का उपदेश ।

१२—अनिष्ट-जीव-लोक में आसक्त न होने का उपदेश ।

१३—जीवन की अस्थिरता ।

१४-१६—ज्ञाति-सम्बन्धों की अवसरता ।

१७—कर्म-परिणामों की निश्चितता ।

१८, १९—राजा का संसार-त्याग और जिन-शासन में दीक्षा ।

२०, २१—अत्रिय मुनि द्वारा संजय राजर्षि से प्रणम ।

२२—संजय राजर्षि का अपने बारे में उत्तर ।

२३—अत्रिय मुनि द्वारा एकात्मवादी विचार-धाराओं का उल्लेख ।

२४-२७—एकान्त दृष्टिकोण मायापूर्ण, निरर्थक और नरक का हेतु ।

- २८-३२—क्षत्रिय मुनि द्वारा आत्म-परिचय ।
 ३३—क्रियावाद का समर्थन ।
 ३४—भरत चक्रवर्ती का प्रव्रज्या-स्वीकार ।
 ३५—सगर चक्रवर्ती द्वारा संयम-आराधना ।
 ३६—मधवा चक्रवर्ती द्वारा संयम-आराधना ।
 ३७—सनत्कुमार चक्रवर्ती द्वारा तपस्वरण ।
 ३८—शान्तिनाथ चक्रवर्ती द्वारा अनुत्तर-गति-प्राप्ति ।
 ३९—कुन्पु नरेश्वर द्वारा मोक्ष-प्राप्ति ।
 ४०—अर नरेश्वर द्वारा कर्म-रजों से मुक्ति ।
 ४१—महापद्म चक्रवर्ती द्वारा तप का आचरण ।
 ४२—हरिषेण चक्रवर्ती द्वारा अनुत्तर-गति-प्राप्ति ।
 ४३—अय चक्रवर्ती का हजार राजाओं के साथ दम का आचरण ।
 ४४—दशार्णभद्र का मुनि-धर्म स्वीकार ।
 ४५, ४६—कलिग में करकण्डू, पाँचाल में द्विमुल, विदेह में नमि और शम्भार में नगति द्वारा श्रमण-धर्म में प्रव्रज्या ।
 ४७—उद्रायण राजा द्वारा मुनि-धर्म का आचरण ।
 ४८—काशीराज द्वारा कर्म-महाबल का उन्मूलन ।
 ४९—विजय राजा की जिन-शासन में प्रव्रज्या ।
 ५०—राजर्षि महाबल की मोक्ष-प्राप्ति ।
 ५१—एकान्त दृष्टिमय अहेतुवादों को छोड़ कर पराक्रमशाली राजाओं द्वारा जैन-शासन का स्वीकार ।
 ५२—जैन-शासन के द्वारा अनेक जीवों का उद्धार ।
 ५३—एकान्त दृष्टिमय अहेतुवादों को अस्वीकार करने से मोक्ष की प्राप्ति ।

एकोनविंश अध्यायन : मृगापुत्रीय (श्रमण-चर्या का सांगोपांग दिग्दर्शन)

पृ० २३५-२५६

- श्लोक १-६—मृगापुत्र का परिचय । मुनि की देख कर पूर्व-जन्म की स्मृति ।
 १०—मृगापुत्र का माता-पिता से प्रव्रज्या के लिए निवेदन ।
 ११-१४—जीवन की अशाश्वतता और काम-भोगों के कटु परिणाम ।
 १५—जीवन की दुःखमयता ।
 १६, १७—किम्पा-फल की तरह काम-भोगों की अनिष्टता ।
 १८, १९—लम्बे मार्ग में पाथेय-रहित मनुष्य की तरह धर्म-रहित मनुष्य का भविष्य दुःखकर ।
 २०, २१—लम्बे मार्ग में पाथेय-सहित मनुष्य की तरह धर्म-सहित मनुष्य का भविष्य सुखकर ।
 २२, २३—आग छोड़ घर में से मूषवान् वस्तुओं की तरह अपने आपको संसार में से निकालने का मृगापुत्र का निवेदन ।
 २४-३०—माता-पिता द्वारा श्रमण-धर्म के पाँच महाव्रत और रात्रि-भोजन-वर्जन का परिचय ।
 ३१, ३२—परीषद् का वर्णन ।
 ३३—कापोती-द्वित, कैश-लोच का उल्लेख ।
 ३४, ३५—मृगापुत्र की सुकुमारता और श्रामण्य की कठोरता ।
 ३६—आकाश-संगा के अंत-प्रतिश्रोत की तरह श्रामण्य की कठोरता ।

- ३७—बालु के कोर की तरह संयम की स्वाद-हीनता ।
 ३८—लोहे के अर्धों को चबाने की तरह श्रामण्य की कठोरता ।
 ३९—अग्नि-शिला को पीने की तरह श्रमण-धर्म की कठिनता ।
 ४०—सत्त्व-हीन व्यक्ति की संयम के लिए असमर्थता ।
 ४१—मेघ-पर्वत की तराजू से तोलने की तरह संयम की कठिनता ।
 ४२—समुद्र को भुजाओं से तैरने की तरह संयम-पालन की कठिनता ।
 ४३—विषयों को भोगने के बाद श्रमण-धर्म के आचरण का मुकाब ।
 ४४—ऐहिक सुखों की प्यास बुझ जाने वाले के लिए संयम की सुकरता ।
 ४५-४६—मृगापुत्र द्वारा नरक के दारुण दुःखों का वर्णन । स्वयं के द्वारा अन्त बार उनकी सहने का उल्लेख ।
 ७५—माता-पिता द्वारा श्रामण्य के सबसे बड़े दुःख-निष्प्रतिक्रमता का उल्लेख ।
 ७६-८५—मृगापुत्र द्वारा मृग-चारिका से जीवन बिताने का संकल्प ।
 ८६, ८७—मृगापुत्र का प्रव्रज्या-स्वीकार ।
 ८८-९५—मृगापुत्र द्वारा ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप की आराधना और मोक्ष-प्राप्ति ।
 ९६—संबुद्ध व्यक्तियों द्वारा मृगापुत्र का अनुगमन ।
 ९७, ९८—मृगापुत्र के आश्रयान से प्रेरणा लेने का उद्बोधन ।

विंशति अध्ययन : महानिर्ग्रन्थीय (अनाथता और सनाथता)

पृ० २५७-२७२

- श्लोक १-८—अध्ययन का उपक्रम । श्रेणि का मण्डिकुशि-उद्यान में गमन । मुनि को देख कर विस्मय और श्रामण्य-स्वीकार के बारे में प्रश्न ।
 ९—मुनि द्वारा अपनी अनाथता का उल्लेख ।
 १०, ११—राजा द्वारा स्वयं नाथ होने का प्रस्ताव ।
 १२—मुनि द्वारा राजा की अनाथता का उल्लेख ।
 १३-१५—राजा द्वारा आश्चर्यभरी व्याकुलता ।
 १६—अनाथता और सनाथता के बारे में शिखासा ।
 १७-३५—मुनि द्वारा अपनी आत्म-कथा । परिवार द्वारा नष्ट-वेदना को दूर करने में असमर्थता । धर्म की शरण, रोगोपशमन, अनपार-वृत्ति का स्वीकार और सनाथता ।
 ३६, ३७—आत्म-कलुष का उद्बोधन ।
 ३८-५०—मुनि-धर्म से विपरीत आचरण करना—दूसरी अनाथता ।
 ५१-५३—मेधावी पुत्र को महानिर्ग्रन्थ के मार्ग पर चलने को प्रेरणा ।
 ५४-५६—अनाथ की व्याख्या से श्रेणिक को परम तोय । मुनि की हार्दिक स्तवना और धर्म में अनुरक्ति ।
 ६०—मुनि का स्वतन्त्र-भाव से बिहार ।

एकविंश अध्ययन : समुद्रवालीय (वध चोर के दर्शन से सम्बन्धित)

पृ० २७३-२८२

- श्लोक १-६—पाण्डित को समुद्र-वात्रा । समुद्र-वाल का जन्म और विद्याध्ययन ।
 ७—रूपिणी के साथ विवाह-संस्कार ।
 ८-१०—वध को देख कर संवेग-प्राप्ति । कर्मों का विपाक-चित्तन और सामुल्य-स्वीकार ।
 ११—मुनि को पर्याय-धर्म, अत, शील तथा परीषद् में अभिरुचि लेने का उपदेश ।

- १२—पंच महाव्रत व उनके आचरण का उपदेश ।
 १३—दयानुकम्पी होने का उपदेश ।
 १४—अपने बलाबल को तोल कर काशोचित कार्य करते हुए बिहरण का उपदेश ।
 १५—सम-भाव की साधना का उपदेश ।
 १६—मन के अभिप्रायों पर अनुयासन और उपसर्गों को सहने का उपदेश ।
 १७-१८—परीषद्दों की उपस्थिति में समता-भाव का उपदेश ।
 २०—पूजा में उन्नत और गहरी में अवतत न होने का उपदेश ।
 २१—संयमवान् मुनि की परमार्थ-पदों में स्थिति ।
 २२—ऋषियों द्वारा आचोर्ण स्थानों के सेवन का उपदेश ।
 २३—अनुत्तर ज्ञानधारी मुनि की सूर्य की तरह दीप्तिमत्ता ।
 २४—समुद्रपाल मुनि की संयम में निरुचलता से अपुनरागम-गति की प्राप्ति ।

द्वाविंश अध्यायन : रथनेमीय (पुनरुत्थान)

पृ० २८२-२८६

- श्लोक १,२— वसुदेव राजा के परिवार का परिचय ।
 ३,४—समुद्रविजय राजा के परिवार का परिचय । अरिष्टनेमि का जन्म ।
 ५,६—अरिष्टनेमि का शरीर-परिचय और जाति-परिचय ।
 केसव द्वारा उसके लिए राजीमती की माँग ।
 ७—राजीमती का स्वभाव-परिचय ।
 ८—उग्रसेन द्वारा केसव की माँग स्वीकार ।
 ९-१६—अरिष्टनेमि के विवाह की घोषा-यात्रा ।
 बाढ़ों और पिंजरों में निरुद्ध प्राणियों को देख कर सारथि से प्रश्न ।
 १७—सारथि का उत्तर ।
 १८,१९—अरिष्टनेमि का चिन्तन ।
 २०—सारथि को कुण्डल आदि आभूषणों का दान ।
 २१—अभिनिक्रमण की भावना और देवों का आगमन ।
 २२-२७—शिबिका में आरुढ़ होकर अरिष्टनेमि का रैवतक पर जाना । केश-लुंचन । वामुदेव द्वारा आशीर्वाचन ।
 २८—अरिष्टनेमि की दीक्षा की बात सुन कर राजीमती की शोक-निमग्नता ।
 २९-३१—राजीमती का प्रव्रजित होने का निश्चय और केश-लुंचन । वामुदेव का आशीर्वाद ।
 ३२—राजीमती द्वारा अनेक स्वजन-परिजनों की दीक्षा ।
 ३३—रैवतक पटल पर जाते समय राजीमती का वर्षा में भीगने के कारण गुफा में ठहरना ।
 ३४—वस्त्रों को सुखाना । रथनेमि का राजीमती को यथाजात (नम्न) रूप में देख कर अभिचित हो जाना ।
 ३५—राजीमती का संकुचित होकर बैठना ।
 ३६-३८—रथनेमि द्वारा आत्म-परिचय और प्रणय-निवेदन ।
 ३९-४५—राजीमती द्वारा रथनेमि को विविध प्रकार से उपदेश ।
 ४६,४७—रथनेमि का संयम में पुनः स्थिर होना ।
 ४८—राजीमती और रथनेमि को अनुत्तर सिद्धि की प्राप्ति ।
 ४९—संबुद्ध का कर्त्तव्य ।

श्लोक १-४—तीर्थङ्कर पार्वी के शिष्य श्रमण केशि का परिचय ।

श्रावस्ती में आगमन और तिल्लुक-उद्यान में स्थिति ।

५-८—भगवान् महावीर के शिष्य गौतम का परिचय । श्रावस्ती में आगमन और कोष्ठक-उद्यान में स्थिति ।

९-१३—दोनों के शिष्य-समुदाय में एक-दूसरे को देख कर अनेक सन्देश और जिज्ञासाएं ।

१४—केशि और गौतम का परस्पर मिलने का निश्चय ।

१५-१७—गौतम का तिल्लुक-वन में आगमन । केशि द्वारा गौतम का आदर-सत्कार और आसन-प्रदान ।

१८—केशी और गौतम की चन्द्र और सूर्य से तुलना ।

१९,२०—अन्य तीर्थिक साधु, श्रावक तथा देव आदि का आगमन ।

२१-२४—केशी द्वारा चातुर्वर्ग-धर्म और पंच महाव्रत-धर्म के बारे में प्रश्न ।

२५-२७—गौतम का समाधान ।

२८-३०—केशी द्वारा सचलक-अचलक के बारे में जिज्ञासा ।

३१-३३—लोक-प्रतीति आदि कारणों से वेध-धारण आवश्यक ।

३४,३५—शत्रुओं पर विजयी कैसे ?

३६-३८—गौतम का समाधान ।

३९,४०—पाश-बहुल संसार में मुक्त विहार कैसे ?

४१-४३—गौतम का समाधान ।

४४,४५—विष-मुल्य कल वाली लता का उच्छेद कैसे ?

४६-४८—गौतम का समाधान ।

४९,५०—घोर अग्निवीर का उपशमन कैसे ?

५१-५३—गौतम का समाधान ।

५४,५५—दुष्ट अश्व पर सवार होकर भी तुम उत्तमार्ग पर क्यों नहीं ?

५६-५८—गौतम का समाधान ।

५९,६०—कुमार्ग की बहुलता होने पर भी भटकते कैसे नहीं ?

६१-६३—गौतम का समाधान ।

६४,६५—महान् जल-प्रवाह में बहते हुए जीवों के लिए क्षरण, गति, प्रतिष्ठा और द्रोप कौन ?

६६-६८—गौतम का समाधान ।

६९,७०—महाप्रवाह वाले समुद्र का पार कैसे ?

७१-७३—गौतम का समाधान ।

७४,७५—तिसिर-लोक में प्रकाश किसके द्वारा ?

७६-७८—गौतम का समाधान ।

७९,८०—पीड़ित प्राणियों के लिए क्षेम कर स्थान कहाँ ?

८१-८४—गौतम का समाधान ।

८५-८७—श्रमण केशी द्वारा गौतम की अभिवन्दना और पूर्व-मार्ग से पश्चिम-मार्ग में प्रविष्ट ।

८८—केशी और गौतम का मिलन महान् उत्कर्ष और अर्थ-विनिश्चय का हेतु ।

८६—परिषद् का संतोषपूर्वक निर्गमन ।

चतुर्विंश अध्ययन : प्रवचन-माता (पाँच समिति तथा तीन गुप्तियों का निरूपण)

पृ० ३१६-३३०

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२—समिति, गुप्तियों का नाम-निर्देश ।

३—जिन-भावित द्वादशांग-रूप प्रवचन का समावेश ।

४—साष्टु को ईर्ष्यापूर्वक चलने का आदेश ।

५-८—ईर्ष्या के बालम्बन, काल, मार्ग और यतना का निर्देश ।

६, १०—माया-समिति का स्वरूप । निरवद्य और परिमित बोलने का विधान ।

११, १२—एवणा-समिति का स्वरूप और विधि ।

१३, १४—आदान-समिति का स्वरूप और प्रतिलेखन-विधि ।

१५-१८—उच्चार-समिति का स्वरूप और प्रतिलेखन-विधि ।

१९, २०—मनोगुप्ति के चार प्रकार ।

२१—संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान मन के निवर्तन का उपदेश ।

२२, २३—वचन-गुप्ति के चार प्रकार ।

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान वचन के निवर्तन का उपदेश ।

२४, २५—संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान शरीर के निवर्तन का उपदेश ।

२६—चारित्र्य की प्रवृत्ति के लिए समिति का विधान ।

अशुभ विषयों से निवृत्ति के लिए गुप्ति का विधान ।

२७—प्रवचन-माता के आचरण से मुक्ति की संभवता ।

पंचविंश अध्ययन : यज्ञीय (जयघोष और विजयघोष का संवाद)

पृ० ३३१-३४२

श्लोक १-३—जयघोष मुनि का परिचय और वाराणसी में आगमन ।

४—विजयघोष ब्राह्मण द्वारा यज्ञ का आयोजन ।

५—मुनि का वद्य भिक्षार्थ उपस्थित होना ।

६-८—विजयघोष द्वारा भिक्षा का निषेध ।

९, १०—मुनि द्वारा समभाव पूर्वक ब्राह्मण को संबोध ।

११, १२—वेद-मुख, यज्ञ-मुख, नक्षत्र-मुख, धर्म-मुख एवं अपने-पराये उद्धार में समर्थ व्यक्तियों के विषय में जिज्ञासा ।

१३-१५—विजयघोष का निश्चर होना और मुनि से इसके बारे में प्रश्न ।

१६—मुनि द्वारा समाधान ।

१७—चन्द्रमा के सम्मुख ग्रहों की तरह भगवान् श्रृंगार के समक्ष समस्त लोक नत-मस्तक ।

१८—यज्ञवादी ब्राह्मण-विद्या से अनभिज्ञ ।

१९-२७—ब्राह्मण का निरूपण ।

२८—वेद और यज्ञ की अवागता ।

२९—श्रमण, ब्राह्मण, मुनि और तापस के स्वरूप में ब्राह्मण-आचार का लक्षण ।

३०—श्रमण, ब्राह्मण, मुनि और तापस की वास्तविक व्याख्या ।

३१—वाति से कर्म की प्रभावता ।

३२, ३३—कर्मों से मुक्त आत्मा ही ब्राह्मण और उर्ध्वों की अपने-पराए उद्धार में समर्पता का प्रतिपादन ।

३४-३७—विजयघोष द्वारा मुनि की स्तुति और भिक्षा के लिए आग्रह ।

३८—मुनि का विजयघोष को संसार से निष्क्रमण का उपदेश ।

३९-४१—मिट्टी के गोले और सूखे गोले की उपमा से भोगासक्ति के स्वरूप का विश्लेषण ।

४२—विजयघोष द्वारा प्रव्रज्या-स्वीकार ।

४३—दोनों की सिद्धि-प्राप्ति ।

षष्ठविंश अध्यायन : सामाचारी (संघीय जीवन की पद्धति)

पृ० ३४३-३६०

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२-४—सामाचारी के दस अंगों का नाम-निर्देश ।

५-७—सामाचारी का प्रयोग कब और कैसे ?

८-१०—प्रतिलेखन के बाद गुप्त के आदेशानुसार चर्चा का प्रारम्भ ।

११, १२—दिन के चार भागों में उत्तर-गुणों की आराधना—

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचरी और चौथे में पुनः स्वाध्याय का विधान ।

१३-१५—पौष्ठी-विधि और वर्ष भर की तीर्थियों के वृद्धि-क्षय का परिज्ञान ।

१६—प्रतिलेखना का समय-विधान ।

१७, १८—रात्रि के चार भागों में उत्तर-गुणों की आराधना—

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नीद्र और चौथे में पुनः स्वाध्याय का विधान ।

१९, २०—नक्षत्रों द्वारा रात्रि का काल-ज्ञान ।

२१-२५—प्रतिलेखना विधि ।

२६, २७—प्रतिलेखना के दोषों के प्रकारों का वर्जन ।

२८—प्रतिलेखना के प्रशस्त और अप्रशस्त विकल्प ।

२९, ३०—प्रतिलेखना में कथा करने वाले का छह कार्यों का विराधक होना ।

३१—छह कारणों से भिक्षा का विधान ।

३२—छह कारणों का नाम-निर्देश ।

३३—छह कारणों से भिक्षा न करने का विधान ।

३४—छह कारणों का नाम-निर्देश ।

३५—भिक्षा के लिए अर्घ्य-योजन तक जाने का विधान ।

३६—चौथे प्रहर में स्वाध्याय का विधान ।

३७—शय्या की प्रतिलेखना ।

३८—उपचार-भूमि की प्रतिलेखना ।

कायोत्सर्ग का विधान ।

३९-४१—दैनिक घतिचारों का प्रतिक्रमण ।

४२—काल-प्रतिलेखना ।

४३—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नीद्र और चौथे में स्वाध्याय का विधान

४४—सर्वसम्यक्त व्यक्तियों को न जगाते हुए स्वाध्याय का निर्देश ।

- ४५—काल की प्रतिवेक्षना ।
- ४६—कायोत्सर्ग का विधान ।
- ४७-४८—रात्रिक अतिचारों का प्रतिक्रमण ।
- ५०—कायोत्सर्ग में तप-ग्रहण का चिन्तन ।
- ५१—तप का स्वीकार और सिद्धों का संस्तव ।
- ५२—सामाचारी से संसार-सागर का पार ।

सप्तविंश अध्ययन : खलुंकीय (अविनीत की उद्दण्डता का चित्रण)

पृ० ३६१-३६८

- श्लोक १—वंग मुनि का परिचय ।
- २—बाह्य बहल करते हुए बेल की तरह योग-बहल करने वाले मुनि का संसार स्वयं उल्लंघित ।
- ३-७—अविनीत बेल का मनोवैज्ञानिक स्वभाव-चित्रण ।
- ८—अयोग्य बेल की तरह दुर्बल शिष्य द्वारा धर्म-मान को भ्रम करना ।
- ९-१३—अविनीत शिष्य का स्वभाव-चित्रण ।
- १४, १५—आचार्य के मन में खेद-क्लान्तता ।
- १६—गली-गदम की तरह कुशिष्यों का गणार्चाय द्वारा बहिष्कार ।
- १८—गणार्चाय का भील-सम्पन्न होकर विहार ।

अष्टविंश अध्ययन : मोक्ष-मार्ग-गति (मोक्ष के मार्गों का निरूपण)

पृ० ३६९-३८०

- श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।
- २—मार्गों का नाम-निर्देश ।
- ३—मार्ग को प्राप्त करने वाले जीवों की सुगति ।
- ४, ५—ज्ञान के पाँच प्रकार ।
- ६—द्रव्य, गुण और पर्याय की परिभाषा ।
- ७—द्रव्य के छह प्रकारों का नाम-निर्देश ।
- ८—छह द्रव्यों की संख्या-परकता ।
- ९—धर्म, अधर्म और आकाश के लक्षण ।
- १०-१२—काल, जीव और पुत्रगण के लक्षण ।
- १३—पर्याय के लक्षण ।
- १४—नौ तत्त्वों के नाम-निर्देश ।
- १५—सम्यक्त्व की परिभाषा ।
- १६—सम्यक्त्व के दस प्रकारों का नाम-निर्देश ।
- १७, १८—मिथुन-रश्मि की परिभाषा ।
- १९—उपवेश-रश्मि की परिभाषा ।
- २०—बाह्या-रश्मि की परिभाषा ।
- २१—सूत्र-रश्मि की परिभाषा ।

- २२—बीज-रश्मि की परिभाषा ।
 २३—अभिगम-रश्मि की परिभाषा ।
 २४—विस्तार-रश्मि की परिभाषा ।
 २५—क्रिया-रश्मि की परिभाषा ।
 २६—संक्षेप-रश्मि की परिभाषा ।
 २७—धर्म-रश्मि की परिभाषा ।
 २८—सम्यक्त्व का श्रद्धात ।
 २९—सम्यक्त्व और चारित्र का पीवीपर्य सम्बन्ध ।
 ३०—दर्शन, ज्ञान और चारित्र से ही मुक्ति की सम्भवता ।
 ३१—सम्यक्त्व के आठ अंगों का निरूपण ।
 ३२-३३—चारित्र के पाँच प्रकार ।
 ३४—तप के दो प्रकार ।
 ३५—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का उपयोग ।
 ३६—संयम और तप से कर्म-विमुक्ति ।

एकोनविंश अध्यायन : सम्यक्त्व-पराक्रम (साधना-मार्ग)

पृ० ३८१-४१६

- सूत्र १—अध्ययन का उपक्रम । सम्यक्त्व-पराक्रम का अर्थ ।
 संवेग के परिणाम ।
 २—निर्वेद के परिणाम ।
 ३—धर्म-श्रद्धा के परिणाम ।
 ४—गुरु-सार्वात्मिक-शुश्रूषा के परिणाम ।
 ४—आलोचना के परिणाम ।
 ६—निन्दा के परिणाम ।
 ७—गहरी के परिणाम ।
 ८-१३—षड्-आवश्यक के परिणाम ?
 १४—स्तव-स्तुति-मंगल के परिणाम ।
 १५—काल-प्रतिलेखना का परिणाम ।
 १६—प्रायश्चित्त के परिणाम ।
 १७—क्षमा करने के परिणाम ।
 १८-२३—स्वाध्याय के परिणाम ।
 २४—श्रुताराधना के परिणाम ।
 २५—एकाग्र-मनः-सन्निवेश का परिणाम ।
 २६—संयम का परिणाम ।
 २७—तप का परिणाम ।
 २८—व्यवधान के परिणाम ।
 २९—सुख-भाव के परिणाम ।

- ३०—अप्रतिबद्धता के परिणाम ।
 ३१—विविक्त-शयनासन-सेवन के परिणाम ।
 ३२—चिनिवर्तना के परिणाम ।
 ३३-४१—विभिन्न प्रत्याख्यानों के परिणाम ।
 ४२—प्रतिरूपता के परिणाम ।
 ४३—वैयावृत्य का परिणाम ।
 ४४—सर्व-गुण-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ४५—धीतरामता के परिणाम ।
 ४६—क्षमा का परिणाम ।
 ४७—मुक्ति के परिणाम ।
 ४८—ऋजुता के परिणाम ।
 ४९—मृदुता के परिणाम ।
 ५०—भाब-सत्य के परिणाम ।
 ५१—करण-सत्य के परिणाम ।
 ५२—योग-सत्य के परिणाम ।
 ५३—मनो-गुप्तता के परिणाम ।
 ५४—वाक्-गुप्तता के परिणाम ।
 ५५—काय-गुप्तता के परिणाम ।
 ५६—मनःसमाधारण के परिणाम ।
 ५७—वाक्-समाधारणा के परिणाम ।
 ५८—काय-समाधारणा के परिणाम ।
 ५९—ज्ञान-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६०—दर्शन-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६१—चारित्र-सम्पन्नता के परिणाम ।
 ६२-६६—इन्द्रिय-निग्रह के परिणाम ।
 ६७-७०—कषाय-विषय के परिणाम ।
 ७१—प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन-विषय के परिणाम ।
 ७२—केवली के योग-निरोध का क्रम ।
 शेष चार कर्मों के क्षय का क्रम ।
 ७३—कर्म-क्षय के बाद जीव की मोक्ष की ओर गति, स्थिति का स्वरूप-विवरण ।
 उपसंहार ।

त्रिंश अध्ययन : तपो-मार्ग-गति (तपो-मार्ग के प्रकारों का निरूपण)

पृ० ४१७-४२८

खण्ड १—अध्ययन का प्रारम्भ ।

२—महाशक्त और राज्ञि-भोजन-विरति से जीव की बाध-विरति ।

३—समित और युक्त जीव की बाध-विरति ।

४—अर्जित कर्मों के फल के उपाय ।

५,६—ताकाब के दृष्टान्त से तपस्या द्वारा कर्म-फल का निरूपण ।

७—तप के दो प्रकार ।

८—बाह्य-तप के छह प्रकार ।

९-१३—अवशान के प्रकार ।

१४-२४—अवमौढ्य के प्रकार ।

२५—भिक्षाचर्या की परिभाषा :

२६—रस-विवर्जन ।

२७—काय-क्लेश ।

२८—विविक्त-शयनासन ।

२९-३०—आन्तरिक-तप के भेदों का नाम-निर्देश ।

३१—प्रायश्चित्त ।

३२—विनय ।

३३—वैयावृत्य ।

३४—स्वाध्याय और उसके प्रकार ।

३५—ध्यान ।

३६—कायोत्सर्ग ।

३७—तप के आचरण से मुक्ति की संभवता ।

एकत्रिंश अध्यायन : चरण-विधि (चरण-विधि का निरूपण)

पृ० ४२९-४३६

श्लोक १- अध्यायन का उपक्रम ।

२—एक—असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति का विधान ।

३—दो—राग और द्वेष के निरोध से संसार-मुक्ति ।

४—तीन-तीन दण्डों, गौरवों और शाल्यों के त्याग से संसार-मुक्ति ।

५—उपसर्ग-सहन करने से संसार-मुक्ति ।

६—विकथा, कथा, संज्ञा और आर्से-रौद्र ध्यान के वर्जन से संसार-मुक्ति ।

७—व्रत और समितियों के पालन से, इन्द्रिय-विजय और क्रियाओं के परिहार से संसार-मुक्ति ।

८—छह लक्ष्या, छह काम और आहार के छह कारणों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

९—आहार-ग्रहण की सात प्रतिमाओं और सात भय-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

१०—आठ मद-स्थान, ब्रह्मचर्य की नौ गति और दस प्रकार के भिक्षु-धर्म में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

११—उपासक की बारह प्रतिमाओं और भिक्षु की बारह प्रतिमाओं में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

१२—तेरह क्रियाओं, चौदह जीव-समुदायों और पन्द्रह परमाधार्मिक देवों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

१३—माथा षोडशक और सतरह प्रकार के असंयम में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

१४—अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य, उन्नीस ज्ञात-ग्राध्ययन और बीस असमाधि-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

१५—इकीस सबल दोष, बाईस परीषद्गों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

१६—सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययन और चौबीस प्रकार के देवों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।

- १७—पञ्चीस भावनाओं और छत्तीस उद्देशों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १८—साधु के सत्ताईस गुण और अठाईस आचार-प्रकल्पों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 १९—उत्तरीस पाप-प्रसंगों और तीस प्रकार के मोह-स्थानों में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 २०—सिद्धों के इक्कीस आदि गुण, बत्तीस योग-संग्रह और तैंतीस आशातना में यत्न करने से संसार-मुक्ति ।
 २१—इन स्थानों में यत्न करने वाले का शीघ्र संसार-मुक्त होना ।

द्वाविंश अध्ययन : प्रमाद-स्थान (प्रमाद के कारण और उनका निवारण)

पृ० ४३८-४६०

श्लोक १—अध्ययन का प्रारम्भ ।

२—एकान्त सुख के हेतु का प्रतिपादन ।

३—मोक्ष-मार्ग का प्रतिपादन ।

४—समाधि की आवश्यक सामग्री ।

५—एकल विहार की विशेष विधि ।

६—तृष्णा और मोह का अविनाभाव सम्बन्ध ।

७—कर्म-बीज का निरूपण ।

८—दुःख-नाश का क्रम ।

९-१०—राग, द्वेष और मोह के उन्मूलन का उपाय ।

११—प्रकाम-भोजन ब्रह्मचारी के लिए अहितकर ।

१२—विविक्त-शय्यासन और कम भोजन से राग-शत्रु का पराजय ।

१३-१८—ब्रह्मचारी के लिए स्त्री-संसर्ग-वर्जन का विधान ।

१९-२०—किपाक-फल की तरह काम-भोग की अभिलाषा दुःख का हेतु ।

२१—मनोज्ञ विषय पर राग और अमनोज्ञ पर द्वेष न करने का उपदेश ।

२२-३४—रूपासक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य और दुःख का हेतु ।

रूप-विरक्ति शोक-मुक्ति का कारण ।

३५-४७—शब्दासक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य और दुःख का हेतु । शब्द-विरक्ति शोक-मुक्ति का कारण ।

४८-६०—गन्ध-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु ।

६१-७३—रस-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु ।

७४-८६—स्पर्श-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु । स्पर्श-विरक्ति, शोक-विमुक्ति का हेतु ।

८७-९९—भाव-आसक्ति हिंसा, असत्य, चौर्य तथा दुःख का हेतु । भाव-विरक्ति शोक-विमुक्ति का हेतु ।

१००—रागी पुरुष के लिए इन्द्रिय और मन के विषय दुःख के हेतु ; नीतराग के लिये नहीं ।

१०१—समता या विकार का हेतु तद्विषयक मोह है, काम-भोग नहीं ।

१०२, १०३—काम-गुण आसक्त पुरुष अनेक विकार-परिणामों द्वारा कष्टास्पद और अग्रिय ।

१०४—तप के फल की बोझा करने वाला इन्द्रिय-रूपी चोरों का वशवर्ती ।

१०५—विषय-प्राप्ति के प्रयोजनों के लिए उद्यम ।

१०६—विरक्त पुरुष के लिए शब्द आदि विषय मनोज्ञता या अमनोज्ञता के हेतु नहीं ।

१०७—राग-द्वैपालक संकल्प दोष का मूल है, इन्द्रिय-विषय नहीं—इस विचार से तृष्णा का क्षय ।

१०८—नीतराग की कृतकृत्यता ।

१०६—आयुष्य सय होने पर मोक्ष-प्राप्ति ।

११०—मुक्त जीव की कृतार्थता ।

१११—दुःखों से मुक्त होने का मार्ग ।

त्रयस्त्रिंश अध्ययन : कर्म-प्रकृति (कर्म की प्रकृतियों का निरूपण)

पृ० ४६१-४७६

श्लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।

२-३—कर्मों के नाम-निर्देश ।

४-१५—कर्मों के प्रकार ।

१६, १७— एक समय में ब्राह्म सब कर्मों के प्रदेशों का परिणाम ।

१८— सब जीवों के संग्रह-योग्य पुद्गलों की छहों दिशाओं में स्थिति ।

१९-२३—कर्मों की उत्कृष्ट और अन्य स्थिति ।

२४—कर्मों का अनुभाग ।

२५—बुद्धिमान् को कर्म-निरोध का उपदेश ।

चतुस्त्रिंश अध्ययन : लेश्याध्ययन (कर्म-लेश्या का विस्तार)

पृ० ४७७-४८८

श्लोक १-२—उपक्रम ।

३—लेश्याओं के नाम-निर्देश ।

४-६—लेश्याओं का वर्ण-विचार ।

१०-१५—लेश्याओं का रस-विचार ।

१६-१७—लेश्याओं का गन्ध-विचार ।

१८-१९—लेश्याओं का स्पर्श-विचार ।

२१-३२—लेश्याओं के परिणाम ।

३३—लेश्याओं के स्थान

३४-३६—लेश्याओं की स्थिति ।

३०-४३—नारकीय जीवों के लेश्याओं की स्थिति ।

४४-४६—तिर्यञ्च और मनुष्य के लेश्याओं की स्थिति ।

४७-५५—देवों के लेश्याओं की स्थिति ।

५६—अधर्म लेश्याओं की गति ।

५७—सर्व लेश्याओं की गति ।

५८-६०—लेश्याओं का आयुष्य ।

६१—अप्रवृत्त लेश्याओं के वर्जन और प्रवृत्त लेश्याओं के स्वीकार का उपदेश ।

पंचत्रिंश अध्ययन : अनगार-मार्ग-गति (अनगार का स्फुट आचार)

पृ० ४८९-४९६

श्लोक १—उपक्रम ।

२—संग-विवेक ।

३—पौच महाव्रतों का नाम-निर्देश ।

४-६—शाय्या की शुद्धता ।

१०-११—आहार की शुद्धता ।

- १२—मिश्र के लिए अग्नि का समारंभन करने का विधान ।
 १३—सोने-चाँदी की अनाकांक्षा ।
 १४-१५—ऋय-विक्रय मिश्र के लिए महान् दोष ।
 १६—पिण्ड-पात की एषणा ।
 १७—जीवन-निर्वाह के लिए भोजन का विधान ।
 १८—पूजा, अर्चना और सम्मान के प्रति अनासंसा-भाव ।
 १९—शुक्ल-व्यान और व्युत्प्लुत-काय होने का उपदेश ।
 २०—अनशन का विधान ।
 २१—आश्रय-रहित व्यक्ति का परिनिर्वाण ।

षट्त्रिंश अध्ययन : जीवाजीव-विभक्ति (जीव और अजीव के विभागों का निरूपण)

पृ० ४६७-५४६

- लोक १—अध्ययन का उपक्रम ।
 २—लोक और अलोक की परिभाषा ।
 ३—जीव और अजीव की प्ररूपणा के प्रकार ।
 ४—अजीव के दो प्रकार ।
 ५-६—अरूपी अजीव के दस प्रकार ।
 ७—अरूपी अजीव के प्रकारों का क्षेत्र-मान ।
 ८-९—अरूपी अजीव के प्रकारों का क्षेत्र-मान ।
 १०-१४—रूपी पुद्गल के प्रकारों का द्रव्य, क्षेत्र और काल-मान ।
 १५-२०—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से पुद्गल की परिणति ।
 २१—संस्थान की अपेक्षा से पुद्गल की परिणति ।
 २२-४६—पुद्गल के अनेक विकल्प ।
 ४७-४८—जीव के दो प्रकार ।
 ४९-६७—सिद्धों का निरूपण ।
 ६८—संसारी जीव के दो प्रकार ।
 ६९—स्थावर जीव के तीन मूल भेद,
 ७०-८३—पृथ्वीकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।
 ८४-९१—अकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।
 ९२-१०६—वनस्पतिकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।
 १०७—जल-जीव के तीन भेद ।
 १०८-११६—तेजसुकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।
 ११७-१२५—वायुकाय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।
 १२६—उदार जलसुकायिक जीवों के प्रकार ।
 १२७-१३५—हीनजिव-काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।
 १३६-१४४—मौनजिव-काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।
 १४५-१५४—अतुल्यजिव-काय के उत्तर-भेद, गति, स्थिति आदि पर विचार ।

- १५५—पञ्चेन्द्रिय के चार प्रकार ।
 १५६-१६६—तरुणों के नाम-निर्देश ।
 नैरयिक जीवों के चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण ।
 १७०-१७१—पञ्चेन्द्रिय-तिर्यङ्च के प्रकार और अवतार भेद ।
 १७२-१७८—जलचर जीवों के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।
 १७९-१८७—स्थलचर जीवों के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।
 १८८-१९४—खेचर जीवों के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग निर्देश ।
 १९५-२०३—मनुष्य के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।
 २०४-२४७—देवों के प्रकार ।
 चतुर्विध काल-विभाग का निर्देश ।
 २४८-२४९—जीवाजीव के ज्ञान पूर्वक संयम का निर्देश ।
 २५०-२५५—संलिखना-विधि
 २५६-२६२—शुभ और अशुभ भावनाएँ सुगति और दुर्गति का कारण ।
 २६३—कादरी-भावना ।
 २६४—आभिवागी-भावना ।
 २६५—किल्बिषिक-भावना ।
 २६६—आसुरी-भावना ।
 २६७—मोही भावना ।
 २६८—उपसंहार ।

उत्तरज्झयणाणि

पढमं अङ्गवणं :
विणय-सुयं

प्रथम अध्दयन :
विनय-श्रुत

आच्युत

घृणि के अनुसार इस अध्ययन का नाम 'विनय-सूत्र'^१ और निर्युक्ति तथा बृहद्बृत्ति के अनुसार 'विनय-श्रुत' है^२ ।

समवायोंग में भी इस अध्ययन का नाम 'विनय-श्रुत' है^३ । 'श्रुत' और 'सूत्र' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । इस अध्ययन में विनय की श्रुति या सूत्रण है ।

भगवान् महावीर की साधना-पद्धति का एक अंग 'तपोयोग' है । उसके बारह प्रकार हैं । उनमें आठवाँ प्रकार 'विनय' है^४ । उसके सात रूप प्राप्त होते हैं^५ :

१—ज्ञान-विनय—ज्ञान का अनुवर्तन ।

२—दर्शन-विनय—दर्शन का अनुवर्तन ।

३—चारित्र-विनय—चारित्र का अनुवर्तन ।

४—मन-विनय—मन का प्रवर्तन ।

५—वचन-विनय—वचन का प्रवर्तन ।

६—काय-विनय—काया का प्रवर्तन ।

७—लोकोपचार-विनय अनुशासन, शुश्रूषा और शिष्टाचार-परिपालन ।

बृहद्बृत्ति में 'विनय' के पाँच रूप प्राप्त होते हैं^६—

१—लोकोपचार-विनय ।

२—अर्थ-विनय—अर्थ के लिए अनुवर्तन करना ।

३—काम-विनय—काम के लिए अनुवर्तन करना ।

४—भय-विनय—भय के लिए अनुवर्तन करना ।

५—मोक्ष-विनय—मोक्ष के लिए अनुवर्तन करना । (इस विनय के पाँच प्रकार किए गए हैं—ज्ञान-विनय, दर्शन-विनय, चारित्र-विनय, तप-विनय और औपचारिक-विनय ।*)

इन दोनों वर्गीकरणों के आधार पर विनय के निम्न अर्थ प्राप्त होते हैं—अनुवर्तन, प्रवर्तन, अनुशासन, शुश्रूषा और शिष्टाचार-परिपालन ।

१—उत्तराध्ययन वर्णि, पृष्ठ ८ : प्रथममध्ययनं विनयवृत्तमिति, विनयो यस्मिन् सुत्रे वर्ण्यते तद्विदं विनयसुत्रम् ।

२—(क) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, भाषा २८ : तत्पञ्चकणं षडमं विनयवृत्तं*** । (ख) बृहद्बृत्ति, पत्र १५ : विनयश्रुतमिति द्विपदं नाम ।

३—समवायोंग, समवाय ३६ : छत्तीसं उत्तरपञ्चकणा प० तं०—विनयवृत्तं*** ।

४—उत्तराध्ययन, ३०८, ३०

५—औपचारिक, सूत्र २० : ते किं तं विनय ? २ सत्तविहे पणत्ते, तज्जहा—णाणविणए दंसणविणए चरित्तविणए मणविणए बहविणए कायविणए कोपोवधारविणए ।

६—बृहद्बृत्ति, पत्र १६ : लोकोपचारविणो अत्यन्तमिच्छं च कामहेउं च ।

अवविणयमोक्खविणभो खलु पंचहा गेओ ४

७—वही : दंसणणाणचरित्तं तवे य तह ओपचारिए वेव ।

एसो य मोक्खविणभो पंचविहो होइ गाणब्भो ॥

प्रस्तुत अध्ययन में इन सभी प्रकारों का प्रातिपादन हुआ है।

दूसरे श्लोक में 'विनीत' की परिभाषा लोकोपचार-विनय के आधार पर की गई है। लोकोपचार-विनय के सात विभाग हैं ^१—

१—अभ्यासवृत्तिता—समीप रहना।

२—परछन्दानुवृत्तिता—दूसरे के अभिप्राय का अनुवर्तन करना।

३—कार्यहेतु—कार्य की सिद्धि के लिए अनुकूल वर्तन करना।

४—कृतप्रतिक्रिया—कृत उपकार के प्रति अनुकूल वर्तन करना।

५—आर्चगवेषणा—आर्च की गवेषणा करना।

६—देश-कालज्ञता—देश और काल को समझना।

७—सर्वार्थ-अप्रतिलोमता—सब प्रकार के प्रयोजनों की सिद्धि के लिए अनुकूल वर्तन करना।

दूसरे श्लोक में दी हुई विनीत की परिभाषा में इनमें से तीन विभाग—परछन्दानुवृत्तिता, अभ्यासवृत्तिता, देश-कालज्ञता—क्रमशः आत्मानिर्देशकर, उपपातकारक और इंगिताकार-सम्पन्न के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

दसवें श्लोक में 'मन-विनय', 'वचन-विनय' और 'ज्ञान-विनय' का संक्षेप में बहुत सुन्दर निर्देश किया गया है।

इस प्रकार इस अध्ययन में विनय के सभी रूपों का सम्यक् संकलन हुआ है। प्राचीन काल में विनय का बहुत मूल्य रहा है। तेईसवें श्लोक में बताया गया है कि आचार्य विनीत को विद्या देते हैं। अविनीत विद्या का अधिकारी नहीं माना जाता। इस अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि गुरु शिष्य पर कठोर और मुदु दोनों प्रकार का अनुशासन करते थे (श्लोक ३७)। समय की नियमितता भी विनय और अनुशासन का एक अंग था।

कालेण निक्खमे भिक्खु, कालेण य पडिक्कमे।

अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥१३१॥

इस अध्ययन में स्वाध्याय और ध्यान दोनों का सम्मिलित उल्लेख मिलता है। आचार्य रामसेन ने लिखा है :

स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्तां, ध्यानात् स्वाध्यायमामनेत् ।

ध्यानस्वाध्यायसम्पत्त्या, परमात्माप्रकाशते ॥^२

स्वाध्याय के पश्चात् ध्यान और ध्यान के पश्चात् स्वाध्याय—इस प्रकार स्वाध्याय और ध्यान की पुनरावृत्ति से परमात्मस्वरूप उपलब्ध होता है।

यह परम्परा बहुत पुरानी है। इसका संकेत दसवें श्लोक में मिलता है—

कालेण य अहिंजित्ता, तथो भाएज्ज एगो।

विनय के व्यापक स्वरूप की सामने रखकर ही यह कहा गया था—“विनय जिन-शासन का मूल है। जो विनय-रहित है, उसे धर्म और तप कहीं से प्राप्त होगा ?”^३

१—औपचारिक, सू २० : से कि तं लोकोपचारविण्णं ? २ सत्तविहे पणत्तं तज्झा—अध्यासवर्तितं परच्छेदाणुवर्तितं कञ्जहेतुं कयपडिक्किया अतगणैसणया देस-काळगणुया सच्चट्ठेअपडिक्कोमया ।

२—तत्त्वानुशासन, सू १

३—उपदेशमाला, २४१ : विणो भो सासणे मूलं, विणीभो संगमो भवे।

विणयाभो विप्यमुक्त्तस्स, कम्मो धम्मो कम्मो तमो ॥

आचार्य वल्लभ ने विनय का उत्कर्ष इस भाषा में प्रस्तुत किया—“विनयविहीन व्यक्ति कि सारी शिक्षा व्यर्थ है। शिक्षा का फल विनय है।”^१ यह नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति शिक्षित है और विनोत नहीं है। उनकी भाषा में शिक्षा का फल विनय और विनय का फल शेष समग्र कल्याण है।

विनय मानसिक-दासता नहीं है, किन्तु वह आत्मिक और व्यावहारिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति है। उसकी पृष्ठभूमि में इतने गुण समाहित रहते हैं^२ :

१—निर्वृन्द—कलह आदि द्वन्द्वों की प्रवृत्ति का अभाव।

२—ऋजुता—सरलता।

३—मुदुता—निश्चलता और निरभिमानता।

४—लाघव—अनासक्ति।

विनय के व्यावहारिक फल हैं—कोमल और मंत्रो। विनय करने वाला अपने अभिमान का निरसन, तीर्थङ्कर की आज्ञा का पालन और गुणों का अनुमोदन करता है।^३

सूत्रकार ने विनोत को ब्रह्म स्थान दिया है, जो अनायास-लभ्य नहीं है। सूत्र की भाषा है—“ब्रह्मं किञ्चिदस्य सत्त्वं, भूयान् जगद् जगद्”^४। इस प्रकार पृथ्वी प्राणियों के लिए आधार होती है, उसी प्रकार विनोत शिष्य धर्माचरण करने वाली के लिए आधार होता है।

१—मुलाचार, ५।२।११ : विणयुण विपद्हीनस्व, हर्वाद सिक्खा सत्त्वा निरत्थिया।

विणयो सिक्खाए फलं, विणयफलं सत्त्वं कल्याणं ॥

२—बही, ५।२।१३ : आचारजीवकप्पगुणदीवणा, अत्तसाधि निज्जजा।

अज्जव-अहव-लाहव-अत्ती-पल्हावकरणं च ॥

३—बही, ५।२।१४ : किस्ती-मिस्ती माणस्स भंजणं गुणजे य बहुमाणं।

तत्थयराण आणा गुणाणुमोदो य विणयगुणा ॥

४—उत्तराध्ययन, १।४५

६—मुणियाऽभावं साणस्स
सूरस्स नरस्स य ।
विणए ठवेज्ज अप्पाणं
इच्छन्तो हियमप्पणो ॥

७—तम्हा विणयमेसेज्जा
सीलं पडिलभे जओ^१ ।
बुद्धपुत्तं^२ नियागट्ठी
न निक्कसिज्जइ कण्हुई ॥

८—निसन्ते सियाऽमुहरी^३
बुद्धाणं अन्तिए सया ।
अट्टजुत्ताणि सिक्खेज्जा
निरट्ठाणि उ वज्जए ॥

९—अणुसासिओ न कुप्पेज्जा
खंति सेविज्ज पण्डिए ।
खुट्ठेहि सह संसग्गि
हासं कीडं च वज्जए ॥

१०—मा य चण्डालियं कासी^४
बहुयं मा य आल्वे ।
कालेण य अहिज्जित्ता
तओ भाणज्ज एगगो^५ ॥

११—आहव चण्डालियं कट्टु
न निण्हुविज्ज कयाड वि ।
'कडं कडे' ति भासेज्जा
'अकडं नो कडे' ति य ॥

श्रुत्वा अभावं शून्याः
शूकरस्य नरस्य च ।
विनये स्थापयेदात्मनम्
इच्छन् हितमात्मनः ॥

तस्माद् विनयमेवयेन्
शीलं प्रतिलभेत यतः ।
बुद्धपुत्रो नियागार्थो
न निष्काश्यते क्वचिन् ॥

निःशान्तः स्थावमुखरः
बुद्धानामन्तिके सदा ।
अयं युक्तानि शिष्येते
निरर्थानि तु वजयेत् ॥

अनुशिष्टो न कुम्भेन
क्षान्तिं सेवेत पण्डितः ।
क्षुद्रः सह संसर्गं
हासं क्रोडां च वजयेत् ॥

मा च चाण्डालिकं कार्षीं
बहुकं मा चालयेत् ।
कालेन चाधीत्य
ततो ध्यायेदेककः ॥

आहत्य चाण्डालिकं कृत्वा
न निन्दुर्बोते कदाचिदपि ।
कृतं कृतमिति भाषेत
अकृतं नो कृतमिति च ॥

६—अपनी आत्मा का हित चाहने वाला
भिक्षु कुनिया और सूअर को तरह दुःशील
मनुष्य के अभाव (हीन भाव) को मुनकर अपने
आप को विनय में स्थापित करे ।

७—इसलिए विनय का आचरण करे
जिसने शील की प्राप्ति हेतु । जो बुद्ध-पुत्र
(आचार्य का प्रिय शिष्य) और मोक्ष का अर्थी
होना है, वह गण में नहीं निकाला जाता ।

८—भिक्षु आचार्य के समीप मदा प्रदान
रहे । बाचालना न करे । उनके पास अर्थ-युक्त
पदों को सीधे आर निरर्थक कथाओं का
वर्जन करे ।

९—पण्डित भिक्षु गुरु के द्वारा अनुश्रुति
होने पर क्रोध न करे, क्षमा की आराधना
करे । क्षुद्र व्यक्तियों के साथ संसर्ग, हास्य और
क्रोडा न करे ।

१०—भिक्षु चण्डालोक्ति कर्म (क्रूर-व्यव-
हार) न करे । बहुत न बोले । स्वाध्याय के
काल में स्वाध्याय करे और उसके पश्चात्
अकेला ध्यान करे ।

११—भिक्षु महमा चण्डालोक्ति कर्म कर
उसे कभी भी न छिराए । अनर्णय किया हो
नो किया और नहीं किया हो नो न किया
कहे ।

१. पडिलभिज्जओ (अ.०); पडिलभेज्जओ (अ.) ।

२. बुद्ध उत्ते (बु.०); बुद्धपुत्ते, बुद्धपुत्ते (बु.पा.०) ।

३. सियाऽमुहरी (अ.) ।

४. कुज्जा (अ.) ।

५. एगगओ (अ.) ।

पहलं अङ्गमयणं : प्रथम अध्यायन विणय-सुयं : विनय-श्रुतम्

मूल

१—संजोगा विष्णुमुक्त्स
अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि
आणुपुञ्चि सुणेह मे ॥

२—आणानिहेसकरे
गुरुणमुववायकारए ।
इगियागार-संपन्ने
से 'विणीए ति' वुच्चई ॥

३—आणाऽनिहेसकरे
गुरुणमणुववायकारए ।
पडिणीए असंबुद्धे
'अविणीए ति' वुच्चई ॥

४—जहा मुणी पूढ-कण्णी
निकसिज्जइ सव्वसो ।
एवं दुस्सील-पडिणीए
मुहरी निकसिज्जई ॥

५—कण-कुण्डगं चइत्ताणं^१
विट्ठं भुंजइ मूयरे ।
एवं सीलं चइत्ताणं
दुस्सीले रमई मिए^२ ॥

संस्कृत छाया

संयोगाह विप्रमुक्तस्य
अनगारस्य भिक्षोः ।
विनयं प्रादुष्टकरिष्यामि
आनुपूर्व्या शृणुत मे ॥

आज्ञानिर्देशकरः
गुरुणामुपपातकारकः ।
इगिताकारसम्प्रज्ञः
स 'विनीत' इत्युच्यते ॥

आज्ञानिर्देशकरः
गुरुणामनुपपातकारकः ।
प्रत्यनीकोऽसम्बुद्धः
'अविनीत' इत्युच्यते ॥

यथा शुनी पूतिकर्णो
निष्काश्यते सर्वतः ।
एवं दुःशीलः प्रत्यनीकः
मुखरो निष्काश्यते ॥

'कणकुण्डकं' त्यक्त्वा
विण्डां भुंक्ते शूकरः ।
एवं शीलं त्यक्त्वा
दुःशीले रमते मृगः ॥

हिन्दी अनुवाद

१—जो संयोग से मुक्त है, अनगार है,
भिखू है, उसके विनय को क्रमशः प्रकट
करूँगा । मुझे सुनो ।

२—जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का
पालन करता है, गुरु की श्रृष्या करता है,
गुरु के इंगित और आकार को जानता है, वह
'विनीत' कहलाता है ।

३—जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का
पालन नहीं करता, गुरु की श्रृष्या नहीं करता,
जो गुरु के प्रतिकूल वर्तन करता है और
तथ्य को नहीं जानता, वह 'अविनीत'
कहलाता है ।

४—जैसे सड़े हुए कानों वाली कुनिया
सभी म्पानों में निकाली जाती है, वैसे ही
दुःशील, गुरु के प्रतिकूल वर्तन करने वाला
और वाचाल भिक्षु गण से निकाल दिया
जाता है ।

५—जिस प्रकार सूजर चाबलों की भूसी
को छोड़कर विण्डा खाता है, वैसे ही अज्ञानी
भिखु शील को छोड़कर दुःशील में रमण
करता है ।

१. आणा अनिहेसकरे (अ) ।

२. चइत्ताणं (इ०, वू०); चइत्ताणं (इ०पा०) ।

३. मिई (आ) ।

१२—मा 'गलियस्से व' कसं
वयणमिच्छे पुणो पुणो ।
कसं व दट्ठमाइण्णे
पावगं परिवज्जए ॥

१३—अणासवा* शूलवया कुसीला
मिउं पि चण्डं पकरेति सीसा ।
चित्तानुया लहु दक्खोववेया
पसायए ते हु दुरासयं पि ॥

१४—नापुट्ठा वागरे किंचि
पुट्ठा वा नालियं वए ।
कोहं असच्चं कुब्बेज्जा
धारेज्जा पियमणियं ॥

१५—'अप्पा चेव दमेयव्वो'
अप्पा हु खलु दुदमो ।
अप्पा-दन्तो मुही होइ
अस्सि लोए परत्थ य ॥

१६—वरं मे अप्पा दन्तो
संयमेण तवेण य ।
माहं परेहि दम्मन्तो
वन्धणेहि वहेहि य ॥

मा गल्पयच्च इव कशं
वचनमिच्छेह पुनः पुनः ।
कशमिव दृष्ट्वा आकीर्णः
पापकं परिवर्जयेत् ॥

अनाशवाः स्पूलवचसः कुसीलाः
मुटुमपि चण्डं प्रकुर्वन्ति शिष्याः ।
चित्तानुया लघुवाक्योपेताः
प्रसादयेयुस्ते 'हु' दुराशयमपि ॥

नापुष्टो व्यागृणीयात् किञ्चित्
पुष्टो वा नालीकं वदेत् ।
क्रोधमसत्यं कुर्वीत
धारयेत् प्रियमप्रियम् ॥

आत्मा चैव दान्तव्यः
आत्मा 'हु' खलु दुर्धमः ।
आत्मा दान्तः सुखी भवति
अस्मिल्लोके परत्र च ॥

वरं मयात्मा दान्तः
संयमेन तपसा च ।
मा हं परेर्दमित-
बन्धनबंधेष्वच ॥

१२—जैसे अविनीत घोड़ा चाबुक को बार-बार चाहता है, वैसे विनीत शिष्य गुरु के वचन को (आदेश-उपदेश) को बार-बार न चाहे । जैसे विनीत घोड़ा चाबुक को देखते ही उन्मार्ग को छोड़ देता है, वैसे ही विनीत शिष्य गुरु के इंगित और आकार को देखकर अशुभ प्रवृत्ति को छोड़ दे ।

१३—आज्ञा को न मानने वाले और अट-संत बोलने वाले कुसील शिष्य कोमल स्वभाव वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते हैं । चित्त के अनुसार चलने वाले और पटुना से कार्य को सम्पन्न करने वाले शिष्य, दुराशय (भीत्र ही कुपित होने वाले) गुरु को भी प्रसन्न कर लेते हैं ।

१४—बिना पूछे कुछ भी न बोले । पूछने पर असत्य न बोले । क्रोध न करे । आ जाए तो उसे विफल कर दे । प्रिय और अप्रिय को धारण करे—उन पर राग और द्वेष न करे ।

१५—आत्मा का ही दमन करना चाहिए । क्योंकि आत्मा ही दुर्धम है । दमित-आत्मा ही श्लोक और परलोक में सुखी होता है ।

१६—अच्छा यही है कि मैं संयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा का दमन करूँ । दूसरे लोग बन्धन और बंध के द्वारा मेरा दमन कर—यह अच्छा नहीं है ।

१. गलियस्सेव्व (उ, ऋ०) ; गलियस्सेव्व (अ) ।

२. पड्विज्जए (अ, वृ०पा०) ।

३. अणाइणा (वृ०पा०) ।

४. अप्पाणमेव वमए (वृ०, वृ०) ; अप्पा चेव दमेयव्वो (वृ०पा०) ।

५. वर (अ, उ, य) ।

१७—पडिणीयं च बुद्धाणं
वाया अदुव कम्मुणा ।
आवी वा जइ वा रहस्से
नेव कुज्जा कयाइ वि ॥

१८—न पक्खओ न पुरओ
नेव किच्चाण पिट्ठओ ।
न जुंजे ऊरुणा ऊरुं
सयणे नो पडिस्सुणे ॥

१९—नेव पल्हत्थियं कुज्जा
पक्खपिण्डं व संजए ।
पाए पसारिए^१ वावि
न चिट्ठे गुरुणत्तिए ॥

२०—आयरिएहि वाहिन्तो
तुसिणीओ न कयाइ वि ।
पसाय-पेही^२ नियागट्ठी
उवचिट्ठे गुरुं सया ॥

२१—आलवन्ते लवन्ते वा
न निसीएज्ज कयाइ वि ।
चइऊणमासणं धीरो
जओ जत्तं^३ पडिस्सुणे ॥

२२—आसण-गओ न पुच्छेज्जा
नेव 'सेजा-गओ कया'^४ ।
आगम्मुक्कुडुओ सत्तो
पुच्छेज्जा पंजलीउडो^५ ॥

प्रत्यनीकं (कल्पं) च बुद्धानां
वाचा अवयवाकर्मणा ।
आविर्भा यदि वा रहस्ये
नैव कुर्यात् कदाचिदपि ॥

न पक्षतो न पुरतः
नैव कृत्यानां पृष्ठतः ।
न युञ्ज्याह ऊरुणोरुं
शयने नो प्रतिभृणुयात् ॥

नैव पर्यस्तिकां कुर्यात्
पक्ष-पिण्डं वा संयतः ।
पादो प्रसारितो वापि
न तिष्ठेह गुरुणाम्भित्तिके ॥

आचार्यं व्याहृतः
तूष्णीको न कदाचिदपि ।
प्रसादप्रेक्षी नियागायी
उपतिष्ठेत गुरुं सदा ॥

आलपन् लपन् वा
न निषीदेत् कदाचिदपि ।
त्यक्त्वा आसनं धीरः
यतो यत्तत् प्रतिभृणुयात् ॥

आसनगतो न पृच्छेत्
नैव शय्यागतः कदा ।
आगम्योत्कुडुकः सन्
पृच्छेत् पंजलिमुदः ॥

१७—संगों के समझ या एकांत में, कबन
से या कर्म से, कभी भी आचार्यों के प्रतिकूल
वर्तन न करे ।

१८—आचार्यों के बराबर न बैठे । आगे
और पीछे भी न बैठे । उनके ऊह (जॉन्) से
अपना ऊह सटाकर न बैठे । बिछौने पर बैठ
हुआ हो उनके आवेश को स्वीकार न करे,
किन्तु उसे छोड़कर स्वीकार करे ।

१९—संयमी मुनि गुरु के समीप पलथी
लगाकर (पुटनो और जॉन्सों के चारों ओर
वस्त्र बांध कर) न बैठे । पक्ष-पिण्ड कर (दोनों
हाथों से शरीर को बांधकर) तथा पैरों को
फँस कर न बैठे ।

२०—आचार्यों के द्वारा बुलाए जाने पर
किसी भी अवस्था में मौन न रहे । गुरु के
प्रसाद को चाहने वाला, मोक्षानिलापी शिष्य
सदा उनके समीप रहे ।

२१—बुद्धिमान् शिष्य गुरु के एक बार
बुलाने पर या बार-बार बुलाने पर कभी भी
बैठा न रहे, किन्तु वे जो आदेश दें, उसे आसन
को छोड़कर यत्न के साथ स्वीकार करे ।

२२—आसन पर अवकाश शय्या पर बैठा-
बैठा कभी भी गुरु से कोई बात न पूछे, परन्तु
उनके समीप आकर ऊकड़ बैठ, हाथ जोड़कर
पूछे ।

१. पसारे नो (वृ०) ; पसारिए (वृ०पा०) ।

२. पसायट्ठी (वृ०पा०) ।

३. जुत्तं (भ, उ) ।

४. निसिज्जागओ कयाइ (वृ०) ।

५. पंजलीगरे (वृ०) ; पंजलीउडो (वृ०पा०) ।

विणय-सुर्य (विनय-श्रुत)

११

अध्ययन १ : श्लोक २३-२८

२३—एवं विणयजुतस्त
मुत्तं अत्यं च तदुभयं ।
पुच्छभाणस्त सीसस्त
वागरेज्ज जहासुर्य ॥

२४—मुसं परिहरे भिक्षू
न य ओहारिणि वए ।
भासा-दोसं परिहरे
मायं च वज्जए सया ॥

२५—न लवेज्ज पुट्टो सावज्जं
न निरट्ठं न मम्मयं ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा
उभयस्सन्तरेण वा ॥

२६—समरेसु अगारेसु
'सन्धीसु य महापहे' ।
एगो एगित्थिए सद्धि
नेव चिट्ठे न संलवे ॥

२७—जं मे बुद्धाणुसासन्ति
सीएणं फल्लेण वा ।
मम लाभो ति पेहाए
पयओ तं पडिस्सुणे ॥

२८—अणुसासणमोवायं
दुक्कडस्स य चोयणं ।
हियं तं मन्नेए पण्णो
वेसं होइ असाहुणो ॥

एवं विनयमुक्तस्य
सूत्रमर्थं च तदुभयम्
पृच्छतः शिष्यस्य
व्याघुणीयाइ यथाशु तम् ॥

मुषा परिहरेत् भिक्षुः
न चावधारिणीं बलेत् ।
भाषादोषं परिहरेत्
मायां च वर्जयेत् सदा ॥

न लपेत् पृष्ठः सावज्जं
न निरर्थं न ममकम् ।
आत्मार्यं परार्थं वा
उभयस्यान्तरेण वा ॥

स्मरेषु अगारेषु
सन्धिषु च महापथे ।
एक एकस्मिन्ना सार्धं
नेव तिष्ठेन्न संलपेत् ॥

यस्मां बुद्धा अनुशासति
शीतेन पल्लेण वा ।
मम लाभ इति प्रेष्य
प्रयत्नरहितं प्रतिशृणुवात् ॥

अनुशासनमोपायं
दुष्कृतस्य च चोयणम् ।
हितं तन्मन्थते प्राज्ञः
द्वेष्यं भक्ष्यसाधोः ॥

२३—इस प्रकार जो शिष्य विनय-युक्त
हो, उसके पूछने पर गुरु सूत्र, अर्थ और तदुभय
(सूत्र और अर्थ दोनों) जैसे मुने हों (जाने हुए
हों) जैसे बताए ।

२४—भिक्षु असत्य का परिहार करे ।
निषवय-कारिणी भाषा न बोले । भाषा के
दोषों को छोड़े । माया का सदा वर्जन
करे ।

२५—किसी के पूछने पर भी अपने,
पराए या दोनों के प्रयोजन के लिए अवधा
अकारण ही सावधान न बोले, निरर्थक न बोले
और मम-भेदी वचन न बोले ।

२६—कामदेव के मंदिरों में, घरों में, दो
घरों के बीच की संघियों में और राजमार्ग में
अकेला मुनि अकेली स्त्री के साथ न खड़ा रहे
और न संलाप करे ।

२७—"आचार्य मुझ पर कोमल या
कठोरवचनों से जो अनुशासन करते हैं वह मेरे
लाभ के लिए है।"—ऐसा सोचकर प्रयत्नपूर्वक
उनके वचनों को स्वीकार करे ।

२८—शुद्ध या कठोर वचनों से किया
जाने वाला अनुशासन दुष्कृत का निवारक
होता है । पञ्चावान् मुनि उसे हित मानता है ।
बही असाधु के लिए द्वेष का हेतु बन
जाता है ।

१. गिहसन्धीस महापथे (छ०) ; गिहसंधिड अ महापथेड (वृ०) ।

२. शीतेण (अ) ; सीतेण (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

३. पेत्थं (वृ०) ; चोयणा (वृ०) ।

२९—हियं विगय-भया बुद्धा
फरुसं पि अणुसासणं ।
वेसं तं होइ मूढाणं
खन्ति-सोहिकरं^१ पर्यं ॥

३०—आसणे उवविट्ठेज्जा
'अणुच्चे अकुए'^२ थिरे ।
अणुट्ठाई निरुट्ठाई
निसीएज्जप्पकुक्कुए ॥

३१—कालेण निक्खमे भिक्खू
कालेण य पडिक्खमे ।
अकालं च विवज्जित्ता
काले कालं समाचरे ॥

३२—परिवाडीए न विट्ठेज्जा
भिक्खू दत्तेसणं चरे ।
पडिक्खेण एसित्ता
मियं कालेण भक्खए ॥

३३—'नाइदूरमणासन्ने'^३
ननेसि चक्खु-फासओ ।
एगो विट्ठेज्ज भत्तट्ठा
लघिया तं नइक्खमे^४ ॥

३४—नाइउच्चे व नीए वा
नासन्ने नाइदूरओ ।
फामुयं परकडं पिण्डं
पडिगाहेज्ज संजए ॥

हितं विगतभया बुद्धाः
परुषमप्यनुशासनम् ।
द्वेष्यं तत्र भवति मूढानां
क्षान्तिशोधिकरं पदम् ॥

आसने उपविष्टे
अणुच्चे अकुचे स्थिरे ।
अल्पोत्थायो निरुत्थायो
निषीदेवल्पकुक्कुचः ॥

काले निष्कामेह भिक्षुः
काले च प्रतिक्रामेत् ।
अकालं च विवर्ज्यं
काले कालं समाचरेत् ॥

परिपाट्यां न तिष्ठेत्
भिक्षुर्दत्तेषणां चरेत् ।
प्रतिरूपेणेषयित्वा
मितं काले भक्षयेत् ॥

नातिदूरेऽनासन्ने
नान्येभ्योऽक्षुःस्पर्शतः ।
एकस्तिष्ठेद्भक्षतायं
लङ्घयित्वा तं नातिक्रामेत् ॥

नात्युच्चे वा नीचे वा
नासन्ने नातिदूरतः ।
प्राप्तुं परकृतं पिण्डं
प्रति गृह्णीयात् संयतः ॥

२९—भय-मुक्त बुद्धिमान् शिष्य गुरु के
कठोर अनुशासन को भी हितकर मानते हैं ।
परन्तु अज्ञानियों के लिए वही—क्षमा और
चित्त-विमृद्धि करने वाला, गुण-वृद्धि का
आधारभूत—अनुशासन द्वेष का हेतु बन
जाता है ।

३०—जो गुरु के आसन से नीचा हो,
अक्रममान हो और स्थिर हो (जिसके पाये
धरती पर टिके हुए हों) वैसे आसन पर बैठे ।
प्रयोजन होने पर भी बार-बार न उठे । बैठे
तब स्थिर एवं शान्त होकर बैठे, हाथ-पैर आदि
से चपलता न करे ।

३१—समय पर भिक्षा के लिए निकले,
समय पर लौट आए । अकाल को बर्जकर, जो
कार्य जिस समय का हो, उसे उसी समय
करे ।

३२—भिक्षु परिपाटी (पक्ति) में खड़ा
न रहे । गृहस्थ के द्वारा दित्त हुए आहार की
एगणा करे । प्रति-रूप (मुनि के वेष) में एगणा
कर यथानमय मित आहार करे ।

३३—पहले से ही अन्य भिक्षु खड़े हों तो
उनसे अति-दूर या अति-समीप खड़ा न रहे
और देने वाले गृहस्थों की दृष्टि के सामने भी
न रहे । किन्तु अकेला (भिक्षुओं और दाता
दोनों की दृष्टि से बचकर) खड़ा रहे । भिक्षुओं
को लोंचकर भक्त लेने के लिए न जाए ।

३४—संयमी मुनि प्राप्तुक और गृहस्थ के
लिए बना हुआ आहार ले किन्तु अति-ऊँचे या
अति-नीचे स्थान से लाया हुआ तथा अति-
समीप या अति-दूर से दिया जाता हुआ
आहार न ले ।

१. -सोहिकरं (बु०) ।

२. अणुच्चेऽकुक्कुए (वृ०) ।

३. गाइ दूरे अणासणे (वृ०) ।

४. न अइक्खमे (भ०) ।

३५—अप्यपाणेऽप्यब्रीयंमि^१

पडिच्छन्मि संवुडे ।

समयं संजए भुंजे

जयं अपरिसाडियं^२ ॥

अस्यप्राणेऽस्यब्रीजे

प्रतिच्छन्ने संवृते ।

समकं संयतो भुंजीत

यतमपरिसादितम् ॥

३५—संयमी मुनि प्राणी और बीज रहित,

ऊपर से ढके हुए और पाखं में भित्ति आदि से संवृत उपाध्य में अपने सहचरों मूनियों के साथ, भूमि पर न गिरता हुआ, यत्नपूर्वक आहार करे ।

३६—सुकटे त्ति सुपक्के त्ति

सुच्छित्ते सुहडे मडे ।

मुणिट्टिए सुलट्टे त्ति

सावज्जं वज्जए मुणी ॥

सुकृतमिति सुपक्वमिति

सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम् ।

मुनिप्लित्तं सुलष्टमिति

सावद्यं वज्जेन्मुनिः ॥

३६—बहुत अच्छा किया है (भोजन आदि), बहुत अच्छा पकाया है (बेबर आदि), अच्छा छोड़ा है (पत्ती का साग आदि), बहुत अच्छा हरण किया है (साग की कड़वाहट आदि), नुद्ध अच्छा मरा है (कुरसे में पी आदि), बहुत लट्ट है (प्रिय है)—मुनि इन सावद्य वक्तों का प्रयोग न करे ।

३७—रमए पण्डिए सासं

हयं भट्टं व वाहए ।

बालं सम्मइ सासन्तो

गलियस्सं व वाहए ॥

रमते पण्डितान् शासत्

हयं भट्टमिव वाहकः ।

बालं श्राम्यति शासत्

गल्यश्वमिव वाहकः ॥

३७—जैसे उत्तम घोड़े को हाँकते हुए उसका वाहक आनन्द पाता है, वैसे ही पण्डित (विनीत) शिष्य पर अनुशासन करता हुआ गुरु आनन्द पाता है और जैसे भट्ट घोड़े को हाँकते हुए उसका वाहक खिन्न होता है, वैसे ही बाल (अविनीत) शिष्य पर अनुशासन करता हुआ गुरु खिन्न होता है ।

३८—'खड्डुया मे चवेडा मे

अकोसा य वहा य मे'^३ ।

कलाणमणुसासन्तो^४

पावदिट्ठि त्ति मन्तई ॥

'खड्डुका' मे चपेटा मे

आकोशादय ब्रवाश्च मे ।

कल्याणमनुशास्यमानः

पापवृष्टिरिति मन्यते ॥

३८—पाप-वृष्टि वाला शिष्य गुरु के कल्याणकारी अनुशासन को भी ठोकर मारने, चाँटा चिपकाने, माली देने व प्रहार करने के समान मानता है ।

३९—पुत्तो मे भाय नाइ त्ति

साह कलाण मन्तई ।

पावदिट्ठि उ अप्पाणं

सासं 'दासं व'^५ मन्तई ॥

पुत्रो मे भ्राता शत्रिरिति

साधुः कल्याणं मन्यते ।

पापवृष्टिस्त्वन्मात्रं

शास्यमानं दासमिव मन्यते ॥

३९—गुरु मुझे पुत्र, भाई और स्वजन की तरह अपना समझकर शिक्षा देते हैं—ऐसा सोच विनीत शिष्य उनके अनुशासन को कल्याणकारी मानता है परन्तु कुशिष्य हितानुशासन से शत्रित होने पर अपने को दास तुल्य मानता है ।

१. अप्यपाणेऽप्य० (अ, ड, ख०) ।

२. अप्यरि० (ड, ख०, वृ०) ।

३. खड्डुवाहि चवेडाहि, अकोसेहि वहेहि य (वृ०, वृ०) ; खड्डुया मे चवेडा मे, अकोसा य वहा य मे (वृ०, वृ०, वृ०पा०) ।

४. सासन्तं (वृ०, वृ०) ।

५. दासे त्ति (अ, आ, इ, व, ख०) ।

४०—न कोवए आयरियं
अप्पाणं पि न कोवए ।
बुद्धोवघाई न सिया
न सिया तोत्तगवेसए ॥

४१—आयरियं कुवियं नच्चा
पत्तिएण पसायए ।
विज्झवेज्ज पंजलिउडो
वएज्ज न पुणो ति य ॥

४२—धम्मज्जियं च व्यवहारं
बुद्धेहायरियं सया ।
तमायरन्तो व्यवहारं
गरहं नाभिगच्छई ॥

४३—‘मणोगयं वक्कगयं’^१
जाणितायरियस्स उ ।
तं परिगिज्झ वायाए
कम्मुणा उववायए ॥

४४—वित्ते अचोइए निच्चं^२
‘खिप्पं हवइ सुचोइए’^३ ।
जहोवइदं सुकयं
किचाई कुव्वई सया ॥

४५—नच्चा नमइ मेहावी
लोए ‘कित्ती से’^४ जायए ।
हवई किच्चाणं सरणं
भूयाणं जगई जहा ॥

न कोपयेवाचार्यं
आत्मानमपि न कोपयेत् ।
बुद्धोपघातो न स्यात्
त स्यात् सोऽग्रगवेवकः ॥

आचार्यं कुपितं ज्ञात्वा
प्रातीतिकेन प्रसादयेत् ।
विध्यापयेत् प्रांजलिपुटः
वदेन्न पुनरिति च ॥

धर्माजितं च व्यवहारं
बुद्धं राक्षरितं सदा ।
तमाचरन् व्यवहारं
गहं नाभिगच्छति ॥

मनोगतं वाक्यगतं
ज्ञात्वा आचार्यस्य तु ।
तत् परिगृह्य वाचा
कर्मणोपपादयेत् ॥

वित्तोऽबोदितो नित्यं
क्षिप्रं भवति सुचोदितः ।
यथोपदिष्टं सुकृतं
कृत्यानि करोति सदा ॥

ज्ञात्वा नमति मेहावी
लोके कीर्तिस्तस्य जायते ।
भवति कृत्यानां शरणं
भूतानां जगती यथा ॥

४०—शिष्य आचार्य को कुपित न करे ।
स्वयं भी कुपित न हो । आचार्य का उपघात
करनेवाला न हो । उनका छिद्रान्वेधी न हो ।

४१—आचार्य को कुपित हुए जानकर
विनीत शिष्य प्रतीतिकारक (या ‘प्रीतिकेन’
—प्रीतिकारक) वचनों से उन्हें प्रसन्न करे ।
हाथ जोड़कर उन्हें शान्त करे और यों कहे कि
“मैं पुनः ऐसा नहीं करूँगा ।”

४२—जो व्यवहार धर्म से अजित हुआ
है, जिसका तत्त्वज्ञ आचार्यों ने सदा आचरण
किया है, उस व्यवहार का आचरण करता
हुआ मुनि कहीं भी गहों को प्राप्त नहीं होता ।

४३—आचार्य के मनोगत और वाक्य-
गत भावों को जानकर, उनको वाणी से ग्रहण
करे और कार्यरूप में परिणत करे ।

४४—जो किय से प्रख्यात होता है वह
सदा विना प्रेरणा दिए ही कार्य करने में प्रवृत्त
होता है । वह अच्छे प्रेरक मुक्त की प्रेरणा
पाकर सुरंत ही उनके उपदेशानुसार, भलीभाँति
कार्य सम्पन्न कर लेता है ।

४५—मेहावी मुनि उक्त विनय-पद्धति
को जानकर उसे क्रियान्वित करने में तत्पर हो
जाता है । उसकी लोक में कीर्ति होती है ।
जिस प्रकार पृथ्वी प्राणियों के लिए आधार
होती है, उसी प्रकार वह धर्माचरण करनेवालों
के लिए आधार होता है ।

१. मेहावी (वृ०पा०) ।

२. मणोसहं वक्कसहं (वृ०पा०, वृ०) ।

३. खिप्पं (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

४. पसन्ने धासवं करे (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

५. किस्सी (अ, ड, वृ०) ; किस्ती सि (ऋ०) ।

४६—पुज्या जस्स पसीयन्ति
संबुद्धा पुव्वसंयुया ।
पसन्ता^१ लाभइस्सन्ति
विउलं अट्ठियं सुयं ॥

पूज्या यस्य प्रसीदन्ति
सम्बुद्धाः पूर्व-संस्तुताः ।
प्रसन्ता लाभयिष्यन्ति
विपुलमाधिकं श्रुतम् ॥

४६—उत्तर-तत्त्ववित् पूज्य आचार्य
प्रसन्न होते हैं । अध्ययन-काल से पूर्व ही वे
उसके विनय-समाचरण से परिचित होते हैं ।
वे प्रसन्न होकर उसे मोक्ष के हेतुभूत विपुल
श्रुत-ज्ञान का लाभ कराते हैं ।

४७—स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए
'मणोरुई'^२ चिट्ठइ कम्म-संपया ।^३
तवोसमायारिसमाहिंसुंढे
महज्जुई पंच-वयाइं पालिया ॥

स पूज्य-शास्त्रः सुविनीत-संशयः
मनोरुचिस्तिष्ठति कर्म-सम्पदा ।
तपःसामाचारीसमाधिसंयुतः
महाश्रुतिः पंच व्रतानि पालयित्वा ॥

४७—वह पूज्य-शास्त्र होता है—उसके
शास्त्रीय ज्ञान का बहुत सम्मान होता है ।
उसके सारे संशय मिट जाते हैं । वह श्रुत के
मन को भाता है । वह कर्म-सम्पदा (दस
विध सामाचारी) से सम्पन्न होकर रहता है ।
वह तप-समाचारी और समाधि से संयुत होता
है । पाँच भूतव्रतों का पालनकर महान्
तेजस्वी हो जाता है ।

४८—स देव-गन्धर्व्व-मणुस्सपूइए
चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं ।
सिद्धो वा भवति शाश्वतः
देवो वा अप्परए महिड्डिए ॥
—ति वेमि ।

स देवगन्धर्व्वमनुष्यपूजितः
त्यक्त्वा देहं मलपङ्कपुर्व्वकम् ।
सिद्धो वा भवति शाश्वतः
देवो वात्परज्जा महर्द्धिकः ॥

—इति ब्रवीमि

४८—देव, गन्धर्व्व और मनुष्यों से पूजित
वह विनीत शिष्य मल और पंक से बने हुए
शरीर को त्यागकर या तो शाश्वत सिद्ध होता
है या अल्पकाल वाला महर्द्धिक देव होता है—
ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. संपन्ता (वृ० पा०) ।

२. मणोरुई (वृ० पा०) ।

३. मणोरुई चिट्ठइ कम्म-संपयं (वृ० पा०); मणिच्छिर्व संयमसुत्तमं गथा (मायार्जुनीयाः) ।

उक्त प्रकारों में से कोई कष्ट जो स्वयं इच्छानुसार भेला जाता है, वह काय-व्लेश है और जो इच्छा के बिना प्राप्त होता है, वह परीषद् है ।^१

काय-व्लेश के अभ्यास से शारीरिक दुःख को सहने की क्षमता, शारीरिक सुखों के प्रति अनाकांक्षा और कथित जिन-ज्ञान की प्रभावना भी होती है ।^२ परीषद् सहन करने से स्वीकृत अहिंसा आदि धर्मों की सुरक्षा होती है ।

इस अध्ययन के अनुसार परीषद् बाईस हैं :—

१—क्षुधा	१३—आक्रोश
२—पिपासा	१३—वध
३—शीत	१४—याचना
४—तृष्णा	१५—अलाम
५—दंश-मशक	१६—रोग
६—अचेत	१७—वृण-स्पर्श
७—अरति	१८—जह
८—स्त्री	१९—सत्कार-पुरस्कार
९—चर्या	२०—प्रज्ञा
१०—निषद्या	२१—अज्ञान
११—शय्या	२२—दर्शन

तत्त्वार्थसूत्र में भी इनकी संख्या बाईस ही है ।^३

इनमें दर्शन-परीषद् और प्रज्ञा-परीषद्—ये दो मार्ग से अध्ययन में सहायक होते हैं और शेष बीस परीषद् निर्जरा के लिये होते हैं ।^४

समवायांग (समवाय २२) में अन्तिम तीन परीषद्ओं का क्रम उत्तराध्ययन से भिन्न है :—

उत्तराध्ययन	समवायांग
१—प्रज्ञा	१—ज्ञान
२—अज्ञान	२—दर्शन
३—दर्शन	३—प्रज्ञा

अभयदेवसूत्रि ने समवायांग की वृत्ति में अज्ञान-परीषद् का कथित श्रुति के रूप में उल्लेख किया है ।

तत्त्वार्थसूत्र (६।६) में 'अचेत' के स्थान पर 'नाग्न्य'-परीषद् का उल्लेख है और दर्शन-परीषद् के स्थान पर अदर्शन-परीषद् का । प्रवचनसारोद्धार (गाथा ६८६) में दर्शन-परीषद् के स्थान में सम्यक्त्व-परीषद् माना गया है । दर्शन और सम्यक्त्व यह केवल शब्द-भेद है ।

१—तत्त्वार्थवृत्ति (भूतसागरीय), पृष्ठ ३०१, सू० ६।६ की वृत्ति : यदृच्छया समागतः परीषद्, स्वयमेव कृतः कायक्लेशः ।

२—यही : शरीरदुःखसहनायं शरीरदुःखानि विनाश्यायं जिनवर्मप्रभावनाद्यर्थेभ्यः ।

३—तत्त्वार्थसूत्र, ६।६ : क्षुत्पिपासाशीतोष्णवृत्तमशकनाम्भारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवचनाचनाऽक्रोशगृहगृहमकसत्कारपुरुषाह-प्रज्ञाज्ञानाद्युत्तमानि ।

४—प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ १६२, गा० ६८६ की वृत्ति : तत्र सागोच्यवनायं दर्शनपरीषद्ः प्रज्ञापरीषद्श्च, येषां विषयनिर्जरायम् ।

द्वितीयं अध्ययनं :
परीषद्-प्रविभक्ती

द्वितीय अध्ययन :
परीषद्-प्रविभक्तिः

अथैल ओर नाग्न्य मे थोड़ा अर्थ-मेव भी है। अथैल का अर्थ है—(१) नग्नता और (२) फटे हुए या अल्प-मूल्य वाले वस्त्र^१।

तत्त्वार्थवृत्त श्रुतसागरीय वृत्ति मे प्रज्ञा-परीषद् और अदर्शन-परीषद् की व्याख्या मूल उत्तराध्ययन के प्रज्ञा और दर्शन-परीषद् से भिन्न है। उत्तराध्ययन (२।४२) में जो अज्ञान-परीषद् की व्याख्या है, वह श्रुतसागरीय में अदर्शन की व्याख्या है।

तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुतसागरीय) पृ० २९५

प्रज्ञा-परीषद् :—

यो मुनिस्तत्कथ्यकरणच्छन्दोत्कारसारसाहित्याध्यात्म-
शास्त्रादिनिधानांगपूर्वप्रकीर्णकनिपुणोऽपि सन् ज्ञानमव-
न करोति, समाप्रतः प्रवादिनः सिंहशब्दश्रवणान् बभगजा
इव पलायन्ते xxx मवं नाधत्ते स मुनिः प्रज्ञापरीषद्भवितव्यो
भवति।

अर्थ : जो मुनि तर्क, व्याकरण, साहित्य, छन्द, अलंकार, अध्यात्मशास्त्र आदि विद्याओं मे निपुण होने पर भी ज्ञान का मव नहीं करता है तथा जो इस बात का धमंठ नहीं करता है कि प्रवादी मेरे सामने से उसी प्रकार भाग जाते हैं जिस प्रकार सिंह के शब्द को सुनकर हाथी भाग जाते हैं, उस मुनि के प्रज्ञा-परीषद् जय होता है।

अदर्शन-परीषद्—

यो मुनिः xxx चिरवीक्षितोऽपि सन्नेवं न चिन्तयति
अद्यापि समातिशयवद्बोधनं न सङ्गाप्यते उत्कृष्टश्रुतव्रतावि-
श्विधाविना किल प्रातिहार्यविरोधाः प्रादुर्भवन्ति, इति श्रुति-
मिथ्या वतंते दोषेयं निष्फला व्रतधारणं च फलं एव वतंते
इति सम्प्रदर्शनविशुद्धिस्तन्निधानादेव न मनसि करोति
तस्य मुनेरदर्शनपरीषद्भवितव्यो भवतीत्यवसानोपम^२।

अर्थ :—चिर दीक्षित होने पर भी अवधिज्ञान या ब्राह्म आदि को प्राप्ति न होने पर जो मुनि विचार नहीं करता है कि यह दीक्षा निष्फल है, व्रतों का धारण करना व्यर्थ है इत्यादि, उस मुनि के अदर्शन-परीषद् जय होता है।

उत्तराध्ययन अ० २

प्रज्ञा-परीषद् :—

से नूनं मए पुष्वं, कम्माऽणाणफला कथा।
जेणाहं नाभिज्जणामि, पुट्ठो केणइ कण्ठुई ॥४०॥
अहं पच्छा उइज्जंति, कम्माऽणाणफलाकथा।
एवधससि अप्पाणं, णञ्चा कम्मविवाययं ॥४१॥

अर्थ :—निश्चय ही मैने पूर्व काल में अज्ञान-रूपी फल देने वाले कर्म किये हैं। उन्हीं के कारण मैं किसी से कुछ पूछे जाने पर भी कुछ नहीं जानता—उत्तर देना नहीं जानता। पहले किये हुए अज्ञान-रूप फल देने वाले कर्म पकने के पश्चात् उदय में आते हैं इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर आत्मा को आश्वासन दे।

दर्शन-परीषद् :—

एतत्थ नूनं परे लोए, इइदी वाधि तवस्सिणो।
अबुवा वड्ढिओमिस्सि, इइ भिक्खू ण चिन्ने ॥४४॥
अभू जिणा अत्थि जिणा, अबुवाधि भविससइ।
मुसं ते एवमाहुंसु, इति भिक्खू न चिन्ने ॥४५॥

अर्थ :—निश्चय ही परलोक नहीं है, तपस्वी को ब्रह्म भी नहीं है, अथवा मैं ठगा गया हूँ—भिक्खू ऐसा चिन्तन न करे। जिन हृदये थे, जिन हैं और जिन होंगे—ऐसा जो कहते हैं—वे झूठ बोलते हैं—भिक्खू ऐसा चिन्तन न करे।

१—प्रबन्धसारोद्धार, पृष्ठ १६३, गा० ६८६ की वृत्ति : चेत्तस्य असावो अथैल जिनकणिकादीनां अन्येषां तु वतीनां भिन्नं लघुटितं अल्पमूल्यं च चेत्तस्यचेत्तमुच्यते।

आर्यसूत्र

उत्तराध्ययन के इस दूसरे अध्ययन में मुनि के परीषद् का निरूपण है : कर्म-प्रवाद पूर्व के १७ वें प्राप्नुत में परीषद् का नय और उदाहरण-सहित निरूपण है। वही यहाँ उद्धृत किया गया है; यह निर्युक्तिकार का अभिमत है।^१ दशकालिक के सभी अध्ययन जिस प्रकार पूर्वों से उद्धृत हैं उसी प्रकार उत्तराध्ययन का यह अध्ययन भी उद्धृत है।

जो सहा जाता है उसे कहते हैं परीषद्। सहने के दो प्रयोजन हैं : (१) मार्गाध्ययन और (२) निर्जरा। स्वीकृत मार्ग से च्युत न होने के लिये और निर्जरा—कर्मों को क्षीण करने के लिये कुछ सहा जाता है।^२

भगवान् महावीर की धर्म-प्ररूपणा के दो मुख्य अंग हैं—अहिंसा और कष्ट-सहिष्णुता।^३ कष्ट सहने का अर्थ शरीर, इन्द्रिय और मन को पीड़ित करना नहीं, किन्तु अहिंसा आदि धर्मों की आराधना को सुस्थिर बनाये रखना है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है :—

सुहेण भाविदं पाणं, दुहे जादे विणस्सदि।

तम्हा जहाबलं जोई, अप्पा दुक्खेहि भावए ॥^४

अर्थात् सुख से भावित ज्ञान दुःख उत्पन्न होने पर नष्ट हो जाता है; इसलिये योगी को यथाशक्ति अपने-आपको दुःख से भावित करना चाहिये।

इसका अर्थ काया को वलेश देना नहीं है। यद्यपि एक सीमित अर्थ में काय-वलेश भी तप रूप में स्वीकृत है किन्तु परीषद् और काय-वलेश एक नहीं हैं। काय-वलेश आसन करने, ग्रीष्म-ऋतु में आत्मापना लेने, वर्षा-ऋतु में तटमूल में निवास करने, शीत-ऋतु में अपावृत स्थान में सोने और नाना प्रकार की प्रतिमाओं को स्वीकार करने, न सुजलाने, शरीर की विमूढा न करने के अर्थ में स्वीकृत है।^५

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ६६ : कम्मपवायपुण्वे सत्तरसे पाहुबंमि जं सत्तं।

सणयं सोदाहरणं सं वेव इहपि गाथव्वं ॥

२—तत्त्वार्थसूत्र, ६।८ : मार्गाध्ययननिर्जाराय परिषोदक्याः परीषदाः।

३—सूत्रकृतांग १।२।१।१४ : पुणिषा कुलिबं व लेववं कियए देहमणासणा इह।

अविहिंसामेव पणए अणुधम्मो मुणिणा पवेहओ ॥

वृत्ति—विषया हिंसा विहिंसा न विहिंसा अविहिंसा। तामेव प्रकर्षेण वजेत्, अहिंसाप्रधानो भवेदित्यर्थः अनुगतो—मोक्षं प्रत्यनुकूलो धर्मोऽनुषंगः असार्वहिंसाक्षणः परीषदोपसर्गसहनक्षणश्च धर्मो 'मुनिना' सर्वश्रेष्ठ 'प्रवेष्टितः' कथित इति।

४—अष्टपादुब, मोक्ष प्राप्नुत ६२।

५—(क) उत्तराध्ययन ३।४।४ :

ठाणा बीरासणाईया जीवस्स उ छावावहा।

इत्तां जहां खरिणंमिन्ति कापकिन्ति तंभादिंयं ॥

(क) औपपातिक, सूत्र १६ : से कि सं कायकिन्ते १,२ अणेगविहे पणत्ते, तंजहा—ठाणाहितिए ठाणाइए उक्कडुआसणिंए, तंमिंमिंठाई बीरासणिंए वेसकिंए ईवीयंए उक्कडुआ आयायं अयाउक्कडु अयाउक्कडु अयाउक्कडु से बीरासणीकिंमिन्ति विजुसविजुसके से तं कायकिन्ते।

व्याख्याकारों ने सभी परीषद्ओं के साथ कथाएँ जोड़कर उन्हें सुबोध बनाया है। कथाओं का संकेत निर्युक्ति में भी प्राप्त है।

परीषद्-उत्पत्ति के कारण इस प्रकार बताये गये हैं^१ :—

परीषद्	उत्पत्ति के कारण कर्म	परीषद्	उत्पत्ति के कारण कर्म
१—प्रज्ञा	ज्ञानावरणीय	१२—सुधा	वेदनीय
२—अज्ञान	"	१३—पिपासा	"
३—अलाम	अन्तराय	१४—शीत	"
४—अरति	चारित्र-मोहनीय	१५—उष्ण	"
५—अथेल	"	१६—दंश-मशक	"
६—रुद्रो	"	१७—चर्या	"
७—निषद्या	"	१८—शय्या	"
८—याचना	"	१९—वध	"
९—आक्रोश	"	२०—रोग	"
१०—सत्कार-पुरस्कार	"	२१—मृण-स्पर्श	"
११—दर्शन	दर्शन-मोहनीय	२२—जल	"

ये सभी परीषद् नीचें गुणस्थान तक हो सकते हैं। दशवें गुणस्थान में चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले अरति आदि सात परीषद् तथा दर्शन-मोहनीय से उत्पन्न दर्शन-परीषद् को छोड़कर शेष चौदह परीषद् होते हैं। छद्मस्थ वीतराग अर्थात् ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि में भी ये ही चौदह परीषद् हो सकते हैं। केवली में मात्र वेदनीय-कर्म के उदय से होने वाले ग्यारह परीषद् पाये जाते हैं^२।

तत्त्वार्थसूत्र में एक साथ उन्नीस परीषद् माने हैं। जैसे—शीत और उष्ण में से कोई एक होता है। शय्या-परीषद् के होने पर निषद्या और चर्या-परीषद् नहों होते। निषद्या-परीषद् होने पर शय्या और चर्या-परीषद् नहों होते।^३

१—उत्तराख्ययन निर्युक्ति, भाषा ७३-८८ :

गाथावरणे वेष्ट मोहमय अन्तराष्ट्रे वेष्ट । एषुं बाधीसं परीसहा हुंति गाचन्वा ॥
पन्मान्नापरिसहा गाणावरणमि हुंति हुन्नेष्ट् । इहो य अतराए अलाहपरीसहो होइ ॥
अरई अथेल इत्थी निसीहिवा जायणा व अक्कोसे । सत्कारपुरस्कारे चरित्तमोहिं सत्तेष्ट् ॥
अरई हुणुंछाए पुंवेच अयत्स वेव मागत्स । कोहत्स व कोहत्स व उव्वण परीसहा सत्त ॥
दंसणमोहिं दंसणपरीसहो निवससो भवे इक्को । सेसा परीसहा खलु इक्कारस वेवणीज्जमि ॥
पंचेव आणुपुब्बी चरिया सिज्जा बहे व (य) रोगे व । तण्णसज्जकमेव व इक्कारस वेवणीज्जमि ॥

२—वही, भाषा ७८ ।

३—(क) तत्त्वार्थसूत्र, ६।१७ : एकाद्वयो मात्स्या युगपदेकस्मिन्वेकान्विब्रह्मतिः ।

(क) तत्त्वार्थसूत्र (भूतसागरीय), पृ० २६६ : वीरोप्यपरीषद्द्वयोर्मध्ये अन्यतरो भवति वीतमुष्णो वा । कव्यापरीषद्हे सति निषद्याचयं न भवतः निषद्यापरीषद्हे शय्याचयं न भवतः, चर्यापरीषद्हे शय्यानिषद्ये न भवतः । इति त्रयाणामसत्त्वमेव एकान्विब्रह्मतिरेकस्मिन् युगपद् भवति ।

अस्मान-परीषद् :—

निरट्टगमि बिरओ, मेनुनाओ सुसंघो ।

ओ सक्कं नाभिजाणामि, धम्मं कल्लाण पावणं ॥४२॥

तवोबहुणमायाय, पडिं पडिबज्जओ ।

एवंपि मे बिहरओ, छउमं ण णियट्ठति ॥४३॥

अर्थ :—मैं मैथुन से निवृत्त हुआ, इन्द्रिय और

मन का मैंने संवरण किया—यह सब निरर्थक है ।

क्योंकि धर्म कल्याणकारी है या पापकारी—यह मैं साक्षात् नहीं जानता ।

तपस्या और उपाधान को स्वीकार करता हूँ,

प्रतिमा का पालन करता हूँ—इस प्रकार विशेष चर्या

से विहरण करने पर भी मेरा छद्म (ज्ञानाकर्षणादि कर्म) निवर्तित नहीं हो रहा है—ऐसा चिन्तन न करे ।

मूलाधार में विधिक्रिस्ता के दो भेद किये हैं—(१) द्रव्य-विधिक्रिस्ता और (२) भाव-विधिक्रिस्ता । भाव-विधिक्रिस्ता के अन्तर्गत बार्हस परीषद्ओं का उल्लेख हुआ है । उनमें अरति के स्थान पर अरति-रति, याचना के स्थान पर अयाचना और दर्शन के स्थान पर अदर्शन-परीषद् है ।^१

इन बार्हस परीषद्ओं के स्वरूप के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कई परीषद् सामान्य व्यक्तियों के लिये नहीं थे । वे जिनकल्प-प्रतिमा को स्वीकार करने वाले विशेष संहनन और धृति-युक्त मुनियों के लिये थे । ज्ञानत्या-चार्य ने भी इस ओर संकेत किया है । उनके अनुसार अचेत-परीषद् (जहाँ हम अचेत का अर्थ नग्नता करते हैं) जिनकल्पी मुनियों के लिये तथा ऐसे स्थविरकल्पी मुनियों के लिये ब्राह्म है, जिन्हें वस्त्र मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, जिन के पास वस्त्रों का अभाव है, जिनके वस्त्र जीण हो गये हैं अथवा जो वर्षा आदि के बिना वस्त्र-धारण नहीं कर सकते^२ और तुणस्परी-परीषद् केवल जिनकल्पी मुनियों के लिये ब्राह्म है^३ ।

प्रवचनसारोद्धार की टीका में सर्वथा नग्न रहना तथा धिक्रिस्ता न कराना, केवल जिनकल्पी मुनि के लिये ही बतलाया है^४ ।

१—मूलाधार, ४।७२, ७३ : बुद्धतयाही सीदुयहा दंसमसयमचेतभावो य ।

अरदि रदि इत्थि वरिषा णिसीविषा तेज्ज अक्कोसो ॥

वधजायणं अलाहो रोग तणप्फास जल्लसक्कारो ।

तह वेव पुणपरिसह अण्णाणमरंसणं स्रमणं ॥

२—बुद्धवृत्ति, पत्र ६२, ६३ : जिनकल्पप्रतिपत्तौ स्थविरकल्पेऽपि दुर्लभत्वनादौ वा सर्वथा चेलाभावेन त्वति वा चेले बिना वर्षादिनिमित्तम-प्रावरणेन कीर्णादिवस्त्रतया वा 'अचेतक' इति अवस्थोऽपि भवति ।

३—वही, पत्र ६२२ : जिनकल्पिकापेक्षं वैतत्, स्थविरकल्पिकारण सापेक्षसंयमत्वासेवन्तेऽस्तीति ।

४—(क) प्रवचनसारोद्धार, पत्र १६३ : , मा० ६८, की वृत्ति (उद्धारण के लिये देखिये पृष्ठ २१ पाठ-०१) ।

(ख) वही, पत्र १६४ : मा० ६८ की वृत्ति : उद्धारकासम्प्रासादिके सत्यपि न गच्छन्निर्गता जिनकल्पिकाव्यवधिक्रिस्ताविधापाने प्रवर्तन्ते ।

बौद्ध-भिक्षु-काय-वलेन को महत्त्व नहीं देते किन्तु परीषद्-सङ्घन को स्थिति को वे भी अस्वीकार नहीं करते । स्वयं महात्मा बुद्ध ने कहा है—“मुनि शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, वात, आतप, दंश और सरीसृप का सामना कर खंग-विषाण की तरह अकेला विहरण करे ।”^१

आचारांग निर्युक्ति में परीषद् के दो विभाग हैं^२ :—

१—शीत—मन्द परिणाम वाले । जैसे—स्त्री-परीषद् और सत्कार-परीषद् । ये दो अनुकूल परीषद् हैं ।

२—उष्ण—तीव्र परिणाम वाले । शेष बौद्ध । ये प्रतिकूल परीषद् हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन में परीषदों के विवेचन रूप में मुनि-चर्या का बहुत हो महत्त्वपूर्ण निरूपण हुआ है ।

१—उत्तरनिपात, उरगवग्ग, ३।१८ : सीलं च उवहं च च्छुदं विवासं, वातासपे वंशसिरसिपे च ।

सम्भाविपेवानि अभिसंभविस्वा, एको चरे क्षणविसानकप्पो ॥

२—आचारांग निर्युक्ति, गाथा २०२, २०३ : इत्थी सक्कार परिस्सहा य. दो भाव-सीयका-पुए ।

तेसा-भीलं डवहा, परीस्सहा हीति गाचण्णा ॥

जे तिण्णप्परिणामा, परास्सहा ते भवन्ति उवहाड ।

जे भण्डप्परिणामा, परीस्सहा ते भवे सीया ॥

वीथं अज्ज्ञवर्णः द्वितीय अध्वयन परीसह-पविभक्ती : परीषह-प्रविभक्तिः

मूल

सू० १—सुर्यं मे, आउसं ! तेणं
भगवया एवमक्खायं—

इह खलु बावीसं परीसहा
समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं
पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा,
जिच्चा, अभिभूय, भिक्खायरियाए^१
परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा^२ ।

संस्कृत छाया

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता
एवमाख्यातम्—

इह खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परिव्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्येत ।

हिन्दी अनुवाद

सू० १—आयुष्मन् ! मैंने सुना है भगवान्
ने इस प्रकार कहा—निर्बन्ध-प्रवचन में बाईस
परीषह होते हैं, जो कश्यप-गोत्रीय श्रमण
भगवान् महावीर के द्वारा प्रवेदित हैं, जिन्हें
मुनकर, जानकर, अम्यास के द्वारा परिचितकर,
पराजितकर, भिक्षा-चर्या के लिए पर्यटन करता
हुआ मुनि उनसे स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं
होता ।

सू० २—कयरे ते खलु बावीसं
परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं
कासवेणं पवेइया ? जे भिक्खू सोच्चा,
नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खा-
यरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो
विहन्नेज्जा ।

कतरे ते खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिताः ? यान् भिक्षुः श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परिव्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्येत ।

सू० २—वे बाईस परीषह कौन ते हैं जो
कश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के
द्वारा प्रवेदित हैं ? जिन्हें मुनकर, जानकर,
अम्यास के द्वारा परिचितकर, पराजितकर,
भिक्षा-चर्या के लिए पर्यटन करता हुआ मुनि
उनसे स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं होता ।

सू० ३—इमे ते खलु बावीसं
परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं
कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा,
नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खा-
यरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो
विहन्नेज्जा, तं जहा—

इमे ते खलु द्वाविंशतिः परीषहाः
श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन
प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा, ज्ञात्वा,
जित्वा, अभिभूय, भिक्षाचर्यया परिव्रजन्
स्पृष्टो नो विहन्येत । तद्यथा—

सू० ३—वे बाईस परीषह ये हैं, जो
कश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा
प्रवेदित हैं, जिन्हें मुनकर, जानकर, अम्यास
के द्वारा परिचितकर, पराजितकर, भिक्षाचर्या
के लिए पर्यटन करता हुआ मुनि उनसे स्पृष्ट
होने पर विचलित नहीं होता । जैसे—

१. भिक्खुपरियाए (कु०); भिक्खायरियाए (हृ०पा०) ।

२. विहन्नेज्जा (हृ०) ।

१. दिगिच्छा-परीसहे, २. पिवासा-
परीसहे, ३. सीय-परीसहे, ४. उसिण-
परीसहे, ५. दंस-मसय-परीसहे,
६. अचेल-परीसहे, ७. अरङ्ग-परीसहे,
८. इत्थी-परीसहे, ९. चरिया-
परीसहे, १०. निसीहिया-परीसहे,
११. सेज्जा-परीसहे, १२. अक्कोस'-
परीसहे, १३. वह-परीसहे,
१४. जायणा-परीसहे, १५. अलाभ-
परीसहे, १६. रोग-परीसहे,
१७. तण्णफास-परीसहे, १८. जङ्ग-
परीसहे, १९. सक्कारपुरस्कार-परीसहे,
२०. पन्ता-परीसहे, २१. अन्नाण-
परीसहे, २२. दंसण-परीसहे ।

१—परीसहाणं पविभत्ती
कासवेणं पवेइया ।
तं मे उदाहरिस्सामि
आणपुब्बि मुणेह मे ॥

(१) दिगिच्छा-परीसहे

२—दिगिच्छा-परिगणं देहे
तवस्सी भिक्खु थामवं ।
न छिन्दे न छिन्दावए
न पए न पयावए ॥

३—काली-पर्वान्न-सङ्कासे
किसे धमणि-संतण ।
मायन्ने असण-पाणस्स
अदीण-मणसो चरे ॥

१. क्षुधा-परीषहः, २. पिपासा-
परीषहः, ३. शीत-परीषहः, ४. उष्ण-
परीषहः, ५. दंस-मसक-परीषहः,
६. अचेल-परीषहः, ७. अरति-परीषहः,
८. स्त्री-परीषहः, ९. चर्या-परीषहः,
१०. निषीषिका-परीषहः, ११. शय्या-
परीषहः, १२. आक्रोश-परीषहः,
१३. वध-परीषहः, १४. याचना-परीषहः,
१५. अलाभ-परीषहः, १६. रोग-परीषहः,
१७. तृण-स्पर्श-परीषहः, १८. 'जङ्ग'-
परीषहः, १९. सत्कार-पुरस्कार-परीषहः,
२०. प्रज्ञा-परीषहः, २१. अज्ञान-परीषहः,
२२. वर्शन-परीषहः ।

परीषहाणां प्रविभक्तिः
काश्यपेन प्रवेदिता ।
तां भवतामुदाहरिष्यामि
आनुपूर्व्यां शृणुत मे ॥

(१) क्षुधा-परीषहः

क्षुधापरिगते देहे
तपस्वी भिक्षुः स्थामवान् ।
न छिन्द्यान् न छेदयेत्
न पचेत् न पाचयेत् ॥

काली-पर्वान्न-सङ्काशः
कुशो धमणि-सन्ततः ।
मात्रज्ञोऽज्ञानपानयोः
अदीनमनाश्चरेत् ॥

१. क्षुधा-परीषहः, २. पिपासा-परीषहः,
३. शीत-परीषहः, ४. उष्ण-परीषहः,
५. दंस-मसक-परीषहः, ६. अचेल-परीषहः,
७. अरति-परीषहः, ८. स्त्री-परीषहः,
९. चर्या-परीषहः, १०. निपद्या-परीषहः,
११. शय्या-परीषहः, १२. आक्रोश-परीषहः,
१३. वध-परीषहः, १४. याचना-परीषहः,
१५. अलाभ-परीषहः, १६. रोग-परीषहः,
१७. तृण-स्पर्श-परीषहः, १८. जङ्ग-परीषहः,
१९. सत्कार-पुरस्कार-परीषहः, २०. प्रज्ञा-परीषहः,
२१. अज्ञान-परीषहः, २२. वर्शन-परीषहः ।

१—परीषहों का जो विभाग कश्यप-
गोत्रीय भगवान् महावीर के द्वारा प्रवेदिन या
प्रकृति है, उसे मैं क्रमवार बहता हूँ । तु
मझे सुन ।

(१) क्षुधा-परीषहः

०—देह में क्षुधा व्याप्त होने पर तपस्वी
और प्राणवान् भिक्षु फल आदि का छेदन न
करे, न कराए । उन्हें न पकाए और न पकाए ।

३—शरीर के अंग भूख से मूलकर काक-
जंघा नामक तृण जैसे दुर्बल हो जायें, शरीर
कृश हो जाय, धमनियों का बाँचा भर रह
जाय तो भी आहार-पानी की मर्यादा को
जानने वाला साधु अदीनभाव से विहरण
करे ।

(२) पिपासा-परीषहे

४—तओ पुटो पिवासाए
दोमुंछो लज्ज-संजए^१ ।
सोओदगं न सेविज्जा
वियडस्सेसणं चरे ॥

५—छिन्नावागमु पन्थेसु
आउरे सुपिवासिए^२ ।
परिसुक्कमुहेज्जीणे^३
'नं तिनिकवे परीसहं'^४ ॥

(३) मीन-परीषहे

६—चरन्तं विरयं लहं
सीयं फसड एगया ।
'नाडवेळं मुणी गच्छे
मांवाणं जिणसासणं'^५ ॥

७—न मे निवारणं अत्थि
छविताणं न विज्जई ।
अहं तु अग्गि सेवामि
इड भिक्खू न चिन्तए ॥

(४) उष्ण-परीषहे

८—उसिण-परियावेणं
परिदाहेण तज्जिए ।
धिमु वा परियावेणं
सायं नो परिदेवेण ॥

(२) पिपासा-परीषहः

ततः स्पृष्टः पिपासया
जगुप्सो लज्जासंयतः ।
शीतोदकं न सेवेन
विकृतस्येषणाय चरेत् ॥

छिन्नापातेषु पथेषु
आतुरः सुपिपासितः ।
परिशुक्कमुखोऽग्निः
तं तितिक्षेत परीषहम् ॥

(३) मीन-परीषहः

चरन्तं विरतं रुधं
शीतं स्पृशति एकदा ।
नातिशैलं मुनिगच्छेत्
श्रुत्वा जिनशासनम् ॥

न मे निवारणमस्ति
छविमाणं न विद्यते ।
अहं तु अग्निं सेवे
इति भिक्षुनं चिन्तयेत् ॥

(४) उष्ण-परीषहः

उष्ण-परितापेन
परिदाहेन तर्जितः ।
ग्रीष्मे वा परितापेन
सातं नो परिदेवेत् ॥

(२) पिपासा-परीषहः

४—असमं मे घृणा करने वाला,
लज्जावान् संयमी साधु व्यास मे पीड़ित होने
पर सचित पानी का सेवन न करे, किन्तु
प्राप्तुक जल की एपणा करे ।

५—निजं मार्गं मैं जाते समय व्यास से
अत्यंत आकुल हो जाने पर, मुंह मुल जाने
पर भी साधु अधीनभाव से व्यास के परीषह
को सहन करे ।

(३) मीन-परीषहः

६—विचरते हुए विरत और रुध शरीर
वाले साधु को शीत-क्षु में सर्दी सताती है ।
किंर भी वह जिन-शासन को मुनकर (आमम
के उपदेश को ध्यान में रखकर) स्वाध्याय
आदि की वेला (अथवा मर्यादा) का अति-
क्रमण न करे ।

७—शीत से प्रताड़ित होने पर मुनि
ऐसा न सोचे—मेरे पास शीत-निवारक घर
आदि नहीं है और छविमाण (वस्त्र, कम्बल
आदि) भी नहीं है, इसलिए मैं अग्नि का
सेवन करूँ ।

(४) उष्ण-परीषहः

८—गरम धूल आदि के परिताप, स्वेद,
मैल या व्यास के दाह अथवा ग्रीष्म-कालीन
सूर्य के परिताप से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी
मुनि मुख के लिए विलाप न करे—आकुल-
व्याकुल न बने ।

१. कङ्कसंजमे (वृ० वृ०); कङ्कासंजए, कङ्कसंजमे (वृ० पा०); लज्जसंजतं (वृ० पा०) ।

२. छपिवासिए (अ); छपिवासए (वृ०) ।

३. ० सुइहीणे (अ, छ०); ० मुहोहीणे (वृ०) ।

४. सखवतो य परिखाए (वृ० पा०) ।

५. नाडवेळं विहन्मिज्जा, पावविट्ठी विहन्मह (वृ०, वृ०); नाडवेळं मुणी गच्छे, सोक्काणं जिणसासणं (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

९—उष्णाहितत्ते मेहावी
सिणाणं 'नो वि पत्यए'^१ ।
गायं नो परिसिचेज्जा^२
न वीएज्जा य अप्पयं ॥

(५) दंश-मशक-परीपहः

१०—पुट्टो य दं-समसएहि
समरेव^३ महामुणी ।
नागो संगाम-सीसे वा
सुरो अभिहणे परं ॥

११—न संतसे न वारेज्जा
मणं पि न पओसए ।
उवेह^४ न हणे पाणे
भुजन्ते मंस-सोणियं ॥

(६) अचेल-परीपहः

१२—परिजुण्णेहि वत्थेहि
होक्खामि ति अचेलए ।
अदुवा सचेलए होक्खं
इइ भिक्खू न चिन्तए ॥

१३—'एगयाऽचेलए होइ'^५
सचेले यावि एगया ।
एयं धम्महिंयं नच्चा
नाणी नो परिदेवए ॥

उष्णाभित्तो मेहावी
स्नानं नापि प्राश्येत् ।
गात्रं नो परिषिञ्चेत्
न वीजयेच्चात्मकम् ॥

(५) दंश-मशक-परीपहः

स्पृष्टश्च दंश-मशकैः
सम एव महामुनिः ।
नागः संग्राम-शीर्षे इव
शूरोऽभिहन्यात् परम् ॥

न संश्रसेत् न वारयेत्
मनोऽपि न प्रदूषयेत् ।
उपेक्षेत न हन्यात् प्राणान्
भुञ्जानान्मांसशोणितम् ॥

(६) अचेल-परीपहः

“परिजोर्णबंधं
भविष्यामीत्यचेलकः ।
अथवा सचेलको भविष्यामि”
इति भिभुन चिन्तयेत् ॥

एकदाऽचेलको भवति
सचेलश्चापि एकदा ।
एतद् धर्म-हितं ज्ञात्वा
ज्ञानी नो परिदेवेत् ॥

६—गर्मी से बभित्त होने पर भी
मेहावी मुनि स्नान की इच्छा न करे । शरीर
को गीला न करे । पंखे से शरीर पर हवा
न ले ।

(५) दंश-मशक-परीपहः

१०—डॉस और मच्छरों का उपद्रव होने
पर भी महामुनि समभाव में रहे, क्रोध आदि
का बंसे ही दमन करे जैसे युद्ध के अप्रभाग में
रहता हुआ मूर हाथी बाणों को नहीं गिनता
हुआ शत्रुओं का हनन करता है ।

११—भिक्खु उन दंश-मशकों से संश्रस्त
न हो, उन्हें हटाए नहीं । मन में भी उनके
प्रति द्वेष न जाए । मांस और रक्त खाने-
पीने पर भी उनकी उपेक्षा करे, किन्तु उनका
हनन न करे ।

(६) अचेल-परीपहः

१२—“वस्त्र फट गए हैं इसलिए मैं अचेल
हो जाऊंगा अथवा वस्त्र मिलने पर फिर मैं
सचेल हो जाऊंगा”—मुनि ऐसा न सोचे ।
(दीन और हर्ष दोनों प्रकार का भाव न जाए ।)

१३—जिनकल्प-दशा में अथवा वस्त्र न
मिलने पर मुनि अचेलक भी होता है और
स्वविरकल्प-दशा में वह सचेलक भी होता
है । अवस्था-भेद के अनुसार इन दोनों (सचेल-
लव और अचेललव) को यदि धर्म के लिए
हितकर जानकर ज्ञानी मुनि वस्त्र न मिलने पर
दीन न बने ।

१. नाभिपत्यए (वृ०, बृ०) ; णोऽपि पत्यए (वृ० पा०) ।

२. परिसिचिज्जा (उ, बृ०) ।

३. सम एव (अ) ।

४. उवेह (उ, वृ०, बृ०) ।

५. एगया अचेलो भवति (वृ०) ; अचेलए सयं होइ (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

(७) अरह-परीषहे

१४—गामाणुगामं रीयन्तं
अणगारं अकिचणं ।
अरई अणुप्पविसे
तं तितिक्खे परीसहं ॥

(७) अरति-परीषहः

ग्रामानुग्रामं रीयमाणं
अणगारमकिञ्चनम् ।
अरतिरनुप्रविशेत्
तं तितिक्षेत परीषहम् ॥

(७) अरति-परीषहः

१४—एक गाँव से दूसरे गाँव में विहार करते हुए अकिचन मुनि के चित्त में अरति उत्पन्न हो जाय तो उस परीषह को वह सहन करे ।

१५—अरइं पिठ्ठओ किच्च
विरए आय-रक्खिए ।
धम्मारामे निरारम्भे
उवसन्ते मुणी चरे ॥

अरितं पृष्ठतः कृत्वा
विरतः आत्मरक्षितः ।
धर्मारामो निरारम्भः
उपशान्तो मुनिश्चरेत् ॥

१५—हिंसा आदि से विरत रहने वाला, आत्मा की रक्षा करने वाला, धर्म में रमण करने वाला, अस्तु-प्रवृत्ति से दूर रहने वाला, उपशान्त मुनि अरति को दूर कर विहरण करे ।

(८) उल्की-परीमहे

१६—संगो एस मणुस्सणं
जाओ लोममि इत्थिओ ।
जस्स एया परिन्नाया
मुकडं तस्स सामणं ॥

(८) मन्त्री-परीषदः

संग एव मनुष्याणां
या लोके स्त्रियः ।
यस्यैताः परिज्ञाताः
सुकृतं तस्य धाम्पयम् ॥

(८) मन्त्री-परीषदः

१६—“लोक में जो स्त्रियाँ हैं, वे मनुष्यों के लिए संग हैं—लेख हैं”—जो इस बात को जान लेता है, उसका धाम्प्य सफल है ।

१७—एवमादाय^१ मेधावी
‘पंकभूया उ इत्थिओ’^२ ।
नो ताहि विणिहन्नेज्जा^३
चरेज्जत्तगवेसए ॥

एवमादाय मेधावी
पंकभूता स्त्रियः ।
नो तार्थविनिहन्त्यात्
चरेदात्मगवेषकः ॥

१७—“स्त्रियाँ बहुवचारी के लिए दल-दल के समान हैं”—यह जानकर मेधावी मुनि उनसे अपने समय-जीवन को घान न होने दे, किन्तु आत्मा की गवेषणा करता हुआ विचरण करे ।

(९) चरिया-परीमहे

१८—एग एव^४ चरे लाठे
अभिभूय परीसहे ।
गामे वा नगरे वावि
निगमे वा रायहाणिए ॥

(९) चर्या-परीषहः

एक एव चरेत् लाठः
अभिभूय परीषहान् ।
ग्रामे वा नगरे वापि
निगमे वा राजधान्याम् ॥

(९) चर्या-परीषहः

१८—संयम के लिए जीवन-निर्वाह करने वाला मुनि परीषहों को जीतकर गाँव में या नगर में, निगम में या राजधानी में अकेला (राग-द्वेष रहित होकर) विचरण करे ।

१. धकरं (बृ० पा०) ।

२. एवमाणाय (बृ०, बृ०) ; एवमादाय (बृ० पा०, बृ०पा०) ।

३. जहा एया लहुस्सगा (बृ० पा०, बृ०पा०) ।

४. विहम्भेज्जा (अ, छ०) ।

क. एगो (बृ० पा०) ; एगे (बृ० पा०) ।

उत्तरज्भयणं (उत्तराध्ययन)

३०

अध्ययन २ : श्लोक १६-२३

१९—असमागो चरे भिक्षु
नेव^१ कुञ्जा परिग्राहं ।
असंसक्तो गृहस्थेहि
अणिणो परिब्बए ॥

(१०) निसीहिवा-परीपह

२०—सुसाणे सुन्तगारे वा
रुक्ख-मूले व एगओ ।
अकुक्कुओ निसोएज्जा
न य वित्ताए परं ॥

२१—तत्थ से चिट्ठमाणस्स^२
उवसग्गाभिघारा^३ ।
संकाभीओ न गच्छेज्जा
उट्ठित्ता^४ अन्तमासणं ॥

(११) मेज्जा-परीपह

२२—उच्चावयाहि सेज्जाहि
तवस्सी भिक्षु थामवं ।
नाइवेठं विहन्नेज्जा
पावदिट्ठी विहन्तई ॥

२३—पइरिक्कुवस्सयं लद्धं
कळाणं अट्ट पावगं ।
‘किमेगरायं करिस्सइ’^५
एवं तत्थ उहियसाए ॥

असमानश्चरेद्भिक्षुः
नेव कुप्यान् परिग्रहम् ।
असंसक्तो गृहस्थैः
अनिकेतः परिज्जेत् ॥

(१०) निषीधिका-परीपह.

असमाने शून्यागारे वा
वृक्ष-मूले वा एककः ।
अकुक्कुवः निषीवेत्
न च विव्रासयेत् परम् ॥

तत्र तस्य तिष्ठतः
उपसर्गा अभिघारयेयुः ।
शंकाभीतो न गच्छेत्
उत्थापान्पदासनम् ॥

(११) शय्या-परीपह

उच्चावचाभिः शय्याभिः
तपस्वी भिक्षुः स्थामवान् ।
नातिथेन विहन्त्यात्
पापट्टिर्विहन्ति ॥

प्रतिरिक्तमुपाश्रयं लब्ध्वा
कल्याणं अथवा पापकम् ।
किमेकरात्रं करिष्यति
एवं तत्राध्यासीत ॥

१६—मुनि असह्य (असाधारण) होकर
बिहार करे । परिग्रह (ममत्वभाव) न करे ।
गृहस्थों में निवसित रहे । अनिकेत (गृह-मुक्त)
रहता हुआ परिग्रह करे ।

(१०) निपद्या परीपह

२०—राग-द्वेष रहित मुनि चपलताओं
का वर्जन करता हुआ श्मशान, शय्य गृह अथवा
वृक्ष के मूल में बैठे । दूसरों को प्रास न दे ।

२१—वहाँ बैठे हुए उसे उपसर्ग प्राप्त हों
तो वह यह चिन्तन करे—‘‘य मेरा क्या अनिष्ट
करेंगे ?’’ किन्तु अपकार की शंका से डरकर
वहाँ से उठ दूसरे स्थान पर न जाए ।

(११) शय्या-परीपह

२२—तपस्वी और प्राणवान् भिक्षु उत्कृष्ट
या निम्न उपश्रय को पाकर मर्यादा का अति-
क्रमण न करे (हर्ष या शोक न लागे) । जो
पापट्टि होता है, वह मर्यादा का अतिक्रमण
कर डालता है ।

२३ अनिरिक्त (एकात्म) उपाश्रय—मले
फिर वह सुन्दर हो या अमुन्दर—को
पाकर ‘‘एक रात में क्या होता जाना है’’—
ऐसा सोचकर रहे, जो भी सुख-दुःख हो उसे
सहन करे ।

१. नेव (अ) ।

२. अल्लमाणस्स (बु० पा०, वृ०) ।

३. उवसग्गाभयं भवे (बु० पा०, वृ० पा०) ।

४. उवट्ठित्ता (उ) ।

५. किं मज्ज एग रायाए (वृ०) ।

परीयह-प्रविभक्ति

३१

अध्ययन २ : श्लोक २४-२६

(१७) अक्रोश-परीयहः

२४—अक्रोशेज्ज परो भिक्खुं
न तेसि पडिसंजले ।
सरिसो होइ बालाणं
तम्हा भिक्खू न संजले ॥

२५—सोच्चाणं फरुसा भासा
दारुणा गाम-कण्टका ।
तुसिणीओ उवेहेज्जा
न ताओ मणसीकरे ॥

(१३) बध-परीयहः

२६—हुओ न संजले भिक्खू
मणं पि न पओसेए ।
तित्तिक्खं परमं नच्चा
भिक्खु-‘धम्मं विचित्तिए’ ॥

२७—समणं संजयं दन्तं
हणेज्जा कोइ कत्थई ।
नत्थि जीवस्स नामु त्ति
‘एवं पेहेज्ज संजए’ ॥

(१४) याचना-परीयहः

२८—दुक्करं खलु भो निच्चं
अणगारस्स भिक्खुणो ।
सर्वं से जाइयं होइ
नत्थि किंचि अजाइयं ॥

२९—गोयरग्गपविट्ठस्स
पाणी नो सुप्पसारए ।
सेओ अगार-वासु त्ति
इइ भिक्खू न चित्ताए ॥

(१२) आक्रोश-परीयहः

आक्रोशोत् परो भिक्षुं
न तस्मै प्रतिसंज्वलेत् ।
सदृशो भवति बालानां
तस्माद् भिक्षुर्न संज्वलेत् ॥

श्रुत्वा परुषाः भाषाः

दारुणाः ग्राम-कण्टकाः ।

तृणैक उपेक्षेत

न ताः मनसि कर्षयति ॥

(१३) बध-परीयहः

हतो न संज्वलेद् भिक्षुः
मनोऽपि न प्रवृष्येत ।
तितिक्षां परमं ज्ञात्वा
भिक्षु-धर्मं विचिन्तयेत् ॥

श्रमणं संयतं दान्तं

हन्यान् कोऽपि कुत्रचित् ।

“नास्ति जीवस्य नाश इति”

एवं प्रेक्षेत संयतः ॥

(१४) याचना-परीयहः

दुष्करं खलु भो ! नित्यम्
अनगारस्य भिक्षोः ।
सर्वं तस्य याचितं भवति
नास्ति किंचिदयाचितम् ॥

गोचराग्रप्रविष्टस्य

पाणिः नो सुप्रसारकः ।

“श्रयानगारवास इति”

इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥

(१२) आक्रोश-परीयहः

२४—कोई मनुष्य भिक्षु को गाली दे तो
बहु उसके प्रति क्रोध न करे । क्रोध करने वाला
भिक्षु बालकों (अज्ञानियों) के सदृश हो जाता
है, इसलिए भिक्षु क्रोध न करे ।

२५—मृनि परप, दारुण और ग्राम-कंटक

(प्रतिमूल) भाषा को सुनकर मोन रहता हुआ

उसकी उपेक्षा करे, उसे मन में न लाए ।

(१३) बध-परीयहः

२६—पीटे जानेपर भी मुनि क्रोध न
करे । मन को भी दूषित न करे । क्षमा को
परम साधन जानकर मुनि-धर्म का चिन्तन
करे ।

२७—संयत और दान्त श्रमण को कोई

कहीं पीटे तो बहु “आत्मा का नाश नहीं

होता”—ऐसा चिन्तन करे, पर प्रनिशोध की

भावना न लाए ।

(१४) याचना-परीयहः

२८—बरे ! अनगार भिक्षु की यह वर्या
किन्ती कठिन है कि उसे सब कुछ याचना से
मिलता है । उसके पास अयाचित कुछ भी
नहीं होता ।

२९—गोचराग्र में प्रविष्ट मुनि के लिए

ग्रहस्थों के सामने हाथ फारना सरल नहीं

है । अतः “श्रयवास ही श्रेय है”—मुनि ऐसा

चिन्तन न करे ।

१. धम्मंमि चित्ताए (बु०); धम्मं व चित्ताए (बु० पा०) ।

२. न तं पेहे असाधुत्वं (बु०); न ता पेहे असाधुत्वं (बु०); एवं पीहेज्ज संजए (बु० पा०); न व पेहे असाधुत्वं, पठन्ति च—एवं पेहिज्ज संजतो (बु० पा०) ।

(१५) अलाभ-परीषदः

३०—परमु बासमेसेज्जा
भोयणे परिणिट्ठिए ।
लद्धे पिण्डे अलद्धे वा
नाणुतप्पेज्ज संजए^१ ॥

३१—अज्जेवाहं न लब्भामि
अवि लाभो सुए सिया ।
जो एवं पडिसंविक्खे^२
अलाभो तं न तज्जए ॥

(१६) रोग-परीषदः

३२—नच्चा उप्पइयं दुक्खं
वेयणाए दुहट्ठिए ।
अदीणो थावए पन्नं
पुट्ठो तत्थहियासए ॥

३३—तेगिच्छं नाभिनन्देज्जा
संचिक्खत्तगवेसए ।
एवं^३ खु तस्स सामणं
जं न कुज्जा न कारवे ॥

(१७) तण फास-परीषदः

३४—अचेलगस्स लूहस्स
संजयस्स तवस्सिणो ।
तणेमु सयमाणस्स
हुज्जा गाय-विराहुणा ॥

(१५) अलाभ-परीषदः

परमुपासमेवयेत्
भोजने परिमिच्छित्ते ।
लब्धे पिण्डे अलब्धे वा
नाणुतप्पेत् संयतः ॥

अद्यं वाहं न लभे
अपि लाभः इवः स्यात् ।
य एवं प्रतिसंबोक्षते
अलाभस्तं न तर्जयति ॥

(१६) रोग-परीषदः

जातबोत्पत्तिकं दुःखं
वेदनया दुःखास्ति ।
अदीनः स्यापयेत् प्रज्ञां
स्पृष्टस्तत्राध्यासीत ॥

चिकित्सां नाभिनन्देत्
सतिष्ठेदात्ममवेष्टकः ।
एतन् खलु तस्य श्रामण्यं
यन्तं कुर्यात् न कारयेत् ॥

(१७) तृण-स्पर्श-परीषदः

अचेलकस्य रुक्षस्य
संयतस्य तपस्विनः ।
तृणेषु शयान्तरम्
अनेन याव-क्षिप्तमना ॥

(१५) अलाभ-परीषदः

३०—एहस्यो के धर भोजन तैयार हो
जानेपर मुनि उसकी एषणा करे । आहार
थोड़ा मिलने या न मिलने पर संयंसी मुनि
अन्ताप न करे ।

३१—“आज मुझे भिक्षा नहीं मिली,
परन्तु संभव है कल मिल जाय” —जो इस
प्रकार सोचना है, उसे अलाभ नहीं सनाता ।

(१६) रोग-परीषदः

३२—रोग को उत्पन्न हुआ जानकर तथा
वेदना से पीड़ित होने पर दीन न बने । व्याधि
से विचलित होती हुई प्रजा को स्थिर बनाए
और प्राप्त दुःख को समभाव से सहन करे ।

३३—आत्म-मवेष्टक मुनि चिकित्सा का
अनुमोदन न करे । रोग ही जानेपर समाधि
पूर्वक रहे । उसका श्रामण्य यही है कि वह
रोग उत्पन्न होने पर भी चिकित्सा न करे, न
कराए ।

(१७) तृण-स्पर्श-परीषदः

३४—अचेल और रुधिर शरीर वाले
संयत तपस्वी के पास पर सोने से शरीर में
चुभन होती है ।

१. पंडिए (भ.) ।

२. पडिसंविक्खे (छ.) ।

३. एवं (भ. अ. अ. ४०, ४०) ; एवं (४० पा०) ।

३५—आयवस्स निवाणं
अउला^१ हवइ वेयणा ।
एवं^२ नच्चा न सेवन्ति
तत्तुजं^३ तण-तज्जिता ॥

(१८) जल्ल-परीषद्दे

३६—किल्लिन्नागए^{*} मेहावी
पंकेण व रएण वा ।
धिमु वा परितावेण
सायं नो परिदेवए ॥

३७—वेएज्ज^{*} निज्जरा-पेही
'आरियं धम्मणुत्तर'^४ ।
जाव गरीरभेउ त्ति
जल्लं काएण धागए^{*} ॥

(१९) नत्तार-पुरस्कार-परीषद्दे

३८—अभिवायणमट्ठमुआणं
सामी कुज्जा निमल्लणं ।
जे ताहं पडिसेवन्ति
न तेसि पीहए मुणी ॥

३९—अणुक्साई अण्णच्छे
'अन्नाएसी अलोनुए ।
'रसेमु^५ नाणुगिज्जेज्जा'^६
'नाणुतपेज्ज पन्नव'^७ ॥

आतपस्य निपातेन
अतुला भवति वेवना ।
एवं ज्ञात्वा न सेवन्ते
तत्तुजं तुणतजिताः ॥

(१८) जल्ल-परीषद्दे

किल्लिन्नागो मेहावी
पंकेन वा रजसा वा ।
शीघ्रे वा परितापेन
सातं नो परिदेवेत् ॥

वेदयेन् निर्जरापेक्षो
आर्यं धर्ममनुत्तरम् ।
यावत् शरीर-भेद इति
'अल्लं' कायेन धारयेत् ॥

(१९) नत्तार-पुरस्कार-परीषद्दे

अभिवादनमभ्युत्थान
स्वामी कुर्यान् निमन्त्रणम् ।
ये तानि प्रतिसेवन्ते
न तेभ्यः स्पृहयेन्मुनिः ॥

अणु-कषायः अल्पेच्छः
अज्ञातैषी अलोल्पः ।
रसेषु नानुगृध्येत्
नानुत्प्येत प्रज्ञावान् ॥

३५ गर्भी पत्रे मे अतुल वेवना होती
है—यह जानकर भी तुण से पीड़ित मुनि वस्त्र
का सेवन नहीं करते ।

(१८) जल्ल-परीषद्दे

३६—मैल, रज वा शीघ्र के परिताप से
शरीर के किल्ल (मीला या पकिल) हो जाने
पर मेहावी मुनि मुख के लिए बिलाप न करे ।

३७—निर्जराभी मुनि अनुत्तर आर्य-धर्म
(श्रुत-चारित्र्य-धर्म) को पाकर देह-विनाश
पयेन काया पर 'जल्ल' (स्वेद-जलिन मैल) को
धारण कर और तज्जनिन परीषद् को सहन
करे ।

(१९) नत्तार-पुरस्कार-परीषद्दे

३८—जो राजा आदि के द्वारा किए गए
अभिवादन, सरकार अधवा निमन्त्रण का सेवन
करते हैं, उनकी इच्छा न करें—उन्हें धन्य न
माने ।

३९—अल्प कषाय वाला, अल्प इच्छा
वाला, अज्ञान कुलों से निष्ठा रहने वाला,
अलोल्प भिक्षु, रसों में मग्न न हो । प्रज्ञावान्
मुनि दूसरों को सम्मानित देन अनुत्पाप न करे ।

१. तिउला (चू०, वृ०) ; अतुला, विपुला वा (वृ०पा०) ।

२. एयं (अ, उ, ऋ०, वृ०) ; एवं (वृ०पा०) ।

३. तन्तयं (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

४. किल्लिन्नागए (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

५. वेयज्ज (अ) ; वेहंतो, वेहज्ज, वेयंतो (वृ०पा०) ।

६. आचारियं धम्ममणुत्तरं (स०), आरियं धम्ममणुत्तरं (अ) ।

७. उव्वटे (वृ०, वृ०पा०) ; धारए (वृ०पा०) ।

८. सरसेसु (वृ०) ।

९. रसिण्णु नातिगिज्जेज्ज (वृ०) ; रसेसु नाणु० (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

१०. न तेसि पीहए मुणी (वृ०, वृ०) ; नाणुत्पेज्ज पण्णव (वृ०पा०, वृ०पा०) ।

उत्तरज्भयणं (उत्तराध्ययन)

३४

अध्ययन २ : श्लोक ४०-४४

(२०) पन्ना-परीसहे

४०—से नूणं मए पुव्वं
कम्माणाणफला कडा ।
जेणाहं नाभिजाणामि
पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥

(२०) प्रज्ञा-परीसहः

“अथ नूनं मया पूर्व
कर्माण्यज्ञानफलानि कृतानि ।
येनाहं नाभिजानामि
पुष्टः केनचित् क्वचित् ॥

(२०) प्रज्ञा-परीसह

४०—“निश्चय ही मैंने पूर्व काल में
अज्ञानरूप-फल देनेवाले कर्म किए हैं । उन्हीं
के कारण मैं किसी के कुछ पूछे जानेपर भी
कुछ नहीं जानता—उत्तर देना नहीं जानता ।

४१—अह पच्छा उइज्जन्ति
कम्माणाणफला कडा ।
एवमस्सासि अप्पाणं
नच्चा कम्म-विवागयं ॥

“अथपश्चादुदीर्यन्ते
कर्माण्यज्ञानफलानि कृतानि ।
एवमाश्वासयाःस्मानं
शास्त्वा कर्म-विपाककम् ॥

४१—“पहले किए हुए अज्ञानरूप-फल
देनेवाले कर्म पकने के पश्चात् उदय में आते
हैं”—इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर
मैं आत्मा को आश्वासन दे ।

(२१) अन्नाण-परीसहे

४२—निरुड्गम्मि विरओ
मेहुणाओ सुसंवुडो ।
जो सक्कं' नाभिजाणामि
धम्मं कळाण पावगं ॥

(२१) अज्ञान-परीसहः

“निरर्थके विरतः
संश्रुतात्सुखं तु ।
यः साक्षान्नाभिजानामि
धर्मं कल्याणं पापकम् ॥

(२१) अज्ञान-परीसह

४२—“मैं संश्रुत में निवृत्त हुआ,
दृष्टिय और मन का मैंने संवरण किया—यह
मन निरर्थक है । क्योंकि धर्म कल्याणकारी है
या पापकारी—यह मैं माथात् नहीं जानता ।

४३—तवोवहानमादाय

पडिमं पडिवज्जओ' ।
एवं पि विहरओ मे
छउमं न नियट्ठई ॥

“तप-उपधानमादाय
प्रतिमां प्रतिपद्यमानस्य ।
एवमपि विहरतो मे
छद्मम न निवर्तते ॥”

४३—“तपस्या और उपधान को स्वीकार
करता हूँ, प्रतिमा का पालन करता हूँ—इस
प्रकार विनोद चर्या में बिहरण करनेपर भी मेरा
छद्म (ज्ञानावरणादि कर्म) निवर्तित नहीं हो
रहा है”—ऐसा चिन्तन न करे ।

(२२) दंमण-परीसहे

४४—नत्थि नूणं परे लोए
इड्ढी वावि तवस्सिणो ।
अदुवा वंचिओ मि ति
इइ भिक्खू न चिन्ताए ॥

(२२) दर्शन-परीसहः

“नास्ति नूनं परोलोकः
ऋद्धं वापि तपस्विनः ।
अथवा बहिचतोऽस्मि”
इति मिश्रुनं चिन्तयेत् ॥

(२२) दर्शन-परीसह

४४—“निश्चय ही परलोक नहीं है,
तपस्वी की ऋद्धि भी नहीं है, अथवा मैं ठाण
गया हूँ”—मिथुन ऐसा चिन्तन न करे ।

१. समकथं (वृ०) ।

२. पडिवज्जिम (वृ०) ; पडिवज्जओ (वृ० पा०) ।

परीषद्-प्रविभक्ति

३५

अध्ययन २ : श्लोक ४५-४६

४५—अभू जिणा अत्थि जिणा
अदुवावि भविस्सई ।
मुसं ते एवमाहंसु
इइ भिक्खू न चिन्तए ॥

“अभूषन् जिनाः सन्ति जिनाः
अथवा अपि भविष्यन्ति ।
शृषा ते एवमाहुः”
इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥

४५—“जिन हुए थे, जिन हैं और जिन
होंगे—ऐसा जो कहते हैं वे झूठ बोलते हैं”—
भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे ।

४६—एए परीसहा सव्वे
कासवेण पवेइया ।
जे भिक्खू न विहन्नेज्जा
पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥
—त्ति वेमि ।

एते परीषहाः सर्वे
काश्यपेन प्रवेदिताः ।
यान् भिक्षुर्न विहन्येत
स्पृष्टः केनापि क्वचिद् ॥
—इति श्रवीमि

४६—इन सभी परीषहों का कश्यप-
गोत्रीय भगवान् महावीर ने प्रवर्णन किया है ।
इन्हें जानकर, इनमें से किसी के द्वारा कहीं
भी स्पृष्ट होने पर मुनि इनसे पराजित (अभि-
भूत) न हो ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।



१०—अज्ञान—मिथ्या धारणा ।

११—व्यापेय—कार्य-बहुलता से उत्पन्न व्याकुलता ।

१२—कुतूहल—इन्द्रजाल, खेल, नाटक आदि देखने की आकुलता ।

१३—रमण—क्रीड़ा-परायणता ।

(३) श्रद्धा—

भगवान् ने कहा—“सद्भा परम-दुःखम्” —श्रद्धा परम-दुर्लभ है । जीवन-विकास का यह मूल सूत्र है । जिसका दृष्टिकोण मिथ्या होता है वह सद्भाव को सुनकर भी उसमें श्रद्धा नहीं करता और श्रुत या अश्रुत असद्भाव में उसकी श्रद्धा हो जाती है । श्रद्धा मिथ्या-दृष्टि के लिए दुर्लभ है । जिसका दृष्टिकोण सम्यग् होता है वह सद्भाव को सुनकर उसमें श्रद्धा करता है किन्तु अपने अज्ञानवश या गुण के वियोग से असद्भाव के प्रति भी उसकी श्रद्धा हो जाती है । इस प्रकार सम्यग्-दृष्टि के लिए भी श्रद्धा दुर्लभ है ।

शिष्य ने पूछा—“भते ! क्या सम्यग्-दृष्टि इतनी ऋजु प्रकृति के होते हैं जो गुण के कथन मात्र से असद्भाव के प्रति श्रद्धा कर लेते हैं ?”

आचार्य ने कहा—“आयुष्मन् ! ऐसा होता है । जमालि ने जब असद्भाव की प्रवृत्तियों को और अपने शिष्यों को उससे परिचित किया तो कुछ शिष्य उसमें श्रद्धान्वित हो गए ।”^१

इसलिए यह बहुत मार्मिक ढंग से कहा है कि—“श्रद्धा परम दुर्लभ है ।”

(४) तप-संयम में पुरुषार्थ—

निर्युक्तिकार ने संयम के आठ पर्यायवाची नाम बताए हैं^२—(१) दया, (२) संयम, (३) लज्जा, (४) जुगुप्सा, (५) अक्षरता, (६) तितिक्षा, (७) अहिंसा और (८) क्षोभ ।

संयम के प्रति श्रद्धा होने पर भी सभी व्यक्ति उसमें पराक्रम नहीं कर पाते । जानना व श्रद्धा रखना एक वस्तु है और उसकी क्रियान्वित करना दूसरी । इसमें संकल्प-बल, धृति, संतोष और अनुद्विग्नता की अत्यन्त आवश्यकता होती है । जिनका विश्वास या व्यासृति नहीं है, वे ही व्यक्ति संयम में प्रवृत्त हो सकते हैं ।

निर्युक्तिकार ने दुर्लभ अंगों का कुछ विस्तार किया है । उसके अनुसार मनुष्यता, आर्य क्षेत्र, उत्तम जाति, उत्तम कुल, सर्वोपरिपुणता, नीरोगता, पूर्णायुष्य, परलोक-प्रवण बुद्धि, धर्म-अव्रण, धर्म-स्वीकरण, श्रद्धा और संयम—ये सब दुर्लभ हैं ।^३ मनुष्य-भय की दुर्लभता के दस दृष्टांत निर्युक्ति में उल्लिखित हैं ।^४

१—बृहद्ब्रति, पत्र १५१ : ननु किमेवविधा अपि केचिद्व्यस्तद्वज्रवः सम्भवेयुः? ये स्वयमागमानुसारिमत्तोऽपि मुख्यदेशोऽन्वेषापि प्रतिषेधेन, पृथमेतत्, तथाहि—जमालिप्रभृतीनां निह्वानां शिष्यास्तद्वक्तियुक्तया स्वयमागमानुसारिमत्तोऽपि मुख्यव्याप्तिद्विरीतमर्थं प्रतिपन्नाः ।

२—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा १५८ : दया संजमे लज्जा, जुगुप्साऽल्लग्न इव ।
तितिक्षा च अहिंसा च, हिरिः पराद्विषा च ॥

३—वही, गाथा १५६ : माणुसं क्षिप्तं जाई, कुल रूबारोग आउथं बुद्धी ।

सवणुगाइ लब्धा, संजमो अ कोर्गसि दुल्हाइ ॥

४—वही, गाथा १६० : ब्रह्मण पासग धन्ने, ज्ञ ए रणेण अ क्षमिण चक्के व ।

चम्म जगे परमाण, वस दिट्ठा मणुअल्लभे ॥

तद्वर्ग अङ्गवर्णः
चाउरंगिज्जं

तृतीय अध्ययनः
चतुरङ्गीय.

अज्ञा की दुर्लभता बताने के लिए सात निहवों की कथाएँ दी गई हैं ।^१

भगवान् ने कहा—“सौंही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुज्जस्स चिद्धई” —सरल व्यापक की शोधि होती है और धर्म सुद्ध आत्मा में ठहरता है । जहाँ सरलता है वहाँ सुद्धि है और जहाँ सुद्धि है वहाँ धर्म का निवास है । धर्म का फल आत्म-सुद्धि है । परन्तु धर्म की आराधना करने वाले के पुण्य का भी बन्ध होता है । देवयोनि से ज्युत हो जब पुनः मनुष्य बनता है तब वह दशांगवाली मनुष्ययोनि में आता है । श्लोक १७ और १८ में ये दस अंग निम्नोक्त कहे गये हैं—

१—कामस्कन्ध ।

६—नोरोगता की प्राप्ति ।

२—मित्रों की सुलभता ।

७—महाप्राज्ञता ।

३—बन्धुजनों का सुसंयोग ।

८—विनीतता ।

४—उच्चगोत्र की प्राप्ति ।

९—यशस्विता ।

५—रूप की प्राप्ति ।

१०—बलवत्ता ।

इस अध्ययन के श्लोक १४ और १६ में आया हुआ ‘जक्ख’ (सं० यक्ष) शब्द भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ध्यान देने योग्य है । इसके अर्थ का अन्वय हुआ है । आगम-काल में ‘यक्ष’ शब्द ‘देव’ अर्थ में प्रचलित था । कालानुक्रम से इसके अर्थ का ह्रास हुआ और यह आज भूत, पिशाच का-सा अर्थ देने लगा है ।

१—उत्तराध्ययन नियुक्ति, गाथा १६४-१६६ : बहुरयएसअव्वत्तसमुच्छ, दुगतिअवव्विमा केव ।

एएसि निरयमणं, बुच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥

बहुरय जमाल्लिपभवा, जीवएसा य तीसगुत्ताओ ।

अव्वत्ताऽऽसाडाओ, सामुच्छेयाऽऽसमित्ताओ ॥

गंगाए दोकिरिया, छल्लुगा तेरासिआण उप्पसी ।

थेरा य गुट्टमाहिल, पुट्टमबद्धं परूवित्ति ॥

आन्तुख

अनुयोगद्वारा आगम में नामकरण के दस हेतु बतलाए गए हैं। उनमें एक हेतु 'आदान-पद' है। इस अध्ययन का नाम उसी आदान-पद (प्रथम पद) के कारण 'चतुरङ्गोय' हुआ है।^१ इस अध्ययन में (१) मनुष्यता, (२) धर्म-श्रुति, (३) अज्ञा और (४) तप-संयम में पुरुषार्थ—इन चार अंगों की दुर्लभता का प्रतिपादन है। जीवन के ये चार प्रशस्त अंग—विभाग हैं। ये अंग प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा सहज प्राप्य नहीं हैं। चारों का एकत्र समाहार विरलों में पाया जाता है। जिनमें ये चारों नहीं पाए जाते वे धर्म की पूर्ण आराधना नहीं कर सकते। एक की भी कमी उनके जीवन में लंगड़ापन ला देती है। चारों अंगों की दुर्लभता निम्न विवेचन से प्रकट होगी।

(१) मनुष्यता—

आत्मा से परमात्मा बनने का एकमात्र अवसर मनुष्य-जन्म में प्राप्त होता है। तिर्यक्य जगत् में ऋषिन्त् पूर्व संस्कारों से प्रेरित धर्मापराधना होती है, परन्तु वह अधूरी रहती है। देवता धर्म की पूरी आराधना नहीं कर पाते। वे विनाश में ही अधिक समय गँवाते हैं। भ्रामण्य के लिए वे योग्य नहीं होते। नैरेयिक जीव दुःखों से प्रताड़ित होते हैं अतः उनका धार्मिक-विवेक प्रबुद्ध नहीं होता। मनुष्य का विवेक जागृत होता है। वह अति सुखी और अति दुःखी भी नहीं होता अतः वह धर्म की पूर्ण आराधना का उपयुक्त अधिकारी है।

(२) धर्म-श्रवण—

धर्म-श्रवण की रुचि प्रत्येक में नहीं होती। जिनका अन्तःकरण धार्मिक भावना से भावित होता है, वे मनुष्य धर्म-श्रवण में तत्पर रहते हैं। बहुल लोग दुर्लभतम मनुष्यत्व को पाकर भी धर्म सुनने का लाभ नहीं ले पाते। निर्युक्तिकार ने धर्म-श्रुति के १३ विघ्न बतलाए हैं^२—

१—आलस्य—अनुद्यम।

२—मोह—धरेलू धन्यों की व्यस्तता से उत्पन्न मूर्च्छा अथवा हेयोपादेय के विवेक का अभाव।

३—अवज्ञा या अवर्ण—धर्म-कथक के प्रति अवज्ञा या गर्हा का भाव।

४—स्तम्भ—जाति आदि का अहंकार।

५—क्रोध—धर्म-कथक के प्रति अप्रीति।

६—प्रमाद—निद्रा, विकथा आदि।

७—कृपणता—द्रव्य-व्यय का भय।

८—भय।

९—शोक—इष्ट-वियोग से उत्पन्न दुःख।

१—अनुयोगद्वारा, सूत्र १२० : से किं तं आयाणपपणं ? ..चाररगिज्जं, असंखयं, अहातस्सिपं, अहवर्जं, अज्जहवर्जं...एकहवर्जं...से तं आयाणपपणं।

२—उत्तराध्यायन नियुक्ति, पाया १६० : आकस्स मोहउव्वन्ना, यंमा कोहो वमोय किण्णिता।

अथ सोमा अन्नाणा, वक्खेव कुब्बंका रमणा॥

तद्वयं अज्ज्ञमयणं : तृतीय अध्यायन

चाउरंगिज्जं : चतुरङ्गीयम्

मूल

१—चत्तारि परमंगाणि
दुल्लाणीह जन्तुणो^१ ।
माणुसत्तं सुई सद्धा
संजममि य वीरियं ॥

संस्कृत छाया

कत्वारि परमाङ्गानि
दुर्लभाणीह जन्तोः ।
मानुषत्वं श्रुतिः श्रद्धा
संयमे च वीर्यम् ॥

हिन्दी अनुवाद

१—हस्त संसार में प्राणियों के लिए चार
परम-अंग दुर्लभ हैं—मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा
और संयम में पराक्रम ।

२—समावन्नाण संसारे
नाणा-गोत्तासु जाडसु ।
कम्मा नाणा-विहा कट्टु
पुढो^२ विस्संभिया पया ॥

समापन्नाः संसारे
नानागोत्रासु जातिषु ।
कर्माणि नानाविधानि कृत्वा
पृथग् विद्वद्भूतः प्रजाः ॥

२—समारी जीव विविध प्रकार के कर्मों
का अर्जन कर विविध नाम वाली जातियों में
उत्पन्न हो, पृथक्-पृथक् रूप से समूचे विषय का
स्पर्श कर लेते हैं—सब जगह उत्पन्न हो
जाते हैं ।

३—एगया देवलोएसु
नरएसु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं
आहाकम्मेहि गच्छई ॥

एकदा देवलोकेशु
नरकेष्वप्येकदा ।
एकदा आसुरं कायं
यथाकर्मभिर्गच्छति ॥

३—जीव अपने कृत कर्मों के अनुसार
कभी देवलोक में, कभी नरक में और कभी
असुरों के निकाय में उत्पन्न होता है ।

४—एगया खत्तिओ होइ
तओ चण्डाल-बोक्खो ।
तओ कीड-पयंगो य
तओ कुन्धु-पिवीलिया ॥

एकदा क्षत्रियो भवति
ततश्चण्डालो 'बोक्खः' ।
ततः कीटः पतद्भक्ष
ततः कुन्धुः पिपीलिका ॥

४—वही जीव कभी क्षत्रिय होता है,
कभी चाण्डाल, कभी बोकस, कभी कीट,
कभी पतंगा, कभी कुन्धु और कभी चींटी ।

१. देहिणो (दू० पा०, वू० पा०) ।

२. पुणो (दू० पा०) ।

५—एवमावट्ट-ओणीसु

पाणिणो कम्म-किञ्चिंसा ।

न निविज्जन्ति संसारे

‘सव्वट्टेसु व’^१ खत्तिया ॥

६—कम्म-संगेहि

सम्मूढा

दुक्खिया

बहु-वेयणा ।

अमाणुसासु

ओणीसु

विणिहम्मन्ति

पाणिणो ॥

७—कम्माणं

तु

पहाणाए

आणुप्पवी

कयाइ उ ।

जीवा

सोहिमणुप्पत्ता

‘आययन्ति

मणुस्सय’^२ ॥

८—माणुस्सं

विग्गहं लद्धं

मुई

धम्मस्स दुल्लहा ।

जं

सोच्चा पडिवज्जन्ति

तवं

खन्तिमहिंसयं ॥

९—आहव

सवणं

लद्धं

सद्धा

परमदुल्लहा ।

सोच्चा

नेआउयं मगं

बह्वे

परिभस्सई ॥

एवमावर्त-योनिषु

प्राणिनः कर्म-किल्बिषाः ।

न निर्विद्यन्ते संसारे

सर्वाश्च ऽपि क्षत्रियाः ॥

कर्म-सङ्गः सम्मूढाः

दुःखिता बहु-वेदनाः ।

अमानुषीषु योनिषु

विनिहन्यन्ते प्राणिनः ॥

कर्मणं तु प्रहाण्या

आनुपूर्व्या कदाचित् तु ।

जीवाः शोचिमनुप्राप्ताः

आबदते मनुष्यताम् ॥

मानुष्यकं विग्रहं लब्ध्वा

श्रुतिर्धर्मस्य दुर्लभा ।

यं श्रुत्वा प्रतिपद्यन्ते

तपःशान्तिमहिंसताम् ॥

‘आहृत्य’ श्रवणं लब्ध्वा

श्रद्धा परम-दुर्लभा ।

श्रुत्वा नैयतुकं मार्गं

बहवः परिभ्रश्यन्ति ॥

५—जिस प्रकार क्षत्रिय लोग समस्त

अर्थों (काम-भोगों) को भोगते हुए भी निर्बन्ध को प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार कर्म-किल्बिष (कर्म से अधम बने हुए) जीव योनि-चक्र में भ्रमण करते हुए भी संसार में निर्बन्ध नहीं पाते—उससे मुक्त होने की इच्छा नहीं करते ।

६—जो जीव कर्मों के संग से सम्मूढ़, दुःखित और अत्यन्त वेदना वाले हैं, वे अपने कृत कर्मों के द्वारा मनुष्येतर (नरक-तिर्यञ्च) योनियों में डुकेले जाते हैं ।

७—काल-क्रम के अनुसार कदाचित् मनुष्य-जाति को रोकने वाले कर्मों का नाश हो जाता है । उससे श्रद्धा प्राप्त होती है । उससे जीव मनुष्यत्व को प्राप्त होते हैं ।

८—मनुष्य-शरीर प्राप्त होने पर भी उस धर्म की श्रुति दुर्लभ है जिसे मुनकर जीव तप, धर्मा और अहिंसा को स्वीकार करते हैं ।

९—कदाचित् धर्म मुन लेने पर भी उसमें श्रद्धा होना परम दुर्लभ है । बहुत लोग मोक्ष की ओर ले जाने वाले मार्ग को मुनकर भी उससे श्रद्धा हो जाते हैं ।

१. य (अ); वि (क०) ।

२. सव्वट्ट इव (बु० पा०, वू० पा०) ।

३. जायन्ते मणुसतथं (बू० पा०) ।

१०—सुई च लद्धं सद्धं च
वीरियं पुण दुल्लं ।
बहवे रोयमाणा वि
'नो एणं' पडिवज्जए ॥

श्रुति व लब्ध्वा धद्धां च
वीर्यं पुनर्दल्लम् ।
बहुवो रोचमाना अपि
नो एतं प्रतिपद्यन्ते ॥

१०—श्रुति और धद्धा प्राप्त होने पर भी
संयम में वीर्य (पुरुषार्थ) होना अत्यन्त दुर्लभ
है। बहुत लोग संयम में रचि रखते हुए भी
उसे स्वीकार नहीं करते।

११—माणुसत्तंमि आयाओ
जो धम्मं सोच्च सद्धे ।
तवस्सी वीरियं लद्धं
संबुडे निद्धणे रयं ॥

मानुषत्वे आयातः
यो धर्मं श्रुत्वा धद्धते ।
तपस्वी वीर्यं लब्ध्वा
संवृतो निर्धुनोति रजः ॥

११—मानुष्यत्व को प्राप्त कर जो धर्म
को सुनता है, उसमें धद्धा करता है, वह
तपस्वी संयम में पुरुषार्थ कर, संवृत हो, कर्म-
रजों को धुन डालता है।

१२—“सोही उज्जुयभूयस्स
धम्मो मुद्धस्स चिद्धई ।
निव्वाणं परमं जाइ
'धय-सित्तं व्व' पावए ॥”^१

शोषिः ऋजुभूतस्य
धर्मः शुद्धस्य तिष्ठति ।
निर्वाणं परमं याति
धृत-सित्तः इव पावकः ॥

१२—शुद्धि उसे प्राप्त होती है, जो
ऋजुभूत होता है। धर्म उसमें ठहरता है जो
शुद्ध होता है। जिसमें धर्म ठहरता है वह धृत
से अभिषिक्त अग्नि की भाँति परम निर्वाण
(दीप्ति) को प्राप्त होता है।

१३—विर्गिणं^२ कम्मणो^३ हेउं
जसं संचिणु खन्तिए ।
पाढवं सरीरं हिच्चा
उड्डं पक्कमई दिसं ॥

वेरिगिण कर्मणो हेतुं
यशः सञ्जिनु क्षान्त्या ।
पार्ष्णिं शरीरं हित्वा
उच्छर्मा प्रकामति दिशम् ॥

१३—कर्म के हेतु को दूर कर। क्षमा
से यश (संयम) का संघट्ट कर। ऐसा करने
वाला पार्ष्णि शरीर को छोड़कर उच्छर्मा दिश
(स्वर्ग वा मोक्ष) की प्राप्त होता है।

१४—विसालिसेहि सीलेहि
जक्खा उत्तर-उत्तरा ।
महासुक्का व दिप्पन्ता
मन्तन्ता अपुणच्चवं ॥

विस्तरीः शीलैः
यक्षाः उत्तरोत्तराः ।
महाशुक्लाः इव दीप्यमानाः
मन्यमाना अपुनश्चरन् ॥

१४—विविध प्रकार के शीलो की
आराधना करके जो देव कलों व उसके ऊपर
के देवलोको की आयु का भोग करते हैं, वे
उत्तरोत्तर महाशुक्ल (चन्द्र-सूर्य) की तरह
दीप्तिमान् होते हैं। 'स्वर्ग' से पुनः प्यवन नहीं
होता' ऐसा मानते हैं।

१. नो व णं (स, ख०, बु०) ।

२. षयसत्तिव्व (उ); षयसत्तिव्व (ख०, ख०,); षयसित्ते व (बु०) ।

३. चउद्धा संपयं लद्धं इहेव ताव भाषते ।

तेषु तेज-संपन्ने षय-सित्ते व पावए ॥ (नागाजुनीयाः) ।

४. विक्किचि (अ, आ); विक्किचि (बु०); विक्किचि (ख० पा०) ।

५. कम्मणो (उ, ख०) ।

१५—अपिया देवकामाणं
कामरूप-विउव्विणो ।
उड्हं कप्पेसु विट्ठन्ति
पुव्वा वाससया वह् ॥

अपिता देवकामान्
कामरूपविकरणाः ।
ऊर्ध्वं कल्पेषु तिष्ठन्ति
पूर्वाणि वंशतानि ब्रूहि ॥

१५—वे देवी भोगों के लिए अपने आपको
अर्पित किए हुए रहते हैं । इच्छानुसार रूप बनाने
में समर्थ होते हैं तथा सैकड़ों पूर्व-वर्षों तक—
असंख्य काल तक वहाँ रहते हैं ।

१६—तत्थ ठिच्चा जहाठाणं
जक्खा आउक्खए चुया ।
उवेन्ति माणुसं जोणि
से दसगेऽभिजायई ॥

तत्र स्थित्वा यथास्थानं
यथा आयुःक्षयेऽप्युताः ।
उपयन्ति मानुषीं योनिं
स दशांगोऽभिजायते ॥

१६—वे देव उन कल्पों में अपनी शील-
आगमना के अनुरूप म्यानों में रहते हुए
आयु-क्षय होनेपर वहाँ से ज्युत होते हैं ।
फिर मनुष्य-योनि को प्राप्त होते हैं । वे वहाँ
दस अंगों वाली भोग सामग्री से युक्त होते हैं ।

१७—खेत्तं वत्थुं हिरणं च
पसवो दास-पोरुसं ।
चत्तारि काम-खन्धाणि
तत्थ से उव्वज्जई ॥

क्षेत्रं वास्तु हिरण्यञ्च
पशवो दास-पौरुषेयं ।
चत्वारः कामस्कन्धाः
तत्र स उपपद्यते ॥

१७—क्षेत्र, वास्तु, म्वर्ण, पशु और दास-
पौरुषेय—जहाँ ये चार काम-स्कन्ध होते हैं,
उन कुलों में वे उत्पन्न होते हैं ।

१८—मित्तवं नायवं^१ होड
उच्चागोए य वण्णवं ।
अप्पायंके महापन्ने
अभिजाए जसोवले ॥

मित्रवान् ज्ञातिमान् भवति,
उच्चैर्गोत्रश्च वर्णवान् ।
अल्पातङ्कः महाप्राज्ञः
अभिजातो यशस्वी बली ॥

१८—वे मित्रवान्, ज्ञातिमान्, उच्चगोत्र
वाले, वर्णवान्, नीरोग, महाप्राज्ञ, अभिजात,
यशस्वी और बलवान् होते हैं ।

१९—भोच्चा माणुस्सए भोए
अण्डिरूवे अहाउयं ।
पुव्वं विसुद्ध - सद्धमे
केवलं बोहि बुज्झया ॥

भुक्त्वा मानुष्यकान् भोगान्
अप्रतिरूपान् यथायुः ।
पूर्वं विशुद्ध-सद्धर्मा
केवलं बोधिं ब्रूयथा ॥

१९—जीवन भर अनुपम मानवीय भोगों
को भोगकर, पूर्व-जन्म में विशुद्ध-सद्धर्मी (निदान
रहित तप करने वाले) होने के कारण वे विशुद्ध
बोधि का अनुभव करते हैं ।

२०—चउरंगं दुल्लं मत्ता^२
संजमं पडिबज्जिया ।
तवसा धुयकम्मसे
सिद्धे हवइ सासए ॥
—त्ति वेमि ।

चतुरंगी दुर्लभा मत्वा
संयमं प्रतिपद्य ।
तपसा धृत-कर्मांगः
सिद्धो भवति शाश्वतः ॥
—इति ब्रवीमि

२०—वे उक्त चार अंगों को दुर्लभ
मानकर संयम को स्वीकार करते हैं । फिर
तपस्या से कर्म के सब अंगों को धनकर शाश्वत
मिद हो जाते हैं ।
ऐसा मैं—कहता हूँ ।

१. नाइव्वं (ख०); नाइवं (उ) ।

२. मत्ता (उ) ।

चतुर्थं अङ्गवर्णनं :
असंख्यं

चतुर्थं अङ्गवर्णनं :
असंस्कृत

आन्सुख

इस अध्ययन का नाम निर्युक्ति के अनुसार 'प्रमादाप्रमाद'^१ और समवायाङ्ग के अनुसार 'असंस्कृत' (प्रा० असंख्य) है।^२ निर्युक्तिकार का नामकरण अध्ययन में वर्णित विषय के आधार पर है और समवायाङ्ग का नामकरण आदानपद (प्रथमपद) के आधार पर है। इसका समर्थन अनुयोगद्वारा से भी होता है।^३

'जीवन असंस्कृत है—उसका संधान नहीं किया जा सकता, इसलिए व्यक्ति को प्रमाद नहीं करना चाहिए'—यही इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है। जिन व्यक्तियों का जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण नहीं है, वे अन्य मिथ्या-धारणाओं में फँसकर मिथ्याभिनिवेश को प्रभय देते हैं। सूत्रकार जीवन के प्रति जागरूक रहने की बलवती प्रेरणा देते हुए तथ्यों का प्रतिपादन करते हैं और मिथ्या-मान्यताओं का खण्डन करते हैं। वे मिथ्या-मान्यताएँ ये हैं—

१—यह माना जाता था कि धर्म बुढ़ापे में करना चाहिए, पहले नहीं।

भगवान् ने कहा—“धर्म करने के लिए सब काल उपयुक्त हैं, बुढ़ापे में कोई त्राण नहीं है।” (श्लो० १)

२—भारतीय जीवन की परिपूर्ण कल्पना में चार पुरुषार्थ माने गए हैं—काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष। अर्थ को येनकेन-प्रकारेण अजित करने की प्रेरणा दी जाती थी। लोग धन का त्राण मानते थे।

भगवान् ने कहा—“जो व्यक्ति अनुचित साधनों द्वारा धन का अर्जन करते हैं, वे धन को छोड़कर नरकमें जाते हैं। यहाँ या परभव में धन किसी का त्राण नहीं बन सकता। धन का वयामोह व्यक्ति को सही मार्ग पर जाने नहीं देता।” (श्लो० २, ५)

३—कई लोग यह मानते थे कि किए हुए कर्मों का फल परभव में ही मिलता है। कई मानते थे कि कर्मों का फल है ही नहीं।

भगवान् ने कहा—“किए हुए कर्मों की मोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता। कर्मों का फल इस जन्म में भी मिलता है और पर-जन्म में भी।” (श्लो० ३)

४—यह मान्यता थी कि एक व्यक्ति बहुतों के लिए कोई कर्म करता है तो उसका परिणाम वे सब भुगतते हैं।

भगवान् ने कहा—“संसारी प्राणी अपने बन्धुजनों के लिए जो साधारण कर्म करते हैं, उस कर्म के फल-भोग के समय वे बन्धुजन बन्धुना नहीं दिखाते, उसका भाग नहीं बँटाते।” (श्लो० ४)

५—यह माना जाता था कि साधना के लिए समूह विघ्न है। व्यक्ति को अकेले में साधना करनी चाहिए।

भगवान् ने कहा—“जो स्वतंत्र वृत्ति का त्याग कर गुरु के आश्रय में साधना करता है, वह मोक्ष पा लेता है।” (श्लो० ८)

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, शाखा १८१: पंचविहो अ पमाओ इहसङ्ख्येणसि अयमाओ य।

वर्णिणञ्ज उ जम्हा तेण पमाषप्पमाथंति ॥

२—समवायाङ्ग, समवाय ३६: छत्तीसं उत्तराङ्गवा ५० तं—विषयवृत्तिं... असंख्यं.....

३—अनुयोगद्वारा, सूत्र १३०: पाठ के लिए देखिए पृ० ३६ पा० १८० १।

६—लोग कहते थे कि यदि छन्द के निरोध से सुक्ति मिलती है तो वह अन्त समय में भी किया जा सकता है ।

भगवान् ने कहा—“धर्म पोछे करेंगे—यह कथन शास्त्रवादी कर सकते हैं । जो अपने आपको अमर मानते हैं, उनका यह कथन हो सकता है, परन्तु जो जीवन को क्षण-भंगुर मानते हैं, वे भला काल—समय की प्रतीक्षा कैसे करेंगे ? वे काल का विश्वास कैसे करेंगे ? धर्म की उपासना के लिए समय का विभाग अवांछनीय है । व्यक्ति को प्रतिपल अप्रमत्त रहना चाहिए ।” (३को० ६-१०)

इस प्रकार यह अध्ययन जीवन के प्रति एक सही दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है और मिथ्या-मान्यताओं का निरसन करता है ।

चतुर्थं अङ्गमयणं : चतुर्थं अध्ययन

असंख्यं : असंस्कृतम्

मूल

१—असंख्यं जीविय मा पमायए
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं ।
एवं^१ वियाणाहि जणे पमत्ते
कणू विहिंसा अजया गहिन्ति ॥

संस्कृत छाया

असंस्कृतं जीवितं मा प्रमादीः
जरोपनीतस्य ललुनास्ति त्राणम् ।
एवं विजानीहि जनाः प्रसताः
कन्तु विहिंसा अयता ग्रहोप्यन्ति ॥

हिन्दी अनुवाद

१—जीवन सांघा नहीं जा सकता, इस-
लिए प्रमाद मत करो । बुढ़ापा आने पर कोई
शरण नहीं होता । प्रमादी, हिंसक और
अविरत मनुष्य किसकी शरण लेंगे—यह विचार
करो ।

२—जे पावकम्मेहि घणं मणूसा
समाययन्ती अमइ^२ गहाय ।
पहाय ते 'पास पयट्टि'^३ नरे
वेराणुवद्धा नरयं उवेन्ति ॥

ये पाप-कर्मभिः घनं मनुष्याः
समावदन्ते अमर्तिं गृहीत्वा ।
प्राप्य तान् पश्य प्रवृत्तान् नरान्
वैराग्यवद्धा नरकमुपयन्ति ॥

२—जो मनुष्य कुमति को स्वीकार कर
पापकारी प्रवृत्तियों से धन का उपार्जन करते
हैं, उन्हें देख । वे घन को छोड़ कर मौत के मुँह
में जाने को तैयार हैं । वे बैर (कर्म) से बन्धे
हुए मरकर नरक में जाते हैं ।

३—तेणे जहा सन्धि-मुहे गहीए
सकम्मुणा किखइ पावकारी ।
एवं पया पेच्च^४ इहं च^५ लोए
'कडाण कम्माण न मोक्ख^६ अत्थि'^७ ॥

स्तेनो यथा सन्धि-मुखे गृहीतः
स्वकर्मणा कृत्पते पापकारी ।
एवं प्रजा प्रेत्येह च लोके
कृतानां कर्मणां न मोक्षोऽस्ति ॥

३—जैसे संध लगाते हुए, पकड़ा गया
पापी चोर अपने कर्म से ही छेदा जाता है,
उसी प्रकार इस लोक और परलोक में प्राणी
अपने कृत कर्मों से ही छेदा जाता है । किए
हुए कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं
होता ।

१. एणं (हु० पा०) ।

२. अमयं (हु० पा०, वु० पा०) ।

३. पासपट्टि (वु०); पासपट्टि (उ) ।

४. पेच्च (हु०); पेच (हु० पा०) ।

५. पि (वु०, हु० पा०) ।

६. मोक्खो (हु०, वु०) ।

७. ण कम्मणे पीडाति तौ क्वाती (हु० पा०, वु० पा०) ।

४—संसारमावन्न परस्स अट्ठा
साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेय-काले
न बन्धवा बन्धवयं उवेन्ति ॥

५—वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते
इमंमिं लोए अट्ठा परत्था ।
दीव-प्पणट्ठे व अणन्त-मोहे
नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ॥

६—सुत्तंसु यावी पडिबुद्ध-जीवी
न वीससे पण्डिअ आसु-पन्ने ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं
भारण्ड-पक्खी व चरण्पमतो ॥

७—चरे पयाइं परिसंकमाणो
जं किंचि पासं इह मणमाणो ।
लाभन्तरे जीविय बूहइत्ता
पच्छा परिन्नाय मलावर्धंसी ॥

८—छन्दं निरोहेण उवेइ मोक्खं
आसे जहा सिक्खिय-वम्मधारी ।
पुब्बाइं वासाइं चरण्पमतो
तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ॥

संसारमावन्नः परस्वार्थात्
साधारणं यच्च करोति कर्म ।
कर्मणस्ते तस्य तु वेदकाले
न बान्धवा बान्धवतामुपयन्ति ॥

वित्तेन त्राणं न लभते प्रमत्तः
अस्मिंश्लोके अथवा परत्र ।
प्रणष्टदीप इव अनन्त-मोहः
नैयातृकं दृष्ट्वाऽदृष्ट्वैव ॥

सुत्तेषु चापि प्रतिबुद्धजीवी
न विचक्षेयात् पण्डित आशुप्रमत्तः ।
घोरा मुहूर्ता अबलं शरीरं
भारण्डपक्षीव चराप्रमत्तः ॥

चरेत्पदानि परिशङ्कमानः
यत्किञ्चित्पाशमिह मन्यमानः ।
लाभान्तरे जीवितं बृंहयित्वा
पश्चात्परिज्ञाय मलावर्धंसी ॥

छन्दोनिरोधेनोपैति मोक्षं
अथवा यथा शिक्षितवर्मधारी ।
पूर्वाणि वर्षाणि चराप्रमत्तः
तस्मान्मुनिः क्षिप्रमुपैति मोक्षम् ॥

४—संसारी प्राणी अपने बन्धु-जनो के
लिए जो साधारण कर्म (इसका फल मुझे भी
मिले और उनको भी—ऐसा कर्म) करता है,
उस कर्म के फल-भोग के समय वे बन्धु-जन
बन्धुता नहीं दिखाते—उसका भाग नहीं
बँटाते ।

५—प्रमत्त मनुष्य इस लोक में अथवा
परलोक में धन से त्राण नहीं पाता । अन्धेरी
गुफा में जिसका दीप बुझ गया हो उसकी
भाँति, अनन्त मोह वाला प्राणी पार ले जाने
वाले मार्ग को देखकर भी नहीं देखता ।

६—आशुप्रमत्त पण्डित सोए हुए व्यक्तियों
के बीच भी चरण रहे । प्रमाद में विचवास
न करे । मुहूर्त बड़े घोर (निर्दयी) होते हैं ।
शरीर दुर्बल है । इसलिए भारण्ड पक्षी की
भाँति अप्रमत्त होकर विचरण करे ।

७—पग-पग पर दोपों में भय खाता
हुआ, थोड़े से दोष को भी पाश मानना हुआ
चले । नाग-नाग गुणों की उपलब्धि हो, तब तक
जीवन को पोषण दे । जब वह न हो तब
विचार-विमर्श पूर्वक इस शरीर का खर्च कर
डाले ।

८—शिक्षित (शिक्षक के अधीन रहा
हुआ) और तनुत्राणधारी अथवा जैसे रण का
पार पा जाता है, वैसे ही म्वच्छन्दना का
निरोध करने वाला मुनि संसार का पार पा
जाता है । पूर्व जीवन में जो अप्रमत्त होकर
विचरण करता है, वह उस अप्रमत्त-विहार से
शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है ।

९—स पुञ्चमेवं न लभेज पच्छा
एसोवमा सासय-वाइयाणं ।
विसीयई सिद्धिले आउयमि'
कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥

१०—खिप्पं न सब्बेइ विवेगमेउं
तम्हा समुट्ठाप पहाय कामे ।
समिच्च लोयं समय महेसी
अप्पाण-रक्खी चरमप्पमत्तो* ॥

११—मुहुं मुहुं मोह-गुणे जयन्तं
अणेग-रूवा समणं चरन्तं ।
फासा फुसन्तो असमंजसं च
न तेषु भिक्खू मणसा पउस्से ॥

१२—‘मन्दा य फासा बहु-लोहणिज्जा’
तह-प्पगारेसु मणं न कुज्जा ।
रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं
मायं न सेवें पयहेज्ज लोहं ॥

१३—जे संख्या तुच्छ परप्पवाई
ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा ।
एए ‘अहम्मे’ त्ति दुगुंछमाणो
कंखे गुणे जाव सरीर-भेओ ॥
—त्ति बेमि ।

स पूर्वमेव न लभेत पश्चात्
एषोपमा शाश्वतवादिमानाम् ।
विषोवति शिथिले आयुषि
कालोपनीते शरीरस्य भेदे ॥

क्षिप्रं न शक्नोति विवेकमे
तस्मात्समुत्थाय प्रहाय कामान् ।
समेत्य लोकं समतया सहर्षिः
आत्मरक्षी चराप्रमत्तः

मुहुर्मुहुर्मोह-गुणान् जयन्तं
अनेक-रूपाः श्रमणं चरन्तम् ।
स्पर्शाः स्पृशन्त्यसमञ्जसं च
न तेषु भिक्षुर्मनसा प्रवृण्ये ॥

मन्दाश्च स्पर्शा बहु-लोभनीयाः
तथा-प्रकारेषु मनो न कुर्यान् ।
रक्षेन् क्रोधं विनयेच्च मानं
मायां न सेवेत प्रजह्याल्लोभम् ॥

ये संस्कृतः तुच्छाः परप्रवादिनः
ते प्रयोदोषानुगताः पराधीनाः ।
एते ‘अहम्’ इति जुगुप्समानः
काङ्क्षेह गुणान् यावच्छरीर-भेदः ॥
—इति त्रयोमि ।

६—जो पूर्व जीवन में अप्रमत्त नहीं
होता, वह पिछले जीवन में भी अप्रमाद को
नहीं पा सकता । “पिछले जीवन में अप्रमत्त
हो जाएंगे”—ऐसा निश्चय-वचन शाश्वत-
वादियों के लिए ही उचित हो सकता है । पूर्व
जीवन में प्रमत्त रहने वाला आयु के शिथिल
होने पर, मृष्ट्यु के द्वारा शरीर-भेद के क्षण
उपस्थित होने पर विषाद को प्राप्त होता है ।

१०—कोई भी मनुष्य विवेक को
तत्काल प्राप्त नहीं कर सकता । इसलिए हे
मोक्ष की एषणा करने वाले ! उठो । “जीवन के
अंतिम भाग में अप्रमत्त बनने”—इस आलस्य
को त्यागो । काम-भोगों को छोड़ो । लोक को
भलीभाँति जानो । समभाव में रहो । आत्म-
रक्षक और अप्रमत्त हो कर विचरण करो ।

११—बार-बार मोह-गुणों पर विजय
पान का यत्न करने वाले उग्र-विहारी श्रमण
को अनेक प्रकार के प्रतिकूल स्थान दीक्षित
करते हैं । किन्तु वह उन पर प्रद्वेष न करे ।

१२—अनुकूल स्थान विवेक को मन्द करने
वाले और बहुत दुःखावने होते हैं । बंसे स्थानों
में मन को न लगायें । क्रोध का निवारण करें ।
मान को दूर करें । माया का सेवन न करें ।
लोभ को त्यागें ।

१३—जो अन्य-तीक्ष्ण लोग ‘जीवन
सांभा जा सकता है’—ऐसा कहते हैं वे
अशिक्षित हैं, प्रेय और द्वेष में फंसे हुए हैं, पर-
तन्त्र हैं । ‘वै धर्म-रहित हैं’—ऐसा सोच उनसे
दूर रहे । अंतिम सांस तक (सम्यक्-दर्शन,
ज्ञान, चारित्र आदि) गुणों की आराधना करें ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. धावमि (ड) ।

२. च चरममत्तो (झ०); चरममत्तो (ड) ।

३. मंदाय तथा हिषस्स बहु-लोभजेजा (झ० पा०) ।

पञ्चमं अध्यायः :
अकाम-मरणज्जं

पंचम अध्यायः :
अकाम-मरणीय

आप्तुत्वा

इस अध्ययन का नाम 'अकाममरणजं'—'अकाम-मरणीय' है। निर्युक्ति ने इसका दूसरा नाम 'मरणविभक्तौ'—'मरण-विभक्ति' भी मिलता है।^१

जीवन-यात्रा के दो विभक्त हैं—जन्म और मृत्यु। जीवन कला है तो मृत्यु भी उससे कम कला नहीं है। जो जीने की कला जानते हैं और मृत्यु की कला नहीं जानते, वे सदा के लिए अपने पीछे दूषित वातावरण छोड़ जाते हैं। ठीक की कैसा मरण नहीं करना चाहिये, इसका विवेक आवश्यक है। मरण के विविध प्रकारों के उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं :—

१—मरण के १४ भेद

भगवती सूत्र ने मरण के दो भेद—बाल और पण्डित किए हैं। बाल-मरण के बारह प्रकार हैं और पण्डित-मरण के दो प्रकार—कुल मिलाकर चौदह भेद वहाँ मिलते हैं—

बाल-मरण के बारह भेद हैं :—(१) वल्य, (२) वशार्त्त, (३) अन्तःशक्त्य, (४) तद्भव, (५) गिरि-पतन, (६) तरु-पतन, (७) जल-प्रवेश, (८) अधि-प्रवेश, (९) विष-भक्षण, (१०) शस्त्रावपाटन, (११) वैहावस और (१२) गृहपृष्ठ।^२

पण्डित-मरण के दो भेद हैं :—(१) प्रायोपगमन और (२) भक्त-प्रत्याख्यान।^३

२—मरण के १७ भेद

समवायाङ्ग ने मरण के १७ भेद बताए हैं। मूलाराधना ने भी मरण के सतरह प्रकारों का उल्लेख है और उनका विस्तार विजयोदया वृत्ति ने मिलता है। उक्त परम्पराओं के अनुसार मरण के १७ प्रकार इस तरह हैं :—

समवायाङ्ग

- १—आवोचि-मरण
- २—अवधि-मरण
- ३—आत्यन्तिक-मरण
- ४—वलन्मरण
- ५—वशार्त्त-मरण
- ६—अन्तःशक्त्य-मरण
- ७—तद्भव-मरण
- ८—बाल-मरण

मूलाराधना (विजयोदया वृत्ति)

- १—आवोचि-मरण
- २—तद्भव-मरण
- ३—अवधि-मरण
- ४—आदि-अन्त-मरण
- ५—बाल-मरण
- ६—पण्डित-मरण
- ७—अवसन्न-मरण
- ८—बाल-पण्डित-मरण

१. उत्तराज्ययन निर्युक्ति, गाथा २३३ : सन्धे एव दारा मरणविभक्तीह वणिगभा कससो।

२. भगवती २१९, सू० ६० : बुद्धि मरणे पण्णसे, तं जहा—बाकमरणे व पण्डितमरणे व, से किं तं बालमरणे ? २ बुवालसविहे प०, तं० वल्लभमरणे, वसहमरणे, अन्तोसहमरणे, तन्भवमरणे, गिरिपडणे, तरुपडणे, जलपण्णसे, जलपण्णसे, विसम्भक्त्यन्ते, सत्थोवाङ्गे, वेहाणसे, गिद्धपिट्ठे।

३. वही : से किं तं पण्डितमरणे ? २ बुद्धि पण्णसे, तं जहा—प्रायोपगमने व भयपण्णक्त्याने व।

उत्तरजभाषणं (उत्तराध्ययन)

45

अध्ययन ५ : आमुख

६-पण्डित-मरण	६-सशल्य-मरण
१०-बाल-पण्डित-मरण	१०-बलाय-मरण
११-छद्मस्थ-मरण	११-व्युत्सृष्ट-मरण
१२-कैवल्य-मरण	१२-विप्रनास-मरण
१३-वैद्यायस-मरण	१३-गुह्यपुष्ट-मरण
१४-गुह्यपुष्ट-मरण	१४-भक्त-प्रत्याख्यान-मरण
१५-भक्त-प्रत्याख्यान-मरण	१५-प्रायोपगमन-मरण
१६-इंगिनी-मरण	१६-इंगिनी-मरण
१७-प्रायोपगमन-मरण ^१	१७-केवली-मरण ^२

समवायाङ्ग के तीसरे, दसवें और पन्ध्रहवें मरण के नाम उत्तराध्यायन नियुक्ति के अनुसार क्रमशः अत्यन्त-मरण, मिश्र-मरण और भक्त-परिज्ञा-मरण हैं। यह केवल शाब्दिक अन्तर है, नामों अथवा क्रम में और कोई अन्तर नहीं है।^१

विजयोदया में क्रम तथा नामों में भी अन्तर है। 'वंद्वायस' के स्थान पर 'विप्रनास' तथा 'अन्तःशत्रय' और 'आत्यन्तिक' के स्थान पर क्रमशः 'सशत्रय' और 'आध्वन्त' नाम उल्लिखित हैं। सप्तवायाङ्ग में वशार्श-मरण और छद्मसूय-मरण हैं जबकि विजयोदया में अवसन्न-मरण और व्युत्सृष्ट-मरण। भगवतो के उपर्युक्त पाँचवें से लेकर दसवें तक के ६ भेद विजयोदया के 'बाल-मरण' भेद में समाविष्ट होते हैं।

उक्त सतरह प्रकार के मरणों को संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है:—

५—आवोधि-मरण:—आयु-कर्म के दलिकों की विच्युति अथवा प्राप्तिक्षण आयु की विच्युति, आवोधि-मरण कहलाता है ।^{१४}

वीथि का अर्थ है—तरंग। समुद्र और नदी में प्रतिक्षण लहरें उठती हैं। वैसे ही आयु-कर्म भी प्रतिसमय उदय में आता है। आयु का अनुभव करना जीवन का लक्षण है। प्रत्येक समय का जीवन प्रतिसमय में नष्ट होता है। यह प्रत्येक समय का मरण आवीथि-मरण कहलाता है।^{१५}

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव की अपेक्षा से आवीर्चि-मरण के पांच प्रकार हैं।¹⁴

१. समवायाज्ञ, समवाय १७, पत्र ३३ : सत्तरसविहं मरण प०—आवीहीमरणे, ओहिमरणे आर्यातियमरणे, वलायमरणे, वसट्टमरणे, अंतोसत्त्व मरणे, तद्धममरणे, बालमरणे, पंडितमरणे, बालपंडितमरणे, छउमत्थमरणे, केवल्लिमरणे, वेहाणमरणे, गिद्धपिट्टमरणे, अतपक्कवक्खाणमरणे, इगिणमरणे, पाओवगमणमरणे ।

२. (क) मुकुटाराधना आश्वास १, गाथा २४ : मरणाणि सत्तरस देसिदाणि तित्थंकरेहि जिणवयणं ।

तत्थ विय पंच इह संगहेण मरणाणि वोच्छामि ॥

(ख) विजयोद्या कृत्ति, पत्र ८७ ।

३. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २१२, २१३ : आवीचि ओहि अंतिय वलायमरणं वसदुमरणं च ।

अंतोसल्लं तदभव बालं तद् पंडितं मीसं ॥

छत्रमत्थमरण केवलं वेहाणस गिद्धपिट्टमरणं च ।

मरणं भक्तपरिणामा इंगिणी पाभोवगमणं च ॥

४. समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ : आद्युदिकविषयव्युत्पत्तिक्षणवत्त्वा यस्मिन्स्तदावीचि अथवा वीचिः—विच्छेदस्तदाभावावधीचि... एवं भूतं भरणमावीचिसरणं—प्रतिक्षणमाद्युद्व्यविचटनक्षणम् ।

५. विजयोद्या वृत्ति, पत्र ८३ ।

६. उत्तराध्ययन निर्युक्तिः, गा० २१५ : अणुसमयनिरन्तरमबीहसन्निधं, तं अणन्ति पञ्चविं ।

दृज्ये क्षित्ते काले भवे य भावे य संसारे ॥

३—अवधि-मरण:—जीव एक बार नरक आदि जिस गति में जन्म-मरण करता है, उसी गति में दूसरी बार जब कभी जन्म-मरण करता है तो उसे अवधि-मरण कहा जाता है ।^१

३—आत्यन्तिक-मरण:—जीव वर्तमान आयु-कर्म के पुद्गलों का अनुभव कर मरण प्राप्त हो, फिर उस भव में उत्पन्न न हो तो उस मरण को आत्यन्तिक-मरण कहा जाता है ।^२

वर्तमान मरण 'आदि' और वैसा मरण आगे न होने से उसका 'अन्त'—इस प्रकार इसे 'आद्यन्त-मरण' भी कहा जाता है ।^३

४—वलन्मरण:—जो संयमी, जीवन-पथ से भ्रष्ट होकर मृत्यु पाता है, उसकी मृत्यु को वलन्मरण कहा जाता है ।^४ भूल से तड़पते हुए मरने को भी वलन्मरण कहा जाता है ।^५

विजयोदया में वलाय-मरण कहा है । इसकी व्याख्या इस प्रकार है—विनय, वैराग्य आदि को सत्कार न देने वाले, नित्य नैमित्तिक कार्यों में आलसी, व्रत, समिति और गुप्त के पालन में अपनी शक्ति को खिपाने वाले, धर्म-धितन के समय नींद लेने वाले, ध्यान और नमस्कार आदि से दूर भागने वाले व्यक्ति के मरण को वलाय-मरण कहा जाता है ।^६

५—वशांन-मरण:—दीप-कलिका में शलभ को तरह जो इन्द्रियों के वशीभूत होकर मृत्यु पाते हैं, उसे 'वशांन-मरण' कहा जाता है ।^७

विजयोदया में भी यह नाम मिलता है । यह मरण आर्त्त और रौद्र ध्यान में प्रवृत्त रहने वालों के होता है । इसके चार भेद हैं—इन्द्रिय-वशांन, वेदना-वशांन, कषाय-वशांन और नो-कषाय-वशांन ।^८

६—अन्तःशाल्य-मरण:—भगवती की वृत्ति में इसके दो भेद किए गए हैं—(१) द्रव्य और (२) भाव । शरीर में शस्त्र की नोक आदि रहने से जो मृत्यु होती है वह द्रव्य अन्तःशाल्य-मरण कहलाता है । लज्जा और अभिमान आदि के कारण अतिचारों की आलोचना न कर दोषपूर्ण स्थिति में मरने वाले की मृत्यु को भाव अन्तःशाल्य-मरण कहा जाता है ।^९

विजयोदया में इसका नाम सशाल्य-मरण है । उसके भी दो भेद हैं—द्रव्य शाल्य और भाव शाल्य ।^{१०} मिथ्या-दर्शन, माया और निदान—इन तीनों शक्तियों की उत्पत्ति के हेतुभूत कर्म को द्रव्य शाल्य कहा जाता है । द्रव्य शाल्य

१. (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति पत्र ३४ : मयादा तेन मरणमवधिमरणम्, यानि हि नारकादिभवनविषयनतयाऽऽद्युःकर्मदलिकान्यनुभूय त्रियते यदि पुनस्तान्येवानुभूय मरिष्यति तदा तदवधिमरणमुच्यते । तद्वत्त्वापेक्षया पुनस्तद्गृहणावधि यावन्नीवित्य मृतत्वादिति ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१६ : एमेव ओहिमरणं जाणि मओ ताणि पेव मरह पुणो ।

(ग) विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७ ।

२. (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति पत्र ३४ : यानि नारकाद्यायुक्तया कर्मदलिकान्यनुभूय त्रियते मृतत्वेन न पुनस्तान्यनुभूय मरिष्यतीति एवं धम्ममरणं तद्वत्त्वापेक्षया अत्यन्तभावित्वादात्यन्तिकमिति ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१६ : एमेव आइयत्तिधम्मरणं नवि मरह ताइ पुणो ।

३. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७ ।

४. (क) समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ : संयमयोगेभ्यो बलतां—भनवतपरिणीता भतितां मरणं वलन्मरणम् ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा० २१७ : संजमजोगविसम्भा मरंति जे तं बलायमरणं तु ।

५. भगवती, २१६ सु० ६० वृत्ति, पृ० २११ : बलतो—बुभुक्षापरितारत्वेन वल्ललायमानस्य संयमाद्वा भ्रम्यतो (यत्) मरणं तद्वलन्मरणम् ।

६. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८६ ।

७. समवायाङ्ग, समवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ : इन्द्रियविषयपारतन्त्र्येण श्रुता—वाचिता वशाताः स्मिन्वशीपकलिकाबलोकनात् शलभवत् तथाऽप्यतः ।

८. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८६, ६० ।

९. भगवती, २१६ सु० ६० वृत्ति, पत्र २११ : अन्तःशाल्यस्य द्रव्यतोऽनुवृत्तत्वोपरादेः भावतः सातिचारस्य धम्ममरणं तद् अन्तःशाल्यमरणम् ।

१०. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८ ।

की दशा में होने वाला मरण द्रव्य शल्य-मरण कहलाता है। यह मरण पाँच स्थावर और अमनस्क जस जीवों के होता है। एक तीन शलयों के हेतुभूत कर्मों के उदय से जीव में जो माया, निदान और मिथ्यात्व परिणाम होता है, उसे भाव शल्य कहा जाता है। इस दशा में होने वाला मरण भाव शल्य-मरण कहा जाता है।

जहाँ भाव शल्य है वहाँ द्रव्य शल्य अवश्य होता है, किन्तु भाव शल्य केवल समनस्क जीवों की ही होता है। अमनस्क जीवों में संकल्प या चिन्तन नहीं होता, इसलिए उनके केवल द्रव्य शल्य ही होता है। इसीलिए अमनस्क जीवों के मरण को द्रव्य शल्य-मरण और समनस्क जीवों के मरण को भाव शल्य-मरण कहा गया है।^१

भविष्य में मुझे अमुक वस्तु मिले, आदि-आदि मानसिक संकल्पों को निदान कहते हैं। निदान-शल्य-मरण असंयत सम्यक्-दृष्टि और भावक के होता है।

मार्ग (ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य) को दूषित करना, मार्ग का नाश करना, उन्मार्ग की प्रवृत्ति करना, मार्ग में स्थित लोगों का बुद्धि-भेद करना—इन सबको एक शब्द में मिथ्यादर्शन-शल्य कहा जाता है।^२

पाश्चर्य, कुशील, संसक आदि मुनि धर्म से अष्ट हो कर मरण-समय तक दोषों की आलोचना किए बिना जो मृत्यु पाते हैं, उसे माया शल्य-मरण कहा जाता है। यह मरण मुनि, श्रावक और असंयत सम्यक्-दृष्टि को प्राप्त होता है।

७—तदभव-मरण :—वर्तमान भव (जन्म) से मृत्यु होती है, उसे तदभव-मरण कहा जाता है।^३

८—बाल-मरण :—मिथ्यात्वी और सम्यक्-दृष्टि का मरण बाल-मरण कहलाता है।^४ भगवती में बाल-मरण के १२ भेद प्राप्त हैं।^५ विजयोदया में पाँच भेद किए हैं—(१) अव्यक्त-बाल, (२) व्यवहार-बाल, (३) ज्ञान-बाल, (४) दर्शन-बाल और (५) चारित्र्य-बाल।^६ इनकी व्याख्या संक्षिप्त में इस प्रकार है :

(१) अव्यक्त-बाल—छोटा बच्चा। जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को नहीं जानता तथा इन चार पुरुषार्थों का आचरण करने में भी समर्थ नहीं होता।

(२) व्यवहार-बाल—लोक-व्यवहार, शास्त्र-ज्ञान आदि को जो नहीं जानता।

(३) ज्ञान-बाल—जो जीव आदि पदार्थों को यथार्थ रूप से नहीं जानता।

(४) दर्शन-बाल—जिसकी तत्त्वों के प्रति भ्रमा नहीं होती। दर्शन-बाल के दो भेद हैं—इच्छा-प्रवृत्ति और अनिच्छा-प्रवृत्ति। इच्छा-प्रवृत्ति—अग्नि, धूप, शस्त्र, विष, पानी, पर्वत से गिरकर, स्वासोच्छ्वास को रोक कर, अति सर्दी या गर्मी होने से, भूख और प्यास से, जौम को उखाड़ने से, प्रकृति-विरुद्ध आहार करने से—इन साधनों के द्वारा जो इच्छा से प्राण-त्याग करता है, वह इच्छा-प्रवृत्ति

१. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८।

२. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८८, ८९।

३. (क) ममवायाङ्ग, ममवाय १७ वृत्ति, पत्र ३४ : यस्मिन् भवे—विषमगमनुष्यभवलक्षणं वस्ति जन्तुस्तद्रवयोग्यमेवायुर्बुद्ध्या पुनः तत्प्रत्येकं त्रयमाणास्व यदुभर्वा तत्तदभवमरणम्।

(ख) उत्तराध्ययन निर्वृत्ति, गाथा २२१ : मोक्षं भक्त्वायुगवर्तिरिष्टं धराणं न नेहृष्टम्।

तेषां जीवाणं तत्प्रभवमरणं तु केसिचित्॥

(ग) विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७।

४. उत्तराध्ययन निर्वृत्ति, गाथा २२२ : अविरसमरणं बालं मरणं विरयाणं पंचिषं चित्।

आपाहि बालपंचिमरणं पुन देसविरयाणं॥

५. भगवती २११, सू. १० वृत्ति, पत्र २११।

६. विजयोदया वृत्ति, पत्र ८७, ८८।

दर्शन-बाल-मरण कहलाता है। अनिच्छा-प्रवृत्त—योग्यकाल में या अकाल में मरने की इच्छा के बिना जो मृत्यु होती है, वह अनिच्छा-प्रवृत्त दर्शन-बाल-मरण कहलाता है।

(५) चारित्र-बाल—जो चारित्र से होन होता है। विषयों में आसक्त, दुर्गति में जाने वाले, अज्ञानान्धकार से आच्छादित, ऋद्धि में आसक्त, रसों में आसक्त और सुख के अभिमानी जीव बाल-मरण से मरते हैं।

६—पण्डित-मरण :—संयति का मरण पण्डित-मरण कहलाता है। विजयोदया में इसके चार भेद किए हैं—(१) व्यवहार-पण्डित, (२) सम्यक्त्व-पण्डित, (३) ज्ञान-पण्डित और (४) चारित्र-पण्डित।^१ इनकी व्याख्या इस प्रकार है :

(१) व्यवहार-पण्डित—जो लोक, वेद और समय के व्यवहार में निपुण, उनके शास्त्रों का ज्ञाता और शुश्रूषा आदि गुणों से युक्त हो।

(२) दर्शन-पण्डित—जो सम्यक्त्व से युक्त हो।

(३) ज्ञान-पण्डित—जो ज्ञान से युक्त हो।

(४) चारित्र-पण्डित—जो चारित्र से युक्त हो।

१०—बाल-पण्डित-मरण :—संयतासंयत का मरण बाल-पण्डित-मरण कहलाता है।^२ स्थूल हिंसा आदि पाँच पापों के त्याग तथा सम्यक्-दर्शन युक्त होने से वह पण्डित है। सूक्ष्म असंयम से निवृत्त न होने के कारण उसमें बालत्व भी है।^३

११—छन्दमस्य-मरण :—मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मतिज्ञानी भ्रमण के मरण को छन्दमस्य-मरण कहा जाता है।^४

विजयोदया में इसके स्थान पर 'ओसण-मरण' नाम मिलता है।^५ उसकी व्याख्या इस प्रकार की है—रत्नत्रय में विहार करने वाले मुनियों के संघ से जो अलग हो गया हो उसे 'अवसन्न' कहते हैं। उसके मरण को अवसन्न-मरण कहा जाता है। पात्रस्थ, स्वच्छन्द, कुशील, संसक्त और अवसन्न—ये पाँच अष्ट मुनि 'अवसन्न' कहलाते हैं। ये ऋद्धि में आसक्त, रसों में आसक्त, दुःख से भयभीत, कषायों में परिणत हो आहार आदि संज्ञाओं के वशवर्ती, पाप शास्त्रों के अध्येता, तेरह प्रक्रिया (३ गुणि, ५ समिति और ५ महाव्रत) में आलसी, सांकेष्ट-परिणामी, भक्तपान और उपकरणों में आसक्त, निमित्त, तंत्र-मंत्र और औषध से आजोविका करने वाले, गृहस्थों का वैयावृत्य करने वाले, उत्तर गुणों से होन, गुणि और समिति में अनुद्यत, संसार के दुःखों से भय न करने वाले, क्षमा आदि दश धर्मों में प्रवृत्त न होने वाले तथा चारित्र में दोष लगाने वाले होते हैं। ये अवसन्न मुनि मर कर हजारों भवों में भ्रमण करते हैं और दुःखों को भोगते हुए जीवन को पूरा करते हैं।

१२—केवल-मरण :—केवल ज्ञानी का मरण केवल-मरण कहलाता है।

१. विजयोदया बृत्ति, पत्र ८८।

२. उत्तराध्ययन निपुक्ति, शाखा २२० : (देखिए पृ० ६० पा० टि० ४)।

३. विजयोदया बृत्ति, पत्र ८८।

४. उत्तराध्ययन निपुक्ति, शाखा २२१ : मणवजबोहिनाणी सुअमहनाणी सरति जे समणा।

छन्दमस्यमरणमेवं केवलमरणं तु केवलिणो ॥

५. विजयोदया बृत्ति, पत्र ८८।

१३—वैहायस-मरण :—वृक्ष की शाखा पर लटकने, पर्वत से गिरने और भँपा लेने आदि कारण से होने वाला मरण वैहायस-मरण कहलाता है ।^१ विजयोदया से इसके स्थान पर 'विप्रणास-मरण' है ।^२

१४—गृक्षपृष्ठ-मरण :—हाथों आदि के कलेवर में प्रविष्ट होने पर उस कलेवर के साथ-साथ उस जीवित शरीर को भी गांध आदि भोज्य कर मान डालते हैं, उस स्थिति में जो मरण होता है, वह गृक्षपृष्ठ-मरण कहलाता है ।^३

१५—भक्त-प्रत्याख्यान-मरण :—यावत् जीवन के लिए त्रिविध अथवा चतुर्विध आहार के त्याग पूर्वक जो मरण होता है, उसे भक्त-प्रत्याख्यान-मरण कहा जाता है ।^४

१६—भृङ्गिनी-मरण :—प्रतिनियत स्थान पर अनशन पूर्वक मरण को इङ्गिनी-मरण कहते हैं । जिस मरण में अपने अभिप्राय से स्वयं अपनी शुश्रूषा करे, दूसरे सुनियों से सेवा न ले उसे इङ्गिनी-मरण कहा जाता है । यह मरण चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करने वाले के ही होता है ।

१७—प्रायोपगमन, पादोपगमन, पादोपगमन-मरण :—अपनी परिचर्या न स्वयं करे और न दूसरो से करावे, ऐसे मरण को प्रायोपगमन अथवा प्रायोग्य-मरण कहते हैं ।^५ वृक्ष के नीचे स्थिर अवस्था में चतुर्विध आहार के त्याग पूर्वक जो मरण होता है, उसे पादोपगमन-मरण कहते हैं ।^६ अपने पाँवों के द्वारा संघ से निकल कर और योग्य प्रदेश में जाकर जो मरण किया जाता है उसे पादोपगमन-मरण कहा जाता है । इस मरण की चाहने वाले सुनि अवने शरीर को पारिचर्या न स्वयं करते हैं और न दूसरो से कराते हैं ।^७ कहीं 'पाठगमन' (प्रायोग्य) पाठ मो आता है ।^८ मंत्र के अन्त करन योग्य संहनन और संस्थान को 'प्रायोग्य' कहा जाता है । उसकी प्राप्ति को 'प्रायोग्य-गमन' कहा है । विज्ञाष्ट संहनन और विज्ञाष्ट संस्थान वाले के मरण को प्रायोग्य-गमन-मरण कहा जाता है ।^९

उत्तेनाम्बर परम्परा में 'पादोपगमन' शब्द मिलता है और दिगम्बर परम्परा में 'प्रायोपगमन', 'प्रायोग्य' और 'पादापगमन' पाठ मिलता है ।

भगवती से पादोपगमन के दो भेद किए हैं—निर्हार और आनिर्हार ।^{१०} निर्हार—इसका अर्थ है

१—(क) भगवती २१। मू० ६० वृत्ति, पत्र २११ : वृक्षयात्पादुद्वन्धनेन यत्तन्निर्गतवशाद् दानमस्मि ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२४ : गिद्धाहभक्षणेन गिद्धगिद्ध उद्वन्धनाऽपेदांसि ।

एष दृष्टिर्निर्व मरणा कारणभाए अणुगणायाम् ॥

२—विजयोदया वृत्ति, पत्र ६० ।

३—(क) भगवती २१। मू० ६० वृत्ति, पत्र २११ : पक्षिविशेषगृह्यां—मानुष्येः शृगालादिभिः स्पृष्टस्य—विदारितस्य करिकभरायभावि-शरीरागततत्त्वेन यन्मरणं तदगृहस्पृष्टं वा गृहस्पृष्टं वा, गृह्यां भक्षितस्य—स्पृष्टस्य यत्तदगृहस्पृष्टम् ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२४ (द्विविध वा ० टि० १ (ख) ।

४—(क) भगवती २१। मू० ० वृत्ति, पत्र २११-२१२ : चतुर्विधाहारपरिहारनिष्पन्नमेव भवतीति ।

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२४ वृत्ति, पत्र २३४ :

५—(क) भगवती २१। मू० ९० वृत्ति, पत्र २१० ।

(ख) समवायाङ्ग मम १० वृत्ति, पत्र ६४ : पादपस्वेषोपगमनम्—अवस्थान् तस्यापादोपगमनं तदेव मरणम् ।

(ग) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २२४ वृत्ति, पत्र २३४ ।

६—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

७—गोमूटसार (कमकाण्ड), गाथा ६१ :

८—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

९—विजयोदया वृत्ति, पत्र ११३ ।

१०—भगवती २१। मू० ६० वृत्ति, पत्र २११ : निर्हारं निवृत्तं यत्तन्निर्हारं, प्रतिश्रयं यो श्रियं तस्यैतत्, तत्कश्चरस्य निर्हारिणः अनिहारिं तु योऽद्वयं श्रियते इति ।

बाहर निकालना । उपाश्रय में मरण प्राप्त करने वाले साधु के शरीर को वहाँ से बाहर ले जाना होता है, इसलिए उस मरण को निहोति कहते हैं । अनिहोति—अरण्य में अपने शरीर का त्याग करने वाले साधु के शरीर को बाहर ले जाना नहीं पड़ता, इसलिए उसे अनिहोति-मरण कहा जाता है ।

भगवतो में इङ्गिनी-मरण को भक्त-प्रत्याख्यान का एक प्रकार स्वीकार कर उसकी स्वतंत्र व्याख्या नहीं की है । मूलाराधना ने भक्त-प्रत्याख्यान, इङ्गिनी और प्रायोपगमन—ये तीनों पण्डित-मरण के भेद माने गये हैं ।^१

उपर्युक्त १७ मरण विभिन्न विवक्षाओं से प्रातिपादित हैं । आक्थि; अवधि; आत्यन्तिक और तद्भव-मरण भव की दृष्टि से; वलन्; वैहायस, युद्धघृष्ट, वशान और अन्तः शल्य-मरण आत्म-दोष, कषाय आदि की दृष्टि से; बाल और पाण्डित मरण चारित्र्य की दृष्टि से; छद्मस्थ और केवलि-मरण ज्ञान की दृष्टि से तथा भक्त-प्रत्याख्यान, इङ्गिनी और प्रायोपगमन-मरण अनशन की दृष्टि से किए गए हैं ।

उपर्युक्त १७ मरणों में आक्थि मरण प्रतिपल होता है और सिद्धां को छोड़ सब प्राणियों के होता है । शेष मरण जीव विशेषों के होते हैं ।

एक समय में कितने मरण होते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर उत्तराध्ययन की निर्युक्ति में है ।^२ एक समय में दो मरण, तीन मरण, चार मरण और पाँच भो होते हैं : बाल, बाल-पाण्डित और पाण्डित की अपेक्षा से वे इस प्रकार हैं—

बाल की उपेक्षा :

(१) एक समय में दो मरण—अवधि और आत्यन्तिक में से एक और दूसरा बाल-मरण ।

(२) एक समय में तीन मरण—जहाँ तीन होते हैं वहाँ तद्भव-मरण और बढ़ जाता है ।

(३) एक समय में चार मरण—जहाँ चार होते हैं वहाँ वशान-मरण और बढ़ जाता है ।

(४) एक समय में पाँच मरण—जहाँ आत्मघात करते हैं वहाँ वैहायस और युद्धघृष्ट में से कोई एक बढ़ जाता है । वलन्मरण और शल्य मरण को बाल-मरण के अन्तर्गत स्वीकार किया है ।

पाण्डित की अपेक्षा :

पाण्डित-मरण को विवक्षा दो प्रकार से की है—दृढ़ संयमी पाण्डित और शिथिल संयमी पाण्डित ।

(क) दृढ़ संयमी पाण्डित

(१) जहाँ दो मरण एक समय में होते हैं वहाँ अवधि-मरण और आत्यन्तिक-मरण में से कोई एक होता है क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं, दूसरा पाण्डित-मरण ।

१. भगवती २६। सू० १० वृत्ति, पत्र २१० : इङ्गितमरणमभिधीयते तद्वक्तप्रत्याख्यानस्यैव विवक्षः ।

२. मूलाराधना, गाथा २६ : प्रायोपगमन मरणं भक्षपक्षणा च इङ्गिणी चैव ।

तिविहं पंडितमरणं साधुस्स जहुत्तचारिस्स ॥

३. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २०७-२९ : दुस्सि व तस्सि व चत्तारि पंच मरणाह अव्वाहमरणं मि ।

कह मरह एससमयसि विभासाविस्वरं जाणे ॥

सव्वे भवत्थजीवा मरंति आवाइधं सया मरणं ।

ओहि च आइअतिथि दुस्सि वि एयाह भणणाए ॥

ओहि च आइअतिथि बाल तह पंडितं च मीसं च ।

छउम केवलमरणं अन्नुत्तेणं विरुत्तंति ॥

(१) जहाँ तीन मरण एक साथ होते हैं, वहाँ ध्वंस-मरण और केवल-मरण में से एक बढ़ जाता है।

(३) जहाँ चार मरण की विवक्षा है, वहाँ भक्त-प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन में से एक बढ़ जाता है।

(४) जहाँ पाँच मरण की विवक्षा है, वहाँ वैज्ञानिक और गृह-दृष्ट में से एक मरण बढ़ जाता है।

(ख) विषय सयमी पण्डित

(१) जहाँ दो मरण की एक समय में विवक्षा है, वहाँ अवधि और आत्यन्तिक में से एक और किसी कारणवश वैज्ञानिक और गृहदृष्ट में से एक।

(२) कर्धधिदू शल्य-मरण होने से तीन भी हो जाते हैं।

(३) जहाँ वलनमरण होता है वहाँ एक साथ चार हो जाते हैं।

(४) ध्वंस-मरण की जहाँ विवक्षा होती है, वहाँ एक साथ पाँच मरण हो जाते हैं।

भक्त-प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन-मरण विपुल संयम वाले पण्डितों के ही होता है। दोनों प्रकार के पण्डित-मरण की विवक्षा में तदभव-मरण नहीं लिया गया है, क्योंकि वे देवगति में ही उत्पन्न होते हैं।

बाल-पण्डित की अपेक्षा :

(१) जहाँ दो मरण की एक समय में विवक्षा है, वहाँ अवधि और आत्यन्तिक में से कोई एक और बाल-पण्डित।

(२) तदभव-मरण साथ होने से तीन मरण।

(३) वशार्थ-मरण साथ होने से चार मरण।

(४) कर्धधिदू आत्मघात करने वाले के वैज्ञानिक और गृह-दृष्ट में से एक साथ होने से पाँच।

३—मरण के दो भेद

गोमटसार में मरण के दो भेद किये गये हैं—(१) कदलीघात (अकालमृत्यु) और (२) सन्यास। विष-भक्षण, विषले जीवों के काटने, रक्तक्षय, धातुक्षय, भयंकर वस्तुदर्शन तथा उससे उत्पन्न भय, वस्त्रघात, संवलेशकिया, श्वासोच्छ्वास के अवरोध और आहार न करने से समय में जो शरीर छूटता है, उसे कदलीघात-मरण कहा जाता है। कदलीघात सहित अथवा कदलीघात के बिना जो सन्यास रूप परिणामों से शरीर-त्याग होता है, उसे त्यक्त-शरीर कहते हैं। त्यक्त-शरीर के तीन भेद हैं—(१) भक्त-प्रतिज्ञा, (२) इंगिनी और (३) प्रायोग्य। इनको व्याख्या इस प्रकार है :—

(१) भक्त-प्रतिज्ञा—भोजन का त्याग कर जो सन्यास मरण किया जाता है, उसे 'भक्त-परिज्ञा-मरण' कहा जाता है। इसके तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य का कालमान अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट का १२ वर्ष और श्रेष्ठ का मध्यवर्ती।

(२) इंगिनी—अपने शरीर की परिचर्या स्वयं करे, दूसरों से सेवा न ले, इस विधि से जो सन्यास धारण पूर्वक मरण होता है उसे 'इंगिनी-मरण' कहा जाता है।

(३) प्रायोग्य, प्रायोपगमन—अपने शरीर की परिचर्या न स्वयं करे और न दूसरों से कराए, ऐसे सन्यास पूर्वक मरण को प्रायोग्य या प्रायोपगमन-मरण कहा है।^१

१—उत्तराध्ययन नियुक्ति, माघा २३७-२३६, बृहद् बृति, पत्र २३७-३६।

२—गोमटसार (कर्मकाण्ड), माघा ५७-६१ :

४—मरण के पाँच भेद

मूलाराधना में दूसरे प्रकार से भी मरण-विभाग प्राप्त होता है :

१—पण्डित-पण्डित-मरण,

२—पण्डित-मरण,

३—बाल-पण्डित-मरण,

४—बाल-मरण और

५—बाल-बाल-मरण ।^१

प्रस्तुत अध्ययन में मरण के दो प्रकार बतलाये गये हैं । इस अध्ययन का प्रातःपाद्य है अकाम-मृत्यु का परिहार और सकाम-मृत्यु का स्वीकरण ।

१. मूलाराधना आशवास १, गाथा २६ : पण्डितं पण्डितं मरणं पण्डितं बालपण्डितं येव ।

बालमरणं चउत्थं पंचमयं बालबालं च ॥

उत्तरउभययणं (उत्तराध्ययन)

६८

अध्ययन ५ : श्लोक ५-१०

५—जे गिद्धे काम-भोगेसु
एगे कूडाय गच्छई ।
न मे दिट्ठे परे लोए
चक्खु-दिट्ठा इमा रई ॥

यो गुहः कामभोगेषु
एकः कूटाय गच्छति ।
न मया दृष्टः परो लोकः
वक्षुष्टं पश्ये रतिः ॥

५ जो कोई काम-भोगों में आसक्त होता है, उसकी गति मिथ्या-भाषण की ओर हो जाती है । वह कहता है—परलोक तो मैंने देखा नहीं, यह रति (आनन्द) तो वक्ष-दृष्ट है—आँखों के सामने है ।

६—हत्थागया इमे कामा
कालिया जे अणागया ।
को जाणइ परे लोए
अत्थि वा नत्थि वा पुणो ? ॥

हस्तागता इमे कामाः
कालिका येजनागताः ।
को जानाति परो लोकः
अस्ति वा नास्ति वा पुनः ? ॥

६—ये काम-भोग हाथ में आए हुए हैं । भविष्य में होनेवाले सदृग्ध हैं । कौन जानता है परलोक है या नहीं ?

७—जणेण सद्धि होक्खामि
इइ बाले पगवई ।
काम-भोगाणुराएणं
केसं संपडिबज्जई ॥

“जनेन सार्धं भविष्यामि”
इति बालः प्रगल्भते ।
कामभोगानुरागेण
क्लेशं सम्प्रतिपद्यते ॥

७—“मे लोक-समूदाय के साथ रहूँगा” (जो गति उनकी होगी वही मेरी) —ऐसा मानकर बाल-मनस्य भूट बन जाता है । वह काम-भोग के अनुराग से क्लेश पाना है ।

८—तओ से दण्डं समारभई
तंसमु थावरेसु य ।
अट्ठाए य अणट्ठाए
भूयगमं विहिंसई ॥

ततः स दण्डं समारभते
त्रसेषु स्थावरेषु च ।
अर्थाय चानर्थाय
भूत-प्राप्तं विहिंसति ॥

८—फिर वह उस तथा स्थावर जीवों के प्रति दण्ड का प्रयोग करता है और प्रयोजनवश अथवा बिना प्रयोजन ही प्राणी-समूह की हत्या करता है ।

९—हिंस बाले मुसावाई
माइल्ले पिमुणं सडे ।
भुजमाणं सुरं मसं
सयमेयं ति मन्ई ॥

हिंसो बालो मृषाबादो
मायो पिशुनः शठः ।
भुजानः सुरा मांसं
श्रेय एतदिति मन्यते ॥

९—हिंसा करने वाला, भूट बोलने वाला, छल-कपट करने वाला, बुगली खाने वाला, वैश परिवर्तन कर अपने आपको दूसरे रूप में प्रकट करने वाला अज्ञानी मनुष्य मद्य और मांस का भोग करता है और ‘यह श्रेय है’—ऐसा मानता है ।

१०—कायसा वयसा मत्ते
वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ
सिसुणागु व्व मट्ठियं ॥

कायेन वयसा मत्तः
वित्तं गृह्णन् स्त्रीषु ।
द्विधामलं संचिनोति
शिशुनाग इव मृत्तिकां ॥

१०—बहु शरीर और वाणी से मत्त होता है । धन और स्त्रियों में यत्न होता है । वह राग और द्वेष—दोनों से उसी प्रकार कर्म-मल का संचय करता है जैसे शिशुनाग (अलस या कंबुआ) मूत्र और शरीर—दोनों से मिट्टी का

पंचम अञ्जयण : पंचम अध्ययन अकाम-मरणिज्जं : अकाम-मरणीय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—अण्वसि महाहसि* एगे तिण्णे* दुरुत्तरे । तत्थ एगे महापन्ने इमं पट्टमुदाहरे* ॥	अणवे महीचे एकस्तीर्णां दुरुत्तरे । तत्रां को महाप्राज्ञः इमं स्पष्टमुदाहरेत् ॥	हिन्दी अनुवाद १—इस महा-प्रवाह वाले दुस्तर संसार- समुद्र से कोई तिर गए । उनमें एक महाप्राज्ञ (महावीर) ने स्पष्ट कहा—
२—सन्तिमे य* दुवे ठाणा अक्खाया मारणन्तिा । अकाम-मरणं चैव सकाम-मरणं तथा ॥	स्त इमे च द्वे स्थाने आख्याते मारणान्तिके । अकाममरणं चैव सकाममरणं तथा ॥	२—मूल के दो स्थान कथित हैं— अकाम-मरण और सकाम-मरण ।
३—वालाण* अकामं तु मरणं असइ भवे । पण्डियाणं सकामं तु उक्कोसेण सइ भवे ॥	बालानामकामं तु मरणमसकृत् भवेत् । पण्डितानां सकामं तु उत्कथण सकृत् भवेत् ॥	३—बाल जीवों के अकाम-मरण बार- बार होता है । पण्डितों के सकाम-मरण उत्कथित एक बार होता है ।
४—तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसियं । काम-गिद्धे जहा वाले भिसं कूराइं कुव्वई ॥	तत्र बं प्रथमं स्थानं महावीरेण वैशितम् । काम-गुर्वधो यथा बालो भूषां क्रूराणि करोति ॥	४—महावीर ने उन दो स्थानों में पहला स्थान यह कहा है, जैसे कामासक्त बाल-जीव बहुत क्रूर-कर्म करता है ।

१. महोर्धसि (बु० पा०) ।
२. तरह (बु०, बु०,); तिण्णे (बु० पा०) ।
३. पण्डमुदाहरे (बु० पा०, बु० पा०, छ०) ।
४. लल्ल (बु०); द (बु०) ।
५. वालाण ब (बु०) ।

११—तओ पुढो आयकेणं
गिलाणो परितप्पई ।
पभीओ परलोगस्स
कम्माणप्पेहि अप्पणो ॥

ततः स्पृष्टः आत्मकेन
ग्लानः परितप्यते ।
प्रभीतः परलोकान्त
कामानुश्रेणी आत्मनः ॥

११—फिर वह रोग से स्पृष्ट होने पर
ग्लान बना हुआ परितप करता है । अपने
कर्मों का चिन्तन कर परलोक से भयभीत
होता है ।

१२—सुया मे नरए ठाणा
असीलाणं च जा गई ।
बालाणं क्रूर-कम्माणं
पगाढा जत्थ वेयणा ॥

श्रुतानि मया नरके स्थानानि
अशीलानां च या गतिः ।
बालानां क्रूर-कर्मणां
प्रगाढा यत्र वेदनाः ॥

१२—वह सोचता है—मैंने उन नारकीय
स्थानों के विषय में सुना है, जो शील
रहित तथा क्रूर-कर्म करने वाले अज्ञानी
मनुष्यों की अन्तिम गति है और जहाँ प्रगाढ़
वेदना है ।

१३—तत्थोववाइयं ठाणं
जहा मेयमणुसुयं ।
आहाकम्मेहि गच्छन्तो
सो पच्छा परितप्पई ॥

तत्रौपपातिकं स्थानं,
यथा ममैतदनुभूतम् ।
यथाकर्मभिर्गच्छन्
सः पश्चात् परितप्यते ॥

१३—उन नरकों में जैसा औपपातिक
(उत्पन्न होने का) स्थान है, वैसा मैंने सुना
है । वह आधुन्य क्षीण होने पर अपने कृत-
कर्मों के अनुसार वहाँ जाता हुआ अनुताप
करता है ।

१४—जहा सागडिओ जाणं
समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गामोइणो^१
'अक्खे भग्गमि'^२ सोयई ॥

यथा शाकटिको जानन्,
समं हित्वा महापथम् ।
विषमं मार्गमवलीर्णः,
अक्षे भग्ने शोचति ॥

१४—जैसे कोई गाड़ीवान् समतल राज-
मार्ग को जानता हुआ भी उसे छोड़कर विषम
मार्ग से चल पड़ता है और गाड़ी की धुरी
टूट जाने पर शोक करता है ।

१५—एवं धम्मं विउक्कम्म
अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चु-मुहं पत्ते
अक्खे भग्गे व सोयई ॥

एवं धर्मं व्युत्क्रम्य,
अधर्मं प्रतिपद्य ।
बालः मूल्य-मूलं प्राप्तः,
अक्षे भग्ने इव शोचति ॥

१५—इसी प्रकार धर्म का उल्लंघन कर,
अधर्म को स्वीकार कर, मूल्य के मूल में पड़ा
हुआ अज्ञानी धुरी टूट हुए गाड़ीवान् की
तरह शोक करता है ।

१६—तओ से मरणन्तमि
बाले सन्तस्सई^३ भया ।
अकाम-मरणं मरई
धुत्ते व कलिना जिए ॥

ततः स मरणान्ते,
बालः संनश्यति भवात् ।
अकाम-मरणेन नश्यते,
धूर्त इव कलिना जितः ॥

१६—फिर मरणान्त के समय वह
अज्ञानी मनुष्य परलोक के भय से संनस्त
होता है और एक ही बाध में हार जाने वाले
जुजारी की तरह शोक करता हुआ अकाम-
मरण से मरता है ।

१. मग्गमोवाढा (५०); मग्गमोवाढो (५० पा०) ।

२. अक्खमग्गमि (५०); अक्खस्स भग्गे (५०) ।

३. संतस्सई (५०) ।

१७—एयं अकाम-मरणं
बालाणं तु पवेइयं ।
एत्तो सकाम-मरणं
पण्डियाणं सुणेह मे ॥

१८—मरणं वि सपुण्याणं^१
जहा मेयमणुस्सुयं ।
विप्पसणमणाघायं^२
संजयाण वुत्तीमओ ॥

१९—न इमं 'सव्वेमु भिक्खू सु'^३
न इमं सव्वेमुग्गारिसु ।
नाणा-सीला अगारस्था
विसम-सीला य भिक्खुणो ॥

२०—सन्ति एगेहि भिक्खूहि
गारस्था संजमुत्तरा ।
गारस्थेहि य सव्वेहि
साहवा संजमुत्तरा ॥

२१—चीराजिनं नगिणिणं^४
जडो-संधाडि-मुण्डिणं ।
एयाणि वि न तायन्ति
दुस्सीठं परियागयं ॥

२२—पिण्डोलग व^५ दुस्सीले
नग्गाओ न मुच्चई ।
भिक्खाए वा गिहस्थे वा
सुव्वए कम्मई दिवं ॥

एतदकाम-मरणं,
बालानां तु प्रवेदितम् ।
इतः सकाम-मरणं,
पण्डितानां शृणुत मे ॥

मरणमपि सपुण्यानां,
यथामर्मेतदनुश्रुतम् ।
विप्रसन्नमनाघातं,
संयतानां वृषीमताम् ॥

नेवं सर्वेषां भिक्षुणां,
नेवं सर्वेषां अगरिणाम् ।
नानाशीला अगरस्थाः,
विवमशीलाश्च भिक्षवः ॥

सन्त्येकेभ्यो भिक्षुभ्यः,
अगारस्थाः संयमोत्तराः ।
अगारस्थेभ्यश्च सर्वेभ्यः,
साधवः संयमोत्तराः ॥

चीराजिनं नान्यं,
जटित्यं सङ्घाटोमुण्डित्वम् ।
एतान्यपि न प्रायन्ते,
दुःशीलं पर्यागतम् ॥

पिण्डाबलगो वा दुःशीलो,
नरकान्न मुच्यते ।
भिक्षादो वा गृहस्थो वा,
सुव्रतः क्रामति विवम् ॥

१७—यह अज्ञानियों के अकाम-मरण का
प्रतिपादन किया गया है । अब पण्डितों के
सकाम-मरण को सुनने से सुनो ।

१८—जैसा मैंने सुना भी है—पुण्य-
घाटी, संयमी और जितेन्द्रिय पुरुषों का मरण
प्रगल्भ और आघात रहित होता है ।

१९—यह सकाम-मरण न सब भिक्षुओं
को प्राप्त होता है और न सभी गृहस्थों को ।
क्योंकि गृहस्थ विविध प्रकार के शील वाले
होते हैं और भिक्षु भी विप्र-शील वाले
होते हैं ।

२०—कुछ भिक्षुओं से गृहस्थों का संयम
प्रधान होता है । किन्तु साधुओं का संयम
सब गृहस्थों में प्रधान होता है ।

२१—चीवर, चर्म, मग्नत्व, जटाधारिणत्व,
गण्डी (उत्तरीय वस्त्र) और निर मुद्राना —ये
सब दुष्टशील बान्धव साधु की रक्षा नहीं करते ।

२२—भिक्षा से जीवन चलाने वाला भी
यदि दुःशील हो तो वह नरक में नहीं छूटता ।
भिक्षु हो या गृहस्थ, यदि वह सुव्रती है तो
स्वर्ग में जाता है ।

१. सपुण्याणं (अ) ।

२. विप्पसणमणि अक्खाय (वृ० पा०, वृ०) ; विप्पसणमणाघायं (वृ० पा०) ।

३. सव्वेति भिक्खुणं (वृ०) ।

४. गिसिणिणं (वृ०) ; गिणं (वृ०) ।

५. वि० (अ० वृ०) ।

२३—अगारि-सामाइयंगां

सइढी काएण फासए ।
पोसहं दुहओ पक्खं
एगरायं न हावण ॥

अगारि-सामायिकाइगानि,
श्रद्धी कायेन स्पृशति ।
पौषधं द्वयोः पक्षयोः,
एक रात्रं न हापयति ॥

२३—प्रद्वालु श्रावक गृहस्थ-सामायिक के अंगों का आचरण करे । दोनों पक्षों में किए जाने वाले पौषध को एक दिन-रात के लिए भी न छोड़े ।

२४—एवं शिक्षा-समापन्ने
गिह-वासे^१ वि सुव्वए ।
मुच्चई छवि-पव्वाआ
गच्छे जक्ख-सलोगयं ॥

एवं शिक्षा-समापन्नः,
गृह-वासेऽपि मुवतः ।
मुच्यते छवि-पवंगः,
गच्छेद्द यक्ष-सलोकताम् ॥

२४—इस प्रकार शिक्षा से समापन्न मुन्नरी मनुष्य गृहवास में रहता हुआ भी औदारिक शरीर से मुक्त होकर देवलोक में जाता है ।

२५—अहं जे संवुडे भिक्खू
दाहं अन्नयरे^२ सिया ।
सव्वदुक्ख-प्पहीणे वा
देवे वावि महड्डहए ॥

अथ यः संवृतो भिक्षुः,
द्वयोरन्यतरः स्यात् ।
सर्वं दुःख-प्रहीणो वा,
देवो वाऽपि महद्विकः ॥

२५—जो संवृत-भिक्षु होता है, वह दोनों में से एक होता है—मग दुःखों से मुक्त या महान् ऋद्धि वाला देव ।

२६—उत्तराइं विमोहाइं
जुइमन्ताणुपुव्वसो ।
समाइण्णाइं जक्खेहि
आवासाइं जसंसिणो ॥

उत्तरा विमोहाः,
द्युतिमन्तोऽनुपूर्वशः ।
समाकीर्णा यथैः,
आवासा यदास्विनः ॥

२६—देवताओं के आवास क्रमशः उत्तम, मोह रहित, द्युतिमान् और देवों से आकीर्ण होते हैं । उनमें रहने वाले देव यशस्वी—

२७—दीहाउया इड्डिमन्ता
समिद्धा काम-रुविणो ।
अहुणोववन्न-संकासा
भुज्जो अच्चिमालि-प्पभा ॥

दीर्घायुषः ऋद्धिमन्तः,
समुद्राः काम-रूपिणः ।
अधुनोपपन्नसंकाशा,
भूयोऽर्चिमालिप्रभाः ॥

२७—दीर्घायु, ऋद्धिमान्, दीप्तिमान्, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, अभी उत्पन्न हुए हों—ऐसी कान्ति वाले और सूर्य के समान अति-तेजस्वी होते हैं ।

२८—ताणि ठाणाणि गच्छन्ति
सिक्खित्ता संजमं तवं ।
भिक्खाए वा गिहत्ये वा
जे सन्ति परिनिव्वुडा ॥

तानि स्थानानि गच्छन्ति,
शिक्षित्वा संयमं तपः ।
भिक्षावा वा गृहस्था वा,
ये सन्ति परिनिर्बृताः ॥

२८—जो उपशान्त होते हैं, वे संयम और तप का अभ्यास कर उन देव-आवासों में जाते हैं, भले फिर वे भिक्षु हों या गृहस्थ ।

१. गिह-वासे (व) ।

२. पण्ये (वृ) ।

२९—तेसि सोच्चा सपुज्जार्ण^१
संजयाण वुत्तीमओ ।
न संतसत्ति मरणन्ते
सीलवन्ता बहुसुया ॥

तेषां ध्रुत्वा सत्पूज्यानां,
संयतानां वृत्तीमताम् ।
न सन्तस्यन्ति मरणान्ते,
शीलवन्तो बहुश्रुताः ॥

२९—उन सत्-पूजनीय, समयी और
जितेन्द्रिय भिक्षुओं का पूर्वोक्त विवरण सुनकर
शीलवान् और बहुश्रुत भिक्षु मरणकाल में भी
संक्रान्त नहीं होते ।

३०—तुलिया विसेसमादाय
दया-धम्मस्स खत्तिए ।
विप्पसीएज्ज मेहावी
तहा-भूएण अप्पणा ॥

तोलयित्वा विशेषमादाय,
दया-धर्मस्य क्षान्त्या ।
विप्रसीदन्मेधावी,
तथाभूतेनात्मना ॥

३०—मेधावी मुनि अपने आपको तोल
कर, अकाम और सकाम-मरण के भेद को
जानकर यति-धर्मोचित सहिष्णुता और तथा-
भूत (उपशान्त मौह) आत्मा के द्वारा प्रसन्न
रहे—मरण-काल में उद्विग्न न बने ।

३१—तओ काले अभिप्पेए
सड्ढी तालिसमन्तिए ।
विणएज्ज लोम-हरिसं
भेयं देहस्स कंखए ॥

ततः काल अभिप्रेते,
श्रद्धा तादृशमन्तिके ।
विनम्रेणोष-हर्षं,
भेदं वेहस्य काङ्क्षेत् ॥

३१—जब मरण अभिप्रेत हो, उस समय
जिस श्रद्धा से मुनि-धर्म या सल्लेखना को
स्वीकार किया, वंसी ही श्रद्धा रखने वाला
भिक्षु मरु के समीप कष्ट-जनि रोमांच को
दूर करे, शरीर के भेद की इच्छा करे—उसकी
आर संचाल न करे ।

३२—अह कालमि संपत्ते
'आघायाय समुत्सयं'^२
सकाम-मरणं मरई
तिण्हमन्नयरं मुणी ॥
—त्ति बेमि ।

अथकाले संप्राप्ते,
आघातयन् समुच्छयम् ।
सकाम-मरणेन चिन्त्यते,
त्रयाणामन्यतरेण मुनिः ॥

३२—वह मरण-काल प्राप्त होने पर
सल्लेखना के द्वारा शरीर का त्याग करना है,
भक्त-परिज्ञा, इङ्गिनी या प्रादोषगमन—इन
तीनों में से किसी एक को स्वीकार कर
सकाम-मरण से मरता है ।

—इति त्रयीमि ।

—एता मी कहता हूँ ।

१. सपुज्जार्णं (वृ०) ।

२. सतकथात समाहितो (वृ०) ; आघायाए समुच्छयं (वृ० पा०) ।

सप्तमः अध्यायः :
खुद्दागनियंठिज्जं

षष्ठः अध्यायः :
क्षुद्धक निग्रन्थीय

आखुल

इस अध्ययन का नाम 'खुल्लागनियंतिज्ज'—'खुल्लक निग्रन्धीय' है। दशवैकालिक के तीसरे अध्ययन का नाम 'खुल्लियायारकहा'—'खुल्लकाचार-कथा' और छठे अध्ययन का नाम 'महायारकहा'—'महाचार-कथा' है। इनमें क्रमशः मुनि के आचार का संक्षिप्त और विस्तृत निरूपण हुआ है। इसी प्रकार इस अध्ययन में भी निग्रन्ध के बाह्य और आन्तरिक ग्रन्थ-न्याय (परिग्रह-न्याय) का संक्षिप्त निरूपण है।^१

'निग्रन्ध' शब्द जैन-दर्शन का बहुत प्रचलित और बहुत प्राचीन शब्द है। बौद्ध-साहित्य में स्थान-स्थान पर भगवान् महावीर को 'निगण्ठ' (निग्रन्ध) कहा है। तपागच्छ पट्टावली के अनुसार सुधर्मा स्वामी से आठ आचार्यों तक जैनधर्म 'निग्रन्ध-धर्म' के नाम से प्रचलित था।^२ अशोक के एक स्तम्भ-लेख में भी 'निग्रन्ध' का द्योतक 'निघंठ' शब्द प्रयुक्त हुआ है।^३

अविद्या और दुःख का गहरा सम्बन्ध है। जहाँ अविद्या है वहाँ दुःख है; जहाँ दुःख है वहाँ अविद्या है। पञ्चलिक के शब्दों में अविद्या का अर्थ है—अनित्य में नित्य की अनुभूति, अशुचि में शुचि की अनुभूति, दुःख में सुख की अनुभूति और अनात्मा में आत्मा की अनुभूति।^४

सूत्र की भाषा में विद्या का एक पक्ष है सत्य और दूसरा पक्ष है मंत्री—'अप्यणा सच्चमेसेज्जा मेसि मूएसु कपए (श्लोक २)।' जो कोरे विद्यावादी या ज्ञानवादी हैं उनको मान्यता है कि यथार्थ को जान लेना पर्याप्त है; प्रत्याख्यान की कोई आवश्यकता नहीं। क्रिया का आचरण उनको दृष्टि में व्यर्थ है। किन्तु भगवान् महावीर इसे नाग्वोर्य मानते थे; इसलिए उन्होंने आचरण-शून्य भाषावाद और विद्यानुशासन को अत्राण बतलाया (श्लोक ८-५०)।

ग्रन्थ (परिग्रह) को त्राण मानना भी अविद्या है। इसलिए भगवान् महावीर ने कहा—'परिवार त्राण न्हो है', 'अधनो भो त्राण न्हो है' (श्लोक ३-५)। और तो क्या अपनी देह भी त्राण नहीं है। साधुदेह-सूक्त नहीं होता फिर भी प्रतिपक्ष उसके मन में यह चिन्तन होना चाहिए कि देह-धारण का प्रयोजन पूर्व-कर्मों को क्षीण करना है। लक्ष्य जो है वह बहुत ऊँचा है; इसलिए साधक को नीचे कहीं भी आसक्त नहीं होना चाहिए। उसकी दृष्टि सदा ऊर्ध्वगामी होनी चाहिये (श्लोक १३)। इस प्रकार इस अध्ययन में अध्यात्म की मौलिक विचारणायें उपलब्ध हैं।

इस अध्ययन के अन्तिम श्लोक का एक पाठान्तर है। उसके अनुसार इस अध्ययन के प्रज्ञापक भगवान् पार्श्वनाथ हैं।

मूल—

“एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे।

अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए विद्याहिए ॥”

१. उत्तराज्ज्वयन निर्वृत्ति, भाषा २५३ : सावरज्जांधयुक्का, अहिमन्तरबाहिरणे गयेण। एसा खलु निज्जुणी, खुल्लागनियंतिज्जत्तस ॥

२. तपागच्छपट्टावलि (५० कल्याणविग्रह संपादित) भाग १, पृष्ठ २५३ : श्री सुधर्मास्वासिनीऽश्वी सूरीश यावत् निर्ग्रन्थाः।

३. दिक्खी-दीवरा का सप्तम स्तम्भ लेख : निघंठे वि मे कवे (,) इमे विद्यापटा होहंति।

४. पार्तजल योगसूत्र २।२ : अनित्याद्युचिदुःखानात्मकं निष्प्रयुचिदुःखानात्मक्यातिरविद्या।

पाठान्तर—

एवं से उदाहृ अरिहा पासे पुरिसादाणोस ।

भगवं वेसालीस बुद्धं परिणिक्कुर ॥ (बुद्धं बुद्धि, पत्र ३७०)

यद्यपि चूणि और टीकाकार ने इस पाठान्तर का अर्थ भी महावीर से सम्बन्धित किया है। 'पास' का अर्थ—'पश्यतीति पाशः' या 'पश्यः' किया है। किन्तु यह संगत नहीं लगता। पुरुषादानोय—यह भगवान् पार्श्वनाथ का सुप्रसिद्ध विशेषण है। इसलिये उसके परिपार्श्व में 'पास' का अर्थ पार्श्व ही होना चाहिये। यद्यपि 'वेसालीय' विशेषण भगवान् महावीर से अधिक सम्बन्धित है फिर भी इसके जो अर्थ किये गए हैं उनकी मर्यादा से वह भगवान् पार्श्व का भी विशेषण हो सकता है।^१ भगवान् पार्श्व इक्ष्वाकुवंशी थे। उनके गुण विशाल थे और उनका प्रवचन भी विशाल था, इसलिये उनके 'वंशालिक' होने में कोई आपत्ति नहीं आती। इस पाठान्तर के आधार से यह अनुमान किया जा सकता है कि यह अध्ययन मूलतः पार्श्व की परम्परा का रहा हो और इसे उत्तराध्ययन की शृंखला में सम्मिलित करते समय इसे महावीर की उपदेश-धारा का रूप दिया गया हो।

१. उत्तराध्ययन वर्णि, पृष्ठ १६६-६७ : गुणा अस्य विद्याला इति वैशालीयः, विद्यालं शासनं वा, विद्याले वा इक्ष्वाकुवंशे अथा वैशालिवा ।

"वंशाली जननी यस्य, विद्यालं कुलमेव च । विद्यालं प्रवचनं वा, तेन वैशालिको जितः ॥"

छटमञ्जर्यः षष्ठ अध्यायः खड्गागनिर्यटिज्जः क्षुल्लक निग्रन्थीय

मूल

१—जावन्तऽविज्जापुरिसा,
'सव्वे ते दुक्खसंभवा ।'
नुप्पन्ति बहुसो मूढा
संसारंमि अणन्ताए ॥

संस्कृत छाया

यावन्तोऽविद्याः पुरुषाः
सर्वे ते दुःख-सम्भवाः ।
लुप्यन्ते बहुशो मूढाः
संसारेऽनन्तके ॥

हिन्दी अनुवाद

१—जितने अविद्यावान् (मिथ्यात्व से
अभिभूत) पुरुष हैं, वे सब दुःख को उत्पन्न करने
वाले हैं । वे हिन्दू-मुद् की भाँति मूढ़ बने हुए
इस अनन्त संसार में बार-बार लुप्त होते हैं ॥

२—'समिक्ख पंडिए तम्हा'
पासजाईपहे बहू ।
अप्पणा^१ सच्चमेसेज्जा
मेत्ति भूएसु^२ कप्पए ॥

समीक्ष्य पण्डितस्तस्मान्
पाश-जातिपयान् बहू ।
आत्मना सत्यमेवैषेत्
मेत्री भूतेषु कल्पयेत् ॥

२—इसलिए पण्डित पुरुष प्रचुर पाशों
(बन्धनों) व जाति-पशों (चौरासी लाख
योनियों) की समीक्षा कर स्वयं सत्य की
गवेषणा करे और सब जीवों के प्रति मैत्री का
आचरण करे ।

३—माया पिया ण्हसा भाया
भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
नालं ते मम ताणाय
नुप्पन्तस्स सकम्मुणा ॥

माता पिता स्नुषा भ्राता
भार्या पुत्राश्चोरसाः ।
नालं ते मम त्राणाय
लुप्यमानस्य स्वकर्मणा ॥

३—जब मैं अपने द्वारा किये गये कर्मों
से छेदा जाता हूँ, तब माता, पिता, पुत्र-बन्धु,
भाई, पत्नी और औरस पुत्र—ये सभी मेरी
रक्षा करने में समर्थ नहीं होते ।

४—एयमंठं सपेहाए
पासे समियदंसणे ।
छिन्द गेहि^३ सिणेहं च
न कखे पुव्वसंथवं ॥

एतमर्थं स्वप्रेक्षया
परमेतु समित-दर्शनः ।
छिन्द्याद् गृष्टिं स्नेहं च
न काङ्क्षेत् पूर्व-संस्तवम् ॥

४—सम्यक्-दर्शन वाला पुरुष अपनी
बुद्धि से यह अर्थ देखे, गृष्टि और स्नेह का
छेदन करे, पूर्व परिचय की अभिलाषा न करे ।

१. ते सव्वे दुक्ख मज्झिमा (नागावृत्तीयाः) ।

२. तम्हा समिक्ख मेहावी (वृ०, वृ० पा०) ; समिक्ख पंडिए तम्हा (वृ० पा०) ।

३. अण्ण्डा (वृ० पा०) ।

४. भूएसु (वृ०) ।

५. गेहं (च) ।

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

७८

अध्ययन ६ : श्लोक ५-६

५—गवासं मणिकुंडलं
पसवो दासपोखंसं ।
सव्वमेयं चउत्ताणं
कामरूढी भविस्ससि ॥

१ [यावरं जंगमं चैव
घणं घणं उवक्खरं ।
पञ्चमाणस्स कम्मेहि
नालं दुक्खाउ मोयणं ॥]

६—अज्झत्थं सव्वओ सव्वं
दिस्स पाणे पियायए ।
'न हणे पाणिणो पाणे'
भयवेराओ उवरए ॥

७—आयाणं नरयं दिस्स
नायएज्ज तणामवि ।
'दोगुछी' अप्पणो पाए'
दिन्नं भुंजेज्ज भोयणं ॥

८—इहमेगे उ मन्नन्ति
अप्पञ्चकयाय पावगं ।
आयरियं विदित्ताणं
सव्वदुक्खा विमुच्चई ॥

९—भणन्ता अकरेन्ता य
बन्धमोक्खपइणिणो ।
वायाविरियमेत्तेण
समासासेन्ति अप्पयं ॥

गवासं मणि-कुण्डलं
पसवो दास-पोखेयं ।
सर्वमेतत् त्यक्त्वा
कामरूपी भविष्यति ॥

(त्यावरं जंगमं चैव
घनं धान्यमुपस्करम् ।
पच्यमानस्य कर्मभिः
नालं दुःखान्मोचने ॥)

अध्यात्मं सर्वतः सर्वं
दृष्ट्वा प्राणान्प्रियायुषः ।
न हन्यात्प्राणिनः प्राणान्
भय-वेरादुपरतः ॥

आदानं नरकं दृष्ट्वा
नाददोत तुणमपि ।
जुगुप्सो आत्मनः पात्रे
दत्तं भुंजीत भोजनम् ॥

इहैके तु मन्यन्ते
अप्रत्याक्याय पापकम् ।
आचरितं विदित्वा
सर्व-दुःखा इविमुच्यते ॥

भणन्तोऽजुगन्तव्यं
बन्धमोक्ष-प्रतिज्ञावन्तः ।
वाग्-वीर्य-साधने
समाश्वासयन्त्यात्मानम् ॥

५—गाय, घोड़ा, मणि, कुण्डल, पशु,
दास और पुरुष-समूह—उन सबको छोड़ । ऐसा
करने पर तू काम-रूपी (इच्छानुकूल रूप बनाने
में समर्थ) होगा ।

(चल और अचल संपत्ति, धन, धान्य
और ग्रहोपकरण—ये सभी पदार्थ कर्मों से
दुःख पाते हुए प्राणी को दुःख से मुक्त करने
में समर्थ नहीं होते हैं ।

६—सब दिशाओं से होने वाला सब
प्रकार का अध्यात्म (मुख) जैसे मुने दृष्ट है,
वेसे ही दूसरों को दृष्ट है और सब प्राणियों
को अपना जीवन प्रिय है—यह देखकर भय
और बरं से उपरत पुरुष प्राणियों के प्राणों का
घात न करे ।

७—“परिग्रह नरक है”—यह देखकर
वह एक निनक को भी अपना बनाकर न रखे
(अथवा “अदत्त का आदान नरक है”—यह
देखकर बिना दिया हुआ एक निनका भी न
ले) । असंयम से जुगुप्सा करने वाला मुनि
अपने पात्र में ग्रहण्य द्वारा प्रदत्त भोजन करे ।

८—इस संसार में कुछ लोग ऐसा मानते
हैं कि पापों का त्याग किये बिना ही आचार
को जानने मात्र से जीव सब दुःखों से मुक्त
हो जाता है ।

९—“ज्ञान से ही मोक्ष होता है”—जो
ऐसा कहते हैं, पर उसके लिए कोई क्रिया
नहीं करते, वे केवल बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्त
की स्थापना करने वाले हैं । वे केवल बाणी
की वीरता से अपने आपको आश्वासन देने
वाले हैं ।

१. यह श्लोक वर्ण व दीका में व्याख्यात नहीं है ।

२. जो हितैज पाणिणं पाणे (५०) ; जो हणे पाणिणं पाणे (५० पा०) ।

३. दोगुछी (५०) ।

४. अप्पणो पाणिणस्ते (५० पा० ३) ।

५. आयरियं (५० पा० ३० छ०) ।

१०—न चित्ता तापए भासा
कओ विज्जाणुसासणं ?
विसन्ना पावकम्मेहि'
बाला पंडियमाणिणो ॥

न चित्ता त्रायस्ते भासा
कुतो विद्यानुशासनम् ?
विषय्याः पाप-कर्मभिः
बालाः पण्डित-भानिनः ॥

१०—विविध भाषाएँ त्राण नहीं होतीं ।
बिद्या का अनुशासन भी कहाँ त्राण देता है ?
(जो इनको त्राण मानते हैं वे) अपने आपको
पण्डित बानने वाले अज्ञानी मनुष्य विविध
प्रकार से पाप-कर्मों में डूबे हुए हैं ।

११—जे केई सरीरे सत्ता
वण्णे रुबे य सव्वसो ।
'मणसा कायवक्केण'^१
सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥

ये केचित् शरीरे सत्ताः
वर्णं रूपे च सर्वशः ।
मनसा काय-वाक्येन
सर्वे ते दुःखसंभावाः ॥

११—जो कोई मन, वचन और काया
से शरीर, वर्ण और रूप में सर्वशः आसक्त होते
हैं, वे सभी अपने लिए दुःख उत्पन्न करते हैं ।

१२—आवन्ना दीहमध्वाणं
संसारेमि अणंतए ।
तम्हा सव्वदिसं पस्स
अप्पमतो परिव्वए ॥

आपन्ना दीर्घमध्वानं
संसारेऽनन्तके ।
तस्मान् सर्व दिशो दृष्ट्वा
अप्रमत्तः परिव्रजेत् ॥

१२—वे इस अनन्त संसार में जन्म-
मरण के लम्बे मार्ग को प्राप्त किए हुए हैं ।
इसलिए सब दिशाओं (उत्पत्ति स्थानों) को
देखकर मुनि अप्रमत्त होकर विचरे ।

१३—बहिया उड्डमादाय
नावकंखे क्याइ वि ।
पुव्वकम्मखयट्ठाए
इमं देहं समुद्धरेत् ॥

बहिरूर्ध्वमादाय
नावकाङ्क्षेत् कदाचिदपि ।
पूर्वकर्मभयार्थं
इमं वेहं समुद्धरेत् ॥

१३—ऊर्ध्वलक्षी होकर कभी भी बाह्य
(विषयों) की आकांक्षा न करे । पूर्व कर्मों के
लय के लिए ही इस शरीर को धारण करे ।

१४—विविच्च^२ कम्मुणो हेउं
कालकंखी परिव्वए ।
मायं पिडस्स पाणस्स
कडं लद्धूण भक्खए ॥

विविच्य कर्मणो हेतुं
कालकांक्षी परिव्रजेत् ।
मात्रां पिण्डस्य पानस्य
कृतं लब्ध्वा भक्षयेत् ॥

१४—कर्म के हेतुओं को दूर कर मुनि
समयश होकर विचरे । संयम-निर्बोद्ध के लिए
आहार और पानी की जितनी मात्रा आवश्यक
हो, उतनी गृह्यते के घर में सहज निष्पन्न
प्राप्त कर भोजन करे ।

१५—सन्निहि च न कुव्वेज्जा
लेवमापाए संजए ।
पक्खी पत्तं समादाय
निरवेक्खो^३ परिव्वए ॥

सन्निधि च न कुर्वीत
लेप-मात्रया संयतः ।
भक्षो पात्रं समादाय
निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥

१५—संयमी मुनि लेप लगे उतना भी
संग्रह न करे—बासी न रखे । पक्षी की भौंति
कल की अपेक्षा न रखता हुआ पात्र लेकर
भिक्षा के लिए पर्यटन करे ।

१. पावकिकम्मेहि (हु० पा०) ।

२. मणसा वचसा वेध (वू०, हु) ; मणसा कायवक्केण (हु० पा०) ।

३. निरवेक्खो (अ, आ, इ, उ, हु० पा०) ।

४. निरवेक्खी (वू०) ।

१६—एसणासमिओ लज्जू
गामे अणियओ चरे ।
अप्पमत्तो पमत्तेहि
पिडवायं गवेसए ॥

एषणा-समितो लज्जावान्
ग्रामेऽनियतश्चरेत् ।
अप्रमत्तः प्रमत्तेभ्यः
पिण्डपातं गवेषयेत् ॥

१६—एषणा-समिति से युक्त और
लज्जावान् मुनि गाँवों में अनियत विहार करे ।
वह अप्रमत्त रहकर गृहस्थों से पिण्डपात की
गवेषणा करे ।

१७—‘एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी
अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे ।
अरहा नायपुत्ते
भगवं वेसालिए वियाहिए ॥’
—त्ति वेमि ।

एवं स उदाहृतवान् अनुत्तरज्ञानी
अनुत्तरदर्शी अनुत्तरज्ञानवर्धनधरः ।
अहंन् ज्ञातपुत्रः
भगवान् वंशालिको व्याख्याता ॥
—इति ब्रवीमि

१७—अनुत्तर-ज्ञानी, अनुत्तर-दर्शी,
अनुत्तर-ज्ञान-वर्धन-धारी, अहंन्, ज्ञातपुत्र,
वंशालिक और व्याख्याता भगवान् ने ऐसा
कहा है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सप्तमं अध्यायः :
उरभिज्जं

सप्तम अध्यायः :
उरध्रीय

आस्तुष्य

इस अध्ययन का नामकरण इसके प्रारम्भ में प्रतिपादित 'उरभ' के दृष्टान्त के आधार पर हुआ है।

समवायांग (समवाय ३६) तथा उत्तराध्ययन निर्युक्ति में 'इसका नाम 'उरक्मिज्ज' है। किन्तु अनुयोग-द्वार (सूत्र १३०) में इसका नाम 'एलङ्गज' है। मूल पाठ (श्लोक १) में 'एलयं' शब्द का ही प्रयोग हुआ है 'उरभ' का नहीं। उरभ और एलक—ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, इसलिए ये दोनों नाम प्रचलित रहे हैं।

भ्रामण्य का आधार अनासर्गिक है। जो विषय-वासना में आसक्त होता है, वह कभी दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। विषयातुष्टि में रसासर्गिक का भी प्रमुख स्थान है। जो रसनिष्ठ पर विजय पा लेता है, वह अन्यान्य विषयों को भी सहजतया बश में कर लेता है। इस कथन को सूत्रकार ने दृष्टान्त से समझाया है। प्रथम चार श्लोकों में दृष्टान्त के संकेत दिए गए हैं। टीकाकार ने 'सम्प्रदायादवसेयम्' ऐसा उल्लेख कर उसका विस्तार किया है :

एक सेठ था। उसके पास एक गाय, गाय का बछड़ा और एक नेंदा था। वह नेंदे को खूब खिलाता-पिलाता। उसे प्रतिदिन स्नान कराता, शरीर पर हल्दी आदि का लेप करता। सेठ के पुत्र उससे नाना प्रकार की क्रीड़ा करते। कुछ ही दिनों में वह स्थूल हो गया। बछड़ा प्रतिदिन यह देखता और मन ही मन यह सोचता कि नेंदे का इतना लालन-पालन क्यों हो रहा है ? सेठ का हम पर इतना प्यार क्यों नहीं है ? नेंदे को खाने के लिए जौ देता है और हमें सूखी घास। यह अन्तर क्यों ? इन विचारों से उसका मन उदास हो गया। उसने स्नान-पान करना छोड़ दिया। उसकी माँ ने इसका कारण पूछा। उसने कहा—“माँ ! यह नेंदा पुत्र की तरह लालित-पालित होता है। उसे बढ़िया भोजन दिया जाता है। विशेष अलंकारों से उसे अलंकृत किया जाता है। और एक मैं हूँ मन्द-माग्य कि कोई भी मेरी परवाह नहीं करता। सूखी घास चरता हूँ और वह भी भरपेट नहीं मिलती। समय पर पानी भी नहीं मिलता। कोई मेरा लालन-पालन नहीं करता। ऐसा क्यों है माँ ?”

माँ ने कहा—

“आउरचिन्नाङ्गं एयाङ्गं जाङ्गं चरङ्गं नंदिओ ।

सुककत्तणेहिं लाढाहिं, एयं दीहाउलक्खणं ॥ (उत्त० नि० गा० २४६)

“वरस ! तू नहीं जानता। नेंदा जो कुछ खा रहा है, वह आतुर-लक्षण है। आतुर (मरणासन्न) प्राणी को पथ्य और अपथ्य जो कुछ वह चाहता है, दिया जाता है। सूखी घास खाकर जोना दीर्घायु का लक्षण है। इस नेंदे का मरण-काल सन्निकट है।”

कुछ दिन बीते। सेठ के घर मेहमान आए। बछड़े के देखते-देखते मोटे-ताजे नेंदे के गले पर छुरी चली और उसका मांस पकाकर मेहमानों को परोसा गया। बछड़े का दिल भय से मर गया। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। माँ ने कारण पूछा। बछड़े ने कहा—“माँ ! जिस प्रकार नेंदा मारा गया क्या मैं भी मारा जाऊँगा ?” माँ ने

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, पाथा २४६ :

उरवाङ्गामगोर्धं, वेपथो मावन्तो उ ओरक्मो ।

तथो ससुद्धिमिणं, उरभिमज्जन्ति अक्खणं ॥

कहा—“वत्स ! यह भय वृथा है । जो रस-गुच्छ होता है, उसे उसका फल भी भोगना पड़ता है । तू सूखी बास चरता है; अतः तुझे ऐसा कटु विपाक नहीं सहना पड़ेगा ।”^१

इसी प्रकार द्विसक, अन्न, मृधावादी, मार्ग में लूटने वाला, चोर, मायावी, चुराने की कल्पना में व्यस्त, शठ, स्त्री और विधियों में गुच्छ, महाभारतम और महापरिग्रह वाला, सुरा और मांस का उपभोग करने वाला, दूसरों का दमन करने वाला, बकरे की तरह कर-कर शब्द करते हुए मांस खाने वाला, तोंद वाला और उपस्थित रक्त वाला व्यक्ति उसी प्रकार नरक के आयुष्य की आकांक्षा करता है जिस प्रकार मेमना पाहुने की । (श्लोक ५-७)

भगवान् महावीर ने कहा—“अल्प के लिए बहुत को मत सोओ । जो ऐसा करता है, वह पीछे पश्चात्ताप करता है ।”^२ इसी भावना को सुनकार ने दो दृष्टान्तों से समझाया है :

(१) एक दमक था । उसने मोल मांग-मांग कर एक हजार कार्यापण एकत्रित किए । एक बार वह उन्हें साथ ले एक सार्धवाह के साथ अपने घर की ओर चला । रास्ते में भोजन के लिए उसने एक कार्यापण को काकिणियों में बदलाया और प्रतिदिन कुछ काकिणियों को स्पर्ध कर भोजन लेता रहा । कई दिन बीते । उसके पास एक काकिणी शेष बची । उसे वह एक स्थान पर भूल आया । कुछ दूर जाने पर उसे वह काकिणी याद आ गई । अपने पास के कार्यापणों की नौली को एक स्थान पर गाड़ उसे लाने दौड़ा । परन्तु वह काकिणी किसी दूसरे के हाथों पड़ गई । उसे बिना प्राप्त किए लौटा तब तक एक व्यक्ति उस नौली को लेकर भाग गया । वह लुट गया । उद्यो-स्थौं वह घर पहुँचा और पश्चात्ताप में डूब गया ।^३

(२) एक राजा था । वह आम बहुत खाता था । उसे आम का अजीर्ण हुआ । वैद्य आए । चिकित्सा की । वह स्वस्थ हो गया । वैद्यों ने कहा—“राजन् । यदि तुम पुनः आम खाओगे तो जीवित नहीं बचोगे ।” उसने अपने राज्य के सारे आज्ञ के वृक्ष उखाड़वा दिए । एक बार वह अपने मन्त्री के साथ अश्व-क्रोड़ा के लिए निकला । अश्व बहुत दूर निकल गया । वह थक कर एक स्थान पर रुका । वहाँ आम के बहुत वृक्ष थे । मन्त्री के मिथैय करने पर भी राजा एक आज्ञ वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठा । वहाँ अनेक फल गिरे पड़े थे । राजा ने उन्हें छुआ

१. बृहद् वृत्ति पत्र २७२-७४ :

जहंगो ऊरगो पाहुणपणिमिं पोंसजति, सो पीणियसरीरो छहातो हलिहायिकथंगरागो कयकणकूलतो कुमारया य तं नाणाविहंदि कीकाविसेसेहि कीकावेति, तं च वच्छामो एवं काकिजमाणं वदतूण माऊए गेहेण य गोविषं दोहएण य तथपुष्पाए मुक्कमि खीरं ण पिबति रोतेण, ताए पुच्छामो भणति—अम्मो ! एस गंविपगो सन्नेहि एएहि अम्हासिसाकेहि अइहि जवसजोगासणेहि तदुवधोगेहि च अलंकारविसेसेहि अलंकारितो पुत्त इव परिपाकिजति, अइं तु मंदभगो छज्जणि तणावि काहेवि लभामि, तणावि ण पज्जत्ताणि, एवं पाणिषयि, ण य मं कोऽवि छालेति । ताए भणति—पुत्त ! जहा आठरो मरिउकामो जं मग्गति पयं वा अपयं वा तं दिजति से, एवं सो गंवितो मारिजिहति जहा तदा पोंच्छहि । ततो सो वच्छामो तं नंविपयं पाहुणगेछ आगएछ बच्चिजमाणं वदतू तिसिंकोऽवि अएणं माऊए यणं णामिखसति, ताए भणति—किं पुत्त ! अयनीतोऽसि !, गेहेण पणुषयि मं ण पिबसि, तेण भणइ—अम्म ! कतो मे यणा मिलासो ?, णणु सो वरातो गंवितो अज केहि वि पाहुणएहि आगएहि मं मग्गतो विणंगगयडीहो विलोउमयणो विस्सरं रसंतो अत्ताणो असरणो मारितो, तन्मयातो कतो मे पाउमिच्छा ?, ततो ताए भणति—पुत्त ! णणु तदा वेव ते काहियं, जहा—“आउरविण्णाइं...पीहाउलक्खणं”, एस तसि विवागो अनुपसो ।

२. बही, पत्र २७६ :

एगो इसगो, तेण विपिं करेतेण सहस्सं काहावमाण अजिजं, सो य तं गहाय सरणेण समं सगिहं पत्थितो, तेण अर्धपणिमिं रुवगो काणिणीहि भिम्भो, ततो विणे विणे काणिणीए भुंजति, तस्स य अवसेसा एगा काणिणी, सा बिस्सारिया, तस्ये पहाविप सो चित्तेति—मा मे रुवगो भिदियन्वो इहंदिनि गण्डलं रागय गोवेदं काणिणीमिंसिं णियत्तो, सावि काणिणी अन्नेण इहा, सोऽवि गण्डलतो अयणेण विट्ठो ठविरजंतो, सोवि तं येपूणं गट्ठो, पच्छा सो घरं गतो सोचति ।

और सूँधा तथा खाने को इच्छा व्यक्त की। मंत्री ने निषेध किया पर राजा नहीं माना। उसने मरपेट आम खाए। उसको तत्काल मृत्यु हो गई।^१

इसी प्रकार जो मनुष्य मानवीय काम-भोगों में आसक्त हो, धोड़ से सुख के लिए मनुष्य-जन्म गँवा देता है वह शाश्वत सुखों को हार जाता है। देवताओं के काम-भोगों के समक्ष मनुष्य के काम-भोग तुच्छ और अल्पकालीन हैं। दोनों के काम-भोगों में आकाश-पाताल का अन्तर है। मनुष्य के काम-भोग कुश के अग्रभाग पर टिके जल-बिन्दु के समान हैं और देवताओं के काम-भोग समुद्र के अपरिणेत जल के समान हैं (श्लोक २३)। अतः मानवीय काम-भोगों में आसक्त नहीं होना चाहिए।

जा मनुष्य है और अगले जन्म में भी मनुष्य हो जाता है, वह मूल पूँजी को सुरक्षा है। जो मनुष्य-जन्म में अध्यात्म का आचरण कर आत्मा को पवित्र बनाता जाता है, वह मूल को बढ़ाता है। जो विषय-वासना में फँसकर मनुष्य जीवन का हार देता है—तंत्र्यं यथा मरक मे चला जाता है—वह मूल को भोग गँवा देता है (श्लोक १५)। इस आशय को सूत्रकार ने निम्न व्यावहारिक दृष्टान्त से समझाया है :

एक बानियाँ था। उसके तीन पुत्र थे। उसने तीनों को एक-एक हजार कार्षापण देते हुए कहा—“इनसे तुम ताने व्यापार करो और अमुक समय के बाद अपनी-अपनी पूँजी ले मेरे पास आओ।” पिता का आदेश पा तीनों पुत्र व्यापार के लिए निकले। वे एक नगर में पहुँचे और तीनों अलग-अलग स्थानों पर ठहरे। एक पुत्र ने व्यापार आरम्भ किया। वह सादगो से रहता और भोजन आदि पर कम खर्च कर धन एकत्रित करता। इससे उसके पास बहुत धन एकत्रित हो गया। दूसरे पुत्र ने भी व्यापार आरम्भ किया। जो काम होता उसको वह भोजन, मकान, वस्त्र आदि में खर्च कर देता। इससे वह धन एकत्रित न कर सका। तीसरे पुत्र ने व्यापार नहीं किया। उसने अपने शरीर-पोषण और व्यसनो में सारा धन गँवा डाला।

तीनों पुत्र यथासमय घर पहुँचे। पिता ने सारा वृत्तान्त पूछा। जिसने अपनी मूल पूँजी गँवा डाली थी, उसे नोकर के स्थान पर नियुक्त किया, जिसने मूल को सुरक्षा की थी, उसे गृह का काम-काज सौंपा और जिसने मूल को बढ़ाया था, उसे गृहस्वामी बना डाला।^२

मनुष्य-भव मूल पूँजी है। देवगति उसका लाभ है और नरकगति उसका क्षेदन है।

१. इहहं वृत्ति, पत्र २७० :

जहा कस्सइ वरुणो अंबाजिणंण विसुइया जाया, सा तस्स वेज्जेहि महता जत्तं तिगिच्छया, भणितो य—अदि पुणो अंबाजि खासि तो विजस्सति, तस्स य अतीव पीयाणि अंबाणि, तेण सदेसे सज्जे अंबा उच्छादिंया। अगणया अस्सबाहुणिवाए णिग्गतो सह अमचवेण, अस्सेण अवहरिओ, अस्सो दूरं गंतुं परितस्सतो ठितो, एगमि वणसंढं वृत्तच्छायाते अमचवेण वारिज्जमाओऽपि णिवदो, तस्स य हेट्ठं अंबाणि पट्ठियाणि, सो ताणि परामुसति, पच्छा अग्घाति, पच्छा चत्तिखडं णिदुइति, अमचो वारेह, पच्छा मक्खेडं मतो।

२. वही, पत्र २७८-९ : जहा एगस्स बाणिग्गस्स तिप्पि उता, तेण तंति सइस्सं सइस्सं दिन्नं काहावणाणं भणिया य—एएण ववहरिऊण एत्तिण्ण कालेण एज्जाह, ते तं मूलं वत्तं णिग्गया सणारातो, विधप्पिथं पहेणं ठिया, तथेयो भोयणच्छायणवत्तं जयमज्जमंसेवाच-सणविरहितो विहीए ववहरमाणो विपुलभासमण्णितो जातो, वितितो पुण मूलमवि दव्वंतो लाभं भोयणच्छायणमल्लालंकारादि उवभुज्जति, ण य अच्चादरेण ववहरति, ततितो न किंचि संवहरति, केवलं जयमज्जमंसेवाचमल्लंतबोलसरीरकिवाए अप्पेण कालेण तं दव्वं णिदुविधत्ति, जहावाहिकालस्स सएवमागया। तत्थ जो छिन्नमूलो सो सव्वस्स अनामी जातो, पेसए उवचरिज्जति, वितितो वरवावारे णित्तो अण्णणसंनुदो ण दावच्चभोत्तब्बेह ववसायति, ततितो वरविचरस्स सामी जातो।

इस अध्ययन में पाँच दृष्टान्तों का निरूपण हुआ है ।^१ उनका प्रतिपाद्य भिन्न-भिन्न है । प्रथम (उरन्न) दृष्टान्त विषय-भोगों के कटु-विपाक का दर्शन है (श्लोक १ से लेकर १० तक) । दूसरे और तीसरे (काकिणी और आमफल) दृष्टान्तों का विषय देव-भोगों के सामने मानवीय-भोगों की तुच्छता का दर्शन है (श्लोक ११ से लेकर १३ तक) । चौथे (व्यवहार) दृष्टान्त का विषय आय-व्यय के विषय में कुशलता का दर्शन है (श्लोक १४ से २२ तक) । पाँचवे (सागर) दृष्टान्त का विषय आय-व्यय की तुलना का दर्शन है (श्लोक २३ से २४ तक) ।

इस प्रकार इस अध्ययन में दृष्टान्त श्रौंठी से गहन तत्त्व की बड़ी सरस अभिव्यक्ति हुई है ।

१. उत्तराध्ययन निबृक्ति, गाथा २४७ : ओरन्ने अ काकिणी, अंबए अ बवहार सागरे वेव ।

पंचेण दिट्ठं ता, उरन्निमज्जंमि अरुक्कण ॥

सप्तमं अञ्जयणं : सप्तमं अध्यायनं उरग्भिज्जं : उरग्रीयम्

मूल
१—जहाएसं समुद्दिस्स
कोइ पोसेज्ज एलयं ।
ओयणं 'जवसं देज्जा'
पोसेज्जा 'वि सयंगणे'^१ ॥

संस्कृत ध्याया
यथावेशं समुद्दिश्य
कोऽपि पोषयेदेडकम् ।
ओदनं यवसं दद्यात्
पोषयेदपि स्वयम्भुजम् ॥

हिन्दी अनुबाव
१—जैसे पाहुने के उद्देश्य से कोई मेमने
का पोषण करता है । उसे चावल, मूँग, उड़द
आदि खिलाता है और अपने आँगन में ही
पात्रता है ।

२—तओ से पुट्टे परिवूढे
जायमेए महोदरे ।
पीणिए विउले देहे
आएसं परिकंखए'^२ ॥

ततः स पुष्टः परिपूढः
जातमेवाः महोदरः ।
प्रीणितो विपुले देहे
आवेशं परिकाङ्क्षति ॥

२—इस प्रकार वह पुष्ट, बलवान्, मोटा,
बड़े पेट वाला, ठूस और विपुल देह वाला
होकर पाहुने की आकाङ्क्षा करता है ।

३—जाव न एह^३ आएसे
ताव जीवइ से दुही ।
अह पत्तमि आएसे
सीसं छेतूण भुजई ॥

यावन्नेत्यावेशः
तावज्जीवति सोऽनुत्तमः ।
अथ प्राप्त आवेशे
शीघ्रं छित्त्वा भुज्यते ॥

३—जब तक पाहुना नहीं आता है तब
तक ही वह बेचारा जीता है । पाहुने के आने
पर उसका सिर छेदकर उसे खा जाते हैं ।

४—जहा खलु से उरग्भे
आएसाए समीहिए ।
एवं बाले अहम्मिहे
ईहई नरयाउयं ॥

यथा खलु स उरग्नः
आवेशाय समीहितः ।
एवं बालोऽधमिष्ठः
ईहते नरकायुष्कम् ॥

४—जैसे पाहुने के लिए निश्चित किया
हुआ वह मेमना यथार्थ में उसकी आकाङ्क्षा
करता है, वैसे ही अधमिष्ठ अज्ञानी जीव
यथार्थ में नरक के आयुष्य की इच्छा करता है ।

१. जवसे देवि (वू०) ।

२. विसयंगणे (वू० पा०, वू०) ।

३. पवि० (वू०); परि० (वू०-पा०) ।

४. एल्लति (वू०) ।

५—हिंसे बाले^१ मुसावाई
अद्धानिमि विलोपः ।
अन्नदत्तहरे तेणे^२
माई कण्ठहरे^३ सडे ॥

६—इत्थोविसयगिद्धे य
महारंभपरिग्गहे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं
परिवूढे परंदमे ॥

७—अयककरंभोई य
तुंदिल्ले चियलोहिण^४ ।
आउयं नरण कखे
जहाएसं व एलए ॥

८—आसनं सयणं जाणं
चित्तं कामे य भुंजिया ।
दुस्साहडं धणं हिच्चा
बहुं संचिण्या रयं ॥

९—तओ कम्मगुरू जन्तू
पच्चुप्पन्नपरायणे^५ ।
अयं व्व आगयाएसे
मरणन्तंमि सोयई ॥

१०—तओ आउपरिकवीणे
'चुया देहा'^६ विहिंसगा^७ ।
आमुरियं दिसं बाला^८
'गच्छन्ति अवसा'^९ तमं ॥

हिलो बालो मुसावादी
अब्धनि विलोपकः ।
अन्यदत्तहरः स्तेनः
मायीकुलोहरः गडः ॥

स्त्री-विषय-गृहश्च
महारम्भ-परिग्रहः ।
भुञ्जानः सुरां मांसं
परिवृढः परन्दमः ॥

अजककरं भोजी च
तुम्बिलः चित्तलोहितः ।
आयुर्नरके काङ्क्षति
यथाऽऽदेशमिव एडकः ॥

आसनं शयनं यानं
चित्तं कामादिव भुक्त्वा ।
दुःसहृतं धनं हित्वा
बहुं सन्धित्य रजः ॥

ततः कर्मगुरुर्जन्तुः
प्रत्युत्पन्नपरायणः ।
अज इव आगते आविशे
मरणान्ते शोचति ॥

तत आमृषि परिकीणे
च्युताः देहा इव विहिंसकाः
आसुरीयां विशं बालाः
गच्छन्ति अवशाः तमः ॥

५—हितक, अज, मुसावादी, मार्ग में
लूटने वाला, दूसरों की चीजें बस्तु का बीच
में ही हरण करने वाला, चोर, मायावी, चुराने
की कल्पना में व्यस्त (किसका धन हरण
करूँगा—ऐसे अव्यवसाय वाला), शठ,

६—स्त्री और विषयों में गृह, महाराज
और महापरिग्रह वाला, सुरा और मांस का
उपभोग करने वाला, बलवान्, दूसरों का दमन
करने वाला,

७—बकरे की भैंसि कर-कर शब्द करते
हुए मांस को खाने वाला, तोड़ वाला और
उपचित लोही वाला व्यक्ति, उसी प्रकार नरक
के आयुष्य की आकाङ्क्षा करता है, जिस
प्रकार भेमना पाहुने की ।

८—आसन, शय्या, यान, धन और
काम-विषयों को भोगकर, दुःख से एकजित
किये हुए धन को खूट आदि के द्वारा गँवाकर,
बहुत कर्मों को संचित कर --

९—कर्मों से भारी बना हुआ, केवल
वर्तमान को ही देखने वाला जीव मरणान्त-
काल में उसी प्रकार शोक करता है जिस
प्रकार पाहुने के जाने पर भेमना ।

१०—फिर आयु क्षीण होने पर वे ताना
प्रकार की हिंसा करने वाले कर्मवचस्वी
अज्ञानी जीव देह से च्युत होकर अन्धकारपूर्ण
आसुरीय विद्या (नरक) की ओर जाते हैं ।

१. कोही (वृ० पा०) ।

२. बाले (वृ०); तेणे (वृ० पा०) ।

३. कन्ठहरे (वृ०); कन्ठहरे (छ०) ।

४. स्तोणिण (ड, ष्ट०) ।

५. पल्लवजणे (वृ०) ।

६. चुओदेहा (वृ०); चुषदेहो (वृ० पा०) ।

७. विहिंसगो (वृ०) ।

८. बालो (वृ०) ।

९. गच्छइ अवसो (वृ०) ।

११—जहा कागिणिह हेउं
सहसं हारए नरो ।
अपथं अम्बगं भोच्चा
राया रज्जं तु हारए ॥

१२—एवं माणुस्सगा कामा
देवकामाण अन्तिह ।
सहस्सगुणिया भुजो
आउं कामा य^१ दिव्विया ॥

१३—अणेगवासानउया
जा सा पन्नवओ ठिई ।
जाणि जीयन्ति^२ दुम्मेहा
ऊणे वाससयाउए ॥

१४—जहा य तिन्नि वणिगा
मूलं घेत्तूण निग्गया ।
एगोऽथ लहई लाहं
एगो मूलेण आगओ ॥

१५—एगो मूलं पि हारित्ता
आगओ तत्थ वाणिजो ।
ववहारे उवमा एसा
एवं धम्मे वियाणह ॥

१६—माणुसत्तं भवे मूलं
लाभो देवगई भवे ।
मूलच्छेएण जीवाणं
नरगतिरिक्खत्तणं धुव ॥

यथा काकिण्या हेतोः
सहस्रं हारयेन्नरः ।
अपथ्यमाश्रकं भुक्त्वा
राजा राज्यं तु हारयेत् ॥

एवं मानुष्यकाः कामाः
देवकामानामन्तिके ।
सहस्र-गुणिता भूयः
आयुः कामाश्च दिव्यकाः ॥

अनेकवर्ष-नयुतानि
या सा प्रज्ञावतः स्थितिः ।
यानि जीयन्ते दुर्मुखसः
ऊने वर्षशतायुषि ॥

यथा च त्रयो वणिजः
मूलं गृहीत्वा निगताः ।
एकोऽत्र लभते लाभम्
एको मूलेनागतः ॥

एकोमूलमपि हारयित्वा,
आगतस्तत्र वाणिजः ।
व्यवहार उपमेया
एवं धर्मं विजानीत ॥

मानुष्यत्वं भवेन्मूलं
लाभो देवगतिर्भवेत् ।
मूलच्छेदेन जीवानां
नरक-तिर्यक्त्वं प्रुष्यत् ॥

११—जैसे कोई मनुष्य काकिणी के लिए
हजार (कार्षापण) गँबा देता है, जैसे कोई
राजा अपथ्य आम को खाकर राज्य से हाथ
धो बैठता है, वैसे ही जो व्यक्ति मानवीय भोगों
में आसक्त होता है, वह देवी भोगों को हार
जाता है ।

१२—देवी भोगों की तुलना में मनुष्य के
काम-भोग उतने ही नगण्य हैं जितने कि हजार
कार्षापणों की तुलना में एक काकिणी और
राज्य की तुलना में एक आम । दिव्य आयु
और दिव्य काम-भोग मनुष्य की आयु और
काम-भोगों से हजार गुना अधिक हैं ।

१३—प्रज्ञावान् पुत्र्य की देवलोक में
अनेक वर्ष नयुत (असंख्यकाल) की स्थिति होती
है—यह ज्ञात होने पर भी मूर्ख मनुष्य लो
वर्षों से कम जीवन के लिए उन दीर्घकालीन
पुत्रों को हार जाता है ।

१४—जैसे तीन वणिक् मूल पूँजी को
लेकर निकले । उनमें से एक लाभ उठाता है,
एक मूल लेकर लौटता है ।

१५—और एक मूल को भी गँबाकर
बापस आता है । यह व्यापार की उपमा है ।
इसी प्रकार धर्म के विषय में जानना चाहिए ।

१६—मनुष्यत्व मूलघन है । देवगति
लाभ रूप है । मूल के नाश से जीव निश्चित
ही नरक और तिर्यक् गति में जाते हैं ।

१. उ (उ०) ।

२. हारिणि (ह० पा०) ।

१७—दुहओ गई बालस्स
आवई वहूमलिया ।
देवत्तं माणुसत्तं च
जं जिए लोलासठे ॥

१८—तओ जिए सइं होइ
दुविहं दोगइं गए ।
दुइहा तस्स उम्मजा
अद्धाए मुइरादवि ॥

१९—एवं जियं सपेहाए
तुलिया बालं च पंडियं ।
मूलियं ते पवेसन्ति
माणुसं जोणिमेत्ति जे ॥

२०—वेमायाहिं सिकवाहिं
जे नरा गिहुमुव्वया ।
उवेत्ति माणुसं जोणि
कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥

२१—जेसि तु बिउला सिकवा
मूलियं ते अडच्छिया* ।
सोलवन्ता सवीसेसा
अदीणा जन्ति देवयं ॥

२२—एवमदीणवं* भिक्खुं
अगारि* च बियाणिया ।
कहणुं जिच्चमेलिक्खं
'जिच्चमाणे न' संविदे ? ॥

द्विधा गतिर्बालस्य
आपह वध-मलिका ।
देवत्वं मानुषत्वं च
यजितो लोला-शठः ॥

ततो जितः सदा भवति
द्विविधां दुर्गतिं गतः ।
दुर्लभा तस्योन्मज्जा
अद्धायां मुचिरादपि ॥

एवं जितं सम्प्रेष्य
तोलयित्वा बालं च पण्डितम् ।
भौलिकं ते प्रविशन्ति
मानुषीं योनिमायान्ति ये ॥

विमान्नाभिः शिक्षाभिः
ये नरा गृहि-सुव्रताः ।
उपयन्ति मानुषीं योनिं
कर्म-सत्याः खलु प्राणितः ॥

येषां तु विपुला शिक्षा
भौलिकं तेऽतिक्रम्य ।
शौलवन्तः सविज्ञेयाः
अदीना यान्ति देवताम् ॥

एवमर्धन्यवन्तं भिक्षुं
अगारिणं च विज्ञाय ।
कथं नु ज्ञेयते ईदृशं
ज्ञेयमालो न संविदे ? ॥

१७—अज्ञानी जीव की दो प्रकार की गति होती है—नरक और तिर्यञ्च । वहाँ उसे वध-हेतुक आपदा प्राप्त होती है । वह लोलुप और वचक पुरुष देवत्व और मनुष्यत्व को पहले ही शर जाना है ।

१८—द्विविध दुर्गति में गया हुआ जीव मरा होगा हुआ होगा है । उसका उन्मो बाहर भ्रमलना दीर्घकाल के बाद भी दुर्लभ है ।

१९—इस प्रकार होकर हुए को देवकर मरा बाल और पण्डित की मुलना कर जो मानुषी योनि में प्राते हैं, वे मूलधन के साथ प्रवेश करते हैं ।

२०—जो मनुष्य विविध परिमाण वाली शिक्षाओं द्वारा घर में रहते हुए भी सुव्रती है, वे मानुषी योनि में उत्पन्न होते हैं । क्योंकि प्राणी कर्म-सत्य होते हैं—अपने किये हुए का फल अवश्य पाते हैं ।

२१—जिनके पास विपुल शिक्षा है, वे शौल-मपन्न और उत्तरोत्तर गणों को प्राप्त करने वाले पराक्रमी (अदीन) पुरुष मूलधन (मनुष्यत्व) का अनिग्रसन करके देवत्व को प्राप्त होते हैं ।

२२—इस प्रकार पराक्रमी भिक्षु और पण्डित को (अर्थात् उनके पराक्रम-मूल को) जानकर बिदेकी पुरय ऐसे लाभ को कैसे कोएया ? वह कथाओं के द्वारा पराजित होता हुआ क्या यह नहीं जानता कि "मैं पराजित हो रहा हूँ ?" यह जानते हुए उसे पराजित नहीं होना चाहिए ।

१. जिए (६०) ।

२. जोणिमेत्ति (उ, ५०) ।

३. कम्मसच्चा (६० पा०, ५० पा०) ।

४. तिडच्छिया (अ) ; ते उट्ठिया (५०) ; ते अडच्छिया (५० पा०) ; विडट्ठिया, अतिट्ठिया, अतिच्छिया (६०) ।

५. एवं अदीणवं (५०, ६०) ।

६. आगारि (उ, ५०) ।

७. जिच्चमाणं च (५०) ।

२३—जहा कुसग्गे उदगं
समुद्रेण समं मिणे ।
एवं माणुस्सगा कामा
देवकामाण अन्तिण ॥

२४—कुसग्गमेता इमे कामा
सन्निच्छंमि आउए ।
कस्स हेउं पुराकाउं
जोगक्खेमं न सविदे ? ॥

२५—इह कामाणियट्टस्स
अत्तट्ठे अवरज्जई ।
'सोच्चा' नेयाउयं मग्गं
जं भुज्जो परिभस्सई' ॥

२६—इह कामाणियट्टस्स
अत्तट्ठे नावरज्जई ।
पूइदेहनिरोहेणं
भवे देवि त्ति मे सुयं ॥'

२७—डड्ढी जुई जसो वण्णो
आउं सुहमणुत्तरं ।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु
तत्थ से उववज्जई ॥

२८—बालस्स पस्स बालत्तं
अहम्मं पडिवज्जिया' ।
विच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे
नरए' उववज्जई ॥

यथा कुशाग्र उदकं
समुद्रेण समं भिनुयान् ।
एवं मानुष्यकाः कामाः
देव-कामानामन्तिके ॥

कुशाग्र-मात्रा इमे कामाः
सन्निरुद्धे आयुषि ।
कं हेतुं पुरस्कृत्य
योग-क्षेमं न सन्ति ?

इह कामाऽनिवृत्तस्य
आत्मार्याऽपराध्यति ।
श्रुत्वा नैयतिकं मार्गं
यद् भूयः परिभ्रष्टति ॥

इह काम-निवृत्तस्य
आत्मार्यां नापराध्यति ।
पूतिदेह-निरोधेन
भवेद् देव इति मयाश्रुतम् ॥

ऋद्धिर्द्युतिर्यशोवर्णः
आयुः सुखमनुत्तरम् ।
भूयो यत्र मनुष्येषु
तत्र स उपपद्यते ॥

बालस्य पश्यबालत्वम्
अधर्मं प्रतिपद्य ।
त्यक्त्वा धर्ममधर्मिणः
नरके उपपद्यते ॥

२३—मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग, देव सम्बन्धी काम-भोगों की तुलना में वैसे ही हैं, जैसे कोई व्यक्ति कुश की नोक पर टिके हुए जल-बिन्दु की समुद्र से तुलना करता है ।

२४—इस अति-संक्षिप्त आयु में ये काम-भोग कुशाग्र पर स्थित जल-बिन्दु जितने हैं । फिर भी किस हेतु को सामने रखकर मनुष्य योग-क्षेम को नहीं समझता ?

२५—इस मनुष्य भव में काम-भोगों से निवृत्त न होने वाले पुण्य का आत्म-प्रयोजन नष्ट हो जाता है । वह पार ले जाने वाले मार्ग को मुनकर भी बार-बार भ्रष्ट होता है ।

२६—इस मनुष्य भव में काम-भोगों से निवृत्त होने वाले पुण्य का आत्म-प्रयोजन नष्ट नहीं होता । वह पूतिदेह (शौचार्क शरीर) का निरोध कर देव होता है—रोमा देने मुता है ।

२७—(देवलोक से श्रुत होकर) वह जीव विपुल ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण, जीवित और अनन्तर मुख वाले मनुष्य-कुलों में उत्पन्न होता है ।

२८—तू बाल (अज्ञानी) जीव की मूर्खता को देख । वह अधर्म को ग्रहण कर, धर्म को छोड़, अधर्मिष्ठ बन नरक में उत्पन्न होता है ।

१. पुरोकाउं (५०) ।

२. पत्तो (५० पा०, ५० पा०) ।

३. पूइदेह निरोहेणं
अवे देवे त्ति मे सुयं (५० पा०) ।

४. यह श्लोक बर्मा में व्याख्यात नहीं है ।

५. पडिवज्जिया (अ, ५० पा०) ।

६. नरए (अ, ५) ।

उत्तरजम्भयणं (उत्तराध्ययन)

६२

अध्ययन ७ : श्लोक २६-३०

२९—धीरस्स पस्स धीरत्तं
सन्वधम्माणुवत्तिणो ।
चिच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे'
देवेसु उववज्जई ॥

धीरस्य पश्य धीरत्वं
सन्वधमनुवर्तिनः ।
त्यक्त्वाऽधर्मं धर्मिष्ठः
देवेषु उपपद्यते ॥

२९—सब धर्मों का पालन करने वाले
धीर-पुरुष की धीरता को देख । वह अधर्म को
छोड़कर धर्मिष्ठ बन देवों में उत्पन्न होता है ।

३०—तुलियाण बालभावं
अबालं चेव पण्डिए ।
चदऊण बालभावं
अवाठं सेवए मुणि ॥
—त्ति वेमि ।

तोलयित्वा बाल-भावम्
अबालत्वं चैव पण्डितः ।
त्यक्त्वा बाल-भावम्
अबालत्वं सेवते मुनिः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३०—पण्डित मुनि बाल-भाव और
अबाल-भाव की तुलनाकर, बाल-भाव को
छोड़, अबाल-भाव का सेवन करता है ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अट्ठमं अज्झयणं :
काविलीयं

अष्टम अध्ययन :
कापिलीय

आस्तुत्पल

कपिल ब्राह्मण था। लोभ की भाव ने उसके मन में विरक्ति ला दी। उसे सही स्वरूप ज्ञात हुआ। वह मुनि बन गया। संयोगवशात् एक बार उसे चोरों ने घेर लिया। तब कपिल मुनि ने उन्हें उपदेश दिया। वह संगीतात्मक था। उसी का यहाँ संग्रह किया गया है। प्रथम मुनि गाते, चोर भी उनके साथ-ही-साथ गाने लग जाते। 'अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपउराए ।'' न गच्छेज्जा ॥ यह प्रथम श्लोक ध्रुव पद था। मुनि कपिल द्वारा यह—अध्ययन गाया गया था, इसलिए इसे कापिलीय कहा गया है।^१ सूत्रकृताङ्ग चूर्णि में इस अध्ययन को 'गेय' माना गया है।^२

नाम दो प्रकार से होते हैं :—(१) निर्देश्य (विषय) के आधार पर और (२) निर्देशक (वक्ता) के आधार पर। इस अध्ययन का निर्देशक कपिल है, इसलिए इसका नाम कापिलीय रखा गया है।^३

इसका मुख्य प्रतिपाद्य है—उस सत्य की शोध जिससे दुर्गति का अन्त हो जाय। सत्य-शोध में जो बाधाएँ हैं उन पर भी बहुत सुन्दर प्रकाश डाला गया है। लोभ कैसे बढ़ता है, इसका स्वयं अनुभूत चित्र प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति के मन में पहले थोड़ा लोभ उत्पन्न होता है। वह उसकी पूर्ति करता है। मन पुनः लोभ से भर जाता है। उसकी पूर्ति का प्रयत्न होता है। यह क्रम चलता है परन्तु हर बार लोभ का उभार तोत्रता लिए होता है। ज्यों-ज्यों लोभ बढ़ता है त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता है। इसका अन्त तभी होता है जब व्यक्ति निर्लोभता की पूर्ण साधना कर लेता है।

उस काल और उस समय में कौशाम्बी नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसकी सभा में चौदह विद्याओं का पारगामी काश्यप नाम का ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम यश था। उसके कपिल नाम का एक पुत्र था। राजा काश्यप से प्रभावित था। वह उसका बहुमान करता था। अचानक काश्यप की मृत्यु हो गई। उस समय कपिल की अवस्था छोटी थी। राजा ने काश्यप के स्थान पर दूसरे ब्राह्मण को नियुक्त कर दिया। वह ब्राह्मण जब घर से दरबार में जाता तब छोड़े पर आरुढ़ हो छत्र धारण करता था। काश्यप की पत्नी यश जब यह देखती तो पति की स्मृति में बिह्वल हो रोने लग जाती थी। कुछ काल बीता। कपिल भी बड़ा हो गया था। एक दिन जब उसने अपनी माँ को रोते देखा तो इसका कारण पूछा। यश ने कहा—“पुत्र! एक समय था जब तुम्हारे पिता इसी प्रकार छत्र लगाकर दरबार में जाया-आया करते थे। वे अनेक विद्याओं के पारगामी थे। राजा उनको विद्याओं से आकृष्ट था। उनके निधन के बाद राजा ने वह स्थान दूसरे को दे दिया है।” तब कपिल ने कहा—“माँ! मैं भी विद्या पढ़ूँगा।”

१. बृहद् वृत्ति, पृष्ठ २८६ :

“...ताहे ताण्णि पंचवि चोरसपाणि ताडे कुड्ढेति, सोऽपि गावति धुवर्गं, ‘अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपउराए । किं नाम तं होज्ज कममं ? नेणाहं दुग्गहं न गच्छेज्जा ॥१॥’ एवं सञ्चत्य सिलोगन्तरे धुवर्गं गावति ‘अधुवेत्थाहि’, तत्थ केह पढमसिलोगे संकुद्धा, केह बीए, एवं जाव पंचवि सखा संकुद्धा पव्वतिपत्ति । ...स हि भगवान् कपिलनामा । ब्रूवं सत्प्रीतवान् ।

२. सूत्रकृताङ्ग चूर्णि, पृष्ठ ७ :

गेयं नाम सरसंचारेण, जथा काविकिञ्जे—“अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपउराए । ... न गच्छेज्जा ॥”

३. भावयक विवृत्ति, गाथा १४१, वृत्ति :

निर्देशकवर्णनवचनं कापिलीयम् ।

यशा ने कहा—“ पुत्र ! यहाँ सारे ब्राह्मण ईर्ष्यालु हैं । यहाँ कोई भी तुम्हें विद्या नहीं देगा । यदि तू विद्या प्राप्त करना चाहता है तो श्रावस्ती नगरी में चला जा । वहाँ तुम्हारे पिता के परम मित्र इन्द्रदत्त नाम के ब्राह्मण हैं । वे तुम्हें विद्या पढ़ायेंगे ।”

कपिल ने माँ का आशीर्वाद ले श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया । पृथ्वी-पृथ्वी वह इन्द्रदत्त ब्राह्मण के यहाँ जा खड़ा हुआ । अपने समस्त रुक् अपरिचित युवक को देखकर इन्द्रदत्त ने पूछा—“तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?”

कपिल ने सारा वृत्तान्त सुनाया । इन्द्रदत्त कपिल के उत्तर से बहुत प्रभावित हुआ और उसके भोजन की व्यवस्था एक शास्त्रिभद्र नामक धनाढ्य वणिक् के यहाँ करके अध्यापन शुरू कर दिया । कपिल भोजन करने प्रतिदिन सैठ के यहाँ जाता और इन्द्रदत्त से अध्ययन करता । उसे एक दासी की पुत्री भोजन परोसा करती थी । वह हँसमुख स्वभाव की थी । कपिल कभी-कभी उससे मजाक कर लेता था । दिन बीते, उनका सम्बन्ध गाढ़ हो गया । एक बार दासी ने कपिल से कहा—“तू मेरा सर्वस्व है । तेरे पास कुछ भी नहीं है । मैं निर्वाह के लिए दूसरों के यहाँ रह रही हूँ अन्यथा तो मैं तेरी आज्ञा में रहती ।”

इसी प्रकार कई दिन बीते । दासी-महोत्सव का समय निकट आया । दासी का मन बहुत उदास हो गया । रात्रि में उसे नींद नहीं आई । कपिल ने इसका कारण पूछा । उसने कहा—“दासी-महोत्सव आ गया है । मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है । मैं कैसे महोत्सव को मनाऊँ ? मेरी सखियाँ मेरी निर्धनता पर हँसती हैं और मुझे निरस्कार को दृष्टि से देखती हैं ।” कपिल का मन खिन्न हो गया । उसे अपने अपौरुष पर रोष आया । दासी ने कहा “तुम इतना धन्य मत खोजो । समस्या का एक समाधान भी है । इसी नगर में धन नाम का एक सैठ रहता है । जो व्यक्ति प्रातःकाल उसे सबसे पहले ब्रधाई देता है उसे वह दो माशा सोना देता है । तुम वहाँ जाओ । उसे ब्रधाई देकर दो माशा सोना ले आओ । इससे मैं पूर्णता से महोत्सव मना लूँगी ।”

कपिल ने बात मान ली । कोई व्यक्ति उससे पहले न पहुँच जाए, यह सोच वह तुरंत घर से रवाना हो गया । रात्रि का समय था । नगर-आरक्षक इधर-उधर घूम रहे थे । उन्होंने इसे धीरे समझ पकड़ कर बाँध लिया और प्रभात में उसे प्रसेनाजित् राजा के सामने प्रस्तुत किया । राजा ने उससे रात्रि में अकेले घूमने का कारण पूछा । कपिल ने सहज व सरल भाव से सारा वृत्तान्त सुना दिया । राजा उसकी स्पष्टवादिता पर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—“ब्राह्मण ! आज मैं तुम्हें पर बहुत प्रसन्न हूँ । तू जो कुछ माँगेगा वह मिलेगा ।” कपिल ने कहा “राजन् ! मुझे कुछ सोचने का समय दिया जाए ।” राजा ने कहा—“यथा इच्छा ।”

कपिल राजा की आज्ञा ले अशोक वनिका में चला गया । वहाँ उसने सोचा—“दो माशा सोने से क्या होगा ? क्यों न मैं १०० मोहरें माँग लूँ ?” चिन्तन आगे बढ़ा । उसे १०० मोहरें भी तुच्छ लगने लगीं । हजार, लाख, करोड़ तक उसने चिन्तन किया । परन्तु मन नहीं भरा । सन्तोष के बिना शान्ति कहाँ ? उसका मन आन्दोलित हो उठा । तत्क्षण उस समाधान मिल गया । मन वैराग्य से भर उठा । चिन्तन का प्रवाह मुड़ा । उसे जाति-स्पृति-ज्ञान प्राप्त हो गया । वह स्वयं-सुख हो गया । वह स्वयं अपना लुंघन कर, प्रकृष्ट वदन हो राजा के पास आया । राजा ने पूछा—“क्या सोचा है, जल्दी कहो ।” कपिल ने कहा—“राजन् ! समय बीत चुका है । मुझे जो कुछ पाना था पा लिया है । तुम्हारी सारी वस्तुएँ मुझे तुम नहीं कर सकीं । किन्तु उनकी अनाकौशा ने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया है । जहाँ लाभ है वहाँ लोभ है । ज्यों-ज्यों लाभ बढ़ता है त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है । दो माशा सोने की प्राप्ति के लिए मैं घर से निकला था किन्तु मेरी तृप्ति करोड़ में भी नहीं हुई । तुष्णा अनन्त है । इसकी पूर्ति वस्तुओं की उपलब्धियों से नहीं होती, वह होती है त्याग से, अनाकौशा से ।”

राजा ने कहा—“ब्राह्मण ! मेरा वचन पूरा करने का मुझे अवसर दे। मैं करोड़ मोहरों भी देने के लिए तैयार हूँ।” कपिल ने कहा—“राजन् ! तुष्णा की अग्नि अब शान्त हो गई है। मेरे भीतर करोड़ से भी अधिक मृत्यवान् वस्तु पैदा हो गई है। मैं अब करोड़ का क्या करूँ ?” मुनि कपिल राजा के सान्निध्य से दूर चला गया। साधना चलती रहो। वे मुनि छह मास तक छद्मस्थ अवस्था में रहे।

राजगृही और कौशाम्बी के बीच १८ योजन का एक महा अरण्य था। वहाँ बलभद्र प्रमुख इक्ष्वाकु-वंशीय जाति के पाँच सौ चोर रहते थे। कपिल मुनि ने एक दिन ज्ञान-बल से जान लिया कि सभी चोर एक दिन अपनी पापकारी वृत्ति को छोड़कर संबुद्ध हो जायेंगे। उन सबको प्रतिबोध देने के लिए कपिल मुनि आवस्ती से चलकर उस महा अटवो में आये। चोरों के सन्देशवाहक ने उन्हें देख लिया। वह उन्हें पकड़ अपने सेनापति के पास ले गया। सेनापति ने इन्हें श्रमण समझ कर छोड़ते हुए कहा—“श्रमण ! कुछ संगान करो।” श्रमण कपिल ने हावभाव से संगान शुरू किया। “अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपउराए” —यह ध्रुवपद था। प्रत्येक श्लोक के साथ यह गाया जाता था। कई चोर प्रथम श्लोक सुनते ही संबुद्ध हो गये, कई दूसरे, कई तीसरे, कई चौथे श्लोक आदि सुनकर। इस प्रकार पाँच सौ चोर प्रतिबुद्ध हो गये। मुनि कपिल ने उन्हें दीक्षा दी और वे सभी मुनि हो गये।

प्रसंगवश इस अध्ययन में त्र्याध्याय-संसार की असारता, कुतार्थिकों की अज्ञाता, अहिंसा-विवेक, श्लो-संगम का त्याग आदि-आदि विषय भी प्रतिपादित हुए हैं।

यह अध्ययन ‘ध्रुवक’ छन्द में प्रतिबद्ध है। जो छन्द सर्व प्रथम श्लोक में तथा प्रत्येक श्लोक के अन्त में गाया जाता है, उसे ‘ध्रुवक’ कहते हैं। वह तीन प्रकार का होता है—सह पदों वाला, चार पदों वाला और दो पदों वाला :—

ॐ गिउजइ पुक्वं धिय, पुण पुणो सव्वकव्वबोधेसु।

धुवयांसि तमिह निविहं, छप्पायं चउपयं दुपयं॥ (बृहद् वृत्ति, पत्र २८६)

इस अध्ययन में चार पदों वाले ध्रुवक का प्रयोग हुआ है।

अट्ठमं अज्झयणं : अष्टम अध्यायन

काविलीयं : कापिलीयम्

मूल

१—'अधुवे असासयमि'
संसारमि दुक्खपउराए ।
कि नाम होज्ज तं कम्मयं
'जेणाहं दोग्गहं न गच्छेज्जा'^१॥

संस्कृत छाया

अधु वेऽशाश्वते
संसारे दुःख-प्रचुरके ।
किं नाम तद् भवेत्कर्मकं
येनाहं दुर्यतिं न गच्छेयम् ॥

हिन्दी अनुबाव

१—अधुब, अशाश्वत और दुःख-बहुल
संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है, जिससे मैं
दुर्यति में न जाऊँ ?

२—विजहित्तु पुव्वसंजोगं
न सिणेहं कहिचि कुव्वेज्जा ।
असिणेह सिणेहकरेहि
दोसपओसेहि^२ मुच्चए भिक्खू ॥

विहाय पूर्व-संयोगं
न स्नेहं क्वचित् कुर्वीत ।
अस्नेहः स्नेहकरेषु
दोष-प्रदोषः मुच्यते भिक्षुः ॥

२—पूर्व सम्बन्धों का त्याग कर, किसी
भी वस्तु में स्नेह न करे । स्नेह करने वालों के
साथ भी स्नेह न करने वाला भिक्षु दोषों और
प्रदोषों से मुक्त हो जाता है ।

३—तो नाणदंसणसमग्गो
हियनिससेसाए^३ सव्वजीवाणं ।
तेसि विमोक्खणट्ठाए
भासई मुणिवरो विगयमोहो ॥

ततो ज्ञान-दर्शन-समग्रः
हित-निःश्रेयसाय सर्वजीवानाम् ।
तेषां विमोक्षणार्थं
भाषते मुनिवरो विगत-मोहः ॥

३—केवल ज्ञान और दर्शन से मुक्त तथा
विगतमोह मुनिवर ने सब जीवों के हित और
कल्याण के लिए तथा उन पाँच सौ चोरो की
मूर्ति के लिए कहा ।

४—सव्वं गन्थं कलहं च
विपज्जहे तहाविहं^४ भिक्खू ।
सव्वेमु कामजाएसु^५
पासमाणो न लिप्पई ताई ॥

सर्वं ग्रन्थं कलहं च
विप्रजह्यान् तथाविधं भिक्षुः ।
सर्वेषु काम-जातेषु
पश्यन् न लिप्यते त्रायी ॥

४—भिक्षु कर्म-बन्ध की हेतुभूत सभी
ग्रन्थियों और कलह का त्याग करे । काम-
भोगों के सब प्रकारों में दोष देखता हुआ
आत्म-रक्षक मुनि उनमें लिप्त न बने ।

१. अधुवमि मोहगहणए (नागार्जुनीयाः) ।

२. जेणाहं (धं) दुरगहतो मुच्छेज्जा (वृ०, वृ० पा०) ।

३. दोषपण्हि (वृ०) ; दोसपवसेहि (वृ० पा०) ।

४. हियनिल्लेसाय (वृ०, छ०) ।

५. तहाविहो (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

६. सव्वेहि कामजाएहि (वृ०) ।

५—भोगामिसदोसविसण्णे
हियनिस्सेयसबुद्धिबोच्चत्थे ।
वाले य मन्दिण मूढे
बज्जई मच्छिप्पा व खेलमि ॥

६—दुपरिच्चया इमे कामा
नो मुजहा अधीरपुरिसेहि ।
अह सन्ति मुच्चया साहू
जे तरन्ति 'अतरं वणिया व' ॥

७—समणा मु एगे वयमाणा
पाणवहं मिया अयाणन्ता ।
मन्दा निरयं गच्छन्ति
वाला पाविवाहि दिदीहि ॥

८—न ह पाणवहं अणुजाणे
मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाणं ।
एवारिएहि अक्खायं
जेहि इमो साहुधम्मो पन्नतो ॥

९—पाणे य नाइवाएज्जा
से 'समिणं' ति' वुच्चई ताई ।
तओ से पावयं कम्मं
निज्जाइ उदगं व थलाओ ॥

१०—'जगनिस्सिएहि भूएहि
तसनामेहि थावरेहि च ।'
नो तेसिमारभे दंडं
मणसा वयसा कायसा चेव ॥

भोगामिष-दोष-विषण्णः
व्यत्यस्त-हित-निःश्रेयस-बुद्धिः ।
बालश्च मन्दो मूढः
बध्यते मक्षिकेव क्षेले ॥

वुरूपरित्यजा इमे कामाः
नो मुहानाः अधीर-पुरुषः ।
अथ सन्ति मुच्यताः साधवः
ये तरन्त्यतरं बणिज इव ॥

श्रमणाः स्मः एके बहन्तः
प्राण-वधं मृगा अजानन्तः ।
मन्दा नरकं गच्छन्ति
बालाः पापिकाभिर्दंष्ट्रिभिः ॥

न खलु प्राण-वधं मनुजान्
मुच्येत कदाचित्सर्व-दुःखैः ।
एवमार्योराख्यातं
यैरयं साधु-धर्मः प्रज्ञप्तः ॥

प्राणादिव नातिपातयेत्
स समित इत्युच्यते त्रायो ।
ततः अथ पापकं कर्म
निर्याति उदकमिव स्थलात् ॥

जगन्निष्ठेषु भूतेषु
असनामसुस्थावरेषु च ।
न तेषु दण्डमारभेत
मनसा बज्रसाकायेन चैव ॥

५—आत्मा को दूषित करने वाले
भोगामिष (आसक्ति-जनक भोग) में निमग्न,
हित और श्रेयस् में विपरीत बुद्धि बाला,
अज्ञानी, मन्द और मूढ जीव उसी तरह
(कर्मों से) बंध जाता है जैसे श्लेष्म में मक्खी ।

६—ये काम-भोग दुस्त्यज हैं, अधीर
पुरुषों द्वारा ये मुच्यज नहीं हैं । जो मुच्यता
साधु हैं, वे दुस्तर काम-भोगों को उसी प्रकार
तर जाते हैं, जैसे वणिक् समुद्र को ।

७—कृछ पशु की भाँति अज्ञानी पुरुष
'हम श्रमण हैं' ऐसा कहते हुए भी प्राण-वध
को नहीं जानते । वे मन्द और बाल-पुरुष
अपनी पापमयी दृष्टियों से नरक में जाते हैं ।

८—प्राण-वध का अनुमोदन करने वाला
पुरुष कभी भी सर्व दुःखों से मुक्त नहीं हो
सकता । उन आर्य तीर्थङ्गियों ने ऐसा कहा है,
जिनहोंने हम माधु-धर्म की प्रज्ञापना की ।

९—जो जीवों की हिंसा नहीं करता,
उस त्रायी मुनि को 'समित' (सम्यक् प्रवृत्त)
कहा जाता है । उससे पाप-कर्म जैसे ही दूर
हो जाते हैं, जैसे उन्नत प्रेक्षक से पानी ।

१०—जगत् के आश्रित जो त्रस और
स्वावग्राणी हैं, उनके प्रति मन, बचन और
काया—किसी भी प्रकार से दण्ड का प्रयोग
न करे ।

१. सव्वे (वृ०) ।

२. वणिया व ससुहं (वृ० पा०. वृ०) ; अतरं वणिया व (वृ० पा०) ।

३. नरयं (वृ० पा०. वृ०) ।

४. एवारिएहि (अ, अ०) ; एवमारिएहि (आ, ह०) ।

५. समिष ति (वृ०) ; समीए ति (अ) ; समीए ति (व, अ०) ।

६. मिसणाइ (वृ० पा०) ।

७. जगनिस्सिपाण भूतानं तसानां थावरेहि च । (वृ० पा०) ; जगजित् भूतानां तसनामानां च थावरानां च । (वृ०) ;
जगनिस्सिपेह थावरेमिह भूतेह तसनामेह वा । (वृ० पा०) ; जगनिस्सिएहि भूएहि तसनामेहि थावरे हि वा । (वृ०) ।

काविलीयं (कापिलीय)

१०१

अध्ययन ८ : श्लोक ११-१६

११—सुदेसणाओ नचचाणं
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ।
जायाए धासमेसेज्जा
रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ॥

१२—पन्ताणि चैव सेवेज्जा
सीयपिण्डं पुराणकुम्मासं ।
अदु बुक्कसं पुलगं वा
'जवणट्टाए नित्सेवए' मंथुं ॥

१३—जे लक्खणं च मुविणं च
अंगविज्जं च जे पउजन्ति ।
न हु ते समणा वुचचन्ति
एवं आयरिण्हि^१ अक्खायं ॥

१४—इहजीवियं अणियमेत्ता
पम्भट्टा समाहिजोएहि ।
ते कामभोगरसगिद्धा
उववज्जन्ति आसुरे काए ॥

१५—नत्तो वि य उवट्ठित्ता
संसारं बहु अणुपरियडन्ति^२ ।
बहुकम्मलेवलित्ताणं
बोही होइ^३ सुदुल्लहा तेसि ॥

१६—कसिणं पि जो इमं लोयं
पडिपुणं दलेज्ज इक्कस्स ।
तेणावि से न संतुस्से^४
इइ दुप्पूरए इमे आया ॥

शुद्धं घणां जात्वा
तत्रस्थापयेत् भिक्षुरात्मानम् ।
यात्रायेष्टासमेधयेद्
रस-गृद्धो न स्याद् भिक्षावः ॥

प्रान्तानि चैव सेवेत
शीत-पिण्डं पुराण-कुलमायम् ।
अथ 'बुक्कसं' पुलकं वा
यापनायं निषेवेत मन्युम् ॥

ये लक्षणं च स्वप्नं च
अङ्ग-विद्यां च ये प्रयुञ्जन्ति ।
न खलु ते धमणा उच्यन्ते
एवमाचार्ये राह्यायाम् ॥

इह जीवितं अनियम्य
प्रभ्रष्टाः समाधि-योगेभ्यः ।
ते कामभोग-रस-गृद्धाः
उपपद्यन्ते आसुरे काये ॥

ततोऽपि च उद्वृत्त्य
संसारं बहुमनुपर्यटन्ति ।
बहुकर्म-लेप-लिप्तानां
बोधिर्भवति सुदुर्लभातेषाम् ॥

कृत्स्नमपि य इमं लोकं
प्रतिपूर्णं दद्यादेकस्मै ।
तेनापि स न सन्तुष्येत्
इति दुष्पूरकोऽयमात्मा ॥

११—भिक्षु सुद्ध एषणाओ की जानकर
उनमें अपनी आत्मा को स्थापित करे । यात्र
(संयम-निर्वाह) के लिए श्रास की एषणा करे ।
भिक्षा-जीवी रसों में गृद्ध न हो ।

१२—भिक्षु प्रान्त (नौरस) अन्न-पान,
शीत-पिण्ड, पुराण बुक्कस (मारहीन),
पुलाक (रूखा) या मंथु (बैर या सत्तु का चूर्ण)
का जीवन-यापन के लिए सेवन करे ।

१३—जो लक्षण-धाम्म, स्वप्न-धाम्म
और अङ्ग-विद्या का प्रयोग करते हैं, उन्हें खासु
नहीं कहा जाता—एवा आचार्यों ने कहा है ।

१४—जो इस जन्म में जीवन को
अनियमित रखकर समाधि-योग से परिभ्रष्ट
होते हैं, वे काम-भोग और रसों में आमल
बने हुए गुण्य असुर-काय में उत्पन्न होते हैं ।

१५—वहाँ से निकल कर भी वे संसार में
बहुत पर्यटन करते हैं । वे प्रचुर कर्मों के लेप
से लित होते हैं । इसलिए उन्हें बोधि प्राप्त
होना अत्यन्त दुर्लभ है ।

१६—धन-धान्य से परिपूर्ण यह समूचा
लोक भी यदि कोई किसी को दे दे—उससे
भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा—युम नहीं होगा,
इतना दुष्पूर है यह आत्मा ।

१. जवणट्टा वा सेवए (वृ०); जवणट्टाए नित्सेवए (वृ० पा०) ।

२. आयरिण्हि (अ, वृ०) ।

३. अनुपरियटन्ति (वृ०); अनुपरिचन्ति (अ, वृ०); अनुचरन्ति (वृ० पा०) ।

४. जत्थ (वृ० पा०) ।

५. संतुस्सिजा (वृ०); तुस्सिजा (उ); तुस्सिजा (अ); (सं) तुस्से (वृ०) ।

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

१०२

अध्ययन ८ : श्लोक १७-२०

१७—जहा लाहो तहा लोहो
लाहा लोहो पवडडई ।
दोमासकयं कज्जं
कोडीए वि न निट्ठियं ॥

यथा लाभस्तथा लोभः
लाभाल्लोभः प्रवर्धते ।
द्विमास-कृतं कार्यं
कोट्याऽपि न निष्ठितम् ॥

१७—जंगे लाभ होता है वैसे ही लोभ
होता है । लाभ से लोभ बढ़ता है । दो मासे
सोने से पुरा होने वाला कार्यं करोड से भी
पुरा नहीं हुआ ।

१८—नो रक्खसीसु गिज्जेज्जा
गंडवच्छासु ऽणगचित्तासु ।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता
खेल्लन्ति जहा व दासेहि ॥

न राक्षसीषु गुध्येत्
गण्डवक्षास्त्वनेक-चित्तासु ।
या पुरुषं प्रलोभ्य
खेलन्ति यथे व दासैः ॥

१८—यक्ष में ग्रन्थि (स्तरों) वाली, अनेक
चित्त वाली नया राक्षसी की भाँति भयावह
स्त्रियों में आसक्त न हो, जो पुरुष को प्रलोभन
में डालकर उसे दाम की भाँति नचाती हैं ।

१९—नारीसु नोपगिज्जेज्जा
इत्थीविप्पजहे अणगारे ।
धम्मं च पेसलं नच्चा
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ॥

नारीषु नोपगुध्येत्
स्त्री-विप्रजहोऽनगारः ।
धर्मं च पेशलं ज्ञान्वा
तत्र स्थापयेद् भिक्षुरात्मानम् ॥

१९—स्त्रियों को त्यागने वाला अनगार
उनमें गूढ़ न बने । भिक्षु धर्म को अति मनोज्ञ
जानकर उसमें अपनी आत्मा को स्थापित करे ।

२०—इइ एस धम्मे अक्खाए
कविलेणं च विसुद्धपन्नेणं ।
तरिहन्ति जे उ काहिल्लि
तेहि आराहिया दुवे लोग ॥
—त्ति वेमि ।

इत्येष धर्म आख्यातः
कपिलेन च विशुद्ध-प्रज्ञेन ।
तरिष्यन्ति ये तु कश्चिष्यन्ति
नाराधितौघो लोकौ ॥
—इति ऋषीमि ।

२०—इस प्रकार विगूढ़ प्रज्ञा वाले कपिल
ने यह धर्म कहा । जो इसका आचरण करेंगे
वे तमोग और उन्होंने दोनों लोकों को आराध
लिया ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

नवमं अङ्गवर्णनं :
नमिपव्वज्जा

नवम अध्ययन :
नमि-प्रवज्जा

आसुख

मुनि वहुो बनता है जिसे बोधि प्राप्त है। वे तीन प्रकार के होते हैं—स्वयं-बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध और बुद्ध-बोधित। (१) जो स्वयं बोधि प्राप्त करते हैं, उन्हें स्वयं-बुद्ध कहा जाता है, (२) जो किसी एक घटना के निमित्त से बोधि प्राप्त करने हैं, उन्हें प्रत्येक-बुद्ध कहा जाता है और (३) जो बोधि-प्राप्त व्यक्तियों के उपदेश से बोधि-लाभ करते हैं, उन्हें बुद्ध-बोधित कहा जाता है।^१

इस सूत्र में तीनों प्रकार के मुनियों का वर्णन है—(१) स्वयं-बुद्ध कपिल का आठवें अध्ययन में, (२)—प्रत्येक-बुद्ध नमि का नौवें अध्ययन में और (३) बुद्ध-बोधित—संजय का अठारहवें अध्ययन में।

इस अध्ययन का सम्बन्ध प्रत्येक-बुद्ध मुनि से है। करकण्डु, द्विमुख, नमि और नगगति—ये चारो समकालीन प्रत्येक-बुद्ध हैं। इन चारों प्रत्येक-बुद्धों के जीव पुष्पोत्तर नाम के विमान से एक साथ च्युत हुए थे। चारों ने एक साथ पत्रज्या ली, एक ही समय में प्रत्येक-बुद्ध हुए, एक ही समय में केवली बने और एक ही समय में सिद्ध हुए।^२

करकण्डु कलिंग का राजा था, द्विमुख पंचाल का, नमि विदेह का और नगगति गंधार का।

ब्रह्मा ब्रह्म, इन्द्र ध्वज, एक कंकण की नीरवता और मंजरी-विहीन आम वृक्ष—ये चारो घटनारं क्रमशः चारो की बोधि-प्राप्ति की हेतु बनीं।

एक बार चारो प्रत्येक-बुद्ध विहार करते हुए क्षितिप्राप्तिष्ठित नगर में आए। वहाँ व्यन्तरदेव का एक मन्दिर था। उसके चार द्वार थे। करकण्डु पूर्व दिशा के द्वार से प्रविष्ट हुआ, द्विमुख दक्षिण द्वार से, नमि पश्चिम द्वार से और नगगति उत्तर द्वार से। व्यन्तरदेव ने यह सोच कर कि मैं साधुओं को पीठ देकर कैसे बँटूँ, अपना मुँह चारों ओर कर लिया।

करकण्डु खुजली से पीड़ित था। उसने एक कोमल कण्डूयन लिया और कान को खुजलाया। खुजला लेने के बाद उसने कण्डूयन को एक ओर धिप्रा लिया। द्विमुख ने यह देख लिया। उसने कहा—“मुने! अपना राज्य, राष्ट्र, पुर, अंतःपुर—आदि सब कुछ छोड़कर तुम इस (कण्डूयन) का संघय क्यों करते हो?” यह सुनते ही करकण्डु के उत्तर देने से पूर्व ही नमि ने कहा—“मुने! आपके राज्य में आपके अनेक कृत्यकर—आज्ञा पालने वाले थे। उनका

^१—नंदी, सूत्र ३०।

^२—(क) उसबोधो, पत्र १४४ : नगगति का मूल नाम सिद्धरथ था। वह कनकमाला (वेताव्य पर्वत पर तोरणपुर नगर के राजा बृहस्पति की पुत्री) से मिलने पर्वत पर जाया करता था। प्रायः वहीं पर रहने के कारण उसका नाम ‘नगगति’ पड़ा।

(ख) क्रमकार जातक में डले लक्ष्मिला का राजा बताया गया है और नाम नगगती (नगगति) दिया है।

^३—उत्तराध्यायन निर्युक्ति, गाथा २७० :

पुच्छराव चण्णं पण्डरका होह पगसमणं।

पत्तेवडुक्केवडि सिद्धि गया एगसमणं ॥

कार्य था दण्ड देना और दूसरों का पराभव करना । इस कार्य को छोड़ आप मुनि बने । आज आप दूसरों के दोष क्यों देख रहे हैं ?” यह सुन नगति ने कहा—“जो मोक्षार्थी हैं, जो आत्म-मुक्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, जिन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है, वे दूसरों को गद्गल कैसे करेंगे ?” तब करकण्ठ ने कहा—“मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त साधु और ब्रह्मचारी यदि अहित का निवारण करते हैं तो वह दोष नहीं है । नमि, त्रिमुख और नगति ने जो कुछ कहा है, वह अहित-निवारण के लिए हो अतः वह दोष नहीं है ।”^१

ऋषिभाषित प्रकीर्णक में ४५ प्रत्येक-बुद्ध मुनियों का जीवन निबद्ध है । उनमें से २० प्रत्येक-बुद्ध अरिष्टनेमि के तीर्थ में, १५ पार्श्वनाथ के तीर्थ में और १० महावीर के तीर्थ में हुए हैं।^२

(१) अरिष्टनेमि के तीर्थ में होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—नारद	११—मंजली पुत्र
२—वसिष्ठ पुत्र	१२—याज्ञवल्क्य
३—असित दात्रिल	१३—मैत्रय भयाली
४—भारद्वाज अंगिरस	१४—बाहुक
५—पुष्पसाल पुत्र	१५—अभ्युदायण
६—वलकलचौरि	१६—सोरियायण
७—कुर्मा पुत्र	१७—विदु
८—केतकी पुत्र	१८—धधेप कृष्ण
९—महाकाश्यप	१९—आरियायण
१०—तेतलि पुत्र	२०—तत्कलवादी

(२) पार्श्वनाथ के तीर्थ में होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—गाह्वावली-पुत्र तरुण	६—चन्द्रमान
२—दग्गमाल	७—वासु
३—राम पुत्र	८—पद्म
४—हरिगिरि	९—रिग
५—अम्बुज	१०—महाशाल-पुत्र अरुण
६—मालंग	११—ऋषिगिरि
७—वारणक	१२—उद्दालक
८—आद्रक	

१—उत्तराध्ययन नियुक्ति, गाथा १७६-१७६ :

जया रज्जं च रट्टं च, पुरं अंतुरं तथा ।
सर्वमेवं परिचचज्ज, संखयं किं करेसिमं ? ॥
जया ते वेहए रज्जे, कया किण्णकरा बहु ।
तेसि किच्चं परिचचज्ज, अज्ज किण्णकरो भव ॥
जया सर्वं परिचचज्ज, सुक्खं वाय वड्ढसी भवं ।
परं गहहसी कीसं ?, अत्तनीसेसकारणं ॥
सुक्खमगं पवन्नेए, साहुए बभंघारिह ।
अहिअन्धं निवारितो, न दोसं वत्तुमरिहसि ॥

२—हंसिमसिय, वड्ढमा संगहिणी, गाथा १ :

पत्तव बुद्धमिसिणो, कीसं तित्थे अरिट्ठोमिस्सव ।
पासस्स व पण्णस्स, वीरस्स विलीणमोहस्स ॥

(३) महाबोर के तीर्थ में होने वाले प्रत्येक-बुद्ध—

१—वित तारायण

६—इन्द्रनाग

२—भोगिरि

७—सोम

३—सामि-पुत्र बुद्ध

८—यम

४—संजय

९—व्रह्मण

५—द्रोपायन

१०—वैश्रमण

करकण्णु आदि चार प्रत्येक-बुद्धों का उल्लेख इस तालिका में नहीं है।

विदेह राज्य में दो नमि हुए हैं। दोनों अपने-अपने राज्य का त्यागकर अनगर बने। एक तीर्थङ्कर हुए, दूसरे प्रत्येक-बुद्ध।^१ इस अध्ययन में दूसरे नमि (प्रत्येक-बुद्ध) की प्रवज्या का विवरण है, इसलिए इसका नाम नमि-प्रवज्या रखा गया है।

मालव देश के सुदर्शनपुर नगर में मणिरथ राजा राज्य करता था। उसका कनिष्ठ भाता युगबाहू था। मदनरेखा युगबाहू की पत्नी थी। मणिरथ ने कपट पूर्वक युगबाहू को मार डाला। मदनरेखा उस समय गर्भवती थी। उसने अंगल में एक पुत्र को जन्म दिया। उस शिशु को मिथिला-नरेश पद्मरथ ले गया। उसका नाम 'नमि' रखा।

पद्मरथ के श्रमण बन जाने पर 'नमि' मिथिला का राजा बना। एक बार वह दाह-उत्तर से आक्रान्त हुआ। वह मास तक धीरे वेदना रह्यो। उपचार चला। दाह-उत्तर को शान्त करने के लिए रानियों स्वयं चन्दन घिसतीं। एक बार सभी रानियाँ चन्दन घिस रही थीं। उनके हाथों में पहिने हुए कंकण बज रहे थे। उनकी आवाज से 'नमि' खिन्न हो उठा। उसने कंकण उतार लेने को कहा। सभी रानियाँ ने सौभाग्य-चिह्न स्वरूप एक-एक कंकण को छोड़कर शेष सभी उतार दिए।

कुछ देर बाद राजा ने अपने मन्त्री से पूछा—“कंकण का शब्द सुनाई क्यों नहीं दे रहा है?” मंत्री ने कहा—“स्वामिन् ! कंकणों के घर्षण का शब्द आपको अप्रिय लगा था इसलिए सभी रानियों ने एक-एक कंकण रखकर शेष सभी उतार दिए। एक कंकण से घर्षण नहीं होता और घर्षण के बिना शब्द कहाँ से उठे?”

राजा नमि प्रबुद्ध हो गया। उसने सोचा सुख अकेलेपन में है—जहाँ द्वन्द्व है—दो हैं—वहाँ दुःख है। विरक्त भाव से वह आगे बढ़ा। उसने प्रवर्जित होने का दृढ़ संकल्प किया।

अकस्मात् ही नमि को राज्य छोड़ प्रवर्जित होते देख उसकी परीक्षा के लिए इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर आता है, प्रणाम कर नमि को लुभाने के लिए अनेक प्रयत्न करता है और कर्णव्य-बोध देता है। राजा नमि ब्राह्मण को अध्यात्म की गहरी बात बताता है और संसार की असारता का बोध देता है।

इन्द्र ने कहा—“राजन् ! हस्तगत रमणीय भोगों को छोड़कर अपरोक्ष काम-भोगों की वांछा करना क्या उचित कहा जा सकता है (श्लोक ५१) ?” राजा ने कहा—“ब्राह्मण ! काम त्याज्य है, वैशत्य है, विष के समान है, आशोविष सर्प के तुल्य है। काम-भोगों की इच्छा करने वाले उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति को प्राप्त होते हैं (श्लोक ५३)।”

“आत्म-विजय ही परम विजय है”—इस तथ्य को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है। इन्द्र ने कहा—“राजन् ! जो कई राजा तुम्हारे सामने नहीं भुङ्कते, पहले उन्हें वश में करो, फिर मुनि बनना (श्लोक ३२)।” नमि ने कहा—

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २६७ :

दुग्गिहि नमी विदेहा, रजाई पण्डिण पण्डिहा।

एगो नमितित्थयरो, एगो पत्तेबुद्धो अ॥

“जो मनुष्य दुर्जय संग्राम में दस लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो व्यक्ति एक आत्मा को जीतता है, वह उसकी परम विजय है। आत्मा के साथ युद्ध करना हो श्रेयस्कर है। दूसरों के साथ युद्ध करने से क्या लाभ ? आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जीत कर मनुष्य सुख पाता है। पाँच इन्द्रियाँ तथा क्रोध, मान, माया, लोभ और मन—ये दुर्जय हैं। एक आत्मा को जीत लेने पर ये सब जीत लिए जाते हैं (श्लोक ३४-३६)।”

“संसार में न्याय-अन्याय का विवेक नहीं है—इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति यहाँ हुई है। इन्द्र ने कहा—“राजन् ! अभी तुम चोरों, लुटेरों, गिरहकटों का निग्रह कर नगर में शान्ति स्थापित करो, फिर मुनि बनना (श्लोक ३८)।” नमि ने कहा—“ब्राह्मण ! मनुष्यों द्वारा अनेक बार मिथ्या-दण्ड का प्रयोग किया जाता है। अपराध नहीं करने वाले पकड़े जाते हैं और अपराध करने वाले छूट जाते हैं (श्लोक ३०)।”

इस प्रकार इस अध्ययन में जीवन के समग्र दृष्टिकोण को उपस्थित किया है। अन्यान्य आश्रमों से संन्यास आश्रम श्रेष्ठ है (श्लोक ४४), दान से संयम श्रेष्ठ है (श्लोक ४०), सन्तोष त्याग में है, भोग में नहीं (श्लोक ४८-४९) आदि-आदि भावनाओं का स्फुट निर्देश है। जब इन्द्र ने देखा कि राजा नमि अपने संकल्प पर अडिग है, तब उसने अपना मूल रूप प्रकट किया और नमि की स्तुति कर चला गया।

नवमं अङ्गवर्णनं : नवम अध्यायन नमिपव्वज्जा : नमि-प्रव्रज्या

मूल

१—चइऊण देवलागाओ
उववन्तो माणुसंमि लोगमि ।
उवसन्तमोहणज्जो
सरई पोरणिणं जाइ ॥

संस्कृत छाया

च्युत्वा देवलोकान्
उपपन्नो मानुषे लोके ।
उपशान्त-मोहनीयः
स्मरति पौराणिकीं जातिम् ॥

हिन्दी अनुवाद

१—नमिराज का जीव देवलोक से च्युत
होकर मनुष्य-लोक में उत्पन्न हुआ । उसका
मोह उपशान्त था जिससे उसे पूर्व-जन्म की
स्मृति हुई ।

२—जाइ सरित् भयवं
सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मं ।
पुत्तं ठवेत्तु रज्जे
अभिणिक्वमई नमी राया ॥

जाति स्मृत्वा भगवान्
स्वयं-संबुद्धोऽनुत्तरे धर्मे ।
पुत्रं स्थापयित्वा राज्ये
अभिनिष्कामति नमीराजा ॥

२—भगवान् नमिराज पूर्व-जन्म की
स्मृति पाकर अनुत्तर धर्म की आराधना के
लिए स्वयं-संबुद्ध हुआ और राज्य का भार पुत्र
के कंधों पर डालकर अभिनिष्क्रमण किया—
प्रव्रज्या के लिए चल पड़ा ।

३—से देवलागसरिसे
अन्तेउरवरगओ वरे भाए ।
भुंजितु समी राया
बुद्धो भोगे परिचयई ॥

स देवलोक-सदृशान्
वरान्तःपुर-गतो वरान् भोगान् ।
भुक्त्वा नमीराजा
बुद्धो भोगान् परित्यजति ॥

३—उस नमिराज ने प्रवर अन्तःपुर में
रहकर देवलोक के भोगों के समान प्रधान
भोगों का भोग किया और संबुद्ध होने के
पश्चात् उन भोगों को छोड़ दिया ।

४—मिहिलं सपुरजणवयं
बलमोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिनिक्खन्तो
एगन्तमहिट्ठिओ भयवं ॥

मिथिलां सपुरजनपदां
बलमवरोधं च परिजनं सर्वम् ।
त्यक्त्वाऽभिनिष्कान्तः
एकान्तमभिनिष्ठितो भगवान् ॥

४—भगवान् नमिराज ने नगर और
जन-पद सहित मिथिला नगरी, सेना, रनिवास
और सब परिजनों का छोड़ कर अभिनिष्क्रमण
किया और एकान्तवासी बन गया ।

५—कोलाहलगभूयं
आसी मिहिलाए पव्वयन्लंमि ।
तइया रायरिसिंमि
नमिमि अभिणिक्वमन्तंमि ॥

कोलाहलकभूतम्
आसीन्मिथिलार्यां प्रव्रजति ।
तवाराज्यैर्
नवो अभिनिष्कामति ॥

५—जब राजर्षि नमि अभिनिष्क्रमण कर
रहा था, प्रव्रजित हो रहा था, उस समय
मिथिला में सब जगह कोलाहल होने लगा ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

११०

अध्ययन ६ : श्लोक ६-१२

६—अबुद्धिं रायरिसि
पव्वजाठाणमुत्तमं ।
सको माहणरूपेण
इमं वयणमव्ववी ॥

अभ्युत्थितं राजर्षिं
प्रज्या-स्थानमुत्तमम् ।
शक्रो ब्राह्मण-रूपेण
इदं वचनमब्रवीत् ॥

६—उत्तम प्रज्या-स्थान के लिए उद्यत
हूँ राजर्षि से देवेन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में
आकर इस प्रकार कहा—

७—किण्ठ भो ! अज मिहिलाए
कोलाहलगसंकुला ।
मुव्वन्ति दारुणा सहा
पासाएसु गिहेसु य ? ॥

किन्तु भो ! अद्य मिथिलायां
कोलाहलक-संकुलाः ।
श्रूयन्ते दारुणाः शब्दाः
प्रासादेषु गृहेषु च ? ॥

७—हे राजर्षि ! आज मिथिला के
ग्रामादों और गृहों में कोलाहल में परिपूर्ण
दारुण शब्द क्यों सुनाई दे रहे हैं ?

८—एयमट्ठं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमो राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

८—यह श्रवण कर हेतु और कारण से
प्रेरित हूँ नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार
कहा—

९—मिहिलाए चेइए वच्छे
सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्तपुपफफलोवेए
वहणं बहुगुणे सया ॥

मिथिलायां चैत्यो वृक्षः
शीतच्छायां मनोरमः ।
पत्र-पुष्प-फलोपेतः
बहूनां बहु-गुणः सदा ॥

९—मिथिला में एक चैत्य-वृक्ष था,
शीतल छाया वाला, मनोरम, पत्र, पुष्प और
फलों से लदा हुआ और बहुत पक्षियों के लिए
तथा उपकारी ।

१०—वाएण हीरमाणंमि
चेइयंमि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता
एए कन्दन्ति भो ! खगा ॥

वातेन हियमाणे
चैत्ये मनोरमे ।
दुःखिता अशरणा आर्ताः
एते श्रन्वन्ति भो ! खगाः ॥

१०—एक दिन हुआ चली और उस
चैत्य-वृक्ष का उखाड़ कर फेंक दिया । हे ब्राह्मण ।
उनके आश्रित रहने वाले ये पक्षी दुःखी, अशरण
और पांडित होकर आक्रन्द कर रहे हैं ।

११—एयमट्ठं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

११—इस श्रवण का सुनकर हेतु और
कारण में प्रेरित हूँ देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

१२—एस अमी य वाऊ य
एयं डछमड मन्दिअं ।
भयवं ! अन्तेउरं तेणं
कीस णं नावपेक्खसि ? ॥

एयोऽग्निवच्च वायुवच्च
एतन्न बहुते मन्दिअम् ।
भयवन् ! अन्तःपुरं तेन
कस्मान्नावप्रेक्षसे ? ॥

१२—यह अग्नि है और यह वायु है ।
बहुत आपका मन्दिर अल रहा है । भयवन् !
आप अपने रनिवास भी और क्यों नहीं देखते ?

नमिषवज्जा (नमि-प्रव्रज्या)

१११

अध्ययन ६ : श्लोक १३-१६

१३—एयमदं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायगिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

१४—सुहं वसामो जीवामो
जेसि मो नत्थि किच्चन ।
मिहिलाए डज्झमाणोए
न मे डज्झइ किच्चन ॥

१५—चत्तपुत्तकलत्तस्स
निव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं न विज्झई किच्चि
अपियं पि न विज्झए ॥

१६—वहं खु मुणिणो भदं
अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विण्णमुक्कस्स
एगान्तमणुपस्सओ ॥

१७—एयमदं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायगिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

१८—पागारं कारइत्ताणं
गोपुरट्टालगाणि च ।
उत्सूलगसयग्घोओ^१
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

१९—एयमदं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायगिसी
देविन्द इणमव्ववी ॥

एतमयं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षिः
वेवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

मुखं वसामो जीवामः
येषां नो नास्ति किञ्चन ।
मिथिलायां दह्यमानायां
न मे दह्यते किञ्चन ॥

त्पुत्र-पुत्र-कलत्रस्य
निर्व्यापारस्य भिक्षोः ।
प्रियं न विद्यते किञ्चित्
अप्रियमपि न विद्यते ॥

बहुं खलु मुनेभ्यं^२
अणगारस्य भिक्षोः ।
सर्वतो विप्रमुक्तस्य
एकान्तमनुपश्यतः ॥

एतमयं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षिः
वेवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

प्राकारं कारयित्वा
गोपुराट्टालकानि च ।
अवकूलक-शतश्रीः
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमयं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षिः
वेवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

१३—यह अर्थ सुनकर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

१४—वे हम लोग, जिनके पास अपना
कुछ भी नहीं है, मुख पूर्ण रहते और
मुख से जीते हैं । मिथिला जल रही है उसमें
मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है ।

१५—पुत्र और स्त्रियों से मुक्त तथा
व्यवसाय से निवृत्त भिक्षु के लिए कोई वस्तु
प्रिय भी नहीं होता और अप्रिय भी नहीं
होती ।

१६—महर्षियों से मुक्त, 'मैं अर्कला
हूँ, मेरा कोई नहीं'—इस प्रकार एकत्व-दर्शी,
यह-स्वाधी एवं तपस्वी भिक्षु को विपुल मुख
होता है ।

१७—इस अर्थ को सुनकर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

१८—हे क्षत्रिय ! अभी तुम परकाटा,
बुजं बाल नगर-द्वार, खाई और क्षतश्री (एक
बार में से व्यक्तिओं का संहार करने वाला
यन्त्र) बनवाओ, फिर मुनि बन जावो ।

१९—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार
कहा—

उत्तरउभयणं (उत्तराध्ययन)

११२

अध्ययन ६ : श्लोक २०-२५

२०—सदं नगरं^१ किञ्चा
तवसंवरमगलं ।
'खर्त्ति निउणपागारं
तिगुत्तं दुप्पघंसयं"^२ ॥

२१—धणुं परक्कमं किञ्चा
जीवं च इरियं सया ।
विइं च केयणं किञ्चा
सच्चवेण पल्लिमन्थए^३ ॥

२२—तवनारायजुत्तेण
भेत्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो
भवाओ परिमुञ्चए ॥

२३—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

२४—पासाए^४ कारइत्ताणं
वद्धमणगिहाणि य ।
बालगपोइयाओ य
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

२५—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसि
देविन्दं इणमव्ववी ॥

श्रद्धां नगरं कृत्वा
तपःसंवरमंगलम् ।
क्षान्तिं निपुण-प्राकारं
विगुप्तं दुष्प्रवचकम् ॥

धनुः पराक्रमं कृत्वा
जीवांचेर्यां सदा ।
धृतिं च केतनं कृत्वा
सत्येन परिमथनीयान् ॥

तपो-नाराच-युक्तेन
भित्त्वा कर्म-कचुकम् ।
मुर्निब्रगत-सङ्ग्रामः
भवात्परिमुच्यते ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

प्रासादान्कारयित्वा
वर्धमान-गृहाणि च ।
'बालगपौइयाओ' च
ततो गच्छ शत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षिः
देवेन्द्र मिदमब्रवीत् ॥

२०—श्रद्धा को नगर, तप और संयम को अंगला, क्षमा को (दुर्ज, खाई और शतघ्नी स्थानीय) मन, वचन और काय-गुप्ति से सुरक्षित, दुर्ज और सुरक्षा-निपुण परकोटा बना,

२१—पराक्रम को धनुष, ईर्ष्या-समिति को उसकी डोर और धृति को उसकी मूठ बना, उसे सत्य से बाँधे ।

२२—तप-रूपी लोह-वाण से युक्त धनुष के द्वारा कर्म-रूपी कवच को भेद डाले । इस प्रकार संग्राम का अन्त कर मुनि संनार से मुक्त हो जाता है ।

२३—इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा—

२४—हे शत्रिय ! अभी तुम प्रासाद, वर्धमान-गृह और चन्द्रशाला बनवाओ, फिर मुनि बन जाना ।

२५—यह अर्थ सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार कहा—

१. नगरी (शृ०) ।

२. खर्त्ति निउण पागारं तिगुत्ति दुप्पघंसयं (शृ० पा०) ।

३. पल्लिकंधए (सू०) ।

४. पासायं (शृ०) ।

नमिषव्वज्जा (नमि-प्रवज्या)

११३

अध्ययन ६ : श्लोक २६-३२

२६—संसयं खलु सो कुणई
जो मग्गे कुणई धरं ।
जत्येव गन्तुमिच्छेज्जा
तत्थ कुव्वेज्ज सासयं ॥

२७—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

२८—आमोसे लोमहारे य
गंठिभेए य तकरे ।
नगरस्स खेमं काऊणं
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

२९—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमव्ववी ॥

३०—असदं तु मणुस्सेहि
मिच्छा दण्डो पजुंजई ।
अकारिणोऽत्थ वज्जमन्ति
मुच्चई कारओ जणो ॥

३१—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

३२—जे केइ पत्थिवा तुव्वं
नानमन्ति नराहिवा ! ।
वसे ते ठावइत्ताणं
तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥

संशयं खलु स कुस्ते
यो मार्गं कुस्ते गृहम् ।
यशोव गन्तुमिच्छेन्
तत्र कुर्वीत स्वाश्रयम् ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजपिं
देवेन्द्र इवमब्रवीत् ॥

आमोषान् लोम-हारान्
ग्रन्थि-भेदादिव तस्करान् ।
नगरस्य खेमं कृत्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजपिं
देवेन्द्रमिवमब्रवीत् ॥

असकृत् मनुष्यैः
मिथ्या-दण्डः प्रयुज्यते ।
अकारिणोऽत्र बध्यन्ते
मुच्यन्ते कारको जनः ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजपिं
देवेन्द्र इवमब्रवीत् ॥

ये केचित् पार्थिवास्तुभ्यं
नानमन्ति नराहिवा ! ।
वशे तांस्त्थापयित्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

२६—बहु संदिग्ध ही बना रहता है जो
मार्ग में धर बनाता है । (न जाने कब उसे
छोड़ कर जाना पड़े) । अपना घर वहीं बनाना
चाहिए जहाँ जाने की इच्छा हो—जहाँ जाने
पर फिर कहीं जाना न हो ।

२७—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपिं से
इस प्रकार कहा—

२८—हे क्षत्रिय ! अभी तुम बटमारों,
प्राण हरण करने वाले छूंटों, गिरहकुटों और
चोरों का निग्रह कर नगर में शांति स्थापित
करो, फिर मुनि बन जाना ।

२९—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजपिं ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

३०—मनुष्यों द्वारा अनेक बार मिथ्या-
दण्ड का प्रयोग किया जाता है । अपराध
नहीं करने वाले यहाँ पकड़े जाते हैं और
अपराध करने वाले छूट जाता है ।

३१—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपिं से
इस प्रकार कहा—

३२—हे नराधिप क्षत्रिय ! जो कई राजा
तुम्हारे सामने नहीं झुकते उन्हें वश में करो,
फिर मुनि बन जाना ।

३३—एयमदं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमब्बवो ॥

३४—जो सहस्सं सहस्साणं
संगामे जुज्जे जिणे ।
एणं जिणेज्ज अप्पाणं
एस से परमो जओ ॥

३५—अप्पाणमेव जुज्झाहि
किं ते जुज्जेण वज्जओ ? ।
अप्पाणमेव अप्पाणं
जइत्ता मुहमेहए ॥

३६—पंचिन्दियाणि कोहं
माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं
सव्वं अप्पे जिए जियं ॥

३७—एयमदं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमब्बवो ॥

३८—जइत्ता विउले जन्ने
भोइत्ता समणमाहणे ।
दब्बा भोच्चा य जइत्ता य
तओ गच्छसि खत्तिपा ! ॥

३९—एयमदं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमब्बवी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजयिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

यः सहस्रं सहस्राणां
सङ्ग्रामे दुर्जये जयेत् ।
एकं जयेदात्मानं
एष तस्य परमो जयः ॥

आत्मनैव युद्धयस्व
किं ते युद्धेन बाह्यतः ।
आत्मनैव आत्मानं
जित्वा सुखमेधते ॥

पंचेन्द्रियाणि श्रोत्रः
मानो माया तथैव लोभश्च ।
दुर्जयश्चैव आत्मा
सर्वमात्मनि जितेजितम् ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजयि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

याजयित्वा विपुलान् यजान्
भोजयित्वा श्रमण-ब्राह्मणान् ।
दत्त्वा भुक्त्वा च इष्ट्वा च
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजयिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

३३—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजयि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

३४—जो पुरुष दुर्जय संग्राम में दस
लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा
बढ़ एक अपने आपको जीतना है, यह उसकी
परम विजय है ।

३५—आत्मा के साथ ही युद्ध कर,
बाहरी युद्ध में कुछ क्या लाभ ? आत्मा को
आत्मा के द्वारा ही जीत कर, मनुष्य सुख
पाना है ।

३६—पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया,
लोभ और मन ये दुर्जय हैं । एक आत्मा को
जान लेने पर ये सब जीत लिए जाते हैं ।

३७—इन अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजयि से
इस प्रकार कहा—

३८—हे क्षत्रिय ! अभी तुम प्रचुर यज्ञ
करो, श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन कराओ,
दान दो, भोग भोगों और यज्ञ करो, फिर
मृति बन जाना ।

३९—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजयि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

नमिपव्वज्जा (नमि-प्रव्रज्या)

११५

अध्ययन ६ : श्लोक ४०-४५

४०—जो सहस्सं सहस्साणं
मासे मासे गावं दए ।
तस्सावि संजमो सेओ
अदित्तस्स वि किंचण ॥

४१—एयमट्ठं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

४२—घोरासमं चइत्ताणं^१
अन्नं पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसहरओ
भवाहि मणुयाहिवा ! ॥

४३—एयमट्ठं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसि
देविन्दं इणमव्ववी ॥

४४—मासे मासे तु जो बालो
कुसग्गेण तु^२ भुंजए ।
न सो सुयक्खायधम्मस्स
कलं अण्णइ सोलसि ॥

४५—एयमट्ठं निसामित्ता
हेउकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमव्ववी ॥

यः सहस्रं सहस्राणां
मासे मासे गावां दद्यात् ।
तस्यापि संयमः श्रेयान्
अवदत्तोऽपि किंचन ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इवमब्रवीत् ॥

घोराश्रम त्यक्त्वा
अन्यं प्रार्थयसे आश्रमम् ।
इहेव पोषध-रतः
भव मनुजाधिप ! ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमी राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

मासे मासे तु यो बालः
कुशापेण तु भुङ्क्ते ।
न स स्वाक्यात-धर्मणः
कलामर्हति षोडशोम् ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इवमब्रवीत् ॥

४०—जो मनुष्य प्रतिमास दस लाख
गायों का दान देता है उसके लिए भी संयम
ही श्रेय है, भले फिर वह कुछ भी न दे ।

४१—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण ने प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

४२—हे मनुजाधिप ! तुम घोराश्रम
(गार्हस्थ्य) को छोड़ कर दूसरे आश्रम (संन्यास)
की इच्छा करते हो, यह उचित नहीं । तुम
यहीं रह कर पोषध में रत होओ—अणुव्रत, तप
आदि का पालन करो ।

४३—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण ने
प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार
कहा—

४४—कोई बाल (अविवेकी) मास-मास
की तपस्या के अनन्तर कुशा की नोक पर टिके
उतना-सा आहार करे तो भी वह सु-आख्यात
धर्म (सम्यक्-चारित्र्य सम्पन्न मुनि) की सोलहवीं
कला की भी प्राप्त नहीं होता ।

४५—इस अर्थ को सुन कर हेतु और
कारण ने प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से
इस प्रकार कहा—

१. जहिसाणं (बु० पा०) ।

२. च (अ) ।

उत्तरजम्भयणं (उत्तराध्ययन)

११६

अध्ययन ६ : श्लोक ४६-५१

४६—हिरण्यं सुवर्णं मणिमुत्तं
कंसं ह्रस्वं च वाहणं* ।
कोसं वड्ढावह्स्ताणं
ततो गच्छसि खत्तिया ! ॥

हिरण्यं सुवर्णं मणि-मुत्तं
कांस्यं ह्रस्वं च वाहनम् ।
कोशं वर्धयित्वा
ततो गच्छ क्षत्रिय ! ॥

४६—हे क्षत्रिय ! अभी तुम चौदी, सोना,
मणि, मोती, कौंसि के बर्तन, बल्ल, बाहन और
भण्डार की वृद्धि करो, फिर मुनि बन जाना ।

४७—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी
देविन्दं इणमब्बवी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमो राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीन् ॥

४७—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए तमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

४८—सुवर्णरूपस्स उ^१ पव्वया भवे
सिया हुकेलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि^२ किञ्चि
इच्छा उ आगाससमा अणत्तिया ॥

सुवर्ण-रूपस्य च पर्वता भवैयुः
स्यात् खलुकैलास-समा असंख्यकाः ।
नरस्य लुब्धस्य न तैः किञ्चित्
इच्छा खलु आकाश-समा अनन्तिका ॥

४८—कदाचित् सोने और चौदी के
कैलास के समान असंख्य पर्वत हो जाएँ, तो
भी लोभी पुण्य को उनसे कुछ भी नहीं होता,
क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है ।

४९—पुडवी साली जवा चेव
हिरण्यं पसुभिस्सह ।
पडिपुणं^३ नालमेगस्स
इइ विज्जा तवं चरे ॥

पृथिवी शालियंवाश्चैव
हिरण्यं पशुभिः सह ।
प्रतिपूणं नालमेकस्मै
इति विदित्वा तपश्चरेत् ॥

४९—पृथ्वी, बावल, जो, सोना और
पशु—ये सब एक की इच्छापूर्ति के लिए
पर्याप्त नहीं हैं, यह जान कर तप का आचरण
करे ।

५०—एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमि रायरिसि
देविन्दो इणमब्बवी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमि राजर्षि
देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥

५०—यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से
प्रेरित हुए देवेन्द्र ने तमि राजर्षि से इस प्रकार
कहा—

५१—अच्छेरगमब्भुदए
भोए चयसि^४ पत्थिवा !^५ ।
असन्ते कामे पत्थेसि
संकल्पेण विहन्नसि ॥

आश्चर्यमभ्युदये
भोगास्त्यजसि पाथिव ! ।
असतः कामान्प्रार्थयसे
संकल्पेन विहन्यसे ॥

५१—हे पाथिव ! आश्चर्य है कि तुम
इस अभ्युदय-काल में सहज प्राप्त भोगों को
त्याग रहे हो और अप्राप्त काम-भोगों की इच्छा
कर रहे हो—इस प्रकार तुम अपने संकल्प से
ही प्रताड़ित हो रहे हो ।

१. सवाहणं (बु० पा०, च०) ।

२. य (अ) ।

३. तेणं (बु० पा०) ।

४. सव्वत्तं (बु० पा०) ।

५. जहासि (बु०) ; चयसि (बु० पा०) ।

६. खत्तिया ! (बु० पा०) ।

नमिपवज्जा (नमि-प्रवज्या)

११७

अध्ययन ६ : श्लोक ५२-५७

५२—एयमंद्दं निसामित्ता
हेऊकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरसी
देविन्दं इणमध्ववी ॥

एतमर्थं निशम्य
हेतु-कारण-चोदितः ।
ततो नमो राजर्षिः
देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥

५२—यह अर्थ मुन कर हेतु और कारण
से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस
प्रकार कहा—

५३—सव्वं कामा विसं कामा
कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा
अकामा जन्ति दोग्गं ॥

शल्यं कामा विषं कामाः
कामा आशीविषोपमाः ।
कामान्प्राप्यमाना
अकामा यान्ति दुर्गतिम् ॥

५३—काम-भोग शल्य हैं, विष हैं और
आशीविष सर्प के तुल्य है । काम-भोग की
इच्छा करने वाले, उसका सेवन करते हुए भी
दुर्गति की प्राप्ति होते हैं ।

५४—अहे वयइ कोहेण
माणेणं अहमा गई ।
माया गईपडिग्घाओ
लोभाओ दुइओ भयं ॥

अधो व्रजति क्रोधेन,
मानेनाधमा गतिः ।
मायया गति-प्रतिघातः
लोभाद् द्विधा भयम् ॥

५४—मनुष्य क्रोध से अधोगति में जाता
है । मान से अधम गति होती है । माया से
सुगति का विनाश होता है । लोभ ने दोनों
प्रकार का— ऐहिक और पारलौकिक—भय
होना है ।

५५—अवउज्झिऊण माहणरूवं
विउव्विऊण इन्दत्तं ।
वन्दइ अभित्थुणन्तो
इमाहि महुराहि वग्गूहि ॥

अपोजभ्य ब्राह्मण-रूपं
विकृत्येन्द्रत्वम् ।
वन्दतेऽभिष्टुवन्
आभिर्मधुराभिर्बाष्मिः ॥

५५—देवेन्द्र ने ब्राह्मण का रूप छोड़,
इन्द्र रूप में प्रकट हो नमि राजर्षि की वन्दना
की और उन मधुर शब्दों में स्तुति करने लगा ।

५६—अहो ! ते निज्जिओ कोहो
अहो ! ते माणो पराजिओ ।
अहो ! ते निराकृता माया
अहो ! ते लोभो वसीकओ ॥

अहो ! त्वया निजितः क्रोधः
अहो ! त्वया मानः पराजितः ।
अहो ! त्वया निराकृता माया
अहो ! त्वया लोभो वशीकृतः ॥

५६—हे राजर्षि ! आश्चर्य है तुमने क्रोध
को जीता है । आश्चर्य है तुमने मान को
पराजित किया है ! आश्चर्य है तुमने माया
को दूर किया है ! आश्चर्य है तुमने लोभ को
वश में किया है !

५७—अहो ! ते अज्जवं साहु
अहो ! ते साहु मद्धवं ।
अहो ! ते उत्तमा खन्ती
अहो ! ते मुत्ति उत्तमा ॥

अहो ! ते आर्जवं साधु
अहो ! ते साधु मार्दवं ।
अहो ! ते उत्तमा क्षान्तिः
अहो ! ते मुक्तिरुत्तमा ॥

५७—अहो ! उत्तम है तुम्हारा आर्जव !
अहो ! उत्तम है तुम्हारा मार्दव ! अहो !
उत्तम है तुम्हारी क्षमा ! अहो ! उत्तम है
तुम्हारी निर्लभता !

५८—इहं सि उत्तमो भन्ते !
पेष्वा होहिंसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तमं^१ ठाणं
सिद्धिं गच्छसि नीरजो ॥

इहास्युत्तमो भवन्त !
प्रेष्य भविष्यस्युत्तमः ।
लोकोत्तमोत्तमं स्थानं
सिद्धिं गच्छसि नीरजाः ॥

५८—भववन् ! तुम इस लोक में भी उत्तम हो और परलोक में भी उत्तम होओगे । तुम कर्म-रज से मुक्त होकर लोक के सर्वोत्तम स्थान (मोक्ष) को प्राप्त करोगे ।

५९—एवं अभित्युणन्तो
रायरिसि उत्तमाए सद्धाए ।
पयाहिणं^२ करेन्तो
पुणो पुणो वन्दई सको ॥

एवमभिष्टुवन्
राज्विमृत्तमया श्रद्धया ।
प्रदक्षिणां कुर्वन्
पुनः पुनर्वन्दते शक्तः ॥

५९—इस प्रकार इन्द्र ने उत्तम श्रद्धा से राजर्षि की स्तुति की और प्रदक्षिणा करते हुए बार-बार वन्दना की ।

६०—तो' वन्दिऊण पाए
चक्काकुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पडओ
ललियचवलकुंडलतिरीडो ॥

ततो वन्दिहवा पादौ
चक्राकुश-लक्ष्णौ मुनिवरस्य ।
आकाशेनोत्पतितः
ललित-चपल-कुण्डल-किरीटी ॥

६०—इसके पदवात् मुनिवर नमि के चक्र आर अकुश से चिह्नित चरणों में वन्दना कर ललित और चपल कुण्डल एवं मुकुट को धारण करने वाला दम्भ आकाश मार्ग में चला गया ।

६१—नमी नमेइ अप्पाणं
सक्खं^३ सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही
सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥

नमिर्नमयत्यात्मान
साक्षाच्छक्रेण चोदितः ।
त्यक्त्वा गृहं वेदेही
श्रामण्ये पर्युपस्थितः ॥

६१—नाम राजर्षि ने अपनी आत्मा का नमो दिया—सयम के प्रतिममणित कर दिया । वे शास्त्र देवन्द के द्वारा प्रेरित होने पर भी धर्म से विचलित नहीं हुए और गृह और वेदेही (मिथिला) को त्याग कर श्रामण्य में उपस्थित हो गये ।

६२—एवं करेन्ति संबुद्धा^४
पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु
जहा से नमी रायरिसि ॥
—ति वेमि ।

एवं क्वन्ति संबुद्धाः
पण्डिताः प्रविचक्षणाः ।
विनिवर्तन्ते भोगेभ्यः
यथा स नमी राजर्षिः ॥
इति श्रवोमि ।

६२—संबुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष उन्नी प्रकार करते हैं—वे भोगों से निवृत्त होते हैं जैसे कि नमि राजर्षि हुए ।

— ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. लोगुत्तमं सुत्तमं (बु० पा०) ।

२. पायाहिणं (वृ०) ।

३. स (बु० पा०) ।

४. सक्कं (श्रु०) ।

५. संपन्ना (प०) ।

सप्तमं अध्यायः :
द्रुमपत्रकं

सप्तमं अध्यायः :
द्रुम-पत्रक

आशुबल

इस अध्ययन का नाम आशुपद (आदान-पद) 'द्रुमपत्र' के; आधार पर 'द्रुम-पत्रक' रखा गया है।^१ कई कारणों से गौतम गणधर के मन में विचित्रता हुई। भगवान् महावीर ने उसका निवारण करने के लिए इस अध्ययन का प्रातिपादन किया।

उस काल और उस समय पृष्ठचम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ शाल नाम का राजा था और सुवराज का नाम था महाशाल। उसके यशस्वती नाम की बहिन थी। उसके पति का नाम पिठर था। उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम गागली रखा गया। एक बार भगवान् महावीर राजगृह से विहार कर पृष्ठचम्पा पधारे। सुभूमि-भाग स्थान में ठहरे। राजा शाल भगवान् की वन्दना करने गया। भगवान् से धर्म सुना और विरक्त हो गया। उसने भगवान् से प्रार्थना की—“भन्ते! मैं महाशाल का राज्याभिषेक कर दीक्षित होने के लिए अभी वापस आ रहा हूँ।” वह नगर में गया। महाशाल से सारी बात कही। उसने भी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की। वह बोला—“मैं आपके साथ ही प्रव्रजित होऊँगा।” राजा ने अपने भानज गागली को काम्पल्यपुर से बुलाया और उसे राज्य का भार सौंप दिया। गागली अब राजा हो गया। उसने अपने माता-पिता को भी वहाँ बुला लिया। इधर शाल और महाशाल भगवान् के पास दीक्षित हो गए। यशस्वती भी श्रमणोपासिका हुई। उन दोनों श्रमणों ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

भगवान् महावीर पृष्ठचम्पा से विहार कर राजगृह गए। वहाँ से विहार कर चम्पा पधारे। शाल और महाशाल भगवान् के पास आए और प्रार्थना की—“यदि आपकी अनुज्ञा हो तो हम पृष्ठचम्पा जाना चाहते हैं। सम्मत् है किसी को प्रातिबोध मिले और कोई सम्यग्दर्शी बने।” भगवान् ने अनुज्ञा दी और गौतम के साथ उन्हें वहाँ भेजा। वे पृष्ठचम्पा गए। वहाँ के राजा गागली और उसके माता-पिता को दीक्षित कर वे पुनः भगवान् महावीर के पास आ रहे थे। मार्ग में चलते-चलते सुनि शाल और महाशाल के अध्यवसायों की पवित्रता बढ़ी और वे केवली हो गए। गागली और उसके माता-पिता—तीनों को केवलज्ञान हुआ। सभी भगवान् के पास पहुँचे। गौतम ने भगवान् की वन्दना की और उन सबको वन्दना करने के लिए कहा। भगवान् ने गौतम को सम्बोधित कर कहा—“गौतम! केवलियों की आशानना मत करो।” गौतम ने उनसे क्षमा-याचना की; पर मन शंकाओं से भर गया। उन्होंने सोचा—“मैं सिद्ध नहीं होऊँगा।”

एक बार गौतम अष्टापद पर्वत पर गये। वहाँ पहले से ही तीन तापस अपने-अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों के परिवार से तप कर रहे थे। उनका नाम था कौडिन्य, दत्त और शंखाल।

दत्त बेल-बेलों की तपस्या करता। वह नीचे पड़े पीले पत्ते खा कर रहता था। वह अष्टापद की दूसरी मेखला तक ही चढ़ पाया।

कौडिन्य उपवास-उपवास की तपस्या करता और पारण ने मूल, कन्द आदि सखित आहार करता था। वह अष्टापद पर्वत पर चढ़ा किन्तु एक मेखला से आगे नहीं जा सका।

१—उत्तराध्ययन निर्मुक्ति, भाषा २८२ :

द्रुमपत्रोक्तम् अष्टादिषु उक्तमेव च।

इत्येवं आसीत् तो तं द्रुमपत्रमभ्यर्णम् ॥

उत्तरउभयणं (उत्तराध्ययन)

१२४

अध्ययन १० : श्लोक ६-१२

६—आउकायमद्गओ

उकोसं जीवो उ संवसे ॥
कालं संखाईयं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

७—तेउकायमद्गओ

उकोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

८—वाउकायमद्गओ

उवकोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

९—वणस्सइकायमद्गओ

उवकोसं जीवो उ संवसे ।
कालमणन्तदुरन्तं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१०—वेइन्दियकायमद्गओ

उवकोसं जीवो उ संवसे ।
काळं संखिज्जसन्नियं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

११—वेइन्दियकायमद्गओ

उवकोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१२—चउरिन्दियकायमद्गओ

उवकोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अए-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्यातीतं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

तेजस्कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्यातीतं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

वायु-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्यातीतं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

वनस्पति-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालमनन्तं दुरन्तं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

द्वीन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्येय-संज्ञितं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

त्रीन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्येय-संज्ञितं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

चतुरिन्द्रिय-कायमतिगतः

उत्कर्षं जीवस्तु संवसेत् ।
कालं संख्येय-संज्ञितं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

६—अए-काय में उत्पन्न हुआ जीव

अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह
जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

७—तेजम्-काय में उत्पन्न हुआ जीव

अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह
जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

८—वायु-काय में उत्पन्न हुआ जीव

अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह
जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

९—वनस्पति-काय में उत्पन्न हुआ जीव

अधिक से अधिक दुरन्त शनैः-काल तक वहाँ
रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

१०—द्वीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव

अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह
जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

११—त्रीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव

अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह
जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

१२—चतुरिन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव

अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह
जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

दुमपत्तयं (दुम-पत्रक)

१२५

अध्ययन १० : श्लोक १३-१६

१३—पंचिन्द्रिकायमद्गओ
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
सत्तद्वभवग्गहणे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१४—देवे नेरइए य अद्गओ
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
इक्किक्कभवग्गहणे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१५—एवं भवसंसारे
संसारइ मुहामुहेहि कम्महि ।
जीवो पमायवदुलो
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१६—लद्धण वि माणुसत्तणं
आरिअत्तं पुणरावि दुल्लं ।
बहव दमुया मिलक्कवुया
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१७—लद्धण वि आरियत्तणं
अहीणपंचिन्द्रियया हु दुल्लं ।
विगलिन्द्रियया हु दोसई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१८—अहीणपंचिन्द्रियत्तं पि से लहे
उत्तमधम्ममुई हु दुल्लं ।
कुत्तिन्निसेवए^१ जणे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

१९—लद्धण वि उत्तमं मुइं
सद्दहमा पुणरावि दुल्लं ।
मिच्छत्तनिसेवए जणे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

पंचेन्द्रिय-कायमतिगतः
उत्कर्ष जीवस्तु संवसेत् ।
सत्ताष्ट भवग्रहणानि
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

देवान्नैरपि कांश्चातिगतः
उत्कर्ष जीवस्तु संवसेत् ।
एकैकभवग्रहणं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

एवं भव संसारे
ससरति शुभाशुभैः कर्मभिः ।
जीवः प्रमाद-बहुलः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वापि मानुषत्वं
आर्यत्वं पुनरपि दुर्लभम् ।
बहवो दस्यवो म्लेच्छाः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वाप्यार्यत्वं
अहीन-पंचेन्द्रियता खलु दुर्लभा ।
विकलेन्द्रियता खलु दृश्यते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

अहीन-पंचेन्द्रियत्वमपि स लभेत
उत्तम-धर्म-श्रुतिः खलु दुर्लभा ।
कुतोचि-निषेधको जनों
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

लब्ध्वाप्युत्तमां श्रुतिं
श्रद्धात् पुनरपि दुर्लभम् ।
मिथ्यात्व-निषेधको जनों
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

१३—पंचेन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव
अधिक से अधिक सात-आठ जन्म-ग्रहण तक
बहुत रह जाता है, इसलिए है गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

१४—देव और नरक-योनि में उत्पन्न
हुआ जीव अधिक से अधिक एक-एक जन्म-
ग्रहण तक वहाँ रह जाता है, इसलिए है
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१५—इस प्रकार प्रमाद-बहुल जीव
शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा जन्म-मृत्युमय संसार
में परिभ्रमण करता है, इसलिए है गौतम !
तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१६—मानव-जन्म दुर्लभ है, उसके मिलने
पर भी आर्य देश में जन्म पाना और भी दुर्लभ
है । बहुत सारे लोग मनुष्य हीकर भी दस्यु
और म्लेच्छ गौतम हैं, इसलिए है गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

१७—आर्य देश में जन्म मिलने पर भी
पूर्वों इन्द्रियो के पूर्ण स्वस्थ होना दुर्लभ है ।
बहुत सारे लोग इन्द्रियहीन बंधव रहे हैं,
इसलिए है गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

१८—आर्य देश में पूर्ण स्वस्थ होने पर
भी उत्तम धर्म की श्रुति दुर्लभ है । बहुत सारे
लोग कुतोचिको भी सेवा करने वाले होते हैं,
इसलिए है गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

१९—उत्तम धर्म की श्रुति मिलने पर
भी श्रद्धा होना और अधिक दुर्लभ है । बहुत
सारे लोग मिथ्यात्व का सेवन करने वाले होते
हैं, इसलिए है गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

१. कुत्तिन्न (वृ० पा०, सू०) ।

२०—धम्मं पि हु सदहन्त्या
दुल्लह्या^१ काएण फासया ।
इह कामगुणेहि^२ मुच्छिया
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

धर्ममपि क्षलु श्रद्धयतः
दुर्लभकाः कायेन स्पर्शकाः ।
इह काम-गुणेषु मूर्च्छिताः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२०—उत्तम धर्म में खड़ा होने पर भी
उसका आचरण करने वाले दुर्लभ हैं । इस
लोक में बहुत सारे लोग काम-गुणों में मूर्च्छित
होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

२१—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से सोयबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तच्छ्रोत्र-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२१—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और श्रोत्र का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२२—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से चक्खुबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तच्चक्षु-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२२—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और चक्षु का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

२३—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से घाणबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तहघ्राण-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२३—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और घ्राण का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

२४—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से जिव्भबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तज्जिह्वा-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२४—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और जिह्वा का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

२५—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से फासबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तत् स्पर्श-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२५—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और स्पर्श का पूर्ववर्ती बल
क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

१. दुल्लह्या (उ) ।

२. कामगुणेह (उ, म, द०) ; कामगुणेहि (द० पा०) ।

द्रुमपत्तयं (द्रुम-पत्रक)

१२७

अध्ययन १० : श्लोक २६-३१

२६—परिजूरइ ते सरीरयं
केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से सव्वबले य हायई
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

परिजीर्यंति ते शरीरकं
केशाः पाण्डुरका भवन्ति ते ।
तत् सर्व-बलं च हीयते
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२६—तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश
सफेद हो रहे हैं और सब प्रकार का पूर्ववर्ती
बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२७—अरई गण्डं विसूइया
आयंका विविहा फुसन्ति ते ।
विवडइ विदंसइ ते सरोरयं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अरतिगण्डं विसूचिका
आतङ्कू विविधाः स्पृशन्ति ते ।
विपतति विध्वंस्यते ते शरीरकं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२७—पित्त-रोग, फोड़ा-कुन्सी, हैजा और
विविध प्रकार के शीघ्र-घाती रोग शरीर का
स्पर्श करते हैं, जिन्से यह शरीर शक्तिहीन
और विनष्ट होता है, इसलिए हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२८—बोछिन्द सिणेहमप्पणो
कुमुयं सारइयं व' पाणियं ।
से सव्वसिणेहवज्जिए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

व्युच्छिन्धि स्नेहमात्मनः
कुमुवं शारद-मिव पानीयम् ।
तत्सर्वस्नेह-वजितः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२८—जिस प्रकार शरद-ऋतु का कुमुद
(रक्त-कमल) जल में लिस नहीं होता, उसी
प्रकार तू अपने स्नेह का विच्छेद कर निःशेष
बन । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

२९—चिच्चाण धणं च भारियं
पव्वइओ हि सि अणगारियं ।
मा वन्तं पुणो वि आइए
स मयं गोयम ! मा पमायए ॥

त्यक्त्वा धनं च भार्यां
प्रव्रजितो ह्यस्य नगरिताम् ।
मा वान्तं पुनरप्यापिब
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

२९—गाय आदि धन और पत्नी का
त्याग कर तू अनगर-वृत्ति के लिए घर से
निकला है । वमन किए हुए काम-भोगों को
फिर से मत पी । हे गौतम ! तू क्षण भर भी
प्रमाद मत कर ।

३०—अवउज्झियं मित्त्वन्धवं
विउलं चेव धणोहंसंचयं ।
मा तं बिइयं गवेसए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अपोऽभूय मित्र-बान्धवं
विपुलं चैव धनौघ-संचयम् ।
मा तद् द्वितीयं गवेषय
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३०—मित्र, बान्धव और विपुल धन-
राशि को छोड़कर फिर से उनकी गवेषणा मत
कर । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत
कर ।

३१—न हु जिणे अज्ज दिस्सई
बहुमए दिस्सई ममादेसिए ।
संपइ नेयाउए पहे
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

न खलु जिमोऽद्य दृश्यते
बहुमतो दृश्यते मार्ग-वेष्टिकः ।
सम्प्रति नैर्यातुके पथि
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३१—“आज जिन नहीं दीख रहे हैं, जो
मार्ग-दर्शक हैं वे एक मत नहीं हैं”—धम्मकी
पीडियों को इस कठिनाई का अनुभव होगा,
किन्तु धर्मी मेरी उपस्थिति में बुद्धि पार ले
जाते वाला (व्यायपूर्ण) पथ प्राप्त है, इसलिए
हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३२—अवसोहिय कण्टगापहं
ओइण्णो सि पहं महालयं ।
गच्छसि मगं विसोहिया
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अवशोध्य कंटक-पथं
अवसोर्णोऽसि पन्थानं महालयं ।
गच्छसि मार्गं विशोध्य
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३२—काँटों से भरे मार्ग को छोड़ कर तू
विशाल-पथ पर चला आया है । इड़ निश्चय के
साथ उठी मार्ग पर चल । हे गौतम ! तू क्षण
भर भी प्रमाद मत कर ।

३३—अबले जह भारवाहए
मा मगे विसमे वगाहिया ।
पच्छा पच्छाणुतावए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अबलो यथा भार-वाहकः
मा मार्गं विषममवगाह्य ।
पश्चात्पश्चादनुतापकः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३३—बलहीन भार-वाहक की भाँति तू
विषम मार्ग में मत चले जाना । विषम-मार्ग में
जाने वाले को पछतावा होता है, इसलिए हे
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३४—तिण्णो हु सि अण्णवं महं
कि पुण चिट्ठसि तीरमागतो ।
अभितुर पारं गमित्ठए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

तीर्णः खलु असि अर्णवं महान्तं
कि पुनस्तिष्ठसि तीरमागतः ।
अभित्वरस्व पारं गन्तुं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३४—तू महान्तं समुद्र को तैर गया, अब
तीर के निकट पहुँच कर क्यों खड़ा है ? उसके
पार जाने के लिए जल्दी कर । हे गौतम ! तू
क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३५—अकलेवरसेणिमुत्तिया
सिद्धि गोयम लांयं गच्छसि ।
खेमं च सिवं अणुत्तरं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अकलेवर-श्रेणिमुच्छ्रित्य
सिद्धिं गौतम ! लोकं गच्छसि ।
क्षेमं च शिवमनुत्तरं
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३५—हे गौतम ! तू क्षपक-श्रेणी पर
आरुढ़ होकर उम सिद्धि-लोक को प्राप्त होगा,
जो क्षेम, शिव और अनुत्तर है, इसलिए हे
गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३६—बुद्धे परिनिब्बुडे चरे
गामगए नगरे व संयतए ।
सन्तिमगं च बहए
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

बुद्धः परिनिर्बुतश्चरेः
ग्रामे गतो नगरे वा संयतः ।
शान्तिमार्गं बृह्येः
समयं गौतम ! मा प्रमादीः ॥

३६—तू गाँव में या नगर में संयत, बुद्ध
और उपाशान्त होकर विचरण कर, शान्ति-मार्ग
को बढ़ा । हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद
मत कर ।

३७—बुद्धस्स निसम्म भासियं
सुकहियमट्ठपओवसोहियं ।
रागं दोसं च छिन्दिया
सिद्धिगई गए गोयमे ॥
—त्ति वेमि ।

बुद्धस्य निशम्य भाषितं
सुकथितमथंपवोपशोभितम् ।
रागं द्वेषं च छिन्द्या
सिद्धिर्गतिं गतो गौतमः ॥
इति अबोमि ।

३७—अर्थ और पद से उपशान्त एवं
सुकथित भगवान् की वाणी को सुन कर राग
और द्वेष का छेदन कर गौतम सिद्धि-गति को
प्राप्त हुए ।

— ऐसा मैं कहता हूँ ।

इकारसमं अज्ज्ञयणं :
बहुस्सुयपुज्जा

एकादशमं अध्ययनं :
बहुश्रुत-पूजा

आमुख

इस अध्ययन में बहुश्रुत की भाव-पूजा का निरूपण है, इसलिए इसका नाम 'बहुस्सुयपुज्जा'—'बहुश्रुत-पूजा' रखा गया है। यहाँ बहुश्रुत का मुख्य अर्थ चतुर्दश-पूर्वी है। यह सादा प्रतिपादन वन्हीं से सम्बन्धित है। उपलक्षण से शेष सभी बहुश्रुत मुनियों की पूजनीयता भी प्राप्त होती है^१।

निशीथ-भाष्य-वृत्ति के अनुसार बहुश्रुत तीन प्रकार के होते हैं^२—

- १—जघन्य बहुश्रुत—जो निशीथ का ज्ञाता हो।
- २—मध्यम बहुश्रुत—जो निशीथ और चौदह-पूर्वी का मध्यवर्ती ज्ञाता हो।
- ३—उत्कृष्ट बहुश्रुत—जो चतुर्दश-पूर्वी को।

सूत्रकार ने बहुश्रुत को अनेक उपमाओं से उपासित किया है। सारी उपमाएँ बहुश्रुत की आन्तरिक शक्ति और तेजस्विता को प्रकट करती हैं—

- १—बहुश्रुत कम्बोज के धोड़ों की तरह शील संश्लेष होता है।
- २—बहुश्रुत हृष्ट पराक्रमी योद्धा की तरह अजेय होता है।
- ३—बहुश्रुत ६० वर्ष के बलवान हाथी की तरह अपराजेय होता है।
- ४—बहुश्रुत युधाधिपति वृषभ की तरह अपने गण का प्रमुख होता है।
- ५—बहुश्रुत दुष्पराजेय सिंह की तरह अन्य तीर्थिकों में श्रेष्ठ होता है।
- ६—बहुश्रुत वासुदेव की भाँति अबाधित पराक्रम वाला होता है।
- ७—बहुश्रुत चतुर्दश रत्नाधिपति चक्रवर्ती की भाँति चतुर्दश-पूर्वधर होता है।
- ८—बहुश्रुत देवाधिपति शक्र की भाँति संपदा का अधिपति होता है।
- ९—बहुश्रुत उगते हुए सूर्य की भाँति तप के तेज से प्रज्वलित होता है।
- १०—बहुश्रुत पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सकल कलाओं से परिपूर्ण होता है।
- ११—बहुश्रुत धान से भरे कोठों की भाँति श्रुत से परिपूर्ण होता है।
- १२—बहुश्रुत जम्बू वृक्ष की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १३—बहुश्रुत सीता नदी की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १४—बहुश्रुत मन्दर पर्वत की भाँति श्रेष्ठ होता है।
- १५—बहुश्रुत नाना रत्नों से परिपूर्ण स्वयम्भूरमण समुद्र की भाँति अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण होता है।

१—उत्तराध्ययन निरुक्ति, गाथा ३१७ :

ते किर चतुर्दशुध्वी, सव्यक्वरसन्निवाइषो निडणा ।
जा तेसिं पुषा खलु, सा भावे ताइ अहिगारो ॥

२—निशीथ पीठिका भाष्य वृत्ति, पृष्ठ ४६६ :

बहुस्सुयं जस्स सो बहुस्सुतो, सो तिविहो—जहणो, मज्झिमो, उद्धोसो । जहणो जेणपक्कप्पलक्षणं अवीतं, उद्धोसो बोद्दस्स पुब्बवत्तो, तम्मस्सो मज्झिमो ।

बहुश्रुता का प्रमुख कारण है विनय । जो व्यक्ति विनीत होता है उसका श्रुत फलवान् होता है । जो विनीत नहीं होता उसका श्रुत फलवान् नहीं होता । स्तब्धता, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य—ये पाँच शिक्षा के विघ्न हैं ।^१ इनकी तुलना योगमार्ग के नौ विघ्नों से होती है ।^२

आठ लक्षण युक्त व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त होती है (श्लोक ४-५)—

१—जो हास्य नहीं करता ।

२—जो इन्द्रिय और मन का दमन करता है ।

३—जो मर्म प्रकाशित नहीं करता ।

४—जो चरित्रवान् होता है ।

५—जो दुःशील नहीं होता ।

६—जो रसों में अतिगृह्य नहीं होता ।

७—जो क्रोध नहीं करता ।

८—जो सत्य में रत रहता है ।

सुशकार ने अविनीत के १४ लक्षण और विनीत के १५ गुणों का प्रतिपादन कर अविनीत और विनीत की सुन्दर समीक्षा की है (श्लोक ६-१३) ।

इस अध्ययन में श्रुत-अध्ययन के दो कारण बताए हैं (श्लोक ३३)—

१—स्व की मुक्ति के लिए ।

२—पर की मुक्ति के लिए ।

दशवैकालिक में श्रुत-अध्ययन के चार कारण दिए हैं—

१—मुझे श्रुत प्राप्त होगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।

२—मैं एकाग्रचित्त होऊँगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।

३—मैं आत्मा को धर्म में स्थापित करूँगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।

४—मैं धर्म में स्थित होकर दूसरे को उसमें स्थापित करूँगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।

१—उत्तराध्ययन ११:३ :

अहं पंचद्वि ठाणेहि, नेहि सिक्खा न लभई ।

यम्मा कोहा पमाएणं, रोगेणाऽल्लसएण य ॥

१—पारंजल योगदर्शन १:३० :

व्याध्याऽनसंशयमाशालस्वाविरतिव्रान्तिर्दुर्नालश्चभूमिकल्पानवस्थितत्वानि चित्तविभ्रेषालेऽनृतायाः ।

२—दशवैकालिक ६:४ सू० ५ :

सुखं मे भविस्सहंति अक्काहवणं भवहं । एगमाचिओ भविस्सामि ति अक्काहवणं भवहं । अप्पाणं ठावहस्सामि ति अक्काहवणं भवहं ।

ठिओ परं ठावहस्सामि ति अक्काहवणं भवहं ।

हकारसमं अञ्जयणं : एकादश अध्यायन

बहुसुयपुञ्जा : बहुश्रुत-पूजा

मूल

१---संजोगा विष्पमुक्कस्स
अणगारस्स भिक्खुणो ।
आयारं पाउकरिस्सामि
आणुपुव्वि मुणेह मे ॥

संस्कृत छाया

संयोगाद् विप्रमुक्तस्य
अनगारस्य भिक्षोः ।
आचारं प्रादुर्करिष्यामि
आनुपूर्व्या शृणुत मे ॥

हिन्दी अनुवाद

१ जो संयोग से मुक्त है, जो अनगार है, जो भिक्षु है, उसका मैं क्रमशः आचार करूँगा । मुझे सुनो ।

२-- जे यावि होइ निव्विज्जे
यत्ते लुद्धे अणिगत्ते ।
अभिकवणं उल्लव्ढं
अविणीए अबहुम्मए ॥

यश्चापि भवति निर्विद्यः
स्तब्धो लुब्धोऽतिग्रहः ।
अभीक्ष्णमुल्लपति
अविनीतोऽबहुश्रुतः ॥

२-- जो विद्याहीन है, विद्यावान् होने लगा भी जो अभिमानी है, जो सरस आहार में लब्ध है, जो अजितेन्द्रिय है, जो बार-बार असम्बद्ध बोलता है, जो अविनीत है, वह अबहुश्रुत कहलाता है ।

३--अह पंचहि ठाणेहि
अहि सिक्खा न लब्धई ।
थम्भा कोहा पमाएणं
रोगेणाऽल्लसएण य ॥

अथ पञ्चभिः स्थानैः
यैः शिक्षा न लभ्यते ।
स्तम्भान् क्रोधान् प्रमादेन
रोगेणालस्येन च ॥

३--मान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य--इन पाँच स्थानों (हेतुओं) में शिक्षा प्राप्त नहीं होती ।

४--अह अट्ठहि ठाणेहि
सिक्खासीले त्ति वुच्चई ।
अहस्सिरे सया दत्ते
न य मम्ममुदाहरे ॥

अथाष्टभिः स्थानैः
शिक्षा-शील इत्युच्यते ।
अहसिता सदा दान्तः
न च मम उदाहरेत् ॥

४--आठ स्थानों (हेतुओं) से व्यक्ति को शिक्षा-शील कहा जाता है । (१) जो हास्य न करे, (२) जो सदा इन्द्रिय और मन का दमन करे, (३) जो मर्म-प्रकाशन न करे,

५--नासीले न विसीले
न सिया अइलोलुए ।
अकोहणे सच्चरए
सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥

नाशीलो न विसीलः
न स्यादतिलोलुपः ।
अक्रोधनः सत्य-रतः
शिक्षा-शील इत्युच्यते ॥

५--(४) जो चरित्र से हीन न हो, (५) जिसका चरित्र दोषों से कलुषित न हो, (६) जो रसों में अति लोलुप न हो, (७) जो क्रोध न करे, और (८) जो सत्य में रत हो--उसे शिक्षा-शील कहा जाता है ।

६—अह चउदसहि ठाणेहि
वट्टमाणे उ संजए ।
अविणीए वुच्चई सो उ
निव्वाणं च न गच्छइ ॥

७—अभिक्षणं कोही हवइ
पबन्धं च पकुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो वमइ
सुयं लद्धूणं मज्जई ॥

८—अवि पावपरिक्खेवी
अवि मित्तमु कृपई ।
मुप्पियस्सावि मित्तस्स
रहे भासइ पावगं ॥

९—पइण्णवाई दुहिले
थद्धे लुद्धं अणिग्गहे ।
असंविभागी अचियत्ते
अविणीए त्ति वुच्चई ॥

१०—अह पन्नरसहि ठाणेहि
मुविणीए त्ति वुच्चई ।
नीयावती अचवले
अमाई अकुउहले ॥

११—अप्पं चाऽहिक्खिवई^१
पबन्धं च न कुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो भयई
सुयं लद्धं न मज्जई ॥

अथ चतुर्दशसु स्थानेषु
वर्तमानस्तु संयतः ।
अविनीत उच्यते स तु
निर्वाणं च न गच्छति ॥

अभिक्षणं श्रोणी भवति
प्रबन्धं च प्रकरोति ।
मित्रोऽप्यमाणो वमति
श्रुतं लब्ध्वा साद्यति ॥

अपि पाप-परिक्षेयो
अपि मित्रेभ्यः कृप्यति ।
सुप्रियस्यापि मित्रस्य
रहसि भाषते पापकम् ॥

प्रकीर्ण-वादी द्रोघा
स्तब्धो लुब्धोऽतिग्रहः ।
असंविभागी 'अचियत्त'
अविनीत इत्युच्यते ॥

अथ पंचदशभिः स्थानः
सुविनीत इत्युच्यते ।
नीचवत्येवपलः
अमाप्यकुतूहलः ॥

अल्पं चाक्षिपति
प्रबन्धं च न करोति ।
मित्रोऽप्यमाणो भजति
श्रुतं लब्ध्वा न साद्यति ॥

६—चौदह स्थानों (हेतुओं) में वर्तन
करने वाला संयमी अविनीत कहा जाता है ।
वह निर्वाण को प्राप्त नहीं होता ।

७—(१) जो बार-बार क्रोध करता है,
(२) जो क्रोध को टिका कर रखता है, (३) जो
मित्रभाव रखने वाले को भी ठकुरता है,
(४) जो श्रुत प्राप्त कर मद करता है,

८—(५) जो किसी की स्तूलना होने
पर उसका निन्दाकार करता है, (६) जो मित्रों
पर कृपित होता है, (७) जो अत्यन्त प्रिय मित्र
की भी एकान्त में बुराई करता है,

९—(८) जो अमंजद-भाषी है, (९) जो
द्रोही है, (१०) जो अभिमानी है, (११) जो
मग्न जाहार आदि में लब्ध है, (१२) जो
अजिज्ञेय है, (१३) जो असंविभागी है, और
(१४) जो अविनीत है—वह अविनीत
कहालाता है ।

१०—पन्द्रह स्थानों (हेतुओं) से सुविनीत
कहालाता है । (१) जो नष्ट व्यवहार करता है,
(२) जो च पल नहीं होता, (३) जो मायावी
नहीं होता, (४) जो कुतूहल नहीं करता,

११—(५) जो किसी का निन्दाकार नहीं
करता, (६) जो क्रोध को टिका कर नहीं
रखता, (७) जो मित्रभाव रखने वाले के
प्रति कुत्त होता है, (८) जो श्रुत प्राप्त कर
मद नहीं करता,

बहुस्तुयपुज्जा (बहुभुत-पूजा)

१३५

अध्ययन ११ : श्लोक १२-१७

१२—न य पावपरिक्षेवी
न य मितेसु कुण्डं ।
अप्यिस्सावि मित्सस
रहे कल्लाण भासई ॥

१३—कलहडमरवज्जए
बुद्धे अभिजाइए ।
हिरिमं पडिसलीणे
मुविणीए त्ति वुच्चई ॥

१४—वसे गुरुकुले निच्चं
जोगवं उवहाणवं ।
गियंकरे पियंवाई
से सिकवं लद्धमरिहई ॥

१५—जहा संखम्मि पयं
'निहियं दुहओ वि' विरायइ ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू
धम्मो किन्ती तहा सुयं ॥

१६—जहा से कम्बोयाणं
आइण्णे कन्थए सिया ।
आसे जवेण पवरे
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

१७—जहाइणसमारुद्धे
सूरे दढपरक्कमे ।
उभओ नन्दिघोसेणं
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

न च पाप-परिक्षेवी
न च मित्रेभ्यः कुण्डति ।
अप्रियस्यापि मित्रस्य
रहसि कल्याणं भावते ॥

कलह-इमर-वज्रकः
बुद्धोऽभिजातिगः ।
हौमान् प्रतिसंलीनः
विनीत इत्युच्यते ॥

वसेह गुरु-कुले नित्यं
योगवानुपधानवान् ।
प्रियङ्गुरः प्रियवादी
स शिक्षां लब्धमरिहति ॥

यथाशङ्खे पयो
निहितं द्विधापि विराजते ।
एवं बहुभूते भिक्षो
धर्मः कीर्तिस्तथा श्रुतम् ॥

यथा स काम्बोजानां
आकीर्णः कन्धकः स्यात् ।
अथो जवेन प्रवरः
एवं भवति बहुभूतः ॥

यथाऽऽकीर्ण-समारुद्धः
शूरो दृढ-पराक्रमः ।
उभयतो नन्दि-घोषेण
एवं भवति बहुभूतः ॥

१२—(१) जो स्वल्पा होने पर किसी का निरस्कार नहीं करता, (१०) जो मित्रों पर क्रोध नहीं करता, (११) जो अप्रिय मित्र की भी एकान्त में प्रशंसा करता है,

१३—(१२) जो कलह और हाथापाई का बर्तन करता है, (१३) जो कुलीन होता है, (१४) जो लज्जावान् होता है और (१५) जो प्रतिसंलीन (इन्द्रिय और मन का संगोपन करने वाला) होता है—वह बुद्धिमान् मुनि विनीत कहलाता है ।

१४—जो सदा गुरु-कुल में वास करता है, जो समाधियुक्त होता है, जो उपधान (श्रुत-अध्ययन के समय तप) करता है, जो प्रिय करता है, जो प्रिय बोलता है—वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

१५—जिस प्रकार शङ्ख में रखा हुआ दूध दोनों ओर (अपने और अपने आचार के गुणों) से मुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुभूत भिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत दोनों ओर (अपने और अपने आचार के गुणों) से मुशोभित होते हैं ।

१६—जिस प्रकार काम्बोज के घोड़ों में से कन्धक घोड़ा शील आदि गुणों से आकीर्ण और वेग से श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार भिक्षुओं में बहुभूत श्रेष्ठ होता है ।

१७—जिस प्रकार आकीर्ण (जातिमान्) अश्व पर चढ़ा हुआ दृढ़ पराक्रम वाला योद्धा दोनों ओर बजने वाले बाघों के घोष से अजेय होता है, उसी प्रकार बहुभूत अपने आसपास होने वाले स्वाध्याय-घोष से अजेय होता है ।

उत्तरउभयर्ण (उत्तराध्ययन)

१३६

अध्ययन ११ : श्लोक १८-२३

१८—जहा करेणुपरिकिणो
कुंजरे सट्टिहायणे ।
बलवन्ते अप्पडिहए
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा करेणुपरिकीर्णः
कुञ्जरः सट्टिहायनः ।
बलवानप्रतिहतः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

१८—जिस प्रकार हथिनियों से परिश्रुत
साठ वर्ष का बलवान् हाथी किसी से पराजित
नहीं होता, उसी प्रकार बहुश्रुत दूसरों से
पराजित नहीं होता ।

१९—जहा से तिकखसिगे
जायखन्वे विरायई ।
वसहे जूहाहिवई
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स तीक्ष्ण-भृंगः
जात-स्कन्धो विराजते ।
बुधभो यथाधिपतिः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

१९—जिस प्रकार तीक्ष्ण सींग और
अत्यन्त पुष्ट स्कन्ध वाला बेल मूष का अधिपति
बन मुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत
आचार्य बनकर मुशोभित होता है ।

२०—जहा से तिकखदाढे
उदग्गे दुप्पहंसए ।
सीहे मियाण पवरे
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स तीक्ष्ण-दंष्ट्रः
उदग्रो दुष्टप्रधवंकः ।
सिंहो मुगाणां प्रवरः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२०—जिस प्रकार तीक्ष्ण दाढ़ों वाला
पूर्ण युवा और दुष्परात्रेय सिंह आरम्भ-पक्षी
में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अन्य
नीतिकों में श्रेष्ठ होता है ।

२१—जहा से वासुदेवे
संखचक्रमयाधरे ।
अप्पडिहयवले जोहे
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स वासुदेवः
शङ्ख-चक्र-गदा-धरः ।
अप्रतिहत-बलो द्योधः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२१—जिस प्रकार शङ्ख, चक्र और गदा
को धारण करने वाला वासुदेव अबाधित बल
वाला योद्धा होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत
अबाधित बल वाला होता है ।

२२—जहा से चाउरन्ते
चक्रवट्टी महडिहए ।
चउदसरयणाहिवई
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स चतुरन्तः
चक्रवर्ती महद्विकः ।
चतुर्दशरत्नाधिपतिः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२२—जिस प्रकार महान् कद्विषाली,
चतुरन्त चक्रवर्ती चौदह रत्नों का अधिपति
होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत चतुर्दश
पूर्वधर होता है ।

२३—जहा से सहस्सक्खे
वज्जपाणी पुरन्दरे ।
सक्के देवाहिवई
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

यथा स सहस्राक्षः
वज्रपाणिः पुरन्दरः ।
शक्रो देवाधिपतिः
एवं भवति बहुश्रुतः ॥

२३—जिस प्रकार सहस्रक्षु, वज्रपाणि
और पुरों का विदारण करने वाला
शक्र देवों का अधिपति होता है, उसी प्रकार
बहुश्रुत देवी सम्पदा का अधिपति होता है ।

बहुसुयपुञ्जा (बहुभुत-पूजा)

१३७

अध्ययन ११ : श्लोक २४-२६

२४—जहा से तिमिरविद्धंसे
उत्तिष्ठन्ते दिवायरे ।
जलन्ते इव तेएण
एवं हवइ बहुसुए ॥

२५—जहा से उडुवई चन्दे
नक्षत्रपरिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए
एवं हवइ बहुसुए ॥

२६—जहा से सामाइयाणं^१
काट्टागारे सुरक्खिए ।
नाणाधन्नपडिपुण्णे
एवं हवइ बहुसुए ॥

२७—जहा सा दुमाण पवरा
जम्बू नाम सुदंसणा ।
अणाडियस्स देवस्स
एवं हवइ बहुसुए ॥

२८—जहा सा नदीनां पवरा
सलिला सागरंगमा ।
सीया नीलवन्तपवहा^२
एवं हवइ बहुसुए ॥

२९—जहा से नगाण पवरे
सुमहं मन्दरे गिरी ।
नाणोसहिपज्जलिए
एवं हवइ बहुसुए ॥

यथा स तिमिर-विध्वंसः
उत्तिष्ठन्दिवाकरः ।
ज्वलन्निव तेजसा
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा स उडुपतिचन्द्रः
नक्षत्र-परिवारितः ।
प्रतिपुणः पौर्णमास्यां
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा स सामाजिकानां
कोट्टागारः सुरक्षितः ।
नानाधान्य-प्रतिपुर्णः
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा सा द्रुमाणां प्रवरा
जम्बूनाम्ना सुदर्शना ।
अनाहतस्य देवस्य
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा सा नदीनां प्रवरा
सलिला सागरङ्गमा ।
शीतानीलवत्प्रवहा
एवं भवति बहुभुतः ॥

यथा स नगाणां प्रवरः
सुमहान्मन्दरो गिरिः ।
नानोषधि-प्रज्वलितः
एवं भवति बहुभुतः ॥

०४—जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला उगता हुआ सूर्य तेज से जलता हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार बहुभुत तप के तेज से जलता हुआ प्रतीत होता है ।

२५—जिस प्रकार नक्षत्र-परिवार से परिदृत ग्रहपति चन्द्रमा पूर्णिमा को प्रतिपुर्ण होता है, उसी प्रकार साधुओं के परिवार में परिदृत बहुभुत सकल कलाओं में परिपुर्ण होता है ।

२६—जिस प्रकार सामाजिकों (समुदाय वृत्ति वालों) का कोट्टागार सुरक्षित और अनेक प्रकार के धान्यों से परिपुर्ण होता है, उसी प्रकार बहुभुत नाना प्रकार के भूत से परिपुर्ण होता है ।

२७—जिस प्रकार अनाहत देव का आश्रय सुदर्शना नाम का जम्बू वृक्ष सब दृक्षों में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुभुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

२८—जिस प्रकार नीलवान् पर्वत से निकल कर समुद्र में मिलने वाली शीता नदी शेष नदियों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुभुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

२९—जिस प्रकार अतिशय महान् और अनेक प्रकार की औषधियों से दीप्त मंदर पर्वत सब पर्वतों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुभुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

१. सामाइयंगणं (बु० पा०) ।

२. 'पवहा (बु०) ; 'पवहा (बु० पा०) ।
F. 35

३०—जहा से सयंभूरमणे
उदही अक्खओदए ।
नाणारयणपडिपुण्णे^१
एवं हवइ बहुस्सुए ॥

३१—समुद्गम्भीरसमा दुरासया
अचक्रिया केणइ दुप्पहंसया^२ ।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो
खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥

३२—तम्हा सुयमहिट्टेज्जा
उत्तमद्गवेसए^३ ।
जेणप्पाणं परं चेव
सिद्धिं संपाउणेज्जासि ॥
—त्ति बेमि ।

यथा स स्वयम्भूरमणः
उदधिरेक्ष्योदकः ।
नानारत्न-प्रतिपूणः
एवं भवति बहुभूतः ॥

समुद्गाम्भीर्यसमा दुरासदाः
अचक्रिताः केनापि दुष्टप्रधर्षकाः ।
श्रुतेन पूर्णा विपुलेन त्रायिणः
क्षययित्वा कर्मगतमुत्तमां गताः ॥

तस्माच्छ्रुतमधिष्ठेन
उत्तमार्थ-गवेषकः ।
येनात्मानं परं चैव
सिद्धिं संप्रापयेत् ॥

—इति ब्रवीमि ।

३०—जिस प्रकार अक्षय जल वाला
स्वयंभूरमण समुद्र अनेक प्रकार के रत्नों से भरा
हुआ होता है, उसी प्रकार बहुभूत अक्षय ज्ञान
से परिपूर्ण होता है ।

३१—समुद्र के समान गम्भीर, दुरासद
(कष्टों से अवाधित), अभय, किसी प्रतिवादी
के द्वारा अपराजेय, विपुलभूत से पूर्ण और
त्राता बहुभूत मुनि कर्मों का क्षय करके उत्तम
गति (मोक्ष) में गये ।

३२—इसलिए उत्तम-अर्थ (मोक्ष) की
गवेषणा करने वाला मुनि श्रुत का आश्रयण
करे, जिससे वह अपने आपको और दूसरों को
सिद्धि (मुक्ति) की प्राप्ति करा सके ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. 'संपुण्णे' (अ) ।

२. 'दुप्पहंसिया' (अ०) ।

३. 'उत्तमिद्ग' (अ) ।

वारसमं अज्ज्ञयणं :
हरिणसिञ्जं

द्वापक्षम अध्वयन :
हरिकेशीय

आसुर्य

यह अध्ययन मुनि हारिकेश्वर से सम्बन्धित है। इसलिए इसका नाम 'हारियासंज्ञ'—'हारिकेश्वर' है।

मयुरा नगरी के राजा 'शैल' विरक्त हुए मुनि बन गए। ग्रामानुग्राम धूमते हुए एक बार वे हास्तिनापुर (हास्तिनापुर) आए और मेक्षा के लिए नगर का ओर थके। ग्राम-प्रवेश के दो मार्ग थे। मुनि ने एक ब्राह्मण से मार्ग पूछा। एक मार्ग का नाम 'हुताशन' था और वह अत्यन्त निकट था। वह अभी की तरह प्रज्वलित रहता था। ब्राह्मण ने कुतूहलवश उस ऊष्ण मार्ग को ओर संकेत कर दिया। मुनि निश्चल भाव से उसी मार्ग पर चल पड़े। वे लम्ब-सम्पन्न थे। अतः उनके पाद-स्पर्श से मार्ग ठण्डा हो गया। मुनि को अविचल भाव से आगे बढ़ते देख ब्राह्मण भी उसी मार्ग पर चल पड़ा। मार्ग की बाँक जैसा ठण्डा देख उसने सोचा—'यह मुनि का ही प्रभाव है।' उसे अपने अनुचित कृत्य पर पश्चानाद हुआ। वह दीड़ा-दीड़ा मुनि के पास आया और उसने अपना पाप प्रकट कर क्षमा-याचना की। मुनि ने धर्म का उपदेश दिया। ब्राह्मण के मन ने विदात्त भाव उत्पन्न हुए। वह मुनि के पास प्रयोजित हो गया। उसका नाम सोमदेव था। उसने जाति का अवलम्ब था। 'मैं ब्राह्मण हूँ, उत्तम जातीय हूँ'—यह मद्द उसने बना रखा। 'आत्मिक से मर कर वह देव बना। देव-आयुष्य की पूरा कर जाति-मद्द के परिपाक से गङ्गा नदी के तट पर हारिकेश्वर का अधिप 'वत्कापट' नामक पाण्डाल की पक्षी 'गारो' के गले से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम बटु रखा गया। यही बालक हारिकेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन वह अपने साथियों के साथ खेल रहा था। खेलते-खेलते वह लड़ने लगा। लोगों ने जब यह देखा तो उसका दूर ठकेल दिया। दूसरे बालक पृथक् खेलने लगे किन्तु वह दशक मात्र ही रहा। इतने में ही एक संयुक्त सप निकला। लोगों ने उसे पथरी से मार डाला। कुछ ही क्षणों बाद एक अलसिया निकला। लोगों ने उस छोड़ दिया। दूर बैठे बालक हारिकेश्वर ने यह सब देखा। उसने सोचा—'प्राणी अपने दावों से ही दुःख पाता है। यदि मैं सप के समान विषेता होता हूँ तो यह स्वाभाविक ही है कि लोग मुझे मारेंगे और यदि मैं अलस्य की तरह निद्रिण होता हूँ तो कोई दूसरा मुझे क्यों सताएगा?' चिन्तन आगे बढ़ा। जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। जाति-मद्द के विपाक का चित्र सामने आ गया। निवेद की प्राप्ति हो उसने दोषा ग्रहण कर ली। मुनि हारिकेश्वर आभय का वशुद्ध रूप से पालन करते हुए तपस्या में लीन रहने लगे। तपः प्रभाव से अनेक यक्ष उनकी सेवा करने लगे। मुनि यक्ष मन्दिर में कायोत्सर्ग, ध्यान आदि करते। एक बार वे ध्यानलीन खड़े थे। उस समय वाराणसी के राजा कीशकि का लड़की भद्रा यक्ष को पूजा करने वहाँ आई। पूजा कर वह प्रदक्षिणा करने लगे। उसकी दृष्टि ध्यानलीन मुनि पर जा टिकी। उनके मैले कपड़े देख उसे घृणा हो आई। आवेश में आ उसने मुनि पर धूक दिया। यक्ष ने यह देखा। उसने सोचा—'इस कुमारी ने मुनि को आशतना की है। इसका फल इसे मिलना ही चाहिए।' यक्ष कुमारी के शरीर में प्रविष्ट हो गया। कुमारी पागल हो गयी। वह अनर्गल बातें कहने लगी। दासियाँ उसे राजमहल के लै गयीं। उपचार किया गया पर सब व्यर्थ। यक्ष ने कहा—'इस कुमारी ने एक तपस्वी मुनि का निरस्त्र कर दिया है। यदि यह उस तपस्वी के साथ पाणिग्रहण करना स्वीकार कर लेती है तो मैं इसके शरीर से बाहर निकल सकता हूँ, अन्यथा नहीं।' राजा ने बात स्वीकार कर ली।

राजा अपनी कन्या को साथ ले यक्ष-मन्दिर में आया और मुनि को नमस्कार कर अपनी कन्या को स्वीकार करने की प्रार्थना की। मुनि ने ध्यान पारा और कहा—“राजन् ! मैं मुसुक्षु हूँ। स्त्री मोक्ष-मार्ग में बाधक है, इसलिए मैं इसका स्पर्श भी नहीं कर सकता।” इतना कह मुनि पुनः ध्यानहीन हो गए।

* कन्या को मुनि के चरणों में छोड़ राजा अपने स्थान पर आ गया। यक्ष ने मुनि का रूप बनाया और राजकन्या का पाणिग्रहण किया। रात भर कन्या वहीं रही। प्रभात में यक्ष दूर हुआ। मुनि ने सही-सही बात कन्या से कही। वह दीड़ी-दीड़ी राजा के पास गई और यक्ष द्वारा उगे जाने की बात बताई। राजा के पास बैठे रुद्रदेव पुरोहित ने कहा—“राजन् ! यह ऋषि-पत्नी है। मुनि ने इसे त्याग दिया है, अतः इसे किसी ब्राह्मण को दे देना चाहिए।” राजा ने उसी पुरोहित को कन्या सौंप दी। वह उसके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा। कुछ काल बीता। पुरोहित ने यक्ष किया। दूर-दूर से विद्वान्-ब्राह्मण बुलाए गए। उन सबके आतिथ्य के लिए प्रचुर भोजन-सामग्री एकत्रित की गई।

उस समय मुनि हरिकेशबल एक-एक मांस का तप कर रहे थे। पारणा के दिन वे भिक्षा के लिए घर-घर धूमते हुए उसी यज्ञ-मण्डप में जा पहुँचे।

उसके बाद मुनि और वहाँ के वरिष्ठ ब्राह्मणों के बीच जो बातों-प्रसंग चला उसका संकलन सूत्रकार ने किया है। वार्ता के माध्यम से ब्राह्मण-धर्म और निग्रन्थ-प्रवचन का सार प्रातःपादित हुआ है। सर्वप्रथम ब्राह्मण-कुमार मुनि की अवहेलना करते हैं परन्तु अन्त में वे उनसे मार्ग-दर्शन लेते हैं।

इस अध्ययन में निम्न विषयो पर चर्चा हुई है—

१—दान का अधिकार — श्लोक १२ से १८।

२—जातिवाद — श्लोक ३६।

३—यज्ञ — श्लोक ३८ से ४४।

४—जल-स्नान — श्लोक ३८, ४५, ४६, ४७।

बौद्ध-साहित्य में मालंग जातक (४१७) ने यह कथा प्रकारान्तरे से मिलता है।

बारसमं अज्ज्ञयणं : द्वादशम अध्ययन

हरिणसिज्जं : हरिकेशीय

मूल

१—सोवागकुलसंभूओ

गुणत्तरधरो^१ मुणी ।
हरिणसबलो नाम
आसि भिक्खू जिइन्दिओ ॥

संस्कृत श्रुत्या

ववपाककुल-संभूतः
उत्तर-गुण-धरो मुनिः ।
हरिकेशबलो नाम
आसीद् भिक्षुजितेन्द्रियः ॥

हिन्दी अनुवाद

१—चाण्डाल-कुल में उत्पन्न, ज्ञान आदि
उत्तम गुणों को धारण करने वाला, धर्म-अधर्म
का मनन करने वाला हरिकेशबल नामक
जितेन्द्रिय भिक्षु था ।

२—इरिणसणभासाए

उच्चारसमिइमु य ।
जओ आयाणनिकखेवे
संजओ सुसमाहिओ ॥

ईर्येणभासायणां
उच्चारसमितो च ।
यत आदान-निक्षेपे
संयतः सुसमाहितः ॥

२—वह ईर्ष्या, एषणा, भाषा, उच्चार,
आदान-निक्षेप — इन समितियों में सावधान था,
संयमी और समाधिस्थ था ।

३—मणगुत्तो वयगुत्तो
कायगुत्तो जिइन्दिओ ।
भिक्खट्ठा बम्भइज्जम्मि
जन्नवाडं उवट्ठिओ ॥

मनो-गुप्तो बवो-गुप्तः
काय-गुप्तो जितेन्द्रियः ।
भिक्षार्थं ब्रह्मज्ये
यज्ञवाटे उपस्थितः ॥

३—वह मन, वचन और काया से गुप्त
और जितेन्द्रिय था । वह भिक्षा लेने के लिए
यज्ञ-मण्डप में गया, जहाँ ब्राह्मण यज्ञ कर
रहे थे ।

४—तं पासिऊणमेज्जन्तं
तवेण परिसोसियं ।
पन्तोवहिउवगरणं
उवहसन्ति अणारिया ॥

तं दृष्ट्वाऽऽयान्त
तपसा परिशोधितम् ।
प्रान्तोपध्म्युपकरणं
उपहसन्त्यनार्याः ॥

४—वह तप से कृश हो गया था । उसके
उपधि और उपकरण प्रान्त (जीर्ण और मलिन)
थे । उसे आते देख, वे अनार्य (ब्राह्मण) हँसे ।

५—जाईमयपडिथद्धा^२
हिंसगा अजिइन्दिया ।
अबम्भचारिणो बाला
इमं वयणमब्बवी ॥

जातिमद-प्रतिस्तब्धः
हिंसका अजितेन्द्रियाः ।
अब्रह्मचारिणो बालाः
इदं वचनमब्रुवन् ॥

५—जाति-मद से मत, हिंसक, अजितेन्द्रिय,
अब्रह्मचारी और अज्ञानी ब्राह्मणों ने परस्पर
इस प्रकार कहा—

१. भणुत्तरधरो (अ, बृ० पा०, चू०) ।

२. 'पडिथद्धा' (उ, छ० पा०) ।

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

१४४

अध्ययन १२ : श्लोक ६-११

६—'कयरे' आगच्छइ^१ दित्तस्व
काले विगराले फोक्तासे ।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए
संकरदूसं परिहरिय कण्ठे ॥

७—'कयरे' तुमं इय अदंसणिज्जे
काए व आसा इहमागओ सि ।
ओमचेलगा पंसुपिसायभूया
गच्छ क्वयाहि किमिहं ठिओसि ? ॥

८—जकवां तहि तिन्दुयक्खवासी
अणुक्कमओतस्स महामुणिसस ।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं
इमाइ वयणाइमुदाहरित्था ॥

९—समणो अहं संजओ बम्भयारी
विरओ धणपयणपरिग्गहाओ ।
पर्यवित्तस्स उ भिक्खकाले
अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥

१०—वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जइ य
अन्नं पभूयं भवयाणमेयं ।
जाणाहि मे 'जायणजीविणत्ति'^२
सेसावसेसं लभउ तवस्सी ॥

११—उवक्खउं भोगणं माहणाणं
अट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं ।
न ऊ वयं एरिसमन्नपाणं
दाहामुतुज्जं किमिहं ठिओसि ? ॥

कतर आगच्छति दोस्तरूपः
कालो विकरालः 'फोक्क' नासः ।
अवम-चेलकः पांशु-पिशाचभूतः
संकर-दूष्यं परिधाय कण्ठे ? ॥

कतरस्त्वमित्यवशेनीयः
कया वाऽऽशयेहागतोऽसि ? ।
अवम-चेलकः पांशु-पिशाचभूतः
गच्छ अपसर किमिहस्थितोऽसि ? ॥

यक्षस्तस्मिन् तिन्दुकवृक्ष-वासी
अनुक्कम्यकस्तस्य महामुनेः ।
प्रच्छाद्य निजकं शरीरं
इमानि वचनानि उदाहर्षोन् ॥

श्रमणोऽहं संयतो ब्रह्मचारी
विरतो धन-पचन-परिग्रहान् ।
पर-प्रवृत्तस्य तु भिक्षाकाले
अन्नस्यार्थं इहाऽगतोऽस्मि ॥

वितोयंते खाद्यते भुज्यते च
अन्नं प्रभूतं भवतामेतन् ।
जानीत मां याचना-जीविनमिति
शेषवशेषं लभतं तपस्यो ॥

उपस्कृतं भोजनं ब्राह्मणानां
आत्मायिकं सिद्धमिहेक-पक्षम् ।
न तु वयमोटशमन्न-पात्रं
वास्यामः तुभ्यं किमिह स्थितोऽसि ? ॥

६—बीभत्य रूप वाला, काला, विकराल
ओर बढी नाक वाला, अधनडा, पांशु-पिशाच
(चुडेल) सा, गले में संकर-दूष्य (उकुरडी से
उठायो हुआ चिचरा) डाले हुए वह कौन आ
रहा है ?

७—ओ अदर्शनीय मुनि ! तुम कौन हो ?
किस भाषा से यहाँ आए हो ? अथर्वने तुम
पांशु पिशाच (चुडेल) में लम रहे हो । जानो,
श्रोत्रो मे परे चले जाओ ! यहाँ क्यों खड़े हो ?

८—उम समय महामुनि हारकेशवल को
अनुक्कमा करने वाला तिन्दुक (आकनस) वृक्ष
का वासी यक्ष अपने शरीर का गोपन कर
मुनि के शरीर में प्रवेश कर एक प्रकार वाला—

९—'मैं श्रमण हूँ, संयमी हूँ, ब्रह्मचारी
हूँ, धन व पचन-पाचन और परिग्रह में विरत
हूँ । यह भिक्षा का काल है । मैं सहज निष्पन्न
भोजन पाने के लिए यहाँ आया हूँ ।'

१०—'आपके यहाँ पर यह बहुत सारा
भोजन दिया जा रहा है, खाया जा रहा है
ओर भोगा जा रहा है । मैं भिक्षा-जीवी हूँ,
यह आपको जान होना चाहिए । अच्छा ही है
कुछ बचा भोजन इस तपस्वी को मिल जाए ।'

११—(शोमदेव—) यहाँ जो भोजन
बना है, वह केवल ब्राह्मणों के लिए
ही बना है । वह एक-पाक्षिक है— अश्रावण को
अदेय है । ऐसा अन्न-पात्र हम तुम्हें नहीं
देयें, फिर यहाँ क्यों खड़े हो ?

१. कयरे तुमं पसिध (वृ०); कयरे आगच्छति (वृ० पा०); को रे आगच्छइ (वृ० पा०) ।

२. को रे (वृ० पा०, वृ० पा०) ।

३. 'जीवणो ति' (वृ० पा०) ।

१२—धलेसु बीयाइ ववन्ति कासगा
तहेव निन्नेसु य आससाए ।
एयाए सद्दाए दलाह मज्जं
'आराहए पुण्णमिणं खु खेतं' ॥

१३—खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए
जहि पकिण्णा विरुहन्ति पुण्णा ।
जे माहणा जाइविज्जोववेया
ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥

१४—कोहो य माणो य व्हो य जेसि
मांसं अदत्तं च परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइविज्जाविहूणा
ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥

१५—तुच्चेत्थ भो ! भारधरा गिराण
अट्ठं न जाणाह अहिज्ज वेए ।
उच्चावयाइं मुणिणो चरन्ति
ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥

१६—अज्झावयाणं पडिकूलभासी
पभाससे किं तु समासि अम्हं ।
अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं
न य णं दहामुतुमं नित्यप्पा ! ॥

१७—समिईहि मज्जं सुसमाहियस्स
गुत्तीहि गुत्तस्स जिइन्दियस्स ।
जइ मे न दाहिय अहेसणिज्जं
किमज्ज जन्ताण लहिय लाहं ॥

स्थलेषु बीजानि वपन्ति कर्षकाः
तथैव निम्नेषु चाऽऽशंसया ।
एतया श्रद्धया दक्षिणं मह्यं
आराधयत पुण्यमिदं खलु क्षेत्रम् ॥

क्षेत्राण्यस्माकं विदितानि लोके
येषु प्रकीर्णानि विरोहन्ति पूर्णानि ।
ये ब्राह्मणा जातिविद्योपेताः
तानि तु क्षेत्राणि सुपेशलानि ॥

क्रोधश्च मानश्च वधश्च येषां
मृषा अदत्तं च परिग्रहश्च ।
ते ब्राह्मणा जाति-विद्या-विहीनाः
तानि तु क्षेत्राणि सुपापकानि ॥

यूयमत्र भो ! भारधरा गिरां
अर्थं न जानीथाघोत्य वैशात् ।
उच्चावचानि चरन्ति मुनयः
तानि तु क्षेत्राणि सुपेशलानि ॥

अध्यापकानां प्रतिकूलभाषी
प्रभावसे किं तु सकाशेऽस्माकम् ।
अप्येतद् वित्तयतु अन्न-पानं
न च दास्यामः तुभ्यं निर्यन्थ ! ॥

समितिभिर्मह्यं सुसमाहिताय
गुप्तिसिर्गुप्ताय जितेन्द्रियाय ।
यदि मह्यं न दास्यथाऽप्येषणीयं
किमद्य यत्नानां लप्स्यध्ये लाभम् ? ॥

१२—(यक्ष —) "अच्छी उपज की आधा
से किसान बंसे स्थल (ऊँची भूमि) में बीज
बोते हैं, बंसे ही नीची भूमि में बोते हैं ।
इसी थदा से (भरपूर आपकी निम्न भूमि और
मुझे स्थल तुल्य मानते हुए भी तुम) मुझे दान
दो, पुण्य की आराधना करो । यह क्षेत्र है,
बीज खाली नहीं जाएगा ।"

१३—(सामदेव—) "जहाँ बीए हुए सारे
के सारे बीज उग जाते हैं, वे क्षेत्र इस लोक
में हमें ज्ञान हैं । जो ब्राह्मण जाति और विद्या
से युक्त हैं, वे ही पुण्य-क्षेत्र हैं ।"

१४—(यक्ष —) "जिनमें क्रोध है, मान
है, हिंसा है, झूठ है, चोरी है और परिग्रह
है—वे ब्राह्मण जाति-विहीन, विद्या-विहीन
और पाप-क्षेत्र हैं ।"

१५—"हे ब्राह्मण ! इस संसार
में तुम केवल वाणीका भार हो रहे हो । वेदों
को पढ़ कर भी उनका अर्थ नहीं जानते । जो
मुनि उष्ण और नीच घरों में भिक्षा के लिए
जाते हैं, वे ही पुण्य-क्षेत्र हैं ।"

१६—(सोमदेव—) "ओ ! अध्यापकों के
प्रतिकूल बोलने वाले साधु ! हमारे समक्ष तू
क्या बड़-बड़ कर बोल रहा है ? हे निर्यन्थ !
यह अन्न-पान भले ही सड़ कर नष्ट हो जाए
किन्तु तुझे नहीं देंगे ।"

१७—(यक्ष—) "मैं समितियों से समाहित,
गुप्तियों से गुप्त और जितेन्द्रिय हूँ । यह एषणीय
(बिषुद्ध) आहार यदि तुम मुझे नहीं दोगे, तो
इन यशों का आज तुम्हें क्या लाभ होगा ?"

१. आराहणा होहिम पुण्ण खेतं (वृ० पा०) ।

२. भारधरा (वृ० पा०) ।

३. अन्नपाणं (वृ०) ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

१४६

अध्ययन १२ : श्लोक १८-२३

१८—के एत्थ खत्ता उवजोइया वा
अज्जावया वा सह खण्डिहं ।
एयं^१ दण्डेण फलेण हन्ता
कण्ठम्मि घेत्तुण खलेज्ज जो णं ? ॥

१९—अज्जावयाणं वयणं सुणेत्ता
उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चेव
समागया तं^२ 'इसि तालयन्ति'^३ ॥

२०—गन्तो तहि कोसलियस्स धूया
भद्दं ति नामेण अणिन्दियंमी ।
तं पासिया संजय हम्ममाणं
कुद्धे कुमारे पग्गिन्ववेड ॥

२१—देवाभियोगेण निजोइएणं
दिन्ता मु रन्ता मणसान भाया ।
नरिन्देवेदिन्दग्गिभिवन्दिएणं
जेणम्हि वन्ता इसिणा स एसो ॥

२२—एसो हुं सो उगतवो महप्पा
जिइन्दिओ संजओ बम्भयारी ।
'जो मे'^४ तया नेच्छइ दिज्जमाणिं
पिउणा सयं कोसलिण रन्ता ॥

२३—महाजसो एस महानुभागे^५
घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ।
मा एयं हीलह अहीलणिज्जं
मा सव्वे तेएण मे निदहेज्जा ॥

केऽत्र क्षत्रा उपज्योतिषा वा
अध्यापका वा सह खण्डिकैः ।
एनं खलु दण्डेन फलेन हत्वा
कण्ठे गृहीत्वा स्खलयेयुः ये ? ॥

अध्यापकानां वचनं श्रुत्वा
उद्धावितास्तत्र बहवः कुमाराः ।
दण्डेर्वेशैः कक्षैश्चैव
समागतास्तस्मृषिं ताडयन्ति ॥

राजस्तत्र कौशलिकस्य दुहिता
भद्रं ति नाम्ना अनिन्दिताङ्गो ।
तं दृष्ट्वा संयतं हन्यमानं
क्रुद्धान्कुमारान्परिनिर्वापयति ॥

देवाभियोगेन नियोजितेन
दत्ता ऽस्मि राजा मनसा न ध्याता ।
नरेन्द्ररेवेन्द्राभिवन्दितेन
येनास्मि वान्ता ऋषिणा स एषः ॥

एव खलु स उग्र-तपा महात्मा
जितेन्द्रियः संयतो ब्रह्मचारी ।
यो मां तदा नेच्छति दीयमानं
पित्रास्वयं कौशलिकेन राज्ञा ॥

महायशो एव महानुभावः
घोर-व्रतो घोर-पराक्रमश्च ।
मैनं हीलयताहीलनीयं
मा सर्वान् तेजसा भवतो निघर्शनीन् ॥

१८—(सोमदेव—) "यहाँ कौन है क्षत्रिय,
रसोइया, अध्यापक या छात्र, जो डण्डे और
फल से पीट, मलहत्वा दे इस निर्गन्ध को यहाँ
से बाहर निकाले ?"

१९—अध्यापकों का वचन सुनकर बहुत से
कुमार उग्र दौड़े। वहाँ आ डण्डों, बेंतों और
चाबुकों से उस ऋषि को पीटने लगे ।

२०—राजा कौशलिक की सुन्दर पुत्री
भद्रा यज्ञ-मण्डप में मुनि की प्रार्थनाइत होने देख
क्रुद्ध कुमारों को शास्त करने लगी ।

२१—(भद्रा—) "राजाओं और इन्द्रो से
पूजित यह वह ऋषि है, जिसने मेरा त्याग
किया । देवता के अभियोग से प्रेरित हो कर
राजा द्वारा मैं दी गई, किन्तु जिसने मुझे मन
से भी नहीं चाहा ।

२२—"यह बड़ी उग्र तपस्वी, महात्मा,
जितेन्द्रिय, संयमो और ब्रह्मचारी है, जिसने
मुझे मेरे पिता राजा कौशलिक द्वारा दिये जाने
पर भी नहीं चाहा ।

२३—"यह महान् यशस्वी है । महान्
अनुभाव (अचिन्त्य-शक्ति) से सम्पन्न है । घोर
व्रती है । घोर पराक्रमी है । इसकी अवहेलना
मन करो, यह अवहेलनीय नहीं है । कहीं यह
अपने तेज से तुम लोगों को भस्मसात् न कर
डाले ?"

१. एयं खु (अ, उ); एयं दु (आ) ।

२. इसि तावयन्ति (उ, ऋ०) ।

३. जो मं (अ, आ) ।

४. महानुभावो (ह० पा०, षू०) ।

२४—एयाइं तीसे वयणाइ सोचा
पत्तीइ भद्दाइ मुहासियाइं ।
इसिस्स वेयावडियइयाए
जक्खा कुमारे विणिवाडयन्ति ॥

२५—ते घोररूपा णिय अन्तलिक्खे
असुरा तर्हि तं जणं तालयन्ति ।
ते भिन्नदेहे रुहरिं वमन्ते
पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ॥

२६—गिग्गि नहेहि खण्ह
अयं दन्तेहि खावथ ।
जायतेयं पाएहि हण्ह
जं भिक्खुं अवमन्नह ॥

२७—आसीविसा उगतवो महेसो
घोरव्वओ घोरपक्कमा य ।
अगणि व पक्कन्द पयंगसेणा
जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह ॥

२८—सीसेण एयं सरणं उवेह
समागया सव्वजणेण तुब्भे ।
जइ इच्छह जीविय वा धणं वा
लोगं पि एसो कुविओ डहेज्जा ॥

२९—अवहेडिय^१ पिट्ठसउत्तमंगे
पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे ।
निब्भेरियिच्छे रुहरिं वमन्ते
उड्डुंमुहे निग्गयजीहेते ॥

एतानि तस्या बबनानि श्रूत्वा
पत्न्या भद्रयाः सुभाषितानि ।
ऋषेर्वैपापृत्यार्थं
यथाः कुमारान् विनिवारयन्ति ॥

ते घोर-रूपाः स्थिता अन्तरिक्षे
अमुरास्तत्र तं जनं ताडयन्ति ।
तान् भिन्न-देहान् रुहरिं वमन्तः
दृष्ट्वा भद्र वमाह भूयः ॥

गिरि सरवैः स्ननय
अयो दन्तैः खावथ ।
जाततेजसं पार्वहंथ
ये भिक्षुसबन्धये ॥

आशीविष उग्र-तपा महर्षिः
घोर-व्रतो घोर-पराक्रमश्च ।
अग्निमिव प्रस्कन्दथ पतङ्गसेना
ये भिक्षुकं भक्त-काले विध्यथ ॥

शीर्षेणं शरणमुपेत
समागताः सर्वजनेन युयम् ।
यदीच्छथ जीविनं वा धनं वा
लोकमप्येष कुपितो वहेत् ॥

अवहेडित-पृष्ठ-सबुत्तमाङ्गान्
प्रसारित बाह्वकमंचेष्टान् ।
प्रसारिताङ्गान् रुहरिं वमन्तः
ऊर्ध्व-मुक्षान्निगंत-जिह्वा-नेत्रान् ॥

२४—सोमदेव पुरोहित की पत्नी भद्रा के
सुभाषित बचनों को सुन कर यशों ने ऋषि का
वैयापृत्य (परिचर्या) करने के लिए कुमारों
को भूमि पर गिरा दिया ।

२५—घोर रूप वाले यश आकाश में
स्थिर हो कर उन छात्रों को मारने लगे । उनके
गरीबों को धन-विज्ञान और उन्हे रुधिर का
वमन करते देख भद्रा फिर कहने लगी—

२६—“जो इस भिक्षु का अपमान कर
रहे हैं, वे नखों से पर्वत खोद रहे हैं, दौंतीं से
लोहे को चबा रहे हैं और पैरों से अग्नि को
प्रनादित कर रहे हैं ।

२७—“वह महर्षि आशीविष-लक्ष्य से
सम्पन्न है । उग्र तपस्वी है । घोर व्रती और
घोर पराक्रमी है । भिक्षा के समय जो भिक्षु
का वध कर रहे हैं, वे पतंग-सेना की भाँति
अग्नि में भँपापात कर रहे हैं ।

२८—“यदि तुम जीवन श्रेष्ठ धन चाहते
हो तो सब मिलकर, शिर झुका कर इस मृनि
की शरण में आओ । कुपित होने पर यह
समूचे संसार को भस्म कर सकता है ।”

२९—उन छात्रों के मिर पीठ की ओर
झुक गए । उनकी मुजाएँ फैल गईं । वे
निष्क्रिय हो गए । उनकी आँखें खुली की
खुली रह गईं । उनके मुँह से रुधिर निकलने
लगा । उनके मुँह ऊपर की ओर गए । उनकी
जीभें और नेत्र बाहर निकल आए ।

१. विणिवारयन्ति (वृ० पा०) ।

२. इणेह (वृ०) ।

३. आशविष (वृ० पा०) ।

३०—ते पासिया खण्डिय कट्भूए
विमणो विसणो अह माहणो सो।
इसि पसाएइ सभारियाओ
हीलं च निन्दं च खमाह भन्ते ॥

३१—बालेहि मूढेहि अयाणएहि
जं हीलिया तस्स खमाह भन्ते ॥
महप्पसाया इसिणो हवन्ति
न हु मुणी कोवपरा हवन्ति ॥

३२—'पुत्तिं च इप्पिं च अणागयं च'^१
मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ।
जक्खा हु वेयावडियं करेन्ति
तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥

३३—अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा
तुढे न वि कुप्पह भूइप्पन्ना।
तुढं तु पाए सरणं उवेमो
समागया सव्वजणेण अम्हे ॥

३४—अच्चेमु ते महाभाग!^२
न ते किंचि न अच्चिमो।
भुंजाहि सालिमं कूरं
नाणावजणसंजुयं ॥

३५—इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं
तं भुजसू अम्ह अणुगहइ।
बाढं ति पडिच्छइ भत्तपाणं
मासस्स ऊ पारणए महप्पा ॥

तान् टट्ठ्वा खण्डिकान्काण्डमृतान्
विमना विषण्णोऽयं ब्राह्मणः सः।
अर्थं प्रसादयति सभार्याकः
हीलां च निन्दां च क्षमस्व भवन्तः ॥

बालैर्मूढैरज्ञैः
यस्य हीलितास्तत्क्षमस्व भवन्तः ॥
महाप्रसादा ऋषयो भवन्ति
न खलु मुनयः कोवपरा भवन्ति ॥

पूर्वं चेदानीं जानागतं च
मनः-प्रदोषो न मेऽस्ति कोऽपि।
यथाः खलु बैयापुत्तं कुर्वन्ति
तस्मात् खलु एतेनिहताः कुमाराः ॥

अर्थं च धर्मं च विजानन्तः
ययं नापि कुप्यथ भूति-प्रज्ञाः।
मुढमाकं तु पादो शरणमुपेयः
समागताः सर्वेकतेन वयम् ॥

अर्धयामस्ते महाभाग !
न ते किञ्चिन्नार्धयामः।
भुञ्क्ष्व शास्त्रिमत् कूरं
नानाव्यञ्जन-संयुतम् ॥

इदं च मेऽस्ति प्रभूतमन्नं
तद्भुञ्क्ष्वस्माकमनुग्रहायम्।
बाढमिति प्रतीच्छति भक्त-पात्रं
मासस्य तु पारणके महात्मा ॥

३०—उन छात्रों को काठ की तरह
निश्चेष्ट देख कर वह सोमदेव ब्राह्मण उदास
और, धरयाया हुआ अपनी पत्नी सहित मुनि
के पास आ उन्हे प्रसन्न करने लगा—“भन्ते !
हमने जो अवहेलना और निन्दा की उसे क्षमा
करें।

३१—“भन्ते ! मूढ़ बालकों ने अज्ञानवश
जो आपकी अवहेलना की, उसे आप क्षमा
करें। ऋषि महान् प्रसन्नचित्त होते हैं।
मुनि कोप नहीं किया करते।”

३२—(मुनि—) “मेरे मन में कोई प्रदोष
न पहले था, न अभी है और न आगे भी होगा।
किन्तु यक्ष मेरा वैरागृथ्य कर रहे हैं। इसी-
लिए ये कुमार प्रताड़ित हुए।”

३३—(सोमदेव—) “अर्थ और धर्म को
जानने वाले भूति-प्रज्ञ (मंगल-प्रज्ञा युक्त)
आप कोप नहीं करते। इसलिए हम सब
मिल कर आपके चरणों की शरण ले रहे हैं।

३४—“महाभाग ! हम आपकी अर्धां
करते हैं। आपका कुछ भी ऐसा नहीं है,
जिसकी हम अर्धां न करें। आप नाना व्यंजनों
से युक्त चावल-निष्कल भोजन ले कर खाइए।

३५—“मेरे यहाँ यह प्रचुर भोजन पड़ा
है। हमें अनुग्रहीत करने के लिए आप कुछ
खायें।” महात्मा हरितेरावल ने हाँ भर ली
और एक मास की सपस्या का पारणा करने
के लिए भक्त-पात्र लिया।

१. पुत्तिं च पच्छा व सहेव मज्जे (व० पा०) ; पुत्तिं च पच्छा व अणागयं च (व०) ।

२. महाभाग ! (अ, ड, झ०) ।

३६—तर्ह्यं गन्धोदयपुष्पवासं
दिष्ट्वा तर्हि वसुहारा य वुद्धा ।
‘पहयाओ’ दुन्दुहीओ मुरेहि
आगासे अहो दाणं च धृष्टं ॥

३७—सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो
न दीसई जाइविसेस कोई ।
‘सोवागपुत्ते हरिणससाहू’
जन्तेरिसा इड्डि महाणभागा ॥

३८ वि माहणा ! जोइसमारभन्ता
उदणसोहि बहिया विमग्गाह ।
जं मग्गाहा वाहिरियं विसोहि
न तं मुट्ठि कुसला वयन्ति ॥

३९—कुसं च जूवं तणकट्टमग्गि
सायं च पायं उदगं कुसन्ता ।
पाणाइ भूयाइ विहेडयन्ता
भुजो वि मन्दा ! पगरेह पावं ॥

४०—कहं चरे ? भिक्खु ! वयं जयामो ?
पावाइ कम्माइ पणोल्लयामो ? ।
अक्खाहि णे संजय ! जक्खपुइया !
कहं मुज्झं कुसला वयन्ति ? ॥

तस्मिन् गन्धोदक-पुष्पवर्षः
विष्ट्वा तस्मिन् वसु-धारा च वृष्टा ।
प्रहता दुन्दुभयः सुरैः
आकाशेऽहो दानं च धुष्टम् ॥

साक्षान् खलु दृश्यते तपो-विशेषः
न दृश्यते जाति-विशेषः कोऽपि ।
श्वपाक-पुत्रं हरिकेश-साधुं
यस्येदृशो ऋद्धिमहानुभागा ॥

किं ब्राह्मण ! ज्योतिः समारभमाणाः
उदकेन शृद्धिं बाह्यां विमागंयथ ।
यह मागंयथ बाह्यां विशृद्धिं
न तन् मुट्ठं कुसला वदन्ति ॥

कुशं च ययं तृण-काष्ठमग्निं
सायं च प्रातरुदकं स्पृशन्तः ।
प्राणान् भूतान् विहेडयन्तः
भूयोऽपि मन्दा प्रकुरुष पापम् ॥

कथं चरामो ? भिक्षो ! वयं यजामः ?
पापानि कर्माणि प्रणुदामः ? ।
आख्याहि नः संयत ! यक्षपूजित !
कथं शिवं कुसला वदन्ति ? ॥

३६—देवो ने वहाँ सुगन्धिन जल, पुष्प
और विष्य-धन की वर्षा की । आकाश में
दुन्दुभि बजाई और ‘अहो दानम्’ (आश्चर्यकारी
दान) —इस प्रकार का घोष किया ।

३७—यह प्रत्यक्ष ही तप की महिमा
दीख रही है, जानि की कोई महिमा नहीं है ।
जिसकी ऋद्धि ऐसी महान् (अचिन्त्य शक्ति
सम्पन्न) है, वह हरिकेश मुनि चाण्डाल का
पुत्र है ।

३८—(मुनि—) ‘ब्राह्मण ! अग्नि का
समारम्भ (यज्ञ) करते हुए तुम बाहर से
(जल में) शृद्धि की क्या माँग कर रहे हो ?
जिम शृद्धि की बाहर से माँग कर रहे हो, उसे
कुसल लोग मुट्ठ (सम्प्रादशन) नहीं कहते ।

३९—‘दर्भ, यूप (यज्ञ-स्तम्भ), तृण, काष्ठ
और अग्नि का उपयोग करते हुए, संख्या और
प्रातःकाल में जल का स्पर्श करते हुए, प्राणों
और भूतों की हिंसा करते हुए, मदबुद्धि वाले
तुम बार-बार पाप करते हो ।’

४०—(सोमदेव—) ‘हे भिक्षो ! हम कैसे
घड़त हो ? यज्ञ कैसे करे ? जिससे पाप-कर्माँ
का नाश कर सकें । यक्ष-पूजित संयत ! आप
हमें बताएं—कुसल पुरुषों ने मुट्ठ (श्रेष्ठ-यज्ञ)
का विधान किस प्रकार किया है ?’

४१—छञ्जीवकाए असमारभन्ता
मोसं अदत्तं च असेवमाणा ।
परिग्रहं इत्थिओ माणमायं
एयं परिन्ताय चरन्ति^१ दन्ता ॥

वडञ्जीवकायानसमारभमाणाः
मुयाअदत्तं चासेवमानाः ।
परिग्रहं स्त्रियो मानं मायां
एतत्परिन्ताय चरन्ति दान्ताः ॥

४१—(सुनि—) “मन और इन्द्रियों का दमन करने वाले छह जीव-निकाय की हिंसा नहीं करते; असत्य और चोरी का सेवन नहीं करते; परिग्रह, स्त्री, मान और माया का परित्याग कर के विचरन करते हैं ।

४२—सुसंबुडो^२ पंचहि संवरेहि
इह जीवियं अणवकंखमाणो^३ ।
वोसट्टकाओ^४ सुइचत्तदेहो^५
महाजयं जयई जन्सिट्ठे^६ ॥

सुसंबुताः पञ्चभिः संवरैः
इह जीवितमनवकाक्षन्तः ।
व्युत्सृष्ट-कायः शुचि-त्यक्तदेहः
महाजयं यजते यज्ञ-श्रेष्ठम् ॥

४२—“जो पाँच संवरों से मुग्धवृत्त होता है, जो असंयम-जीवन की इच्छा नहीं करता, जो काय का व्युत्सर्ग करता है, जो शुचि है और जो देह का त्याग करता है, वह महाजयी श्रेष्ठ यज्ञ करता है ।”

४३—के ते जोई ? के व ते जोइठाणे ?
का ते मुया ? कि व^१ ते कारिसंगं ?
एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खू !
कयरेण होमेण ठुणासि जोई ? ॥

कि ते ज्योतिः ? कि वा ते ज्योतिः-स्थानं ?
कास्ते श्रुवः ? कि वा ते करोवाङ्गम् ?
एवाश्च ते कतरा ? शान्तिः ? भिक्षो !
कतरेण होमेन जुहोषि ज्योतिः ? ॥

४३—(सोमदेव—) “भिक्षो ! तुम्हारी ज्योति कौन-सी है ? तुम्हारा ज्योति-स्थान (अग्नि-स्थान) कौन-सा है ? तुम्हारे घी डालने की करछियाँ कौन-सी हैं ? तुम्हारे अग्नि को जलाने के कण्डे कौन-से हैं ? तुम्हारे ईंधन और शान्ति-पाठ कौन-से हैं ? और किस होम से तुम ज्योति को दृढ़ (प्रीणित) करते हो ?”

४४—तवो जोई जीवो जोइठाणं
जोगा मुया शरीरं कारिसंगं ।
कम्म एहा संजमजोगसन्ती
होमं ठुणामी इसिणं पसरथं ॥

तपोज्योतिर्जीवो ज्योतिः-स्थानं
योगाः श्रुवः शरीरं करोवाङ्गम् ।
कर्मधाः संयम-योगाः शान्तिः
होमं जुहोमि ऋषीणां प्रशस्तम् ॥

४४—(सुनि—) “तप ज्योति है । जीव ज्योति-स्थान है । योग (मन, वचन और काया की सत् प्रवृत्ति) घी डालने की करछियाँ हैं । शरीर अग्नि जलाने के कण्डे हैं । कर्म ईंधन है । संयम की प्रवृत्ति शान्ति-पाठ है । इस प्रकार मैं ऋषि प्रशस्त (अहिंसक) होम करता हूँ ।”

४५—के ते हरए ? के य ते सन्तितित्ये ?
कहिंसि ण्हाओ व रयं जहासि ? ।
आइक्ख गे संजय ! जक्खपूइया !
इच्छामो नाउं भवओ सगासे ॥

कस्ते ह्रदः ? किंच ते शान्ति-तीर्थं ?
कस्मिन् स्नातो वा रजो जहासि ? ।
आचक्ष्व नः संयत ! यक्षपूजित !
इच्छामो ज्ञानुं भवतः सकाशे ॥

४५—(सोमदेव—) “आपका नद (जलाशय) कौन-सा है ? आपका शान्ति-तीर्थ कौन-सा है ? आप कहाँ नहा कर कर्मरज धोते हैं ? हे यक्ष-पूजित संयत ! हम आपसे ज्ञानना-चाहते हैं—आप बताइए ।”

१. चरेज (वृ०) ; चरन्ति (वृ० पा०) ।

२. सुसंबुडा (उ, छ) ।

३. अणवकंखमाणा (उ, छ) ।

४. वोसट्टकाया (उ, छ) ।

५. सुइचत्तदेहा (उ, छ) ।

६. च (उ, ऋ०) ।

हरिषसिञ्जं (हरिकेशीय)

१५१

अज्ययन १२ : श्लोक ४६-४७

४६—धम्मे हरए बम्भे सन्तितित्ये
अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विमुद्धो
सुसीइभूओ^१ पजहामि दोसं ॥

४७—एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं
महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
'जहिंसि ण्हाया'^२ विमला विसुद्धा
महारिसी उत्तम ठाण पत्त ॥
—त्ति वेमि ।

धर्मो ह्रस्वः ब्रह्म शान्ति-तीर्थं
अनाविले आत्मप्रसन्न-लेख्ये ।
यस्मिन् स्नातो विमलो विशुद्धः
सुशीतोभूतः प्रजहामि दोषम् ॥

एतस्नानं कुशलैर्दृष्टं
महास्नानभूषीणां प्रशस्तम् ।
यस्मिन्स्नाता विमला विशुद्धाः
महर्षय उत्तमं स्थानं प्राप्ताः ॥
—इति ब्रवीमि ।

४६—(मुनि—) “अकलुषित एवं आत्मा
का प्रसन्न-लेख्या वाला धर्म मेरा नद (जलाशय)
है । ब्रह्मचर्य मेरा शान्ति-तीर्थ है । जहाँ
नहा कर मैं विमल, विशुद्ध और सुशीतल होकर
कर्म-रज का त्याग करता हूँ ।”

४७—“यह स्नान, कुशल पुरुषों द्वारा दृष्ट
है । यह महास्नान है । अतः ऋषियों के लिए
यही प्रशस्त है । इस धर्म-नद में नहाए हुए
महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम-स्थान
(मुक्ति) को प्राप्त हुए ।”

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. सुशीतभूतो (दृ० पा०) ।

२. जहि सिणाया (अ, व, ङ) ।

तेरसमं अज्झयणं :
चित्तसम्भूदज्जं

त्रयोदश अध्यायन :
चित्र-सम्भूतीय

आन्ध्र

इस अध्ययन में चित्र और संभूत के पारस्परिक सम्बन्ध और विसम्बन्ध का निरूपण है; इसलिए इसका नाम 'चित्रसम्भूत' 'चित्र-सम्भूतीय' है ।¹

उस काल और उस समय साकेत नगर में चन्द्रावन्तसक राजा का पुत्र मुनिचन्द्र राज्य करता था । राज्य का उपभोग करते-करते उसका मन काम-भोगों से विरक्त हो गया । उसने मुनि सागरचन्द्र के पास दीक्षा ग्रहण की । वह अपने गुरु के साथ-साथ देशान्तर जा रहा था । एक बार वह भिक्षा लेने गाँव में गया, पर सार्थ से बिछुड़ गया और एक भयानक अटवी में जा पहुँचा । वह भूख और प्यास से व्याकुल हो रहा था । वहाँ चार ग्वाल-पुत्र गायें चरा रहे थे । उन्होंने मुनि की अवस्था देखी । उनका मन कलुषा में भर गया । उन्होंने मुनि की परिचर्या की । मुनि स्वस्थ हुए । चारों ग्वाल-बालकों को धर्म का उपदेश दिया । चारों बालक प्रतिबुद्ध हुए और मुनि के पास दीक्षित हो गए । वे सभी आनन्द से दीक्षा-पर्याय का पालन करने लगे । किन्तु उनमें से दो मुनियों के मन में मैले कपड़ों के विषय में जुगुप्सा रहने लगी । चारों मर कर देव-गति में गए । जुगुप्सा करने वाले दोनों देवलोक से ध्युत हो दशपुर नगर में शोभन्त्य ब्राह्मण की दासी यशोमती की कुक्षी से युगल रूप में जन्मे । वे युवा हुए । एक बार वे जंगल में अपने खेल की रक्षा के लिए गए । रात हो गई । वे एक वट वृक्ष के नीचे सो गए । अचानक ही वृक्ष की कोटर से एक सर्प निकला और एक की डँस कर चला गया । दूसरा जागा । उसे यह बात मालूम हुई । तत्काल ही वह सर्प की खोज में निकला । वही सर्प उसे मो डँस गया । दोनों मर कर कालिंजर पर्वत पर एक मुगी के उदर से युगल रूप से उत्पन्न हुए । एक बार दोनों आसपास चर रहे थे । एक व्याध ने एक ही बाण से दोनों को मार डाला । वहाँ से मर कर वे गंगा नदी के तीर पर एक राजहँसिनी के गर्भ में आए । युगल रूप में जन्मे । वे युवा बने । वे दोनों साथ-साथ धूम रहे थे । एक बार एक मछुआ ने उन्हें पकड़ा और गर्जन मरोड़ कर मार डाला ।

उस समय वाराणसी नगरी में चाण्डालों का एक अधिपति रहता था । उसका नाम था भूतदत्त । वह बहुत समृद्ध था । वे दोनों हँस मर कर उसके पुत्र हुए । उनका नाम चित्र और संभूत रखा गया । दोनों माइओं में अपार स्नेह था ।

उस समय वाराणसी नगरी में शङ्ख राजा राज्य करता था । नसुधि उसका मंत्री था । एक बार उसके किसी अपराध पर राजा क्रुद्ध हो गया और वध की आज्ञा दे दी । चाण्डाल भूतदत्त को यह कार्य सौंपा गया । उसने नसुधि को अपने घर में छिपा लिया और कहा—“मंत्रिन् । यदि आप मेरे तल-घर में रहकर मेरे दोनों पुत्रों को अध्यापन कराना स्वीकार करें तो मैं आपका वध नहीं करूँगा ।” जीवन की आशा से मंत्री ने बात मान ली । अब वह चाण्डाल के पुत्रों—चित्र और संभूत को पढ़ाने लगा । चाण्डाल-पत्नी नसुधि की परिचर्या करने लगी । कुछ काल बीता । नसुधि चाण्डाल-स्त्री में आसक्त हो गया । भूतदत्त ने यह बात जान ली । उसने नसुधि को मारने का विचार किया । चित्र और संभूत दोनों ने अपने पिता के विचार जान लिए । गुरु के प्रति कृतज्ञता से प्रेरित हो उन्होंने नसुधि को कहीं

¹—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, भाषा ३३२ :

चित्तसंभूतां वेत्तौ, भावधो न भावयो ।

तयो समुद्भिन्नमिदं, अन्वेषणं चित्तसंभूतं ॥

भाग जाने की सलाह दी। नमुषि वहाँ से भाग-भाग हस्तिनापुर में आया और चक्रवर्ती सनत्कुमार का मन्त्री बन गया।

चित्र और संभूत बड़े हुए। उनका रूप और लावण्य आकर्षक था। नृत्य और संगीत में वे प्रवीण हुए। वाराणसी के लोग उनकी कलाओं पर मुग्ध थे।

एक बार मदन-महोत्सव आया। अनेक गायक-टोलियाँ मधुर राग में अलाप रही थीं और तरुण-तरुणियों के अनेक गण नृत्य कर रहे थे। उस समय चित्र-संभूत की नृत्य-मण्डली भी वहाँ आ गई। उनका गाना और नृत्य सबसे अधिक मनोरम था। उसे सुन और देख कर सारे लोग उनकी मण्डली की ओर चले आए। युवतियाँ मंत्र-मुग्ध सी हो गयीं। सभी तन्मय थे। ब्राह्मणों ने यह देखा। मन में ईर्ष्या उभर आई। जातिवाद की आड़ में वे राजा के पास गए और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने दोनों मातंग-पुत्रों को नगर से निकाल दिया। वे अन्यत्र चले गए।

कुछ समय बीता। एक बार कौमुदी-महोत्सव के अवसर पर वे दोनों मातंग-पुत्र पुनः नगर में आए। वे मुँह पर कपड़ा डाले महोत्सव का आनन्द ले रहे थे। चलते-चलते उनके मुँह से संगीत के स्वर निकल पड़े। लोग अत्राक रह गए। वे उन दोनों के पास आए। आवरण हटाते ही उन्हें पहचान गए। उनका रक्त ईर्ष्या से उबल गया। “वे चाण्डाल-पुत्र हैं”—ऐसा कहकर उन्हें लातों और चाटों से मारा और नगर से बाहर निकाल दिया। वे बाहर एक उद्यान में ठहरे। उन्होंने सोचा—“धिक्कार है हमारे रूप, यौवन, सौभाग्य और कला-कौशल को। आज हम चाण्डाल होने के कारण प्रत्येक वर्ग से तिरस्कृत हो रहे हैं। हमारा सारा गुण-समूह दूषित हो रहा है। ऐसा जीवन जीने से लाभ ही क्या?” उनका मन जीने से ऊब गया। वे आत्म-हत्या का हृदय-कल्प ले वहाँ से चले। एक पहाड़ पर इसी विचार से बड़े ऊपर चढ़कर उन्होंने देखा कि एक भ्रमण ध्यान-लीन है। वे साधु के पास आए और बैठ गए। ध्यान पूर्ण होने पर साधु ने उनका नाम-धाम पूछा। दोनों ने अपना पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया। सुनि ने कहा—“तुम अनेक कला-शास्त्रों के पारगामी हो। आत्म-हत्या करना नीच व्यक्तियों का काम है। तुम्हारे जैसे विमल-बुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए वह उचित नहीं। तुम इस विचार को छोड़ो और जिन-धर्म की शरण में आओ। इससे तुम्हारे शारीरिक और मानसिक सभी दुःख उन्मूलित हो जायेंगे।” उन्होंने सुनि के वचन को शिरोधार्य किया और हाथ जोड़कर कहा—“भगवन्! आप हमें दीक्षित करें।” सुनि ने उन्हें योग्य समझ दीक्षा दी। गुरु-चरणों की उपासना करते हुए वे अध्ययन करने लगे। कुछ समय बाद वे गीतार्थी हुए। विचित्र तपस्याओं से आत्मा को भावित करते हुए वे ग्रामानुश्राम विहार करने लगे। एक बार वे हस्तिनापुर आए। नगर के बाहर एक उद्यान में ठहरे। एक दिन मास-क्षमण का पारण करने के लिए सुनि संभूत नगर में गए। भिक्षा के लिए वे धर-धर घूम रहे थे। मंत्री नमुषि ने उन्हें देख कर पहचान लिया। उसकी सारी स्मृतियाँ सद्यस्क हो गईं। उसने सोचा—यह सुनि मेरा सारा वृत्तान्त जानता है। वहाँ के लोगों के समक्ष यदि इसने कुछ कह डाला तो मेरी महत्ता नष्ट हो जायगी। ऐसा विचार कर उसने लाठी और मुक्तों से मार कर सुनि को नगर से बाहर निकालना चाहा। कई लोग सुनि को पीटने लगे। सुनि शान्त रहे। परन्तु लोग जब अत्यन्त उग्र हो गए, तब सुनि का धिक् अशान्त हो गया। उनके मुँह से धुआ निकली और सारा नगर अन्धकारमय हो गया। लोग घबड़ाए। अब वे सुनि को शान्त करने लगे। चक्रवर्ती सनत्कुमार भी वहाँ आ पहुँचा। उसने सुनि से प्रार्थना की—“भंते! यदि हम से कोई त्रुटि हुई हो तो आप क्षमा करें। आगे हम ऐसा अपराध नहीं करेंगे। आप महान् हैं। नगर-निवासियों को जीवन-दान दें।” इतने से सुनि का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उद्यान में बैठे सुनि चित्र ने यह सम्वाद सुना और आकाश को धूम से आच्छादित देखा। वे नन्काल वहाँ आये और उन्होंने सुनि संभूत से कहा—“मुने! क्रोधानल को उपशान्त करो; उपशान्त करो। महर्षि उपशम-प्रधान होते हैं। वे अपराधों पर भी क्रोध नहीं करते। तुम अपनी शक्ति का संवरण करो।” सुनि संभूत का मन शान्त हुआ। उन्होंने तेजोलेश्या का संवरण किया। अंधकार मिट गया। लोग प्रसन्न हुए। दोनों सुनि उद्यान में

लौट गए। उन्होंने सोचा—“हम काय-संलेखना कर चुके हैं, इसलिए अब अनशन करना चाहिए।” दोनों ने बड़े धैर्य के साथ अनशन ग्रहण किया।

चक्रवर्ती सनत्कुमार ने जब यह जाना कि मन्त्री नमुचि के कारण ही सभी लोगों को संत्रास सहना पड़ा है तो उसने मन्त्री को बाँधने का आदेश दिया। मन्त्री को रस्सों से बांध कर मुनियों के पास लाए। मुनियों ने राजा को समझाया और उसने मन्त्री को मुक्त कर दिया। चक्रवर्ती दोनों मुनियों के पैरों पर गिर पड़ा। रानी सुनन्दा भी साथ थी। उसने भी वन्दना की। अकस्मात् ही उसके केश मुनि सम्भूत के पैरों को छू गए। मुनि सम्भूत को अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। उसने निदान करने का विचार किया। मुनि चित्र ने ज्ञान-शक्ति से यह जान लिया और निदान न करने की शिक्षा दी, पर सब व्यर्थ। मुनि सम्भूत ने निदान किया—“यदि मेरी तपस्या का फल है तो मैं चक्रवर्ती बनूँ।”

दोनों मुनियों का अनशन चालू था। वे मर कर सौधर्म देवलोक में देव बने। वहाँ का आयुष्य पूरा कर शिव का जीव पुद्गिताल नगर में एक इन्ध्र सेठ का पुत्र बना और सम्भूत का जीव कपिलचपुर में ब्रह्म राजा की रानी चुलनी के गर्भ में आया। रानी ने चौदह महा स्वप्न देखे। बालक का जन्म हुआ। उसका नाम ब्रह्मदत्त रखा गया।

राजा ब्रह्म के चार मित्र थे—(१) काशी देश का अधिपति कटक, (२) गजपुर का राजा कणोरवत्, (३) कोशल देश का राजा दीर्घ और (४) चम्पा का अधिपति पुष्पचूल। राजा ब्रह्म का इनके साथ अगाध प्रेम था। वे सभी एक-एक वर्ष एक-एक के राज्य में रहते थे। एक बार वे सब राजा ब्रह्म के राज्य में समुदित हो रहे थे। उन्होंने दिनों की बात है, एक दिन राजा ब्रह्म को असह्य मस्तक-वेदना उत्पन्न हुई। स्थिति चिन्ताजनक बन गई। राजा ब्रह्म ने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को चारों मित्रों को सौंपते हुए कहा—“इसका राज्य तुम्हें चलाना है।” मित्रों ने स्वीकार किया।

कुछ काल बाद राजा ब्रह्म की मृत्यु हो गई। मित्रों ने उसका अन्त्येष्टि-कर्म किया। उस समय कुमार ब्रह्मदत्त छोटी अवस्था में था। चारों मित्रों ने विचार-विमर्श कर कोशल देश के राजा दीर्घ को राज्य का सारा भार सौंपा और बाद में सब अपने-अपने राज्य की ओर चले गए। राजा दीर्घ राज्य की व्यवस्था करने लगा। सर्वत्र उसका प्रवेश होने लगा। रानी चुलनी के साथ उसका प्रेम-बन्धन गाढ़ होता गया। दोनों निःसंकोच विषय-वासना का सेवन करने लगे।

रानी के इस दुश्चरण को जानकर राजा ब्रह्म का विस्मय मन्त्री धनु चिन्ताग्रस्त हो गया। उसने सोचा—“जो व्यक्ति अधम आचरण में फँसा हुआ है, वह भला कुमार ब्रह्मदत्त का क्या हित साध सकेगा?”

उसने रानी चुलनी और राजा दीर्घ के अर्ध-सम्बन्ध की बात अपने पुत्र वरधनु के द्वारा कुमार तक पहुँचाई। कुमार को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने एक उपाय देखा। एक कौवे और एक कौकिल को पिंजरे में बन्द कर अन्तःपुर में ले गया और रानी चुलनी को सुनाते हुए कहा—“जो कोई भी अनुचित सम्बन्ध जोड़ेगा, उसे मैं इसी प्रकार पिंजरे में डाल दूँगा।” राजा दीर्घ ने यह बात सुनी। उसने चुलनी से कहा—“कुमार ने हमारा सम्बन्ध जान लिया है। मुझे कौवा और तुम्हें कौयल मान सकेत दिया है। अब हमें सावधान हो जाना चाहिए।” चुलनी ने कहा—“वह अभी बच्चा है। जो कुछ मन में आता है कह देता है।” राजा दीर्घ ने कहा—“नहीं, ऐसा नहीं है। वह हमारे प्रेम में बाधा डालने वाला है। उसको मारे बिना अपना सम्बन्ध नहीं निभ सकता।” चुलनी ने कहा—“जो आप कहते हैं, वह सही है किन्तु उसे कैसे मारा जाय? लोकापवाद से भी तो हमें डरना चाहिए।” राजा दीर्घ ने कहा—“जनापवाद से बचने के लिए पहले हम इसका विवाह कर दें, फिर उद्योत्यो इसे मार देंगे।” रानी ने बात मान ली।

एक शुभ-वेला में कुमार का विवाह सम्पन्न हुआ। उसके ज्ञान के लिए राजा दीर्घ ने हजार स्तम्भ वाला एक लाक्षा-गृह बनवाया।

इधर मन्त्री धनु ने राजा दीर्घ से प्रार्थना की—“स्वामिन्। मेरा पुत्र वरधनु मन्त्री-पद का कार्यभार संभालने के योग्य हो गया है। मैं अब कार्य से निवृत्त होना चाहता हूँ।” राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और क्षलपूर्वक कहा—“तुम और कहीं जा कर क्या करोगे? यहीं रहो और दान आदि धर्मों का पालन करो।” मन्त्री ने राजा की बात मान ली। उसने नगर के बाहर गङ्गा नदी के तट पर एक विशाल प्याऊ बनाई। वहाँ वह पथिकों और परित्राजकों को प्रचुर अन्न-पान देने लगा। दान और सम्मान के वशीभूत हुए पथिकों और परित्राजकों द्वारा उसने लाक्षा-गृह से प्याऊ तक एक सुरंग खुदवाई। राजा-रानी को इस सुरंग की बात ज्ञात नहीं हुई।

रानी चुलनी ने कुमार ब्रह्मदत्त को अपनी नववधू के साथ उस लाक्षा-गृह में भेजा। दोनों वहाँ गए। रानी ने शेष सभी ज्ञानि-जनों को अपने-अपने घर भेज दिया। मन्त्री का पुत्र वरधनु वहाँ रहा। राजा के दो पहर बौने। कुमार ब्रह्मदत्त गाढ़ निद्रा में लीन था। वरधनु जाग रहा था। अचानक लाक्षा-गृह एक ही क्षण में प्रदीप्त हो उठा। हाहाकार मचा। कुमार जागा और दिकूदृष्ट बना हुआ वरधनु के पास आ बोला—“यह क्या हुआ? अब क्या करे?” वरधनु ने कहा—“यह राज-कन्या नहीं है, जिसके साथ आपका पाणिग्रहण हुआ है। इसमें प्रतिबन्ध करना उचित नहीं है। चलो हम चले।” उसने कुमार ब्रह्मदत्त को एक संकेतित स्थान पर लात मारने को कहा। कुमार ने लात मारी। सुरंग का द्वार खुल गया। वे उसमें घुसे। मन्त्री ने पहले ही अपने दो विश्वासियों पुरुष सुरंग के द्वार पर नियुक्त कर रखे थे। वे धोखे पर चढ़े हुए थे। उधों ही कुमार ब्रह्मदत्त और वरधनु सुरंग से बाहर निकले त्यों ही उन्हें धोखे पर चढ़ा दिया। वे दोनों वहाँ से चले। पचास योजन दूर जा कर लहरे। लम्बी यात्रा के कारण छोड़े खिन्न हो कर गगर पड़े। अब वे दोनों वहाँ से पंदल चले। वे चलते-चलते बाराणसी पहुँचे। राजा कटक ने जब यह संवाद सुना तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और पूर्ण सम्मान से कुमार ब्रह्मदत्त का नगर में प्रवेश करवाया। अपनी पुत्री कटकावली से उसका विवाह किया। राजा कटक ने दूत भेजकर सेना सहित पुष्पचूल को बुला लिया। मन्त्री धनु और राजा कणेरुदन भी वहाँ आ पहुँचे। और भी अनेक राजा मिल गए। उन सबने वरधनु को सेनापति के पद पर नियुक्त कर कौपिल्यपुर पर चढ़ाई कर दी। घमासान युद्ध हुआ। राजा दीर्घ मारा गया। “चक्रवर्ती की विजय हुई”—यह घोष चारों ओर फैल गया। देवों ने आकाश से फूल बरसाए। “बारहवीं चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ है”—यह नाद हुआ। सामन्तों ने कुमार ब्रह्मदत्त का चक्रवर्ती के रूप में अभिषेक किया।

राज्य का परिपालन करता हुआ ब्रह्मदत्त सुखपूर्वक रहने लगा। एक बार एक नट आया। उसने राजा से प्रार्थना की—“मैं आज मधुकरि गीत नामक नाट्य-विधि का प्रदर्शन करना चाहता हूँ।” चक्रवर्ती ने स्वीकृति दे दी। अपराह्न में नाटक होने लगा। उस समय एक कर्मकरी ने फूल-मालाएँ ला कर राजा के सामने रखीं। राजा ने उन्हें देखा और मधुकरि गीत सुना। तब चक्रवर्ती के मन में एक विकल्प उत्पन्न हुआ—“ऐसा नाटक उसने पहले भी कहीं देखा है।” वह इस चिन्तन में लीन हुआ और उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हो आई। उसने जान लिया कि ऐसा नाटक मैंने सौधर्म देवलोक के पद्मगुह्य नामक विमान में देखा था।

इसकी स्मृति मात्र से वह मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ा। पास में बैठे हुए सामन्त उठे, चन्दन का लेप किया। राजा की चेतना लौट आई। सम्राट् आश्वस्त हुआ। पूर्वजन्म के भाई की याद सताने लगी। उसकी खोज करने के लिए उसने एक मार्ग ढूँढ़ा। रहस्य की खिपाते हुए सम्राट् ने महामात्य वरधनु से कहा—“आस्वदासी, मृगो हंसो; मातंगवमरी तथा”—इस श्लोकावृत्त को सब जगह प्रचारित करो और यह घोषणा करो कि इस श्लोक की पूर्ति करने वाले को सम्राट् अपना आधा राज्य देगा। प्रतिदिन यह घोषणा होने लगी। यह अर्थ श्लोक दूर-दूर तक प्रसारित हो गया और व्यक्त-व्यक्ति को कण्ठस्थ हो गया।

इधर चित्र का जीव देवलोक से च्युत हो कर पुरिमताल नगर में एक इन्ध्र सेठ के घर जन्मा । युवा हुआ । एक दिन पूर्व-जन्म की स्मृति हुई और वह मुनि बन गया । एक बार ग्रामानुग्राम विहार करते-करते वहाँ का पितृपुर में आया और मनोरम नाम के कानन में ठहरा । एक दिन वह कायोत्सर्ग कर रहा था । उसी समय रहैट को चलाने वाला एक व्यक्ति वहाँ बोल उठा—

“आस्वदासो मुगो हंसो, मातंगवमरौ तथा ।”

मुनि ने यह सुना और उसके आगे के दो शरण पूरा करते हुए कहा—

“एषा नोः षष्ठिका जातिः अनन्थोन्याभ्यां विद्युक्तयोः ॥”

रहैट चलाने वाले उस व्यक्ति ने उन दोनों शरणों को एक पत्र में लिखा और आधा राज्य पाने की तृप्ति में वह दोड़ा-दोड़ा राज-दरबार में पहुँचा । सम्राट् की अनुमति प्राप्त कर वह राज्यसभा में गया और एक ही साँस में पूरा श्लोक सम्राट् को सुना डाला । उसे सुनते ही सम्राट् स्नेहवश मूर्च्छित हो गए । सारी सभा क्षुब्ध हो गई । सभासद क्रुद्ध हुए और उसे पीटने लगे । उन्होंने कहा—“तू ने सम्राट् को मूर्च्छित कर दिया । यह कैसे तेरी श्लोक-पूति ?” मगर पढ़ी तब वह बोला—“मुझे मत मारो । श्लोक की पूर्ति मैंने नहीं की है ।” “तो किसने की है ?”—सभासदों ने पूछा । वह बोला—“मेरे रहैट के पास खड़े एक मुनि ने की है ।” अनुकूल उपचार पा कर सम्राट् सचेतन हुआ । मगर बात की जानकारी प्राप्त की और वह मुनि के दर्शन के लिए सपरिवार चल पड़ा । कानन में पहुँचा । मुनि को देखा । वन्दना कर विनयपूर्वक उनके पास बैठ गया । बिछुड़ा हुआ योग पुनः मिल गया । अब वे दोनों भाई पुनः पुनः के फल-विपाक की चर्चा करने लगे । वही चर्चा इस अध्ययन में प्रतिपादित है । बौद्ध ग्रंथों में भी इस कथा का प्रकारान्तर से उल्लेख मिलता है ।

६—दासा दसण्णे आसी
मिया कालिजरे नगे ।
हंसा मयंगतीरे^१
सोवागा^२ कासिभूमि^३ ॥

दासी दशान्णेषु आस्व
मृगो कालिजरे नगे ।
हंसी मृत-गङ्गातीरे
शबपाकौ काशीभूम्याम् ॥

६—“हम दोनों दशार्ण देश में दास,
कालिजर पर्वत पर हरिण, मृत-गङ्गा के
किनारे हंस और काशी देश में बाण्डाल थे ।

७—देवा य^४ देवलोगम्मि
आसि अम्हे महिण्डिया ।
'इमा नो'^५ छट्ठिया जाई
अन्नमन्नेण जा विणा ॥

देवौ च देवलोकै
आस्वाऽऽवां महर्द्धिकौ ।
इयं नो षष्ठिका जातिः
अन्योज्येन या विना ॥

७—“हम दोनों सौधमं देवलोक में महान्
ऋद्धि वाले देव थे । यह हमारा छठवां जन्म
है, जिसमें हम एक दूसरे से बिछड़ गये ।”

८—कम्मा नियाणप्पगडा
तुमे राय विचिन्तिया ।
तेसि फलविवागेण
विप्पओगमुवागया ॥

कर्माणि निवान-प्रकृतानि
त्वया राजन् ! विचिन्तितानि ।
तेषां फल-विपाकेन
विप्रयोगमुपागतौ ॥

८—(मुनि—) “राजन् ! तू ने निदान-
कृत (भोग-प्रार्थना से बद्धमान) कर्मों का
चिन्तन किया । उनके फल-विपाक से तम
बिछड़ गये ।”

९—सच्चसोयप्पगडा
कम्मा मा^६ पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो
कि तु चित्ते वि से तथा ? ॥

सत्य-शौच-प्रकटानि
कर्माणि मया पुराकृतानि ।
तान्यद्य परिभुंजे
किन्तु चित्रोऽपि तानि तथा ? ॥

९—(चक्री—) “चित्र ! मैंने पूर्व-जन्म में
तत्त्व और शौचमय द्वाभ अनुष्ठान किये थे ।
आज मैं उनका फल भोग रहा हूँ । क्या
तू भी बेना ही भोग रहा है ?”

१०—सर्व्वं सुचिण्णं सफलं नराणं
कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहि
आया मम पुण्णफलोववेए ॥

सर्वं सुचीर्णं सफलं नराणां
कृतेभ्यः कर्मभ्यो न मोक्षोऽस्ति ।
अर्थः कामैश्चोत्तमैः
आत्मा मम पुण्य-फलोपेतः ॥

१०—(मुनि—) “मनुष्यों का सब सुचीर्ण
(सुकुल) सफल होता है । किण्ण, द्वाभ कर्मों का
फल भोगे बिना मुक्ति नहीं होती । मेरी
आत्मा उत्तम अर्थ और कामों के द्वारा पुण्य-
फल से युक्त है ।”

११—जाणासि संभूय ! महानुभागं
महिण्डियं पुण्णफलोववेयं ।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं !
इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया ॥

जातासि सम्भूत ! महानुभागं
महर्द्धिकं पुण्य-फलोपेतम् ।
चित्रमपि जानीहि तथैव राजन् !
ऋद्धिर्द्युतिस्तस्यापि च प्रभूता ॥

११—“सम्भूत ! जिस प्रकार तू अपने
को महान् अनुभाग (अचिन्त्य-शक्ति) सम्पन्न,
महान् ऋद्धिमान् और पुण्य-फल से युक्त मानता
है, उसी प्रकार चित्र को भी जान । राजन् !
उसको भी प्रचुर ऋद्धि और शुक्ति थी ।

१. मयंगतीराए (अ, उ, ऋ०) ।

२. बाण्डाल (उ, ऋ०) ।

३. बि (उ) ।

४. इमामे (इ०) ; इमाणो (इ० पा०) ।

तेरसमं अङ्गवर्णनं : त्रयोवक्त्र आध्ययन चित्तसम्भूदज्जं : चित्र-सम्भूतीयम्

मूल
१—जाईपराजिओ खलु
कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ।
चुलणीए बम्भदत्तो
उववन्तो पउमगुम्माओ ॥

संस्कृत छाया
जाति-पराजितः खलु
अकार्योऽन्तं निदानं तु हस्तिनापुरे ।
चुलन्यां ब्रह्मदत्तः
उपपन्नः पद्मगुल्मात् ॥

हिन्दी अनुवाद
१—जाति से पराजित हुए सम्भूत ने
हस्तिनापुर में निदान (चक्रवर्ती होऊँ—ऐसा
सङ्कल्प) किया । वह पद्म-गुल्म नामक विमान
में देव बना । वहाँ से च्युत होकर चुलनी की
कोख में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में उत्पन्न
हुआ ।

२—कम्पिल्ले संभूओ
चित्तो पुण जाओ पुरिमनालम्मि ।
सेट्टिकुलम्मि विसालं
धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥

काम्पिल्ये सम्भूतः
चित्रः पुनर्जातः पुरिमताले ।
श्रष्टि-कुले विशाले
धर्म-श्रुत्वा प्रव्रजितः ॥

२—सम्भूत काम्पिल्य नगर में उत्पन्न
हुआ । चित्र पुरिमताल में एक विशाल श्रष्टि-
कुल में उत्पन्न हुआ । वह धर्म सुन प्रव्रजित
हो गया ।

३—कम्पिल्लम्मि य नयरे
समागया दां वि चित्तसम्भूया ।
मुहदुक्खफलविवागं
कहेत्ति ते एकमेकस्स ॥

काम्पिल्ये च नगरे
समागतो द्वावपि चित्र-सम्भूतो ।
मुख-दुःख-फल-विपाकं
कथयतस्तावैकैकस्य ॥

३—काम्पिल्य नगर में चित्र और सम्भूत
दोनों मिले । दोनों ने परस्पर एक दूसरे के
मुख-दुःख के विपाक की बात की ।

४—चक्रवट्ठी महिड्ढीओ
बम्भदत्तो महायसो ।
भायरं बहुमाणं
इमं वयणमब्रवी ॥

चक्रवर्ती महद्भिक्कः
ब्रह्मदत्तो महायशः ।
भ्रातरं बहु-मानेन
इदं वचनमब्रवीत् ॥

४—महान् ब्रह्म-सम्पन्न और महान्
यशस्वी चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने बहुमान-पूर्वक
अपने भाई से इस प्रकार कहा—

५—आसिमो भायरा दो वि
अन्नमन्नवसानुगा ।
अन्नमन्नमणूरत्ता
अन्नमन्नहिएसिणो ॥

आस्व भ्रातरो द्वावपि
अन्नोऽन्यवसानुगी ।
अन्नोऽन्यमणूरत्तो
अन्नोऽन्यं हितेषिणी ॥

५—‘हम दोनों भाई थे—एक दूसरे के
वशावर्ती, परस्पर अनुरक्त और परस्पर हितेषी ।

१२—महत्स्वरूपा वयणप्भूया
गाहाणुगीया नरसंघमज्जे ।
जं भिक्षुणो सीलगुणोववेया
'इहज्जयन्ते समणो' म्हि जाओ ॥

महायैरूपा वचनाऽल्पभूता
गाथाऽनुगीता नर-संघ-मध्ये ।
यां भिक्षवः सील-गुणोपेताः
इहार्जयन्ति श्रमणोऽस्मि जातः ॥

१२—“स्वविरो ने जन-समुदाय क श्रीच
अल्पाक्षर और महान् अर्थ वाली जो गाथा
गार्ई, जिते सील और श्रुत से सम्पन्न भिक्षु बड़े
यज्ञ से अजित करते हैं, उमे मुनकर मैं श्रमण
हो गया ।”

१३—उच्चोयए मधु कक्के य बम्भे
पवेइया आवसहा 'य रम्मा' ।
इमं गिहं चिन्धणप्पभूयं*
पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥

उच्चोदयो मधुः ककटश्च ब्रह्मा
प्रवेदिता आवसथाश्च रम्माः ।
इदं गृहं प्रभूत-चित्र-धनं
प्रसाधि पञ्चालगुणोपेतम् ॥

१३—(चक्रो—) “उच्चोदय, मधु, ककट,
मय्य और ब्रह्मा— ये प्रधान प्राणाद तथा दूसरे
अनेक रम्य प्रासाद है । पंचाल देश की विशिष्ट
वस्तुओं में युक्त और प्रचुर एवं विचित्र हिरण्य
आदि से पूर्ण यह घर है—इसका तू उपभोग
कर ।

१४—नट्टहि गोएहि य वाइएहि
नारीजणाइं परिवारयन्तो* ।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्षु !
मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥

नाट्यैर्गीतैश्च वादित्रैः
नारी-जनान् परिवारयन् ।
भुङ्क्ष्व भोगानिमान् भिक्षो !
महा रोचते प्रव्रज्या खलु दुःखम् ॥

१४—“हे भिक्षु ! तू नाट्य, गीत और
वाद्यों के साथ नारी-जनों को परिचरित करना
हवा इन भोगों को भोग । यह मुझे रुचता है ।
प्रव्रज्या वात्मन मे ही कष्टकर है ।”

१५—तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं
नराहिवं कामगुणेषु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेहो
चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था* ॥

नं पुर्व-स्नेहेन कृतानुरागं
नराधिपं काम-गुणेषु गूढम् ।
धर्माश्रितस्तस्य हितानुप्रेषो
चित्र इदं वचनमुदाहार्थीन् ॥

१५—धर्म में स्थित और उस (राजा)
का हित चाहने वाले चित्र मुनि ने पूर्व-भव के
स्नेह-वश अपने प्रति अनुगम रखने वाले काम-
गुणों में आसक्त राजा से यह वचन कहा—

१६—सर्वं विलवियं गीयं
सर्वं नट्टं विडम्बियं^१ ।
सर्वे आभरणा भारा
सर्वे कामा दुहावहा ॥

सर्वं विलपितं गीतं
सर्वं नाट्यं विडम्बितम् ।
सर्वाण्याभरणानि भाराः
सर्वे कामा दुःखावहाः ॥

१६—“सब गीत विलाप हैं, सब नाट्य
विडम्बना हैं, सब आभरण भार हैं और सब
काम-भोग दुःखकर हैं ।

१. इहज्जयन्ते छमणो (वृ० पा०) ; इहज्जयन्ते छमणो (वृ० पा०) ।

२. ऽतिरम्मा, छरम्मा वा (वृ० पा०) ।

३. विसयणोववेयं (वृ०) ; वयणोववेयं (वृ०) ; चित्तवयणप्यभूयं (वृ० पा०) ।

४. पविचारियन्तो (वृ० पा०) ; परिवारयन्तो (अ, उ, ऋ०) ।

५. वक्क (वृ०) ; वयण (वृ० पा०) ।

६. विडम्बणा (उ, वृ०) ।

१७—‘बालाभिरामेषु दुहावहेसु
न तं सुहं कामगुणेषु रायं ! ।
विरक्तकामाण तवोधणाणं
जं भिक्षुणं सीलगुणे रयाणं ॥’

१८—नरिदं जाई अहमा नराणं
सोवागजाई दुहुओ गयाणं ।
जहि वयं सब्बजणस्स वेस्सा
वसीय सोवागनिवेशेणु ॥

१९—तीसे य जाईइ उ पावियाए
वुच्छामु सोवागनिवेशेणु ।
सब्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा
इहं तु कम्माई पुरेकडाई ॥

२०—सो दाणि सि राय ! महाणुभागे
महिडिओ पुण्यफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइ असासयाई
‘आयाणहेउं अभिणक्खमाहि’ ॥

२१—इह जीविए राय ! असासयम्मि
धणियं तु पुण्णाइ अकुव्वमाणो ।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए
धम्मं अकाऊण परंसि लोए ॥

२२—जहेह सीहो व मियं गहाय
मच्चु नरं नेइ हु अन्तकाले ।
न तस्स माया ‘व पिया व भाया’^१
कालम्मि तम्मसहरा^२ भवन्ति ॥

बालाभिरामेषु दुःखावहेषु
न तत्सुखं काम-गुणेषु राजन् ! ।
विरक्त-कामानां तपोधनानां
यद् भिक्षूणां शील-गुणे रतानाम् ॥

नरेन्द्र ! जातिरधमा नराणां
श्वपाक-जातिर्द्वयोः गतयोः ।
यस्यामावां सर्वजनस्य द्वेष्टयो
अवसाव श्वपाक-निवेशनेषु ॥

तस्यां च जातो तु पापिकायाम्
उत्थितो आवां श्वपाक-निवेशनेषु ।
सर्वस्य लोकस्य जुगुप्सनीयो
इह तु कर्मणि पुराकृतानि ॥

स इदानीं राजा महानुभागः
महद्विकः पुण्य-फलपेतः ।
त्यक्त्वा भोगानशाश्वतान्
आवात-हेतोरभिनिष्कामः ॥

इह जीविते राजन् ! अशाश्वते
अत्यर्थं तु पुण्यान्यकुर्वाणः ।
स शोचति मृत्युमुखोपनीतः
धर्ममकृत्वा परस्मिन्लोके ॥

यथेह सिंहो वा मृगं गृहीत्वा
मृत्युनरं नयति खलु अन्तकाले ।
न तस्य माता वा पिता वा भ्राता
काले तस्यांशवरा भवन्ति ॥

१७—‘‘राजन् ! अज्ञानियों के लिए
रमणीय और दुःखकर काम-गुणों में वह मुख
नहीं है, जो सुख कामों से विरक्त, शील और
गुण में रत तपोधन भिक्षु को प्राप्त होता है ।

१८—‘‘नरेंद्र ! मनुष्यों में चाण्डाल-
जाति अधम है । उसमें हम दोनों उत्पन्न हो
चुके हैं । वहाँ हम चाण्डालों की बस्ती में
रहते थे और सब लोग हम से द्वेष करते थे ।

१९—‘‘दोनों ने कुत्सन चाण्डाल-जाति
में जन्म लिया और चाण्डालों की बस्ती में
निवात किया । सब लोग हमसे धृणा करने
थे । इस जन्म में जो उच्छता प्राप्त हुई है, वह
पूर्व-कृत शुभ कर्मों का फल है ।

२०—‘‘उसी के कारण वह तु महान्
अनुभाव (अचिन्त्य-शक्ति) सम्पन्न, महान्
वृद्धिमान् और पुण्य-फल युक्त राजा बना
है । इसीलिए तू अशाश्वत भोगों को छोड़
कर चारित्र्य-धर्म की आराधना के लिए
अभिनिष्क्रमण कर ।

२१—‘‘राजन् ! जो इस अशाश्वत जीवन
में प्रचुर शुभ अनुष्ठान नहीं करता, वह मृत्यु
के मुँह में जाने पर पश्चात्ताप करता है
और धर्म की आराधना नहीं होने के कारण
परलोक में भी पश्चात्ताप करता है ।

२२—‘‘जिस प्रकार सिंह हरिण को पकड़
कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्तकाल में मृग
मनुष्य को ले जाती है । काल घटने पर
उसके माता-पिता या भाई अंशधर नहीं होते—
अपने जीवन का भाग दे कर बचा नहीं पाते ।

१. यह श्लोक वर्ण में व्याख्यात नहीं है ।

२. आदानसेव अनुचितवाहि (५०) ; आदान हेउं अभिणक्खमाहि (५० पा०) ; आवाणमेवा अनुचितवाहि (५० पा०) ।

३. न पिया न भाया (उ) ।

४. तम्मसहरा (उ) ।

२३—न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ
न मित्तवग्गा न सुत्ता न बान्धवा ।
एको सयं पच्चणुहोइ दुक्खं
कर्तारमेवं अणुजाइ कम्मं ॥

२४—वेच्चा दुपयं च चउण्यं च
खेत्तं गिहं धणधन्नं च सर्व्वं ।
कम्मपवीओ^१ अवसो पयाइ
परं भवं सुंदर पावगं वा ॥

२५—तं इक्कं तुच्छसरीरं से
विईगयं डहिय उ पावगणं ।
भज्जाय पुत्ता^२ वि य नायओय
दायारमन्नं अणसंकमन्ति ॥

२६—उवणज्जई जीवियमप्पमायं
वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं ! ।
पंचालराया ! वयणं सुणाहि
मा कासि कम्माइ महालयाइ ॥

२७—अहं पि जाणामि 'जेहेह साहू !'^३
जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं ।
भोगा इमे संगकरा हवन्ति
जे दुज्जया अज्जो ! अम्हारिसेहि ॥

२८—हत्थिणपुरम्मि चित्ता !
दृष्ट्वा नरवइ महिड्डियं ।
कामभोगेषु गिद्धेणं
नियामसुहं कडं ॥

न तस्य दुःखं विभयन्ति ज्ञातयः
न मित्र-वर्गा न सुता न बान्धवाः ।
एकः स्वयं प्रत्यनुभवति दुःखं
कर्तारमेवानुयाति कर्म ॥

त्यक्त्वा द्विपदं च चतुष्पदं च
क्षेत्रं गृहं धन-धान्यं च सर्व्वम् ।
कर्मस्मिन्-द्वितीयोऽवशः प्रयाति
परं भवं सुन्दरं पापकं वा ॥

तदेकं तुच्छ-शरीरं तस्य
चित्ति-गतं दग्धं वा तु पावकैर्न ।
भायां च पुत्रोपि च ज्ञातयश्च
दातारमन्यमनुसङ्गमन्ति ॥

उपनीयते जीवितमप्रमादं
वर्णं जरा हरति नरस्य राजन् ! ।
पञ्चाल-राज ! वचनं शृणु
मा कार्षीः कर्मणि महालयानि ॥

अहमपि जानामि येहेह साधो !
यस्मिन् त्वं साधयसि वाक्यमेतत् ।
भोगा इमे सङ्गकरा भवन्ति
ये दुर्जया आर्य ! अस्मादसौः ॥

हस्तिनापुरे चित्र !
दृष्ट्वा नरपतिं महद्भिकम् ।
काम-भोगेषु गृह्येन
निदानमशुभं कृतम् ॥

२३—“ज्ञाति, मित्र-वर्ग, पुत्र और
बान्धव उसका दुःख नहीं बँटा सकते । वह
स्वयं अकेला दुःख का अनुभव करता है ।
क्योंकि कर्म कर्ता का अनुगमन करता है ।

२४—“यह पराधीन आत्मा द्विपद,
चतुष्पद, खेत, घर, धन, धान्य, वस्त्र आदि सब
कुछ छोड़ कर केवल अपने किये कर्मों को साथ
लेकर सुखदा या दुःखदा-पर-भव में जाता है ।

२५—“उस अकेले और अमार शरीर
को अग्नि से चिता में जलाकर शरीर, पुत्र और
ज्ञाति किसी दूसरे दाता (ओबिका देने वाले)
के पीछे चले जाते हैं ।

२६—“राजन् ! कर्म बिना भूल किए
(निरन्तर) जीवन को मृत्यु के समीप ले जा रहे
हैं । बुढ़ापा मृत्यु के वर्ण (गुन्गिष कर्ति)
का हरण कर रहा है । पंचाल-राज ! मेरा
वचन सुन । प्रचुर कर्म मन कर ।”

२७—(चक्रो—) “साधो ! तू जो मुझे
यह वचन जैसे कह रहा है, वैसे मैं भी जानता
हूँ कि ये भोग आसक्तिजनक होते हैं । किन्तु
हे आर्य ! हमारे जैसे व्यक्तियों के लिए वे
दुर्जय हैं ।

२८—“चित्र मुने ! हस्तिनापुर में महान्
ऋषि बाले चक्रवर्ती (समत्कुमार) को देख
भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान
(भोग-सङ्कल्प) कर डाला ।

१. सक्कम्मपवीओ (उ) ; सक्कम्मवीओ (वृ०) ; कम्मपविओ (अ) ।

२. पुत्तो (वृ०) ।

३. ओ एव सातो (वृ० पा०, वृ०) ।

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

२९—तस्स मे अपडिकन्तस्स
इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणो वि जं धम्मं
कामभोगेसु मुच्छिओ ॥

३०—नागो जहा पंकजलावसन्नो
दट्ठं थलं नाभिसमेइ तीरं ।
एवं वयं कामगुणंसु गिद्धा
न भिक्खुणो मग्गमण्वयामो ॥

३१—अच्चेद् कालो तूर्गन्ति राइओ
न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिमं चयन्ति ।
दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥

३२—'जइ ता सि' भोगे चइउ असत्ता
अज्जाइ कम्माइ करेहि रायं ।
धम्मे ठिआं सब्बपयाणुकम्पी
तो होहि सि देवो इआं विउव्वी ॥

३३—न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी
गिद्धो सि आरम्भपरिगहेसु ।
मोहं कआ एत्तिउ विष्णुलावो
गच्छामि रायं! आमन्तिओ सि॥

३४—पंचालराया वि य बम्भदत्तो
साहुस्स तस्स^३ वयणं अकाउं ।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे
अणत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥

१६६

तस्मान्मेऽप्रतिक्रान्तस्य
इदमेतादृशं फलम् ।
जानन्नपि यद् धर्मं
काम-भोगेषु मूर्च्छितः ॥

नागो यथा पङ्क्तु-जलावसन्न
दृष्ट्वा स्थल नाभिसमेति तोरम् ।
एवं वयं काम-गुणेषु गृद्धाः
न भिक्षोर्मर्गमनुव्रजामः ॥

अत्येति कालस्त्वरन्ते रात्रयः
न चापि भोगाः पुरुषाणां नित्याः ।
उपेत्य भोगाः पुरुषं त्यजन्ति
द्रुमं यथा क्षीणफलमिव पक्षी ॥

यदि तावदसि भागान् त्यक्तुमशक्तः
आर्याणि कर्माणि कुरु राजन् ! ।
धर्मे स्थितः सर्वप्रजानुकम्पी
तस्माद् भविष्यसि देव इतो वैक्रियी ॥

न तव भोगान् त्यक्तुं बुद्धिः
गृद्धोऽसि आरम्भ-परिग्रहेषु ।
मोघं कृत एतावान् विप्रलापः
गच्छामि राजन् ! आमन्त्रितोऽसि ॥

पञ्चाल-राजोपि च ब्रह्मदत्तः
साधोस्तस्य वचनमकृत्वा ।
अनुत्तरान् भुक्त्वा काम-भोगान्
अनुत्तरे स नरके प्रविष्टः ॥

अध्ययन १३ : श्लोक २६-३४

२६—“उमका मैंने प्रतिक्रमण (प्रायश्चित्त) नहीं किया। उसी का यह ऐसा फल है कि मैं धर्म को जानता हुआ भी काम-भोगों में मूर्च्छित हो रहा हूँ।

३०—“जैसे पंक-जल (दलदल) में कैसा हुआ दार्थी मयल को देखता हुआ भी किनारे पर नहीं पहुँच पाता, वैसे ही काम-गणों में आसक्त बन हुए हम श्रमण-धर्म को जानते हुए भी उसका अनुसरण नहीं कर पाते।”

३१ ... (मनि—) "जावन बीन रहा है ।
गावियां शीड़ी जा रही हैं । मनुष्यों के भोग
भी नित्य नशी हैं । वे मनुष्य को ग्राम कर उसे
छोड़ देते हैं, जैसे फ़ीण फल वाले वृक्ष को
पक्षी ।

३२—“राजन् ! यदि तू भोगों का त्याग करने में असमर्थ है तो आर्थ-वर्षा कर । धर्म में श्रवण होकर सब जीवों पर अनुकम्पा करने वाला वन, जिसमें तू जन्मानन्द में वैव्रिय शरीर वाला देव होगा ।

२३- "तुम मे भोगों को त्यागने की वृद्धि नहीं है। तू आरम्भ और परिग्रह मे आसक्त है। मैंने व्यर्थ ही इतना प्रलाप किया। तुझे आमन्त्रित (सम्बोधित) किया। राजन् ! अब मैं जा रहा हूँ।"

३४—पंचाल जनपद के राजा श्रद्धादत्त ने
मर्ति के वचन का पालन नहीं किया। वह
अनुत्तर काम-भोगों को भोग कर, अनुत्तर नरक
में गया।

१. जहन्ति (चू०) ।

२. जह तंसि (उ, बृ० पा०, ऋ०) ; जईऽसि (चू०) ।

३. तस्सा (भ, आ, इ, स) ।

३५—चित्तो वि कामेहि विरक्तकामो
उदग्गचारित्तवो^१ महेसी ।
अणुत्तरं संजम पालइत्ता
अणुत्तरं सिद्धिगडं गओ ॥
—त्ति बेमि ।

चित्रोपि कामेभ्यो विरक्त-कामः
उदग्ग-चारित्र-तपा महर्षिः ।
अनुत्तरं संयमं पालयित्वा
अनुत्तरां सिद्धि-गतिं गतः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३५—कामना से विरक्त और प्रधान
चारित्र-तप वाला महर्षि चित्र अनुत्तर संयम
का पालन कर अनुत्तर सिद्धि-गति को प्राप्त
हुआ ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

निर्युक्तिकार ने ग्यारह गाथाओं में कथावस्तु को प्रस्तुत किया है। उसमें सभी पात्रों के पूर्व-भव, वर्तमान-भव में उनकी उत्पत्ति तथा निर्वाण का संक्षिप्त चित्रण है।^१

पूर्व अध्ययन में वर्णित पित्र और सम्भूत के पूर्व-जन्म में दो ग्वाले मित्र थे। उन्हें साधु के अनुग्रह से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। वे वहाँ से मर कर देवलोक में गए। वहाँ से च्युत हो कर उन्होंने क्षितिप्रतिष्ठित नगर के एक इन्ध-कुल में जन्म लिया। वे बड़े हुए। चार इन्ध-पुत्र उनके मित्र बने। उन सबने युवावस्था में काम-भोगों का उपभोग किया, फिर स्वयिं से धर्म सुन प्रव्रजित हुए। चिरकाल तक संयम का अनुपालन किया। अन्त में अनशन कर सौधमं देवलोक के पद्मगुल्म नामक विमान में चार पत्न्य की स्थिति वाले देव बने। दोनों ग्वाल-पुत्रों की क्षोण कर शेष चारों मित्र वहाँ से च्युत हुए। उनमें एक कुल जनपद के इधुकार नगर में इधुकार नाम का राजा हुआ और दूसरा उसी राजा की रानी कमलावती। तीसरा भृगु नाम का पुरोहित हुआ और चौथा भृगु पुरोहित की पत्नी यशा। ब्रह्म काल बीता। भृगु पुरोहित के कोई पुत्र नहीं हुआ। पति-पत्नी चिन्तित रहने लगे।

एक बार उन दोनों ग्वाल-पुत्रों ने, जो अभी देव-भव में थे, अवधिज्ञान से जाना कि वे भृगु पुरोहित के पुत्र होंगे। वे वहाँ से चले। अमण का रूप बना भृगु पुरोहित के पास आए। भृगु और यशा दोनों ने वन्दना की। मुनियों ने धर्म का उपदेश दिया। भृगु-दम्पति ने श्रावक के व्रत स्वीकार किए। पुरोहित ने पूछा—“भगवन्! हमको कोई

१ - उत्तराध्यायन निर्युक्त, गाथा ३६१-३७३ :

पुत्रभवे संचिद्धा सपीआ अन्नमन्नमणुरसा ।
भुत्तुण भोगभोए निरंथा पक्खए समणा ॥
काऊण थ सामन्नं पडमगुम्मे विमाणि उववन्ना ।
पल्लिभोवमाहं चदरो ठई उकोसिआ तेसि ॥
तचो य बुआ संता कुरुजणवयपुरवरंमि उअआरे ।
छावि जणा उववन्ना चरिमसरीरा विगबमोहा ॥
राया उअआरो या कमलावह देवि भगमहिंसी ते ।
मिगुनामे थ पुरोहिण्य वासिद्धा भारिआ तत्स ॥
उअआरपुरे नवरे उअआरपुरोहिओ अ अणवचओ ।
पुत्तस कए बहुसो परितपंती दुअगावि ॥
काऊण समणस्सं तहिअं देवो पुरोहिअं भणह ।
होहिंति तुज्ज पुत्ता दुप्पि जणा देवलोगचुआ ॥
तहि अ पव्वइअच्चं जहा थ न करेह अंतरायं णं ।
तं पव्वइआ संता बोहेहिती जणं बहुअं ॥
तं वयणं सोऊणं नगराओ तिति तं वयगामे ।
वहुंति अ ते तहिअं गार्हिअि अ णं असवमाअं ॥
एए समणा पुत्ता पेअपिसाया थ पोअसाया थ ।
मा तेसि अल्लिअहा मा भे पुत्ता ! विणासिज्जा ॥
दट्ठण तहिं समणे जाहं पोरणिअं थ सरिऊणं ।
बोहिअंस्मापिअरं उअआरं राअपुत्त थ ॥
सीमंअरो थ राया भिगुअ वासिद्ध राअपत्ती थ ।
अंभणी दारगा वेअ छप्पेए परिमिअुआ ॥

चतुर्विंशतमं अध्यायः :
उत्तरार्द्धम्

चतुर्विंशतमं अध्यायः :
उत्तरार्द्धम्

पुत्र होगा या नहीं ?” अमण युगल ने कहा—“तुम्हें दो पुत्र होंगे किन्तु वे बाढ्यावस्था में ही दीक्षित हो जायेंगे। उनकी प्रवृत्तियाँ में तुम्हें कोई व्याघात उपस्थित नहीं करना होगा। वे दीक्षित होकर धर्म-शासन की प्रभावना करेंगे।” इतना कह दोनों अमण वहाँ से चले गए। पुरोहित पति-पत्नी को प्रसन्नता हुई। कालान्तर में वे दोनों देव पुरोहित पत्नी के गर्भ में आए। दीक्षा के भय से पुरोहित नगर को छोड़ व्रज गाँव में जा बसा। वहाँ पुरोहित की पत्नी यश ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वे कुछ बड़े हुए। माता-पिता ने सोचा ये कहीं दीक्षित न हो जाएँ अतः एक बार उनसे कहा—“पुत्रो ! ये अमण सुन्दर-सुन्दर बालकों को उठा ले जाते हैं और मार कर उनका मांस खाते हैं। उनके पास तुम दोनों कभी मत जाना।”

एक बार दोनों बालक खेलते-खेलते गाँव से बहुत दूर निकल गए। उन्होंने देखा कि कई साधु उसी मार्ग से आ रहे हैं। भयभीत हो वे एक वृक्ष पर चढ़ गए। संयोगवश साधु भी उसी वृक्ष की सधन छाया में आ बैठे। बालकों का भय बढ़ा। माता-पिता की शिक्षा स्मृति-पटल पर नाथने लगे। साधुओं ने कुछ विश्राम किया। भोली से पात्र निकाले और सभी एक मण्डली में भोजन करने लगे। बालकों ने देखा कि मुनि के पात्रों में मांस जैसी कोई वस्तु नहीं है। साधुओं की सामान्य भोजन करते देख बालकों का भय कम हुआ। बालकों ने सोचा—“अहो ! हमने ऐसे साधु अन्याय भी कही देखे हैं।” चिन्तन बला। उन्हें जातिस्मृति-ज्ञान उत्पन्न हुआ। वे नीचे उतरे, मुनियों की नन्दना की और सीधे अपने माता-पिता के पास आए।

तन्होंने माता-पिता से कहा—“हमने देख लिया है कि मनुष्य-जीवन अनित्य है, विघ्न-बहुल है और आयु धार्ढ्य ही इसलिए धर्म से हटने वाली आनन्द नहीं है। हम मुनि-चर्या को स्वीकार करने के लिए आपकी अनुमति चाहते हैं।” (श्लोक १)

पिता ने कहा—“पुत्रो ! मेरी को जानने वाले इस प्रकार कहते हैं कि जनक पुत्र नहीं होता उनकी गति नहीं होती। इसलिए वेदों की पढ़ी। ब्राह्मणों की भोजन कराओ। अन्नियों के साथ भोग करो। पुत्रोत्पन्न करो। पालन का विवाह कर, उन्हें घर से पकि अरण्यवासी प्रशस्त मुनि हो जाना।” (श्लोक ८-९)

पुत्रो ने कहा—“वेद पढ़ने पर भी वे ब्राह्मण नहीं होते। ब्राह्मणों का भोजन कराने पर वे नरक में ले जाते हैं। और स पुत्र भी ब्राह्मण नहीं होते। ये काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल दुःख देने वाले, बहुत दुःख और धीमा सुख देने वाले, संसार-सुप्त के विराधी और अनर्थों की खान हैं। कात् सदा तयार खड़ा है। इसी स्थिति में प्रभाव कैसे किया जाए ?” (श्लोक १२, १३, १४)

पिता ने कहा—“पुत्रो ! जिसके लिए सामान्यतया लोग तप किया करते हैं वह सब कुछ—प्रभुर धन, स्त्रियाँ, स्वजन और इन्द्रियों के विषय तुम्हें यहाँ प्राप्त हैं फिर तुम किसलिए अमण होना चाहते हो ?” (श्लोक १५)

पुत्रों ने कहा—“जहाँ धर्म की धुरा का बहान करने का अधिकार है वहाँ धन-स्वजन और इन्द्रियों का भय का क्या प्रयोजन ? हम सभी प्रातर्बन्धों से मुक्त होकर भिक्षा से निर्वाह करने वाले अमण होंगे।” (श्लोक १७)

नारैतिक मान्यता का यह धोष था कि शरीर से भस्म कोई चेतन्य नहीं है। पाँच भूतों के समवाय से उसका उत्पन्न होती है और जब वे भूत विरक्त हो जाते हैं तब चेतन्य भी नष्ट हो जाता है। “अराण में आग, दूध में जल और मिल् में तेल अविद्यमान होने पर भी उचित प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न हो जाते हैं। उसी प्रकार भूतों से चेतन्य की उत्पत्ति माननी चाहिए।” (श्लोक १८)

आस्तिक मान्यता को स्पष्ट करते हुए पुत्रों ने कहा—“आत्मा अमूर्त है इसलिए यह इन्द्रियों द्वारा ग्रस्य नहीं है। यह अमूर्त है इसलिए नित्य है। आत्मा के आन्तरिक दोष हो उसके बन्धन के हेतु हैं और बन्धन ही संसार का हेतु है।” (श्लोक १९)

आस्तुख

इस अध्ययन के छह पात्र हैं—(१) महाराज इषुकार, (२) रानी कमलावती, (३) पुरोहित भृगु, (४) पुरोहित की पत्नी यशा और (५-६) पुरोहित के दो पुत्र ।

इनमें भृगु पुरोहित का कुटुम्ब ही इस अध्ययन का प्रधान पात्र है । किन्तु राजा की लौकिक प्रधानता के कारण इस अध्ययन का नाम 'इषुकारीय' रखा गया है ।*

इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है 'अन्यत्त्व भावना' का उपदेश । आगम-काल में कई मतावलम्बियों की यह मान्यता थी कि पुत्र के बिना गति नहीं होती, स्वर्ग नहीं मिलता । जो व्यक्ति गृहस्थ-धर्म का पालन करता है वह स्वर्ग प्राप्त कर लेता है । जिसके कोई सन्तान नहीं है उसका कोई लोक नहीं होता । पुत्र से ही परमव्यवस्था होता है—सुधरता है । इसी के फलस्वरूप—

१--“अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च ।

गृहिधर्ममनुष्ठाय, तेन स्वर्गं गमिष्यति ॥”

२--“अनपत्यस्य लोका न सन्ति ।”

३--“पुत्रेण जायते लोकः, इत्येषा वेदिकी श्रुतिः ।

अथ पुत्रस्य पुत्रेण, स्वर्गलोके महीयते ॥”

आदि-आदि सूक्त प्रचलित हो रहे थे और लोगों का अधिक भाग इसमें विश्वास करने लगा था । पुत्र-प्राप्ति के लिए सभी संभावित प्रयत्न किए जाते थे । पुत्रोत्पत्ति से जीवन की महान् सफलता मानी जाती थी । इस विचार-धारा ने दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया था, परन्तु अध्यात्म के प्रति उदासीन भाव प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे । उस समय यह भी मान्यता प्रचलित थी कि यदि पुत्र से ही स्वर्ग-प्राप्ति हो जाती है तो दान आदि धर्म व्यर्थ हैं ।

भगवान् महावीर स्वर्ग और नरक की प्राप्ति में व्यक्ति-व्यक्ति की प्रवृत्ति को महत्त्व देते थे । उन्होंने कहा—
“पुण्य-पाप व्यक्ति-व्यक्ति का अपना होता है । माता-पिता, भाई-बन्धु, पुत्र-स्त्री आदि कोई भी प्राणी प्राणी नहीं होता । सबको स्वतंत्र रूप से अपने-अपने कर्मों का फल-विपाक भोगना पड़ता है ।” इस अध्ययन में इस भावना का स्फुट चित्रण है ।

*—वत्सराज्यवर्णन निर्दुक्ति, पाया ३६२ :

उद्यभारनामगोष्ट्यं वैश्वतो भावभो अ उद्यभारो ।

ततो समुद्रिषमिणं उद्यभारिर्जति अन्कवर्णं ॥

चतुर्वस्रं अङ्गयणं : चतुर्वक्ष अध्वयन उस्यारिज्जं : इषुकारीयम्

मूल

१—देवा भवित्ताण पुरे भवम्मी
केई जुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे उस्यारनामे
खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥

२—सकम्मसेसेण पुराकएणं
कुलेसु दग्गेमु^१ य ते पसूया ।
निव्विणसंसारभया जहाय
जिणिन्दमग्गं सरणं पवन्ता ॥

३—पुमत्तमागम्म कुमार दो वी
पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालकित्ती य तहोसुयारो
रायत्थ देवी कमलावई य ॥

४—जाईजरामच्चुभयाभिभूया^२
बहिंविहारामिनिविट्ठचित्ता ।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा
दट्ठण ते कामगुणे विरत्ता ॥

५—पियपुत्तगा दोन्नि वि माहुणस्स
सकम्मसीलस्स पुरोहिद्यस्स ।
सरित्तु पोरानिय तत्थ जाई
तहा सुचिण्णं तवसंजमं च ॥

संस्कृत छाया

देवा भूत्वा पुरा भवे
केचिच्छ्रुयुता एकविमान-वासिनः ।
पुरे पुराणे इषुकारनाम्नि
क्याते समृद्धे सुरलोक-रम्भे ॥

स्वकर्म-शेषेण पुराकृतेन
कुलेष्वप्येषु च ते प्रसूताः ।
निर्विण्णाः संसार-भयाहं हित्वा
जिनेन्द्र-मार्गं शरणं प्रपन्नाः ॥

पुंस्त्वमाऽऽगम्य कुमारो द्वावपि
पुरोहितः तस्य यथा च पत्नी ।
विशालकोटिष्व तथेष्टकारः
राजात्र देवी कमलावती च ॥

जाति-जरा-मृत्यु-भयाभिभूतौ
बहिर्विहारामिनिविष्टचित्तौ ।
संसार-चक्रस्य विमोक्षणार्थं
दट्ठ्वा तौ काम-गुणेश्चो विरक्तौ ॥

प्रिय पुत्रको द्वावपि ब्राह्मणस्य
स्वकर्म-शीलस्य पुरोहितस्य ।
स्मृत्या पौराणिकीं तत्र जातिं
तथा सुचीर्णं तपः-संयमं च ॥

हिन्दी अनुबाव

१—पूर्व-जन्म में, देवता हो कर एक ही
विमान में रहने वाले कुछ जीव देवलोक से
श्रुत हुए । उस समय इषुकार नाम का एक
नगर था—प्राचीन, प्रसिद्ध, समृद्धिवाली और
देवलोक के समान ।

२—उन जीवों के अपने पूर्वकृत पुण्य-
कर्म बाकी थे । कलस्वरूप थे इषुकार नगर के
उत्तम कुलों में उत्पन्न हुए । संसार के भय से
खिन्न होकर उन्होंने भोगों को छोड़ा और
जिनेन्द्र-मार्ग की शरण में चले गए ।

३—दोनों पुरोहित कुमार, पुरोहित, उसकी
पत्नी यथा, विशाल कीर्ति वाला इषुकार
राजा और उसकी रानी कमलावती—ये छहों
व्यक्ति मनुष्य-जीवन प्राप्त कर जिनेन्द्र-मार्ग की
शरण में चले गए ।

४-५—ब्राह्मण के योग्य यज्ञ आदि करने
वाले पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्रों ने एक बार
निर्यम्य को देखा । उन्हें पूर्व-जन्म की स्मृति
हुई और भली-भाँति आचरित तप और संयम
की स्मृति जाग उठी । वे जन्म, जरा और
मृत्यु के भय से अभिभूत हुए । उनका चित्त
मोक्ष की ओर खिंच गया । संसार-चक्र से
मुक्ति पाने के लिए वे काम-गुणों से विरक्त हो
गए ।

१. दग्गेड (दू०, दू०) ; दग्गेड (दू०) ।

२. अभ्याभिभूय (दू० पा०) ।

पिता-पुत्र का यह वार्तालाप आगे चलता है। पिता ब्राह्मण-संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर बातें करते हैं और दोनों पुत्र श्रमण-संस्कृति की भिषि पर चर्चा करते हैं। अन्त में पुरोहित को संसार को असारता और क्षणभंगुरता पर विश्वास पैदा हो जाता है और उसका मन संवेग से भर जाता है। वह अपनी पत्नी को समझाता है। पूर्ण विचार-विमर्श कर चारों (माता-पिता तथा दोनों पुत्र) प्रव्रजित हो जाते हैं।

यहाँ एक सामाजिक तथ्य का उद्घाटन हुआ है। उस समय यह राज्य का विधान था कि जिसके कोई उत्तराधिकारी नहीं होता उसको सम्पत्ति राजा की मानी जाती थी। भृगु पुरोहित का सारा परिवार दोषित हो गया। राजा ने यह बात सुनी। उसने सारी सम्पत्ति पर अधिकार करना चाहा। रानी कमलावती को यह मालूम हुआ और उसने राजा से कहा—“राजन्। वमन को खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती। आप ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हैं यह वमन पीने जैसा है।” (श्लोक ३७-३८)

रानी ने भोगों की असारता पर पूर्ण प्रकाश डाला। राजा के मन में विराग जाग उठा। राजा-रानी दोनों प्रव्रजित हो गए।

इस प्रकार यह अध्ययन ब्राह्मण-परम्परा तथा श्रमण-परम्परा की मौलिक मान्यताओं की चर्चा प्रस्तुत करता है। निर्युक्तिकार ने राजा के लिए ‘सीमंधर’ नाम का भी प्रयोग किया है।^१ व्युत्पत्तिकार ने ‘इषुकार’ को राज्य-कालीन नाम और ‘सीमंधर’ को राजा का मौलिक नाम होने की कल्पना की है।^२

बौद्ध-साहित्य के हस्तिपाल जातक (५०६) में कुछ परिवर्तन के साथ इस कथा का निरूपण हुआ है।

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, शाला ३७३ :

सीमंधरो य शाला.....।

२—बृहद् वृत्ति, पत्र ३६४ :

अत्र वेपुकारमिति राज्यकालनाम्ना सीमन्धरमेति मौलिकनाम्नेति सम्भावयामः ।

६—ते कामभोगेषु असज्जमाणा
माणुस्सएसुं जे यावि दिव्वा ।
मोक्खाभिकंखी अभिजायसइडा
तायं उवागम्म इमं उदाहु ॥

७—असायं दट्ठु इमं विहारं
बहुअन्तरायं न य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि न रइं लहामो
आमन्तयामो चरिस्सामु मोणं ॥

८—अहं तायगो तत्थ मुणीण तंसि
तवस्स वाघायकरं वयासी ।
इमं वयं वेयविओ वयन्ति
जहा न हांई असुयाण लोगो ॥

९—अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे
पुत्ते पडिट्ठप्यं गिहंसि जाया ! ।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहि
'आरण्णाहा हाहु मुणी पसत्था' ॥

१०—सोयग्गिणा आयगुणिण्खणेणं
माहाणिला पज्जलणाहिणं ।
संतत्तभावं परित्तप्यमाणं
लोलुपमाणं बहुधा बहुं च ॥

११—पुरोहिंयं तं कमसोऽणुणन्तं*
निमंतयन्तं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहि* चेव
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ॥

तौ काम-भोगेष्वासज्जन्तौ
माणुष्यकेषु ये चापि दिव्याः ।
मोक्षाभिकाङ्क्षिणावभिजात-श्रद्धो
तातमुपागम्येदमुदाहरताम् ॥

अशाश्वतं दृष्ट्वेमं विहारं
बह्वन्तरायं न च दीर्घमायुः ।
तस्माद् गृहे न रतिं लभावहे
आमंत्रयावहे चरिष्यावो मोनम् ॥

अथ तातकस्तत्र मुन्योस्तयोः
तपसो वधाघातकरमवादीनु ।
इमां वाचं वेद-विदो वदन्ति
यथा न भवत्यसुतानां लोकः ॥

अधोत्य वेदान् परित्यज्य विप्रान्
पुत्रान् प्रातिष्ठाय गृहे जातो ! ।
भुक्त्वा भोगान् मह स्त्रीभिः
आण्ड्यको भलं मुनी प्रतस्तौ ॥

शोकार्तिना आत्म-गुणेभ्यस्तेन
मोहानिलान् प्रज्वलनाधिकेन ।
संतप्त-भावं परित्यज्यमानं
लोलुप्यमानं बहुधा बहुं च ॥

पुरोहितं तं कमशोऽनुनयन्तं
निमंत्रयन्तं च सुतो धनेन ।
यथाक्रमं काम-गुणैश्चैव
कुमारको तो प्रसमोक्ष्य वाक्यम् ॥

६—उनकी मनुष्य और देवता सम्बन्धी
काम-भोगों में आसक्ति जाती रही । मोक्ष की
अभिलाषा और धर्म की श्रद्धा से प्रेरित होकर
पिता के पास आएं और इस प्रकार कहने
लगे—

७—“हमने देखा है कि यह मनुष्य-जीवन
अनित्य है, उसमें भी विघ्न बहुत हैं और आयु
योही है । इसलिए घर में हमें कोई आनन्द नहीं
है । हम मुनि-पण्यों को स्वीकार करने के लिए
आपकी अनुमति चाहते हैं ।”

८—उनके पिता ने उन कुमार मुनियों
को तपस्या में बाधा उत्पन्न करने वाली बातें
कही—“पुत्रों ! क्यों को जानने वाले इस
प्रकार कहते हैं कि जिनको पुत्र नहीं होता
उनकी गति नहीं होती ।

९—“पुत्रों ! इसलिए वेदों को पढ़ो ।
ब्राह्मणों को भोजन कराओ । मित्रों के साथ
भोग करो । पुत्रों को उत्पन्न करो । उनका
विवाह कर, घर का भार माँ पर फिर अग्रथात्मा
प्रशस्त मान हो जाना ।”

१०-११—दासों कुमारों ने मोक्ष-विचार
पूर्वक उन पुरोहित को जिसका मन और
परी, आत्म-मग्न रूपी धर्म और माह रूपी
पवन से अत्यन्त प्रचलित शास्त्राग्नि से, संतप्त
और परितप्त हो रहा था, जिसका हृदय
वियोग की आशंका से अतिशय खिन्न हो
रहा था, जो एक-एक कर अपना अभिप्राय
अपने पुत्रों को समझा रहा था और उन्हें धन
और क्रम-शः काम-भोगों का निमंत्रण दे
रहा था—ये वाक्य कहे—

१. परिदृष्ट्य (६० पा०) ।

२. पञ्चा वणप्यवेसं पसत्थं (६०) ।

३. निजितं (उ) ।

४. कामगुणेषु (६० पा०) ।

१२—वेया अहोया न भवन्ति ताणं
भुत्ता दिया नित्ति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं
को णाम ते अणुमन्थेज्ज^१ एयं ॥

१३—खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया
खाणी अणत्याण उ कामभोगा ॥

१४—परिव्वयन्ते अणियत्तकामे
अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अन्नपमत्ते धणमेसमाणे
पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च ॥

१५—इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि
इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं
हरा हरंति त्ति कहं पमाए ? ॥

१६—धणं पभूयं सह इत्थियाहिं
सयणा तहाकामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो
तं सब्ब साहीणमिहेव तुब्भं ॥

१७—धणेण किं धम्मधुराहिगारे
सयणेण वा कामगुणेहिं जेव ।
समंणा मंविस्सामु गुणोह्वारी
बहिंविहारा अभिगम्म मिकखं ॥

वेदा जघोता न भवन्ति त्राणं
भोजिता द्विजा नयन्ति लभस्सतमसि ।
कात्ताएव पुत्रा न भवन्ति त्राणं
को नाम तच्चानुमन्थेतेतत् ॥

क्षणमात्र-सोख्या बहुकाल-दुःखाः ।
प्रकाम-दुःखा अनिकाम-सोख्याः ।
संसार-मोक्षस्य विपक्ष-भूयाः
खानिरनर्थानां तु काम-भोगाः ॥

परिव्रजन्निवृत्त-कामः
अङ्गि च रात्रौ परितप्यमानः ।
अन्य-प्रसक्तो धनमेव यन्
प्राप्नोति मृत्युं पुरुषो जरां च ॥

इदं च मेऽस्ति इदं च नास्ति
इदं च मे कृत्स्नमिदमकृत्स्नम् ।
तमेवमेवं लालप्यमानं
हरा हरन्तीति कथं प्रमादः ? ॥

धनं प्रभूतं सह स्त्रीभिः
स्वजनास्तथा काम-गुणाः प्रकामाः ।
तपः कृते तप्यन्ति यत्थ लोकाः
तत् सर्वं स्वाधीनमिहेव युक्त्योः ॥

धनेन किं धर्म-धुराधिकारे
स्वजनेन वा कामगुणैश्चैव ।
धर्मणो भविष्यान्मो गुणोह्वारिणो
बहिर्विहारकमभियन्त्य-भिक्षात् ॥

१२—“वेद पढ़ने पर भी वे भाग नहीं होते । बाहुओं को भोजन कराने पर वे नरक में ले जाते हैं । औरस पुत्र भी त्राण नहीं होते । इसलिए आपने जो कहा उसका अनुमोदन कौन कर सकता है ?

१३—“ये काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल दुःख देने वाले हैं, बहुत दुःख और थोड़ा सुख देने वाले हैं, संसार-मुक्ति के विरोधी हैं और अनर्थों की खान हैं ।

१४—“जिते कामनाओं से मुक्ति नहीं मिली वह पुरुष अतृप्ति की अग्नि से संतप्त होकर दिन-रात परिश्रमण करता है । दूसरों के लिए प्रसन्न होकर धन की खोज में लग्न हुआ वह जरा और मृत्यु को प्राप्त होता है ।

१५—“यह मेरे पास है और यह नहीं है, यह मुझ करना है और यह नहीं करना है— इस प्रकार भ्रष्टा बकवास करते हुए पुरुष को उठाने वाला (काल) उठा लेता है । इस स्थिति में प्रमाद कैसे किया जाय ?”

१६—“जिसके लिए लोग तप किया करते हैं वह सब कुछ—प्रचुर धन, स्त्रियों, स्वजन और इन्द्रियों के विषय नुहें यहीं प्राप्त हैं फिर किसलिए तुम श्रमण होना चाहते हो ?”—पिता ने कहा ।

१७—पुत्र बोले—“पिता ! जहाँ वर्रं की धुरा को वहन करने का अधिकार है वहाँ धन, स्वजन और इन्द्रिय-विषय का क्या प्रयोजन है ? कुछ भी नहीं । इस गुण-समूह से सम्पन्न श्रमण होंगे, प्रशिक्षण-मूक होकर गाँवों और नगरों में बिहार करने वाले और भिक्षा लेकर जीवन चलाने वाले ।”

१८—जहा य अग्गी अरणीउऽस्तो
खीरे धयं तेवळ महातिलेषु ।
एमेव जाया ! सरीरंसि सत्ता
संमुच्छई नासइ नावचिडे ॥

१९—नो इन्द्रियग्गेज्ज अमुत्तभावा
अमुत्तभावा वि य होइ निब्बो ।
अज्झक्यहेउं निययऽस्स बन्धो
संसारहेउं च वयन्ति बन्धं ॥

२०—जहा वयं धम्ममजाणमाणा
पावं पुरा कम्ममकासि मोहा ।
ओरुज्झमाणा परिरक्खियन्ता
तं तेव भुज्जो वि समायारामो ॥

२१—अव्वाहयंमि लोअमि
सव्वओ परिवारिए ।
'अमोहाहि पडन्तीहि'
गिहंसि न रइ लभे ॥

२२—केण अव्वाहओ लोगो ?
केण वा परिवारिओ ? ।
का वा अमोहा वुत्ता ?
जाया ! चित्तावरो हुमि ॥

२३—मच्चुणाऽव्वाहओ लोगो
जराए परिवारिओ ।
अमोहा रयणी वुत्ता
एवं ताय ! वियाणह ॥

यथा वाग्निररणितोऽस्तु
आरे धृतं तलं महातिलेषु ।
एवमेव जातो ! शरीरे सत्त्वाः
संमुच्छन्ति नश्यन्ति नावतिष्ठन्ते ॥

नो इन्द्रिय-प्राप्तोऽमूर्त-भावात्
अमूर्त-भावावपि च भवति नित्यः ।
आध्यात्म-हेतुनियतोऽस्य बन्धः
संसार-हेतुं च वदन्ति बन्धम् ॥

यथाऽऽर्वा धर्ममजानानो
पावं पुरा कर्माकाण्डं मोहान् ।
अवरुध्यमानो परिरक्ष्यमाणो
तन्नेव भूयोऽपि समाचरावः ॥

अभ्याहते लोके
सर्वतः परिवारिते ।
अमोघाग्निः पतन्तोभिः
गृहे न रतिं लभावहे ॥

केनाभ्याहृतो लोकः ?
केन वा परिवारितः ? ।
का वाऽमोघा उक्ताः ?
जातो ! चिन्तापरो भवामि ॥

मुत्सुयान्माहृतो लोकः
जरया परिवारितः ।
अमोघा रात्रय उक्ताः
एवं तात ! विजानीहि ॥

१८—“पुत्रो ! जिस प्रकार अरणी में
अविद्यमान आग उत्पन्न होती है, दूध में घी
और तिल में तेल पैदा होता है, उसी प्रकार
शरीर में जीव उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो
जाते हैं । शरीर का नाश हो जाने पर उनका
अस्तित्व नहीं रहता” —पिता ने कहा ।

१९—कुमार बोले—“पिता ! आत्मा
अमूर्त है इसलिए यह इन्द्रियों के द्वारा नहीं
जाना जा सकता । यह अमूर्त है इसलिए नित्य
है । यह निश्चय है कि आत्मा के आन्तरिक
दोष ही उसके बन्धन के हेतु हैं और बन्धन ही
समारा का हेतु है—ऐसा कहा है ।

२०—“हम धर्म को नहीं जानते थे तब
घर में रहे, हमारा पालन होता रहा और
मोह-वश हमने पाप-कर्म का आचरण किया ।
किन्तु अब फिर पाप-कर्म का आचरण नहीं
करेंगे ।

२१—“यह लोक पीड़ित हो रहा है, चारों
ओर से घिरा हुआ है, अमोघा आ रही है ।
इस स्थिति में हमें मुख नहीं मिल रहा है ।”

२२—“पुत्रो ! यह लोक किससे पीड़ित
है ? किससे घिरा हुआ है ? अमोघा किस
कहा जाता है ? मैं जानने के लिए चिन्तित
हूँ” —पिता ने कहा ।

२३—कुमार बोले—“पिता ! आप जानें
कि यह लोक मुत्सु से पीड़ित है, जरा से घिरा
हुआ है और रात्रि को अमोघा कहा जाता है ।

उसुयारिज्जं (इषुकारीय)

१७६

अभ्ययन १४ : श्लोक २४-२६

२४—जा जा वच्चइ रयणी
न सा पडिनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स
अफला जन्ति राइओ ॥

या या व्रजति रजनी
न सा प्रतिनिवर्तते ।
अधमं कुर्वाणस्य
अफला यान्ति रात्रयः ॥

२४—“जो-जो रात बीत रही है, वह
लोट कर नहीं आती । अधर्म करने वाले की
रात्रियाँ निष्फल चली जाती हैं ।

२५—जा जा वच्चइ रयणी
न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स
सफला जन्ति राइओ ॥

या या व्रजति रजनी
न सा प्रतिनिवर्तते ।
धर्मं च कुर्वाणस्य
सफला यान्ति रात्रयः ॥

२५—“जो-जो रात बीत रही है वह
लोट कर नहीं आती । धर्म करने वाले की
रात्रियाँ सफल होती हैं ।”

२६—एगओ संवसित्ताणं
दुहओ सम्मतसंजुया ।
पच्छा जाया ! गमिस्सामो
भिक्षवमाणा कुले कुले ॥

एकतः समूह
द्वये सम्यक्त्व-संयुताः ।
पश्चाज्जातो ! गमिष्यामि
भिक्षमाणाः कुले कुले ॥

२६—“पुत्रो ! पहले हम सब एक साथ
रह कर सम्यक्त्व और व्रतों का पालन करें
फिर पुनः जायें । भिक्षा देने वाले जाते हैं बाद घर-
घर से भिक्षा लेते हुए विहार करेंगे” — पिता
ने कहा ।

२७—जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं
जस्स वऽत्थि पलायणं ।
जो जाणे न मरिस्सामि
सो हु कंखे सुए सिया ॥

यस्यास्ति मृत्युना सख्यं
यस्य वास्ति पलायनम् ।
यो जानीते न मरिष्यामि
स खलु काङ्क्षति श्वः स्थानम् ॥

२७—पुत्र बोले—“पिता ! कल की इच्छा
वही कर सकता है, जिसको मृत्यु के साथ
मैत्री हो, जो मौत के मुँह से बच कर
पलायन कर सके और जो जानता हो— मैं
नहीं मरूँगा ।

२८—अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो
जहि पवन्ना न पुणवभवामो ।
अणागयं नेव य अत्थि किचि
सद्धाखम्मं णे विणहत्तु रागं ॥

अद्यैव धर्मं प्रतिपद्यामहे
यं प्रपन्ना न पुनर्भविष्यामः ।
अनागतं नैव वास्ति किञ्चित्
श्रद्धाश्रमं नो विनीय रागम् ॥

२८—“हम आज ही उस मुनि-धर्म को
स्वीकार कर रहे हैं, जहाँ पहुँच कर फिर जन्म
लेना न पड़े । भोग हमारे लिए अप्राप्त नहीं
है— हम उन्हें अनेक बार प्राप्त कर चुके हैं ।
राग-भाव को दूर कर श्रद्धा पूर्वक श्रेय की
प्राप्ति के लिए हमारा प्रयत्न युक्त है ।”

२९—पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो
वासिहि ! भिक्षायरियाइ कालो ।
साहाहि रुक्खो लहए समाहि
छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ॥

प्रहीण पुत्रस्य खलु नास्ति वासः
वासिहि ! भिक्षाचर्यायाः कालः ।
शाखाभिर्भुंक्तो लभते सर्वाधि
छिन्नाभिः शाखाभिस्तमेव स्थानम् ॥

२९—“पुत्रों के चले जाने के बाद मैं
घर में नहीं रह सकता । हे वासिहि ! अब
मेरे भिक्षाचर्या का काल आ चुका है । कुछ
शाखाओं से सर्वाधि को प्राप्त होता है । उनके
कट जाने पर लोग उसे टूट कहते हैं ।

३०—पंखाविहृणो व्व^१ जहेह^२ पक्खी
भिच्चाविहृणो^३ व्व^४ रणे नरिन्दो ।
विबन्नसारो वणिओ व्व पोए
पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि ॥

३१—सुसंभिया कामगुणा इमे ते
संपिण्डिया अगारसापभूया^१ ।
भुंजामु ता कामगुणे पंगांमं
पच्छा गमिस्सामु पहाणमगं ॥

३२—भुत्ता रसा भोइ^१ ! जहाइ णे वओ
न जीवियइ पजहामि भोए ।
लामं अलामं च सुहं च दुःखं
संविक्खमाणो^२ चरिस्सामि^३ भोणं ॥

३३—मा ह तुमं सोयरियाण सम्भरे
जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी ।
भुंजाहि भोगाइ ए समानं
दुःखं खु भिक्खायरियाविहारो ॥

३४—जहा य भोइ^१ ! तण्यं भुयंगो^२
निम्भोरयणि हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमे^३ जाया पयहन्ति भोए
‘ते हं’^४ कहं नाणुगमिस्समेक्को ? ॥

पक्ष-विहीन इव यथेह पक्षी
भृत्य-विहीन इव रणे नरैन्द्रः ।
विपन्न-सारो वणिगिव पोते
प्रहीण-पुत्रोऽस्मि तच्चाग्रहमपि ॥

सुसंभूताः काम-गुणा इमे ते
सम्पिण्डिता अग्र-रस-प्रभूताः ।
भुंजीवहि तावत् काम-गुणान् प्रकामं
पञ्चात् तन्निष्ठयावः प्रधान-भागम् ॥

भुक्ता रस भवति ! जहाति नो वयः
न जीवितार्थं प्रजहामि भोगान् ।
लाभमलामं च सुखं च दुःखं
संबोधमानश्चरिष्यामि भोगम् ॥

मा खलु त्वं सोदयाणां स्मार्योः
जीणं इव हंसः प्रतिश्रोतोगांभी ।
भुंक्ष्व भोगान् मया समं
दुःखं खलु भिक्षाचर्यो-विहारः ॥

यथा च भवति ! तनुजां भुजंगः
निर्माधनो हित्वा पयंति मुक्तः ।
एवमेतो जातो प्रजहीतो भोगान्
तो अहं कथं नानुगमिष्याम्येकः ? ॥

३०—“विना पंख का पक्षी, रण-भूमि में
सेना रहित राजा और जल-पीत पर धन-रहित
व्यापारी जंसा असहाय होता है, पुत्रों के चले
जाने पर मैं भी वंचा ही हो जाता हूँ ।”

३१—वाशिष्ठी ने कहा—“ये सुसंस्कृत
और प्रचुर शृंगार-रस से परिपूर्ण इन्द्रिय-
वियय, जो तुम्हें प्राप्त हैं, उन्हें अभी हम सब
भोगें । उसके बाद हम मोक्ष-भाग को स्वीकार
करेंगे ।”

३२—पुरोहित ने कहा—“हे भवति !
हम रसों को भोग चुके हैं, वय हमें छोड़ते
बला जा रहा है । मैं असंयम-जीवन के लिए
भोगों को नहीं छोड़ रहा हूँ । लाभ-अलाभ
और सुख-दुःख को समष्टि से देखता हुआ
मन-धर्म का आचरण करूँगा ।”

३३—वाशिष्ठी ने कहा—“प्रतिश्रोत में
बहने वाले बृद्ध हैंस की तरह तुम्हें पीछे धपने
बन्धुओं को याद करना न पड़े, इसलिए मेरे
साथ भोगों का सेवन करो । यह भिक्षाचर्या
और ग्रामानुग्राम विहार सचमुच दुःखदायी है ।”

३४—“हे भवति ! जैसे साँप अपने शरीर
की केशुली को छोड़ मुक्त-भाग से बल्ला है
वैसे ही पुत्र भोगों को छोड़ कर चले जा रहे
हैं । पीछे मैं अकेला क्यों रहूँ, उनका अनुगमन
क्यों न करूँ ?

१. व (उ, ऋ०) ।

२. जहेव (अ, उ, ऋ०) ।

३. भिच्चाविहृणो (ऋ०) ; भिच्छुविहृणो (ऋ०) ।

४. व (उ, ऋ०) ।

५. अग्रसंयभूया (उ, ऋ०) ।

६. होइ (ऋ०) ।

७. संविक्खमाणो (ऋ०, उ०) ।

८. चरिस्सामि (अ, ऋ०) ; चरिस्सामि (ऋ०) ।

९. भोणि (ऋ० पा०) ।

१०. भुयंगसो (अ, ऋ०) ।

११. इमेति (ऋ० पा०) ।

१२. ताहं (उ, ऋ०) ; वोहं (अ) ।

३५—छिन्दितु जालं अबलं व रोहिया
मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
घोरेयसीला तवसा उदारा
वीरा हु भिक्षायरियं चरन्ति ॥

छिन्त्वा जालमबलमिव रोहिताः
मत्स्या यथाकाम-गुणान् प्रहाय ।
घोरेय-शीलास्तपसा उदाराः
वीराः खलु भिक्षाचर्यां चरन्ति ॥

३५—“जैसे रोहित मछड़ जबरित जाल को काट कर बाहर निकल जाते हैं वैसे ही उठाए हुए भार को बहुत करने वाले प्रधान तपस्वी और धीर पुरुष काम-भोगों को छोड़ कर भिक्षाचर्या को स्वीकार करते हैं ।”

३६—नहेव कुंचा समइकमन्ता
तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ।
पलेन्ति पुत्ता य पई य मज्झं
‘ते हं’ कहं नानुगमिस्समेका ? ॥

नभसीव क्रौंचाः समतिक्रामन्तः
तसानि जालानि दलित्त्वा हंसाः ।
परियान्ति पुत्रो च पतिश्च मम
तानहं कथं नानुगमिष्याम्येका ? ॥

३६—वाशिष्ठी ने कहा—“जैसे क्रौंच पक्षी और हंस बहेलियों द्वारा बिछाए हुए जालों को काट कर आकाश में उड़ जाते हैं वैसे ही मेरे पुत्र और पति जा रहे हैं । पीछे मैं अकेली क्यों रहूँ ? उनका अनुगमन क्यों न करूँ ?”

३७—पुरोहिंयं तं ससुयं सदारं
सोच्चाऽभिनिकल्मसं पहाय भोगे ।
कुटुम्बसारं विजुलुतं तं
रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥

पुरोहितं तं ससुतं सदारं
श्रुत्वाऽभिनिकल्मसं प्रहाय भोगान् ।
कुटुम्ब-सारं विपुलोत्सवं तद्
राजायमभिक्षवं समुवाच देवी ॥

३७—पुरोहित अपने पुत्र और पत्नी के साथ भोगों को छोड़ कर प्रव्रजित हो चुका है, यह सुन राजा ने उसके प्रचुर और प्रधान धन-धान्य आदि को लेना चाहता तब महारानी कमलावती ने बार-बार कहा—

३८—वन्तासी पुरिसो रायं !
न सो होइ पसंसिओ ।
माहणेण परिच्छत्तं
धणं आदाउमिच्छसि ॥

वान्तासी पुरुषो राजन् !
न स भवति प्रशंसनीयः ।
ब्राह्मणेन परित्यक्तं
धनमावाप्तुमिच्छसि ॥

३८—“राजन् ! ब्रह्मण होने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती । तुम ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हो—यह क्या है ?

३९—सब्बं जगं जइ तुहं
सब्बं वावि धणं भवे ।
सब्बं पि ते अपज्जत्तं
नेव ताणाय तं तव ॥

सर्वं जगद् यदि तव
सर्वं वाचि धनं भवेत् ।
सर्वमपि ते अप्रयोज्यं
नैव त्राणाय तत्सर्व ॥

३९—“यदि सम्भूता जगत् तुम्हें मिल जाए अथवा सम्भूता धन तुम्हारा हो जाए तो भी वह तुम्हारी इच्छा-पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होगा और वह तुम्हें त्राण भी नहीं दे सकेगा ।

४०—वरिहिसि रायं ! जवा तथा वा
मनोरसे कामगुणे पहाय ।
एको द्व धम्मो नरदेव ! ताणं
न विज्झई अन्तमिहेह किञ्चि ॥

वरिष्यसि राजन् ! कस्य तस्य वा
मनोरसस्य काम-गुणस्य प्रहाय ।
एकः खलु धर्मो नरदेव ! त्राणं
न विजिगीष्यसिहेह किञ्चित् ॥

४०—“राजन् ! इन मनोरस काम-भोगों को छोड़ कर जब कभी मरना होना है नरदेव ! एक धर्म ही त्राण है । उसके सिवाय कोई दूसरी वस्तु त्राण नहीं दे सकती ।

१. ताहं (द, ५०) ; तोहं (अ) ।

२. जहाय (५०) ।

४१—ताहं रमे पक्षिणि पंजरे वा
सताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं ।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा
परिग्गहारम्भनियत्तदोसा ॥

४२—दवग्गिणा जहा रणे
डज्झमाणेसु जन्तुसु ।
अन्ते सत्ता पमोयन्ति
रागद्दोसवसं गया ॥

४३—एवमेव वयं मूढा
कामभोगेसु मुच्छिन्ना ।
डज्झमाणं न वुज्झामो
रागद्दोसग्गिणा जगं ॥

४४—भोगे भोक्ता वमिता य
लुभूयविहारिणे ।
आमोयमाणा गच्छन्ति
दिया कामकमा इव ॥

४५—इमे य बद्धा^१ फन्दन्ति
मम हृत्यज्जमागया ।
वयं च सत्ता कामेसु
भविस्सामो जहा इमे ॥

४६—सामिसं कुललं दिस्स
वज्झमाणं निरामिसं ।
आमिसं सव्वमुज्झिता
विहरिस्सामि निरामिसा ॥

ताहं रमे पक्षिणी पंजर इव
छिन्न-सन्ताना चरिष्यामि मौनम् ।
अकिंचना ऋजु-कृता निरामिषा
परिग्रहारम्भ-दोष-निवृत्ता ॥

दवारिना यथारण्ये
बहुमानेषु जन्तुषु ।
अन्ये सत्त्वाः प्रमोदन्ते
राग-द्वेष-वशं गताः ॥

एवमेव वयं मूढाः
काम-भोगेषु मुच्छिन्नाः ।
बहुमानं न बुध्यामहे
राग-द्वेषाग्निना जगन् ॥

भोगान् भुक्त्वा वाक्त्वा च
लुभूत-विहारिणः ।
आमोदमाना गच्छन्ति
द्विजाः काम-क्रमा इव ॥

इमे च बद्धाः स्पर्शन्ते
मम हस्तमायं ! आगताः ।
वयं च सक्ताः कामेषु
अविद्याभोगे यथेमे ॥

सामिषं कुललं दृष्ट्वा
बाध्यमानं निरामिषम् ।
आमिषं सर्वमुज्झिता
विहरिष्यामि निरामिषा ॥

४१—“जैसे पक्षिणी पिण्ड में आनन्द नहीं
मानती, वैसे ही मुझे इस बन्धन में आनन्द नहीं
मिल रहा है । मैं स्नेह के जाल को तोड़ कर
अकिंचन, सन्न क्रिया वाली, विषय-वामना
से दूर और परिग्रह एवं हिंसा के दोषों से मुक्त
हो कर मनि-धर्म का आचरण करूँगी ।

४२—“जैसे दवारि लगे हुए हैं, अरण्य
में जीव-जन्तु जल रहे हैं, उन्हें देव राग-द्वेष
क वशीभूत हो कर दूसरे जीव प्रमदित होत हैं,

४३ “उसी प्रकार काम-भोगों में मुच्छिन्न
हो कर हम मूढ़ लोग यह नहीं समझ पाते कि
यह समूचा संसार राग-द्वेष की अग्नि में जल
रहा है ।

४४ - “विदेकी पुत्र्य भोगों को भोग कर
फिर उन्हें छोड़ बाय की तरह अप्रतिबद्ध-
विहार करती है और वे स्वेच्छा में विचरण
करत वाले पक्षियों की तरह प्रसन्नतापूर्वक
स्वतंत्र विहार करते हैं ।

४५—“आयं ! जो काम-भोग अपने हाथों
में आए हुए हैं और जिनको हमने नियंत्रित
कर रखा है, वे कद-फाँद कर रहे हैं । हम
कामनाधी में आसक्त बने हुए हैं किन्तु अब
हम भी वैसे ही होंगे, जैसे कि अपनी पत्नी
और पुत्रों के साथ भग्न हुए हैं ।

४६—“जिस गीध के पास मांस होता है
उस पर दूसरे पक्षी झपटते हैं और जिसके पास
मांस नहीं होता उस पर नहीं झपटते—यह
देख कर मैं आमिष (धन, धान्य आदि) को
छोड़, निरामिष हो कर विचरूँगी ।

१. एवमेव (वृ०) ।

२. लब्धा (वृ०) ।

४७—गिद्धोवमे उ नच्चाणं
कामे संसारवड्ढणे ।
उरगो सुवण्णपासे व^१
संक्रमाणो तणुं चरे ॥

गुध्रोपमास्तु ज्ञात्वा
कामान् संसार-वर्धनान् ।
उरगः सौपर्ण्य-पाशवै इव
शङ्क्रमानस्तनु चरेत् ॥

४७—“गीध की उपमा से काम-भोगों को
संसार-वर्धक जान कर मनुष्य को इनसे इसी
प्रकार शक्ति होकर चलना चाहिए, जिस
प्रकार गरुड के सामने सौपर्ण्य शक्ति होकर
चलता है ।

४८—नागो व्व बन्धनं छित्ता
अप्पणो वसहिं वए ।
एयं पत्थं महारायं !
उस्यारि त्ति मे सुयं ॥

नाग इव बन्धनं छित्त्वा
आत्मनो वसति व्रजेत् ।
एतत्पथ्यं महाराज !
इषुकार ! इति मया श्रुतम् ॥

४८—“जैसे बन्धन को तोड़ कर हाथी
अपने स्थान (बिष्णुघाटी) में चला जाता है,
वैसे ही हमें अपने स्थान (मोक्ष) में चले जाना
चाहिए । हे महाराज इषुकार ! यह पथ है,
इसे मैंने ज्ञानियों से सुना है ।”

४९—चइत्ता विउलं रज्जं^२
कामभोगे य दुच्चए ।
निव्विसया निरामिसा
निन्नेहा निप्परिगहा ॥

त्यक्त्वा विपुलं राज्यं
काम-भोगांश्च दुस्त्यजान् ।
निर्विषयो निरामिषो
निःस्नेहो निष्परिग्रहो ॥

४९—राजा और रानी विपुल राज्य
और दुष्पथ्य काम-भोगों को छोड़ निर्विषय,
निरामिष, निःस्नेह और निष्परिग्रह हो गए ।

५०—सम्मं धम्मं वियाणित्ता
वेच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झहक्खायं^३
घोरं घोरपरक्कमा ॥

सम्यग् धर्मं विज्ञाय
त्यक्त्वा काम-गुणान् वरान् ।
तपः प्रगृह्य यथाख्यातं
घोरं घोर-पराक्रमी ॥

५०—धर्म को सम्यक् प्रकार से जान,
आकर्षक भोग-विलास को छोड़, वे तीर्थङ्कर के
द्वारा उपदिष्ट घोर तपस्वधर्मा को स्वीकार कर
समय में घोर पराक्रम करने लगे ।

५१—एवं ते कमसो बुद्धा
सव्वे धम्मपरायणा^४ ।
जम्ममच्चुभउव्विग्गा
दुक्खस्सन्तगवेसिणो ॥

एवं ते क्रमशो बुद्धाः
सर्व धर्म-परायणाः ।
जन्म-मृत्यु-भयोद्दिग्नाः
दुःखस्थान्त-गवेक्षिणः ॥

५१—इस प्रकार वे सब क्रमशः बुद्ध
हो कर, धर्म-परायण, जन्म और मृत्यु के भय
से उद्दिग्ण बन गए तथा दुःख के अन्त की खोज
में लग गए ।

१. सुवण्णपासेव्व (ड, व०, ख०) ; सुवण्णपासित्ता (घ०) ; सुवण्णपासिव्वा (झ०) ।

२. रट्ठं (व०, व०) ; रज्जं (व० पा०) ।

३. ० अहक्खायं (व० पा०) ।

४. ० परंपरा (व० पा०) ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

१८४

अध्ययन १४ : श्लोक ५२-५३

५२—सासणे विगयमोहानं
पुर्व्वि भावणभाविता ।
अचिरेणैव कालेण
दुःखस्सन्तमुवागया ॥

५३—राया सह देवीए
माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चेव
सव्वे ते परिनिब्बुड^१ ॥
—त्ति बेमि ॥

शासने विगत-मोहानं
पूर्व्व भावना-भाविताः ।
अचिरेणैव कालेन
दुःखस्यान्तमुपगताः ॥

राजा सह देव्या
ब्राह्मणश्च पुरोहितः ।
ब्राह्मणी वारको चैव
सर्वे ते परिनिर्बुताः ॥
—इति ब्रवीमि ॥

५२-५३—जिनकी आत्मा पूर्व-जन्म में
कुशल-भावना से भावित थी वे सब—राजा,
रानी, ब्राह्मण पुरोहित, ब्राह्मणी और दोनों
पुरोहित कुमार अर्हत् के शासन में आकर दुःख
का अंत पा गए—मुक्त हो गए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. परिनिब्बुड (मृ०) ; परिनिब्बुडि (भ०) ; परिनिब्बुए (कृ०) ।

पनरसमं अङ्गवर्णनं :
सभिक्खुयं

पंचदश अध्ययन :
सभिक्षुक

निर्युक्तिकार ने भिक्षु के लक्षण इस प्रकार बतलाए हैं^१ —

भिक्षु वह है जो राग-द्वेष को जीत लेता है ।

भिक्षु वह है जो मन, वचन और काया—इन तीनों दण्डों में सावधान रहता है ।

भिक्षु वह है जो न सावध कार्य करता है, न दूसरों से करवाता है और न उसका अनुमोदन करता है ।

भिक्षु वह है जो ऋद्धि, रस और सात्ता का गौरव नहीं करता ।

भिक्षु वह है जो मायावी नहीं होता, जो निदान नहीं करता और जो सम्यग्दर्शी होता है ।

भिक्षु वह है जो विषयाओं से दूर रहता है ।

भिक्षु वह है जो आहार, भय, मैथुन और परिग्रह—इन चार संज्ञाओं को जीत लेता है ।

भिक्षु वह है जो कथायों पर विजय पा लेता है ।

भिक्षु वह है जो प्रमाद से दूर रहता है ।

भिक्षु वह है जो कर्म-बन्धन को तोड़ने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है ।

जो ऐसा होता है वह समस्त ग्रन्थियों का वेदन कर अजर-अमर पद को पा लेता है ।

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा २७८, २७९ : रागादोसा दंभा ओणा तद् गारवा ष सक्का य ।

विगाहानो सण्णाओ सुहं कसाया पमाया य ॥

पपाहं तु सुहाहं जे कल्लु भिरंति वप्पया रिसजो ।

ते भिन्नकम्मगंडी उच्चित्ति अथारमं ठाणं ॥

आयुर्वेद

इस अध्ययन में भिक्षु के लक्षणों का निरूपण है, इसलिए इसका नाम 'संभवसुख'—'संभिक्षु' रखा गया है। भिक्षु अकेला होता है। उसके न कोई मित्र होता है और न कोई शत्रु। वह सभी सम्बन्धों से विप्रयुक्त होता है। वह साधना करता है। वह अध्यात्म की कला को कर्मों जीविका-उपार्जन के लिए प्रयुक्त नहीं करता। वह सदा जितेन्द्रिय रहता है। (श्लोक १६)

जोवन मयाकुल है। उसके प्रत्येक चरण में भय ही भय है। भिक्षु अभय की साधना करता है। पहले-पहल वह भय को जीतने के लिए उपाश्रय में ही मध्य रात्रि में उठ कर अकेला हो कायोत्सर्ग करता है। दूसरी बार उपाश्रय से बाहर, तीसरी बार दूर घौराहे पर, चौथी बार शून्य-गृह में और अन्त में श्मशान में अकेला जा कायोत्सर्ग करता है। वह भय-मुक्त हो जाता है। अभय अहिंसा का परिपाक है। (श्लोक १४)

सुनि को प्रत्येक वस्तु याचित हो मिलती है। अयाचित कुछ भा नहीं मिलता। जो इच्छित वस्तु मिलने पर प्रसन्न और न मिलने पर अप्रसन्न नहीं होता वह भिक्षु है। भिक्षु के लिए सभी द्वार खुले हैं। कोई दाता देता है और कोई नहीं भी देता। इन दोनों स्थितियों में जो सम रहता है वह भिक्षु है। (श्लोक ११-१२)

सुनि सरस आहार भिक्षु पर उसकी प्रशंसा और नीरस भिक्षु पर उसकी गद्गार न करे। ऊँचे कुलों की भिक्षा करने के साथ-साथ प्रान्त कुलों से भी भिक्षा ले। भिक्षा में जो कुछ प्राप्त हो उसी में संतोष करने वाला भिक्षु होता है। (श्लोक १३)

सुनि अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए हीन-भाव से किसी के आगे हाथ नहीं पसारता। वह याचना में भी अपने आत्म-गौरव को नहीं खोता। बड़े व्यक्तियों को न वह चापलूसी करता है और न छोटे व्यक्तियों का तिरस्कार, न वह धनवानों की श्लाघा करता है और न निधनों की निन्दा। सबके प्रति उसका बर्ताव सम होता है। (श्लोक ६)

दशवैकालिक का दसवाँ अध्ययन 'संभवसुख' है। उसमें २१ श्लोक हैं। इस अध्ययन में १६ श्लोक हैं। उद्देश्य-साम्य होने पर भी दोनों के वर्णन में अन्तर है। कहीं-कहीं श्लोकों के पदों में शब्द-साम्य है। इस अध्ययन में प्रयुक्त भिक्षु के कई विशेषण नए हैं। इसके समय अध्ययन से भिक्षु की जीवन-यापन विधि का अर्थ से इति तक सम्यक् परिज्ञान हो जाता है।

इस अध्ययन में अनेक दार्शनिक तथा सामाजिक तथ्यों का संकलन हुआ है। आगम काल में कुछ श्रमण और ब्राह्मण मंत्र, धिक्किंसा आदि का प्रयोग करते थे। भगवान् महावीर ने जन-मुनि के लिए ऐसा करने का निषेध किया है।

वसन, विरेचन और धूमनेत्र—ये धिक्किंसा-प्रणाली के अङ्ग हैं। आयुर्वेद में प्रचलित 'पंचकर्म' की प्रक्रिया में प्रथम दो का महत्त्वपूर्ण स्थान है और आज भी इस प्रक्रिया से धिक्किंसा की जाती है। धूमनेत्र मसितष्क-सम्बन्धी रोगों का निवारण करने के लिए प्रयुक्त होता था। इसका उत्तरेख दशवैकालिक ३६ और सूत्रकृतांग २१४६७ में भी हुआ है।

सातवें श्लोक में अनेक विद्याओं का उल्लेख हुआ है। आजीवक आदि श्रमण इन विद्याओं का प्रयोग कर अपनी आजीविका चलाते थे। इससे लोगों में आकर्षण और विकर्षण—दोनों होते थे। साधना भंग होती थी। भगवान् ने इन विद्या-प्रयोगों से आजीविका चलाने का निषेध किया है।

पनरसमं अज्जयणं : पंचदश अध्यायन समिक्खुयं : समिक्खुम्

मूल

१—मोणं चरिस्सामि^१ समिच्च धम्मं
सहिण् उज्जुक्के नियाणच्छिन्ने ।
संथवं जहिज्ज अकामकामे
अन्नायएसी परिव्वए जे स भिक्खू॥

२—राआवयरं^२ चरेज्ज लाढे
विरए वेयवियाऽऽयरक्खिए ।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी
जे कम्महिचि^३ न मुच्छिए स भिक्खू॥

३—अक्कोसवहं विइत्तु धीरे
मुणी चरे लाढे निच्चमायगुत्ते ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥

४—पन्तं सयणासणं भइत्ता
सीउण्हं विविहं च दंसमसगं ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥

संस्कृत छाया

मोणं चरिष्यामि समेत्य धर्मं
सहितं ऋजुकृतः छिन्न-निदानः ।
संस्तवं जह्यावकाम-कामः
अज्ञातं परिप्रजेत् स भिक्षुः ॥

रात्र्युपरंतं चरेत् 'लाढे'
विरतो वेदविहास-रहितः ।
प्राज्ञोऽभिभूय सर्व-दशां
यः कल्मसन्तपि न मूर्च्छितः स भिक्षुः॥

आक्रोश-वधं चित्तिव्हा धीरः
मुनिश्चरेत् 'लाढे' नित्यमात्म-गुप्तः ।
अव्यग्र-मना असंप्रहृष्टः
यः कृत्स्नमध्यास्ते स भिक्षुः ॥

प्रान्तं शयनासनं भुक्त्वा
शीतोष्णं विविधं च दंश-मशकम् ।
अव्यग्र-मना असंप्रहृष्टः
यः कृत्स्नमध्यास्ते स भिक्षुः ॥

हिन्दी अनुबाव

१—'धर्म' को स्वीकार कर मुनि-व्रत का
आचरण करूँगा—जो ऐसा संकल्प करता
है, जो दूसरे भिक्षुओं के साथ रहता है,
जिसका अनुष्ठान ऋजु है, जो वासना के
संकल्प का छेदन करता है, जो परिचय का
त्याग करता है, जो काम-भोगों को अमिलाया
को छोड़ चुका है, जो तप आदि का परिचय
दिए बिना भिक्षा की खोज करता है, जो
अप्रतिबद्ध विहार करता है—वह भिक्षु है ।

२—जो रात्रि-भोजन या रात्रि-विहार
नहीं करता, जो निर्दोष आहार से जीवन-
यापन करता है, जो विरत, आगम को जानने
वाला और आत्म-रक्षक है, जो प्राज्ञ है, जो
परीषहों को जीतने वाला और सब जीवों को
आत्म-मुक्त्य समझने वाला है, जो किसी भी
वस्तु में मूर्च्छित नहीं होता—वह भिक्षु है ।

३—जो धीर मुनि कठोर बचन और
ताड़ना को अपने कर्मों का फल जान कर शांत
भाव से विचारण करता है, जो प्रशस्त है, जो
सदा आत्मा का संवरण किये रहता है, जिसका
मन आकुलता और हर्ष से रहित होता है, जो
सब कुछ सहन करता है—वह भिक्षु है ।

४—निकृष्ट शयन और आसन का सेवन
करके तथा सर्दों, गर्मियों, डांस और मच्छरों की
प्रास को सहन करके भी जिसका मन आकुलता
और हर्ष से रहित होता है, जो सब कुछ सहन
करता है—वह भिक्षु है ।

१. चरिस्सामो (वृ०) ।

२. रामोवरयं (वृ०) ; रात्रोवरयं (वृ० पा०) ।

३. कम्मि हि (अ, ङ, ञ०) ।

५—नो सक्कियमिच्छई न पूयं
नो वि य वन्दणं कुओ पसं ? ।
से संजए सुव्वए तवस्सी
सहिए आयवसेए स भिक्खू ॥

नो सत्कृतमिच्छति न पूजां
नो अपि च वन्दनं कुतः प्रशंसा ? ।
स संयतः सुव्रतस्तपस्वी
सहित आत्म-गवेयकः स भिक्षुः ॥

५—जो सत्कार, पूजा और वन्दना की
इच्छा नहीं करता वह प्रशंसा की इच्छा कैसे
करेगा ? जो संयत, सुव्रत, तपस्वी, दूसरे
भिक्षुओं के साथ रहने वाला और आत्म-गवेयक
है—वह भिक्षु है ।

६—जेण पुण जहाइ जीवियं
मोहं वा कसिणं नियच्छई ।
नरनारि पजहे सया तवस्सी
न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ॥

येन पुनर्जहाति जीवितं
मोहं वा कृत्स्नं नियच्छति ।
नर-नारि प्रजह्यान् सदा तपस्वी
न च कुतूहलमुपैति स भिक्षुः ॥

६—जिसके संयोग मात्र से संयम-जीवन
छूट जाय और समग्र मोह से बंध जाए कैसे
स्त्री या पुरुष की संगति का जो त्याग करता
है, जो सदा तपस्वी है, जो कुतूहल नहीं
करता—वह भिक्षु है ।

७—छिन्नं सरं भोमं अन्तलिक्खं
सुमिणं लक्खणदण्डवत्पुविज्जं ।
अंगवियारं सरस्स विजयं
जो विज्जाहिं न जीवइ स भिक्खू ॥

छिन्नं स्वरं भोमन्तरिक्षं
स्वप्नं लक्षण-दण्ड-वास्तु-विद्यां ।
अंग-विकारः स्वरस्य विजयः
यो विद्याभिर्न जीवति स भिक्षुः ॥

७—जो छिन्न (छिद्र-विद्या), स्वर
(सप्त-स्वर विद्या), भोम, अन्तरिक्ष, स्वप्न,
लक्षण, दण्ड, वास्तु-विद्या, अंग-विकार और
स्वर-विज्ञान (पञ्च-पक्षी स्वर-विद्या)—इन
विद्याओं के द्वारा जो आजीविका नहीं
करता वह भिक्षु है ।

८—मन्तं मूलं विविहं वेज्जचिन्तं
वमणविरेयणधूमणेतत्तसिणाणं ।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च
तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

मन्त्रं मूलं विविधां वंश-चिन्तां
वमन-विरेचन-धूमनेत्र-स्नानम् ।
आतुरे शरणं चिकित्सितं च
तत् परिज्ञाय परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥

८—मन्त्र, मूल, विविध प्रकार की
आयुर्वेद मन्त्राधी चिन्ता, वमन, विरेचन,
धूम-पान की नली, स्नान, आतुर होने पर
स्वजन की शरण, चिकित्सा—इनका परित्याग
कर जो परिव्रजन करता है—वह भिक्षु है ।

९—स्वतियगणउगग्रायपुत्ता
माहणभोइय विविहा 'य सिप्पिणो' ।
नो तेसि वयइ^१ सिलोगपूयं
तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

क्षत्रियगणोद्वराजपुत्राः
ब्राह्मण-भोगिका विविधाश्च शिल्पिनः ।
नो तेषां वदति श्लोक-पूजे
तत्परिज्ञाय परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥

९—क्षत्रिय, गण, उग्र, राजपुत्र, ब्राह्मण,
भोगिक (सामन्त) और विविध प्रकार के
शिल्पी जो होते हैं, उनको श्लाघा और पूजा
नहीं करता किन्तु उसे दोष-पूर्ण जान उसका
परित्याग कर जो परिव्रजन करता है—वह
भिक्षु है ।

१. सिप्पिणोऽणे (बु० पा०) ।

२. करेइ (वृ०) ।

१०—गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा
अप्पव्वइएण व संथुया ऽविज्जा ।
तेसिं इहलोइयफल्लो^१
जो संथवं न करेइ स भिक्खू ॥

गृहिणो ये प्रवर्जितेन दृष्टाः
अप्रवर्जितेन च संस्तुता भवेयुः ।
तेषामिहलोकिकफलायं
यः संस्तवं न करोति स भिक्षुः ॥

१०—दीक्षा लेने के पश्चात् जिनमें देवा
हो या उससे पहले जो परिचित हों उनके साथ
इहलौकिक फल (बन्ध-पान आदि) की प्राप्ति
के लिए जो परिचय नहीं करता—वह भिक्षु है ।

११—सयणासणपाणभोयणं
विविहं खाइमसाइमं परेसिं ।
अदए पडिसेहिए नियण्ठे
जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥

शयनासन-पान-भोजनं
विविधं खाद्य-स्वाद्यं परेभ्यः ।
अदवइभ्यः प्रतिषिद्धो निर्ग्रन्थः
यस्तत्र न प्रवृत्त्यति स भिक्षुः ॥

११—शयन, आसन, पान, भोजन और
विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य गृहस्थ न दे तथा
कारण विशेष से माँगने पर भी इन्कार हो
जाए, उस स्थिति में जो प्रवृत्ति न करे—वह
भिक्षु है ।

१२—जं किंचि आहारपाणं^२ विविहं
खाइमसाइमं परेसिं लद्धं ।
जो तं तिविहेण नाणुकम्पे
मणवयकायमुसंवुडे स भिक्खू ॥

यत्किञ्चिदाहार-पानं
विविधं खाद्य-स्वाद्यं परेभ्योः लब्ध्वा ।
यस्तेन त्रिविधेन नानुकम्पते
संवृत-मनोवाङ्मायः स भिक्षुः ॥

१२—गृहस्थों के घर से जो कुछ आहार,
पानक और विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य
प्राप्त कर जो गृहस्थ की मन, वचन और काया
से अनुकम्पा नहीं करता—उन्हें आशीर्वाद
नहीं देता, जो मन, वचन और काया से
मुसंभृत होता है—वह भिक्षु है ।

१३—आयामगं चैव जवोदगं च
'सीयं च सोवीरजवोदगं च'^३ ।
नो होलए पिण्डं नीरसं तु
पन्तकुलाइं परिख्वए स भिक्खू ॥

आयामकं चैव यवोदगं च
शीतं सोवीरं यवोदकं च ।
न होलयेन पिण्डं नीरसं तु
प्रान्त-कुलानि परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥

१३—आसामन, जो का दलिया, ठण्डा-
वासी आहार, कौजी का पानी, जो का पानी
जैसी नीरस भिक्षा की जो निन्दा नहीं करता,
जो सामान्य घरों में भिक्षा के लिए जाता है—
वह भिक्षु है ।

१४—सद्दा विविहा भवन्ति लोए
दिव्वा^४ माणुस्सगा तहा तिरिच्छा^५ ।
भीमा भयभेरवा उराला
जो सोखा न वहिजई^६ स भिक्खू ॥

शब्दा विविधा भवन्ति लोके
विख्या मानुष्यकास्तरिदक्षाः ।
भीमा भय-भैरवा उदाराः
यः श्रुत्वा न बिभेति स भिक्षुः ॥

१४—लोक में देवता, मनुष्य और
तिर्यञ्चों के अनेक प्रकार के रीढ़, अमित भयंकर
और अद्भुत शब्द होते हैं, उन्हें मुनकर जो
नहीं डरता—वह भिक्षु है ।

१. इहलौकिकफल्लो (भ, आ, इ, पृ०) ।

२. वाहार ० (अ) ।

३. सीयं छवीरं च जवोदगं च (स, छ) ।

४. माणुस्सगा तिरिच्छा (पृ०) ।

५. वहिप (ड) ।

१५—बादं विविहं समिक्च लोए
सहिण् वेयाणुणए य कोवियप्पा ।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी
उवसन्ते अविहेडए^१ स भिक्खू ॥

बादं विविहं समेत्थ लोके
सहितः वेद्यागुणस्य कोविदात्मा ।
प्राशोऽभिभूय सर्वदंसी
उपशान्तोऽविहेडकः स भिक्षुः ॥

१५—लोक में विविध प्रकार के बाधों को जान कर भी जो भिक्षुओं के साथ रहता है, जो संवर्धी है, जिसे आगम का परम धर्म प्राप्त हुआ है, जो प्राप्त है, जो पतोष्यों को जीतने वाला और सब जीवों को धार्य-मुल्य समझने वाला है, जो उपशान्त और किसी को भी धममानित न करने वाला होता है—वह भिक्षु है ।

१६—असिप्पजीवी^२ अगिहे अमित्ते
जिइन्दिए सव्वओ विप्पमुक्के ।
अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी
चेच्चा गिहं एणवरे स भिक्खू ॥
—त्ति वेमि ।

असिप्पजीव्यगृहोऽमित्रः
जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
अणु-कषायी लघ्वल्पभक्षी
त्यक्त्या गृहमेकवरः स भिक्षुः ॥
—इति अशीमि ।

१६—जो शिल्प-जीवी नहीं होता, जिसके घर नहीं होता, जिसके मित्र नहीं होते, जो जितेन्द्रिय और सब प्रकार के परिग्रह से मुक्त होता है, जिसका कषाय मन्द होता है, जो थोड़ा और निस्सार भोजन करता है, जो घर को छोड़ अकेला (राग-द्वेष से रहित हो) विचरता है—वह भिक्षु है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. अविहेडए (ड) ।

२. असिप्पजीवी (अ) ।

सोलसमं अङ्गवर्णः
बम्भचेरसमाहिठाणं

षोडश अध्ययनः
ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान

आस्तुब

ब्रह्मचर्य-समाधि का निरूपण होने के कारण इस अध्ययन का नाम “ब्रम्हचरसमाहितान्”—“ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान” है। इसमें ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थानों का वर्णन है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग में भी ब्रह्मचर्य की नौ गुणियों का वर्णन प्राप्त होता है। तुलनात्मक तालिका यों है :

स्थानाङ्ग तथा समवायाङ्ग में वर्णित नौ गुणियाँ :

१—निग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शयन और आसन का सेवन न करे।

२—केवल स्त्रियों के बीच कथा न कहे अर्थात् स्त्री-कथा न करे।

३—स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।^१

४—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को न देखे और न अवधान पूर्वक उनका चिन्तन करे।

५—प्रणीत रसभोजी न हो।

६—मात्रा से अधिक न खार और न पीए।

७—पूर्व-क्रोड़ाओं का स्मरण न करे।

८—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा तलोक-कीर्ति में आसक्त न हो।

९—साता और सुख में प्रतिबद्ध न हो।

उत्तराध्ययन के दस स्थान :

१—निग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आक्षीण शयन और आसन का प्रयोग न करे।

२—स्त्रियों के बीच कथा न कहे।

३—स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।

४—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ाकर न देखे।

५—स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, विलाप आदि के शब्द न सुने।

६—पूर्व-क्रोड़ाओं का अनुस्मरण न करे।

७—प्रणीत आहार न करे।

८—मात्रा से अधिक न खार और न पीए।

९—विभूषा न करे।

१०—शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श में आसक्त न हो।

उत्तराध्ययन में जो दसवाँ स्थान है, वह स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग में आठवाँ स्थान है। अन्य स्थानों का वर्णन प्रायः समान है। केवल पाँचवाँ स्थान स्थानाङ्ग तथा समवायाङ्ग में नहीं है।

१—(क) स्थानाङ्ग ६।६।३ :

नव ब्रम्हचरगुणीतो षं सं०—विचिताहं सयणासणाहं सेविता भवति णो इत्थ्यसंस्तथाहं नो पद्यसंस्तथाहं नो पद्यसंस्तथाहं १; नो इत्थ्यिणं कर्हं कहेता २; नो इत्थ्यिणं मिदिताहं मणोहराहं मणोरमाहं आकोइता निष्काइता भवइ ४; नो पणीतरसभोई ५; नो पाणभोगस्स अतिमसं आहारेते सता भवति ६; नो पुज्वरत्तं पुज्वकीलिअं समरेता भवति ७; नो सहायुवाही नो स्वायुवाही नो सिकोगायुवाही ८; नो सातलोक्कपडिबद्धे वाधि भवति ९।

(ख) समवायाङ्ग समवाय ६ :

नव ब्रम्हचरगुणीतो षं सं०—नो इत्थीपद्यपद्यसंस्तथाणि सिज्जासणाणि सेविता भवइ १; नो इत्थीणं कर्हं कहेता भवइ २; नो इत्थीणं गणाहं सेविता भवइ ३; नो इत्थीणं इदिताणि मणोहराहं मणोरमाहं आकोइता निष्काइता भवइ ४; नो पणीतरसभोई ५; नो पाणभोगस्स अहमावाए आहारेता ६; नो इत्थीणं पुज्वरत्ताहं पुज्वकीलिआहं समरेता भवइ ७; नो सहायुवाही नो स्वायुवाही नो गन्धायुवाही नो रसायुवाही नो कासायुवाही नो सिकोगायुवाही ८; नो सावासोक्कपडिबद्धे वाधिभइ ९।

१—समवायाङ्ग में इसके स्थान पर—निग्रन्थ स्त्री-समुदाय की उपसमा न करे—ऐसा पाठ है। देखें पा० टि० १ (क)।

प्रस्तुत अध्ययन में चक्षु-गुद्धि की भाँति पाँचवें स्थान में शब्द-गुद्धि का भी वर्जन किया गया है और दसवें स्थान में पाँचों इन्द्रियों की आसक्ति का समवेत रूप में वर्जन किया गया है।

यहाँ दस समाधि-स्थानों का वर्णन बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। शयन, आसन, काम-कथा, स्त्री-पुरुष का एक आसन पर बैठना, चक्षु-गुद्धि, शब्द-गुद्धि, पूर्व-क्रोड़ा का स्मरण, सरस आहार, अतिमात्र आहार, विभूषा, इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति—ये सब ब्रह्मचर्य की साधना में विघ्न हैं। इसलिए इनके निवारण को 'ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान' या 'ब्रह्मचर्य-गुप्ति' कहा गया है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्ति-निग्रह है। वह पाँचों इन्द्रियों तथा मन के संयम के बिना प्राप्त नहीं होता। इसलिए उसका अर्थ 'सर्वेन्द्रिय-संयम' है। ये समाधि-स्थान इन्द्रिय-संयम के ही स्थान हैं :

स्वर्णन-इन्द्रिय-संयम के लिए सह-शयनासन और एक आसन पर बैठना वजित है।

रसन-इन्द्रिय-संयम के लिए सरस और अति-मात्रा में आहार करना वजित है।

घ्राण इन्द्रिय-संयम के लिए कोई पृथक् विभाग निर्दिष्ट नहीं है।

चक्षु इन्द्रिय-संयम के लिए स्त्री-मेह व उसके ह्राव-भावों का निरीक्षण वजित है।

श्रोत्र-इन्द्रिय-संयम के लिए हास्य-विहास पूर्ण शब्दों का सुनना वजित है।

मानसिक-संयम के लिए काम-कथा, पूर्व-क्रोड़ा का स्मरण और विभूषा वजित है।

दसवाँ स्थान इन्द्रिय-संयम का संकलित रूप है।

मूलाधार में शील-विराधना (अब्रह्मचर्य) के दस कारण बतलाए गए हैं^१—

१—स्त्री-संसर्ग—स्त्रियों के साथ संसर्ग करना।

२—प्रणोत-रस-भोजन—अत्यन्त गुद्धि से पाँचों इन्द्रियों के विकारों को बढ़ाने वाला आहार करना।

३—गंधमाल्य-संस्पर्श—सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्पों के द्वारा शरीर का संस्कार करना।

४—शयनासन—शयन और आसन में ग्राह्य रखना।

५—भूषण—शरीर का मण्डन करना।

६—गीत-वाद्य—नाट्य, गीत आदि को आमलापा करना।

७—अर्थ-संप्रयोजन—स्वर्ण आदि का व्यवहरण।

८—कुशील-संसर्ग—कुशील व्यक्तियों का संसर्ग।

९—राज-सेवा—विषयों की पूर्ति के लिए राजा का गुण कीर्तन करना।

१०—राजि-संचरण—बिना प्रयोजन राज में दूधर-उधर जाना।

दिग्गम्बर-विद्वान् पाण्डित आशाधरजों ने ब्रह्मचर्य के दस नियमों को निम्न रूप में रखा है^२—

१—मूलाधार ११।६३, १४ : इत्थीसंसर्गं पणीदरसभोगं गधमङ्गसंठणं।

वपणासणभूसाणं, छट्ठं पुण गीयवाहयं वेव ॥

अत्यस्स संपभोगो, कुशीलसंसर्गो रायसेवा व।

रत्ति वि व संवरणं, दस सील विराहणा भणिया ॥

२—अनगारजमंथित ५।६१ : मा रूपाविरसं पिपास छट्ठां मा वत्तिमोक्षं कृथा,

कृत्थं स्त्रीशयनाविकं व भज मा मा वा वराज्जे कृत्थम्।

मा स्त्रीं सत्कुल मा च संत्कुल रत्तं वृत्तं स्मरस्सायं मा,

वत्थंय्येच्छ सुपत्थ मेवत्तवपवाग् द्विःपक्खमा मङ्गणे ॥६१॥

१—मा रूपादिरसं विपासा सुदृशाम्—ब्रह्मचारी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द के रसों को पान करने की इच्छा न करे ।

२—मा वस्तिमोक्षं कृथा—वह ऐसे कार्य न करे, जिससे लिङ्ग-विकार हो ।

३—बुध्यं मा भज—वह कामोद्दीपक आहार न करे ।

४—स्त्रीशयनादिकं च मा भज—स्त्री तथा शयन-आसन आदि का प्रयोग न करे ।

५—वराज्ञे दृशं मा दा—स्त्रियों के अंगों को न देखे ।

६—स्त्रीं मा सत्कुल—स्त्रियों का सत्कार न करे ।

७—मा च संस्कुल—शरीर-संस्कार न करे ।

८—रतं वृत्तं मा स्मर—पूर्व सेवित का स्मरण न करे ।

९—वत्स्यन् मा इच्छ—भविष्य में क्रीड़ा करने का न सोचे ।

१०—इष्ट विषयान् मा जुजस्व—इष्ट रूपादि विषयों से मन को युक्त न करे ।

इनमें क्रमांक १, ३, ४, ५, ७ और ८ तो वे हो हैं जो श्वेताम्बर-आगमों में हैं, शेष भिन्न हैं ।

वेद अथवा उपनिषदों में ब्रह्मचर्य को रक्षा के लिए ऐसे शृङ्खलाबद्ध नियमों का उल्लेख नहीं मिलता । स्मृति में कहा है—स्मरणं, काङ्क्षा, देखना, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रिया—इस प्रकार मैथुन आठ प्रकार के हैं । इन सबसे बिलग हो ब्रह्मचर्य को रक्षा करने चाहिए ।^१

बौद्ध-साहचर्य में भी ब्रह्मचर्य-गुणियों जैसा कोई व्यवस्थित क्रम नहीं मिलता, किन्तु विकीर्ण रूप में कुछ नियम मिलते हैं । वहाँ रूप के प्राप्त आसक्ति-भाव को दूर करने के लिए अशुचि भावना के चिन्तन का मंत्र मान्य रहा है । यह 'कायगता-स्मृति' ने नाम से विरूपाति है ।^२

बुद्ध मुन्यु-शर्या पर ये तब शिक्षाओं ने पुछा—“अन्ते ! स्त्रियों के साथ हम कसा व्यवहार करेंगे ?”

“अदर्शनं, आनन्द ।”^३

“दर्शनं हाने पर भगवन् ! कसा बर्ताव करेंगे ?”

“आलाप न करना, आनन्द !”

“बाने करने वाले को कसा करना चाहिए ?”

“स्मृति को संभाल रखना चाहिए ।”^४

उक्त अनेक परम्पराओं के संदर्भ में दस समाधि-स्थानों का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है ।

१—दशस्मृति ७३१-३३ : ब्रह्मचर्य सदा रक्षेत्पथा मैथुनं वृषक ।

स्मरणं कीर्तनं केचिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥

सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥

पुनर्मैथुनसंघातं प्रवृत्तिं मत्प्रीतिः ॥

न प्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्तव्यं कदाचन ॥

पुनः सर्वैः सुसम्पन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥

^१—सुतनिपात १।११; विबुद्धि मग (प्रथम भाग) परिच्छेद ८, पृष्ठ २१८-२६० ।

^२—दीर्घनिकाय (महापरिनिष्वाण सप्त) २।३ ।

सू० ३—इमे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पन्तत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया अणमत्ते विहरेज्जा, तं जहा— 'विवित्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा', से निग्गन्थे ।^१ नो इत्थीपमुपण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेविता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु इत्थीपमुपण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंवा वा, वित्तिगिच्छा वा समुपज्जज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्तत्ताओ 'वा धम्माओ'^२ भंसेज्जा । तम्हा नो इत्थिपमुपण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेविता हवइ, से निग्गन्थे ।

इमानि खलु स्थविरभंगवज्जिदंश ब्रह्मचर्यं-समाधि-स्थानानि प्रकृतानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य, संयम-बहुलः, संवर-बहुलः, समाधि-बहुलः, गुप्तः, गुप्तेन्द्रियः, गुप्त-ग्रहचारी, सदाश्रमसो विहरेत् । तद्यथा—
विश्विक्तानि शयनासनानि सेवेत स निग्रन्थः नो स्त्री-पशु-पण्डक-संस्पर्शानि शयनासनानि सेविता भवति स निग्रन्थः ।

तन् कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु स्त्री-पशु-पण्डक-संस्पर्शानि शयना-सनानि सेवमानस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा कालक्षा वा विश्विक्त्या वा समुत्पद्यन्ते, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयान्, दीर्घकालिको वा रोगा-तङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञापादं धर्मादं श्रय्येत्, तस्मान्नो स्त्री-पशु-पण्डक-संस्पर्शानि शयनासनानि सेविता भवति स निग्रन्थः ।

३—स्थविर भगवान् नो ब्रह्मचर्यं-समाधि के दस स्थान ये बतलाए हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निश्चय कर, भिक्षु संयम, संवर, और समाधि का पुनः-पुनः अभ्यास करे । मन, वाणी और शरीर का गोपन करे । इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाए, ब्रह्मचर्य को नो मुरझाओ नो मुरझित रखे और सदा अश्रमन्त होकर विहार करे । ये इस प्रकार हैं—

जो एकान्त शयन और आसन का सेवन करता है, वह निग्रन्थ है । निग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन नहीं करता ।

यह क्यों ?

ऐसा पृच्छते पर आचार्य कहते हैं—स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शङ्का, कंथा या विश्विक्त्या उत्पन्न होता है अथवा प्रज्ञाचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पंदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए जो स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन नहीं करता, वह निग्रन्थ है ।

१. सेविज्जा हवइ (उ) ।

२. × (चु०) ।

३. धम्माओ (उ, इ) ।

सोलसमं अज्ज्ञवर्णः षोडशम् अध्वयनम् बम्भचेरसमाहिठाणः ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानम्

मूल

सू० १—सुयं मे, आउसं ! तेणं
भगवया एवमक्खायं—

इह खलु थेरेहि भगवन्तेहि दस
बम्भचेरसमाहिठाणा पन्तत्ता, जे
भिकखू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले,
संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते,
गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया
अप्पमत्ते विहरेज्जा ।

संस्कृत छाया

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन
भगवतैवमाख्यातम्—इह खलु स्थविरै
भगवद्भिर्वंश ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानानि
प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य,
संयम-बहुलः, संवर-बहुलः, समाधि-
बहुलः, गुप्तः, गुप्तेन्द्रियः, गुप्त-ब्रह्मचारी,
सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ।

हिन्दी अनुवाद

१—आयुष्मन् ! मैंने सुना है, भगवान्
(प्रज्ञापक आचार्य) ने ऐसा कहा है—
निर्ग्रन्थ प्रवचन में जो स्थविर (गणधर)
भगवान् हुए हैं उन्होंने ब्रह्मचर्य-समाधि के दस
स्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ
का निश्चय कर, भिक्षु संयम, संवर और
समाधि का पुनः-पुनः अभ्यास करे । मन,
वाणी और शरीर का गोपन करे, इन्द्रियों को
उनके विषयों से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ
सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त
होकर बिहार करे ।

सू० २—कयरे खलु ते थेरेहि

भगवन्तेहि दस बम्भचेरसमाहिठाणा
पन्तत्ता जे भिकखू सोच्चा, निसम्म,
संजमबहुले, संवरबहुले समाहिबहुले,
गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया
अप्पमत्ते विहरेज्जा ?

कतराणि खलु तानि स्थविर-

भगवद्भिर्वंश ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थानानि
प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षुः श्रुत्वा, निशम्य,
संयम-बहुलः, संवर-बहुलः, समाधि-
बहुलः, गुप्तः, गुप्तेन्द्रियः, गुप्त-
ब्रह्मचारी, सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ?

२—स्थविर भगवान् ने वे कौन से

ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान बतलाए हैं,
जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निश्चय कर,
भिक्षु संयम, संवर और समाधि का पुनः-पुनः
अभ्यास करे । मन, वाणी और शरीर का
गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाए,
ब्रह्मचर्य को नौ सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और
सदा अप्रमत्त होकर बिहार करे ?

सू० ४—नो इत्थीणं कहुं कहिता ह्वइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयग्याह—निगन्थस्स खलु इत्थीणं कहुं कहेमाणस्स, बम्भयारिस्स बम्भचरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । 'तम्हा नो इत्थीणं' कहुं कहेज्जा ।

नो स्त्रीणां कथां कथयिता भवति, स निग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु स्त्रीणां कथां कथयतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञाद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मान्नो स्त्रीणां कथां कथयेत् ।

सू० ५—नो इत्थीहि^१ सद्धि सन्निसेज्जागए विहरित्ता ह्वइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयग्याह—निगन्थस्स खलु इत्थीहि सद्धि सन्निसेज्जागयस्स, बम्भयारिस्स बम्भचरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु ना निगन्थे इत्थीहि सद्धि सन्निसेज्जागए विहरेज्जा^२ ।

नो स्त्रीभिः सार्धं सन्निवद्यगतो विवर्ता भवति स निग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु स्त्रीभिः सार्धं सन्निवद्यगतस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवल-प्रज्ञाद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात् खलु नो निग्रन्थः स्त्रीभिः सार्धं सन्निवद्यगतो विहरेत् ।

४—जो केवल स्त्रियों के बीच में कथा नहीं करता वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—केवल स्त्रियों के बीच कथा करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से अप्रुट हो जाता है, इसलिए केवल स्त्रियों के बीच में कथा न करे ।

५—जो स्त्रियों के साथ पीठ आदि एक आसन पर नहीं बैठता, वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से अप्रुट हो जाता है, इसलिए स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे ।

१. तम्हा खलु निगन्थे नो इत्थीणं (ड) ।

२. इत्थीणं (अ, ख०) ।

३. विहरइ (अ) ।

सू० ६—नो इत्थीणं इन्दियाइं
मणोहराईं, मणोरमाईं आलोइत्ता,
निज्झाइत्ता हवइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु
इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराईं,
मणोरमाईं आलोएमाणस्स, निज्झाय-
माणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका
वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा
समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं
वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ
वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु
'निगन्थे नो' इत्थीणं इन्दियाइं
मणोहराईं, मणोरमाईं आलोएज्जा,
निज्झाएज्जा ।

नो स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि
मनोरमाण्यालोकयिता निध्याता भवति
स निप्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निप्रन्थस्य खलु
स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनो-
रमाण्यलोकमानस्य निध्यायतो
ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा
वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं
वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीघं-
कालिको वा रोगात्कुतो भवेत्, केवल-
प्रज्ञाहास वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मान्
खलु नो निप्रन्थः स्त्रीणामिन्द्रियाणि
मनोहराणि मनोरमाण्यालोकयेन्न-
ध्ययिन् ।

६—जो स्त्रियों की मनोहर और मनोरम
इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर नहीं देखता, उनके
विषय में चिन्तन नहीं करता, वह निप्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पृच्छने पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों
की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि
गड़ा कर देखने वाले और उनके विषय में
चिन्तन करने वाले ब्रह्मचारी निप्रन्थ को
ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या
विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य
का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता
है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता
है अथवा वह केवली-कथित धर्म में भ्रष्ट हो
जाता है, इसलिए स्त्रियों के मनोहर और
मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर न देखे और
उनके विषय में चिन्तन न करे ।

सू० ७—नो इत्थीणं कुडुत्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसदं वा, रुइयसदं वा, गीयसदं वा, हसियसदं वा, थणियसदं वा, कन्दियसदं वा, विलवियसदं वा, सुणेता हवइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु इत्थीणं 'कुडुत्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा', कुइयसदं वा, रुइयसदं वा, गीयसदं वा, हसियसदं वा, थणियसदं वा, कन्दियसदं वा, विलवियसदं वा, सुणेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचैरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउज्जिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्तताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु निगन्थे नो इत्थीणं कुडुत्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसदं वा, रुइयसदं वा, गीयसदं वा, हसियसदं वा, थणियसदं वा, कन्दियसदं वा, विलवियसदं वा सुणेमाणे विहरेज्जा ।

नो स्त्रीणां कुडुपान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भिरयन्तरे वा, कूजित-शब्दं वा, रुवित-शब्दं वा, गीत-शब्दं वा, हसित-शब्दं वा, स्तनित-शब्दं वा कन्वित-शब्दं वा, विलपित-शब्दं वा श्रोता अवति सनिर्ग्रन्थः ।

तत्कथमिति जेत ?

आचार्य आह—निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणां कुडुपान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भिरयन्तरे वा कूजित-शब्दं वा, रुवित-शब्दं वा, गीत-शब्दं वा, हसित-शब्दं वा, स्तनित-शब्दं वा, कन्वित-शब्दं वा, विलपित-शब्दं वा शृण्वतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्कता वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा सम्प्लुष्टेत, भेवं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयान्, दीर्घकालिको वा रोगात्कालो भवेत्, केवल-प्रज्ञाहाव वा धर्माद् भक्ष्यते । तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थः स्त्रीणां कुडुपान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भिरयन्तरे वा कूजित-शब्दं वा, रुवित-शब्दं वा, गीत-शब्दं वा, हसित-शब्दं वा, स्तनित-शब्दं वा, कन्वित-शब्दं वा, विलपित-शब्दं वा शृण्वन् विहरेत् ।

७—ओ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को नहीं सुनता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पुरुष पर आचार्य कहते हैं—मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को सुनने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आवृत्त होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को न सुने ।

१. भित्ति अन्तरंसि वा (अ, ५०) ; भित्तिन्तरंसि (उ) ।

२. कुडुत्तरंसि वा भित्तन्तरंसि वा दूसन्तरंसि वा (५०, स) ; कुडुत्तरंसि वा (अ) ।

सू० ८—नो निगन्थे पुव्वरयं,
पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ, से
निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु
पुव्वरयं^१, पुव्वकीलियं अणुसर-
माणस्स बम्भयारिस्स बम्भवेरे संका
वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा
समुपज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं
वा रोगायकं हवेज्जा, केवलि-
पन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।
तम्हा खलु नो निगन्थे पुव्वरयं,
पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा ।

सू० ९—नो पणीयं आहारं
आहारित्ता हवइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु
पणीयं पाणभोयणं आहारेमाणस्स
बम्भयारिस्स बम्भवेरे संका वा,
कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा समु-
पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं
वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा
रोगायकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ
वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु
नो निगन्थे पणीयं आहारं
आहारेज्जा ।

नो निग्रन्थः पूर्व-रतं पूर्व-क्रीडित
मनुस्मर्ता भवेत्, स निग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु
स्त्रीणां पूर्व-रतं पूर्व-क्रीडितमनुस्मरतो
ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा
वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं
वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घ-
कालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलि-
प्रज्ञाद् वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात्
खलु नो निग्रन्थः स्त्रीणां पूर्व-रतं पूर्व-
क्रीडित-मनुस्मरेत् ।

नो प्रणीतमाहारमाहर्ता भवति, स
निग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खलु
प्रणीतमाहारमाहरतो ब्रह्मचारिणो
ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचि-
कित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत,
उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको
वा रोगातङ्को भवेत्, केवलि-प्रज्ञाद्
वा धर्माद् भ्रश्येत् । तस्मात् खलु नो
निग्रन्थः प्रणीतमाहारमाहरेत् ।

८—जो यहवास में की हुई रति और
क्रीडा का अनुस्मरण नहीं करता, वह
निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—
यहवास में की हुई रति और क्रीडा का
अनुस्मरण करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को
ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या
विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का
विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है
अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है
अथवा वह केवली-कवित धर्म में भ्रष्ट हो जाता
है, इसलिए यहवास में की हुई रति और
क्रीडा का अनुस्मरण न करे ।

९—जो प्रणीत आहार नहीं करता, वह
निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—प्रणीत
पान-भोजन करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को
ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या
विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का
विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है
अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है
अथवा वह केवली-कवित धर्म से भ्रष्ट हो
जाता है, इसलिए प्रणीत आहार न करे ।

सू० १०—नो अइमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता हवइ, से निगम्ये ।

नो अतिमात्रया पान-भोजनमाहर्ता भवति, सनिग्रन्थः ।

तं कहमिति चे ?

आयगियाह—निगम्यस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बम्भयागिस्स बम्भचैरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपिन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु नो निगम्ये अइमायाए पाणभोयणं भुंजिज्जा ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—निग्रन्थस्य खल्वति-मात्रया पान-भोजनमाहर्तो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगात्कुरो भवेत्, केवल-प्रज्ञाहा वा धर्माद् भ्रश्येत । तस्मात् खलु नो निग्रन्थाऽतिमात्रया पान-भोजनं भुञ्जीत ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—मात्रा से अधिक पीने और खाने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांखा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए मात्रा से अधिक न पीए और न खाए ।

सू० ११—नो विभूसाणुवाई हवइ, से निगम्ये ।

नो विभूसानुपाती भवति, स निग्रन्थः ।

तं कहमिति चे ?

आयगियाह—विभूसावतिणं^१, विभूसियसरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ । तओ णं तस्स इत्थिजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बम्भचैरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपिन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु नो निगम्ये विभूसाणुवाई सिया ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्य आह—विभूसावतिको विभूषितशरीरः स्त्रीजनस्याभिलषणीयो भवति । तत्तत्तस्य स्त्रीजनैनाभिलष्यमाणस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगात्कुरो भवेत्, केवल-प्रज्ञाहा वा धर्माद् भ्रश्येत । तस्मात् खलु नो निग्रन्थो विभूसानुपाती स्यात् ।

११—जो विभूषा नहीं करता—शरीर को नहीं सजाता, वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—जिसका स्वभाव विभूषा करने का होता है, जो शरीर को विभूषित किए रहता है, उसे स्त्रियाँ चाहने लगती हैं । पश्चात् स्त्रियों के द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शङ्का, काङ्क्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए विभूषा न करे ।

सू० १२—नो सदृख्वरसगन्ध-
फासाणुवाई हवइ, से निगन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु
सदृख्वरसगन्धफासाणुवाइस्स बम्भ-
यारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा
वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,
भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा
पाउणिज्जा, दीहकालियं वा
रोगायकं हवेज्जा, केवल्लिप्पन्ताओ
वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु
नो निगन्थे सदृख्वरसगन्धफासाणु-
वाई हविज्जा । दसमे बम्भचेर-
समाहिठाणे हवइ ।

भवन्ति इत्थं मिलोमा, तं जहा—

नो शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शानु-
पातो भवति, सनिग्रन्थः ।

तत्कथमिति चेत् ?

आचार्यो अह—निग्रन्थस्य खलु
शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शानुपातिनो
ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्यं शङ्का वा काङ्क्षा
वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं
वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयान्,
दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्,
केवल-प्रज्ञासह वा धर्माह भवेत् ।
तस्मान् खलु नो निग्रन्थः शब्द-रूप-
रस-गन्ध-स्पर्शानुपातो भवेत् । दशमं
ब्रह्मचर्यं-समाधि-स्थानं भवति ।

भवन्ति अत्र श्लोकाः, तद् यया—

१२—जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और
स्पर्श में आसक्त नहीं होता, वह निग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पुरुष पर आचार्य कहते हैं शब्द,
रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त होने वाले
ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका,
कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा
ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद
पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और
आसक्त होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म
में भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए शब्द, रूप, रस,
गन्ध और स्पर्श में आसक्त न बनें । ब्रह्मचर्य
की समाधि का यह दसवाँ स्थान है ।

यहाँ श्लोक हैं जैसे—

१—जं वित्तमणाडणं
रहियं धीजणेण य ।
बम्भचेरस्स रक्खट्ठा
आलयं तु निसेवए ॥

२—मणपत्थायजणं
कामरागविवड्ढणि ।
बम्भचेररओ भिक्खु
धीकहं तु विवज्जए ॥

३—समं च संथवं धीहि
संकहं च अभिक्खणं ।
बम्भचेररओ भिक्खु
निच्चसो परिवज्जए ॥

यो विवित्तोनाकीणः
रहितं स्त्रीजनेन च ।
ब्रह्मचर्यस्य रक्षायाम्
आलयं तु निषेवते ॥

मनः-प्रह्लाव-जननीं
काम-राग-विवर्धनीम् ।
ब्रह्मचर्य-रतो भिक्षुः
स्त्री-कथां तु विवर्जयेत् ॥

समं च संस्तवं स्त्रीभिः
संकथां चाभीक्ष्णम् ।
ब्रह्मचर्य-रतो भिक्षुः
नित्यशः परिवर्जयेत् ॥

१—ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए मृनि वसे
आलय में रहे जो एकान्त, अनाकीण और
श्रियों में रहित हो ।

२—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
मन को आह्लाद देने वाली तथा काम-राग
बढ़ाने वाली स्त्री-कथा का वर्जन करे ।

३—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
स्त्रियों के साथ परिचय और बार-बार बातों-
लाप का सदा वर्जन करे ।

४—अंगपच्चंगसंठाणं
चारुल्लवियपेहियं ।
बम्भचेररओ धीणं^१
चक्खुगिज्झं विवज्जाणं ॥

अंग-प्रत्यंग-संस्थानं
चारुल्लपित्त-प्रेक्षितम् ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणां
चक्षु-प्राह्यं विवर्जयेत् ॥

४—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
स्त्रियों के चक्षु-प्राह्य, अंग-प्रत्यंग, आकार,
बोलने की मनहर-मुद्रा और चितवन को न
देखे—देखने का यत्न न करे ।

५—कुइयं रुइयं गीयं
हसियं शणियकन्दियं ।
बम्भचेररओ धीणं
सोयगिज्झं विवज्जाणं ॥

कृजितं श्वितं गीतं
हसितं स्तनित-कन्दितम् ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणां
श्रोत्र-प्राह्यं विवर्जयेत् ॥

५—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
स्त्रियों के श्रोत्र-प्राह्य कृजन, रोदन, गीत,
हास्य, गजन और कन्दन को न सुने—सुनने का
यत्न न करे ।

६—हासं किट्ठं रडं दण्यं
सहसाज्वत्तासियाणं^२ य^३ ।
बम्भचेररओ धीणं
नाणुचिन्ते कयाइ वि ॥

हासं कीडां रतिं वपं
सहसाज्वत्तासितानि च ।
ब्रह्मचर्य-रतः स्त्रीणां
नानुचिन्तयेत् कवाचिवपि ॥

६—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
पूर्व-जीवन में स्त्रियों के साथ अनभूत हास्य,
कीडा, रति, अभिमान और आकस्मिक त्रास
का कभी भी अनुचिन्तन न करे ।

७—पणीयं भत्तपाणं तु^४
खिणं मयविवडुढणं ।
बम्भचेररओ भिक्खू
निच्चसो परिवज्जाणं ॥

प्रणीतं भक्त-पानं तु
क्षिप्रं मद-विवर्धनम् ।
ब्रह्मचर्य-रतो भिक्षुः
नित्यशः परिवर्जयेत् ॥

७—ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु
शीघ्र ही काम-वासना को बढ़ाने वाले प्रणीत
भक्त-पान का सदा वर्जन करे ।

८—धम्मलद्धं^५ मियं काले
जत्तयं पणिहाणवं ।
नाइमत्तं तु भुजेज्जा
बम्भचेररओ सया ॥

धर्म्य-लब्धं मितं काले
यान्त्रार्थं प्रणिधानवान् ।
नास्तिमात्रं तु भुञ्जीत
ब्रह्मचर्य-रतः सदा ॥

८—ब्रह्मचर्य-रत और स्वल्प चित्त वाला
भिक्षु जीवन निर्वाह के लिए उचित समय में
निर्दोष, भिक्षा द्वारा प्राप्त, परिमित भोजन
करे, किन्तु मात्रा से अधिक न खाए ।

१. भिक्खू (बू०) ।

२. सहसाविचा (बू०) ; सहसुता (अ०) ।

३. इत्थं वपं रहं किट्ठं सहसुता (बू० पा०) ।

४. च (अ०) ।

५. धम्मं कद्धं (बू०) ; धम्मलद्धं, धम्मलद्धं (बू० पा०) ।

९—विभूषं परिवज्जेज्जा
सरीरपरिमण्डणं ।
वम्भचेरओ भिक्खू
सिगारत्थं न धारए ॥

विभूषां परिवज्जयेन्
शरीर-परिमण्डनम् ।
महावच्यं-रसो भिक्षुः
शृङ्गारार्थं न धारयेन् ॥

६—महावच्यं में रत रहने वाला भिक्षु
विभूषा का वर्जन करे और शरीर की घोभा
बढ़ाने वाले केश, दाढ़ी आदि को शृङ्गार के
लिए धारण न करे ।

१०—सट्ठे रुवे य गन्धे य
रसे फासे तहेव य ।
पंचविहे कामगुणे
निच्चसो परिवज्जेए ॥

शब्दान् रूपांश्च गंधांश्च
रसान् स्पर्शांस्तथैव च ।
पञ्चविधान् काम-गुणान्
नित्यशः परिवज्जयेन् ॥

१०—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श—
इन पाँच प्रकार के काम-गुणों का सदा वर्जन
करे ।

११—आलओ थीज्जणाइण्णो
थीकहा य मनोरमा ।
संथवो चैव नारीणं
तासि इन्दियदरिसणं ॥

आलयः स्त्रीजनाकोणः
स्त्री-कथा च मनोरमा ।
संस्तवश्चैव नारीणां
तासामिन्द्रिय-दर्शनम् ॥

११—(१) स्त्रियों से आकीर्ण आलय,
(२) मनोरम स्त्री-कथा,
(३) स्त्रियों का परिचय,
(४) उनके इन्द्रियों को देखना,

१२—कुइयं रुइयं गीयं
हसियं^१ भुत्तासियाणि य ।
पणीयं भत्तपाणं च
अइमायं^२ पाणभोयणं ॥

कूजितं रुदितं गीतं
हसितं भुक्तासितानि च ।
प्रणीतं भक्त-पातं च
अतिमात्रं पात-भोजनम् ॥

१२—(५) उनके कूजन, रोदन, गीत और
हास्य-युक्त शब्दों को सुनना,
(६) भक्त-भोग और महावस्थान,
को याद करना,
(७) प्रणीत पात-भोजन,

१३—गतभूषणमिट्ठं च
कामभोगा य दुज्जया ।
नरस्सज्जगवेसिस्स
विसं तालउडं जहा ॥

पात-भूषणमिट्ठं च
काम-भोगाश्च दुर्जयाः ।
नरस्यात्म-गर्भेक्षिणः
विषं तालपुटं यथा ॥

१३—(८) काम से अधिक पात-भोजन,
(९) शरीर को सजाने की इच्छा और
(१०) दुर्जय काम-भोग—ये दस
आत्म-गर्भेक्षी मनुष्य के लिए
तालपुट विष के समान हैं ।

१. गरिहि (क०) ।

२. सहभुक्ता ० (अ) ।

३. अइमाणं (क०) ।

बम्भचेरसमाहिटाणं (ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान) २०६

१४—दुज्जए कामभोगे य
निश्चसो परिवज्जए ।
संकट्टाणाणि सव्वाणि
वज्जेज्जा^१ पणिहाणवं ॥

दुर्जयान् काम-भोगांश्च
नित्यशः परिवर्जयेत् ।
शंका-स्थानानि सर्वाणि
वर्जयेत् प्रणिधानवान् ॥

अध्ययन १६ : श्लोक १४-१७

१४—एकाग्रचित्त वाला मुनि दुर्जय
काम-भोगों और ब्रह्मचर्य में शंका उत्पन्न करने
वाले पूर्वोक्त सभी स्थानों का वर्जन करे ।

१५—धम्मारामे चरे भिक्खु
धिइमं धम्मसारही ।
धम्मारामराए दन्ते
बम्भचेरसमाहिए ॥

धर्मारामे चरेत् भिक्षुः
धृतिमान् धर्म-सारधिः ।
धर्माराम-रतो दान्तः
ब्रह्मचर्य-समाहितः ॥

१५—धर्मवान्, धर्म के रथ को चलाने
वाला, धर्म के आराम में रत, दान्त और
ब्रह्मचर्य में चित्त का समाधान पाने वाला
भिक्षु धर्म के आराम में विचरण करे ।

१६—देवदाणवगन्धव्वा
जक्खरक्खसकिन्नरा ।
बम्भयारि नमंसन्ति
दुक्करं जे करन्ति तं^२ ॥

देव-दानव-गन्धर्वाः
यक्ष-राक्षस-किन्नराः ।
ब्रह्मचारिणं नमस्कुर्यन्ति
दुष्करं यः करोति तन् ॥

१६—उम ब्रह्मचारी को देव, दानव,
गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर—ये सभी
नमस्कार करते हैं, जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का
पालन करता है ।

१७—एस धम्मे धुवे निअए
सासाए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण
सिज्झिस्सन्ति तथापरे ॥
—त्ति वेमि ॥

एष धर्मो ध्रुवो नित्यः
शाश्वतो जित-देशितः ।
सिद्धाः सिध्यन्ति चानेन
तेत्स्यन्ति तथापरे ॥

—इति ब्रवीमि ।

१७—यह ब्रह्मचर्य-धर्म ध्रुव, नित्य,
शाश्वत और अहंत् के द्वारा उपदिष्ट है ।
इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, हो
रहे हैं और भविष्य में भी होंगे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. वज्जिया (वृ०) ।

२. ते (अ) ।

५—आयरियउवज्जायाणं

सम्मं नो पडितप्पइ ।
अप्पडिपूयए थडे
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

६—सम्मट्ठमाणे

पाणाणि हरियाणि य ।
असंजए संजयमन्तमाणे
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

७—संधारं

फलमं पीढं
निसेज्जं पायकम्बलं ।
अप्पमज्जियमारुहइ
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

८—दवदवस्स

चरई
पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चण्डे य
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

९—पडिलेहेइ

पमत्ते
अवउज्झइ पायकम्बलं ।
पडिलेहणाअणाउत्ते*
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

१०—पडिलेहेइ

पमत्ते
से किंचि हु निसामिया ।
गुरुपरिभावए* निच्चं
पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

आचार्योपाध्यायानां

सम्यग् न प्रतिपद्यते ।
अप्रतिपूजकः स्तब्धः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

संमर्दयन् प्राणान्

बीजानि हरितानि च ।
असंयतः संयतोऽह्मिति मन्यमानः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

संस्तारं फलकं पीढं

निवद्यां पाद-कम्बलम् ।
अप्रमुखाहोहति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

द्रवं द्रवं चरति

प्रमत्तदचामोक्षणम् ।
उल्लंघनद्वय चण्डद्वय
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

प्रतिलेखयति प्रमत्तः

अपोज्जति पाद-कम्बलम् ।
प्रतिलेखनाऽनायुक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

प्रतिलेखयति प्रमत्तः

सकिञ्चि खलु निशम्य ।
गुरु-परिभावको नित्यं
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

५—जो आचार्य और उपाध्याय के कार्यों की सम्यक् प्रकार से चिन्ता नहीं करता—उनकी सेवा नहीं करता, जो बड़ों का सम्मान नहीं करता, जो अभिमानी होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

६—होन्दिम आदि प्राणी तथा बीज और हरियाली का मर्दन करने वाला, असंयमी होते हुए भी अपने आपको संयमी मानने वाला, पाप-श्रमण कहलाता है ।

७—जो बिछोने, पाट, पीठ, आसन और पैर पीछने के कम्बल का प्रमाज्जन किए बिना (तथा दत्त बिना) उन पर बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

८—जो द्रुतगति से चलता है, जो बार-बार प्रमाद करता है, जो प्राणियों को लोंघ कर—उनके ऊपर होकर चला जाता है, जो कोपी है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

९—जो ब्रमावधानी से प्रतिलेखन करता है, जो पाद-कम्बल को जहाँ कहीं रख देता है, इस प्रकार जो प्रतिलेखना में असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१०—जो कुछ भी बातचीत हो रही हो उसे सुनकर प्रतिलेखना में असावधानी करने लगता है, जो गुरु का तिरस्कार करता है—शिखा देने पर उनके सामने बोलने लगता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१. पडिलेहा ० (ख) । †

२. गुरु परिभावइ (अ) ; गुरुपरिभासए (ह०) ; गुरुपरिभावए (ह० पा०) ।

सप्तमस्य अङ्गवर्णः :
पावसमणिज्जं

सप्तमस्य अध्ययनः :
पाप-श्रमणीयम्

११—बहुमाई पमुहरे'
थढ़े लुढ़े अणिगहे ।
असंविभागी अनियत्ते
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१२—विवादं च उदीरेइ
अहम्म अत्तपन्नहा' ।
वुगहे कलहे रत्ते
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१३—अथिरासणं कुकुईए
जत्थ तत्थ निसीयई ।
आसणम्मि अणाउत्ते
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१४—ससरक्कवपाए सुवई
सेजं न पडिलेइइ ।
संधारणं अणाउत्ते
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१५—दुद्धदहीविगईओ
आहारेइ अभिक्खणं ।
अए य तवोक्कमे
पावसमणि ति वुच्चई ॥

१६—अत्यन्तम्मि' य मूरम्मि
आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ
पावसमणि ति वुच्चई ॥

बहुमायी प्रमुहुरः
स्तब्धो लुब्धोऽतिग्रहः ।
असंविभागी 'अनियत्ते'
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

विवादं छोदीरयति
अघमें आत्म-प्रज्ञाहा ।
व्यग्रपहे कलहे रक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

अस्थिरासनः कौकुक्षिकः
यत्र तत्र निषीदति ।
आसनेऽनायुक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

ससरजस्क-पादः स्वपिति
शय्यां न प्रतिलिखति ।
संस्तारकेऽनायुक्तः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

दुग्ध-दधि-विकृतीः
आहृत्यभोक्षणम् ।
अरतश्च तपः-कर्मणि
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

अस्तान्ते च सूर्यो
आहृत्यभोक्षणम् ।
चोदितः प्रतिचोदयति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

११—जो बहुत कपटी, बाचाल,
अभिमानी, लालची, इन्द्रिय और मन पर
निग्रहण न रखने वाला, भक्त-पान आदि का
संविभाग न करने वाला और गुरु आदि से
प्रेम न रखने वाला होता है, वह पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१२—जो शान्त हुए विवाद को फिर से
उभाड़ता है, जो सदाचार से शून्य होता है,
जो (कुतर्क से) अपनी प्रज्ञा का हनन करता
है, जो कदाग्रह और कलह में रक्त होता है,
वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१३—जो स्थिरासन नहीं होता—बिना
प्रयोजन इधर-उधर चक्कर लगाता है, जो हाथ,
पैर आदि अवयवों को हिलाता रहता है, जो
जहाँ कहीं बैठ जाता है—इस प्रकार आसन
(या बैठने) के विषय में जो असावधान होता
है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१४—जो सचित्त रज से भरे हुए परो
का प्रमाजं किए बिना ही सो जाता है, सोने
के स्थान का प्रतिलिखन नहीं करता—इस
प्रकार बिछोने (या सोने) के विषय में जो
असावधान होता है, वह पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१५—जो दूध, दही आदि विकृतियों का
बार-बार आहार करता है और तपस्या में रत
नहीं रहता, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१६—जो सूर्य के उदय से लेकर अस्त
होने तक बार-बार खाता रहता है । 'ऐसा
नहीं करना चाहिए'—इस प्रकार सीख देने
वाले को कहता है कि तुम उपदेश देने में
कुशल हो, करने में नहीं, वह पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१. पमुहरी (इ, वृ०, स) ।

२. अत्तपण्णहा (वृ०) ; अत्तपण्णहा (वृ० पा०) ।

३. अत्यंसमर्थम्मि (वृ० पा०) ।

सतरसमं अज्ज्ञयणं : सप्तदश अध्ययन

पावसमणिज्जं : पाप-श्रमणीयम्

मूल

१—जे 'के इमे' पव्वइए नियण्ठे
धम्मं गुणिता विणओववन्ते ।
सुदुब्बहं लहिउं बांहिलाभं
विहरेज्ज पच्छा य जहामुहं तु ॥

संस्कृत छाया

यः कश्चिदयं प्रव्रजितो निर्ग्रन्थः
धर्मे श्रुत्वा विनयोपपन्नः ।
सुदुर्लभं लब्ध्वा बोधि-लाभं
विहरेन् पदनाञ्च यथासुखं तु ॥

हिन्दी अनुबाद

१—जो कोई निर्ग्रन्थ धर्म को सुन,
दुर्लभतम बोधि-लाभ को प्राप्त कर विनय से
युक्त हो प्रव्रजित होता है किन्तु प्रव्रजित होने
के पश्चात् स्वच्छन्द-विहारी हो जाता है,

२—सेज्जा दढा पाउण्णं मे अत्थि
उप्पज्जई भोत्तुं तहेव पाउं ।
जाणामि जं वट्ठइ आउमु ! ति
कि नाम काहामि सुण्ण भन्ते ! ॥

शय्या दढ़ा प्रावरणं मेऽस्ति,
उत्पद्यते भोक्तुं तथैव पातुम् ।
जानामि यद्वनेत आयुष्मन् ! इति
कि नाम करिष्यामि श्रुतने भवन्त ? ॥

२—(यम के द्वारा अध्ययन की प्रेरणा
प्राप्त होने पर वह कहता है—) मुझे रहने की
अच्छा उपाश्रय मिल रहा है, कपडा भी मेरे
पाम है, खान-पीने को भी मिल जाता है ।
आयुष्मन् ! जो हो रहा है, उसे मैं जान लेता हूँ ।
भन्ते ! फिर मैं श्रुत का अध्ययन कर के क्या
करूँगा ?

३—जे के इमे पव्वइए
निहासीले पगामसो ।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ^१
पावसमणि ति वुच्चई ॥

यः कश्चिदयं प्रव्रजितो
निद्राशीलः प्रकामशः ।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं स्वपिति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

३—जो प्रव्रजित होकर बार-बार नींद
लेता है, खा-पी कर आराम में लेट जाता है,
वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

४—आयरियउवज्झाएहि
सुयं विणयं च गाहिण ।
ते चेव खिसई बाले
पावसमणि ति वुच्चई ॥

आचार्योपाध्यायः
श्रुतं विनयं च ग्राहितः ।
तश्चैव खिलति बालः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

४—जिन आचार्य और उपाध्याय ने
श्रुत और विनय सिलाया उन्हीं की निन्दा
करता है, वह विवेक-विकल भिक्षु पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१. केइ उ (इ०, श्र०, छ०) ; के इमे (इ० पा) ।

२. सुणु (श्र०) ।

३. वसइ (इ० पा०) ।

आचर्य

इस अध्ययन में पाप-भ्रमण के स्वरूप का निरूपण है, इसलिए इसे 'पावसमणीजं—'पाप-भ्रमणीय' कहा गया है।

भ्रमण दो प्रकार के होते हैं—श्रेष्ठ-भ्रमण और पाप-भ्रमण। जो ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप और वीर्य—इन पाँच आधारों का पालन करता है वह श्रेष्ठ-भ्रमण है। उसके लक्षण पन्द्रहवें अध्ययन में बताए गए हैं। जो ज्ञान आदि आधारों का सम्यक् पालन नहीं करता, इस अध्ययन में वर्णित अकरणीय कार्यों का आचरण करता है वह पाप-भ्रमण होता है।¹

जो प्रव्रज्या ग्रहण कर सुख-शील हो जाता है—'सोहताए णिकलंतो सियालताए विहरति'—सिंह की भाँति निष्क्रान्त होने पर भी गोदड़ की तरह प्रव्रज्या का पालन करता है, वह पाप-भ्रमण होता है। (श्लो० १)

जो स्वा-पीकर सो जाता है वह पाप-भ्रमण होता है। जैन-परम्परा में यह औत्सर्गिक मर्यादा रही है कि मुनि दिन में न सोए। इसके कई अपवाद भी हैं। जो मुनि विहार से परिश्रान्त हो गया हो, बुझ हो गया हो, रोगी हो, वह मुनि आचार्य से आज्ञा लेकर दिन में भी सो सकता है, अन्यथा नहीं।²

आयुर्वेद के ग्रन्थों में सोने का विधान इस प्रकार है—नौद लेने का उपयुक्त काल रात है। यदि रात में पूरी नौद न आए तो प्रातःकाल भोजन से पूर्व सोए। रात में जागने से रुक्षता³ और दिन में लेट कर नौद लेने से स्निग्धता पदा होती है। परन्तु दिन में थोड़े-बड़े नौद लेना न रुक्षता पदा करता है और न स्निग्धता। यह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

जो मुनि आचार्य और उपाध्याय का प्रत्यनीक होता है, पापों से नहीं डरता, कलह की उदोदरणा करता है, चंचल होता है, रस-गुच्छ होता है, तपःकर्म नहीं करता, गण और गणों को छोड़ देता है, वह पाप-भ्रमण है।

इस अध्ययन में—

श्लोक १-४ में ज्ञान-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

श्लोक ५ में दर्शन-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

श्लोक ६-१४ में चरित्र-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

श्लोक १५-१६ में तपः-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

श्लोक १७-१८ में वीर्य-आचार की निरपेक्षता का वर्णन है।

१. उत्तराध्ययन निबन्धिका, भाषा ३६० : जे भावा अकरणिजा, इहमज्जकणमिं वनिअ विणेहि ।

ते भावे सेवन्तो, नायज्जो पावसमणोपि ॥

२. ओषानिबन्धिका, भाषा ४१६ : अद्या परस्संतो, गिल्लण इहो अणुत्तवेत्ताण ।
संयास्तरपहो, अत्थरण निवज्जणा कोमं ॥

३. अष्टांगहृदय सूत्रस्थान अ० ६, ६५ : यथाकालं मतो निद्रां, रात्रौ सेवेत सात्मतः ।
असाध्याद् जागरादर्थं, प्रातः स्वप्याद्भुक्त्वान् ॥
रात्रौ जागरणं रुक्षं, स्निग्धं प्रवृत्तवर्णं विद्वा ।
अरुक्षमनमिष्यन्ति, त्वासीनप्रवृत्तापि च ॥

१७—आयरियपरिच्चाई

परपासण्डसेवणं ।
गाणंगणिणं तुब्भूए
पावसमणिं त्ति वुच्चई ॥

१८—सयं गेहं परिचज्ज
परसेहंसि वावडे^१ ।
निमित्तेण य ववहरई
पावसमणिं त्ति वुच्चई ॥

१९—सन्नाइपिण्डं जेमेइ
नेच्छई सामुदाणियं ।
गिहिनिसेज्जं च वाहेइ
पावसमणिं त्ति वुच्चई ॥

२०—ग्यारिसे पंचकुसीलसंबुडे
रुबंधरे मुणिपवराण हेडिमे ।
अयंसि लाए विसमेव गरहए
न से इहं नेव परत्थ लाए ॥

२१—जे वज्जए एए सया उ दांसे
से मुच्चए होइ मुणीण मज्जे ।
अयंसि लाए अमयं व पूहए
आराहए 'दुहओ लोगमिण'^२ ॥
—ति वेमि ॥

आचार्य-परित्यागो
पर-पाषण्ड-सेवकः ।
गाणङ्गणिको दुर्भूतः
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

स्वकं गेहं परित्यज्य
पर-गेहे व्याप्रियते ।
निमित्तेन च व्यवहरति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

स्व-ज्ञाति-पिण्डं जेमति
नेच्छति सामुदानिकम् ।
गृहि-निषदां च वाहयति
पाप-श्रमण इत्युच्यते ॥

एतादृशः पंच-कुशीलाऽसंबृतः
रूपधरो मुनि-प्रवराणामवस्तनः ।
अस्मिँल्लोके विषमिव गहितः
न स इह नेव परत्र लोके ॥

यो वर्जयत्येतान् सदा तु बोधान्
स सुवतो भवति मुनीनां मध्ये ।
अस्मिँल्लोकेऽमृतमिव पूजितः
आराधयति लोकमिमं तथा परम् ॥
—इति ब्रवीमि

१७—जो आचार्य को छोड़ दूसरे धर्म-
सम्प्रदायों में चला जाता है, जो छह मास की
अवधि में एक गण से दूसरे गण में संक्रमण
करता है, जिसका आचरण निन्दनीय है, वह
पाप-श्रमण कहलाता है ।

१८—जो अपना घर छोड़ कर (प्रयत्नित
होकर) दूसरों के घर में व्याप्त होता है—
उन्मत्त काय करता है, जो शुभाशुभ बता कर
धन का अर्जन करता है, वह पाप-श्रमण
कहलाता है ।

१९—जो अपने ज्ञाति-जनो के घरों में
भाजन करता है, किन्तु सामुदायिक भिक्षा
करना नहीं चाहता, जो गृहस्थ की धोखा पर
बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

२०—जो पूर्वोक्त धाचरण करने वाला,
पाँच प्रकार के कुशील साधुओं की तरह
असंबृत, मुनि के वेश को धारण करने वाला
और मुनि-प्रवरों की अपेक्षा तुच्छ संयम वाला
होता है, वह इस लोक में विष की तरह
निन्दित होता है । वह न इस लोक में कुछ
होता है और न परलोक में ।

२१—जो इन दोषों का सदा वर्जन
करता है वह मुनियों में गुज्रत होता है । वह
इस लोक में अमृत की तरह पूजित होता है
तथा इस लोक और परलोक—दोनों लोकों
की आराधना करता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. वावरे (वृ०, छ०) ; ववहरे (वृ० पा०) ।

२. लोगमिणं तहापरं (उ, स, छ०, ऋ०) ।

अद्वैतारसमं अज्ज्ञयणं :
संजइज्जं

अष्टावस्तु अध्ययन :
संजयीयम्

आस्तुष्ट

यह अध्ययन राजा संजय के वर्णन से समुत्पन्न है, इसलिए इसका नाम 'संजयवृत्त'—'संजयीय' है।^१

कांपित्य नगर में संजय नाम का एक राजा राज्य करता था। एक बार वह शिकार के लिए निकला। उसके साथ चारों प्रकार की सेनाएँ थी। वह कैसर उद्यान में गया। वहाँ उसने संक्रुस्त मृगों को मारा। इधर-उधर देखते उसकी दृष्टि गर्दभाली मुनि पर जा टिकी। वे ध्यानस्थ थे। उन्हें देख वह संभ्रान्त हो गया। उसने सोचा—मैंने यहाँ के मृगों को मार मुनि की आशानना की है। वह धोले से नीचे उतरा। मुनि के पास जा, वन्दना कर बोला—“भगवन् ! मुझे क्षमा करें।” मुनि ध्यानहीन थे। वे कुछ नहीं बोले। राजा का भय बढ़ा। उसने सोचा—यदि मुनि क्रुद्ध हो गए तो वे अपने तेज से समूचे विश्व को नष्ट कर देंगे। उसने पुनः कहा—“भंते ! मैं राजा संजय हूँ। मौन तोड़ कर मुझे कुछ कहें।” (श्लोक १-१०)

मुनि ने ध्यान पारा और अभयदान देते हुए बोले—“राजन् ! तुम्हें अभय है। तू भी अभयदाता बन। इस अनित्य जीव-लोक में तू क्यों हिसा में आसक्त हो रहा है।” (श्लोक ११) मुनि ने जीवन की अस्थिरता, ज्ञाति-सम्बन्धी को असाक्षात्, कर्म-परिणामों की निश्चितता का उपदेश दिया। राजा ने सुना। वंराग्य उभर आया। वह राज्य को त्याग कर मुनि गर्दभाली के पास श्रमण बन गया।

एक दिन एक क्षत्रीय मुनि संजय। मुनि के पास आया और पूछा—“तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा गोत्र का ? है ? किसलिए तुम माहन्—मुनि बने हो ? तुम किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो और किस प्रकार विनीत बहलाने हो ?” (श्लोक २१)

मुनि संजय ने उत्तर दिया—“नाम से मैं संजय हूँ। गोत्र मेरा गौतम है। गर्दभाली मेरे आचार्य हैं। मुक्ति के लिए मैं माहन् बना हूँ। आचार्य के उपदेशानुसार मैं सेवा करता हूँ इसलिए मैं विनीत हूँ।” (श्लोक २२, २३)

क्षत्रीय मुनि ने उनके उत्तर से आकृष्ट हो बिना पूछे ही कई तथ्य प्रकट किए और मुनि संजय को जैन प्रवचन में विशेष दृष्ट कर देने के लिए महापुरुषों के अनेक उदाहरण दिए। (श्लोक २३-३३)

इस अध्ययन में भरत, सगर, मध्व, सनत्कुमार, शान्ति, अर, कुन्वु, महापद्म, हरिषेण, जय आदि पञ्चवर्ती राजाओं के नाम हैं।

दशार्णभद्र, नमि, करकन्धु, द्विसुख, नागति, उद्वायण, काशीराज, विजय, महाबल आदि नरेश्वरों के नाम हैं।

दशार्ण, कालिग, पाचाळ, विदेह, गान्धार, सौवीर, काशी आदि देशों के नाम हैं।

यह अध्ययन प्रागैतिहासिक व ऐतिहासिक जैन-शासन की परम्परा का संकलन-सूत्र जैसा है। इसमें महावीर कालीन क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद का उल्लेख हुआ है। (श्लोक २३)

१. उत्तराख्यचन निर्मुक्ति, भाषा २६४ : संजयनामं गोयं, वेयंतो भावसंजयो होइ।

ततो समुद्रियमिणं, अन्धमणं संजयवृत्तं॥

अष्टारसमं अज्ज्ञयणं : अष्टावक्ष अध्यवन संजइज्जं : संजयीयम्

मूल
१—कम्पिल्ले नयरे राया
उदिण्णबलवाहणे ।
नामेणं संजए नाम
मिगव्वं उवणिस्माए ॥

संस्कृत छाया
काम्पिल्ये नगरे राजा
उदार्ण-बल-बाहनः ।
नाम्ना संजयो नाम
मृगव्यामुपनिगतः ॥

हिन्दी अनुबाव
१—काम्पिल्य नगर में सेना और बाहनों
से सम्पन्न संजय नाम का राजा था । एक दिन
वह शिकार करने के लिए गया ।

२—हयाणीए गयाणीए
रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया
सव्वओ परिवारिए^१ ॥

हयानीकेन गजानीकेन
रथानीकेन तथैव च ।
पादातानीकेन महता
सर्वतः परिवारितः ॥

२—वह घोड़े, हाथी और रथ पर आरुढ़
तथा पैदल चलने वाले महान् सैनिकों द्वारा
चारों ओर से घिरा हुआ था ।

३—मिए छुभित्ता हयगओ
कम्पिल्लुज्जाणकेसरे ।
भीए सन्ते मिए तत्थ
वहेइ रसमुच्छिए ॥

मृगान् क्षिप्त्वा हय-गतः
काम्पिल्योद्यानकेसरे ।
भीतान् ध्रान्तान् मृगान् तत्र
व्ययते रस-मूच्छितः ॥

३—वह घोड़े पर चढ़ा हुआ था । सैनिक
हिरणों को काम्पिल्य नगर के केशर नामक
उद्यान की ओर डकेल रहे थे । वह रस-मूच्छित
होकर उन डरे हुए और बिलन बने हुए हिरणों
को वहाँ व्यथित कर रहा था—मार रहा था ।

४—अह केसरम्मि उज्जाणे
अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाणजुत्ते
धम्मज्झाणं भियायई ॥

अथ केसर उद्याने
अनगरस्तपोधनः ।
स्वाध्याय-ध्यान-संयुक्तः
धर्म्य-ध्यानं ध्यायति ॥

४—उस केशर नामक उद्यान में
स्वाध्याय और ध्यान में लीन रहने वाले एक
तपोधन अनगर धर्म्य-ध्यान में एकाग्र हो
रहे थे ।

५—अप्फोवमण्डवमि

भायई भवियासवे ।
तस्साए मिए पासं
बहेई से नराहिवे ॥

६—अह आसगओ राया
खिप्पमागम्म सो तहि ॥
हए मिए उ पासित्ता
अणगारं तत्थ पासई ॥

७—अह राया तत्थ संभन्तो
अणगारो मणाऽऽहुओ ।
मए उ मन्दपुण्णेणं
रसगिद्धेण घन्तुणा^१ ॥

८—आसं विसज्जइत्ताणं
अणगारस्स सो निवो ।
विणएण वन्दए पाए
भगवं ! एत्थ मे खमे ॥

९—अह मोणेण सो भगवं
अणगारे भाणमस्सिए ।
रायाणं न पडिमन्तेइ
तओ राया भयहुओ ॥

१०—संजओ अहमस्सीति
भगवं ! वाहराहि मे ।
कुद्धे तेएण अणगारे
डहेज्ज नरकोडिओ ॥

‘अप्फोव’ मण्डवे

ध्यायति क्षयितास्त्रयः ।
तस्यागस्तान् मृगान् पाश्वं
विध्यति स नराधिपः ॥

अथाश्वगतो राजा
क्षिप्रमागम्य स तस्मिन् ।
हतान् मृगान् तु दृष्ट्वा
अनगारं तत्र पश्यति ॥

अथ राजा तत्र सम्भ्रान्तः
अनगारो मनगाहृतः ।
मया तु मन्द-पुण्येन
रस-गृहे न घातुकेन ॥

अश्वं विसृज्य
अनगारस्य स नृपः ।
विनयेन वन्दते पादौ
भगवन् ! अत्र मे क्षमस्व ॥

अथ मौनेन स भगवान्
अनगारो ध्यानमाश्रितः ।
राजानं न प्रतिमन्त्रयते
ततो राजा भय-द्रुतः ॥

संजयोऽहमस्मीति
भगवन् ! व्याहर माम् ।
क्रुद्धस्तेजसाऽनगारः
बहेन् नर-कोटीः ॥

५—कर्म-बन्धन के हेतुओं को निर्मूल
करने वाले अनगार लता-मण्डप में ध्यान कर
रहे थे । राजा ने उनके समीप आए हुए
हिरणों पर बाणों के प्रहार किए ।

६—राजा अश्व पर आरुढ़ था । वह
चुरल बहों आया । उसने पहले मरे हुए हिरणों
को ही देखा, फिर उसने उसी स्थान में अनगार
को देखा ।

७—राजा अनगार को देख कर भय-
भ्रान्त हो गया । उसने सोचा—मैं भाग्यहीन,
रस-लोलुप और जीवों को मारने वाला हूँ ।
मैंने कुछ प्रयोजन के लिए मृग को आह्वान
किया है ।

८—वह राजा घोड़े को छोड़ कर विनय
पूर्वक अनगार को वन्दना करता और कहता
है—“भगवन् ! इस कार्य के लिए मुझ क्षमा
कर ।”

९—वे अनगार भगवान् मौन पूर्वक ध्यान
में लीन थे । उन्होंने राजा को प्रत्युत्तर नहीं
दिया । उससे राजा और अधिक भयाकुल हो
गया ।

१०—राजा बोला—“हे भगवन् ! मैं संजय
हूँ । आप मुझसे बातचीत कीजिए । अनगार
क्रुपित होकर अपने तेज से करोड़ों मनुष्यों को
जला डालता है ।”

१. खविधासवे (स) ।

२. घन्तुणा (ड) ; घम्मुणा (ऋ०)

११—अभयो^१ पत्थिवा ! तुभं
अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि
किं हिसाए पसज्जसि ? ॥

अभयं पाथिव ! य
अभय-वाता भव च ।
अनित्ये जीव-लोके
किं हिंसायां प्रसजसि ? ॥

११—अनगर बोले—“पाथिव ! तुम अभय
हैं और तू भी अभयदाता बन । इस अनित्य
जीव-लोक में तू क्यों हिंसा में आसक्त हो
रहा है ?

१२—जया सव्वं परिञ्ज
गन्तव्वमवसस्स ते ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि
किं रज्जमि^२ पसज्जसि ? ॥

यदा सर्वं परित्यज्य
गन्तव्यमवशस्य ते ।
अनित्ये जीव-लोके
किं राज्ये प्रसजसि ? ॥

१२—“जबकि तू पराधीन है और इसलिए
सब कुछ छोड़ कर तुझे चले जाना है तब इस
अनित्य जीव-लोक में तू क्यों राज्य में आसक्त
हो रहा है ?

१३—जीवियं चैव रूपं च
विज्जुसंपायचंचलं ।
जत्थ तं मुञ्जसी रायं
पेच्चत्थं नावबुञ्जसे ॥

जीवितं चैव रूपं च
विद्युन्-सम्पात-चंचलम् ।
यत्र त्वं मुह्यसि राजन् !
प्रेतपार्थ नावबुध्यसे ॥

१३—“राजन् ! तू जहाँ मोह कर रहा है
वह जीवन और सौन्दर्य विजली की चमक के
समान चंचल है । तू परलोक के हित को क्यों
नहीं समझ रहा है ?

१४—‘दाराणि य सुया चैव
मिता य तह बन्धवा ।
जीवन्तमणुजीवन्ति
मयं नाणुव्वयन्ति य ॥’^३

दाराश्च सुताश्चैव
मित्राणि च तथा बान्धवाः ।
जीवन्तमनुजीवन्ति
मृतं नानुव्रजन्ति च ॥

१४—“मित्रपौ, पुत्र, मित्र और बान्धव
जीवन व्यक्ति के साथ जीते हैं किन्तु वे मृत
के पीछे नहीं जाते ।

१५—नीहरन्ति मयं पुत्ता
पियरं परमदुक्खिया ।
पियरो वि तहा पुत्ते
बन्धू रायं ! तवं चरे ॥

निःसारयन्ति मृतं पुत्राः
पितरं परम-दुःखिताः ।
पितरोऽपि तथा पुत्रान्
बन्धवो राजन् ! तपश्चरेः ॥

१५—“पुत्र अपने मृत पिता को परम
दुःख के साथ श्मशान ले जाते हैं और इसी
प्रकार पिता भी अपने पुत्रों और बंधुओं को
श्मशान में ले जाना है, इसलिए हे राजन् !
तू तपश्चरण कर ।

१६—तओ तेणज्जिए दव्वे
दारे य परिरक्खिए ।
कीलन्तज्जे नरा रायं !
हइतुइमं ठकिया ॥

ततस्तेनाजिते ब्रह्मे
वारेषु च परिरक्षितेषु ।
कीडन्त्यन्धे नरा राजन् !
हृष्ट-तुष्टाऽलङ्कृताः ॥

१६—“राजन् ! मृत्यु के पश्चात् उस
मृत व्यक्ति के द्वारा अर्जित धन और सुरक्षित
स्त्रियों का हृष्ट, तुष्ट और अलंकृत होकर
दूसरे व्यक्ति भोगते हैं ।

१. अभयं (अ, आ) ।

२. रज्जेण (ज, झ०) ; हिंसाए (ह० पा०) ।

३. इदं सुखं चिरन्तनहृत्प्लुता न व्याल्यार्तं, प्रत्यन्तरेषु च दृश्यत इत्यस्मादभिरुचीतव्यं (वृ०) ।

उत्तरजम्भयणं (उत्तराध्ययन)

२२६

अध्ययन १८ : श्लोक १७-२२

१७—तेणावि जं कयं कम्मं
सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मुणा तेण संजुत्तो
गच्छई उ परं भवं ॥

तेनापि यत् कृतं कर्म
सुखं वा यदि वा दुःखम् ।
कर्मणा तेन संयुक्तः
गच्छति तु परं भवम् ॥

१७—“उस मरने वाले व्यक्ति ने भी जो
कर्म किया—सुखकर या दुःखकर—उसी के
साथ वह परभव में चला जाता है ।”

१८—सोऊण तस्स सो धम्मं
अणगारस्स अत्तिए ।
महया संवेगनिव्वेयं
समावन्तो नराहिवो ॥

श्रुत्वा तस्य स धर्मम्
अनगारस्यान्तिके ।
महान्तं संवेग-निर्व्वेदं
समापन्तो नराधिपः ॥

१८—वह संजय राजा अनगार के समीप
महान् आदर के साथ धर्म सुन कर मोक्ष का
दृष्टिक और संसार से उद्धिन्न हो गया ।

१९—संजओ चइउं रज्जं
निक्खन्तो जिणसासणे ।
गद्दभालिस्स भगवओ
अणगारस्स अत्तिए ॥

संजयस्त्यक्त्वा राज्यं
निष्क्रान्तो जिन-शासने ।
गदंभालिभगवतः
अनगारस्यान्तिके ॥

१९—संजय राज्य छोड़ कर भगवान्
गदंभालि अनगार के समीप जिन-शासन में
दीक्षित हो गया ।

२०—चिच्चा रट्ठं पव्वइए
खत्तिए परिभासइ ।
जहा ते दीसई रूवं
पसन्नं ते तहा मणो ॥

त्यक्त्वा राष्ट्रं प्रयजितः
क्षत्रियः परिभाषते ।
यथा ते दृश्यते रूपं
प्रसन्नं ते तथा मनः ॥

२०—जिम्मे राष्ट्र को छोड़ कर प्रयज्या
की, उस क्षत्रिय ने (अप्रतिबद्ध विहारी राजधि
मजय में) कहा—“तुम्हारे आकृति जैसे प्रसन्न
दीख रही है वैसे ही तुम्हारा मन भी प्रसन्न
दीख रहा है ।

२१—किनामे ? किंमोत्ते ?
कस्सट्ठाए व माहणे ? ।
कहं पडियरसी बुद्धे ?
कहं विणीए ति वुच्चसि ? ॥

किं नामा ? किं गोत्रः ?
कस्मिं अर्थाय वा माहन् ? ।
कथं प्रतिचरसि बुढान् ?
कथं विनीत इत्युच्यसे ? ॥

२१—“तुम्हारा नाम क्या है ? गोत्र क्या
है ? किसलिए तुम माहन्—सुनि बने हो ? तुम
किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो ?
और किस प्रकार विनीत कहलाते हो ?”

२२—संजओ नाम नामेणं
तहा गोत्तेण गोयमो ।
गद्दभाली ममाचारिया
विज्जाचरणपारगा ॥

संयतो नाम नाम्ना
तथा गोत्रेण गोत्रसः ।
गदंभाल्यो ममाचार्याः
विज्जा-चरण-पारगाः ॥

२२—“नाम से मैं संजय हूँ । गोत्र से मैं
गोत्रम हूँ । गदंभालि मेरे आचार्य हैं—विद्या
और चारित्र के पारगामी । मुक्ति के लिए मैं
माहन् बना हूँ । आचार्य के उपदेशानुसार मैं
सेवा करता हूँ इसलिए मैं विनीत कहलाता हूँ ।”

२३—किरियं अकिरियं विणयं
अन्नाणं च महामुणी ! ।
एएहि चउहि ठाणंहि
मेयन्ने^१ कि पभासई ? ॥

क्रियाऽक्रिया विनयः
अज्ञानं च महामुने ! ।
एतद्वस्तुभिः स्थानं:
मेयज्ञाः कि प्रभाषन्ते ॥

२३—वे अक्षिय भ्रमण बोले—“महामुने !
क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञान—इन चार
स्थानों के द्वारा एकान्तवादी तत्त्ववेत्ता क्या
तत्त्व बतलाते हैं—

२४—इइ पाउकरे बुद्धे
नायए परिनिव्वुडे ।
विज्जाचरणसंपन्ने
सच्चे सच्चपरक्कमे ॥

इति प्रादुरकरोऽ बुद्धः
ज्ञातकः परिनिर्बुतः ।
विद्या-चरण-संपन्नः
सत्यः सत्य-पराक्रमः ॥

२४—“उसे तत्त्ववेत्ता ज्ञात-बंधीय,
उपशान्त, विद्या और चारित्र्य से सम्पन्न, सत्य-
वाक् और सत्य-पराक्रम वाले भगवान् महावीर
ने प्रकट किया है ।

२५—पडन्ति नरए घोरे
जे नरा पावकारिणो ।
दिव्वं च गइं गच्छन्ति
चरित्ता धम्ममारियं ॥

पतन्ति नरके घोरे
ये नराः पाप-कारिणः ।
दिव्यां च गतिं गच्छन्ति
चरित्वा धर्ममार्यम् ॥

२५—“जो मनुष्य पाप करने वाले हैं वे
घोर नरक में जाते हैं और आर्य-धर्म का
आचरण कर मनुष्य दिव्य-गति को प्राप्त
होते हैं ।

२६—‘मायाबुद्ध्यमेयं तु
मुसाभासा निरत्थिया ।
संजममाणो वि अहं
वसामि इरियामि य’ ॥^२

मायोक्तमेतत् तु
भ्रूषाभावा निरर्थिका ।
संयच्छन्नप्यहम्
वसामि ईरे च ॥

२६—“इन एकान्त-दृष्टि वाले क्रियावादी,
आदि वादियों ने जो कहा है, वह माया-पूर्ण
है इसलिए वह मिथ्या-वचन है, निरर्थक है ।
मैं उन माया-पूर्ण एकान्तवादों से बच कर
रहता हूँ और चलाता हूँ ।

२७—सव्वे ते विइया मज्झं
मिच्छादिद्वी अणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए
सम्मं जाणामि अप्पणं ॥

सर्वे ते विविता मन
मिथ्यादृष्टयोऽनार्याः ।
विद्यमाने परे लोके
सम्यग् जानाम्यात्मानम् ॥

२७—“मैंने उन सबको जान लिया है जो
मिथ्या-दृष्टि और अनार्या हैं । मैं परलोक के
अस्तित्व में आत्मा को भली-भाँति जानता हूँ ।

२८—अहमासी महापाणे
जुइमं वरिससओवमे ।
जा सा पाली महापाली
दिब्बा वरिससओवमा ॥

अहमासं महाप्राणे
द्युतिमान् वर्षशतोपमः ।
या सा पाली महा-पाली
दिव्या वर्षशतोपमा ॥

२८—“मैं महाप्राण नामक विमान में
कालिमान देव था । मैंने वहाँ पूर्ण आयु का
भोग किया । जैसे यहाँ सौ वर्ष की आयु पूर्ण
होती है, वैसे ही देवलोक में पल्लोपम और
सागरोपम की आयु पूर्ण मानी जाती है ।

१. मिथ्या (वृ०) ।

२. इदमपि सूत्रं प्राचो न दृश्यते (वृ०) ।

२९—से चुए' बम्भलोगाओ
माणुसं भवमागए ।
अण्णो य परेसि च
आउं जाणे जहा तथा ॥

३०—नाणारुहं च छन्दं च
परिवज्जेज्ज संजए ॥
अण्णो जे य सव्वत्था
इइ विज्जामणुसंचरे ॥

३१—पडिक्कामि पसिणाणं
परमत्तेहि वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं
इइ विज्जा तवं चरे ॥

३२—जं च मे पुच्छसी काले
सम्मं सुद्धेण^१ चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे
तं नाणं जिणसासणे ॥

३३—किरियं च रोयए धीरे
अकिरियं परिवज्जेण ।
दिट्ठीए दिट्ठिसंपन्ने
धम्मं चर सुदुच्चरं ॥

३४—एयं पुण्णपयं सोबा
अथधम्मोवसोहियं ।
भरहो वि भारहं वासं
चेच्चा कामाइ पव्वए ॥

अथ च्युतो ब्रह्म-लोकान्
मानुष्यं भवमागतः ।
आत्मनश्च परेषां च
आयुर्जनानि यथा तथा ॥

नानारुचि च छन्दश्च
परिवर्जयेत् संयतः ।
अनर्था ये च सर्वत्र
इति विद्या मनुसंचरे ॥

प्रतिक्रमामि प्रश्नेभ्यः
पर-मन्त्रोभ्यो वा पुनः ।
अहो उत्पितोऽहोरात्रम्
इति विद्वान् तपश्चरे ॥

यत्र मां पुच्छसि काले
सम्यक् सुद्धे न ज्ञेयसा ।
तत् प्रादुरकरोद् बुद्धः
तज्ज्ञानं जिन-शासने ॥

क्रियां च रोचयेद् धीरः
अक्रियां परिवर्जयेत् ।
दृष्ट्या दृष्टि-संपन्नः
धर्मं चर सुदुश्चरम् ॥

एतन् पुण्य-पवं भुत्वा
अर्थ-धर्मोपशोभितम् ।
भरतोऽपि भारतं वर्षं
त्यक्त्वा कामान् प्राव्रजन् ॥

२९—“वह मैं ब्रह्मलोक से च्युत होकर
मानुष्य-लोक में आया हूँ । मैं जिस प्रकार
अपनी आयु को जानता हूँ उसी प्रकार दूसरों
की आयु को भी जानता हूँ ।

३०—“संयमी को नाना प्रकार की रुचि,
अभिप्राय और जो मव प्रकार के अनर्थ हैं
उत्तका वर्जन करना चाहिए—इस विद्या के
पथ पर तुम्हारा संचरण हो” — (साध्वि मुनि
ने राजर्षि से कहा)—

३१—“मैं (शुभाशुभ सूचक) प्रश्नों और
गृहस्थ-कार्य-सम्बन्धी मंत्रणाओं से दूर रहता हूँ ।
अहो ! मैं दिन-रात धर्मोचरण के लिए
सावधान रहता हूँ—यह सम्मं कर तुम तप
का आचरण करो ।

३२—“जो तुम मुझे सम्यक् सुद्ध-चित्त से
आयु के विषय में पूछते हो, उसे सर्वज्ञ भगवान्
ने प्रकट किया है, वह ज्ञान जिन-शासन में
विद्यमान है ।

३३—“धीर-पुरुष को क्रियावाद पर रुचि
करनी चाहिए और अक्रियावाद को त्याग
देना चाहिए । सम्यक् दृष्टि के द्वारा दृष्टि-
सम्पन्न होकर तुम सुदुश्चर धर्म का आचरण
करो ।

३४—“अर्थ और धर्म से उपशोभित इस
पवित्र उपवेश को सुनकर भरत चक्रवर्ती ने
भारतवर्ष और काम-भोगों को छोड़कर
प्रव्रज्य ली ।

१. बुबा (भ) ।

२. बुद्धेण (बु०) ।

संजड्जं (संजयीय)

२२६

अध्ययन १८ : श्लोक ३५-३६

३५--सगरो वि सागरन्तं
भरह्वासं नराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हित्वा
दयाए परिनिवृद्धे ॥

सगरो पि सागरान्तं
भरतवर्षं नराधिपः ।
ऐश्वर्यं केवलं हित्वा
दयया परिनिवृत्तः ॥

३५--“सगर चक्रवर्ती सागर पर्यन्त
भारतवर्ष और पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़, संयम की
आराधना कर मुक्त हुए ।

३६--चडत्ता भारहं वासं
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
पव्वज्जमभुवगओ
मघवं नाम महायसो ॥

त्यक्त्वा भारतं वर्षं
चक्रवर्ती महद्विकः ।
प्रव्रज्यामभ्युपगतः
मघवा नाम महायशः ॥

३६--“महद्विक और महान् यशस्वी
मघवा चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर
प्रव्रज्या ली ।

३७--सणकुमारो मणुस्सिन्दा
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
पुनं रज्जे ठवित्ताणं
सो वि राया तवं चरे ॥

सनत्कुमारो मनुष्येन्द्रः
चक्रवर्ती महद्विकः ।
पुनः राज्ये स्थापयित्वा
सोऽपि राजा तपोऽचरन् ॥

३७--“महद्विक राजा सनत्कुमार
चक्रवर्ती ने पुनः को राज्य पर स्थापित कर
तपश्चरण किया ।

३८--चडत्ता भारहं वासं
चक्रवट्टी महिड्डिओ ।
सन्ती सन्तिकरे लोए
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

त्यक्त्वा भारतं वर्षं
चक्रवर्ती महद्विकः ।
शान्तिः शान्तिकरो लोके
प्राप्नो गतिमनुत्तराम् ॥

३८--“महद्विक और लोक में शान्ति
करने वाले शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष
को छोड़कर अनुत्तर गति प्राप्त की ।

३९--इक्खागरायवसभो
कुन्धू नाम नराहिवो ।
विक्खायकित्ती धिइमं
‘मोक्खं गओ अणुत्तरं’ ॥

इक्ष्वाकु-राज-मुषभः
कुन्धुर्नामनराधिपः ।
विक्र्यात-कीर्तिधृतिमान्
मोक्षं गतोऽनुत्तरम् ॥

३९--“इक्ष्वाकु कुल के राजाओं में श्रेष्ठ,
विख्यात कीर्ति वाले, धृतिमान् भगवान् कुन्धु
नरेश्वर ने अनुत्तर मोक्ष प्राप्त किया ।

१. परिनिवृद्धो (ड, ऋ०) ।

२. इवेकण (ड, ऋ०) ।

३. भाग्यं (ड, ऋ०) ।

४. पत्तो गइमणुत्तरं (ड, ऋ०) ।

४०—सागरान्तं जहिताणं^१
'भरहं वासं नरीसरो'^२ ।
अरो य अरयं^३ पत्तो
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

सागरान्तं हित्वा
भरत-वर्षं नरैश्चरः ।
अरश्चकारजः प्राप्नोति
प्राप्नोति गतिमनुत्तराम् ॥

४०—“सागर पर्यन्त भारतवर्ष को छोड़कर, कर्म-रज से मुक्त हो कर नरेश्वर ने अनुत्तर गति प्राप्त की ।

४१—चइत्ता भारहं वासं
चक्रवट्टी नराहिओ^४ ।
चइत्ता उत्तमे भोए
महापउमे तवं चरे ॥

त्यक्त्वा भारतं वर्षं
चक्रवर्ती नराधिपः ।
त्यक्त्वा उत्तमान् भोगान्
महापद्मस्तपोऽचरन् ॥

४१—“विपुल राज्य, मेना और बाह्य तथा उन्नत भोगों को छोड़कर महापद्म चक्रवर्ती ने तप का आचरण किया ।

४२—एगच्छत्तं पसाहिता
महि माणनिमूरणो ।
हरिसेणो मणुस्सिन्दो
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

एक-छद्मनां प्रसाध्य
महीं मान-निषूदनः ।
हरिवेणो मनुष्येन्द्रः
प्राप्नोति गतिमनुत्तराम् ॥

४२—“ (शत्रु-राजाओं का) मान-मर्दन करने वाले हरिवेण चक्रवर्ती ने गृध्रा पर एक-छत्र धामन किया, फिर अनुत्तर गति प्राप्त की ।

४३—अन्निओ रायसहस्सेहि
मुपरिच्चाई दमं चरे ।
जयनामो जिणक्खायं
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

अन्विता राज-सहस्रैः
मुपरित्यागो दममचरन् ।
जयनामा जिनाकृपातं
प्राप्नोति गतिमनुत्तराम् ॥

४३—“जय चक्रवर्ती ने हजार राजाओं के साथ राज्य का परित्याग कर जिन-भाषित दम का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की ।

४४—दसण्णरज्जं मुद्यं
चइत्ताणं मुणी चरे ।
दसण्णभट्ठो निक्खत्तो
सक्खं सक्केण चोइओ ॥

दशार्ण-राज्यं मुदितं
त्यक्त्वा मुनिरचरन् ।
दशार्णभट्टो निष्क्रान्तः
साक्षाच्छक्रेण बोधितः ॥

४४—“साक्षात् शक्र के द्वारा प्रेरित दशार्णभट्ट ने दशार्ण देश का प्रमुदित राज्य छोड़ कर प्रज्ञया स्त्री और मुनि-धर्म का आचरण किया ।

१. चइत्ताणं (उ, ऋ०; स) ।

२. भरहं नरवरीसरो (उ, ऋ०) ।

३. अरयं (ऋ० पा०) ।

४. महिहिडओ (उ, ऋ०) ।

५. सओ (ऋ०) ।

संजइजं (संजयीय)

२३१

अध्ययन १८ : श्लोक ४५-४८

| नमी नमेइ अप्पाणं
सक्खं सक्केण चोइओ ।
वइऊण गेहं वइवेही
सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥ १'

(नमि-नामयति आत्मानं
साक्षाच्छरणं चोदितः ।
त्यक्त्वा गेहं वैवेही
श्रामण्ये पर्युपस्थितः ॥)

“(विदेह के अधिपति नमिराज ने, जो
यह को त्याग कर श्रामण्य में उपस्थित हुए
और देवेन्द्र ने जिन्हे साक्षात् प्रेरित किया,
आत्मा को नमा लिया—वे अत्यन्त नम्र बन
गए ।)

४५—करकण्डू कलिंगेसु
पंचालेसु य दुम्मुहो^१ ।
नमी राया विदेहेसु
गन्धारेसु य नगई ॥

करकण्डुः कलिङ्गेषु
पञ्चालेषु च द्विमुखः ।
नमी राजा विदेहेषु
गन्धारेषु च नगतिः ॥

४५—“कलिंग में करकण्डु, पंचाल में
द्विमुख, विदेह में नमि राजा और गान्धार में
नगति—

४६—एए^२ नरिन्दवसभा
निक्खन्ता जिनसासणे ।
पुत्ते रज्जे ठवित्ताणं^३
सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥

एते नरेन्द्रः-वृषभः
निष्कान्ता जिन-शासने ।
पुत्रान् राज्ये स्थापयित्वा
श्रामण्ये पर्युपस्थिताः ॥

४६—“राजाओं में वृषभ के समान ये
अपने-अपने पुत्रों को राज्य पर स्थापित कर
जिन-शासन में प्रव्रजित हुए और श्रमण-धर्म
में सदा यत्न-शील रहे ।

४७—सोवीररायवसभो
‘वेच्चा रज्ज’^४ मुणी चरे ।
उद्दायणो^५ पव्वइओ
पत्तो गइमणुत्तरं ॥

सोवीर-राज-वृषभः
व्यक्त्वा राज्यं मुनिराचरत् ।
उद्दायणः प्रव्रजितः
प्राप्तो गतिमनुत्तरम् ॥

४७—“सोवीर राजाओं में वृषभ के
समान उद्दायण राजा ने राज्य को छोड़ कर
प्रव्रज्या ली, मुनि-धर्म का आचरण किया और
अन्तर्गत गति प्राप्त की ।

४८—तहेव कासीराया
सेओसच्चपरकमे ।
कामभोगे परिच्चज्ज
पहणे कम्ममहावणं ॥

तथैव काशी-राजः
श्रेयः-सत्य-पराक्रमः ।
काम-भोगान् परित्यज्य
प्राहन् कर्म-महाबन्धनम् ॥

४८—“इसी प्रकार श्रेय और सत्य के
लिए पराक्रम करने वाले काशीराज ने काम-
भोगों का परित्याग कर कर्म-रूपी महाबन्धन का
उन्मूलन किया ।

१. × (आ, इ, स, लु०, ह०) ।

२. दुम्मुहा (ऋ०) ।

३. पुषं (ड, ऋ०) ।

४. ठवेऊणं (ड, ऋ०) ।

५. उद्दायण (अ, ड, ऋ०) ।

६. उद्दायणो (ऋ०) ; उद्दायणो (ह०, आ, ड, ऋ०) ।

४९—तदेव विजयो राया
'अण्टाकिति' पञ्चा^१ ।
रज्जं तु गुणसमिद्धं
पयहितु महाजसो ॥

तथैव विजयो राजा
अनष्ट-कीर्तिः प्रावजन् ।
राज्यं तु गुण-समृद्धं
प्रहाय महायशः ॥

४९—“इसी प्रकार विमल-कीर्ति, महा-यशस्वी विजय राजा ने गुण से समृद्ध राज्य को छोड़ कर जित-शासन में प्रव्रज्या ली ।

५०—तदेवमं^२ तवं किञ्चा
अवविखत्तेण वेयसा ।
महाबलो^३ रायरिसी
अदाय^४ सिरसा सिरं^५ ॥

तथैवोप तपः कृत्वा
अव्याधिप्तेन चेतसा ।
महाबलो राजविः
आदित शिरसा शिरः ॥

५०—“इसी प्रकार अनाकुल-चित्त से उग्र तपस्या कर राजपति महाबल ने अपना शिर देकर शिर (मोक्ष) को प्राप्त किया ।

५१—कहं धीरो अहेतुहि
उन्मत्तो^६ व्व^७ महि चरे ? ।
एण विसमादाय
मूरा दढपरकमा ॥

कथं धीरः अहेतुभिः
उन्मत्त इव महीं चरेत् ? ।
एते विशेषमादाय
शूरा दृढ़-पराक्रमाः ॥

५१—“ये भरत आदि पुर और दृढ़ पराक्रम-शाली राजा दूसरे धर्म-शासनो से जैन-शासन में विशेषता पाकर यहीं प्रव्रजित हुए तो फिर धीर पुरुष एकान्त-दृष्टिमय अहेतुवादों के द्वारा उन्मत्त की तरह कैसे पृथ्वी पर विचरण करे ?

५२—अचचन्तनियणखमा
सच्चा^८ मे भासिया वई ।
अतरिस्सु तरन्तेने^९ ।
तरिस्सन्ति अणागया^{१०} ॥

अत्यन्त-निदान-भमा
सत्या मया भाषिता वाक् ।
अतीर्षुः तरन्त्येके
तरिष्यन्ति अनागताः ॥

५२—“मैंने यह अत्यन्त युक्तियुक्त बात कही है । उसके द्वारा कई जीवों ने संसार-समुद्र का पार पाया है, पा रहे हैं और भविष्य में पाएंगे ।

१. अण्टा = (वृ०) ; आण्टा = (वृ०) ।

२. आण्टा किह पञ्चा (वृ० पा०) ।

३. तदेवउग्ग (अ) ।

४. महाबलो (अ, आ, ऋ०) ; महाबलो (उ) ।

५. आदाय (उ, ऋ०, वृ०पा०) ।

६. सिरि (वृ० पा०, अ, आ, उ, ऋ०) ।

७. उन्मत्तु (उ, ऋ०) ।

८. व (अ) ।

९. एसा (वृ०) ; सच्चा, सच्चा (वृ० पा०) ।

१०. तरन्तेने (वृ० पा०) ।

११. अणागयं (अ) ।

संजड्जं (संजयीय)

२३३

अध्ययन १८ : श्लोक ५३

५३—कहं धीरे अहेऊहि
अत्ताणं^१ परियावसे ? ।
सव्वसंगविनिम्मुक्के
सिद्धे हवइ नीरणे ॥
—ति वेमि ॥

कथं धीरः अहेतुभिः
आत्मानं पर्यावासयेत् ? ।
सर्व-सङ्ग-विनिर्मुक्तः
सिद्धो भवति नीरजाः ॥
—इति व्वेमि ।

५३—“धीर पुरुष एकान्त-दृष्टिमय
अहेतुवादों में अपने आपको कैसे लगाए ? जो
सब संगों से मुक्त होता है वह कर्म-रहित
होकर सिद्ध हो जाता है ।”
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. अत्ताणं (वृ०) ; अत्ताणं (वृ० पा०) ।

सगूणविसङ्गमं अङ्गवर्णनं :
मियापुतिज्जं

एकानविसङ्गमं अध्ययनं :
मृगापुत्रीयम्

आसुख

निर्युक्तिकार के अनुसार इस अध्ययन का नाम 'मिगपुत्तिजं'—'मृगापुत्रीय' है। मृगा रानी के पुत्र से यह अध्ययन समुत्पन्न है, इसलिए इसका नाम 'मृगापुत्रीय' रखा गया है।^१

समवायांग के अनुसार इसका नाम 'नियधारिया'—'मृगचारिका' है।^१ यह नामकरण प्रतिपाद्य के आधार पर है।

सुग्रीव नगर में बलभद्र नाम का राजा राज्य करता था। उसको पटरानी का नाम मृगावती था। उसके एक पुत्र था। माता-पिता ने उसका नाम बलश्री रखा। वह लोक में मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। युवा हुआ। पाणि-ग्रहण सम्पन्न हुआ। एक बार वह अपनी पत्नियों के साथ प्रासाद के भरोसे नें बंटा हुआ कोड़ा कर रहा था। मार्ग में लोग आ-जा रहे थे। स्थान-स्थान पर नृत्य-संगीत की मण्डलियां आयोजित थीं। एकाएक उसकी दृष्टि राजमार्ग पर मन्द गति से चलते हुए निर्यन्त्र पर जा टिकी। सुनि के तेजोरोम ललाट, चमकते हुए नेत्रों तथा तपस्या से कृश शरीर को वह अनिमेष दृष्टि से देखता रहा। मन आलोकित हुआ। चिन्तन तीव्र हुआ। उसने सोचा—“अन्यत्र भी मैंने ऐसा रूप देखा है।” विचारों में लीन हुआ और उसे ज्ञात-स्मृति ज्ञान उत्पन्न हो गया। पूर्व जन्म की सारी घटनाएं प्रत्यक्ष हो गईं। उसने जान लिया कि पूर्व-भव में वह भ्रमण था। इस अनुभूति से उसका मन उराग्य से भर गया। वह अपने माता-पिता के पास आया और बोला—“माता! मैं प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ। शरीर अनिर्यन्त्र है, अशुचिभय है, दुःख और क्लेशों का भाजन है। मुझे इसमें कोई रस नहीं है। जिसे आज या कल छोड़ना हो होगा, उसे मैं अभी छोड़ देना चाहता हूँ। संसार में दुःख ही दुःख है। जन्म दुःख है, मरण दुःख है, जरा दुःख है और रोग दुःख है। सारे भोग आपात-भद्र हैं, परिणाम-विरस।”

माता-पिता ने उसे समझाया और भ्रामण्य की कठोरता और उसकी दुश्चरता का दिग्दर्शन कराया। उन्होंने कहा—

“पुत्र! भ्रामण्य दुश्चर है। सुनि को हजारों गुण धारण करने होते हैं। उसे जीवन भर प्राणानिपात से विरति करनी होती है। इसी प्रकार सुषावाद, अदनादान, अवस्रुचय और अपरिग्रह का निवर्जन करना होता है। रात्रि-भोजन का सर्वथा त्याग अत्यन्त कठिन है। अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं।

“भिक्षाचर्या दुःखप्रद होती है। याचना और अलाम दोनों को सहना दुष्कर है। साधु को कुक्षि-संबल होना पड़ता है।

“तुम सुकोमल हो, भ्रामण्य अत्यन्त कठोर है। तुम उसका पाठन नहीं कर सकोगे। दूसरी बात है कि यह भ्रामण्य यावज्जीवन का होता है। इसमें अवधि नहीं होती। भ्रामण्य वातुका-कवक की तरह निःस्वाद और असि-धारा की तरह दुश्चर है। इसका पाठन करना लोहे के चने खाने जैसा है।”

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ४०८:

मिगपुत्तिजं, बलसिरिमाया समुत्पन्नं जन्म।

तन्मा मिगपुत्तिजं, अशुचिभयं होइ नाशवं ॥

२—सप्तशत ३६

इस प्रकार मृगापुत्र और उसके माता-पिता के बीच सुन्दर संवाद चलता है। माता-पिता उसे भोग की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं और वह साधना की ओर अग्रसर होना चाहता है। माता-पिता ने आम्रण्य को जिन उपमाओं से उपमित किया है वे संयम की गुरुता और दुष्करता को प्रभावित करती हैं।

मृगापुत्र का आत्म-विश्वास मूर्ख हो जाता है और वह इन सबको आत्मसात् करने के लिए अपने आपको योग्य बताता है।

अन्त में माता-पिता कहते हैं—“वत्स ! जो कुछ तू कहता है वह सत्य है परन्तु आम्रण्य का सबसे बड़ा दुःख है—निष्प्रतिकर्मता अर्थात् रोग की चिकित्सा न करना।” (श्लोक ७५)

मृगापुत्र ने कहा—“तात् । अरण्य में बसने वाले मृग आदि पशुओं तथा पक्षियों की कौन चिकित्सा करता है ? कौन उनको औषधि देता है ? कौन उनको सुख-पृच्छा करता है ? कौन उनको भक्ष-पान देता है ? मैं भी उन्हीं की भाँति रहूँगा—मृग-चारिका से अपना जीवन बिताऊँगा।” (श्लोक ७६-७७)

माता-पिता ने मृगापुत्र की बातें सुनीं। उसकी संयम-ग्रहण की दृढ़ता से पराभूत हो उन्होंने प्रत्यक्ष की आज्ञा दी। मृगापुत्र मुनि बन गया। उसने पवित्रता से आम्रण्य का पाठन किया और अन्त में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गया।

सगूणविसङ्गमं अज्ज्ञयणं : एकोनविंश अध्यायन मियापुतिज्जं : मृगापुत्रीयम्

१—सुमीवे मूल नयरे रम्मे
काणगुजाणसोहिए ।
राया बलभट्टो त्ति
मिया तस्सग्गमाहिंसी ॥

२—तेसि पुत्ते बलसिरी
मियापुत्ते त्ति विस्सुए ।
अम्मापिऊण दइए
जुवराया दमीसरे ॥

३—नन्दणे सो उ पासाए
कीलए^१ सह इत्थिहि ।
देवो दोगुन्दगो चैव
निच्चं मुइयमाणसो ॥

४—मणिरयणकुट्टिमतले
पासायालोयणट्टिओ ।
आलोएइ नगरस्स
चउक्कतियचच्चरे ॥

५—अह तत्थ अइच्छन्तं
पासई समणसंजयं ।
तवनियमसंजमघरं
सीलड्ढं गुणआगरं ॥

सस्कृत छाया
सुग्रीवे नगरे रम्मे
काननोद्यान-शोभिते ।
राजा बलभट्ट इति
मृगा तस्याप्रमहिंसी ॥

तयोः पुत्रो बलश्रीः
मृगादप्य इति विभूतः ।
अम्मापित्रोदंयितः
युवराजो दमोदरः ॥

नन्दने स तु प्रासादे
काङ्क्षति सह स्त्रीभिः ।
वेधो गोगुन्धकश्चैव
नित्यं मुदित-मानसः ॥

मणि-रत्न-कुट्टिम-तले
प्रासादालोकन-स्थितः ।
आलोकिते नगरस्थ
चतुष्क-त्रिक-चत्वरणि ॥

अथ तत्रातिक्रामन्
पश्यति धम्मण-संयतम् ।
तपो-नियम-संयम-घरं
शीलाद्यं गुणाकरम् ॥

हिन्दी अनुबाद

१—कानन और उद्यान से शोभित सुरम्ह
सुग्रीव नगर में बलभट्ट राजा था । मृगा उसकी
पटरानी थी ।

२—उनके 'बलश्री' नाम का पुत्र था ।
जनता में वह 'मृगापुत्र'—इस नाम से विभूत
था । वह माता-पिता को प्रिय, युवराज और
दमोदर था ।

३—वह दोगुन्धक देवों की भाँति सदा
प्रमुदित-मन रहता हुआ आनन्द देने वाले
प्रासाद में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था ।

४—मणि और रत्न से जड़ित फर्श वाले
प्रासाद के गबाक्ष में बैठा हुआ मृगापुत्र नगर
के चौराहों, तिराहों और चौहट्टों को देख
रहा था ।

५—उसने वहाँ जाते हुए एक संयत
धम्मण को देखा, जो तप नियम और संयम
को धारण करने वाला, शील से समृद्ध और
गुणों का आकर था ।

६—तं देहई^१ मियापुत्ते
दिट्ठीए अणिसिए उ ।
कहि मन्नेरिसं रूपं
दिट्ठपुत्वं मए पुरा ॥

तं पश्यति मृगापुत्रः
दृष्ट्वाऽनिवेद्या तु ।
कुत्र मन्थे ईदृशं रूपं
दृष्ट-पूर्वं मया पुरा ? ॥

६—मृगापुत्र ने उसे अनिमेष-दृष्टि से देखा और मन ही मन चिन्तन करने लगा—
‘मैं मानता हूँ कि ऐसा रूप मैंने पहले कहीं देखा है ।’

७—साहुस्स दरिसणे तस्स
अज्झवसाणम्मि सोहणे ।
मोहंगयस्स सन्तस्स
जाईसरणं समुप्पन्नं ॥

साधोर्दशने तस्य
अध्यवसाने शोभने ।
मोहं गतस्य सतः
जाति-स्मरणं समुत्पन्नम् ॥

७—गाधु के दर्शन और अध्यवसाय पवित्र होने पर ‘मैंने ऐसा कहीं देखा है’—ऐसी सचन चित्त-वृत्ति हुई और उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हो आई ।

देवलो ग चुओ संतो
माण् सं भवमागओ ।
सन्निनाणे समुप्पण्णे
जाइं सरइ पुराणयं ॥ १०

देवलोक-च्युतः सन्
मानुषं भवमागतः ।
संज्ञि-ज्ञाने समुत्पन्ने
जाति स्मरति पौराणिकीम् ॥]

[देवलोक में चरत हो मनुष्य-जन्म में आया । ममनस्क-ज्ञान उत्पन्न हुआ तब पूर्व-जन्म की स्मृति हुई ।]

८—जाईसरणे समुप्पन्ने
मियापुत्ते महिड्डिए ।
सरई पौराणियं जाइं
सामण्णं च पुराकयं ॥

जाति-स्मरणे समुत्पन्ने
मृगापुत्रो महद्भिकः ।
स्मरति पौराणिकीं जातिं
श्रामण्यं च पुराकृतम् ॥

८—जाति-स्मृति ज्ञान उत्पन्न होने पर महद्भिक मृगापुत्र को पूर्व-जन्म और पूर्व-जन्म श्रामण्य की स्मृति हो आई ।

९—विसएहि अरज्जन्तो
रज्जन्तो संजमम्मि य ।
अम्मापियरं उवागम्म
इमं वयणमम्बवी ॥

विषयेष्वरज्यन्
रज्यन् संयमे च ।
अम्बापितरावुपागम्य
इदं वचनमम्बवीन् ॥

९—अब विषयों में उसकी आसक्ति नहीं रही । वह संयम में अन्तर्गत हो गया । माता-पिता के समीप आ उमने इस प्रकार कहा—

१०—सुयाणि मे पंच महव्वयाणि
नरएमुदुक्खं च तिरिक्खजोणिमु ।
निविण्णकामो मि^१ महण्णवाओ
अनुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ! ॥

श्रुतानि मया पंच महाव्रतानि
नरकेषु दुःखं च तिर्यग-योनिषु ।
निविण्णा-कामोऽस्मि महार्णवात्
अनुजानात प्रव्रजिष्यामि मातः ॥

१०—‘मैंने पाँच महाव्रतों को मना है । नरक और तिर्यक् योनियों में दुःख है । मैं संसार समुद्र में निविण्ण-काम (विरक्त) हो गया हूँ । मैं प्रव्रजित होऊँगा । माता ! मुझे आप अनुज्ञा दें ।’

१. येहई (वृ०) ।

२. × (आ, इ, स, छ०, घ०, ङ०) ।

३. झि (स) ।

मियापुतिजं (मृगापुत्रीय)

२४१

अध्ययन १६ : श्लोक ११-१६

११—अम्मताय ! मए भोगा
भुत्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा
अणुबन्धदुहावहा ॥

१२—इमं शरीरं अणिच्चं
अमुद्दं अमुद्दसंभवं ।
असायावासमिणं
दुक्खकेसाण भायणं ॥

१३—असासए^१ शरीरम्मि
रद्धं नोवलभामहं ।
पच्छा पुरा व चइयव्वे
फेणवुव्वयसन्निभे ॥

१४—माणुस्से असारम्मि
वाहीरोगाण आलए ।
जरावरणवत्थम्मि
वणं पि न रमामहं ॥

१५—जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं
रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हू संसारो
जत्थ कीसन्ति जन्तवो^२ ॥

१६—खेत्तं वत्थं हिरण्यं च
पुत्तदारं च बन्धवा^३ ।
चइत्ताणं इमं देहं
गन्तव्वमवसस्स मे ॥

अम्ब-तास ! मया भोगाः
भुक्ता विष-फलोपमाः ।
पश्चात् कटुक-विपाकाः
अनुबन्ध-दुःखावहाः ॥

इदं शरीरमनित्यम्
अशुच्यशुचि-संभवम् ।
अशाश्वतावासमिदं
दुःख-कलेशानां भाजनम् ॥

अशाश्वते शरीरे
रतिं नोपलभेऽहम् ।
पश्चान् पुरा वा त्यक्तव्ये
फेन-बुबुद-सन्निभे ॥

मानुषत्वे असारे
व्याधि-रोगाणामालये ।
जरा-मरण-प्रस्ते
क्षणमपि न रमेऽहम् ॥

जन्म दुःखं जरादुःखं
रोगाश्च मरणानि च ।
अहो दुःखं खलु संसारः
यत्र विलयन्ति जन्तवः ॥

क्षेत्रं वास्तु हिरण्यं च
पुत्र-वारादिव बान्धवान् ।
त्यक्त्वेमं देहं
गन्तव्यमवशास्य मे ॥

११—“माता-पिता ! मैं भोगों को भोग
बुका हूँ । ये भोग विष के तुल्य हैं, इनका
परिणाम कटु होता है और ये निरन्तर दुःख
देने वाले हैं ।

१२—“यह शरीर अनित्य है, अशुचि है,
अशुचि से उत्पन्न है, आत्मा का यह अशाश्वत
आवास है तथा दुःख और क्लेशों का
भाजन है ।

१३—“इस अशाश्वत-शरीर में मुझे
आनन्द नहीं मिल रहा है । इसे पहले या पीछे
जब कभी छोड़ना है । यह पानी के बुलबुले
के समान नश्वर है ।

१४—“मनुष्य-जीवन असार है, व्याधि
और रोगों का घर है, जरा और मरण से ग्रस्त
है । इसमें मुझे एक क्षण भी आनन्द नहीं मिल
रहा है ।

१५—“जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है,
रोग दुःख है और मृत्यु दुःख है । अहो !
संसार दुःख ही है, जिसमें जीव क्लेश रा
रहे हैं ।

१६—“भूमि, घर, सोना, पुत्र, स्त्री,
बान्धव और इस शरीर को छोड़ कर मुझे
अवश हो कले जाना है ।

१. आसासए (अ, ड) ।

२. जन्मजो (भा, झ०) ; वारिणो (ड, ख) ।

३. बन्धव (ड) ।

१७—जहा किम्पागफलाणं
परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं
परिणामो न सुन्दरो ॥

यथा किम्पाक-फलानां
परिणामो न सुन्दरः ।
एवं भुक्तानां भोगानां
परिणामो न सुन्दरः ॥

१७—“जिस प्रकार किम्पाक-फल खाने
का परिणाम सुन्दर नहीं होता उसी प्रकार
भोग हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं
होता ।

१८—अद्धानं जो महन्तं तु
अपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो दुहो होइ
छुहातप्हाए पीडिओ ॥

अध्वानं यो महान्तं तु
अपाथेयः प्रवर्जितः ।
गच्छन् स दुःखो भवति
शुधा-तृष्णया पीडितः ॥

१८—“जो मनुष्य लम्बा मार्ग लेता है
और साथ में सम्बल नहीं लेता, वह भूख और
प्यास से पीड़ित हो कर चलता हुआ दुःखी
होता है ।

१९ एवं धम्मं अकाऊणं
जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो दुहो होइ
वाहीरेगेहि पीडिओ ॥

एवं धर्ममकृत्वा
यो गच्छति परं भवम् ।
गच्छन् स दुःखो भवति
व्याधि-रोगः पीडितः ॥

१९—“इसी प्रकार जो मनुष्य धर्म किए
बिना परभव में जाता है वह व्याधि और रोग
में पीड़ित होकर जीवन-यापन करना हुआ
दुःखी होता है ।

२०—अद्धानं जो महन्तं तु
सपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो मुहो होइ
छुहातप्हाविवज्जिओ ॥

अध्वानं यो महान्तं तु
सपाथेयः प्रवर्जितः ।
गच्छन् स सुखो भवति
शुधा-तृष्णा-विषजितः ॥

२०—“जो मनुष्य लम्बा मार्ग लेता है,
किन्तु सम्बल कर परभव में जाता है, वह अल्प-
हो कर चलता हुआ सुखी होता है ।

२१—एवं धम्मं पि काऊणं
जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो मुहो होइ
अप्पकम्मं अवैयणे ॥

एवं धर्ममपि कृत्वा
यो गच्छति परं भवम् ।
गच्छन् स सुखो भवति
अल्पकर्मज्ज्वेदनः ॥

२१—“इसी प्रकार जो मनुष्य धर्म की
आराधना कर परभव में जाता है, वह अल्प-
कर्म वाला और वेदना रहित हो कर जीवन-
यापन करता हुआ सुखी होता है ।

२२—जहा गेहे पलित्थम्म
तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभण्डाणि तीणेइ
असारं अवउज्झइ ॥

यथा गेहे प्रवीणो
तस्य गेहस्य यः प्रभुः ।
सार-भाण्डानि गमयति
असारमपोज्झति ॥

२२—“जैसे घर में आग लग जाने पर
उस घर का जो स्वामी होता है, वह मूल्यवान्
वस्तुओं को उसमें से निकालता है और मूल्य-
हीन वस्तुओं को वहीं छोड़ देता है,

२३—एवं लोए पलित्तिम्मि
जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि
तुव्वमेहि अणुमन्निओ ॥

एवं लोके-प्रदीप्ते
जरया मरणेन च ।
आत्मानं तारयिष्यामि
युष्माभिरनुमतः ॥

२३—“इसी प्रकार यह लोक जरा और मृत्यु से प्रज्वलित हो रहा है । मैं आपको आशा पाकर उसमें से अपने आपको निकालूँगा ।”

२४—तं बित्ताम्मापियरो
सामणं पुत्त ! दुइच्चरं ।
गुणाणं तु सहस्साइं
धारेयव्वाइं भिक्खुणो^१ ॥

तंबूतोऽम्बापितरो
श्रामण्यं पुत्र ! दुश्चरम् ।
गुणानां तु महद्वाणि
धारयितव्यानि भिक्षोः ॥

२४—माता-पिता ने उससे कहा—
“पुत्र ! श्रामण्य का आचरण बहुत कठिन है ।
भिक्षु को हजारों गण धारण करने होते हैं ।

२५—समया सव्वभूएसु
सत्तुमिंतंमु वा जणे ।
पाणाइवायविरई
जावज्जीवाए दुकरा^२ ॥

समता सर्व-भूतेषु
शत्रु-मित्रेषु वा जगति ।
प्राणातिपात-विरतिः
यावज्जीवं दुष्करा ॥

२५—“विश्व के शत्रु और मित्र सभी जीवों के प्रति समभाव रखना और यावज्जीवन प्राणातिपात की विरति करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

२६—निच्चकालोऽप्यमत्तेणं
मुसावायविवज्जणं ।
भासियव्वं हियं सच्चवं
निच्चाउत्तेण दुकरं ॥

नित्य-कालाप्रमत्तेन
मृषावाद-विवर्जनम् ।
भाषितव्यं हितं सत्यं
नित्यायुक्तेन दुष्करम् ॥

२६—“सदा अप्रमत्त रह कर मृषावाद का वर्जन करना और सतत सावधान रह कर हितकारी सत्य वचन बोलना बहुत ही कठिन कार्य है ।

२७—दन्तसोहणमाइस्स
अदत्तस्स विवज्जणं ।
अणवज्जेसण्णजस्स
गेण्णहा अवि दुकरं ॥

दन्तशोधनादेः
अदत्तस्य विवर्जनम् ।
अनवद्येषणीयस्य
ग्रहणमपि दुष्करम् ॥

२७—“दन्तों की धारि को भी बिना दिए न लेना और ऐसी दत्त वस्तु भी वही लेना, जो अनवद्य ऐषणीय हो - बहुत ही कठिन कार्य है ।

२८—विरई अबम्मचेरस्स
कामभोगरसन्नुणा ।
उगं महव्वयं वम्मं
धारेयव्वं सुदुक्करं ॥

विरतिरब्रह्मचर्यस्य
काम-भोग-रसक्षेपः ।
उग्रं महाव्रतं ब्रह्म
धारयितव्यं सुदुष्करम् ॥

२८—“काम-भोग का रस जानने वाले व्यक्तिके लिए ब्रह्मचर्य की विरति करना और उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

१. भिक्खुणा (४०) ; भिक्खुणो (४० पा०) ।

२. दुक्करं (४०, ४०) ।

२९—धणधन्नपेसवगेसु
परिग्रहविवज्जणं^१ ।
सव्वारम्भपरिञ्चाओ
निम्ममत्तं सुदुक्करं^२ ॥

धन-धान्य-प्रेष्यवर्गेषु
परिग्रह-विवर्जनम् ।
सर्वारम्भ-परित्यागः
निर्म्ममत्वं सुदुष्करम् ॥

२९—“धन-धान्य और प्रेष्य-वर्ग के परिग्रहण का वर्जन करना, सब आरम्भों (द्रव्य की उत्पत्ति के व्यापारों) और ममत्व का त्याग करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३०—चउव्विहे वि आहारे
राईभोयणवज्जणा ।
सन्निहीसंचओ चेव
वज्जेयव्वो सुदुक्करो^३ ॥

चतुर्विधेऽप्याहारे
रात्रि-भोजन-वर्जनम् ।
सन्निधि-संचयश्चैव
वर्जयितव्यः सुदुष्करः ॥

३०—“चतुर्विध आहार को रात में खाने का त्याग करना तथा सन्निधि और संचय का वर्जन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३१—छुहा तप्हा य सीउण्हं
दंसमसगवेयणा ।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य
तणफासा जल्लमेव य ॥

क्षुधा तृषा च शीतोष्णं
दंश-मशक-वेदना ।
आक्रोशा दुःख-शय्या च
तृण-स्पर्शा ‘जल्ल’ मेव च ॥

३१—“भूल, व्यास, सर्दी, गर्मी, डोंस और मच्छरों का कट, आक्रोश-वचन, कष्टप्रद उपाश्रय, घास का बिछोना, मेल,

३२—तालणा तज्जणा चेव
वह्वन्धपरीसहा ।
दुक्खं भिक्षापरिया
जायणा य अलाभया ॥

ताडना तर्जना चैव
वध-बन्धो परीषहो ।
दुःखं भिक्षा-चर्या
याचना चालाभता ॥

३२—ताडना, तर्जना, वध, बन्धन का कट, भिक्षा-चर्या, याचना और अलाभ— इन्हे सहन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

३३—कावोया जा इमा वित्ती
केसलोओ य दारुणो ।
दुक्खं बम्भवयं घोर
घारेउं अ महप्पणो ॥

कापोती देयं वृत्तिः
केश-लोचदश्च दारुणः ।
दुःखं ब्रह्मव्रतं घोरं
धारयितुं च महात्मनः ॥

३३—“यह जो कापोती-वृत्ति (कबूतर के समान दोष-भीरु वृत्ति), दारुण केश-लोच और घोर-ब्रह्मचर्य को धारण करना है, वह महान् आत्माओं के लिए भी दुष्कर है ।

३४—सुहोइओ तुमं पुत्ता !
सुकुमालो सुमज्जिओ ।
न हू सी पन्न तुमं पुत्ता !
सामण्णमणुपालिउं^३ ॥

सुखोचितस्त्वं पुत्र !
सुकुमारश्च सुसम्पन्नतः ।
न खलु अस्मि प्रभुस्त्वं पुत्र !
आमण्यमनुपालयितुम् ॥

३४—“पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है, सुकुमार है, साफ-सुधरा रहने वाला है । पुत्र ! तू श्रामण्य का पालन करने के लिए समर्थ नहीं है ।

१. ० विवज्जणा (भा, इ, ह, छ०) ।

२. सुदुक्करं (उ) ।

३. ० पालिया (भ, भा, इ, उ, छ०) ।

मियापुतिज्जं (मृगापुत्रोय)

२४५

अध्ययन १६ : श्लोक ३५-४०

३५—जावज्जीवमविस्सामो

गुणाणं तु महाभरो ।
गुरुओ लोहभारो व्व
जो पुत्ता ! होइ दुव्वहो ॥

यावज्जीवमविधामः

गुणानां तु महाभरः ।
गुरुको लोहभार इव
यः पुत्र ! भवति दुर्बलः ॥

३५—“पुत्र ! आश्रम्य मैं जीवन पर्यन्त विषम नहीं है । यह गुणों का महान् भार है । भारी भरकम लोह-भार की भाँति इसे उठाना बहुत ही कठिन है ।

३६—आगासे गंगसोउ व्व
पडिसोओ व्व दुत्तरो ।
बाहाहिं सागरो चेव
तरियव्वो गुणोयही ॥

आकाशे गङ्गा-स्रोत इव
प्रतिस्नोत इव दुस्तरः ।
बाहुभ्यां सागरश्चैव
तरितव्यो गुणोदधिः ॥

३६—“आकाश-गंगा के स्रोत, प्रति-स्रोत और भुजाओं से सागर को तेरना जैसे कठिन कार्य है वैसे ही गुणोदधि-संयम को तेरना कठिन कार्य है ।

३७—वालुयाकवले^१ चेव
निरस्साए उ^२ संजमे ।
असिधारगमणं चेव
दुक्करं चरित्तं तवो ॥

बालुका-कवलश्चैव
निरास्वादस्तु संयमः ।
असि-धारा-गमनं चैव
दुष्करं चरित्तुं तपः ॥

३७—“मंथम बालू के कोर की तरह स्वाद-रहित है । तप का आचरण करना तलवार की धार पर चलने जैसा है ।

३८—अहोवेगन्तदिट्ठीए
चरित्ते पुत्त ! दुच्चरे ।
जवा लोहमया चेव
चावेयव्वा सुदुक्करं ॥

अहिरिवैकान्तदृष्टया
चारित्र्यं पुत्र ! दुष्चरम् ।
यवा लोहमयाश्चैव
वर्चयितव्या सुदुष्करम् ॥

३८—“पुत्र ! साँप जैसे एकाग्र-दृष्टि से चलता है, वैसे एकाग्र-दृष्टि से चारित्र्य का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है । लोहे के जवों को चवाना जैसे कठिन है वैसे ही चारित्र्य का पालन कठिन है ।

३९—जहा अगिसिहा दित्ता
पाउं होइ सुदुक्करं^३ ।
तह दुक्करं करेउं जे
तारुणे समणत्तणं ॥

यथाग्निशिला दीप्ता
पातुं भवति सुदुष्करम् ।
तथा दुष्करं कर्तुं ‘जे’
तारुण्ये श्रमणत्वम् ॥

३९—“जैसे प्रज्वलित अग्नि-शिला को पीना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही योग्यन में श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

४०—जहा दुक्खं भरेउं जे
होइ वायस्स कोत्थलो ।
तहा दुक्खं करेउं जे
कीवेणं समणत्तणं ॥

यथा दुःखं भर्तुं ‘जे’
भवति वायोः ‘कोत्थलो’
तथा दुष्करं कर्तुं ‘जे’
बलीवेन श्रमणत्वम् ॥

४०—“जैसे वस्त्र के थैले को हवा से भरना कठिन कार्य है वैसे ही सत्यहीन व्यक्ति के लिए श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

१. * कवळा (अ) ।

२. व (उ) ।

३. सुदुक्करा (सु० पा०) ।

४१—जहा तुलाए तोलेउं
दुक्करं मन्दरो गिरी ।
तहा निहुयं नीसकं
दुक्करं समणत्तणं ॥

यथा तुलया तोलयितुं
दुष्करं मन्दरो गिरिः ।
तथा निभृतं निःशङ्कं
दुष्करं भ्रमणत्वम् ॥

४१—“जैसे मेह-पर्वत को तराजू से तोलना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही निष्कल और निर्भय भाव से भ्रमण-धर्म का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

४२—जहा भुयाहि तरिउं
दुक्करं रयणागरो ।
तहा अणुवसन्तेणं
दुक्करं दमसागरो ॥

यथा भुजाभ्यां तरितुं
दुष्करं रत्नाकरः ।
तथाऽणुपशान्तेन
दुष्करं दम-सागरः ॥

४२—“जैसे समुद्र को भुजाओं से तरना बहुत ही कठिन कार्य है, वैसे ही उपशमहीन व्यक्ति के लिए दम्पणी समुद्र को तरना बहुत ही कठिन कार्य है ।

४३—भुज माणुस्सए भोगे
पंचलक्षणए तुमं ।
भुत्तभोगी तओ जाया !
पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥

भुङ्क्ष्व मानुष्यान् भोगान्
पंच-लक्षणान् त्वम् ।
भुक्त-भोगी ततो जात !
पश्चाद् धर्मं चरेः ॥

४३—“पुत्र ! तू मनुष्य सम्बन्धी पाँच इन्द्रियो के भोगों का भोग कर । फिर भुक्त-भोगी हो कर मुनि-धर्म का आचरण करना ।”

४४—‘तं ब्रित ऽम्मापियरो’
एवमेयं जहा फुडं ।
इह लोए निप्पिवासस्स
नत्थि किञ्चि वि दुक्करं ॥

तद् ब्रूतो अम्मापितरो
एवमेतद् यथास्फुटम् ।
इह लोके निष्पिपासस्य
नास्ति किञ्चिदपि दुष्करम् ॥

४४—सुतापुत्र ने कहा—“माता-पिता ! जो आपने कहा वह सही है किन्तु जिस व्यक्ति की ऐहिक सुखों की प्यास बुझ चुकी है उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।

४५—सारीरमाणसा चेव
वेयणाओ अणत्तसो ।
मए सोढावो भीमाओ
असइं दुक्खभयाणि य ॥

शारीरमानस्यश्चैव
वेदनास्तु अनन्तशः ।
मया सोढा भीमाः
असह्य दुःख-भयानि च ॥

४५—“मैंने भयंकर शारीरिक और मानसिक वेदनाओं को अनन्त बार सहा है और अनेक बार दुःख एवं भय का अनुभव किया है ।

४६—जरावरणकन्तारे
चाउरन्ते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमाणि
जम्मानि मरणाणि य ॥

जरा-मरण-कान्तारे
चतुरन्ते भयाकरे ।
मया सोढानि भीमानि
जन्मानि मरणानि च ॥

४६—“मैंने चार जल बाले और भय के आकार जन्म-मरणरूपी जंगल में भयंकर जन्म-मरणों को सहा है ।

१. दुक्करं (आ) ।

२. सो वे अम्मापियरो (उ, दू० पा०, ऋ०) ; तो ब्रूतो अम्मापियरो (दू० पा०) ।

४७—जहा इहं अगणी उण्णो
'एतोऽणन्तगुणे तहि' ।
नरएमु वेयणा उण्णो
अस्साया वेइया मए ॥

४८—जहा 'इमं इहं' सीयं
'एतोऽणन्तगुणं तहि' ।
नरएसु वेयणा सीया
अस्साया वेइया मए ॥

४९—कन्दन्तो कंदुकुम्भीसु
उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलन्तम्मि
पक्खुवो अणन्तसो ॥

५०—महादवगिसंकासे मरुम्मि
वहरवालुए ।
कल्म्ववालुयाए य
दड्ढपुवो अणन्तसो ॥

५१—रसन्तो कंदुकुम्भीसु
उड्ढं बढो अबन्धवो ।
करवत्तकरकयाईहि
छिन्नपुवो अणन्तसो ॥

५२—अइतिक्खकण्टगाइण्णे
तुंगे सिम्बल्लिपायवे ।
खेवियं पासबढेणं
कड्ढोक्कड्ढाहि दुकरं ॥

यथेहान्निरुणः
इतोऽणन्तगुणस्तत्र ।
नरकेषु वेदना उण्णा
असाता वेविता मया ॥

यथेदमिह शीतम्
इतोऽणन्तगुणं तत्र ।
नरकेषु वेदना शीता
असातावेविता मया ॥

कन्दन् कन्दु-कुम्भीसु
ऊर्ध्व-पावोऽधः-शिरोः ।
हुताशने ज्वलति
पक्व-पूर्वोऽन्ततः ॥

महादवाग्नि-संकाशे
मरो वज्र-बालुकायाम् ।
कल्म्व-बालुकायां च
दग्ध-पूर्वोऽन्ततः ॥

रसन् कन्दु-कुम्भीसु
ऊर्ध्वं बढोऽबन्धवः ।
करपत्र-क्रकचैः
छिन्न-पूर्वोऽन्ततः ॥

अतितीक्ष्ण-कण्टकाक्षीणं
तुंगे शाल्मलि-पादये ।
ओषितं पाश-बद्धं न
कर्वापकर्वैर्दुष्करम् ॥

४७—“जैसे यहाँ अग्नि उष्ण है, इससे
अनन्त गुना अधिक दुःखमय उष्ण-वेदना वहाँ
नरक में मीने सही है ।

४८—“जैसे यहाँ यह शीत है, इससे
अनन्त गुना अधिक दुःखमय शीत-वेदना वहाँ
नरक में मीने सही है ।

४९—“पकाने के पात्र में, जलती हुई
अग्नि में पेरों को ऊँचा और सिर को नीचा
कर आक्रमण करता हुआ मैं अनन्त बार पकाया
गया हूँ ।

५०—“महा दवाग्नि और महा-देश और
वज्रबालुका जैसे कदम्ब नदी के बासु में मैं
अनन्त बार जलाया गया हूँ ।

५१—“मैं पाक-पात्र में बाण रहित हो
कर आक्रमण करता हुआ ऊँचा बाँधा गया तथा
करबल और बारा आदि के द्वारा अनन्त बार
छेदा गया हूँ ।

५२—“अत्यन्त तीखे काँटों वाले ऊँचे
शाल्मलि वृक्ष पर पाश से बाँधे, इधर-उधर
लींच कर भस्म होकर से मैं लिन्न किया
गया हूँ ।

१. इतोऽणन्तगुणा तहि (वृ० पा०) ।
२. इहं इमं (व, ख०) ।
३. एतोऽणन्तगुणा तहि (वृ० पा०) ।
४. खेवियं (वृ०) ।

५३—महाजन्तेसु उच्छू वा
आरसन्तो सुभेरवं ।
पीलाओ मि सकम्मेहि
पावकम्मो अणन्तसो ॥

महायन्त्रोष्णिकुरिव
आरसन् सुभेरवम् ।
पीडितोऽस्मि स्वकर्मभिः
पाप-कर्मजिनन्तसः ॥

५३—“पापकर्मा मैं अति भयंकर आक्रमण करता हुआ अपने ही कर्मों द्वारा महायन्त्रों में जल की भाँति अनन्त बार पेरा गया हूँ ।

५४—कूबन्तो कोलसुणएहि
सामेहि सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो
विण्फुरन्तो^१ अणेणसो ॥

कूजन् कोल-शूनकैः
श्यामेः शबलैश्च ।
पातितः स्फाटितः छिन्नः
विस्फुरन्नेनकशः ॥

५४—“मैं इधर-उधर जाता और आक्रमण करता हुआ काले और चितकबरे सूअर एवं कुत्तों के द्वारा अनेक बार गिराया, फाड़ा और काटा गया हूँ ।

५५—असीहि^२ अयसिवण्णाहि
भल्लीहि पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य
ओइण्णो^३ पावकम्मुणा ॥

असिभिरतसो-वर्णाभिः
भल्लीभिः पट्टीश्व ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नदश
उपपन्नः पाप-कर्मणा ॥

५५—“पाप-कर्मों के द्वारा तर्क में अवतरित हुआ मैं अलसी के फूलों के समान नीले रंग वाली तलवारों, भट्टियों और लोह-दण्डों के द्वारा छेदा, भेदा और छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त किया गया हूँ ।

५६—अवसो लोहरहे जुतो
जलन्ते^४ समिलाजुए ।
चोइओ तोत्तजुत्तेहि
रोज्ज्मो वा जह पाडिओ ॥

अवशो लोह-रथे युक्तः
ज्वलति समिला-युते ।
चोवितस्सोत्र-योक्तेः
‘रोज्ज्मो’ वा यथा पातितः ॥

५६—“युग-कीलक (जूए के छेदों में डाली जाने वाली लकड़ी की कीलों) से युक्त जलते हुए लोह-रथ में परवश बनाया गया मैं जोता गया, बाबुक और रस्सों के द्वारा हाँका गया तथा रोज़ की भाँति भूमि पर गिराया गया हूँ ।

५७—हुयासणे जलन्तम्मि
चियासु महिसो विव ।
दड्ढो पको य अवसो
पावकम्मेहि पाविओ ॥

हुताशने ज्वलति
चित्तासु महिष इव ।
दग्धः पक्कदबावशः
पाप-कर्मभिः प्रायुतः ॥

५७—“पाप-कर्मों से घिरा और परवश हुआ मैं भैंसे की भाँति अग्नि की जलती हुई चित्ताओं में जलाया और पकाया गया हूँ ।

५८—बला संडासतुण्डेहि
लोहतुण्डेहि पक्खिहि ।
विलुत्तो विलवन्तो हं
ढंकगिद्धेहि^५णन्तसो ॥

बलान् संवश-तुण्डैः
लोह-तुण्डैः पक्षिभिः ।
विलुप्तो विलपन्नहम्
ढंक-गुर्ध्रै रत्नन्तसः ॥

५८—“संडासी जैसी चोंच वाले और लोह जैसी कठोर चोंच वाले ढंक और गीध पक्षियों के द्वारा बिलाप करता हुआ मैं बल-प्रयोग पूर्वक अनन्त बार मोचा गया हूँ ।

१. विण्फुरन्तो (अ, ५०) ।

२. अरसाहि (५०) ; असीहि (५० पा०) ।

३. अववण्णो (५०) ।

४. जलन्ते (५० पा०) ।

मियापुतिजं (मृगापुत्रीय)

२४६

अध्ययन १६ : श्लोक ५६-६३

५९—तण्हाकिलन्तो घावन्तो
पत्तो बेयरणि नदि ।
ज ठं 'पाहिं ति' चिन्तन्तो
खुरधाराहि विवाइओ^१ ॥

तृष्णा-कलान्तो घावन्
प्राप्तो वंतरणी नदीम् ।
जलं पास्यामीति चिन्तयन्
शुर-धाराभिर्विपादितः ॥

५९—'व्यास से पीड़ित होकर मैं दौड़ता
हुआ वंतरणी नदी पर पहुँचा । जल पीऊँगा—
यह सोच रहा था, इतने में खुरे की धार से मैं
चीरा गया ।

६०—उण्हाभित्तो संपत्तो
असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहि पडन्तेहि
छिन्नपुव्वो अणेगसो^२ ॥

उष्णाभितप्तः संप्राप्तः
असि-पत्रं महावनम् ।
असि-पत्रोः पतद्भिः
छिन्न-पूर्वोऽनेकदाः ॥

६०—'गर्मी से संतप्त होकर असि-पत्र
महावन में गया । वहाँ गिरते हुए तलवार के
समान तीक्ष्ण पत्तों से अनेक बार छेदा गया हूँ ।

६१—मुग्गरेहि मुसंडीहि
सूलेहि मुसलेहि य ।
गयासं भग्गत्तेहि
पत्तं दुक्खं अणन्तसो ॥

मुद्गरैः 'मुसंडीहि'
शूलैर्मुसलैश्च ।
गताशं भग्न-गात्रोः
प्राप्तं दुःखमनन्तशः ॥

६१—'मुद्गरों, गुण्डियों, शूलों और
मुसलों से त्राण-हीन दशा में मेरा शरीर चूर-
चूर किया गया—इस प्रकार मैं अनन्त बार
दुःख को प्राप्त हुआ हूँ ।

६२—खुरेहि तिक्खधारेहि^३
छुरियाहि^४ कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो
उकतो^५ य अणेगसो^६ ॥

शुरैः तीक्ष्ण-धारैः
क्षुरिकाभिः कल्पनीभिश्च ।
कल्पितः पाटितश्छिन्नः
उत्क्रान्तश्चानेकदाः ॥

६२—'तेज धार वाले छुरों, छुरियों और
कच्चियों से मैं अनेक बार खण्ड-खण्ड किया
गया, दो टुक किया गया और छेदा गया हूँ
तथा मेरी चमड़ी उतारी गई है ।

६३—पासेहि कूडजालेहि
मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ^७ बद्धण्ढो अ
'बहु तो'^८ चेव विवाइओ ॥

पाशैः कूट-जालैः
मृग इव अवशोऽहम् ।
बाहितो बद्ध-रुद्धो वा
बहुनाश्चैव विपादितः ॥

६३—'पाशों और कूटजालों द्वारा मृग
की भाँति परवश बना हुआ मैं अनेक बार ठारा
गया, बाँधा गया, रोका गया और मारा
गया हूँ ।

१. पाहं ति (वृ०) ।

२. विपाइओ (वृ०) ; विवाइओ (वृ० पा०) ।

३, ८. अणंतसो (उ, ऋ०) ।

४. तिक्ख धारेहि (उ) ।

५. छुरीहि (ऋ०) ।

६. उक्कितो (वृ० पा०, छ) ।

७. वाहिओ (वृ० पा०) ।

८. विपसो (उ, ऋ०) ।

६४—गलेहि मगरजालेहि
मच्छो वा अवसो अहं ।
उल्लिओ^१ फालिओ गहिओ
मारिओ य अणन्तसो ॥

गलेमंकर-जालैः
मत्स्य इव अवसोऽहम् ।
उल्लिखितः पाटितो गृहीतः
मारितश्चाऽनन्तशः ॥

६४ - "मछली के फँसाने की कंटियों और मगरों को पकड़ने के जालों के द्वारा मत्स्य की तरह परवश बना हुआ मैं अनन्त बार खीचा, फाड़ा, पकड़ा और मारा गया हूँ ।

६५—वीदंसएहि^२ जालेहि
लेप्पाहि सउणो विव ।
गहिओ लगो^३ बद्धो य
मारिओ य अणन्तसो ॥

विदंशकंजालैः
लेपैः शकुन इव ।
गृहीतो लग्नो बद्धश्च
मारितश्चाऽनन्तशः ॥

६५—"बाज पक्षियों, जालों और वज्र-लेपों के द्वारा पक्षी की भाँति मैं अनन्त बार पकड़ा, चिपकाया, बाँधा और मारा गया हूँ ।

६६—कुहाडफरमुमाईहि
वड्ढईहि दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो
तच्छिओ य अणन्तसो ॥

कुठार-परश्वादिभिः
वधंकिभिर्द्रुम इव ।
कुट्टितः पाटितश्छिन्नः
तक्षितश्चाऽनन्तशः ॥

६६ - "बड़ई के द्वारा दृक्ष की भाँति कुल्हाड़ी और फरवा आदि के द्वारा मैं अनन्त बार कूटा, दो टूक किया, छेदा और छीला गया हूँ ।

६७—चवेडमुट्टिमाईहि
कुमारेहि अयं विव ।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो
चुणिओ य अणन्तसो ॥

चपेटा-मुष्ट्यादिभिः
कुमारे रय इव ।
ताडितः कुट्टितो भिन्नः
चूर्णितश्चाऽनन्तशः ॥

६७—"कोठार के द्वारा लोह की भाँति चपट और मूट्टी आदि के द्वारा मैं अनन्त बार पीटा, कूटा, पेदा और चूरा किया गया हूँ ।

६८—तत्ताइं तम्बलोहाइं
तउयाइं सीसयाणि य ।
पाइओ कलकलन्ताइं
आरसन्तो सुभेरव ॥

तथानि ताम्र-लोहानि
श्रपूकानि सीसकानि च ।
पायितः कलकलायमानानि
आरसन् सुभेरवम् ॥

६८—"भयंकर आकन्द करते हुए मुखे गर्म और कलकल शब्द करता हुआ तांबा, लोहा, रांगा और मीसा पिलाया गया ।

१. उल्लिओ (उ, ऋ०) ।

२. वीदंसवपिहि (ऋ०) ; वीदंस देहिण (उ) ।

३. लगो (अ) ।

मियापुतिज्जं (मृगापुत्रीय)

२५१

अध्ययन १६ : श्लोक ६६-७३

६९—तुहं प्रियाइं मंसाइं
खण्डाईं सोल्लाणि य ।
खाविओ मि^१ समंसाइं
अग्निवण्णाइं णेगसो ॥

तव प्रियाणि मांसानि
खण्डानि शूल्यकानि च ।
खादितोऽस्मि स्व-मांसानि
अग्निवर्णान्यनेकशः ॥

६९—'तुझे खण्ड किया हुआ और शूल में
बोस कर पकाया हुआ मांस प्रिय था—यह
याद दिलाकर मेरे शरीर का मांस काट अग्नि
जैसा लाल कर मुझे खिलाया गया ।

७०—तुहं प्रिया सुरा सोह
मेरओ य मूहणि य ।
पाइओ^२ मि जलन्तीओ
वसाओ रुहिराणि य ॥

तव प्रिया सुरा तीक्ष्णः
मेरकइव मयूनि च ।
पादितोऽस्मि ज्वलन्तीः
वसा रुधिराणि च ॥

७०—'तुझे सुरा, तीक्ष्ण, मैरेय और मयू—
ये मदिराएँ प्रिय थीं—यह याद दिलाकर मुझे
जलन्ती हुई चर्बी और रुधिर खिलाया गया ।

७१—निच्चं^३ भीएण तत्थेण
दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा
वेयणा वेइया मए ॥

नित्यं भीतेन त्रस्तेन
दुःखितेन व्यपितेन च ।
परमा दुःख-संबद्धा
वेदना वेदिता मया ॥

७१—'सदा भयभीत, संत्रस्त, दुःखित
और व्यपित रूप में रहते हुए मैंने परम दुःखमय
वेदना का अनुभव किया है ।

७२—तिव्वचण्डप्पगाढाओ
घोराओ अइदुस्सहा ।
मह्वभयाओ^४ भीमाओ
नरएसु वेइया मए ॥

तीव्र-चण्ड-प्रगाढाः
घोरा अतिदुस्सहाः ।
मह्वाभया भीमाः
नरकेषु वेदिता मया ॥

७२—'तीव्र, चण्ड, प्रगाढ़, घोर, अत्यन्त
दुःसह, भीम और अत्यन्त भयंकर वेदनाओं का
मैंने नरक-लोक में अनुभव किया है ।

७३—जारिसा माणुसे लोए
ताया ! दीसन्ति वेयणा ।
एत्तो^५ अणन्तगुणिया
नरएसु दुक्खवेयणा ॥

यादृश्यो मानुषे लोके
तात ! दृश्यन्ते वेदनाः ।
इतोऽनन्तगुणिताः
नरकेषु दुःख-वेदनाः ॥

७३—'माता-पिता ! मनुष्य-लोक में
जैसी वेदना है उससे अनन्तगुना अधिक दुःख
देने वाली वेदना नरक-लोक में है ।

१. बि (ऋ०) ।

२. धम्मिलो (वृ०) ।

३. निच्च (अ, ऋ०) ।

४. महाकथा (वृ० वा०) ।

५. एत्तो (अ) ; इत्तो (अ, ऋ०) ।

७४—सव्वभवेसु अस्साया
वेयणा वेइया मए ।
निमेसन्तरमित्तं पि
अं साया नत्थि वेयणा ॥

सर्व-भवेऽवसता
वेदना वेदिता मया ।
निमेषान्तर-मात्रमपि
यत् साता नास्ति वेदना ॥

७४—“मैंने सभी जन्मों में दुःखमय वेदना का अनुभव किया है । वहाँ एक निमेष का अन्तर पड़े उतनी भी मुखमय वेदना नहीं है ।”

७५—तं बित्तं स्मापियरो
छन्देण पुत्त ! पव्वया ।
नवरं पुण सामण्णे
दुक्खं निण्डिकम्मया ॥

तं ब्रूतोऽम्बापितरो
छन्वसा पुत्र ! प्रव्रज ।
‘नवरं’ पुनः आसन्धे
दुःखं निवृत्तिकमन्ता ॥

७५—माता-पिता ने उससे कहा—“पुत्र !
तुम्हारी इच्छा है तो प्रव्रजित हो जाओ ।
परन्तु श्रमण बनने के बाद रोगों की चिकित्सा
नहीं की जाती, यह कितना कठिन मार्ग है ।
(यह जानते हो ?)”

७६—सो बित्तं स्मापियरो !
एवमेयं जहाकुडं ।
पडिकम्मं को कुणई
अरण्णे मियपक्खिणं ? ॥

स ब्रूतोऽम्बापितरो !
एवमेतद् यथास्फुटम् ।
प्रतिकर्मकः करोति
अरण्ये मृग-पक्षिणाम् ? ॥

७६—उसने कहा—“माता-पिता ! आपने
जो कहा वह ठीक है । किन्तु जंगल में रहने
वाले हरिण और पक्षियों की चिकित्सा कौन
करता है ?

७७—एगभूओ अरण्णे वा
जहा उ चरई मिगो ।
एवं धम्मं चरिस्सामि
संजमेण तवेण य ॥

एकभूतोऽरण्ये वा
यथा तु चरति मृगः ।
एवं धर्मं चरिष्यामि
संयमेन तपसा च ॥

७७—“जैसे जंगल में हरिण अकेला
विचरता है, वैसे मैं भी संयम और तप के साथ
एकाकी भाव को प्राप्त कर धर्म का आचरण
करूँगा ।

७८—जया मिगस्स आयंको
महारणम्मि जायई ।
अच्छन्तं रुक्खमूलम्मि
को णं ताहे तिगिच्छई^१ ? ॥

यथा मृगस्थानङ्कः
महारण्ये जायते ।
तिष्ठन्तं वृक्ष-मूले
क एनं तवा चिकित्सति ? ॥

७८—“जब महावन में हरिण के शरीर
में आतंक उत्पन्न होता है तब किसी वृक्ष के
पास बैठे हुए उस हरिण को कौन चिकित्सा
करता है ?

७९—को वा से ओसहं देई ?
को वा से पुच्छई सुहं ? ।
को से भत्तं च ‘पाणं च’^२
आहरित्त पणामए ? ॥

को वा तस्मै औषधं दत्ते ?
को वा तस्य पृच्छति मुक्षम् ? ।
कस्तस्मै भक्ष्यं च पानं च
आहृत्यार्पयेत् ? ॥

७९—“कौन उसे औषध देता है ? कौन
उससे सुख की बात पूछता है ? कौन उसे
खाने-पीने को भक्ष्य-पान लाकर देता है ?

१. विगिच्छई (ड) ; चिगिच्छई (ऋ०) ।

२. पाणं वा (ऋ०) ।

८०—जया य से सुही होइ
तया गच्छइ गोयरं ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए
वल्लराणि सराणि य ॥

८१—खाइत्ता पाणियं पाउं
वल्लरेहिं सरेहि वा ।
मिगचारियं चरित्ताणं
गच्छई मिगचारियं ॥

८२—एवं समुद्विओ भिक्खू
एवमेव अणेगओ^१ ।
मिगचारियं चरित्ताणं
उड्ढं पक्कमई दिसं ॥

८३—जहा मिगे एग अणेगचारी
अणेगवासे धुवगोयरे य ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे
नो हीलए नो वि य खिसएज्जा ॥

८४—मिगचारियं चरिस्सामि
एवं पुत्ता ! जहासुहं ।
अम्मापिऊहिअणुन्नाओ
जहाइ उवहि तओ ॥

८५—मियचारियं चरिस्सामि
सव्वदुक्खविमोक्खणि ।
तुम्हेहि अम्म ! णुन्नाओ
गच्छ पुत्ता ! जहासुहं ॥

यदा च स सुखी भवति
तदा गच्छति गोचरम् ।
भक्त-पानस्याऽर्थाय
वल्लराणि सरांसि च ॥

खादित्वा पानीयं पीत्वा
वल्लरेषु सरस्सु वा ।
मृग-चारिकां चरित्वा
गच्छति मृग-चारिकाम् ॥

एवं समुत्थितो भिक्षुः
एवमेवाऽनेकजगः ।
मृग-चारिकां चरित्वा
ऊर्ध्वा प्रकसति विशम् ॥

यथा मृग एकोऽनेकचारी
अनेकवासो ध्रुव-गोचरश्च ।
एवं मुनिर्गोचर्या प्रविष्टः
नो हीलयेन्नो अपि च खिसयेत् ॥

मृग-चारिकां चरिष्यामि
एवं पुत्र ! यथासुखम् ।
अम्मापि तुभ्यामनुज्ञातः
जहात्पुर्णार्थं ततः ॥

मृग-चारिकां चरिष्यामि
सर्व-दुःख-विमोक्षणीम् ।
युष्माभ्यामन्व । अनुज्ञातः
गच्छ पुत्र ! यथासुखम् ॥

८०—“जब वह स्वस्थ हो जाता है तब
गोचर में जाता है । खाने-पाने के लिए लता-
निकुनों और जलाशयों में जाता है ।

८१—“लता-निकुनों और जलाशयों में
खा-पीकर वह मृग-चर्या (कुदान) के द्वारा
मृग-चर्या (स्वतंत्र-विहार) की चला
जाता है ।

८२—“इसी प्रकार संयम के लिए उठा
हुआ भिक्षु स्वतंत्र विहार करता हुआ मृग-
चर्या का आचरण कर ऊँची-दिशा—मोक्ष को
चला जाता है ।

८३—“जिस प्रकार हरिण अनेक अनेक
स्थानों में भक्त-पान लेने वाला, अनेक स्थानों
में रहने वाला और गोचर से ही जीवन-यापन
करने वाला होता है, उसी प्रकार गोचर-
प्रविष्ट मुनि जब भिक्षा के लिए जाता है
तब किसी की अवज्ञा और निन्दा नहीं करता ।

८४—“मैं मृग-चर्या का आचरण करूँगा ।”
“पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो ।” इस
प्रकार माता-पिता की अनुमति पाकर वह
उपधि को छोड़ रहा है ।

८५—“मैं तुम्हारी अनुमति पाकर सब
दुःखों से मुक्ति दिलाने वाली मृग-चर्या का
आचरण करूँगा ।” (माता-पिता ने कहा)—
“पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो ।”

८६—एवं सो अम्मापियरो
अणुमाणिताण बहुविहं ।
ममत्तं छिन्दई ताहे
महानागो व्व कंचुयं ॥

एवं सोऽम्बापितरो
अनुमान्य बहुविधम् ।
ममत्वं छिनत्ति तवा
महानाग इव कंचुकम् ॥

८६—“इस प्रकार वह नाना उपायों से
माना-पिता को अनुमति के लिए राजी कर
ममत्व का छेदन कर रहा है जैसे महानाग
कांचुली का छेदन करता है ।

८७—इड्ढि^१ वित्तं च मित्ते य
पुत्तदारं च नायओ ।
रेणुयं व पडे लग्गं
निद्धुणित्ताण निग्गओ ॥

ऋद्धि वित्तं च मित्राणि च
पुत्र-वारांश्च ज्ञातोन् ।
रेणुकमिव पटे लग्नं
निर्धूय निर्गतः ॥

८७—“ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, कन्य और
जातिजन्यों को कपड़े पर लगी हुई धूलि की
भोंति शटकाकर वह निकल गया—प्रव्रजित
हो गया ।

८८—पंचमहव्वयजुत्तो
पंचसमिओ तिगुत्तिगुत्तो य ।
सव्विभन्तरवाहिरओ
तवोकम्मंसि उज्जुओ ॥

पञ्चमहाव्रत-युक्तः
पञ्चभिः समितस्त्रिगुण-गुप्तश्च ।
साम्यन्तरबाह्ये
तपः-कर्मणि उज्जुक्तः ॥

८८—“वह पाँच महाव्रतों से युक्त, पाँच
समितियों से समित, तीन गुणियों से गुप्त,
आन्तरिक और बाहरी तपस्या में तत्पर—

८९—निम्ममो निरहंकारो
निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएसु
तसेसु थावरेसु य ॥

निर्ममो निरहंकारः
निस्तज्ज्ञस्तपक-गौरवः ।
समश्च सर्व-भूतेषु
त्रासेषु स्थावरेषु च ॥

८९—“ममत्व-रहित, अहंकार-रहित,
निर्लभ, गौरव को त्यागने वाला, त्रस और
स्थावर-सभों-जीवों में समभाव रखने वाला—

९०—लाभालाभे सुहे दुक्खे
जीविण मरणे तहा ।
समो निन्दापसंसासु
तहा माणावमाणओ ॥

लाभालाभे सुखे दुःखे
जीविते मरणे तथा ।
समो निन्दा-प्रशंसयोः
तथा मानापमानयोः ॥

९०—“लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-
मरण, निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान में सम
रहने वाला—

९१—गारवेसु कसाएसु
दण्डसल्लभएसु य ।
नियत्तो हाससोगाओ
अनियाणो अबन्धणो ॥

गौरवेभ्यः कषायेभ्यः
दण्ड-शल्य-भयेभ्यश्च ।
निवृत्तो हास्य-शोकान्
अनिबालोऽबन्धनः ॥

९१—“गौरव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय,
हास्य और शोक से निवृत्त, निदान और बन्धन
से रहित—

९२—अणिस्सिओ इहं लोए
परलोए अणिस्सिओ ।
वासोचन्दणकप्पो य
असणे अणसणे तहा ॥

अनिधित इह लोके
परलोकेऽनिधितः ।
वासो-चन्दन-कल्पद्वय
अशनेऽनशने तथा ॥

६२—“इहलोक और परलोक में अनासक्त,
बसले से काटने और चन्दन लगाने पर तथा
आहार मिलने या न मिलने पर सम रहने
वाला—

९३—अप्पसत्थेहि दारेहि
सव्वओ पिहियासवे ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहि
पसत्थदमसासणे ॥

अप्रशस्तेभ्यो द्वारेभ्यः
सर्वतः पिहिताश्रयः ।
अध्यात्म-ध्यान-योगीः
प्रशस्त-दम-शासनः ॥

६३—“प्रशस्त द्वारों से आने वाले कर्म-
पुद्गलों का सर्वतोनिरोध करने वाला, धुम-
ध्यान की प्रवृत्ति से प्रशस्त एवं उपशम-प्रधान
शासन में रहने वाला हुआ ।

९४—एवं नाणेण चरणेण
दंसणेण तवेण य ।
भावणाहि ‘य सुद्धाहि’
सम्मं भावेत्त अप्पयं ॥

एवं ज्ञानेन चरणेन
दर्शनेन तपसा च ।
भावनाभिश्च शुद्धाभिः
सम्यग् भावयित्वाऽऽत्मानम् ॥

६४—“इस प्रकार ज्ञान, चारित्र्य, तप और
विशुद्ध भावनाओं के द्वारा आत्मा को भली-
भाँति भावित कर—

९५—बहुयाणि उ^१ वासाणि
सामण्णमणुपालिया ।
मासिएण उ^२ भत्तेण
सिद्धि पत्तो अणुत्तरं ॥

बहुकानि तु वर्षाणि
श्रामण्यमनुपालय ।
मासिकेन तु भक्षतेन
सिद्धिं प्राप्नोऽनुत्तरम् ॥

६५—“बहुत वर्षों तक श्रमण-धर्म का
पालन कर, अन्त में एक महीने का अनशन कर
बहु अनुत्तर सिद्धि—मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

९६—एवं करन्ति संबुद्धा^३
पण्डिया पवियक्खणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु
मियापुत्ते जहारिस्सी^४ ॥

एवं कुर्वन्ति संबुद्धाः
पण्डिताः प्रविचक्षणाः ।
विनिबर्तन्ते भोगेभ्यः
मृगा-पुत्रो यथा ऋषिः ॥

६६—“संबुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण जो
होते हैं वे ऐसा करते हैं । वे भोगों से उसी
प्रकार निवृत्त होते हैं, जिस प्रकार मृगा-पुत्र
ऋषि हुए थे ।

१. विच्छदाहि (वृ०, छ) ।

२. ओ (उ) ; अ (ऋ०) ।

३. व (अ) ।

४. संपन्ना (उ, वृ०) ।

५. जहारिस्सी (वृ०, छ) ।

९७—महापभावस्त महाजसस्त
मियाइ पुत्तस्स निसम्म भासियं ।
तवप्पहाणं चरियं^१ च उत्तमं
गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं ॥

९८—वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं
ममत्तबंधं च महम्मयावहं ।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं
धारेह निब्बाणगुणावहं^२ महं ॥
—ति बेमि ॥

महाप्रभावस्त्य महाजसस्तः
मृगायाः पुत्रस्य निशम्य भाषितम् ।
तपः-प्रधानं चरितं शीतलं
प्रधान-गति च त्रिलोक-विश्रुताम् ॥

विशय दुःख-विवर्धनं धनं
ममत्त्व-बन्धं च महाभयावहम् ।
सुखावहं धर्म-धुरामनुत्तरं
धारय निर्वाण-गुणावहं महतीम् ॥
—इति ब्रवीमि ।

६७—“महा प्रभावशाली, महान् यशस्वी
मृगा-पुत्र का कथन, तप-प्रधान उत्तम-
आचरण और त्रिलोक-विश्रुत प्रधान-गति
(मोक्ष) को सुनकर—

६८—धन को दुःख बढ़ानेवाला और ममता
के बन्धन को महान् भयंकर जानकर सुख देने
वाली, अनुत्तर निर्वाण के गुणों को प्राप्त कराने
वाली, महान् धर्म की धुरा को धारण करो ।”
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. चरियं (अ) ।

२. निब्बाणु* (अ) ।

विंशद्वयं अष्टम्ययणं :
महानियण्टिज्जं

विंशति अभ्ययन :
महानिर्ग्रन्थीय

आम्बुषा

मगध देश का सम्राट् ओणिक एक बार विहार-यात्रा के लिए मंडितकुङ्गि नामक उद्यान में आया। घूम-फिर कर उसने उद्यान की शोभा निहारी। देखते-देखते उसकी आँखें एक ध्यानस्थ मुनि पर जा टिकी। राजा पास में गया। वन्दना की। मुनि के रूप-लावण्य को देख वह अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने पूछा—‘मुने! भोग-काल में संन्यास-ग्रहण की बात समझ में नहीं आती। आप तरुण हैं, भोग भोगने शीघ्र हैं। इस अवस्था में आप मुनि क्यों बने?’ मुनि ने कहा—‘राजन्! मैं अनाथ हूँ। मेरा कोई भी नाथ नहीं है, ज्ञाण नहीं है। इसीलिए मैं मुनि बना हूँ।’ राजा ने मुस्कराते हुए कहा—‘शरीर-सम्पदा से आप ऐश्वर्यशाली लगते हैं फिर अनाथ कैसे? कुछ भी हो मैं आपका नाथ बनता हूँ। आप मेरे साथ चलें। सुखपूर्वक भोग भोगें। मुने! मनुष्य-भव बार-बार नहीं मिलता।’ मुनि ने कहा—‘तुम स्वयं अनाथ हो। मेरे नाथ कैसे बन सकोगे?’ राजा को यह वाक्य तीर की भाँति चुभा। उसने कहा—‘मुने! आप झूठ क्यों बोलते हैं। मैं अपार-सम्पत्ति का स्वामी हूँ। मेरे राज्य में मेरी हर आज्ञा अखण्ड रूप से प्रवर्तित होती है। मेरे पास हजारों हाथी, घोड़े, रथ, सुभट और नौकर-चाकर हैं। सारी सुख-सामग्री उपनीत है। मेरे आश्रय में हजारों व्यक्ति पढ़ते हैं। ऐसी अवस्था में मैं अनाथ कैसे?’ मुनि ने कहा—‘तुम अनाथ का अर्थ नहीं जानते और नहीं जानते कि कौन व्यक्ति कैसे सनाथ होता है और कैसे अनाथ?’

मुनि ने आगे कहा—‘मैं कौशाम्बी नगरी में रहता था। मेरे पिता अपार धन-राशि के स्वामी थे। हमारा कुल सम्पन्न था। मेरा विवाह उच्च कुल में हुआ था। एक बार मुझे असह्य अग्नि-रोग उत्पन्न हुआ। उसको मिटाने के लिए नानाविध प्रयत्न किए गए। पिता ने अपार धन-राशि का व्यय किया। सभी परिवार वालों ने नानाविध प्रयत्न किए, पर सब व्यर्थ। मेरे सगे-सम्बन्धियों ने मेरी वेदना पर अपार आसू बहाए। पर मेरी वेदना को वे न बँटा सके। यह थी मेरी अनाथता। यदि इस पीड़ा से मैं मुक्त हो जाऊँ तो मैं मुनि बन जाऊँ—इस संकल्प को साथ ले मैं सो गया। जैसे-जैसे रात बीती वैसे-वैसे रोग शान्त होता गया। सूर्योदय होते-होते मैं स्वस्थ हो गया। मैं साधु बना—मैं अपना नाथ बन गया। अपना ज्ञाण मैं स्वयं बन गया। त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का नाथ बन गया। उन सबको मुझ से ज्ञाण मिल गया। यह है मेरी सनाथता। मैंने आत्मा पर शासन किया—यह है मेरी सनाथता। मैं आमरण का विधिपूर्वक पालना करता हूँ—यह है मेरी सनाथता।’

राजा ने सनाथ और अनाथ का यह अर्थ पहली बार सुना। उसके ज्ञान-चक्षु खुले। वह बोला—‘महर्षि! आप ही वास्तव में सनाथ और सबान्धव हैं। मैं आपसे धर्म का अनुशासन चाहता हूँ।’ (श्लोक ५५)

मुनि ने उसे निर्ग्रन्ध धर्म की दीक्षा दी। वह धर्म में अनुरक्त हो गया।

इस अध्ययन में अनेक विषय चर्चित हुए हैं—

१—आत्मकर्तृत्व के लिए ३६, ३७ एवं ४८ श्लोक मननीय हैं।

२—४४वें श्लोक में विषयोपपन्न धर्म के परिणामों का दिग्दर्शन है। जैसे पीया हुआ कालकूट विष, अविविध से पकड़ा हुआ शस्त्र और अनियन्त्रित तेलाक विनाशकारी होता है, वैसे ही विषयों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है।

३—द्रव्य-लिंग से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती; इसके लिए ४९ से ५० श्लोक मननीय हैं।

मिलाइए—सुच निपात—महावग—पवउजा सुच।

विसङ्गमं अज्ज्ञयणं : विक्षिति अध्ययन महानियण्ठज्जं : महानिर्घन्धीयम्

	मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुबाव
१—	सिद्धाणं नमो किञ्चा संजयाणं च भावओ । अत्यधम्मगइ ^१ तच्चं अणुसट्ठिं सुणेह मे ॥	सिद्धेभ्यो नमः कृत्वा संयतेऽवदम्भ भावतः । अर्थ-धर्म-गतिं तच्छ्याम् अनुशिष्टिं शृणुत मे ॥	१—सिद्धों और संयत-आत्माओं को भाव-धरा नमस्कार कर मैं अर्थ (साध्य) और धर्म का ज्ञान कराने वाली तथ्य-पूर्ण अनुशासना का निरूपण करता हूँ । वह मुझसे मुने ।
२—	पभूयरयणो राया सेणिओ मगहाहिवो । विहारजतं तिञ्जाओ मण्डिकुच्छिसि चेइए ॥	प्रभूत-रत्नों राजा श्रेणिको मगवाधिपः । बिहार-यात्रां निर्यातः मण्डिकुक्षौ चैत्ये ॥	२—प्रभु रत्नों से सम्पन्न, मगध का अधिपति राजा श्रेणिक मण्डिकुक्षि नामक उद्यान में बिहार-यात्रा (क्रीड़ा-यात्रा) के लिए गया ।
३—	नाणादुमलयाइणं नाणापक्खिनिसेवियं । नाणाकुसुमसंछन्नं उज्जाणं नन्दणोवमं ॥	नाना-द्रुम-लताकीर्णं नाना-पक्षि-निषेवितम् । नाना-कुसुम-संछन्नम् उद्यानं नन्दनोपमम् ॥	३—वह उद्यान नाना प्रकार के द्रुमों और लताओं से आकीर्ण, नाना प्रकार के पक्षियों से आश्रित, नाना प्रकार के कुसुमों से पूर्णतः ढका हुआ और नन्दनवन के समान था ।
४—	तत्थ सो पासई साहुं संजयं सुसमाहित्यं । निसल्लं रुक्खमुलम्मि सुकुमालं सुहोइयं ॥	तत्र स पश्यति साधुं संयतं सुसमाहितम् । निषण्णं वृक्ष-मूले सुकुमारं सुखोचितम् ॥	४—यहाँ राजा ने संयत, मानसिक समाधि से सम्पन्न, वृक्ष के पास बैठे हुए सुकुमार और सुख भोगने योग्य साधु को देखा ।
५—	तस्स रूपं तु पासित्ता राइणो तम्मि संजए । अकन्तपरमो आसी अउलो रुक्खविम्हओ ॥	तस्य रूपं तु दृष्ट्वा राजा तस्मिन् संयते । अत्यन्त-परम आसीत् अतुलो रूप-बिम्बयः ॥	५—उसके रूप को देखकर राजा उस संयत के प्रति आकृष्ट हुआ और उसे अत्यन्त उत्कृष्ट और अनुजनीय विस्मय हुआ ।

१. ० गसं (अ) ; ० बई (वृ० पा०) ।

६—अहो ! वणो अहो ! ख्वं
अहो ! अज्जस्स सोमया ।
अहो ! खन्ती अहो ! मुत्तो
अहो ! भोगे असंगया ॥

अहो ! वणो अहो ! रूपम्
अहो ! आर्यस्य सोमता ।
अहो ! क्षान्तिरहो ! मुक्तिः
अहो ! भोगेऽसङ्गता ॥

६—आश्चर्यं ! कैसा वर्ण और कैसा रूप है ।
आश्चर्यं ! आर्य की कैसी सोम्यता है ।
आश्चर्यं ! कैसी धमा और निर्लोभता है ।
आश्चर्यं ! भोगों में कैसी अनासक्ति है ।

७—तस्स पाए उ बन्दिता
काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूरमणासन्ने^१
पंजली पडिपुच्छई ॥

तस्य पादो तु बन्दिता,
कृत्वा च प्रदक्षिणाम् ।
नातिदूरमनासन्नेः
प्राञ्जलिः प्रतिपृच्छति ॥

७—उसके चरणों में नमस्कार और
प्रदक्षिणा कर न अतिदूर न अतिनिष्ठ रह राजा
ने हाथ जोड़कर पूछा ।

८—तरुणो सि अज्जो ! पव्वइओ
भोगकालम्मि संजया ! ।
उवट्ठिओ^२ सि सामण्णे
एयमट्ठं सुणेमि ता ॥

तरुणोऽस्यायं ! प्रव्रजितः
भोग-काले संयत ! ।
उपस्थितोऽसि श्रामण्ये
एतमर्थं शृणोमि तावन् ॥

८—“आर्य ! अभी तुम तरुण हो । संयत !
तुम भोग-काल में प्रव्रजित हुए हो, श्रामण्य के
लिए उपस्थित हुए हो, इसका क्या प्रयोजन है ?
मैं श्रुतना चाहता हूँ ।”

९—अणाहो मि महाराय !
नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पयं सुहि वावि
'कंचि नाभिससेमइ'^३ ॥

अनायोऽस्मि महाराज !
नाथो मम न विद्यते ।
अनुकम्पकं सुहृदं वापि
कंचिन्नाभिससेम्यहम् ॥

९—“महाराज ! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई
नाथ नहीं है । मुझ पर अनुकम्पा करने वाला
या मित्र कोई नहीं पा रहा हूँ ।”

१०—तओ सो पइसओ राया
सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्ढिमन्तस्स
कहं नाहो न विज्जई ? ॥

ततः स प्रहमितो राजा
श्रेणिको मगधाधिपः ।
एवं ते श्रद्धिमतः
कथं नाथो न विद्यते ? ॥

१०—यह सुनकर मगधाधिपति राजा
श्रेणिको जोर से हँसा और उसने कहा—“तुम
ऐसे सहज सोभाम्यष्टाली हो फिर कोई तुम्हारा
नाथ कैसे नहीं होगा ?

१. निस्सण्णो वाइदूरमि (आ) ।

२. उवट्ठितो (वृ० पा०) ।

३. कंचीनाइ तुमे मयं (वृ०, छ०) ; कंची नाभिससेमइ (वृ० पा०) ।

११—होमि नाहो भयन्ताणं !
भोगे भुंजाहि संजया ! ।
मिस्तनाईपरिवुडो
माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥

१२—अप्पणा वि अणाहो सि
सेणिया ! मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो सन्तो
कहं^१ नाहो भविस्ससि ? ॥

१३—एवं वुत्तो नरिन्दो सो
मुसंभन्तो मुविम्विओ ।
वयणं अस्सुयपुव्वं
साहुणा विम्वह्यन्निओ^२ ॥

१४—अस्सा हत्थी मणुस्सा मे
पुरं अन्तेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोगे^३
आणाइस्सरियं च मे ॥

१५—एरिसे सम्पयग्गम्मि^४
सव्वकामसमप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ ?
'मा ह्नु भन्ते ! मुसं वए'^५ ॥

१६—न तुमं जाणे अणाहस्स
अत्थं 'पोत्थं व'^६ पत्थिवा ! ।
जहा अणाहो भवई
सणाहो वा नराहिवा ? ॥

भवामि नाथो भवन्तानां !
भोगान् भुङ्क्ष्व संयत ! ।
मित्र-ज्ञाति-परिवृतः
मानुष्यं ललु कुलुभम् ॥

आत्मनाप्यनाथोऽसि
श्रेणिक ! मगधाधिप ! ।
आत्मनाज्ज्ञातः सन्
कथं नाथो भविष्यसि ? ॥

एवमुक्तो नरेन्द्रः सः
सुसम्भ्रान्तं मुविस्मितः ।
वचनमश्रुतपूर्वं
साधुना विस्मयान्वितः ॥

अथवा हस्तिनो मनुष्या मे
पुरमन्तःपुरं च मे ।
भुजामि मानुषान् भोगान्
आज्ञां शक्यं च मे ॥

ईदृशे सम्पदग्रे
समपित-सर्वकामे ।
कथमनाथो भवामि ?
मा ललु भवन्त ! मृषावादीः ॥

न त्वं जानीषेज्ज्ञायस्य
अर्थं प्रोत्थां वा पार्थिव ! ।
यथाज्ञाथो भवति
सनाथो नराधिप ? ॥

११—“हे भदन्त ! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ ।
संयत ! मित्र और ज्ञातियों से परिवृत होकर
विषयों का भोग करो ! यह मनुष्य-जन्म बहुत
दुर्लभ है ।”

१२—“हे मगध के अधिपति श्रेणिक ! तुम
स्वयं अनाथ हो । स्वयं अनाथ होते हुए भी तुम
दूसरों के नाथ कैसे होओगे ?”

१३—श्रेणिक पहले ही विस्मयान्वित बना
हुआ था और साधु के द्वारा—तू भगनाथ है—
ऐसा अश्रुतपूर्व-वचन कहे जाने पर वह अत्यन्त
व्याकुल और अत्यन्त आश्चर्यमन्त हो गया ।

१४—“मेरे पास हाथी और घोड़े हैं, तगर
और अन्न-पुर हैं, मैं मनुष्य सम्बन्धी भोगों को
भोग रहा हूँ, आज्ञा और ऐश्वर्य मेरे पास हैं ।

१५—“जिसने मुझे सब काम-भोग समर्पित
किए हैं वैसे उलूकट सम्पदा होते हुए मैं अनाथ
कैसे हूँ ? भदन्त ! असत्य मत बोलो ।”

१६—“हे पार्थिव ! तू अनाथ शब्द का अर्थ
और उसकी उत्पत्ति—मैंने तुझे अनाथ क्यों
कहा—इसे नहीं जानता, इसलिए जैसे अनाथ
या समाध होता है, वैसे नहीं जानता ।

१. ललु (ल) ।

२. विम्वह्यन्निओ (भ, व, ह्नु) ।

३. कोए (भ) ।

४. संपयागम्मि (बु० पा०) ।

५. म्ही ! माहु मुसं वए (वु० पा०) ।

६. उत्थं व (वु०); पोत्थं च (भ); पोत्थं व (बु० पा०) ।

१७—सुणेह मे महाराय !
अव्वक्खित्तेण^१ चेतसा ।
जहा अणाहो भवई
जहा मे य पवत्तियं ॥

शृणु मे महाराज !
अव्व्याप्पित्तेन चेतसा ।
यथाज्ञाद्यो भवति
यथा मया च प्रवर्तितम् ॥

१७—“महाराज ! तू अव्याकुल चित्त से
सुन—अैसे कोई पुण्य बनाय होता है और
जिस रूप में मैंने उसका प्रयोग किया है ।

१८—कोसम्बी नाम नयरी
पुराणपुरभेयणी^२ ।
तत्थ आसी पिया मज्झ
पभूयधणसंचओ ॥

कौशाम्बी नाम नगरी
पुराणपुर-भेदिनी ।
तत्रासीन् पिता मम
प्रभूत-धन-संचयः ॥

१८—“प्राचीन नगरी में असाधारण
सुन्दर कौशाम्बी नाम की नगरी है । वहाँ
मेरे पिता रहते हैं । उनके पास प्रचुर धन का
संचय है ।

१९—पढमे वए महाराय !
अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो^३ दाहो
‘सव्वंगेसु य’^४ पत्थिवा ! ॥

प्रथमे वयसि महाराजः !
अतुला मेऽक्षि-वेदना ।
अभूव विपुलो दाहः
सर्वाङ्गेषु च पाथिव ! ॥

१९—“महाराज ! प्रथम-वय (यौवन)
में मेरी आँखों में असाधारण वेदना उत्पन्न
हुई । पाथिव ! मेरा समूचा शरीर पीड़ा देने
वाली जलन से जल उठा ।

२०—सत्थं जहा परमतत्त्वं
सरीरविबरन्तरे^५ ।
पवेसेज्ज^६ अरी कुढो
एवं मे अच्छिवेयणा ॥

शक्त्यं यथा परम-तोषणं
शरीर-विबरान्तरे ।
प्रवेदयेदरिः क्रुद्धः
एवं मेऽक्षि-वेदना ॥

२०—“जैसे कुपित बना हुआ शत्रु शरीर
के छेदों में अत्यन्त तीक्ष्ण शक्तियों को घुसेड़ता,
है, उसी प्रकार मेरी आँखों में वेदना हो
रही थी ।

२१—तियं मे अन्तरिच्छं च
उत्तमंगं च पीडयति ।
इन्द्रासणिसमा घोरा
वेयणा परमदारुणा ॥

जिह्वं मे अन्तरेच्छं च
उत्तमांगं च पीडयति ।
इन्द्राग्नि-समा घोरा
वेदना परम-दारुणा ॥

२१—“मेरे कटि, हृदय और मस्तक में
परम दारुण वेदना हो रही थी, जैसे इन्द्र का
वज्र लगने से घोर वेदना होती है ।

१. अव्विक्खित्तेण (ज्ञ०) ।

२. नगराण पुच्छभेयणं (वृ० पा०) ।

३. तित्ठो (वृ०); विउलो (वृ० पा०) ।

४. सव्वंगेसु (वृ०); सव्वंगेसु च (वृ० पा०) ।

५. सरीर वीच अंतरे (वृ० पा०) ।

६. जापिज्ज (व, ब० पा०, वृ०) ।

२२—उवट्ठिया मे आयरिया
विज्जामन्ततिगिच्छा^१ ।
'अबीया सत्थकुसला'^२
मन्तमूलविसारया ॥

उपस्थिता मे आचार्याः
विद्या-मन्त्र-चिकित्सकाः ।
अद्वितीयाः शास्त्र-कुशलाः
मन्त्र-मूल-विशारदाः ॥

२२—'विद्या और मन्त्र के द्वारा चिकित्सा करने वाले मन्त्र और औषधियों के विशारद अद्वितीय शास्त्र-कुशल प्राणाचार्य मेरी चिकित्सा करने के लिए उपस्थित हुए ।

२३—ते मे तिगिच्छं कुव्वन्ति
चाउप्पायं जहाहियं ।
न य दुक्खा विमोचयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

ते मे चिकित्सां कुर्वन्ति
चतुष्पादां यथा हितम् ।
न च दुःखाश्च विमोचयन्ति
एषा समाप्तायता ॥

२३—'उन्होंने जैसे मेरा हित हो वैसे चतुष्पाद-चिकित्सा (बंध, रोगी, औषध और परिचारक) की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनायता है ।

२४—पिया मे सव्वसारं पि
दिज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा^३ विमोएइ^४
एसा मज्झ अणाहया ॥

पिता मे सर्वसारमपि
वद्यान्मम कारणान् ।
न च दुःखाश्च विमोचयति
एषा समाप्तायता ॥

२४—'मेरे पिता ने मेरे लिए उन प्राणाचार्यों को बहुमूल्य वस्तुएँ दीं, किन्तु वे (पिता) मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनायता है ।

२५—माया य^५ मे महाराय !
पुत्तसोगदुहट्ठिया^६ ।
न य दुक्खा^७ विमोएइ^८
एसा मज्झ अणाहया ॥

माता च मे महाराज !
पुत्र-सोक-दुःखार्ता ।
न च दुःखाश्च विमोचयति
एषा समाप्तायता ॥

२५—'महाराज ! मेरी माता पुत्र-शोक के दुःख से पीड़ित होती हुई भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनायता है ।

२६—भायरो^९ मे महाराय !
सगा जेट्ठकणिट्ठया ।
न य दुक्खा^{१०} विमोचयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

भ्रातरौ मे महाराज !
स्वका ज्येष्ठ-कनिष्ठकाः ।
न च दुःखाश्च विमोचयन्ति
एषा समाप्तायता ॥

२६—'महाराज ! मेरे बड़े-छोटे सगे भाई भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनायता है ।

१. ० विगिच्छा (ञ०) ।

२. नागा सत्थत्थ कुसला (वृ० पा०) ; अभीया..... (अ) ।

३. दुक्खाओ (ञ०) ; दुक्खाव (उ) ।

४. विमोचयति (व०) । एवं सर्वत्र ।

५. वि (उ) ।

६. ० दुहट्ठिया (वृ० पा०) ।

७. दुक्खाओ (ञ०) ; दुक्खाव (उ) ।

८. भाया (उ) ।

९. दुक्खाओ (ञ०) ; दुक्खाव (उ) ।

२७—भइणीओ मे महाराय !
सगा जेइकणिट्ठगा ।
न य दुक्खा^१ विमोयन्ति
एसा मज्झ अणाहया ॥

भगिन्यो मे महाराज !
स्वका ज्येष्ठ-कनिष्ठकाः ।
न च दुःखाद् विमोचयन्ति
एषा ममाऽनाथता ॥

२७—“महाराज ! मेरी बड़ी-छोटी सभी बहनें भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनाथता है ।

२८—भारिया मे महाराय !
‘अणुरक्ता अणुव्वया’^२ ।
अंसुपुण्णेहि नयणेहि
उरं मे परिसिचई ॥

भार्या मे महाराज !
अनुरक्ताऽनुवता ।
अश्रु-पूर्णाभ्यां नयनाभ्याम्
उरो मे परिचिचति ॥

२८—“महाराज ! मुझमें अनुरक्त और पतिव्रता मेरी पत्नी अश्रु भरे नयनों से मेरी छाती को भिगाती रही ।

२९—अन्नं पाणं च प्हाणं च
गन्धमल्लविलेपणं ।
‘मए नायमणायं वा’^३
सा बाला नोपभुंजई ॥

अन्नं पानं च स्नानं च
गन्ध-माद्य-विलेपनम् ।
मया जातमज्ञातं वा
सा बाला नोपभुङ्क्ते ॥

२९—“वह बाला मेरे प्रत्यक्ष या परोक्ष मे अन्न, पान, स्नान, गन्ध, माद्य और विलेपन का भोग नहीं कर रही थी ।

३०—खणं पि मे महाराय !
पासाओ वि^४ न फिट्ठई ।
न य दुक्खा विमोएइ
एसा मज्झ अणाहया ॥

क्षणमपि मे महाराज !
पाश्वतोपि न श्रयति ।
न च दुःखाद् विमोचयति
एषा ममाऽनाथता ॥

३०—“महाराज ! वह क्षण भर के लिए भी मझसे दूर नहीं हो रही थी, किन्तु वह मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनाथता है ।

३१—तओ हं एवमाहंसु
दुक्खमा हु पुणो पूणो ।
वेयणा अणुभविउं जे
संसारम्मि अणन्तए ॥

ततोऽहमेवमबोचम्
दुःक्षमा खलु पुनः पुनः ।
वेदनाऽनुभवितं ‘जे’
संसारेऽनन्तके ॥

३१—“तब मैंने इस प्रकार कहा—इस अनन्त संसार में बार-बार दुस्साह्य वेदना का अनुभव करना होता है ।

३२—सई^५ च जइ मुच्चेजा
वेयणा विउला इओ ।
खत्तो दन्तो निरारम्भो
पव्वए^६ अणारियं ॥

सकृच्च यदि मुच्ये
वेदनया विपुल्या इतः ।
क्षान्ता दान्तो निरारम्भः
प्रक्षयेयमनगरिताम् ॥

३२—“इस विपुल वेदना से यदि मैं एक बार ही मुक्त हो जाऊँ तो काल, दान्त और निरारम्भ होकर अनगरवृत्ति को स्वीकार कर लूँ ।

१. दुक्खाओ (ऋ०); दुक्खाउ (उ०) ।

२. अणुरत्तमणुव्वया (उ०, ऋ०); अणुरत्तमणुव्वया (ऋ० पा०) ।

३. तारिसं रोममावणं (ऋ० पा०) ।

४. य (अ, आ, उ) ।

५. सयं (उ, ऋ०); सयं (अ) ।

६. पव्वए (उ०) ।

३३—एवं च चिन्तयित्वा
पमुत्तो मि नराहिवा ! ।
परियट्ठन्तीए राईए
वेयणा मे खयं गया ॥

एवं च चिन्तयित्वा
प्रमुत्तोऽस्मि नराधिप ! ।
परिवर्तमानायां रात्रौ
वेदना मे भयं गता ॥

३३—“हे नराधिप ! ऐसा चिन्तन कर
मैं सो गया । वीरती हुई रात्रि के साथ-साथ
मेरी वेदना भी क्षीण हो गई ।

३४—तओ कल्ले पभायस्मि
आपुच्छित्ताण बन्धवे ।
खन्तो दन्तो निरारम्भो
पव्वइओऽणगारिय ॥

ततः कल्यः प्रभाते
आपृच्छ्य बान्धवान् ।
क्षान्तो दान्तो निरारम्भः
प्रव्रजितोऽनगरिताम् ॥

३४—“उसके पश्चात् प्रभातकाल में मैं
स्वस्थ हो गया । मैं अपने बन्धु-जनो को पूछ,
क्षान्त, दान्त और निरारम्भ होकर अनगर-
वृत्ति में आ गया ।

३५—ततो हं नाहो जाओ
अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसि चैव भूयाणं
तसाण थावराण य ॥

ततोऽहं नाथो जातः
आत्मनश्च परस्य च ।
सर्वेषां चैव भूतानां
त्रसानां स्थावरानां च ॥

३५—‘‘तब मैं अपना और दूसरों का
सभी—जस और स्थावर जीवों का नाथ हो
गया ।

३६—अप्पा नई वेयरणो
अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू
अप्पा मे नन्दणं वणं ॥

आत्मा नदी वैतरणी
आत्मा मे कूट-शाल्मली ।
आत्मा काम-दुषा धेनुः
आत्मा मे नन्दनं वनम् ॥

३६—‘‘मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है
और आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है, आत्मा
ही काम-दुषा-धेनु है और आत्मा ही नन्दन-
वन है ।

३७—अप्पा कत्ता विकत्ता य
दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च
दुप्पट्ठियसुपट्ठिओ ॥

आत्मा कर्ता विकर्ता च
दुःखानां च सुखानां च ।
आत्मा मित्रममित्रं च
दुष्प्रस्थितः सुप्रस्थितः ॥

३७—‘‘आत्मा ही दुःख-सुख की करने
वाली और उनका क्षय करने वाली है ।
मत्प्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा ही मित्र है और
दुष्प्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा ही शत्रु है ।

३८—इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !
तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि ।
नियण्ठधम्मं लहियाण वी जहा
सीयन्ति एगे बहुकायरा नरा ॥

इयं खलु अन्याप्यनाथता गुप !
तामेकचित्तो निभूतः धृषु ।
निग्रन्थ-धम्मं लब्ध्वाऽपि यथा
सौबल्येके बहुकालरा नराः ॥

३८—‘‘हे राजन् ! यह एक दूसरी
अनाथता ही है । एकाग्र-चित्त, स्थिर-ज्ञान
होकर तुम उसे मुक्त से मुनो ! जैसे कई एक
व्यक्ति बहुत कार्यरत होते हैं ! वे निग्रन्थ-धर्म
को पाकर भी कष्टानुभव करते हैं—निग्रन्थ-
चार का पालन करने में क्षिप्र हो जाते हैं ।

३९—जो पव्वहृत्ताण महव्वयाई
सम्मं नो 'कासयई' पमाया ।
अनिग्गहपा य रसेसु गिद्धे
न मूलो छिन्दइ बन्धनं से ॥

४०—आउत्तया जस्स न अत्थि काइ
इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाणनिकसेवदुग्गु छणाए
न वीरजाय^१ अणुजाइ मग्गं ॥

४१—चिरं पि से मुण्डरूई भविता
अधिरव्वए तवनियमेहि भट्टे ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता
न पारए होइ हु संपराए ॥

४२—'पोल्ले व'^२ मुट्ठी जह से असारे
अयन्तिए कूडकहावणे वा ।
राढामणी वेरलियप्पगासे
अमहग्घए होइ य जाणएसु ॥

४३—कुसीललिगं इह धारइत्ता
इसिज्जकयं जीविय बूहइत्ता ।
असंजए संजयलप्पमाणे^३
विणिघायमागच्छइ से चिरं पि ॥

यः प्रवक्ष्य महाव्रतानि
सम्यक् च नो स्पृशति प्रमादात् ।
अनिग्रहात्मा च रसेषु गुडः
न मूलतः छिनत्ति बन्धनं सः ॥

आयुक्ता यस्य नास्ति कापि
ईर्यायां भाषायां तथैषणायाम् ।
आदान-निक्षेप-जगुप्सनायां
न वीरयासमनुयाति मार्गम् ॥

चिरमपि स मुण्ड-रुचिभूत्वा
अस्थिर-व्रतस्तपो-नियमेष्वपि भ्रष्टः ।
चिरमप्यात्मानं क्लेशयित्वा
न पारमो भवति क्षलु संपरायस्य ॥

'पोल्ला' एव मुष्टयं या सोऽसारः,
अयन्तिव्रतः कूट-कावपिणो वा ।
राढा-मणिर्वैडूर्य-प्रकाशः
अमहाघर्षको भवति च श्रेष्ठः ॥

कुसील-लिगमिह धारयित्वा
श्रुति-ध्वजं जीविकां बृंहयित्वा ।
असंयतः संयतं रूपम्
विनिघातमागच्छति स चिरमपि ॥

३९—'जो महाव्रतो को ल्बीकार कर
भलीभौति उनका पालन नहीं करता, अपनी
आत्मा का निग्रह नहीं करता, रसों में मूच्छित
होता है, वह बन्धन का मूलोच्छेद नहीं कर
पाता ।

४०—'ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-
निक्षेप और उच्चार-प्रवचन की परिस्थापना
में जो सावधानी नहीं बर्तता, वह उस मार्ग
का अनुगमन नहीं कर सकता जिस पर वीर-
पुरुष चले हैं ।

४१—'जो व्रतों में स्थिर नहीं है, तप
और नियमों से भ्रष्ट है, वह चिरकाल से
मुण्डन में रुचि रखकर भी और चिरकाल तक
आत्मा को कष्ट देकर भी संसार का पार नहीं
पा सकता ।

४२—'जो पोली मुट्ठी की भौति असार
है, लोटे सिक्के की भौति नियन्त्रण-रहित है,
काचमणि होते हुए भी वैडूर्य जैसे धमकता है,
वह जानकार व्यक्तियों की दृष्टि में मूल्य-हीन
हो जाता है ।

४३—'जो कुसील-वेष और श्रुति-ध्वज
(रजोहरण बादि मुनि-चिह्न) को धारण
कर उनके द्वारा जीविका चलाता है, असंयत
होते हुए भी अपने आपको संयत कहता है,
वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है ।

१. कासइ (ड, ऋ०) ।

२. वीरजायं (छ०) ।

३. पोह्णार (छ० पा०) ।

४. ० छाभमाणे (छ० पा०) ।

४४—‘विसं तु पीयं’^१ जह कालकूडं
हणाइ सत्थं जह कुगाहीयं ।
‘एसे व’^२ धम्मो विसओववन्तो
हणाइ वेयाल इवाविक्कन्तो^३ ॥

विषं तु पीतं यथा कालकूट
हन्ति शस्त्रं यथा कुगुहीतम् ।
एष चर्षं धर्मो विषयोपपन्नः
हन्ति वेताल इवाविक्कनः ॥

४४—‘पिया हुआ काल-कूट विष,
अविधि से पकड़ा हुआ शस्त्र और नियन्त्रण में
नहीं लाया हुआ वेताल जैसे विनाशकारी
होता है, वैसे ही यह विषयों से युक्त धर्म भी
विनाशकारी होता है ।

४५—जे लक्खणं सुविण पउजमाणे
निमित्तकोअहलरं पगाडे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवो
न गच्छई सरणं तम्मि काले ॥

यो लक्षणं स्वप्नं प्रयुज्जानः
निमित्त-कूतुहल-संप्रगाढः ।
कुहेट-विद्याभयद्वार-जीवो
न गच्छति शरणं तस्मिन् काले ॥

४५—“जो लक्षण-शास्त्र, स्वप्न-शास्त्र का
प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कोवुक कार्य
में अत्यन्त आसक्त है, मिथ्या आश्चर्य उत्पन्न
करने वाले विध्यात्मक आश्रय द्वार से जीविका
चलाता है, वह कर्म का फल भुगतने के समय
किसी की शरण को प्राप्त नहीं होता ।

४६—तमंतमेणव उ से असीले
सया दुही विपरियामुवेइ^४ ।
संघावई नरगतिरिक्खजोणिं
मोणं विराहेत्तु असाहुक्खे ॥

तमस्तमसंब तु स अशोलः
सदा दुःखो विपर्यासमुपैति ।
संघावति नरक-तिर्यग्योनीः
मोर्न विराध्याऽसाधुरूपः ॥

४६—“वह शील-रहित साधु अपने तीव्र
अज्ञान से सतत दुःखी होकर विपरीत दृष्टि-
वाला हो जाता है । वह असाधु प्रकृति वाला
मुनि धर्म की विराधना कर नरक और तिर्यग्-
योनि में जाता-जाता रहता है ।

४७—उदेसियं कीयगडं नियागं
न मुंचई किंचि अणंसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खो भवित्ता
इओ चुओ गच्छइ कट्टु पावं ॥

ओहं शिकं क्रीत-कृतं नित्याग्रं
न मुञ्चति किञ्चिदनेषणीयम् ।
अग्निरिव सर्वभक्षी भूत्वा
इतश्च्युतो (दुर्गति) गच्छति कृत्वा
पापम् ॥

४७—“जो ओहं शिक, क्रीतकृत, नित्याग्र
और कुछ भी अनेपणीय को नहीं छोड़ता, वह
अग्नि की तरह सर्व-भक्षी होकर, पाप-कर्म
का अर्जन करता है और यहाँ से मरकर दुर्गति
में जाता है ।

४८—न तं अरी कण्ठछेत्ता करेइ
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा^५ ।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥

न तवरिः कण्ठछेत्ता करोति
यं तस्य करोत्यात्मोया दुरात्मता ।
स ज्ञास्यति मृत्यु-मुलं तु प्राप्तः
पश्चादनुतापेन दया-विहीनः ॥

४८—‘अपनी दुष्प्रवृत्ति जो अमर्ष उत्पन्न
करती है वह अमर्ष मला काटने वाला शत्रु
भी नहीं करता । वह दुष्प्रवृत्ति करने वाला
दया-विहीन मनुष्य मृत्यु के मूल में पहुँचने के
समय पश्चात्ताप के साथ इस तथ्य को जान
पाएगा ।

१. विसं पिबिता (अ, आ) ; किसं पिबन्ती (इ०) ।

२. एल्लो वि (अ) ; एल्लो व (इ०) ।

३. इवाविक्कन्तो (इ० पा०) ।

४. सयेइ (अ) ।

५. दुरप्पया (अ०) ।

४९—निरट्टिया नगच्छे उ तस्स
जे उत्तमट्टं विवज्जासमेई ।
इमे वि से नत्थि परे वि लीए
दुहो वि से फिज्जइ तत्थ लीए ॥

५०—एमेवऽहाछन्दकुसीलरूवे
मगं विराहेतु जिणुत्तमाणं ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा
निरट्टसोया परियावमेइ ॥

५१—सोचाण मेहावि सुभासियं इमं
अणुसासणं नाणगुणोववेयं ।
मगं कुसीलाण जहाय सव्वं
महानियण्ठाण वए पहेणं ॥

५२—चरित्तमायारगुणन्नि' तओ
अणुत्तरं संजम पालियाणं ।
निरासवे संखवियाण कम्मं
उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥

५३—एवुगदन्ते वि महातवोधणे
महामुणे महापडन्ते महायसे ।
महानियण्ठिज्जमिणं महामुयं
से काहए महया वित्थरेणं ॥

५४—तुहो य सेणिओ राया
इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहतं जहाभूयं
सुद्ध मे उवदंसियं ॥

निरथिका नात्म्य-हविस्तु तस्य
य उत्तमार्थं विपर्यासमेति ।
अथमपि तस्य नास्ति षरोऽपिलोकः
द्विधातोपि स श्रीयते तत्र लोके ॥

एवमेव ययान्छन्दकुसीलरूपः
मगं विराध्य जितोत्तमानाम् ।
कुररी इव भोग-रसानुगुद्धा
निरट्ट-शोका परितपमेति ॥

श्रुत्वा मेधावी सुभाषितमिदं
अनुशासनं ज्ञान-गुणोपेतम् ।
मार्गं कुसीलानां हित्वा सवं
महानिग्रन्थानां व्रजेत् पथा ॥

चरित्राचारगुणान्वितस्ततः
अनुत्तरं संयमं पालयित्वा ।
निराश्रयः संक्षपट्य कर्म
उपैति स्थानं विपुलोत्तमं ध्रुवम् ॥

एवमुपदान्तोपि महातपोधनः
महामुनिर्महाप्रतिज्ञो महायशः ।
महानिग्रन्थीयमिदं महाश्रुतं
सोऽवीकथयन् महता विस्तरेण ॥

तुष्टइव श्रेणिको राजा
इवमुदाहृ कृताञ्जलिः ।
अनायत्वं यथाभूतं
सुद्धु मे उपवसितम् ॥

४९—“जो अन्तिम समय की आराधना में भी विपरीत बुद्धि रखता है—दुष्प्रवृत्ति को नत् प्रवृत्ति मानता है उसकी संयम-हवि भी निरर्थक है । उसके लिए यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं है । वह दोनों लोकों से अष्ट होकर दोनों लोकों के प्रयोजन की पूर्ति न कर सकने के कारण चिन्ता से छोड़ जाता है ।

५०—“इसी प्रकार यथाछन्द (स्वच्छन्द भाव से विहार करने वाले) और कुसील साधु विनातम भगवान् के मार्ग की विराधना कर परितप का प्राप्त होते हैं, जैसे—भोग-रस में आसक्त होकर अर्थ-हीन चिन्ता करने वाली गीश पक्षिणी ।

५१—“मेधावी पुरुष इस सुभाषित, ज्ञान-गुण से युक्त अनुशासन को सुनकर कुसील व्यक्तियों के पूर्ण मार्ग को छोड़कर महा-निग्रन्थ के मार्ग से चले ।

५२—“किन् चरित्र के आचरण और ज्ञान आदि गुणों से सम्पन्न निग्रन्थ अनुत्तर गयम का पालन कर, कर्मों का क्षय कर निराश्रय होता है और वह विपुलोत्तम शारवत-मोक्ष में चला जाता है ।”

५३—इस प्रकार उग्र-दान्त, महा-तपोधन, महा-प्रतिज्ञ, महान् यशस्वी उस महामुनि ने इस महाश्रुत, महानिग्रन्थीय अध्ययन को महान् विस्तार के साथ कहा ।

५४—श्रेणिक राजा तुष्ट हुआ और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—
“सगबन् ! तुमने अनाय का यथायं स्वच्छ मुझे समझाया है ।

५५—तुज्जं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी ! ।
तुब्बे सणाहा य सबन्धवा य
जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं ॥

५६—तं सि नाहो अणाहाणं
सव्वभूयाण संजया ! ।
खामेमि ते महाभाग !
इच्छामि अणुसासितं ॥

५७—पुच्छिऊण मए तुब्बं
भाणविग्घो उ' जो कओ ।
निमन्तिओ' य भोगेहि
तं सव्वं मरिसेहि मे ॥

५८—एवं शृणित्ताण स रायसीहो
अणागरसिंहं परमाइ भत्तिए ।
'सओरोहो य सपरिणो य'^१
धम्मणुरत्तो विमलेण चेतसा ॥

५९—उत्तसियरोमकूवो
काऊण य पयाहिणं ।
अभिवन्दिऊण सिरसा
अइयाओ' नराहिवो ॥

६०—इयरो वि गुणसमिद्धो
तिगुत्तिमुत्तो तिदण्डविरओ य ।
विहग इव विण्णमुक्को
विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥
—त्ति वेमि ॥

तब सुलद्धं सलु मनुष्य-जन्म
लाभा: सुलद्धाश्च त्वया महर्षे ! ।
यूयं सनाथाश्च सत्त्ववशाश्च
यश्च भवन्तः स्थिता मार्गे
जिनोत्तमायाम् ॥

त्वमसि नाथोऽनायातानां
सर्वभूतानां संयत ! ।
अमर्यामि त्वां महाभाग !
इच्छाम्यनुशासयितुम् ॥

पृष्ट्वा मया तव
ध्यान-विघ्नस्तु यः कृतः ।
निमन्त्रितश्च भोगे:
तन् सर्वं मर्षय मे ॥

एवं स्तुत्वा स राज-सिंहः
अनागार-सिंहं परमया भक्त्या ।
सावरोधश्च सपरिजनश्च
धर्मानुरक्तो विमलेन चेतसा ॥

उच्छ्वसित-रोमकूपः
कृत्वा च प्रदक्षिणाम् ।
अभिवन्द्य शिरसा
अतियातो नराधिपः ॥

इतरोऽपि गुण-समृद्धः
त्रिगुप्ति-गुणस्त्रिदण्ड-विरतश्च ।
विहग इव विप्रमुक्तः
विहरति वसुधां विगत-मोहः ॥

—इति ऋषीमि ।

५५—'हे महर्षि ! तुम्हारा मनुष्य-जन्म
सुलब्ध है—सफल है । तुम्हें जो उपलब्धियाँ
हुई हैं वे भी सफल हैं । तुम सनाथ हो,
सत्त्ववश हो, क्योंकि तुम जिनोत्तम (तीर्थंकर)
के मार्ग में अवस्थित हो ।

५६—'तुम अनाथों के नाथ हो, तुम
सब जीवों के नाथ हो । हे महाभाग ! मैं
तुमसे क्षमा चाहता हूँ और तुमसे मैं
अनुशासित होना चाहता हूँ ।

५७—'मैंने तुमसे प्रश्न कर जो ध्यान में
विघ्न किया और भोगों के लिए निमन्त्रण
दिया उन सबको तुम महन करो—क्षमा
करो ।'

५८—इस प्रकार राज-सिंह—श्रेष्ठ
अनागर-सिंह की परम भक्ति से स्तुति कर
बपने विमल चित्त से रतिवास, परिजन और
बन्धु-जन सहित धर्म में अनुरक्त हो गया ।

५९—राजा के रोम-कूप उच्छ्वसित
हो रहे थे । वह मुनि की प्रदक्षिणा कर, सिर
मुका, वन्दना कर चला गया ।

६०—'वह गुण से समृद्ध, त्रिगुणियों से
गुप्त, तीन दण्डों से विरत और निर्मोह मुनि भी
विहग की भाँति स्वतन्त्रभाव से भूतल पर
बिहार करने लगे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. ज (ऋ०) ।

२. निमन्तिआ (अ, आ, इ, उ) ।

३. सओरोहो सपरिणो सर्वध्वजो (अ, आ, इ) ।

सगविसहमं अध्वन्यः :
समुद्रपालीयं

सर्कषिण अध्वन्यः :
समुद्रपालीय

आस्तुत्सव

इस अध्ययन का प्रतिपादन 'समुद्रपाल'—'समुद्रपाल' के माध्यम से हुआ है; इसलिए इसका नाम 'समुद्रपालीय'—'समुद्रपालीय' रखा गया है।

'चम्पा' नाम की नगरी थी। वहाँ पालित नाम का सार्यवाह रहता था। वह भ्रमणोपासक था। निर्ग्रन्थ-प्रवचन में उसे भट्ठा था। दूर-दूर तक उसका व्यापार फैला हुआ था। एक बार वह सामुद्रिक यात्रा के लिए 'यान-पात्र' पर आरुढ़ हो घर से निकला। वह अपने साथ गणिम—सुपारी आदि तथा धरिम—स्वर्ण आदि ले चला। जाते-जाते समुद्र के तट पर 'पिण्डण्ड' नगर में रुका। अपना माल बेचने के लिए वह वहाँ कई दिनों तक रहा। नगर-वासियों से उसका परिचय बढ़ा और एक सेठ ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

कुछ समय वहाँ रह कर वह स्वदेश की चला। उसकी नवोद्गा गर्भवती हुई। समुद्र-यात्रा के बीच उसने एक सुन्दर और लक्ष्मणपुत्र को जन्म दिया। उसका नाम 'समुद्रपाल' रखा गया। वैभव से उसका लालन-पालन हुआ। वह ७२ कलाओं में प्रवीण हुआ। जब वह युवा बना तब ६४ कलाओं में पारंगत 'रूपिणी' नामक कन्या के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। वह उसके साथ देव-तुल्य भोगों का उपभोग करता हुआ आनन्द से रहने लगा। एक बार वह प्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ नगर की शोभा देख रहा था। उसने देखा कि राजपुरुष एक व्यक्ति को वध-भूमि की ओर लिए जा रहे हैं। वह व्यक्ति लाल-वस्त्र पहने हुए था। उसके गले में लाल कनेर की मालाएँ थीं। उसे यह समझते देर न लगी कि इसका वध किया जाएगा। यह सब देख कुमार का मन संवेग से भर गया। 'अच्छे कर्मों का फल अच्छा होता है और बुरे कर्मों का फल बुरा'—इस चिन्तन से उसका मार्ग स्पष्ट हो गया। माता-पिता की आज्ञा से वह दक्षित हुआ। साधना की ओर कर्मों को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुआ।

आत्मानुशासन के उपायों के साथ-साथ इस अध्ययन में समुद्र-यात्रा का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। उस काल में भारत के व्यापारी दूर-दूर तक व्यापार के लिए जाते थे। सामुद्रिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। व्यापारियों के निजी यान-पात्र होते थे और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल लेकर आते-जाते थे। उस समय अनेक वस्तुओं का भारत से निर्यात होता था। उनमें सुपारी, स्वर्ण आदि-आदि मुख्य थे। यह विशेष उल्लेखनीय है कि उस काल में भारत के पास प्रचुर सोना था। वह उसका दूसरे देशों को निर्यात करता था।

इस अध्ययन में 'व्यवहार' (श्लोक ३)—'व्यवहार' और 'वज्रमण्डलसोभाग' (श्लोक ८)—'वध्य-मंडल-शोभाक'—ये दो शब्द ध्यान देने योग्य हैं। आगम-काल में 'व्यवहार' शब्द क्रय-विक्रय का द्योतक था। आयात और निर्यात इसी के अन्तर्गत थे।^१

'वध्य-मंडल-शोभाक'—यह शब्द उस समय के दण्ड-विधान की ओर संकेत करता है। उस समय चोरी करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था। जिसे वध की सजा दी जाती, उसे कनेर के लाल फूलों की माला पहनाई जाती। उसको लाल कपड़े पहनाए जाते। शरीर पर लाल चन्दन का लेप किया जाता। सारे नगर में उसके कुटुम्बों की जानकारी दी जाती और उसे नगर के राज-मार्ग से वध-भूमि की ओर ले जाया जाता था।^२

१—सुप्रह्लाद, १।११।६।

२—बही, १।६ : बृहद् वृत्ति, पत्र १६०।

इस अध्ययन में सांस्कृतिक राज्य-व्यवस्था का उल्लेख भी हुआ है। ग्रन्थकार कहते हैं—“मुनि उचित काल में एक स्थान से दूसरे स्थान में जाए।” यह कथन सामिप्राय हुआ है। उस समय भारत अनेक इकाइयों में बंटा हुआ था। छोटे-छोटे राष्ट्र होते थे। आपसो कलङ्ग सोमा पार कर चुका था। इसीलिए मुनि को गमनागमन में पूर्ण सावधान रहने के लिए कहा है (श्लोक १४)। मौलिक दृष्टि से इस अध्ययन में ‘चम्पा’ (श्लोक १) और ‘पिङ्गण्ड’ (श्लोक ३) नगरों का उल्लेख हुआ है। चौबीस श्लोकों का यह छोटा-सा अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

सगर्विसङ्गमं अञ्जलयणं : एकविंश अध्यायः
समुद्रपालीयं : समुद्रपालीयम्

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—चम्पाए पालिए नाम सावए आसि वाणिए । महावीरस्स भगवओ सीमे सो उ महप्पणो ॥	चम्पायां पालितो नाम श्रावक आसीद् वाणिजः । महावीरस्य भगवतः शिष्यः स तु महात्मनः ॥	१—चम्प नगरी में पालित नामक एक बणिक्-श्रावक हुआ । वह महात्मा भगवान् महावीर का शिष्य था ।
२—निगन्थे पावयणे सावण से विक्खोविए । पाणण ववहरन्ते पिहुण्डं नगरमागए ॥	नैर्ग्रन्थे प्रवचने श्रावकः स विक्खोविद् । पोनेन षडवहरन् पिहुण्डं नगरमागतः ॥	२—वह श्रावक निर्ग्रन्थ-प्रवचन में कीर्ति था । वह पोत में व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नगर में आया ।
३—पिहुण्डे ववहरन्तम्म वाणिओ देइ धयरं । तं ससत्तं पइगिज्झ सदेसमह पत्थिओ ॥	पिहुण्डे षडवहरते वाणिजो ब्रूयति बुद्धिहरम् । तां ससत्तां प्रतिगृह्य स्वदेशमथ प्रस्थितः ॥	३—पिहुण्ड नगर में व्यापार करते समय उने क्रिया बणिक् ने पुत्री दी । कुछ समय टहरने के पश्चात् वह धर्मवती को लेकर स्वदेश की विदा हुआ ।
४—अह पालियस्स धरणी समुट्ठमि पसवई । अह 'दारए' तहि जाए समुट्ठपालि ति नामए ॥	अथ पालितस्य गृहिणी समुद्रे प्रसूते । अथ दारक-स्तस्मिन्-जातः समुद्रपाल इति नामकः ॥	४—पालित की स्त्री ने समुद्र में पुत्र का प्रसव किया । वह समुद्र में उत्पन्न हुआ, इसलिए उसका नाम समुद्रपाल रखा ।
५—खेमेण आगए चप्पं सावए वाणिए घरं । संवड्ढई घरे तस्स दारए से सुहुइए ॥	क्षेमेणागतश्चप्पां श्रावको वाणिजो गृहम् । संबधेते गृहे तस्य दारकः स सुखोचितः ॥	५—वह बणिक्-श्रावक समुद्रपाल चम्पा नगरी में अपने घर आया । वह सुखोचित पुत्र अपने घर में बढ़ने लगा ।

१. बाळए (उ) ।

२. बाळए तम्मि (ऋ०) ।

उत्तरजम्भयं (उत्तराध्ययन)

२७८

अध्ययन २१ : श्लोक ६-१०

६—बावत्तरि कलाओ य
सिक्खए' नोइकोविए ।
जोव्वणेण य संपन्ने*
सुरूवे पियदंसणे ॥

डासहस्रति कलाइव
शिक्षते नीति-कोविदः ।
यौवनेन च सम्पन्नः
सुरूपः प्रिय-दर्शनः ॥

६—उसने बहतर कलाएँ सीखी और
वह नीति-कोविद बना । वह पूर्ण यौवन में
सुरूप और प्रिय लगने लगा ।

७—तस्स रूववई भज्जं
पिया आणइ रूविणि ।
पासाए कीलए रम्मे
देवो दोगुन्दओ जहा ॥

तस्य रूपवती भार्या
पिताऽनयति रूपिणीम् ।
प्रासादे क्रीडति रम्ये
देवो दोगुन्दको यथा ॥

७—उसका पिता उसके लिए रूपिणी
नामक सुन्दर स्त्री लाया । वह दोगुन्दक देव
की भर्ति उसके साथ सुरम्य प्रासाद में क्रीड़ा
करने लगा ।

८—अह् अन्नया कयाई
पासायालोयणे ठिओ ।
वज्झमण्डणसोभागं
वज्झं पासइ वज्झगं ॥

अथान्यथा कदाचित्
प्रासादालोकने स्थितः ।
वध्यमण्डनशोभाकं
वध्यं पश्यति ब्राह्मणम् ॥

८—वह कभी एक बार प्रासाद के
भरोखे में बैठा हुआ था । उसने वध्य-जनोचित
मण्डनों से शोभित वध्य को तगर से बाहर के
जाते हुए देखा ।

९—तं पासिऊण संविग्गो*
समुदपालो इणमव्ववी ।
अहोऽमुभाण कम्मणं
निज्जाणं पावगं इमं ॥

तं दृष्ट्वा संविग्रः
समुद्रपाल इवमब्रवीत् ।
अहो अशुभानां कर्मणां
निर्याणं पापकमिदम् ॥

९—उमे देख बैराग्य में भीगा हुआ
समुद्रपाल यों बोला : “अहो ! यह अशुभ कर्मों
का दुःखद अवसान है ।”

१०—संबुद्धो सो तहि भगवं
'परं संवेगमागओ'१ ।
आपुच्छज्मापियरो
पव्वए२ अणगरियं ॥

संबुद्धः स तत्र भगवान्
परं संवेगमागतः ।
आपृच्छ्याऽम्बापितरो
प्राज्ञानोदनगरिताम् ॥

१०—वह भगवान् परम बैराग्य को
प्राप्त हुआ और संबुद्ध बन गया । उसने माता-
पिता को पूछकर साधुत्व स्वीकार किया ।

१. सिक्खिण्ण (उ, ऋ, वृ०); सिक्खए (वृ० पा०) ।

२. अपकुण्णं (वृ०); सम्पन्ने (वृ० पा०) ।

३. संवेगं (उ, ऋ, वृ०) ।

४. परमसंवेगुमागओ (उ) ।

५. पव्वहए (उ) ।

११—‘जहितु संगं च’^१ महाकिलेसं
महन्तमोहं कसिणं भयावहं^२ ।
परियायधम्मं च^३ भिरोयएज्जा
वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥

१२—अहिंस सच्चं च अतेणगं च
ततो य ‘बम्भं अपरिमाहं च’^४ ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विउ ॥

१३—सव्वेहि भूएहि दयाणकुम्पी^५
खत्तिकवमे संजयवम्मयारी ।
सावज्जजोगं परिवज्जयन्तो
चरिज्ज भिक्खु सुसमाहिइन्दिए ॥

१४—कालेण कालं विहरेज्ज रट्टे^६
बलाबलं जाणिय अप्पणो य^१ ।
सीहो व सट्ठेण न संतसेज्जा
वयजोग सुखा न असम्भमाहु ॥

१५—उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा
पियमप्पियं सव्व तित्तिक्खएज्जा ।
न सव्व सव्वत्थं भिरोयएज्जा
न यावि पूयं गरहं च संए ॥

हित्वा सङ्गच्छ महाकलेसं
महामोहं कुण्ठं भयानकम् ।
पर्याय-धर्मचारिणोचयेन्
व्रतानि शीलानि परीषहोच ॥

अहिंसां सत्यं चास्तन्यकं च
ततश्च ब्रह्मपरिग्रहं च ।
प्रतिपद्य पंचमहाव्रतानि
चरेद् धर्मं जिन-देशितं विद्वान् ॥

सर्वेषु भूतेषु दयानुकम्पी
क्षान्ति-क्षमः संयतो ब्रह्मचारी ।
सावद्य-योगं परिवर्जयन्
चरेद् भिक्षुः सुसमाहितेन्द्रियः ॥

कालेन कालं विहरेन् राष्ट्रं
बलाबलं ज्ञात्वाऽऽत्मनश्च ।
सिंह इव शब्देन न संश्रयेत्
वचोयोगं श्रुत्वानासम्भमाह ॥

उपेक्षमाणस्तु परित्रजेन्
प्रियमप्रियं सर्वं तितिक्षेत ।
न सर्वं सर्वत्राभिरोचयेन्
न चापि पूजां गर्हां च संयतः ॥

११—मुनि महान् क्लेश और महान्
मोह को उत्पन्न करने वाले कुण्ठ व भयावह
संग (आसक्ति) को छोड़कर पर्याय-धर्म
(भ्रवण्या), व्रत और शील तथा परीषहों में
अभिसक्ति ले ।

१२—अहिंसा, सत्य, अचोराय, ब्रह्मचर्य
और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतों को
स्वीकार कर विद्वान् मुनि वीतराग-उपविष्ट
धर्म का आचरण करे ।

१३—मुसमाहित-इन्द्रिय वाला भिक्षु
सब जीवों के प्रति दयानुकम्पी रहे । क्षान्ति-
क्षम (क्षमा-भाव से कुचर्चों को सहने वाला),
संयत और ब्रह्मचारी हो । वह सावद्य योग का
वर्जन करता हुआ विचरण करे ।

१४—मुनि अपने बलाबल को तोलकर
कालोचित कार्य करता हुआ राष्ट्र में विहरण
करे । वह सिंह की भाँति भयावह शब्दों से
संश्रस्त न हो । वह कुचर्च नून असम्य वचन न
बोले ।

१५—संयमी मुनि कुचर्चों की उपेक्षा
करता हुआ परित्रजन करे । प्रिय और अप्रिय
सब कुछ सहें । सर्वत्र सब (जो कुछ देखें उसी)
की अभिलाषा न करे तथा पूजा और गर्हा
की भी अभिलाषा न करे ।

१. जहितु संगं य (बु०) ; जहितु संगं य (बु०) ; जहितु संगं य (बु०) ; जहितु संगं य (बु०) ।

२. भयावहं (बु०, व०) ।

३. अम्भं अपरिमाहं च (बु० पा०) ।

४. दयाणुकम्पी (बु० पा०) ।

५. विट्ठे (व०) ।

६. उ (व०) ।

१६—अणेगछन्दाइह^१ माणवेहिं
जे भावओ संपगरेइ^२ भिक्खु ।
भयभेरवा तत्थ उड्ढिन्ति^३ भीमा
दिब्बा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा॥

१७—परीसहा दुब्बिसहा अणेगे
सीयन्ति जत्था बहुकायरा नरा ।
से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू
संगामसीसे इव नागराया ॥

१८—सीओसिणा दंसमसा य फासा
आयंका विविहा फुसन्ति देहं ।
अकुक्कुओ^४ तत्थऽहियासएज्जा
ग्याइं^५ खेवेज्ज पुरेकडाइं ॥

१९—पहाय रागं च तथैव दोसं
मोहं च भिक्खु सययं वियक्खणो ।
मेरुं च वाणं अकम्पमाणो
परीसहे आयुगुत्ते सहेज्जा ॥

२०—अणुन्नए नावणए महेसी
न यावि पूयं गरहं च संजए ।
स उज्जुभावं पडिवज्ज संजए
निव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥

अनेकछन्दः इह मानवेषु
यान् भावतः संप्रकरोति भिक्षुः ।
भयभेरवास्तत्रोद्यन्ति भीमाः
विष्वा मानुष्याः अथवा तैरिच्छाः॥

परीषहा दुर्विषहा अनेके
सीदन्ति यत्र बहुकालरा नराः ।
स तत्र प्राप्तो न व्यथेन् भिक्षुः
सङ्ग्राम-शीर्षं इव नागराजः ॥

शीतोष्णं दंसमशकाश्च स्पर्शाः
आतङ्का विविधाः स्पृशन्ति देहम् ।
अकुक्कुजस्तत्राघिसहेत
रजांसि क्षपयेत् पुराकृतानि ॥

प्रहाय रागं च तथैव दोषं
मोहं च भिक्षुः सततं विचक्षणः ।
मेरुरिव वातेनाऽकम्पमानः
परीषहान् आत्म-गुप्तः सहेत ॥

अणुन्नतो नावनतो महविः
न बापि पूनां गहीं च सजेत् ।
स उज्जुभावं प्रतिपद्य संयतः
निर्वाण-मार्गं विरत उपैति ॥

१६—पंवार में मनुष्यों में जो अनेक
अभिप्राय होते हैं वस्तु-वृष्ट्या वे भिक्षु में भी
होते हैं । किन्तु भिक्षु उन पर अनुशासन करे
और साधुपन में देव, मनुष्य अथवा तिर्यञ्च
सम्बन्धी भय पैदा करने वाले भीषण-भीषणतम
उपयग उत्पन्न हों, उन्हें सहन करे ।

१७—जहाँ अनेक दुस्सह परीषह प्राप्त
होते हैं, वहाँ बहुत सारे कायर लोग सिन्न हो
जाते हैं । किन्तु भिक्षु उन्हें प्राप्त होकर व्यथित
न बने—जैसे संग्राम-शीर्ष (मोर्च) पर नाग-
राज व्यथित नहीं होता ।

१८—शीत, उष्ण, हॉल, मच्छर, तृण-
स्पर्श और विविध प्रकार के आनन्द जब देह
का स्पर्श करें तब मति धामन भाव में उन्हें
सहन करे, पूर्वकृत रजों (कर्मों) को क्षीण
करे ।

१९—विचक्षण भिक्षु राग, द्वेष और
मोह का सतत त्याग कर, वायु से मेरु की
भौति अकम्पमान होकर तथा आत्म-गुप्त बनकर
परीषहों को सहन करे ।

२०—पूजा में उन्नत और गहीं में
अवनत न होने वाला महैपी मृनि उन (पूजा
और गहीं) में लक्ष्य न हो । अक्षित रहने वाला
वह विरत सयमी आर्य को स्वीकार कर
निर्वाण-मार्ग को प्राप्त होता है ।

१. छन्दासिह (बु०) ।

२. सोपगरेइ (वृ०) ।

३. उड्ढिन्ति (बु० पा०) ।

४. अकुक्कु (बु० पा०, वृ०) ।

५. रजाइ (उ०) ।

समुद्रपालीयं (समुद्रपालीय)

२८१

अध्ययन २१ : श्लोक २१-२४

२१—अरद्हरइसहे पहीणसंथवे
विरए आयहिण पहाणवं ।
परमट्टपएहि चिट्ठई
छिन्नसोए अममे अकिचणे ॥

२२—विवित्तलयणाइ भएज्ज ताई'
निरोवलेवाइ असंथडाइ ।
इसीहि चिण्णाइ महायसेहि
काएण फासेज्ज परीसहाइ ॥

२३—सन्नाणनाणावगए^१ महेसी
अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।
अणुत्तरेणाणवरे^२ जसंसी
ओभासई सूरिए वन्तलक्खे^३ ॥

२४—दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं
निरंगणे^४ सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुदं व महाभवोचं
समुद्रपाले 'अपुणागमं गए'^५ ॥
—त्ति वेमि ॥

अरति-रतिसहः प्रहोण-संस्तवः
विरतः आत्म-हितः प्रवानवान् ।
परमार्थ-पदेषु तिष्ठति
छिन्न-शोकोऽममोऽकिचनः ॥

विविक्त-लयनानि भजेत त्रायी
निरुपलेपान्प्रसंसृतानि ।
श्रुतिभिर्योनिं महायशोभिः
कायेन स्पृशेन् परोषहान् ॥

सज्ज्ञानज्ञानोपगतो महर्षिः
अनुत्तरं चरित्वा धर्म-संचयम् ।
अनुत्तर-ज्ञानधरः यशस्वी
अवभासते सूर्य इवान्तरिक्षे ॥

द्विविधं क्षपयित्वा च पुण्य-पापं
निरङ्गणः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
तरित्वा समुद्रमिव महाभवोचं
समुद्रपालोऽपुनरागमां गतः ॥
—इति ब्रह्मो मि ।

२१—जो अरति और रति को सहने
बाला, परिचय को क्षीण करने वाला,
अकर्त्तव्य से विरत रहने वाला, आत्म-हित
करने वाला तथा प्रधानवान् (संयमवान्)
होता है, वह छिन्न-शोक (अशोक), अभय
और अकिंचन होकर परमार्थ-पदों में स्थित
होता है ।

२२—त्रायी मुनि महामहास्वी श्रुतियों
द्वारा आचीर्ण, अलिप्त और असंस्तुत (बीज
भादि से रहित) विविक्त लयनों (एकान्त
स्थानों) का सेवन करे तथा काया से परोषहों
को सहन करे ।

२३—सद्ज्ञान में ज्ञान-प्राप्त करने
वाला महर्षी मुनि अनुत्तर धर्म-संचय का
आचरण कर अनुत्तर ज्ञानधारी और यशस्वी
होकर अन्तरिक्ष में सूर्य की भाँति दीप्तिमान्
होता है ।

२४—समुद्रपाल संवम में निश्चल और
सर्वतः मुक्त होकर, पुण्य और पाप दोनों को
क्षीण कर तथा विशाल संसार-प्रवाह को
समुद्र की भाँति तरकर अपुनरागम-गति (मोक्ष)
में गया है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. तावा (हृ०) ।

२. सन्नाणं (हृ०) ; सन्नाण (हृ० पा०) ; सन्नाण (हृ०) ।

३. पुणुत्तरे (हृ० पा०) ।

४. वन्तलक्खे (अ०) ।

५. निरंगणे (हृ०) ; निरंगणे (हृ० पा०) ।

६. 'गए' गड (अ, ब, ग, घ, ङ) ।

वर्द्धापन हुआ। विवाह से पूर्व समस्त कार्य सम्पन्न हुए। विवाह का दिन आया। राजीमती अलंकृत हुई। कुमार मो अलंकृत हो मच हाथी पर आरुढ़ हुए। सभी दशाहं एकत्रित हुए। बाजे बजने लगे। मंगल दीप जलाए गए। वर-यात्रा प्रारम्भ हुई। हजारों लोगों ने उसे देखा। वह विवाह-मण्डप के पास आई। राजीमती ने दूर से अपने भावो पति को देखा। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई।

उसी समय अरिष्टनेमि के कानों में कठण शब्द पड़े। उन्होंने सारथी से पूछा—“यह शब्द क्या है?” सारथी ने कहा—“देव। यह कठण शब्द पशुओं का है। वे आपके विवाह में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों के लिए भोज्य बनेंगे। मरण-भय से वे आक्रन्दन कर रहे हैं।” अरिष्टनेमि ने कहा—“यह क्या आनन्द। जहाँ हजारों मूक और दीन पशुओं का वध किया जाता है। ऐसे विवाह से क्या जो संसार के परिभ्रमण का हेतु बनता है।” हाथी को अपने निवास की ओर मोड़ दिया। अरिष्टनेमि को मुड़ते देख राजीमती मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ी। स्वजनो ने उण्डा जल छिड़का, पंखा मका। मूर्च्छा दूर हुई। चैतन्य प्राप्त कर वह विलाप करने लगे। अरिष्टनेमि ने अपने माता-पिता के पास जा प्रव्रज्या के लिए आज्ञा माँगी। तीन सौ वर्ष तक अगारवास में रह आवण शुक्ला ५ को सहस्रवन उद्यान में बेली की तपस्या में दीक्षित हो गए।

अब रथनेमि राजीमती के पास आने-जाने लगे। उन्होंने कहा—“देवो! विषाद मत कर। अरिष्टनेमि वीतराग हैं। वे विषयानुबन्ध नहीं करते। तू मुझे स्वीकार कर। मैं जोवन भर तुम्हारी आज्ञा मानूँगा।” भगवतो राजीमती का मन काम-भोगो से निर्विण्ण हो चुका था। उसे रथनेमि को प्रार्थना अयुक्त लगे। एक बार उसने मधु-वृत संयुक्त पेय पोया और जब रथनेमि आए तब मदन फल खा उल्टी की और रथनेमि से कहा—“इस पेय को पोरों।” उसने कहा—“वमन किए गए को कैसे पौँछें?” राजीमती ने कहा—“क्या तुम यह जानते हो?” रथनेमि ने कहा—“इस बात को बालक भी जानता है।” राजीमती ने कहा—“यदि यह बात है तो मैं भी अरिष्टनेमि द्वारा वान्त हूँ। मुझे ग्रहण करना क्यों चाहते हो? धिक्कार है तुम्हें जो वमा हुई वस्तु को पीने की इच्छा करते हो। इससे तो तुम्हारा मरना श्रेयस्कर है।” इससे बाद राजीमती ने धर्म कहा। रथनेमि जागृत हुए और आसक्ति से उपरत हुए। राजीमती दीक्षाभिमुख हो अनेक प्रकार के तप और उपधानों को करने लगी।

भगवान् अरिष्टनेमि केवली हुए। देवों ने केवली-महोत्सव किया। रथनेमि प्रव्रजित हुए। राजीमती भी अनेक राज-कन्याओं के साथ प्रव्रजित हुईं। एक बार भगवान् अरिष्टनेमि रत्नक पर्वत पर समवसुत थे। साध्वी राजीमती अनेक साध्वियों के साथ वन्दना करने गईं। अचानक ही वर्षा प्रारम्भ हो गई। साथ वाली सभी साध्वियाँ इधर-उधर युकाओं में चली गईं।^१ उसी युका में सुनि रथनेमि पहले से ही बैठे हुए थे। राजीमती को यह ज्ञान नहीं था। युका में अन्धकार व्याप्त था। उसने अपने कपड़े सुखने के लिए फैलाए। गन्गावस्था में उसे देख रथनेमि का मन विचलित हो गया। अचानक ही राजीमती ने रथनेमि को देख लिया और शीघ्र ही अपनी बाहों से अपने आपको ढकती हुई बठ गई। रथनेमि ने कहा—“मैं तुम में अत्यन्त अनुरक्त हूँ। तेरे बिना मैं शरीर धारण नहीं कर सकता। तू मुझे स्वीकार कर। अवस्था आगे पर हम दोनों संयम-मार्ग को स्वीकार कर लेंगे।” राजीमती ने विषयों के दारुण-विपाक, जीवन की अस्थिरता और व्रत-भंग के फल का निरूपण किया। उसे धर्म कहा। वह संबुद्ध हुआ। राजीमती का अभिनन्दन कर वह अपने माण्डलिक साधुओं में चला गया। राजीमती भी आधिका के पास चली गईं। संयम को विशुद्ध पालने हुए दोनों सिद्ध, बुद्ध और सुकृष्ण हुए।

इस अध्ययन के ४२, ४३, ४४, ४५ और ४६—ये पाँच श्लोक दशवेकालिक के दूसरे अध्ययन में उद्यो-के-र्यों आए हैं।

इस अध्ययन में आए हुए भोज, अन्धक और बुद्धि—ये तीन शब्द प्राचीन कुलों के द्योतक हैं।

१—उस युका को आज भी राजीमती युका कहा जाता है।—विषय तीर्थ स्वरूप, १-६

षाडसमं अज्ज्ञवणं :
रहनेमिज्जं

द्वार्षिक अध्ययन :
रहनेमीय

वाङ्मयसमं अज्झयणं : द्वाविंश अध्यायन

रहनेमिज्जं : रथनेमीयम्

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुबाह

१—सोरियपुरमि नयरे
आसि राया महिड्डिए ।
वसुदेवे त्ति नामेणं
रायलक्खणसंजुए ॥

सोरियपुरे नगरे
आसीद्वाजा महद्विकः ।
वसुदेव इति नाम्ना
राज-लक्षण-संयुतः ॥

१—सोरियपुर नगर में राज-लक्षणों
से युक्त वसुदेव नामक महान् श्रद्धिमान् राजा
था ।

२—तस्स भज्जा दुवे आसी
रोहिणी देवई तहा ।
तासि दोण्हं पि दो पुत्ता
इट्ठा रामकेसवा ॥

तस्य भार्ये द्वे आस्तां
रोहिणी देवकी तथा ।
तयोर्द्वयोरपि द्वौ पुत्रौ
इष्टौ राम-केशवौ ॥

२—उसके रोहिणी और देवकी नामक
दो भार्याएँ थीं : उन दोनों के राम और
केशव—ये दो प्रिय पुत्र थे ।

३—सोरियपुरमि नयरे
आसी राया महिड्डिए ।
समुद्विजए नामं
रायलक्खणसंजुए ॥

सोरियपुरे नगरे
आसीद्वाजा महद्विकः ।
समुद्विजयो नाम
राज-लक्षण-संयुतः ॥

३—सोरियपुर नगर में राज-लक्षणों
से युक्त समुद्विजय नामक महान् श्रद्धिमान्
राजा था ।

४—तस्स भज्जा सिवा नाम
तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिद्धनेमि त्ति
लोगनाहे दमीसरे ॥

तस्य भार्या शिवानाम्ना
तस्याः पुत्रो महायशः ।
भगवानरिष्टनेमिरिति
लोक-नाथो दमीश्वरः ॥

४—उसके शिवा नामक भार्या थी ।
उसके भगवान् अरिष्टनेमि नामक पुत्र हुआ ।
बहु लोकनाथ एवं जितेन्द्रियों में प्रधान था ।

५—सोऽरिद्धनेमिनामो उ
लक्खणस्सरसंजुओ^१ ।
अट्टसहस्सलक्खणधरो
गोयमो कालकच्छवी ॥

सोऽरिष्टनेमिनामा तु
स्वर-लक्षण-संयुतः ।
अष्ट-सहस्र-लक्षण-धरः
गौतमः कालकच्छवी ॥

५—बहु अरिष्टनेमि स्वर-लक्षणों से
युक्त, एक हजार आठ दृढ-लक्षणों का धारक,
गौतम गोत्री और व्याम वर्ण वाला था ।

आश्चर्य

इस अध्ययन में अन्धक-कुल के नेता समुद्रविजय के पुत्र रथनेमि का वृत्तान्त है, इसलिए इसका नाम 'रथनेमिउत्तमि'—'रथनेमियो' है।

सोरियपुर नाम का नगर था। वहाँ वृष्णि-कुल के वसुदेव राज्य करते थे। उनके दो रानियाँ थीं—रोहिणी और देवकी। रोहिणी के एक पुत्र था। उसका नाम 'बलराम' था और देवकी के पुत्र का नाम 'केशव' था।

उसी नगर में अन्धक-कुल के नेता समुद्रविजय राज्य करते थे। उनकी पटरानी का नाम शिवा था। उसके चार पुत्र थे—अरिष्टनेमि, रथनेमि, सत्यनेमि और दृढनेमि। अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थङ्कर हुए और रथनेमि तथा सत्यनेमि प्रत्येक बुद्ध हुए।¹

उस समय सोरियपुर में दूध-राज्य था। अन्धक और वृष्णि—ये दो राजनैतिक दल वहाँ का शासन चलाते थे। वसुदेव वृष्णियों के नेता थे और समुद्रविजय अन्धकों के। इस प्रकार की राज्य-प्रणाली को 'विरुद्ध-राज्य' कहा जाता था।

कार्तिक कृष्णा द्वादशी को अरिष्टनेमि का जीव शिवा रानी के गर्भ में आया। माता ने १४ स्वप्न देखे। श्रावण शुक्ला ५ को रानी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया। स्वप्न में रिष्टरत्नमय नेमि देखे जाने के कारण पुत्र का नाम अरिष्टनेमि रखा। वे आठ वर्ष के हुए। कृष्ण ने कस का वध कर डाला। महाराज जरासंध यादवों पर कुपित हो गया। मरने के भय से सभी यादव पश्चिमी समुद्र तट पर चले गए। वहाँ द्वारवती नगरी में सुख से रहने लगे। कुछ समय के बाद बलराम और कृष्ण ने जरासंध को मार डाला और वे राजा बन गए। अरिष्टनेमि युवा बने। वे इन्द्रिय-विषयों से पराङ्मुख रहने लगे। एक बार समुद्रविजय ने केशव से कहा—“ऐसा कोई उपक्रम किया जाए जिससे कि अरिष्टनेमि विषयों में प्रवृत्त हो सके।” केशव ने रुक्मणी, सत्यभामा आदि को इस ओर प्रयत्न करने के लिए कहा। अनेक प्रयत्न किए गए। अनेक प्रलोभनों से उन्हें विचलित करने का प्रयास किया गया। पर वे अपने लक्ष्य पर स्थिर रहे। एक बार केशव ने कहा—“कुमार! ऋषभ आदि अनेक तीर्थङ्कर भी गृहस्थाश्रम के भोगों को भोग कर, पश्चिम-वय में दीक्षित हुए थे। उन्होंने भी मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह परमार्थ है।” अरिष्टनेमि ने नियति को प्रबलता जान केशव की बात स्वीकार कर ली। केशव ने समुद्रविजय को सारी बात कही। वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और योग्य कन्या को गवेषणा करने लगे। भोज-कुल के राजन्य उग्रसेन की पुत्री राजीमती को अरिष्टनेमि के योग्य समझ विवाह को बातचीत की। उग्रसेन ने इसे अनुग्रह मान स्वीकार कर लिया। दोनों कुलों में

१—उत्तराध्ययन निर्गुक्ति, गाथा ४४३-४४६ :

सोरियपुरासि नगरे, आसी राधा समुद्रविजर्भासि ।
तत्सासि भगमाहिनी, सिवसि देवी भयुज्जंगी ॥
तेसि पुष्पा चढरो, अरिष्टनेमी तहेव रहनेमी ।
तहमी अ सचचनेमी, चडत्थमी होइ द्दवनेमी ॥
ओ सो अरिष्टनेमी, बावीसहमी अहेसि सो अरिहा ।
रहनेमि सचचनेमी, एए पणेचकुडा उ ॥

६—वज्ररिसहसंचयणो
समचउरंसो भसोयरो ।
तस्स राईमइं कन्नं
भज्जं जायइ केसवो ॥

वज्ररिखन-संहननः
समचतुराओ भसोवरः ।
तस्य राजीमती कन्यां
भार्या याचते केसवः ॥

६—बह वज्ररिखन संहनन और सम-
चतुरस्र संस्थान वाला था । उसका उरर
मछली के उदर जैसा था । केसव ने उसके
लिए राजीमती कन्या की माँग की ।

७—अह सा रायवरकन्ना
मुसीला चारुपेहिणी ।
सव्वलक्षणसंपुन्ना^१
विज्जुसोयामणिप्पभा ॥

अथ सा राजवर-कन्या
मुसीलाचारप्रेक्षिणी ।
सबलक्षण-सम्पूर्णा
विज्जुत्सोदामनी-प्रभा ॥

७—बह राजकन्या मुसील, चारु-प्रेक्षिणी
(मनोहर-चितवन वाली), स्त्री-जनोचित
सर्व-लक्षणों से परिपूर्ण और चमकती हुई
बिजली जैसी प्रभा वाली थी ।

८—अहाह जणओ तीसे
वामुदेवं महिड्डियं ।
इहागच्छऊ कुमारो
जा से कन्नं दलाम हं ॥

अथाह जनकस्तरुथाः
वामुदेवं महद्विकम् ।
इहागच्छतु कुमारः
येन तस्मै कन्यां दहाम्यहम् ॥

८—उसके पिता उपरसेन ने महान्
श्रद्धिमान् वामुदेव से कहा—“कुमार यहाँ
आए तो मैं उसे अपनी कन्या दे सकता हूँ ।”

९—सव्वोसहीहि ष्हविओ
कयकोउयमंगलो ।
दिव्वजुयलपरिहिओ
आभरणेहि विभूसिओ^२ ॥

सर्वोद्यधिभिः स्नापितः
कृत-कौतुक-मंगलः ।
परिहित-दिग्ग-युगलः
आभरणै-विभूषितः ॥

९—अरिष्टनेमि को सर्व औपयियों के
जल से नहलाया गया, कौतुक और मंगल किए
गए, दिव्य वस्त्र-युगल पहनाया गया और
आभरणों से विभूषित किया गया ।

१०—मत्तं च गन्धहत्तिं^३
वामुदेवस्स जेट्ठगं ।
आलुडो सोहए अहियं
सिरे चूडामणो जहा ॥

मत्तं च गन्धहृत्तिनं
वामुदेवस्य ज्येष्ठकम् ।
आलुङ्कः शोभतेऽधिकं
शिरसि चूडामणिर्यथा ॥

१०—वामुदेव के मतवाले ज्येष्ठ गन्ध-
हृत्ति पर आलुङ्क अरिष्टनेमि शिर पर चूडामणि
की भाँति बहुत सुशोभित हुआ ।

१. ^०संपन्ना (व०, क०) ।

२. विभूसई (क०) ।

३. ^०हत्ति च (अ, आ, इ, उ) ।

११—‘अहं ऊसिएण’^१ छत्तेण
चामराहि य सोहिण ।
दसारचक्केण य सो
सब्बओ परिवारिओ ॥

१२—चउरगिणीए सेनाए
रइयाए जहकम्म ।
तुरियाण सन्निनाएण
दिब्बेण गगणं फुस ॥

१३—एयारिसीए इड्ढीए
जुईए उत्तिमाए य ।
नियगाओ भवणाओ
निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥

१४—अहं सो तत्थ निज्जन्तो
दिस्स पाणे भयदुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च
सन्निरुद्धे^२ सुदुक्खिए ॥

१५—जीवियन्तं तु संपत्ते
मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासेत्ता से महापण्णे
सारहिं इणमन्ववी ॥

१६—कस्स अट्ठा ‘इमे पाणा’^३
एए सब्बे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च
सन्निरुद्धा य अञ्छहिं ? ॥

अथोच्छिन्नं तेन छत्रेण
चामराभ्यां च शोभितः ।
दशार्हं चक्रेण च स
सर्वतः परिवारितः ॥

चतुरङ्गिण्या सेनया
रक्षितया यथाक्रमम् ।
तूर्याणां सन्निनायेन
दिब्बेन गगन-स्पृशा ॥

एतादृश्या श्लाघ्या
श्रुत्या उत्तमया च ।
निजकान् भवणान्
निर्यातो वृल्लिप्तपुङ्गवः ॥

अथ स तत्र निर्यन्
दृष्ट्वा प्राणान् भय-द्रुतान् ।
वाटेः पञ्जरंश्च
सन्निरुद्धान् सुदुःखितान् ॥

जीवितान्तं तु सम्प्राप्तान्
मांसार्थं भक्षयितव्यान् ।
दृष्ट्वा स महाप्राज्ञः
सारथिभिर्दमन्ववीन् ॥

कस्यार्थादिमे प्राणा
एते सर्वे सुलैखिणः ।
वाटेः पञ्जरंश्च
सन्निरुद्धाश्च आसते ? ॥

११—अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र-चामरों से
सुशोभित और दशार-चक्र से सर्वतः परि-
वृत था ।

१२—यथाक्रम सजाई हुई चतुरगिनी
सेना और बाघों के गगन-स्पर्शी दिव्यनाद —

१३—ऐसी उत्तम ऋद्धि और उत्तम-
धुति के साथ वह वृल्लिप्त-पुङ्गव अपने भवन से
बला ।

१४—उसने वहाँ जाते हुए भय से
संश्रित, बाड़ों और पिंजरो में निरुद्ध, सुदुःखित
प्राणियों को देखा ।

१५—वे मरणासन्न दशा को प्राप्त थे
और मांसाहार के लिए खाए जाने वाले थे ।
उन्हें देख कर महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने सारथि
से इस प्रकार कहा—

१६—“सुख की चाह रखने वाले ये सब
प्राणी किसलिए इन बाड़ों और पिंजरो में
रोके हुए हैं ?”

१. से ओसिएण (वृ० पा०) ।

२. सन्निरुद्धे (वृ० पा०) ।

३. बहुपाणे (वृ० पा०) ।

१७—अहं सारही तओ भणइ
एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झं विवाहकज्जमि
भोयावेउं बहुं जणं ॥

अथ सारथिस्ततो भणति
एते भद्रास्तु प्राणिनः ।
तच्च विवाह-कार्यं
भोजयितुं बहुं जनम् ॥

१७—सारथि ने कहा—“ये भद्र प्राणी
तुम्हारे विवाह-कार्य में बहुत जनो को खिलाने
के लिए यहाँ रोके हुए हैं ।”

१८—सौऊण तस्स^१ वयणं
बहुपाणिविणासणं^२ ।
चिन्तेइ से महापण्णे
साणकोसे जिएहि उ ॥

श्रुत्वा तस्य वचनं
बहुप्राणि-विनाशनम् ।
चिन्तयति स महाप्राज्ञः
सानुकोशो जीवेयं तु ॥

१८—सारथि का बहुत जीवा के वध
का प्रतिपादक वचन सुन कर जीवों के प्रति
सकल उग्र महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने मोचा—

१९—जइ मज्झ कारण एए
'हम्मिहिंति बहु'^३ जिया ।
न मे एयं तु निस्सेसं
परलोमे भविस्सई ॥

यदि मम कारणदेते
हनिष्यन्ते बहवो जीवाः ।
न मे एतस्तु निःशेषसं
परलोके भविष्यति ॥

१९—“यदि मेरे निमित्त से उन बहुत मे
जीवों का वध होने वाला है तो यह परलोके
म मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं होगा ।”

२०—सो कुण्डलाण जुयलं
मुत्तगं च महायसो ।
आभरणानि य सव्वाणि^४
सारहिस्स पणामए ॥

स कुण्डलयोर्युगलं
सूत्रकं च महायशः ।
आभरणानि च सर्वाणि
सारथ्ये अपयति ॥

२०—उस महायशस्वी अरिष्टनेमि ने
दो कुण्डल करघनी और सारे आभरण उतार
कर सारथी को दे दिए ।

२१—मणपरिणामे य काए
देवा य जहोइयं समोइण्णा^५ ।
सव्वड्ढोए सपरिसा
निक्खमणं तस्स काउं जे ॥

मनः-परिणामश्च कृतः
देवाश्च यथोचितं समवतीर्णाः ।
सर्वद्व्यां सपरिषदः
निष्क्रमणं तस्य कर्तुं 'जे' ॥

२१—अरिष्टनेमि के मन में जैसे ही
निष्क्रमण (दीक्षा) की भावना हुई, वैसे ही
उसका निष्क्रमण-महोत्सव करने के लिए
कोचित्य के अनुसार देवता आए । उनका
समस्त वैभव और उनकी परिषदें उनके
साथ थीं ।

१. तस्स सो (उ, ऋ०) ।

२. बहुपाण (व०) ।

३. हम्मिंति तुव्वह (उ, ऋ०, व०) ; हम्मिहिंति छव्वह (व० पा०) ।

४. ससाणि (उ, ऋ०) ।

५. समोवहिंसा (व० पा०) ।

रहनेमिजं (स्थनेमीय)

२६१

अध्ययन २२ : श्लोक २२-२६

२२—देवमणुस्सपरिवुडो
सीयारयणं^१ तओ समारुद्धो ।
निक्खमिय बारगाओ
रेवययंमि द्विओ भगवं ॥

देव-मनुष्य-परिवृतः
शिक्षिका-रत्नं ततः समारुद्धः ।
निष्क्रम्य द्वारकातः
रैवतके स्थितो भगवान् ॥

२२—देव और मनुष्यों से परिवृत
भगवान् अरिष्टनेमि शिक्षिका-रत्न में आरुद्ध
हुआ । द्वारका से चल कर वह रैवतक
(गिरनार) पहुँच पर स्थित हुआ ।

२३—उज्झाणं संपत्तो
आइण्णो उत्तिमाओ सीयाओ^२ ।
साहस्सोए परिवुडो
अह निक्खमई उ चित्ताहि ॥

उद्यानं सम्प्राप्तः
अवतोणः उत्तमायाः शिक्षिकातः ।
साहस्रया परिवृतः
अथ निष्क्रामति तु चित्रायाम् ॥

२३—अरिष्टनेमि सहस्राश्रमण उद्यान में
पहुँच कर उत्तम शिक्षिका से नीचे उतरा ।
भगवान् ने एक हजार मनुष्यों के साथ चित्रा
नदी में निष्क्रमण किया ।

२४—अह से मुगन्धगन्धि^३
तुरियं मउयकुच्चि^४ ।
सयमेव लुंचई केसे
पंचमुट्ठीहि^५ समाहिओ ॥

अथ स मुगन्धि-गन्धिकान्
त्वरितं मृदुक-कुचितान् ।
स्वयमेव लुंचति केशान्
पञ्च-मुष्टिभिः समाहितः ॥

२४—समाहित अरिष्टनेमि ने मुगन्ध से
मुवासित मृदुमार और लूँघराले बालों का
पञ्चमुष्टि में अपने आप तुरन्त लोच किया ।

२५—वामुदेवो य णं भणइ
लुत्तकेशं जिइन्दियं ।
इच्छियमणोरहे तुरियं
पावेमू^६ तं दमीसरा ! ॥

वामुदेवश्चेभं भणति
लुप्त-केशं जितेन्द्रियम् ।
इच्छित-मनोरथं त्वरितं
प्राप्नुहि त्वं दमोदर ! ॥

२५—वामुदेव ने लुप्त-केश और जितेन्द्रिय
भगवान् से कहा—दमोदर ! तुम अपने
इच्छित-मनोरथ को शीघ्र प्राप्त करो ।

२६—ताणेणं दंसणेणं च
चरित्तेण तहेव^७ य ।
खन्तीए मुत्तीए^८
वड्डमाणो भवाहि य ॥

ज्ञानेन वशनेन च
चारित्र्येण तथैव च ।
क्षान्त्या मुक्त्या
वर्धमानो भव च ॥

२६—तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, क्षान्ति
और मुक्ति से बढ़ो ।

१. सीइया (ऋ०) ।

२. सीइया (ऋ०) ।

३. छगिण (ऋ०, इ०) ।

४. मणोप (अ०) ।

५. पंचमुट्ठीहि (इ०) ।

६. पावेमू (इ०) ।

७. तहेव (इ०) ।

८. मुत्तीए सेव (इ०) ।

उत्तरज्ज्मयणं (उत्तराध्ययन)

२६२

अध्ययन २२ : श्लोक २७-३१

२७—एवं ते रामकेसवा
दसारा य बहू जणा ।
अरिष्टनेमि वन्दित्ता
अङ्गया बारगापुरि ॥

एवं तो रामकेशवो
बराहार्हाश्च बहवा जनाः ।
अरिष्टनेमि वन्दित्वा
अतिगता द्वारका-पुरीम् ॥

२७—इस प्रकार राम, केशव, दसारा तथा दूसरे बहुत से लोग अरिष्टनेमि को बन्धना कर द्वारका पुरी में लौट आए ।

२८—सोऊण रायकन्ना
पव्वज्जं सा जिणस्स उ ।
नीहासा य निराणन्दा
सोणेण उ समुत्थया ॥

श्रुत्वा राजकन्या
प्रव्रज्यां सा जिनस्य तु ।
निर्हासा च निरानन्दा
शोकेन तु समवसृता ॥

२८—अरिष्टनेमि के प्रव्रज्या की बात को सुन कर राजकन्या राजीमती अपनी हँसी, खुशी और आनन्द को लौ बैठी । वह शोक से स्तब्ध हो गई ।

२९—राईमई विचिन्तेइ
धिरत्थु मम जीवियं ।
जा हं तेण परिच्छत्ता
'सेयं पव्वइउं' मम ॥

राजीमती विचिन्तयति
चिगस्तु मम जीवितम् ।
याहं तेन परित्यक्ता
श्रेयः प्रव्रजितुं मम ॥

२९—राजीमती ने सोचा—मेरे जीवन को धिक्कार है । जो मैं अरिष्टनेमि के द्वारा परित्यक्त हूँ । अब मेरे लिए प्रव्रजित होना ही श्रेय है ।

३०—अह सा भमरसन्निभे^१
कुच्चफणगपसाहिण^२ ।
सयमेव लुंचई केसे
धिइमन्ता ववस्सिया^३ ॥

अथ सा भ्रमर-सन्निभान्
कूर्च-फणक-प्रसाधितान् ।
स्वयमेव लुंचति केशान्
धृतिमती ऋषसिता ॥

३०—धीर एवं कृत-निश्चय राजीमती ने कूर्च व कर्षी से सँवारे हुए और जैसे काले केशों का अपने आप लुंचन किया ।

३१—वासुदेवो य णं भणइ
लुत्तकेसं जिइन्दियं ।
संसारसागरं घोरं
तर कन्ने ! लहुं लहुं ॥

वासुदेवस्त्वेषां भणति
लुप्त-केशां जितेन्द्रियाम् ।
संसार-सागरं घोरं
तर कन्ये ! लघु लघु ॥

३१—वासुदेव ने लुप्त-केशा और जितेन्द्रिय राजीमती से कहा—“हे कन्ये ! तू घोर संसार-सागर का अतिशीघ्रता से पार प्राप्त कर ।”

१. समुत्थया (अ) ; समुत्थया (आ) ।

२. सेउं पव्वइउं (ऋ) ; सेजो पव्वइजो (ङ) ; सेउं पव्वइयं (अ) ।

३. 'संसार' (अ) ।

४. 'कलया' (अ) ।

५. वि तवस्सिया (अ) ।

३२—सा पञ्चइया सन्ती
पञ्चावेसी* तहि बहु ।
सयणं परियणं चैव
सीलवन्ता बहुसुया ॥

सा प्रव्रजिता सती
प्रबोवजन् तत्र बहु ।
स्वजनं परिजनं चैव
सीलवती बहुधता ॥

३२—शीलवती एवं बहुधन राजीमती ने
प्रव्रजित हो कर द्वारका में बहुत स्वजन और
परिजन को प्रव्रजित किया ।

३३—गिरि रेवययं जन्ती
वासणुला उ अन्तरा ।
वासन्ते अन्धयारंमि
अन्तो लयणस्स सा ठिया ॥

गिरि रेवतक यान्ती
वर्षेणादा त्वन्तरा ।
वर्षत्यन्धकारे
अन्तलयनस्य सा स्थिता ॥

३३—बहु रेवतक पर्वत पर जा रही
थी । वीच में वर्षा से भीग गई । वर्षा हो
रही थी, अन्धेरा छाया हुआ था, उस समय
वह लयन (गफा) में छहर गई ।

३४—चीवराइं विसारन्ती
जहा जाय त्ति पासिया ।
रहनेमी भग्गवित्तो
पच्छा दिट्ठो य तीइ वि ॥

चीवराणि विसारयन्ती
यथाजालेति दृष्टा ।
रथनेमिभंगनचिनः
पश्चाद् दृष्टश्च तथाऽपि ॥

३४—चीवरा को मुलाने के लिए
फैलानी हुई राजामती को रथनेमि ने यथा-
जान (तब) रूप में देखा । वह भग्न-चित्त हो
गया । बाद में राजीमती ने भी उसे देख
लिया ।

३५—भीया य सा तहि दट्ठुं
एगन्ते संजयं तयं ।
बाहाहि काउं संगोफं
वेवमाणो निसीयई ॥

भीता च सा तत्र दृष्ट्वा
एकान्ते संयतं तकम् ।
बाहुभ्यां कृत्वा संगोपं
वेपमाना निषीदति ॥

३५—एकाल में उस संयति को देख वह
डरी और दोनों भुजाओं के गुम्फन से वक्ष को
ढाँक कर, कांपती हुई बैठ गई ।

३६—अह सो वि रायपुत्तो
समुद्विजयंगजो ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं
इमं बक्कं उदाहरे ॥

अथ सोऽपि राज-पुत्रः
समुद्रविजयाङ्गुलजः ।
भीतां प्रवेयितां दृष्ट्वा
इदं वाक्यमुवाहरन् ॥

३६—उस समय समुद्रविजय के अंगज
राज-पुत्र रथनेमि ने राजीमती को भीत और
प्रकम्पित देख कर यह वचन कहा—

३७—रहनेमी अहं भदे !
सुख्खे ! चारुभासिणि !
ममं भयाहि सुयण !
न ते पीला भविस्सई ॥

रथनेमिरहं भद्रे !
सुख्ये ! चारुभासिणि !
मां नक्त्य सुतनु !
न ते पीडा अभिप्पसि ॥

३७—“भद्रे ! मैं रथनेमि हूँ । सुख्ये !
चारुभासिणि ! तू मुझे स्वीकार कर । सुतनु !
मुझे कोई पीडा नहीं होगी ।

१. पञ्चावेसी (अ) ।

२. रेवययं (अ) ।

३. मम (ब० पा०) ।

३८—एहि ता भुंजिमी भोगे
माणसं खु सुदुल्लहं ।
'भुक्तभोगा तओ'^१ पच्छा
जिणमणं चरिस्सिमो ॥

एहि तावत् भुंज्यहे भोगान्
मानुष्यं खलु सुदुल्लभम् ।
भुक्त-भोगास्ततः पश्चाद्
जित-मार्गं चरिष्यामः ॥

३८—“आ, हम भोग भोगें । निश्चित ही
मानुष्य-जीवन बहुत दुर्लभ है । भुक्त-भोगी हो,
फिर हम जित-मार्ग पर चलेंगे ।”

३९—दट्ठूण रहनेमि तं
भग्गुज्जोयपराइयं ।
राईमई असम्भन्ता
अप्पाणं संवरे तहि ॥

टट्ठ्वा रथनेमि तं
भग्नोद्योग-पराजितम् ।
राजीमत्यसम्भ्रान्ता
आत्मानं समबारीतु तत्र ॥

३९—रथनेमि को समय में उसका इहान
और भोगों में पराजित देख कर राजाभ्यन्ती
सम्भ्रान्त नहीं हुई । उसने वही अपने शरीर को
बन्धों से ढँक लिया ।

४०—अह सा रायवरकन्ना
सुट्टिया नियमव्वए ।
जाई कुलं च सीलं च
रक्खमाणी तयं वए ॥

अथ सा राजवर-कन्या
सुस्थिता नियम-व्रते ।
जाति कुलं च शीलं च
रक्षन्ती तत्कमवदन् ॥

४०—नियम और व्रत में सुस्थित
राजवर-कन्या राजाभ्यन्ती ने जाति, कुल और
शील की रक्षा करने हुए, रथनेमि से कहा—

४१—जइ सि रुवेण वेसमणो
ललिएण नलकूबरो ।
तहा वि ते न इच्छामि
जइ सि सक्खं पुरन्दरो ॥

यद्यसि रूपेण वैश्रमणः
ललितेन नलकूबरः ।
तथापि त्वां नेच्छामि
यद्यसि साक्षान् पुरन्दरः ॥

४१—“यदि तू रूप में वैश्रमण है, लालित्य
में नलकूबर है और नौ क्या, यदि तू साक्षात्
दण्ड है तो भी मैं तुझे नहीं चाहती ।

[पक्खंदे जलियं जोई
धूमकेतुं दुरासयं ।
नेच्छन्ति वंतयं भोत्तुं
कुले जाया अगंधण ॥]^२

(प्रस्कन्दन्ति ज्वलिनं ज्योतिषं
धूमकेतुं दुरासदम् ।
नेच्छन्ति वान्तकं भोक्तुं
कुले जाता अगन्धने ॥)

“[अगंधन कुल में उत्पन्न मर्प ज्वलिन,
बिकराल, धूमधिम्य-अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं
परन्तु (जीने के लिए) बमन किए हुए विष को
वाफस पीने की इच्छा नहीं करते ।]

४२—धिरत्थु ते जसोकामी !
जो तं जीवियकारणा ।
वन्तं इच्छसि आवेउं
सेयं ते मरणं भवे ॥

धिगस्तु त्वां यशस्कामिन् !
यस्त्वं जीवित-कारणान् ।
वान्तमिच्छस्यापातुं
श्रेयस्ते मरणं भवेत् ॥

४२—“हे यशःकामिन् ! धिक्कार है तुझे ।
जो तू भोगी-जीवन के लिये बन्धी हुई वस्तु को
पीने की इच्छा करता है । इससे तो तेरा
मरना श्रेय है ।

१. भुक्तभोगी तओ (उ, ऋ०) ; भुक्तभोगा पुणो (ऋ०) ।

२. [अ इ, ऋ०, ए, उ०, ऋ०, ए०] ।

४३—अहं च भोयरायस्स
तं च सि अन्धगवण्हिणो ।
मा कुले गन्धना होमो
संजमं निहुओ चर ॥

अहं च भोज-राजस्य
त्वं चाऽसि अन्धक-वृष्णेः ।
मा कुले गन्धनी भूय
‘यम’ निभृतश्चर ॥

४३—“मैं भोज-राज की पुत्री हूँ और तू
अन्धक-वृष्णि का पुत्र । हम कुल में गन्धन
सर्प की तरह न हों । तू निभृत हो—स्थिर
मन हो—गंयम का पालन कर ।

४४—जइ तं काहिसि भावं
जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धो व्व हदो
अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥

यदि त्वं करिष्यसि^१भावं
या या इच्छसि नारीः ।
वाताविद्धः इव हटः
अस्थितात्मा भविष्यसि ॥

४४—“यदि तू स्त्रियों को देव उनके प्रति
इस प्रकार राग-भाव करेगा तो वायू से
बाहत हट की तरह अस्थितात्मा हो जाएगा ।

४५—गोवालो भण्डवालो^१ वा
जहा तहव्वऽणिस्सरो ।
एवं अणिस्सरो तं पि
सामण्यस्स भविस्ससि ॥

गोपालो भाण्डपालो वा
यथा तद्वद्व्यानीश्वरः ।
एवमनीश्वरस्त्वमपि
धामन्यस्य भविष्यसि ॥

४५—“जैसे गोपाल और भाण्डपाल
गायों और किरान के स्वामी नहीं होते,
इसी प्रकार तू भी धामन्य का स्वामी नहीं
होगा ।

[कोहं माणं निगिण्हित्ता
मायं लोभं च सव्वसो ।
इन्द्रियाइं वसे काउं
अप्पाणं उवसंहरे ॥]^२

(कोषं मानं निगृह्य
मायां लोभं च सर्वशः ।
इन्द्रियाणि वशोभूत्य
आत्मानमुपसंहरेः ॥)

“(तू कोष और मान का निग्रह कर ।
माया और लोभ पर सब प्रकार से विजय
पा । इन्द्रियों को अपने अधीन बना । अपने
शरीर का उपसंहार कर—उत्ते अनाचार से
निवृत्त कर ।)”

४६—तीसे सो वयणं सोच्चा
संजयाए सुभासियं ।
अकुसेण जहा नागो
घम्मे संपडिवाइओ ॥

तस्याः स वचनं श्रुत्वा
संयतायाः सुभाषितम् ।
अकुशेन यथा नागो
धर्मं सम्प्रतिपावितः ॥

४६—संयमिनी के इन सुभाषित वचनों
को सुन कर, रथनेमि धर्म में जैसे ही स्थिर हो
गया, जैसे अकुश से हाथी होता है ।

४७—मणगुतो वयगुत्तो
कायगुत्तो जिइन्दियो ।
सामण्यं निच्चलं फासे
जावज्जीवं दढव्वओ ॥

मनो-गुप्तो वचो-गुप्तः
काय-गुप्तो जितेन्द्रियः ।
धामन्यं निश्चलमस्त्राणीत्
यावज्जीवं दृढ-व्रतः ॥

४७—वह मन, वचन, और काया से
गत, जितेन्द्रिय तथा दृढ़व्रती हो गया । उसने
फिर आजीवन निश्चल भाव से धामन्य का
पालन किया ।

१. वण्डपाळो (वृ० पा०) ।

२. × (अ. व, ऋ०, स, छ०, यू०, वृ०) ।

उत्तरउभयणं (उत्तराध्ययन)

२६६

अध्ययन २२ : श्लोक ४८-४९

४८—उगं तवं चरित्ताणं
जाया दोष्णि वि केवलो ।
सर्वं कर्म खवित्ताणं
सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥

उग्रं तपश्चरित्वा
जातो द्वाषापि केवलिनो ।
सर्वं कर्म क्षपयित्वा
सिद्धिं प्राप्तावनुत्तराम् ॥

४८—उग्र-तप का आचरण कर तथा सब
कर्मों को क्षपा, वे दोनों (राजीमती और
रघुनेमि) अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुए ।

४९—एवं करेन्ति संबुद्धा
पण्डया पवियस्वणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु
जहा सो पुरिसोत्तमो ॥
—त्ति वेमि ।

एवं कुर्वन्ति सम्बुद्धाः
पण्डिताः प्रविचक्षणाः ।
विनिवर्तन्ते भोगेभ्यः
यथा स पुण्योत्तमः ॥
इति ब्रवीमि ।

४९—सम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण
पुण्य ऐसा ही करते हैं—वे भोगों से वेम ही
दूर हो जाते हैं, जैसे कि पुण्योत्तम रघुनेमि
हुआ ।

ऐसा मैं कहता हूँ ।



तेविंसहमं अङ्गवर्णः :
केसिगोयमिज्जं

त्रयोविंश अङ्गवर्णः :
केशि-गौतमीय

आप्तुष्ट

इस अध्ययन में पार्श्वपत्थीय कुमार-श्रमण केशी और भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गौतम का संवाद है। इसलिए इसका नाम 'केसिगोयमिज्ज'—'केशी-गौतमीय' है।^१

भगवान् पार्श्वनाथ जैन-परम्परा के तेईसवें तीर्थंकर थे और उनका शासन-काल भगवान् महावीर से द्वाई शताब्दी पूर्व का था।^२ भगवान् महावीर के शासन-काल में अनेक पार्श्वपत्थीय श्रमण तथा आवक रहते थे। पार्श्व-नाथ की परम्परा के श्रमणों तथा आवकों का भगवान् महावीर के शिष्यों से आलाप-संलाप और मिलन हुआ। उसका उल्लेख आगमों तथा व्याख्या-ग्रंथों में मिलता है। भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथ की परम्परा को मानने वाले श्रमणोपासक थे।^३

भगवती सूत्र में 'कालास्यवैशिक पुत्र' पार्श्वपत्थीय श्रमण का उल्लेख है। वे अनेक निर्ग्रन्थ स्थविरों से मिलते हैं। उनसे तार्त्विक चर्चा कर समाधान पाते हैं और अपनी पूर्व परम्परा का विसर्जन कर भगवान् महावीर की परम्परा को स्वीकार कर लेते हैं।^४

एक बार भगवान् महावीर राजगृह में समवसुत थे। वहाँ भगवान् पार्श्व की परम्परा के कई स्थविर आए और भगवान् से तार्त्विक चर्चा की। उनका मूल प्रश्न यह था—“इस परिमित लोक में अनन्त रात-दिन या परिमित रात-दिन की बात कैसे संगत हो सकती है?” भगवान् महावीर उन्हें समाधान देते हैं और वे सभी स्थविर चातुर्वर्ग-धर्म से पंचयाम-धर्म में दीक्षित हो जाते हैं।^५

भगवान् महावीर वाणिज्य आम में थे। पार्श्वपत्थीय श्रमण गांगेय भगवान् के पास आया। उसने जीवों की उत्पाद और श्रुति के बारे में प्रश्न किए। उसे पूरा समाधान मिला। उसने भगवान् की सर्वज्ञता पर विश्वास किया और उनका शिष्य बन गया।^६

उदक पेढाल पार्श्वनाथ की परम्परा में दीक्षित हुआ था। एक बार जब गणधर गौतम नालन्दा में स्थित थे तब वह उनके पास गया। चर्चा की और समाधान पा उनका शिष्य हो गया।^७

भगवान् महावीर कालाय सन्निवेश से विहार कर पत्रालय आम से होते हुए कुमार सन्निवेश में आए

१—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा, ४५१ :

गोअम-केसाओ आ, संवाच-समुट्ठिं तु जग्घेयं ।

तो केसि-गोयमिज्जं, अज्जकणं होइ नायकं ॥

२—आवस्यक निर्युक्ति, मल्लियारिद्धि, पत्र २५१ :

पासजिगाओ य होइ वीरजिणो ।

अङ्गाङ्गसलपहि गएहि चरिमो समुप्पन्नो ॥

३—आचारंग २, बुद्धिका २, सूत्र ४०१ :

समनस्स जं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावञ्चिआ समणोवासगा बावि होत्था ।

४—भगवती, १।९

५—वही, ५।६

६—वही, ६।३२

७—सूक्तवाग, २।७

और चम्पक रमणीय उद्यान में ठहरे। उसी सन्निवेश में पार्श्वार्पण स्थविर मुनिचन्द्र अपने शिष्य परिवार के साथ कूपनक नामक कुंभकार की शाला में ठहरे हुए थे। वे जिनकल्प-प्रतिमा की साधना कर रहे थे। वे अपने शिष्य को गण का भार दे स्वयं 'सख-भावना' में अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे।

गोशाला भगवान् के साथ था। उसने गाँव में घूमते-घूमते पार्श्वार्पण स्थविर मुनिचन्द्र को देखा। उनके पास जा पूछा—तुम कौन हो ?

उन्होंने कहा—हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं।

गोशाला ने कहा—अबो तुम कैसे श्रमण निर्ग्रन्थ ? निर्ग्रन्थ होते हुए भी तुम अपने पास इसने ग्रन्थ—परिग्रह क्यों रखते हो ?

इतना कह उसने भगवान् की बात उनसे कही और पूछा—क्या तुम्हारे संघ में भी ऐसा कोई महात्मा है ?

मुनिचन्द्र ने कहा—जैसे तुम हो वैसे ही तुम्हारे आचार्य होंगे।

इस पर गोशाला कृपित हो गया। उसने क्रोधाग्नि से जलते हुए कहा—यदि मेरे धर्माचार्य के तप का प्रभाव है तो तुम्हारा यह प्रतिश्रय—आश्रय जल कर भस्म हो जाए।

मुनिचन्द्र ने कहा—तुम्हारे कहने मात्र से हम नहीं जलेंगे।

गोशाला भगवान् के पास आया और बोला—भगवन् ! आज मैंने सारम्म, सपरिग्रहों साधुओं को देखा है।

भगवान् ने कहा—वे पार्श्वनाथ की परम्परा के साधु हैं।

रात का समय हुआ। कुंभकार कूपनक विकाल वेली में बाहर से अपने घर पहुँचा। उसने एक ओर एक व्यक्ति को ध्यानस्थ खड़े देखा और यह सोच कर कि 'यह चोर है', उसके गले को पकड़ा। स्थविर मुनिचन्द्र का गला घुटने लगा। असह्य-वेदना हो रही थी पर वे अकम्प रहे। ध्यान की लीनता बढ़ी। वे केवलो हुए और समस्त कर्मों को क्षीण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए।^१

एक बार भगवान् महावीर चोराग सन्निवेश में गए। गोशाला साथ था। वहाँ के अधिकारियों ने इन्हें गुप्तचर समझ पकड़ लिया। गोशाले को एक रस्सी से बाँध कर कुएँ में लटका दिया। वहाँ उपलब्ध की दो बहनें—सोभा और जयन्ति रहती थीं। वे दोनों दोक्षित होने में असमर्थ थीं, अतः पार्श्वार्पण परिव्राजिकाओं के रूप में रहती थीं। उन्होंने लोगों को महाबोर के विषय में यथार्थ जानकारी दी। अधिकारियों ने महावीर तथा गोशाला को बन्धन-मुक्त कर दिया।^२

एक बार भगवान् 'सम्प्राक' ग्राम में गए। वहाँ पार्श्वार्पण स्थविर नन्दिसेण अपने बहुभूत सुनियों के बहुत बड़े परिवार के साथ आए हुए थे। आचार्य नन्दिसेण जिनकल्प-प्रतिमा में स्थित थे। गोशाले ने उन्हें देखा और उनका तिरस्कार किया। गाँव के अधिकारियों ने भी आचार्य को 'चर' समझ पकड़ भाँलों से आहत किया। असह्य वेदना को समभाव से सहते हुए उन्हें केवलज्ञान हुआ। वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए।^३

एक बार भगवान् 'कूबिय' सन्निवेश में गए। गोशाला साथ था। वहाँ के अधिकारियों ने दोनों को 'गुप्तचर' समझ कर पकड़ लिया। वहाँ पार्श्वार्पण परम्परा की दो परिव्राजिकाओं—विजया और प्रगल्भा ने आकर उन्हें छुड़ाया।^४

१—भावयक नियुक्ति, वृत्ति पत्र, २७८

२—वही, खाँ पत्र, २७८, २७९

३-४—वही पत्र २८१

इस प्रकार पार्श्वनाथ की परम्परा के साधुओं की जानकारी देने वाले अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं। मूल आगम-साहित्य में अनेक स्थलों पर भगवान् महावीर के मूल से पार्श्व के लिए 'पुरुषादानोय' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह आदर सूचक शब्द है।

कुमार-श्रमण केशी भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के चौथे पट्टधर थे। प्रथम पट्टधर आचार्य शुभदत्त हुए। उनके उत्तराधिकारी आचार्य हरिदत्तसूरि थे। जिन्होंने वेदान्त-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य 'लौक्यि' से शास्त्रार्थ कर उनको ५०० शिष्यों सहित दीक्षित किया। इन नव दीक्षित मुनियों ने सौराष्ट्र, तैलंग आदि प्रान्तों में बिहार कर जैन-शासन की प्रभावना की। तीसरे पट्टधर आचार्य समुद्रसूरि थे। इनके काल में विदेशी नामक एक प्रचारक आचार्य ने उज्जैन नगरी में महाराजा जयसेन, उनको रानी अनंगसुन्दरी और उनके राजकुमार 'केशी' को दीक्षित किया।^१ एके चल कर मुनि केशी ने नारिक राजा परदेशी को समझाया और उसे जैन-धर्म में स्थापित किया।^२

एक बार कुमार-श्रमण केशी ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए 'भावस्ती' में आए और 'तिन्दुक' उद्यान में ठहरे। भगवान् महावीर के शिष्य गणधर गौतम भी संयोगवश उसी नगर में आए और 'कोष्ठक' उद्यान में ठहरे। नगर में आते-जाते दोनों परम्पराओं के शिष्य एक दूसरे से मिले। दोनों के मन जिज्ञासा से भर गए। आपस में ऊहापोह करते हुए वे अपने-अपने आचार्य के पास आए। उनसे पारस्परिक भेदों की चर्चा की।

कुमार-श्रमण केशी और गणधर गौतम विशिष्ट ज्ञानी थे। वे सब कुछ जानते थे। परन्तु अपने शिष्यों के समाधान के लिए वे कुछ व्यावहारिक प्रयत्न करना चाहते थे। कुमार-श्रमण केशी पार्श्व की परम्परा के आचार्य होने के कारण गौतम से उगेष्ठ थे, इसलिए गौतम अपने शिष्यों को साथ ले 'तिन्दुक' उद्यान में गए। आचार्य केशी ने आसन आदि दे उनका सत्कार किया। कई अन्य मतावलम्बी संन्यासी तथा उनके उपासक भी आए। आचार्य केशी तथा गणधर गौतम में संवाद हुआ। प्रश्नोत्तर चले। उनमें चातुर्याम और पंचयाम धर्म तथा सचेतकत्व और अचेतकत्व के प्रश्न मुख्य थे।

आचार्य केशी ने गौतम से पूछा—“भंते! भगवान् पार्श्व ने चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की और भगवान् महावीर ने पंचयाम धर्म की। दोनों का लक्ष्य एक है। फिर यह भेद क्यों? क्या यह पार्थक्य संदेह उत्पन्न नहीं करता?” (३०० ३३, ३४)

गौतम ने कहा—“भंते! प्रथम तीर्थङ्कर के श्रमण ऋजु-जड़, अन्तिम तीर्थङ्कर के वक्र-जड़ और मध्यवर्ती बाईस तीर्थङ्करों के श्रमण ऋजु-प्राज्ञ होते हैं। प्रथम तीर्थङ्कर के श्रमणों के लिए मुनि के आचार को यथावत् ग्रहण करना कठिन है, चरम तीर्थङ्कर के श्रमणों के लिए आचार का पालन करना कठिन है और मध्यवर्ती तीर्थङ्करों के मुनि उसे यथावत् ग्रहण करते हैं तथा सरलता से उसका पालन भी करते हैं। इन्हीं कारणों से धर्म के ये दो भेद हुए हैं।” (३०० ३५, ३६, ३७)

आचार्य केशी ने पुनः पूछा—“भंते! एक ही प्रयोजन के लिए अभिनिष्क्रमण करने वाले इन दोनों परम्पराओं के मुनियों के वेश में क्या विविधता क्यों है? एक सवस्त्र हैं और दूसरे अवस्त्र।” (३०० ३८, ३०)

गौतम ने कहा—“भंते! मोक्ष के निश्चित साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य हैं। वेश तो बाह्य उपकरण है। लोगों को यह प्रतीत हो कि वे साधु हैं, इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना की है। संयम जीवन-यात्रा को निभाना और 'मैं साधु हूँ'—ऐसा ध्यान आते रहना—वेश धारण के ये प्रयोजन हैं।” (३०० ३३, ३३)

१—समरसिंह, पृष्ठ ५६, ५६

२—नागिनन्दोद्धार प्रबन्ध १३६ :

केषिमासा हद्-विन्धः, यः प्रदेशीनरेष्वरय्।

प्रबोध्य नास्ति काद् धर्माद्, जैनधर्मऽप्यरोपयत् ॥

इन दो विषयों से यह आकलन किया जा सकता है कि किस प्रकार भगवान् महावीर ने अपने संघ में परिष्कार, परिवर्द्धन और सम्बर्द्धन किया था। चार महाव्रतों की परम्परा को बदल पाँच महाव्रतों की स्थापना की। सचेल परम्परा के स्थान पर अचेल परम्परा को मान्यता दी। सामाजिक-चारित्र के साथ-साथ द्वेदोपस्थापनीय-चारित्र को प्ररूपण की तथा समिति-गुप्ति का प्रथक् निरूपण कर उनका महत्त्व बढ़ाया।^१

भगवान् महावीर ने सचेल और अचेल—दोनों परम्पराओं के साधकों को मान्यता दी और उनकी साधना के लिए निश्चित पथ निर्दिष्ट किया। दोनों परम्पराएँ एक ही छत्र-छाया में पनपीं, फूली-फलीं और उनमें कभी संघट्टन नहीं हुआ। भगवान् प्रारम्भ में सचेल थे। एक देवदुष्य धारण किए हुए थे। तदनन्तर वे अचले बने और जीवन भर अचेल रहे। किन्तु उन्होंने सचेल और अचेल किसी एक को एकान्ते मान्यता नहीं दी। दोनों के अस्तित्व को स्वीकार कर उन्होंने संघ को विस्तार दिया।

इस अध्ययन में आत्म-विजय और मनोनुशासन के उपायों का अच्छा निरूपण है।

१—मुद्राचार, ७३६-२८ :

बावीसं तित्थयरा, सामाहयसंनमं उवदिसंति ।
 छेदुवठावणियं पुण, भयवं उसहो य धीरो ष ॥
 आचविसिद्धं विभजितुं, विवणादुं चावि छहदरं होदि ।
 पदेण कारणेण दु, महव्वद्द पंच पयत्ता ॥
 आदीप दव्विसोचणे, णिहणे तह छट्ठं दुत्थुपाके ष ।
 उरिमा य पच्छिमा वि हु, कप्पाकप्पं ण ज्ञाणन्ति ॥

तेविसद्वमं अज्जयणं : त्रयोविंश अध्वयन केसिगोयमिज्जं : केशि-गौतमीयम्

मूल	संस्कृत द्वाया	हिन्दी अनुबाध
१—जिणे पासे त्ति नाभेण 'अरहा लोगपूइओ । संबुद्धप्पा य सव्वन्नु धम्मतिथयरे जिणे' ॥	जिनः पार्श्वं इति नाम्ना । अर्हन् लोक-पूजितः । संबुद्धात्मा च सर्वज्ञः धर्म-तीर्थकरो जिनः ॥	१—पार्श्वं नाम के जिन हुए । वे अर्हन्, लोक-पूजित, संबुद्धात्मा, सर्वज्ञ, धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक और बीतराग थे ।
२—तस्स लोगपईवस्स आसि सीसे महायसे । केसीकुमारसमणे विज्जाचरणपारगे ॥	तस्य लोक-प्रवीणस्य आसीच्छिष्यो महायशाः । केशिः कुमार-ध्रमणः विज्जा-चरण-पारगः ॥	२—लोक को प्रकाशित करने वाले उन भगवान् पार्श्व के केशी नामक शिष्य हुए । वे महान् यशस्वी, विद्या और आचार के पार- गामी, कुमार-ध्रमण थे ।
३—ओहिनाणसुए बुद्धे सीससंघसमाउले । गामाणुगामं रीयन्ते सावत्थि नगरिमागए ॥	अवधिज्ञान-भूताभ्यां बुद्धः शिष्य-संघ-समाकुलः । ग्रामानुग्रामं रीयमाणः श्रावस्तीं नगरोमागतः ॥	३—वे अवधि-ज्ञान और भूत-सम्पदा से तत्त्वों को जानते थे । वे शिष्य-संघ से परिचुत हो कर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती में आए ।
४—तिन्दुयं नाम उज्जाणं तम्मी नगरमण्डले । फामुए सिज्जसंधारे तत्थ वासमुवागए ॥	तिन्दुकं नामोद्यानं तस्मिन् नगरमण्डले । प्रासुके शय्या-संस्तारे तत्र वासमुपागतः ॥	४—उस नगर के पार्श्व में 'तिन्दुक' उद्यान था । वहाँ जीव-जन्तु रहित शय्या (मकान) और संस्तार (आसन) लेकर वे ठहर गए ।
५—अह तेणव कालेणं धम्मतिथयरे जिणे । भगवं वद्धमाणो त्ति सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥	अथ तस्मिन्नेव काले धर्म-तीर्थकरो जिनः । भगवान् वर्धमान इति सर्वलोकं विभूतः ॥	५—उस समय भगवान् वर्धमान विहार कर रहे थे । वे धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक, जिन और समूचे लोक में विभूत थे ।

१.अरिहा लोगविस्सुए ।
सव्वन्नु सव्वदस्सी च धम्मतिथस्स देसए ॥ (६० पा०) ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

३०४

अध्ययन २३ : श्लोक ६-११

६—तस्स लोपपईवस्स
आसि सीसे महायसे* ।
भगवं गोयमे नामं
विज्जाचरणपारगे ॥

७—बारसंभञ्जि बुद्धे
सीससंघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयन्ते
से वि सावत्थिमागए ॥

८—कोट्ठगं नाम उज्जाणं
तम्मो नयरमण्डले ।
फामुए सिज्जसंथारे
तत्थ वासमुवागए ॥

९—केसीकुमारसमणे
गोयमे य महायसे ।
उभओ वि तत्थ विहरिस्सु
अलीणा* सुसमाहिया ॥

१०—उभओ सीससंघाणं
संजयाणं तवस्सिणं ।
तत्थ किन्ता समुपन्ना
गुणवन्ताण ताइणं ॥

११—केरिसो वा इमो धम्मो ?
इमो धम्मो व केरिसो ? ।
आयारधम्मपणिही
इमा वा सा व केरिसी ? ॥

तस्य लोक-प्रवीणस्य
आसीच्छिष्यो महायशः ।
भगवान् गौतमो नाम
विद्या-चरण-पारगः ॥

द्वावशांगविह बुद्धः
शिष्य-संघ-समाकुलः ।
ग्रामानुग्रामं रीयमाणः
सोऽपि श्रावस्तीमागतः ॥

कोष्ठकं नामोद्यानं
तस्मिन्नागर-मण्डले ।
प्राप्तुके शय्या-संस्तारे
तत्र वासमुपागतः ॥

केशिः कुमार-श्रमणः
गौतमस्य महायशः ।
उभावपि तत्र क्यहाण्डात्
आलीनो सुसमाहितौ ॥

उभयोः शिष्य-सङ्घानां
संयतानां तपस्विनाम् ।
तत्र चिन्तयन्त्युपन्ना
गुणवतां श्रमिण्याम् ॥

कौटिलो वायं धर्मः ?
अयं धर्मो वा कौटिलः ? ।
आचार-धर्म-प्रोणिधिः
अयं वा सा वा कौटिलः ? ॥

६—लोक को प्रकाशित करने वाले उन
भगवान् वर्धमान के गौतम नाम के शिष्य थे ।
वे महान् यशस्वी, भगवान् तथा विद्या और
आचार के पारगामी थे ।

७—वे बारह अंगों को जानने वाले और
बुद्ध थे । शिष्य-संघ से परिचुत हो कर ग्रामानु-
ग्राम विहार करते हुए वे भी श्रावस्ती में
आ गए ।

८—उस नगर के पार्श्व-भाग में 'कोष्ठक'
उद्यान था । वहाँ जीव-जन्तु रहित शय्या और
संस्तार लेकर वे ठहर गए ।

९—कुमार-श्रमण केशी और महान्
यशस्वी गौतम—दोनों वहाँ विहार कर रहे थे ।
वे आत्म-लीन और मन की समाधि से
सम्पन्न थे ।

१०—उन दोनों के शिष्य-समूहों को वहाँ
एक तर्क उत्पन्न हुआ, जो संयत, तपस्वी,
गुणवान् और कथ्यी थे ।

११—यह हमारा धर्म कैसा है ? और
यह धर्म कैसा है ? आचार-धर्म की व्यवस्था
यह हमारी कैसी है ? और यह उनकी
कैसी है ?

१. महिषिण (अ) ।

२. अलीणा (वृ० पा०) ।

१२—चाउज्जामो य जो धम्मो
जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण
पासेण य महामुणी ॥

चातुर्थांशधर्मो धर्मः
योऽयं पंच-शिक्षितः ।
देशतो वर्धमानेन
पाश्वेण च महामुनिना ॥

१२—जो चातुर्थांश-धर्म है, उसका
प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने किया है । और
यह जो पंच-शिक्षात्मक-धर्म है, उसका
प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है ।

१३—अचेलगो य जो धम्मो
जो इमो सन्तस्तुरो ।
एगकज्जपवन्नाणं
विसेसे किं नु कारणं ? ॥

अचेलकश्च यो धर्मः
योऽयं सान्तरोत्तरः ।
एककार्य-प्रपन्नयोः
विशेषे किन्नु कारणम् ? ॥

१३—महामुनि वर्धमान ने जो आचार-
धर्म की व्यवस्था की है वह अचेलक है और
महामुनि पार्श्व ने जो यह आचार-धर्म की
व्यवस्था की है, वह सान्तर (वर्ण आदि से
विशिष्ट) तथा उत्तर (मूल्यवान् वस्त्र वाली)
है । जबकि हम एक ही उद्देश्य से चले हैं तो
फिर इस भेद का क्या कारण है ?

१४—अहं ते तत्थ सीसाणं
विन्नाय पवितक्खियं ।
समागमे कयमई
उभओ केसिगोयमा ॥

अथ तौ तत्र शिष्याणां
विन्नाय प्रवितर्कितम् ।
समागमे कृतमती
उभौ केशि-गौतमौ ॥

१४—उन दोनों—केशी और गौतम ने
अपने-अपने शिष्यों की वितर्कणा को जान कर
परस्पर मिलने का विचार किया ।

१५—गोयमे पडिरूवन्नु
सीससंघसमाउले ।
जेट्ठं कुलमवेक्खन्तो
तिन्दुर्यं वणमागओ ॥

गौतमः प्रतिरूपतः
शिष्य-सङ्घ-समाकुलः ।
ज्येष्ठं कुलमपेक्षमाणः
तिन्दुकं वनमागतः ॥

१५—गौतम ने विनय की मर्यादा का
अधिकृत्य देखा । केशी का कुल ज्येष्ठ था,
इसलिए वे शिष्य-संघ को साथ लेकर तिन्दुक वन
में चले आए ।

१६—केसीकुमारसमणे
गोयमं दिस्समागयं ।
पडिरूवं पडिबत्ति
सम्मं संपडिवज्जई ॥

केशिः कुमार-श्रमणः
गौतमं दृष्ट्वागतम् ।
प्रतिरूपां प्रतिपत्तिम्
सम्यक् संप्रतिपद्यते ॥

१६—कुमार श्रमण केशी ने गौतम को
आए देख कर सम्यक् प्रकार से उनका उपयुक्त
आदर किया ।

१७—पलालं फासुयं तत्थ
पंचमं कुसतणाणि य ।
गोयमस्स निसेज्जाए
खिप्पं संपणामए ॥

पलाशं प्रासुकं तत्र
पंचमं कुश-तृणाणि च ।
गौतमस्य निबध्द्यायं
क्षिप्रं समर्पयति ॥

१७—उन्होंने तुरन्त ही गौतम को बैठने
के लिए प्रासुक पयाल (चार प्रकार के
अनाजों के बंडल) और पाँचवीं कुश नाम की
घास दी ।

२९—अचेलमो य जो धम्मो
जो इमो सन्तरोत्तरो ।
देसिओ वडमाणेण
पासेण य महाजसा^१ ॥

अचेलकदच यो धर्मः
योऽयं सान्तरोत्तरः ।
देशितो वर्धमानेन
पाद्वेण च महायशसा ॥

२९—महामुनि वर्धमान ने जो आचार-धर्म की व्यवस्था की है वह अचेलक है और महान् यशस्वी पादर्व ने जो यह आचार-धर्म की व्यवस्था की है वह सान्तर (वर्ण आदि से विशिष्ट) तथा उत्तर (मूलवान् वस्त्र वाली) है ।

३०—एगकज्जपवन्नाणं
विसेसे किं तु कारणं ? ।
लिंगे दुविहे मेहावि !
कहं विप्पञ्चओ न ते ? ॥

एककार्य-प्रपन्नयोः
विशेषे किन्तु कारणम् ? ।
लिङ्गे द्विविधे मेधाविन् !
कथं विप्रत्ययो न ते ? ॥

३०—एक ही उद्देश्य के लिए हम चले हैं तो फिर इस भेद का क्या कारण है ? मेधाविन् ! वेध के इन प्रकारों में तुम्हें संदेह कैसे नहीं होता ?

३१—केसिमेवं बुवाणं तु
गोयमो इणमन्ववी ।
विन्नाणेण समागम्म
धम्मसाहणमिच्छियं ॥

केशिमेवं बुवाणं तु
गौतम इदमन्ववी ।
विज्ञानेन समागम्य
धर्म-साधनमिच्छितम् ॥

३१—केशी के कहते-कहते ही गौतम ने इस प्रकार कहा—विज्ञान से यथोचित ज्ञान कर ही धर्म के साधनों—उपकरणों की अनुमति दी गई है ।

३२—पञ्चयत्थं च लोगस्स
नाणाविहविगप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च
लोगे लग्गप्पजोयणं ॥

प्रत्ययार्थं च लोकस्य
नानाविध-विकल्पनम् ।
यात्रार्थं ग्रहणार्थं च
लोके लिङ्गप्रयोजनम् ॥

३२—सोंगों को यह प्रतीति हो कि ये साधु हैं, इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना की गई है । जीवन-यात्रा को निभाना और 'मैं साधु हूँ', ऐसा ध्यान आते रहना—वेध-धारण के इस लोक में ये प्रयोजन हैं ।

३३—अहं भवे पइन्ना उ
मोकखसब्भूयसाहणे^१ ।
नाणं च दंसणं चैव
चरित्तं चैव निच्छए ॥

अथ भवेत्प्रतिज्ञा तु
मोक्ष-सहभूत-साधने ।
ज्ञानं च दर्शनं चैव
चारित्र्यं चैव निश्चये ॥

३३—यदि मोक्ष की वास्तविक साधना की प्रतिज्ञा हो तो निश्चय-दृष्टि में उसके साधन, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ही हैं ।

३४—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहमु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्नयोऽपि संशयो मय
तं मां कथय गौतम ! ॥

३४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

१. महासुणी (६०) ; महाजसा (६० पा०) ।

२. मुक्ख संभूय^२ (उ, ५०) ; मोकखे सम्भूय^२ (अ) ।

३५—अणेगाणं सहस्साणं
मज्जे चिद्दसि गोयमा ! ।
ते य ते अहिगच्छन्ति
कहं ते निज्जिया तुमे ? ॥

अनेकेषां सहस्राणां
मध्ये तिष्ठसि गौतम ! ।
ते च त्वामभिगच्छन्ति
कथं ते निजितास्त्वया ? ॥

३५—गौतम ! तुम हजारों-हजारों शत्रुओं
के बीच खड़े हो । वे मुझे भीतने को तुम्हारे
सामने आ रहे हैं । तुमने उन्हें कैसे पराजित
किया ?

३६—एगे जिए जिया पंच
पंच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताणं
सव्वसत्तु जिणामहं ॥

एकस्मिन् जिते जिताः पंच
पंचसु जितेषु जिता दश ।
दशधा तु जित्वा
सर्वशत्रून् जयाम्यहम् ॥

३६—एक को जीत लेने पर पाँच जीते
गए । पाँच को जीत लेने पर दस जीते गए ।
दसों को जीत कर मैं सब शत्रुओं को जीत
लेता हूँ ।

३७—सत्तु य इह के वृत्ते ?
केसी गोयममव्ववी ।
तओ केसि वुवंतं तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

शत्रवश्च इति के उक्ताः ?
केशिः गौतममव्ववीन् ।
ततः केशि ब्रूवन्तं तु
गौतम इवमव्ववीत् ॥

३७—शत्रु कौन कहलाता है ?—केसी ने
गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

३८—एगप्पा अजिए सत्तु
कसाया इन्दियाणि य ।
ते जिणित्तु जहानायं
विहरामि अहं मुणी ! ॥

एक आत्माऽजितः शत्रुः
कषाया इन्द्रियाणि च ।
तान् जित्वा यथान्यायं
विहराम्यहं मुने ! ॥

३८—एक न जीती हुई आत्मा शत्रु है ।
कषाय और इन्द्रियाँ शत्रु हैं । मुने ! मैं उन्हें
जीत कर नीति के अनुसार बिहार कर
रहा हूँ ।

३९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहमु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रजा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

३९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रजा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

४०—दीसन्ति बहवे लोए
पासवद्धा सरीरिणो ।
मुक्कपासो लहुव्वभूओ
कहं तं विहरसी ? मुणी ! ॥

दृश्यन्ते बहवो लोके
पाश-बद्धाः शरीरिणः ।
मुक्त-पाशो कृषुभूतः
कथं त्वं विहरसि ? मुने ! ॥

४०—इस संसार में बहुत जीव पाश से
बन्धे हुए दीख रहे हैं । मुने ! तुम पाश से
मुक्त और पवन की तरह प्रतिबंध-रहित
हो कर कैसे बिहार कर रहे हो ?

४१—ते पासे सबसो छित्ता
निहतूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुबभूओ
बिहरामि अहं मुणी ! ॥

तान् पाशान् सर्वशच्छिच्छ्वा
निहत्योपायतः ।
मुक्त-पाशो लघुभूतः
बिहराम्यहं मुने ! ॥

४१—मुने ! उन पाशों को सर्वथा काट कर, उपायों से विनष्ट कर मैं पाश-मुक्त और प्रतिबन्ध-रहित हो कर बिहार करता हूँ ।

४२—पासा य इइ के वुत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं वुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

पाशाश्चेति के उक्ताः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
केशिमेवं ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

४२—पाश किसे कहा गया है ?—केसी ने गौतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

४३—रागहोसादओ तिब्बा
नेहपासा भयंकरा ।
ते छिन्दित्तु जहानायं
बिहरामि जहक्कम् ॥

राग-होषादयस्तीव्राः
स्नेह-पाशा भयङ्कराः ।
तान् छिच्छ्वा यथान्यायं
बिहरामि यथाक्रमम् ॥

४३—प्रगाढ़ राग-द्वेष और स्नेह भयंकर पाश हैं । मैं उन्हें काट कर मुनि-धर्म की नीति और आचार के साथ बिहार करता हूँ ।

४४—साहु गोयम ! पन्ता ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रश्ना ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

४४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रश्ना । तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

४५—अन्तोहिययसंभूया
लया चिट्ठइ गोयमा ! ।
फलेइ विसभक्खीणि^१
सा उ उद्धरिया कहं ? ॥

अन्तर्हृदय-संभूता
लता तिष्ठति गौतम ! ।
फलति विष-भक्ष्याणि
सा तूवधृता कथम् ? ॥

४५—गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न जो लता है जिसके विष-मुल्य फल लगते हैं, उसे तुमने कैसे उखाड़ा ?

४६—तं लयं सबसो छित्ता
उद्धरित्ता समूलियं ।
बिहरामि जहानायं
मुक्को मि विसभक्खणं ॥

तां लतां सर्वशच्छिच्छ्वा
उद्धृत्य समूलिकाम् ।
बिहरामि यथान्यायं
मुक्तोऽस्मि विष-भक्षणात् ॥

४६—उस लता को सर्वथा काट कर, जड़ से उखाड़ कर मैं मुनि-धर्म की नीति के अनुसार बिहार करता हूँ, इसलिए मैं विष-फल के ज्ञान से मुक्त हूँ ।

४७—लया य इह का वृत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

लता च इति का उक्ता ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्सं तु
गौतम इवमब्रवीत् ॥

४७—लता किसे कहा गया है ?—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

४८—भवतण्हा लया वृत्ता
भीमा भीमफलोदया ।
तमुद्धरितुं जहानायं
विहरामि महामुणी ! ॥

भव-तृष्णा लता उक्ता
भीमा भीमफलोदया ।
तामुद्धृत्य यथान्यायं
विहरामि महामुने ! ॥

४८—भव-तृष्णा को लता कहा गया है । वह भयंकर है और उसमें भयंकर फलों का परिपाक होता है । महामुने ! मैं उसे उखाड़ कर मुनि-धर्म की नीति के अनुसार विहार करता हूँ ।

४९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मे कथय गौतम ! ॥

४९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

५०—संपज्जलिया घोरा
अग्गी चिट्ठइ गोयमा ! ।
'जे डहन्ति शरीरत्था'^१
कहं विज्झाविद्या तुमे ? ॥

संप्रज्वलिता घोराः
अग्नयस्तिष्ठन्ति गौतम ! ।
ये बहन्ति शरीरस्थाः
कथं विप्रयापितास्त्वया ? ॥

५०—गौतम ! घोर-अग्नियाँ प्रज्वलित हो रही हैं, जो शरीर में रहती हुई मनुष्य को जला रही हैं । उन्हें तुमने कैसे बुझाया ?

५१—महामेघप्पसूयाओ
गिज्झ वारि जलुत्तमं ।
'सिचामि सययं देहं'^२
सित्ता नो व डहन्ति मे ॥

महामेघ-प्रसूतात्
गृहीत्वा वारि जलोत्तमम् ।
सिचामि सततं देहं
सिक्तता नो एव बहन्ति माम् ॥

५१—महामेघ से उत्पन्न निर्भर से सब जलों में उत्तम जल लेकर मैं उन्हें सींचता रहता हूँ । वे सींची हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलाती ।

१. कम्पच्छिन्नु (ड, ख०) ; लम्पद्धरिवा (भा०) ।

२. जा बहेति शरीरत्था (व० पा०) ।

३. सिचामि सययं ते ओ (ते ड) (ड, ख०, व०) ; सिचामि सययं देहा, सिचामि सययं सं तु (व० पा०) ।

५२—अग्नी य इह के वृत्ता ?
केसी गीयममब्बवी ।
केसिमेवं वुवंतं तु
गीयमो इणमब्बवी ॥

अग्नयश्चेति के उक्ताः ?
केशिः गीतममब्बवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गीतम इवमब्बवीत् ॥

५२—अग्नि किन्हें कहा गया है ?—
केसी ने गीतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गीतम इस प्रकार बोले—

५३—कसाया अग्निणो वृत्ता
सुयसीलतवो जलं ।
सुयधारामिहया सन्ता
भिन्ना हु न डहन्ति मे ॥

कसाया अग्नय उक्ताः
श्रुत-शील-तवो जलम् ।
श्रुतधारामिहताः सन्तः
भिन्ना 'हु' न बहन्ति माम् ॥

५३—कसायों को अग्नि कहा गया है ।
श्रुत, शील और तप यह जल है । श्रुत की
धारा से आहत किए जाने पर निस्तेज बनी
हुई वे मुझे नहीं जलातीं ।

५४—साहु गीयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ! !
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गीयमा ! ॥

साधुः गीतम ! प्रजा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गीतम ! ॥

५४—गीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रजा !
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गीतम ! उसके
बिषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

५५—अयं साहसिओ भीमो
दुइस्सो परिधावई ।
जंसि गीयम ! आरुडो
कहं तेण न हीरसि ? ॥

अयं साहसिको भीमः
दुष्टाश्वः परिधावति ।
यस्मिन् गीतम ! आरुढः
कथं तेन न हियसे ? ॥

५५—यह साहसिक, भयंकर, दुष्ट-अश्व
दौड़ रहा है । गीतम ! तुम उस पर चढ़े हुए
हो । वह तुम्हें उन्मार्ग में कैसे नहीं ले
जाता ?

५६—पधावन्तं निगिण्हामि
सुयस्सीसमाहियं ।
न मे गच्छइ उम्ममं
मगं च पडिवज्जई ॥

प्रधावन्तं निगुह्णामि
श्रुतरिम-समाहितम् ।
न मे गच्छन्त्युन्मार्गं
मार्गं च प्रतिपद्यते ॥

५६—मैंने इतने श्रुत की लगाम से बांध
लिया है । यह जब उन्मार्ग की ओर दौड़ता
है तब मैं इस पर रोक लगा देता हूँ । इसलिए
मेरा अश्व उन्मार्ग को नहीं जाता, मार्ग में ही
चलता है ।

५७—अस्से य इह के वृत्ते ?
केसी गीयममब्बवी ।
केसिमेवं वुवंतं तु
गीयमो इणमब्बवी ॥

अश्वश्चेति क उक्ताः ?
केशिः गीतममब्बवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गीतम इवमब्बवीत् ॥

५७—अश्व किसे कहा गया है ?—केसी
ने गीतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गीतम इस प्रकार बोले—

५८—मणो साहसिओ भीमो
दुडस्सो परिघावई ।
तं सम्मं निगिण्णामि
धम्मसिक्खाए कण्यं ॥

मनः साहसिको भीमः
दुष्टाश्वः परिघावति ।
तत् सम्पक् निगृह्णाति
धर्म-शिक्षया कन्यकम् ॥

५८—यह जो साहसिक, भयंकर, दुष्ट-
अश्व दोड़ रहा है, वह मन है । उसे मैं भली-
भाँति अपने अधीन रखता हूँ । धर्म-शिक्षा के
द्वारा वह उत्तम-जाति का अश्व हो गया है ।

५९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहस् गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

५९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

६०—कुप्पहा बहवो लोए
जेहि नासन्ति जंतवो ।
अट्ठाणे कह वट्ठन्ते
तं न नस्ससि ? गोयमा ! ॥

कुपया बहवो लोकः
यं नश्यन्ति जन्तवः ।
अष्टवर्षि कथं वर्तमानः
त्वं न नश्यसि ? गौतम ! ॥

६०—लोक में कुमार्ग बहुत हैं । जिन
पर चलने वाले लोग भटक जाते हैं । गौतम !
मार्ग में चलते हुए तुम कैसे नहीं भटकते ?

६१—जे य मग्गेण गच्छन्ति
'जे य उम्ममगपट्टिया' ।
ते सब्बे विइया मज्झं
तो न नस्सामहं मुणी ! ॥

ये च मार्गेण गच्छन्ति
ये उन्मार्ग-प्रस्थिताः ।
ते सर्वे बिबिता मया
ततो न नश्यामहं मुने ! ॥

६१—जो मार्ग से चलते हैं और जो
उन्मार्ग से चलते हैं, वे सब मुझे भ्रष्ट
मुने ! इसीलिए मैं नहीं भटक रहा हूँ ।

६२—मग्गे य इइ के वुत्ते ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

मार्गश्चेति क उक्तः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इवमब्रवीत् ॥

६२—मार्ग किसे कहा गया है ?—केसी
ने गौतम से कहा । केशि के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

६३—कुप्पवयणपासण्डी
सब्बे उम्ममगपट्टिया ।
सम्ममं तु जिणक्खायं
एस मग्गे हि उत्तमे ॥

कुप्रवचन-पाषण्डिनः
सर्वे उन्मार्ग-प्रस्थिताः ।
सन्मार्गस्तु जिनाख्यातः
एव मार्गो हि उत्तमः ॥

६३—जो कुप्रवचन के वती हैं, वे सब
उन्मार्ग की ओर चले जा रहे हैं । जो राम-
द्वेष को जीतने वाले जिन ने कहा है, वह
सन्मार्ग है, क्योंकि यह सबसे उत्तम मार्ग है ।

१. जे उम्ममग पट्टिया (अ) ।

२. कस्सामिह (अ) ।

३. हे (अ) ।

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

३१४

अध्ययन २३ : श्लोक ६४-६६

६४—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

६४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

६५—महाउदगवेगेणं
वुज्झमाणाण पाणिणं ।
सरणं गई पइट्ठा य
दीवं 'कं मन्नसी ?' मुणी ! ॥

महोदकवेगेन
उद्दामानां प्राणिनाम् ।
शरणं गतिं प्रतिष्ठा च
द्वापं कं मन्यसे ? मुने ! ॥

६५—मुने ! महान् जल-प्रवाह के वेग
से बहते हुए जीवों के लिए तुम शरण, गति,
प्रतिष्ठा और द्वीप किन्ते मानते हो ?

६६—अत्थि एगो महादीवो
वारिमज्जे महालओ ।
महाउदगवेगस्स
गई तत्थ न विज्जई ॥

अस्त्येको महाद्वीपः
वारिमध्ये महालयः ।
महोदक-वेगस्य
गतिस्तत्र न विद्यते ॥

६६—जल के मध्य में एक लम्बा-चोड़ा
महाद्वीप है । वहाँ महान् जल-प्रवाह की गति
नहीं है ।

६७—दीवे य इह के वुत्ते ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं वुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

द्वीपश्चेति क उक्तः ?
केशिः गौतममब्रवीत् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमब्रवीत् ॥

६७—द्वीप किसे कहा गया है ?—केशी
ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

६८—जरामरणवेगेणं
वुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो 'पइट्ठा य'^१
गई सरणमुत्तमं ॥

जरा-मरण-वेगेन
उद्दामानां प्राणिनाम् ।
धर्मो द्वीपः प्रतिष्ठा च
गतिः शरणमुत्तमम् ॥

६८—जरा और मृत्यु के वेग से बहते
हुए प्राणियों के लिए धर्म द्वीप, प्रतिष्ठा, गति
और उत्तम शरण है ।

६९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अन्योऽपि संशयो मम
तं मां कथय गौतम ! ॥

६९—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

१. कम्मगुसी ? (अ) ।

२. पइट्ठा णं (अ) ।

केसिगोयमिज्जं (केशि-गौतमीय)

३१५

अव्ययन २३ : श्लोक ७०-७५

७०—अण्वंसि महोहंसि
नावा विपरिधावई ।
जंसि गोयममारूढो
कहं पारं गमिस्सि ? ॥

अण्वे सहीधे
नौबिपरिधावति ।
यस्यां गौतम ! आरूढः
कथं पारं गमिष्यसि ? ॥

७०—महा-प्रवाह वाले समुद्र में नौका
तीव्र गति से चली जा रही है । गौतम ! तुम
उसमें आरूढ़ हो । उस पार कैसे पहुँच
पाओगे ?

७१—जा उ अस्साविणी' नावा
न सा पारस्स गामिणी ।
जा निरस्साविणी नावा
सा उ पारस्स गामिणी ॥

या त्वाधाविणी नौः
न सा पारस्य गामिनी ।
या निराधाविणी नौः
सा तु पारस्य गामिनी ॥

७१—जो खेव वाली नौका होती है,
वह उस पार नहीं जा पाती । किन्तु जो
नौका खेव वाली नहीं होती, वह उस पार चली
जाती है ।

७२—नावा य इदं का वुत्ता ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं वुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

नौवर्धति कोक्ता ?
केशिः गौतममब्रवीन् ।
ततः केशि ब्रुवन्तं तु
गौतम इवमब्रवीत् ॥

७२—नौका किसे कहा गया है ?—केसी
ने गौतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गौतम इस प्रकार बोले—

७३—सरीरमाहु नाव त्ति
जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्वो वुत्तो
जं तरन्ति महेसिणो ॥

शरीरमाहुनौरिति
जीव उच्यते नाविकः ।
संसारोऽण्व उक्तः
यं तरन्ति महर्षयः ॥

७३—शरीर को नौका, जीव को
नाविक और संसार को समुद्र कहा गया है ।
महान् मोक्ष की एषणा करने वाले इसे तैर
जाते हैं ।

७४—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्जं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
अम्योऽपि संशयो मम
नं मां कथय गौतम् ॥

७४—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा ।
तुमने मेरे इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गौतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

७५—अम्भयारे तमे घोरे
चिह्नन्ति पाणिणो बह ।
को करिस्सइ उज्जोयं
सव्वलोगंमि पाणिणं ? ॥

अम्भकारे तमसि घोरे
चिह्नन्ति प्राणिनो बहवः ।
कः करिष्यत्युद्योतं
सर्वलोके प्राणिनाम् ? ॥

७५—लोगों को अम्भ बनाने वाले
तिमिर में बहुत लोग रह रहे हैं । इस समूचे
लोक में उन प्राणियों के लिए प्रकाश कौन
करेगा ?

उत्तराभ्ययणं (उत्तराभ्ययन)

२१६

अभ्ययन २३ : श्लोक ७६-८१

७६—उगगो विमलो भाणू
सर्वलोगपमंकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं
सर्वलोगमि पाणिणं ॥

उदुगतो विमलो भानुः
सर्वलोक-प्रभाकरः ।
सः करिष्यत्युद्योतं
सर्वलोके प्राणिनाम् ॥

७६—समूचे लोक में प्रकाश करने वाला
एक विमल भानु उगा है । वह समूचे लोक में
प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ।

७७—भाणू य इह के वुत्ते ?
केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमब्बवी ॥

भानुश्चेति क उक्तः ?
केशिः गोतममब्बवी ।
ततः केसिं प्रु वन्तं तु
गोतम इदमब्बवी ॥

७७—भानु किसे कहा गया है ?—केसी
ने गोतम से कहा । केसी के कहते-कहते ही
गोतम इस प्रकार बोले—

७८—उगगो खीणसंसारो
सव्वन्नू जिणभक्खरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं
सर्वलोर्यमि पाणिणं ॥

उदुगतः क्षीण-संसारः
सर्वलो जिन-भास्करः ।
स करिष्यत्युद्योतं
सर्वलोके प्राणिनाम् ॥

७८—जिसका संसार क्षीण हो चुका है,
जो सर्वज्ञ है वह अहंत-रूपी भास्कर समूचे
लोक के प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ।

७९—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं
तं मे कहसु गोयमा ! ॥

साधुः गोतम ! प्रजा ते
छिन्नो मे संसयोऽयम् ।
अन्योऽपि संसयो मम
तं मां कथय गोतम ! ॥

७९—गोतम ! उसम है तुम्हारी प्रजा ।
तुमने मेर इस संशय को दूर किया है । मुझे
एक दूसरा संशय भी है । गोतम ! उसके
विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।

८०—सारीरमाप्पसे दुक्खे
वज्झमाणाणं पाणिणं ।
खेमं सिवमणाभा हं
ठाणं किं मन्थसे ? मुणे ! ॥

शारीरमानसैर्बलैः
वाध्यमानानां प्राणिनाम् ।
खेमं शिवमणाभां
स्थानं किं मन्थसे ? मुने ! ॥

८०—शारीरिक और मानसिक दुःखों
से पीड़ित होतें हुए प्राणियों के लिए खेम,
शिव और अनायास स्थान किसे मानते हो ?
मुने !

८१—अत्थि एगं बुवं ठाणं
लोगगमि दुरारुहं ।
जत्थ नत्थि जरा मज्झू
वाहिणो वेयणा तहा ॥

अस्त्येकं द्रुवं स्थानं
लोकगमे दुरारोहं ।
यत्र नास्ति जरा मज्जुः
व्याधये वेयमस्तथा ॥

८१—लोक के शिखर में एक वैसा
वास्तव स्थान है, जहाँ पट्टेच पाना बहुत
कठिन है और जहाँ नहीं है—जरा, मृत्यु,
व्याधि और केना ।

८२—ठाणे य इह के वृत्ते ?
केसी गोयममव्ववी ।
केसिमेवं बुवंतं तु
गोयमो इणमव्ववी ॥

स्थानं चेति किमुक्तं ?
केशिः गौतममव्ववीन् ।
ततः केशिः ब्रुवन्तं तु
गौतम इदमव्ववीन् ॥

८२—स्थान किसे कहा गया है ?—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम इस प्रकार बोले—

८३—निव्वणं ति अवाहं ति
सिद्धी लोगगमेव य ।
क्षेमं सिवं अणावाहं
जं चरन्ति महेसिणो ॥

निर्वाणमित्यत्राप्यसिद्धिः
सिद्धिलोकाप्रमेव च ।
क्षेमं शिवमनावाध
यश्चरन्ति महेशिणः ॥

८३—जो निर्वाण है, जो अवाध, सिद्धि, लोकाध, क्षेम, शिव और अनावाध है, जिसे महान् की एषणा करने वाले प्राप्त करते हैं—

८४—तं ठाणं सासयंवासं
लोगगमि दुरारुहं ।
जं संपत्ता न सोयन्ति
भवोहन्तकरा मुणी ॥

तत् स्थानं शाश्वतं वासं
लोकाधे दुरारोहम् ।
यत्सम्प्राप्ता न शोचन्ति
अवौघान्तकराः मुनयः ॥

८४—भव-प्रवाह का अन्त करने वाले मुनि जिसे प्राप्त कर शोक से मुक्त हो जाते हैं, जो लोक के शिखर में शाश्वत-रूप से अवस्थित है, जहाँ पहुँच पाना कठिन है, उसे मैं स्थान कहता हूँ ।

८५—साहु गोयम ! पन्ना ते
छिन्नो मे संसओ इमो ।
नमो ते संययादिय
सव्वमुत्तमहोयही ! ॥

साधुः गौतम ! प्रज्ञा ते
छिन्नो मे संशयोऽयम् ।
नमस्तुभ्यं संशयातीत !
सर्वसूत्र-महोदधे ! ॥

८५—गौतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । हे संशयातीत ! हे सर्वसूत्र-महोदधि ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।

८६—एवं तु संसए छिन्ने
केसी धोरपरकमे ॥
'अभिवन्दिता सिरसा
गोयमं तु महायसं' ॥

एवं तु संशये छिन्ने
केशिः धोर-पराक्रमः ।
अभिवन्द्य शिरसा
गौतमं तु महायशसम् ॥

८६—इस प्रकार संशय दूर होने पर धोर-पराक्रम वाले केशी महान् यशस्वी गौतम का शिर से अभिवन्दन कर—

८७—'पंचमहव्वयधम्मं
पडिबज्झ भावओ ।
पुरिमस्स पच्छिममी^१
मग्गे तत्थ सुहावहे ॥'^२

पंचमहाव्रत-धर्म
प्रतिपद्यते भावतः ।
पूर्वस्य पश्चिम
मार्गं तत्र सुभावहे ॥

८७—पूर्व मार्ग से सुखावह पश्चिम मार्ग में प्रविष्ट हुए ।

१. बंदिषु पञ्चलिङ्गो गौतमं तु महासुणी (५०) ।

२. पच्छिमस्सी (अ) ।

३. पंच महव्वय सुत्तं भावतो पडिबज्झा ।

धम्मं पुरिमस्स पच्छिममि मग्गे सुहावहे ॥ (५०) ।

उत्तरज्झयणं (उत्तराध्ययन)

३१८

अध्ययन २३ : ८८-८९

८८-केसोगोयमओ निच्चं
तम्मि आसि समागमे ।
सुयसीलसमुक्करिसो
महत्थअथविणिच्छओ ॥

केशि-गोतमयोनित्थं
तस्मिन्नासान् समागमे ।
श्रुत-शील-समुत्कर्षः
महार्थार्थविनिश्चयः ॥

८८—उस वत में होने वाला केशी और
गोतम का सतत मिलन श्रुत और शील का
उत्कर्ष करने वाला और महान् प्रयोजन वाले
अर्थों का विनिश्चय करने वाला था ।

८९-तोसिया परिता सज्जा
'सम्मगं' 'समुवट्ठिया'¹ ।
'संथुया ते पसीयन्तु'
भयवं केसिगोयमे ॥
—त्ति वेमि ।

तोषिता परिषत् सर्वा
सन्मार्गं समुपस्थिताः ।
संस्तुतौ तौ प्रसीदताम्
भगवन्तौ केशि-गोतमौ ॥
—इति ब्रवीमि ।

८९ — जिनकी गति-विधि से परिषद् को
सन्तोष हुआ और वह सन्मार्ग पर उपस्थित
हुई, वे परिषद् द्वारा प्रशंसित भगवान् केशी
और गोतम प्रसन्न हुई ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१ पज्जुवट्ठिया (वृ० पा०) ।

२. सम्मत्ते पज्जुवत्थिया (वृ०) ।

३. संस्तुता ते पसीसन्तु (वृ०) ।

चतुर्विंशत्तमं अध्यायः :
पवयण-माया

चतुर्विंश अध्यायः :
प्रवचन-माता

आस्तुत्त

जार्ज सरपेन्टियर के अनुसार सभी आदर्शों में इस अध्ययन का नाम 'समिर्द्धयो' है।^१ समवायों में भी इसका यही नाम है।^२ निर्युक्तिकार ने इसका नाम 'प्रवचन-मात' या 'प्रवचन-माता' माना है।^३

ईयाँ, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्ग—इन पाँच समितियों तथा मनो-गुप्ति, वाग्-गुप्ति और काय-गुप्ति—इन तीनों गुप्तियों का संयुक्त नाम 'प्रवचन-माता' या 'प्रवचन-मात' है। (श्लो० १)

रत्नत्रयी (सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-दर्शन और सम्यग्-चारित्र्य) को भी प्रवचन कहा जाता है। उसकी रक्षा के लिए पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ माता-स्थानीय हैं। अथवा प्रवचन (गुप्ति) के समस्त चारित्र्य के उत्पादन, रक्षण और विशेषण के ये आठों अनन्य साधन हैं अतः उन्हें 'प्रवचन-माता' कहा गया है।^४

इनमें प्रवचन (गणिपिटक—द्वादशाङ्ग) समा जाता है। इसलिए उन्हें 'प्रवचन-मात' भी कहा जाता है। (श्लो० ३)

मन, वाणी और शरीर के गोपन, उत्सर्ग या विसर्जन को गुप्ति और सम्यग्-गात, भाषा, आहार की एषणा, उपकरणों का ग्रहण-निक्षेप और मल-मूत्र आदि के उत्सर्ग को समिति कहा जाता है। गुप्ति निवर्तन है और समिति सम्यक् प्रवर्तन। प्रथम श्लोक में इनका पृथक् विभाग है किन्तु तीसरे श्लोक में इन आठों को समिति भी कहा गया है।

समिति का अर्थ है सम्यक्-प्रवर्तन। सम्यक् और असम्यक् का मापदण्ड अहिंसा है। जो प्रवृत्ति अहिंसा से संबन्धित है वह समिति है। समितियों पाँच हैं—

१—ईयाँ समिति—गमनागमन सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

२—भाषा समिति—भाषा सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

३—एषणा समिति—जीवन-निर्वाह के आवश्यक उपकरणों—आहार, वस्त्र आदि के ग्रहण और उपभोग सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

४—आदान समिति—दैनिक व्यवहार में आने वाले पदार्थों के व्यवहरण सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

५—उत्सर्ग समिति—उत्सर्ग सम्बन्धी अहिंसा का विवेक।

१—उत्तराध्ययन सूत्र, टी, पृष्ठ ३६५।

२—समवायांग, समवाय ३६।

३—(क) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ४५८:

जाणमासरीरमविपु तज्जइरिसे अ भायणे इव्वं।

भावंमि अ समिओ भावं ललु पवयणं जत्थ।।

(क) वही, गा० ४५६:

अट्ठइवि समिइअ अ दुवाळसंगं समोअरइ जम्हा।

तम्हा पववणमाया अज्जपवणं होइ नावव्वं॥

४—मूलाराधना, आरावास ६, श्लोक ११८५; मूलाराधना दर्पण, पृष्ठ ११७३:

प्रवचनस्य रत्नत्रयस्य मातर इव पुत्राणां मातर इव सम्यग्दर्शनादीनां अवायनिवारणपरायणास्तिस्रो गुप्तयः, पंचसमितयश्च। अथवा प्रवचनस्य बुद्धेचारित्र्यमात्रस्योत्पादनरक्षण-विशेषविधानात् तास्तथा व्यपदिश्यन्ते।

इन पाँच समितियों का पालन करने वाला मुनि जीवाकुल संसार में रहता हुआ भी पापों से लिन नहीं होता ।^१

जिस प्रकार हृद् कवचधारी योद्धा बाणों की वर्षा होने पर भी नहीं झँका जा सकता; उसी प्रकार समितियों का सम्यक् पालन करने वाला मुनि साधु-जीवन के विविध कार्यों में प्रवर्तमान होता हुआ भी पापों से लिन नहीं होता ।^२

गुणि का अर्थ है निवर्तन । ते तीन प्रकार की हैं—

१—मनोगुणि—असत् चिन्तन से निवर्तन ।

२—वचनगुणि—असत् वाणी से निवर्तन ।

३—कायगुणि—असत् प्रवृत्ति से निवर्तन ।

जिस प्रकार क्षेत्र की रक्षा के लिए बाढ़, नगर की रक्षा के लिए सार्ई या प्राकार होता है, उसी प्रकार आमण्य की सुरक्षा के लिए, पाप के निरोध के लिए गुणि हैं ।^३

महाव्रतों की सुरक्षा के तीन साधन हैं—

१—रात्रि-भोजन की निवृत्ति ।

२—आठ प्रवचन-माताओं में जागरूकता ।

३—भावना (संस्कारपादन—एक ही प्रवृत्ति का पुनः-पुनः अभ्यास) ।

इस प्रकार महाव्रतों की परिपालना समिति-गुणि-सापेक्ष है । इनके होने पर महाव्रत सुरक्षित रहते हैं और न होने पर असुरक्षित ।^४

यह अध्ययन साधु आचार का प्रथम और अनिवार्य अंग है । कहा गया है कि चौदह पूर्व पट्ट लेने पर भी जो मुनि प्रवचन-माताओं में निपुण नहीं है, उसका ज्ञान अज्ञान है । जो व्यक्ति कुछ नहीं जानता और प्रवचन-माताओं में निपुण है, सचेत है, वह व्यक्ति स्व-पर के लिए प्राण है ।

मुनि कैसे साध ?, कैसे बोले ?, कैसे चले ?, वस्तुओं का व्यवहारण कैसे करे ? उत्सर्ग कैसे करे ?—

इनका स्पष्ट विवेचन इस अध्ययन में दिया गया है ।

मुनि जब चले तब गमन की क्रिया में उपयुक्त हो जाए, एक तान हो जाए । प्रत्येक चरण पर उसे यह मान रहे कि—“मैं चल रहा हूँ ।” वह चलने की स्मृति को क्षण मात्र के लिए भी न भूले । युग-मात्र भूमि को देख कर चले । चलते समय अन्यान्य विषयों का वर्जन करे । (३०० ६:७:८)

१—मूळाराधना, ६:१२:०० :

पदाहि सदा शुचो, समिदीहि जगन्मि बिहरमाणे हु ।
हिंसादिहि न किय्ह, जीबनिकावाकळे साहु ॥

२—बही, ६:१२:०२ :

सरवासे वि पंढते, जह एवकवचो ण विअवि सरैहि ।
तह समिदीहि ण किय्ह, साधू कापुडु हरियंतो ॥

३—बही, ६:१२:०६ :

केचस्स बही णयरस्स, काइया अइव होइ पावारी ।
तह पावस्स णिरोहो, ताबो गुणीबो साहुस्स ॥

४—मूळाराधना, ६:१२:०६ :

तेसि चैव वदणं, रक्खहुं राविभोजणियिणी ।
अट्ठपवणमादाओ भावणाओ व सत्ताओ ॥

विजयोवेषा वुत्ति, पट्ठ ११:०२ : सत्तां रात्रि भोजन-निवृत्तौ प्रवचनमायुकाद्य भावनाद्य वा सतीयु हिंसादिभ्यामुत्तर्कं भवति । न तावत्सतीयु इति ॥

मुनि झूठ न बोले। झूठ के आठ कारण हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, मोक्ष और विद्या। मुनि इनका वर्जन करे। यह भाषा समिति का विवेक है।

मुनि दृष्ट, श्रवण, चरे। गन्ध, स्पर्श, रस, स्वाद और शब्द के दोषों का वर्जन करे। (श्लो० ११, १२)

मुनि को प्रत्येक वस्तु याचित मिलती है। उसका पूर्ण उपयोग करना उसका कर्तव्य है। प्रत्येक पदार्थ का व्यवहार उपयोग-सहित होना चाहिये। वस्तु को लेने या रखने में अहिंसा की दृष्टि होनी चाहिये। (श्लो० १३, १४)

मुनि के उत्सर्ग करने की विधि भी बहुत विवेक-पूर्ण होनी चाहिये। क्यों-क्यों, जहाँ-कहाँ वह उत्सर्ग नहीं कर सकता। जहाँ लोगों का आवागमन न हो, जहाँ चूड़ों आदि के बिल न हों, जो तस या स्यावर प्राणियों से युक्त न हो—ऐसे स्थान पर मुनि को उत्सर्ग करना चाहिये। यह विधि अहिंसा की पोषक तो है ही किन्तु सम्यक्-सम्मत भी है। (श्लो० १५, १६, १७, १८)

मानसिक तथा वाचिक संवर्धनों से पूर्णतः निवृत्त होना मनोगति तथा वचनगति है।

मनोयोग चार प्रकार का है—

- १—सत्य मनोयोग।
- २—असत्य मनोयोग।
- ३—मिश्र मनोयोग।
- ४—व्यवहार मनोयोग।

वचनयोग चार प्रकार का है—

- १—सत्य वचनयोग।
- २—असत्य वचनयोग।
- ३—मिश्र वचनयोग।
- ४—व्यवहार वचनयोग।

काययोग—

स्थान, निषीदन, शयन, उत्थान, गमन और इन्द्रियों के व्यापार में असत् अंश का वर्जन करना—काय-गुणि है।

सम्पूर्ण दृष्टि से देखा जाय तो यह अध्ययन समूचे साधु-जीवन का उपलक्ष्य है। इसके माध्यम से ही आत्मण्य का शुद्ध परिपाकन संभव है। जिस मुनि की प्रवचन-माताओं के पाठन में विशुद्धता है उसका समूचा आधार विशुद्ध है। जो इसमें स्मरित होता है वह समूचे आधार में स्मरित होता है।

चतुर्विंशदमं अङ्गवर्णनं : चतुर्विंश अध्यायः

पवयण-माया : प्रवचन-माता

मूल
१—अट्ट पवयणमायाओ
समिई गुत्ती तहेव य ।
पंचेव य समिईओ
तओ गुत्तीओ आहिया ॥

संस्कृत छाया
अष्टोप्रवचन-मातरः
समितयो गुप्तयस्तथैव च ।
पंचैव च समितयः
तिलो गुप्तय आख्याताः ॥

हिन्दी अनुबाव
१—आठ प्रवचन माताएँ हैं—समिति
और गुप्ति । समितियों पाँच और गुप्तियों
तीन ।

२—इरियाभासेसणादाने
उच्चारें समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती
कायगुत्ती य' अट्टमा ॥

ईयांभाषेयणादाने
उच्चारें समितिरिति ।
मनोगुप्तिर्वचोऽगुप्तिः
कायगुप्तिश्चाष्टमी ॥

२—ईयां-समिति, भाषा-समिति, एवणा-
समिति, आदान-समिति, उच्चार-समिति, मनो-
गुप्ति, वचन-गुप्ति और आठवीं काय-गुप्ति है ।

३—एयाओ अट्ट समिईओ
समासेण विद्याहिया ।
दुवाल्संगं जिणक्खायं
मायं जत्थ उ पवयणं ॥

एता अट्टो समितयः
समासेन व्याख्याताः ।
द्वादशाङ्गं जिनाख्यातं
मातं यत्र तु प्रवचनम् ॥

३—ये आठ समितियाँ संक्षेप में कही
गई हैं । इनमें जिन-भाषित द्वादशाङ्ग-रूप
प्रवचन समाया हुआ है ।

४—आलम्बणेण कालेण
मग्गेण जयणाइ य ।
चउकारणपरिसुद्धं
संजए इरियं रिए ॥

आलम्बनेन कालेन
मार्गेण यतनया च ।
चतुष्कारण-परिशुद्धं
संयत ईयां शीयेत ॥

४—संयमी मुनि आलम्बन, काल, मार्ग
और यतना—इन चार कारणों से परिशुद्ध
ईयां (गति) से चले ।

५—तत्थ आलंबणं नाणं
दंसणं चरणं तथा ।
काले य दिवसे वुत्ते
मग्गे उप्पहवजिए' ॥

तत्रालम्बनं ज्ञानं
दर्शनं चरणं तथा ।
कालश्च विषय उक्तः
मार्ग उत्पद्य-वर्जितः ॥

५—उनमें ईयां का आलम्बन, ज्ञान,
दर्शन और चारित्र्य है । उसका काल विषय है
और उत्पद्य का वर्जन करना उसका मार्ग है ।

१. उ (अ) ।

२. दुप्पह वजिए' (अ) ।

पययण-माया (प्रवचन-माता)

३२७

अध्ययन २४ : श्लोक १२-१६

१२—उगमुण्यायणं पढमे
बीए सोहेज्ज एसणं ।
परिभोगे चउक्कं
विसोहेज्ज जयं जई ॥

उद्गमोत्पादनं प्रथमायां
द्वितीयायां शोधयेरेवणांम् ।
परिभोगे चतुष्कं
विशोषयेद् यत्नं यतिः ॥

१२—यतनाशील यति प्रथम एवणा
(गवेषणा-एवणा) में उद्गम और उत्पादन—
दोनों का शोधन करे । दूसरी एवणा (ग्रहण-
एवणा) में एवणा (ग्रहण) सम्बन्धी दोषों का
शोधन करे और परिभोगेवणा में दोष-चतुष्क
(संयोजना, अप्रमाण, अंगार-धूम और कारण)
का शोधन करे ।

१३—ओहोवहोवग्गहियं
भण्डगं दुविहं मुणी ।
गिण्हन्तो निक्खवन्तो य
पउंजेज्ज इमं विहिं ॥

ओद्योपध्योपग्रहिकं
भाण्डकं द्विविधं मुनिः ।
गृह्णन्तिक्षिप्येच्च
प्रयुज्जीतेमं विधिम् ॥

१३—मुनि ओष-उपधि (सामान्य
उपकरण) और औपग्रहिक-उपधि (विशेष
उपकरण)—दोनों प्रकार के उपकरणों को लेने
और रखने में इस विधि का प्रयोग करे—

१४—चक्खुसा पडिलेहिता
पमउंजेज्ज जयं जई ।
आइए निक्खवेउजा वा
दुहओ वि समिए सया ॥

चक्षुषा प्रतिलिख्य
प्रमार्जयेद् यत्नं यतिः ।
आबदोत निक्षिपेद् वा
द्विधातोपि समितः सदा ॥

१४—सदा मम्यक-प्रवृत्त और यतनाशील
यति दोनों प्रकार के उपकरणों का चक्षु से
प्रतिलिखन कर तथा रजोहरण आदि में प्रमार्जन
कर उन्हें ले और रखे ।

१५—उच्चारं पासवणं
खेलं सिघाणजल्लियं ।
आहारं उवहि देहं
अन्नं वावि तहाविहं ॥

उच्चारं प्रलवणं
क्ष्वेलं सिङ्घाणं जल्लिकम् ।
आहारमुपाधि देहं
अन्यद्वापि तथाविधम् ॥

१५—उच्चारं, प्रलवणं, क्ष्वेलं, नाक का
मेल, मेल, आहार, उपधि, शरीर या उसी
प्रकार की दूसरी कोई उत्सर्ग करने योग्य
वस्तु का उपयुक्त स्थण्डिल में उत्सर्ग करे ।

१६—अणावायमसंलोए
अणावाए चेव होइ संलोए ।
आवायमसंलोए
आवाए चेय संलोए ॥

अनापातमसंलोकम्
अनापातं चैव भवति संलोकम् ।
आपातमसंलोकम्
आपातं चैव संलोकम् ॥

१६—स्थण्डिल चार प्रकार के होते हैं—
१—अनापात-असंलोक—जहाँ लोगों का
आवागमन न हो, वे दूर से भी न देखते हों ।
२—अनापात-संलोक—जहाँ लोगों का
आवागमन न हो, किन्तु वे दूर से देखते हों ।
३—आपात-असंलोक—जहाँ लोगों का
आवागमन हो, किन्तु वे दूर से न देखते हों ।
४—आपात-संलोक—जहाँ लोगों का
आवागमन भी हो, और वे दूर से देखते
भी हैं ।

६—द्वओ खेतओ चेव
कालओ भावओ तहा ।
जयणा^१ चउव्विहा वुत्ता
तं मे कित्तयओ सुण ॥

ब्रह्मतः क्षेत्रतश्चैव
कालतो भावतस्तथा ।
यतना चतुर्विधा उक्ता
तां मे कीर्तयतः शृणु ॥

६—ब्रह्म, क्षेत्र, काल और भाव से
यतना चार प्रकार की कही गई हैं । वह मैं कह
रहा हूँ, सुनो ।

७—द्वओ चक्कुसा पेहे
जुगमित्तं च खेतओ ।
कालओ जाव रीएज्जा
उवउत्ते य भावओ ॥

ब्रह्म तद्वच्चक्षुषा प्रेक्षेत
युग-मात्रं च क्षेत्रतः ।
कालतो यावद्वीयेत
उपयुक्तद्व भावतः ॥

७—ब्रह्म से—आँखों से देखे । क्षेत्र से—
युग-मात्र (गाड़ी के जुए जितनी) भूमि को
देखे । काल से—जब तक चले तक तक देखे ।
भाव से—उपयुक्त (गमन में दस्तचित) रहे ।

८—इन्द्रियत्वे विवज्जिता
सज्झायं चेव पंचहा ।
तम्मूत्ती तप्पुरस्कारे
उवउत्ते इरियं^२ रिए ॥

इन्द्रियार्थान् विवर्ज्यं
स्वाध्यायं चैव पंचधा ।
तन्मूर्तिः तत्पुरस्कारः
उपयुक्त ईर्या^३ रीयेत ॥

८—इन्द्रियों के विषयों और पाँच प्रकार
के स्वाध्याय का वर्जन कर, ईर्या में तन्मय हो,
उसे प्रमूख बना उपयोग पूर्वक चले ।

९—'कोहे माणे य मायाए
लोभे य उवउत्तया^४ ।
हासे भए मोहरिए
विगहासु तहेव च ॥'^५

क्रोध माने च मायायां
लोभे चोपयुक्ता ।
हासे भये मोक्षय्ये
विक्रयानु तथैव च ॥

९—क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य,
भय, वाचालता और विक्रयों के प्रति सावधान
रहे—इनका प्रयोग न करे ।

१०—एयाइं अट्ट^६ ठाणाइं
परिवज्जित्तु संजए ।
असावज्जं मियं काले
भासं भासेज्ज पन्नवं ॥

एतान्पण्डां स्थानानि
परिवर्ज्य संयतः ।
असावधानां मितान् काले
भाषां भवित प्रज्ञावान् ॥

१०—प्रज्ञावान् मुनि इन आठ स्थानों
का वर्जन कर यथा-समय निरवधान और परि-
मित वचन बोले ।

११—'गवेसणाए गहणे य
परिभोगेसणा य जा ।
आहारोपधिसज्जाए
एए तन्नि विसोहए'^७

गवेषणायां ग्रहणे च
परिभोगेवणा च या ।
आहारोपधिसज्जायां
एतास्तिल्लो विशोषयेत् ॥

११—आहार, उपधि और शय्या के
विषय में गवेषणा, ग्रहणवणा और परिभोगवणा
इन तीनों का विशेषण करे ।

१. जायणा (ऋ०) ।

२. रियं (ऋ०) ।

३. उवउत्तओ (अ) ।

४. कोहे य माणे य माया च लोभे य तहेव च ।

हास भय मोहरीए विकहा च तहेव च ॥ (वृ० पा०) ।

५. गवेसणाए गहणेणं परिभोगेसणाणि च ।

आहारसुखाइं सेज्ज एए तन्नि विसोहिये ॥ (वृ० पा०) ।

१७—अणावायमसंलोए
परस्सऽणुवधाइए ।
समे अज्झुसिरे यावि
अचिरकालकयमि य ॥

१८—वित्थिण्णे दूरमोगाढे
नासन्ने बिलवज्जिए ।
तसपाणवीयरहिए
उच्चारार्हणि वोसिरे ॥

१९—एयाओ पंच समिईओ
समासेण वियाहिया ।
एत्तो य तओ गुत्तीओ
वोच्छामि अणुपुब्बसो ॥

२०—सच्चा तहेव मोसा य
सच्चांमांसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा
मणगुत्ती चउव्विहा ॥

२१—संरम्भसमारम्भे
आरम्भे य तहेव य ।
मणं पवत्तमाणं तु
नियत्तेज्ज जयं जई ॥

२२—सच्चा तहेव मोसा य
सच्चांमांसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा
वइगुत्ती चउव्विहा ॥

२३—संरम्भसमारम्भे
आरम्भे य तहेव य ।
वयं पवत्तमाणं तु
नियत्तेज्ज जयं जई ॥

आनापातेऽसंलोके
परस्याऽनुपचातिके ।
समेऽशुचिरे चापि
अचिरकालकृते च ॥

विस्तीर्णे दूरमवगाढे
नासन्ने बिलवज्जिते ।
असप्राणबीजरहिते
उच्चारारोनि व्युत्सृजेत् ॥

एताः पंचतमितयः
समासेन व्याख्याताः ।
इतश्च तिष्ठो गुप्तोः
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

सत्या तथैव मृषा च
सत्यामृषा तथैव च ।
चतुर्थ्यं सत्यामृषा
मनोगुप्तिश्चतुर्विधा ॥

संरम्भ-समारम्भे
आरम्भे च तथैव च ।
मनः प्रवर्तमानं तु
निवर्तयेद्यतं यतिः ॥

सत्या तथैव मृषा च
सत्यामृषा तथैव च ।
चतुर्थ्यं सत्यामृषा
वचो-गुप्तिश्चतुर्विधा ॥

संरम्भ-समारम्भे
आरम्भे च तथैव च ।
वचः प्रवर्तमानं तु
निवर्तयेद्यतं यतिः ॥

१७—जो स्थण्डिल, अनापात-असंलोक,
पर के लिए अनुपचातकारी, सम, अशुचिर
(पोल या दरार रहित) कुछ समय पहले ही
निर्जीव बना हुआ—

१८—कम से कम एक हाथ विस्तृत
तथा नीचे से चार अंगुल भी निर्जीव परत
बाला, गोंब आदि से दूर, बिल रहित और अस
प्राणी तथा बीजों से रहित हो—उसमें उच्चार
आदि का उत्पन्न करे ।

१९—ये पाँच तमितियाँ संक्षेप में कहीं
गई हैं । यहाँ से क्रमशः तीन गुप्तियाँ कहेंगे ।

२०—सत्या, मृषा, सत्यामृषा और
चोरी असत्यामृषा—इस प्रकार मनो-गुप्ति के
चार प्रकार हैं ।

२१—यतनाशील यति संरम्भ, समारम्भ
और आरम्भ में प्रवर्तमान मन का निवर्तन
करे ।

२२—सत्या, मृषा, सत्या-मृषा और
असत्या-मृषा—इस प्रकार वचन-गुप्ति के चार
प्रकार हैं ।

२३—यतनाशील यति संरम्भ, समारम्भ
और आरम्भ में प्रवर्तमान वचन का निवर्तन
करे ।

पवयण-माया (प्रवचन-माता)

३२६

अध्ययन २४ : श्लोक २४-२७

२४—ठाणे निसीयणे चैव
तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लंघणपल्लंघणे
इन्दियाण य जुंजणे ॥

स्थानेनिषवने चैव
तथैव च त्वग्-वर्तने ।
उल्लङ्घन-प्रलङ्घने
इन्द्रियाणां च योजने ॥

२४—ठहरने, बैठने, लेटने, उल्लंघन-
प्रलंघन करने और इन्द्रियों के व्यापार में—

२५—संरम्भसमारम्भे
आरम्भम्मि तहेव य ।
कार्यं पवत्तमाणं तु
नियत्तेज्ज जयं जई ॥

संरम्भ-समारम्भे
आरम्भे तथैव च ।
कार्यं प्रवर्तमानं तु
निवर्तयेद्यत् यतिः ॥

२५—संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में
प्रवर्तमान कार्या का निवर्तन करे ।

२६—एयाओ पंच समिईओ
चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता
अमुभत्थेमु सव्वसो ॥

एताः पंच समितयः
चरणस्य च प्रवर्तने ।
गुप्तयो निवर्तने उक्ताः
अशुभायर्थेभ्यः सवन्ध्यः ॥

२६—ये पाँच समितियाँ चारित्र की
प्रवृत्ति के लिए हैं और तीन गुप्तियाँ सब अशुभ
विषयों से निवृत्ति करने के लिए हैं ।

२७—एया पवयणमाया
जे सम्मं आयरे मुणो ।
से खिप्पं सव्वसंसारो
विप्पमुच्चइ पण्डिण ॥
— त्ति वेमि ।

एताः प्रवचन-मातृः
यः सम्यगाचरेन्मुनिः ।
स क्षिप्रं सर्वसंसारान्
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति श्रीमि ।

२७—जो पण्डित मुनि इन प्रवचन-
माताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह
क्षीघ्र ही सर्व संसार से मुक्त हो जाता है ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

मुनि को भोजन के लिए, पान के लिए, वस्त्र के लिए, वसती के लिए आदि-आदि कारणों से धर्मोपदेश नहीं देना चाहिए, किन्तु केवल आत्मोद्धार के लिए ही उपदेश देना चाहिए। इसी तथ्य को स्पष्टता से व्यक्त करते हुए जयधोष मुनि ब्राह्मण विजयधोष से कहते हैं—

“मुनि न अन्न के लिए, न जल के लिए और न किसी अन्य जीवन-निर्वाह के साधन के लिए, लेकिन सुख के लिए धर्मोपदेश देते हैं। मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं। तुम निष्काम कर मुनि-जीवन को स्वीकार करो। (३०० १०, ३८)

“भोग आसक्ति है और अभोग अनासक्ति। आसक्ति संसार है और अनासक्ति मोक्ष। मिट्टी के दो गोले हैं—एक गोला और दूसरा सूखा। जो गोला होता है वह मिट्टी पर चिपक जाता है और जो सूखा होता है वह नहीं चिपकता। इसी प्रकार जो व्यक्ति आसक्ति से भरा है, कर्म-पुद्गल उसके चिपकते हैं और जो अनासक्ति है, कर्म उसके नहीं चिपकते। (३०० ३८ से ४१)

“ब्राह्म-चिह्न, वेष आदि आन्तरिक पवित्रता के द्योतक नहीं हैं। ब्राह्म-रूढ़ि सम्प्रदायानुगत अस्तित्व के द्योतक मात्र हैं। मुण्डित होने मात्र से कोई भ्रमण नहीं होता। ऊँकार का जप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, अरण्य में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता, दर्म-वल्कल आदि धारण करने मात्र से कोई तापस नहीं होता। (३०० २६)

“समभाव से समण होता है, ब्रह्मचर्य का पाठन करने से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तपस्या से तापस होता है। (३०० ३१)

“जातिवाद अतात्त्विक है। अपने-अपने कार्य से व्यक्ति ब्राह्मण आदि होता है। जाति कार्य के आधार पर विभाजित है, जन्म के आधार पर नहीं। मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से शूद्र।” (३०० ३१)

वेद, यज्ञ, धर्म और नक्षत्र का मूल क्या है? अपनी तथा दूसरों की आत्मा का सुधार करने में कौन समर्थ है?—इन प्रश्नों का समाधान मुनि जयधोष ने विस्तार से दिया है। (३०० १६ से ३३)

पंचविंशतमं अध्यायः :
जन्मइज्जं

पंचविंश अध्यायः :
यज्ञीय

पंचविंशद्वयं अज्ज्ञयणं : पंचविंश अभ्ययन

जन्मइज्जं : यज्ञियम्

मूल

१—माहणकुलसंभूतो
आसि विप्पो महायसो ।
जायाई जमजन्ममि
जयघोसे त्ति नामओ ॥

संस्कृत छाया

माहन-कुल-संभूतः
आसीत् विप्रो महायशः ।
यायाजी यम-यज्ञे
जयघोष इति नामतः ॥

हिन्दी अनुबाव

१—ब्राह्मण कुल में उत्पन्न एक महात्मा
यशस्वी विप्र था । वह जीव-संहारक यज्ञ में
लगा रहता था । उसका नाम था जयघोष ।

२—इन्दियगामनिग्गाही
मग्गामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयन्ते
पत्ते वाणारस्सि पुरि ॥

इन्द्रिय-ग्राम-निग्राही
मार्ग-गामी महामुनिः ।
ग्रामानुग्रामं रीयमाणः
प्राप्नो वारणसीं पुरीम् ॥

२—वह इन्द्रिय-समूह का निग्रह करने
वाला मार्ग-गामी महामुनि हो गया । एक गाँव
से दूसरे गाँव जाता हुआ वह वाराणसी पुरी
पहुँच गया ।

३—वाणारसीए* बहिया
उज्जाणमि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसंधारे
तत्थ वासमुवागए ॥

वाराणस्या बहिः
उद्याने मनोरमे ।
प्रासुके शय्या-संस्तारे
तत्र वासमुपागतः ॥

३—वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान
में प्रासुक शय्या और बिछीना लेकर वहाँ
रहा ।

४—अह तेणेव कालेणं
पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति नारमेण
जन्मं जयइ देयवी ॥

अथ तस्मिन्नेव काले
पुर्यां तत्र माहनः ।
विजयघोष इति नाम्ना
यज्ञं यजति देव-चित् ॥

४—उसी समय उस पुरी में वेदों को
जानने वाला विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ
करता था ।

५—अह से तत्थ अणगारे
मासक्खमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्ममि
भिक्षस्समहा* उवट्टिए ॥

अथ स तस्मिन्महारः
मास-क्षण-पर्यन्तम् ।
विजयघोषस्य यज्ञे
भिक्षामंशुर्लब्धः ॥

५—वह जयघोष मुनि एक मास की
तपस्या का पारण करने के लिए विजयघोष
के यज्ञ में भिक्षा लेने को उपस्थित हुआ ।

१. वाणारसीए (अ, वृ०) ।

२. भिक्षस्समहा (वृ० वा०) ।

आस्तुख

इस अध्ययन का नाम 'जन्मइज्ज'—'यज्ञीय' है। इसका मुख्य विवक्षित विषय यज्ञ है।^१ यज्ञ शब्द का अर्थ देव-पूजा है। जीव-वध आदि ब्राह्म अनुष्ठान के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ को जैन-परम्परा में द्रव्य (अवास्तविक)-यज्ञ कहा है। वास्तविक यज्ञ भाव-यज्ञ होता है। उसका अर्थ है—तप और संयम में यतना—अनुष्ठान करना।^२

प्रसंगवश इस अध्ययन में (१६ वें श्लोक से ३२ वें श्लोक तक) ब्राह्मण के मुख्य गुणों का उल्लेख हुआ है।

वाराणसी नगरी में जयधोष और विजयधोष नाम के दो ब्राह्मण रहते थे। वे काश्यप-गोत्रीय थे। वे पूजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान और प्रतिग्रह इन छह कर्मों में रत और चार वेदों के अध्ययता थे। वे दोनों युगल रूप में जन्मे हुए थे। एक बार जयधोष स्नान करने नदी पर गया हुआ था। उसने देखा कि एक सर्प मेढक को निगल रहा है। इतने में एक कुरर पक्षी वहाँ आया और सर्प को पकड़ कर खाने लगा। मरणकाल आसन्न होने पर भी सर्प मेढक को खाने में रत था और इधर कम्पायमान सर्प को खाने में कुरर आसक्त था। इस दृश्य को देख जयधोष उद्भिन्न हो उठा। एक दूसरे के उपधात को देख कर उसका मन वेंराग्य से भर गया। वह प्रतिबुद्ध हो गया। गंगा को पार कर श्रमणों के पास पहुँचा। अपने उद्देग का समाधान पा श्रमण हो गया।

एक बार मुनि जयधोष एक-रात्रि को प्रतिमा को स्वीकार कर ग्रामासुग्राम विहार करते हुए वाराणसी आए। बहिर्भाग में एक उद्यान में ठहरे। आज उनके एक महीने की तपस्या का पारणा था। वे भिक्षा लेने नगर में गए। उसी दिन ब्राह्मण विजयधोष ने यज्ञ प्रारम्भ किया था। दूर-दूर से ब्राह्मण बुलाए गए थे। उनके लिए विविध भोजन-सामग्री तैयार की गई थी। मुनि जयधोष भिक्षा लेने यज्ञ-वाट में पहुँचे। भिक्षा की याचना की। प्रमुख याजक विजयधोष ने कहा—'मुने। मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूंगा। तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ। जो ब्राह्मण वेदों को जानते हैं, जो यज्ञ आदि करते हैं, जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और उद्योतिष - वेद के इन छह अंगों के पारगामी हैं तथा जो अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं—उन्हीं को यह प्रणीत अन्न दिया जाएगा, तुम जैसे व्यक्तियों को नहीं।' (श्लो ६:७:८)

मुनि जयधोष ने यह बात सुनी। प्रसिद्ध किए जाने पर रुस्ट नहीं हुए। सम-भाव का आचरण करते हुए स्थिर-चित्त हो, भोजन पाने के लिए नहीं किन्तु याजकों को सही ज्ञान कराने के लिए कई तथ्य प्रकट किए। ब्राह्मणों के लक्षण बताए। मुनि के वचन सुन विजयधोष ब्राह्मण समबुद्ध हुआ और उनके पास दीक्षित हो गया। सम्यक् आराधना कर दोनों सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

१—इतराज्यवन, विदुर्क गाथा ४६२ :

जयधोसा अजगारा विजयधोस्तस जन्मकिंचमि ।

ततो समुद्भिन्नसिगं अश्रवणं जन्मइज्जति ॥

२—वही, गाथा ४६१ :

तत्संनयेदु जयणा भावे जन्वो मुनेयज्जो ॥

जन्मद्वयं (यज्ञीय)

३३७

अव्ययन २५ : श्लोक १२-१७

१२—जे समत्था समुद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ।
न ते तुमं वियाणासि
अह जाणासि तो भण ॥

ये समर्थाः समुद्धत्तुं
परमात्मानमेव च ।
न तान् त्वं विजानासि
अथ जानासि तदा भण ॥

१२—“जो अपना और पराया उद्धार
करने में समर्थ है, उन्हें तू नहीं जानता । यदि
जानता है तो बता ।”

१३—तस्सऽक्खेवपमोक्खं च
अचयन्तो तहि दिओ ।
सपरिसो पंजली हंउं
पुच्छई तं महामुणि ॥

तस्याक्षेपप्रमांक्षं च
अशक्नुवन् तत्र द्विजः ।
स-परिवन् प्राजलिभूत्वा
पृच्छति तं महामुनिम् ॥

१३—मुनि के प्रश्न का उत्तर देने में
अपने को असमर्थ पाते हुए द्विज ने परिषद्
सहित हाथ जोड़ कर उन महामुनि से पूछा—

१४—वेयाणं च मुहं बूहि
बूहि जन्ताण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं बूहि
बूहि धम्माण वा मुहं ॥

वेदानां च मुखं ब्रूहि
ब्रूहि यज्ञानां यन्मुखम् ।
नक्षत्राणां मुखं ब्रूहि
ब्रूहि धर्माणां वा मुखम् ॥

१४—“तुम कहो वेदों का मुख क्या है ?
यज्ञ का जो मुख है वह तुम्हीं बतलाओ । तुम
कहो नक्षत्रों का मुख क्या है ? धर्मों का मुख
क्या है ? तुम्हीं बतलाओ ।

१५—जे समत्था समुद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ।
एयं मे संसयं सव्वं
साहू कहयं पुच्छिओ ॥

ये समर्थाः समुद्धत्तुं
परमात्मानमेव च ।
एनं मे संशयं सर्वं
साधो ! कथय पृष्टः ॥

१५—“जो अपना और पराया उद्धार
करने में समर्थ है (उनके विषय में तुम्हीं
कहो) । हे साधु ! यह मुझे सारा संशय है,
तुम मेरे प्रश्नों का समाधान दो ।”

१६—अग्निहोत्तमुहा वेया
जन्मद्वी वेयसां मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं चन्दो
धम्माणं कासवो मुहं ॥

अग्निहोत्र-मुखा वेदाः
यज्ञार्थो वेदसां मुखम् ।
नक्षत्राणां मुखं चन्द्रः
धर्माणां काश्यपो मुखम् ॥

१६—“वेदों का मुख अग्निहोत्र है, यज्ञों
का मुख यज्ञार्थी है, नक्षत्रों का मुख चन्द्रमा
है और धर्मों का मुख काश्यपः ऋषिभूत है ।

१७—‘जहा चन्दं गहाईया
चिट्ठन्ती पंजलीउडा ।
वन्दमाणा नमंसन्ता
उत्तमं मणहारिणो ॥’^१

यथा चन्द्रं ग्रहाविकाः
तिष्ठन्ति प्राजलि-पुटाः ।
वन्दमाना नमस्यन्तः
उत्तमं मनोहारिणः ॥

१७—“जिस प्रकार चन्द्रमा के सम्मुख ग्रह
आदि हाथ जोड़ें हुए, वन्दना-नमस्कार करते
हुए और विनीत भाव से मन का हरण करते
हुए रहते हैं उसी प्रकार भगवान् ऋषभ के
सम्मुख सब लोग रहते थे ।

१. कहइ (अ) ।

२. जहा चन्दे गहाईये चिट्ठन्ती पंजलीउडा ।

जमसमाणा बंधंती उद्धत्तमणहारिणो [उद्धत्त मणहारिणो] ॥ (वृ० पा०) ।

६—समुवट्ठियं तहिं सन्तं
जायगो पडिसेहए ।
न हु दाहामि ते भिक्खं
भिक्षू जायाहि अन्नओ ॥

समुपस्थितं तत्र सन्तं
याजकः प्रतिषेधयति ।
न खलु दास्यामि तुभ्यं भिक्षां
भिक्षो ! यावत्स्थान्यतः ॥

६—यज्ञ-कर्त्ता ने वहाँ उपस्थित हुए मुनि
को निषेध की भाषा में कहा—“भिक्षो ! तुझे
भिक्षा नहीं दूंगा और कहीं याचना करो ।

७—जे य वेयविऊ विप्पा
जन्नट्ठा य ‘जे दिया’^१ ।
जोइसंगविऊ जे य
जे य धम्माण पारगा ।

ये च वेद-विदो विप्राः
यज्ञार्थादथ ये द्विजाः ।
ज्योतिषांविदो ये च
ये च धर्माणां पारगाः ॥

७—“हे भिक्षो ! यह सबके द्वारा
अभिलषित भोजन उन्हीं को देना है जो वेदों
को जानने वाले विप्र हैं, यज्ञ के लिए जो द्विज
हैं, जो ज्योतिष आदि वेद के छहों अंगों को
जानने वाले हैं, जो धर्म-शास्त्रों के पारगामी
हैं, जो अपना और पराया उद्धार करने में
समर्थ हैं ।”

८—जे समत्था समुद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ।
तेसि अन्नमिणं देयं
भो भिक्षू सव्वकामियं ॥

ये समर्थाः समुद्धर्तुं
परमात्मानमेव च ।
तेभ्योऽन्नमिदं देयं
भो भिक्षो ! सर्व-कामितम् ॥

९—सो ‘एवं तत्थ’^२ पडिसिद्धो
जायगेण महामुणी ।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो
उत्तमद्दग्वेसओ ॥

स एवं तत्र प्रतिषिद्धः
याजकेन महामुनिः ।
नापि रुष्टो नापि तुष्टः
उत्तमार्थ-गवेषकः ॥

९—बह उलम अर्थ की गवेषणा करने
वाला महामुनि वहाँ यज्ञ-कर्त्ता के द्वारा
प्रतिषेध किए जाने पर न रुष्ट ही हुआ और
न तुष्ट ही ।

१०—नज्जट्ठं पाणहेउं वा
न वि निव्वाहणाय वा ।
तेसि विमोक्खणाथंय
इमं वयणमव्ववी ॥

नान्मार्थं पान-हेतुं वा
नापि निर्वाहणाय वा ।
तेषां विमोक्षणाथंय
इदं वचनमव्ववीत् ॥

१०—न अन्न के लिए, न जल के लिए
और न किसी जीवन-निर्वाह के साधन के लिए,
किन्तु उनकी विमुक्ति के लिए मुनि ने इस
प्रकार कहा—

११—नवि जाणसि वेयमुहं
नवि जन्नाण जं मुहं ।
नखत्ताण मुहं जं च
जं च धम्माण वा मुहं ॥

नापि जानासि वेद-मुखं
नापि यज्ञानां धन्मुखम् ।
नक्षत्राणां मुखं यज्ञ
यज्ञ धर्माणां वा मुखम् ॥

११—“तू वेद के मुख को नहीं जानता ।
यज्ञ का जो मुख है, उसे भी नहीं जानता ।
नक्षत्र का जो मुख है और धर्म का जो मुख
है, उसे भी नहीं जानता ।

१. जिह दिया (आ) ।

२. तत्थ एव (बु०) ।

१८—अजाणगा जन्तुवाई
विज्जामाहणसंपया ।
गूढा सज्जायतवसा
भासच्छन्ना इवऽग्निगो ॥

१९—जो लोए बम्भणो वुत्तो
अग्गी वा महिओ जहा ।
सया कुसलसंदिट्ठं
तं वयं ब्रूम माहणं ॥

२०—जो न सज्जइ आगन्तुं
पव्वयन्तो न सोयई^१ ।
रमए अज्जवयणंमि
तं वयं ब्रूम माहणं ॥

२१—जायरूवं जहामट्ठं^२
निद्धन्तमलपावगं ।
रागदोसभयाईयं
तं वयं ब्रूम माहणं ॥

[तवस्सियं किसं दन्तं
अवचियमंससोणियं ।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं
तं वयं ब्रूम माहणं]^३

अजायकाः यज्ञ-वाहिनः
विद्या-माहन-सम्भवाः ।
गूढाः स्वाध्याय-तपसा
असम्-च्छन्ना इवाग्नेयः ॥

यो लोके ब्राह्मण उक्तः
अग्निर्वा महितो यथा ।
तदा कुशल-संदिष्टं
तं वयं ब्रूयो ब्राह्मणम् ॥

यो न स्वच्छत्यागान्तुं
प्रव्रजन्त शोचति ।
रमते आर्य-वचने
तं वयं ब्रूयो माहनम् ॥

जातरूपं यथामुष्टं
निष्पातु-मल-पापकम् ।
राग-दोष-भयातीतं
तं वयं ब्रूयो माहनम् ॥

[तपस्विनं कृशं दान्तं
अपचित-मांस-शोणितम् ।
सुव्रतं प्राह-निर्वाणं
तं वयं ब्रूयो माहनम् ॥]

१८—“जो यज्ञ-वाही हैं वे ब्राह्मण की
सम्पदा—विद्या से अनभिज्ञ हैं। वे बाहर में
स्वाध्याय और तपस्या से उली प्रकाश के हुए
हैं जिस प्रकार अग्नि राख से ढँकी हुई
होती है ।

१९—“जिसे कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा
है, जो अग्नि की भाँति सदा लोक में पूजित
है, उसे हम कुशल पुरुष द्वारा कहा हुआ
ब्राह्मण कहते हैं ।

२०—“जो आने पर आसक्त नहीं होता,
जाने के समय शोक नहीं करता, जो आर्य-
वचन में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण
कहते हैं ।

२१—“अग्नि में तपा कर शुद्ध किए हुए
और बिसे हुए सोने की तरह जो विशुद्ध है
तथा राग-द्वेष और भय से रहित है, उसे हम
ब्राह्मण कहते हैं ।

‘[जो तपस्वी है, कृश है, दान्त है, जिसके
मांस और शोणित का अपचय हो चुका है,
जो सुव्रत है, जो शान्त है, उसे हम ब्राह्मण
कहते हैं ।]

१. गूढा (५०) ; गूढा (५० वा०) ।

२. छल्लइ (५) ।

३. महामट्ठं (५०) ; महामट्ठं (५० वा०) ।

४. यह श्लोक बुद्ध्वाचित में व्याख्यात नहीं है ।

२२—तसपाणे वियाणेत्ता
संगहेण 'य थावरे'^१ ।
जो न हिसइ तिविहेण^२ ।
तं वयं बूम माहणं ॥

२३—कोहा वा जइ वा हासा
लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं न वयई जो उ
तं वयं बूम माहणं ॥

२४—चित्तमन्तमचित्तं वा
अप्यं वा जइ वा बहुं ।
न गेप्पइ अदत्तं जो
तं वयं बूम माहणं ॥

२५—दिक्खमाणुसतेरिच्छं
जो न सेवइ मैहुणं ।
मणसा कायवक्केणं
तं वयं बूम माहणं ॥

२६—जहा पोमं जले जायं
नोवलप्पइ वारिणा ।
एवं अलितो^३ कामेहि
तं वयं बूम माहणं ॥

२७—अलोलुयं मुहाजीवी^४
अणगारं अकिच्चणं ।
अससत्तं गिहल्लेसु
तं वयं बूम माहणं ॥

त्रस-प्राक्किो विक्कय
संगहेण च स्याद्वरान् ।
यो न हिनस्ति त्रिक्किेन
तं वयं बूमो माहनम् ॥

कोषाह वा यदि वा हासात्
लोभाद्वा यदि वा भयान् ।
मृषा न वदति यस्तु
तं वयं बूमो माहनम् ॥

चित्तचदचित्तं वा
अप्यं वा यदि वा बहुम् ।
न गृह्णात्यवस्तं यः
तं वयं बूमो माहनम् ॥

विष्य-मानुष-नैरक्षं
यो न सेवते मैयुनम् ।
मनसा काय-वाक्येन
तं वयं बूमो माहनम् ॥

यथा प्लवं जले जातं
नोवलप्यते वारिणा ।
एवमलितः कामेः
तं वयं बूमो माहनम् ॥

अलोलुपं मुषा-जीविनं
अणगारमकिचनम् ।
अससत्सं गृहस्थेषु
तं वयं बूमो माहनम् ॥

२२—“जो तस और आवाज जीवों को
मलीगौति जान कर मन, बाणी और धारी से
उनकी हिसा नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण
कहते हैं ।

२३—“जो कोष, हास्य, लोभ या भय
के कारण श्वास नहीं बोलता, उसे हम ब्राह्मण
कहते हैं ।

२४—“जो सचित्त या अचित्त कोई भी
पदार्थ, छोटा या अधिक कितना ही क्यों न
हो, उसके अधिकारी के लिए जिना नहीं लेता,
उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२५—“जो देव, मनुष्य और तिर्यक्ष
सम्बन्धी मैयुन का मन, बचन और काय से
सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

२६—“जिस प्रकार जल में डूबना हुआ
कमल जल से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार
काम-भोग के वातावरण में डूबना हुआ
जो मनुष्य उससे लिप्त नहीं होता, उसे हम
ब्राह्मण कहते हैं ।

२७—“जो लोभ्य नहीं है, जो निर्दोष
निष्ठा से जीवन का निवाह करता है, जो
गृह-स्वामी है, जो अकिचन है, जो गृहस्थों में
अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

१. थावावरे (६० पा०) ।

२. ययं तु (६०) ; त्रिविहेण (६० पा०) ।

३. अलितं (भा. ६, छ०) ।

४. मुहाजीवि (६० पा०) ।

[जहिता पुव्वसंजोगं
नाइसंगे^१ य बन्धवे ।
जो न सज्जइ एएहि^२
तं वयं ब्रूम माहणं ॥]^३

[त्यक्त्वा पूर्व-संयोगं
ज्ञाति-संगोऽथ बान्धवान् ।
यो न स्वयति एतेषु
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥]

[जो पूर्व-संयोग, ज्ञाति-जनो की आसक्ति
और बान्धवों को छोड़ कर उनमें आसक्त नहीं
होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।]

२८—पसुबन्धा^४ सव्ववेया^५
जट्टं च पावकम्मुणा ।
न तं तायन्ति दुस्सीलं
कम्माणि बलवन्ति ह ॥

पशु-बन्धाः सर्व-वेदाः
इष्टं च पाप-कर्मणा ।
न तं त्रायन्ते दुःशीलं
कर्मणि बलवन्ति ह ॥

२८—“जिनके शिक्षा-पद पशुओं की बलि
के लिए यज्ञस्तूपों में बांधे जाने के हेतु
बनते हैं, वे सब वेद और पशु-बलि आदि पाप-
कर्म के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ द्वारा चार-
सम्पन्न उस यज्ञ-कर्त्ता को त्राण नहीं देते,
क्योंकि कर्म बलवान् होते हैं ।

२९—न वि मुण्डिण समणो
न ओंकारेण बम्भणो ।
न मृणी रण्णवासेणं
कुसचीरेण न तावसो ॥

नाऽपि मुण्डितेन श्रमणः
न ओंकारेण ब्राह्मणः ।
न मुनिररण्य-वासेन
कुश-चीवरेण न तापसः ॥

२९—“केवल सिर मंड लेने में कोई श्रमण
नहीं होता, ‘ओम्’ का जप करने मात्र से कोई
ब्राह्मण नहीं होता, केवल अरण्य में रहने से
कोई मुनि नहीं होता और कुश का चीवर
पहनने मात्र से कोई तापस नहीं होता ।

३०—समयाए समणो होइ
बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणण य मुणी होइ
तवेणं होइ तावसो ॥

समतया श्रमणो भवति
ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः ।
ज्ञाने च मुनिर्भवति
तपसा भवति तापसः ॥

३०—“समभाव की साधना करने से
श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण
होता है, ज्ञान की आराधना—मनन करने से
मुनि होता है, तप का आचरण करने से
तापस होता है ।

३१—कम्मुणा बम्भणो होइ
कम्मुणा होइ खल्लिओ ।
वइस्सो कम्मुणा होइ
सुदो हवइ^६ कम्मुणा ॥

कर्मणा ब्राह्मणो भवति
कर्मणा भवति क्षत्रियः ।
वैश्यो कर्मणा भवति
शूद्रो भवति कर्मणा ॥

३१—“मन्य कर्म से ब्राह्मण होता है,
कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है
और कर्म से ही शूद्र होता है ।

१. नाइ संजोगे (ऋ०) ।

२. भोगेख (ऋ०) ; एएछ (ङ०) ।

३. यह श्लोक बहुद् वृत्ति में पाठान्तर रूप में स्वीकृत है ।

४. पसुबद्धा (ऋ० पा०) ।

५. सव्व वेया य (अ०) ।

६. होइय (अ०) ; होइ ङ (ऋ०)

३२—एए 'पाउकरे वुद्धे'^१
जेहि होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविनिग्गमुक्कं
तं वयं ब्रूम माहणं ॥

३३—एवं गुणसमाउत्ता
जे भवन्ति दिउत्तमा ।
ते समन्था उ उद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ॥

३४—एवं तु संसए छिन्ने
विजयघांसि य माहणे ।
'समुदाय तय' तं तु'^२
जयघासं महामुणि ॥

३५—तुद्धं य विजयघांसि
इणमुदाहु कयज्जं ।
माहणत्तं जहाभूयं
सुद्धं मे उपवसिय ॥

३६—तुब्भे जइया जन्ताणं
तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुब्भे
तुब्भे धम्माण पारगा ॥

३७ तुब्भे समन्था उद्धत्तुं
परं अप्पाणमेव य ।
तमण्णहं करेहग्गहं^३
भिकखेणं^४ भिकवुउत्तमा ॥

एताम्रावुरकारोइ बुद्धः
यंभेवति स्मातकः ।
सर्व-कर्म-विनिर्मुक्तः
तं वयं ब्रूमो माहनम् ॥

एवं गुण-समायुक्ताः
ये भवन्ति द्विजोत्तमाः ।
ते समर्थास्तुद्धधर्तुम्
परमात्मानमेव च ॥

एवं तु संशये छिन्ने
विजयघोषदत्त माहनः ।
समुदाय तर्का तं तु
जयघोष महावृत्तिम् ॥

तुष्टश्च विजयघोषः
इवमुदाहृ कृतांजलिः ।
माहनत्वं यथाभूतं
सुद्धु मे उपवसितम् ॥

यूयं यष्टारो यज्ञानां
यूयं वेद-विदो विदः ।
ज्योतिषांग-विदो यूयं
यूयं धर्माणां पारगाः ॥

यूयं तमघांसः उद्धत्तुं
परमात्मानमेव च ।
तवगृहं कुस्तास्माकं
श्रेष्ठेण भिक्षुत्तमाः ॥

३२—“इन तप्यों को अर्हत् ने प्रकट किया है । इनके द्वारा जो मनुष्य स्नातक होता है, जो सब कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

३३—“इस प्रकार जो गुण-सम्पन्न द्विजोत्तम होते हैं, वे ही अपना और पराया उद्धार करने में समर्थ हैं ।”

३४—“इस प्रकार संशय दूर होने पर विजयघोष ब्राह्मण ने जयघोष की वाणी को भली-भाँति समझा और -

३५—“महामुनि जयघोष से संतुष्ट हो, हाथ-जोड़ कर इस प्रकार कहा—“तुमने मुझे यथायं ब्राह्मण का वृद्ध ही अच्छा अर्थ समझाया है ।

३६—“तुम यज्ञों के यज्ञकर्त्ता हो, तुम केशों को जानने वाले विद्वान् हो, तुम वेद के ज्योतिष आदि छहों अंगों को जानते हो, तुम धर्मों के पारगामी हो ।

३७—“तुम अपना और पराया उद्धार करने में समर्थ हो, इसलिए हे भिक्षु-प्रेष्ठ ! तुम हम पर भिदा लेने का अनुरोध करो ।”

१. पाउकराधम्मा (वृ० पा०) ।

२. बभणे (वृ०) ; माहणे (वृ० पा०) ।

३. तभो (अ, छ०, ऋ०) ।

४. संजाणतो तभो तं तु (वृ० पा०) ; समादाय तथं तं व (उ) ।

५. करे भम्मं (अ, इ) ।

६. भिकखणं (वृ०) ।

३८—न कज्जं मज्झं भिक्खेण
खिप्पं निक्खममू दया ।
मा भमिहिसि भयावट्टे^१
घोरे^२ संसारसागरे ॥

३९—उवलेवो होइ भोगेमु
अभोगी नोवल्लिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे
अभोगी विप्पमुच्चई ॥

४०—उल्लो सुक्को य दो छुडा
गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिया कुट्टे
जो उल्लो सोतत्थ^३ लगई ॥

४१—एवं लगन्ति दुम्मेहा
जे नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लगन्ति
जहा सुक्को उ गोलओ ॥

४२—एवं से विजयघोसे
जयघोसस्स अन्तिए ।
अणगारस्स निक्खन्तो
धम्मं^४ 'सोच्चा अणुत्तरं' ॥

४३—खविता पुव्वकम्माइं
संजमेण तवेण य ।
जयघोसविजयघोसा
सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥
—ति वेमि ।

न कार्यं मम भैक्ष्येण
क्षिप्रं निष्काम द्विज ! ।
मा भ्रूयाः भयावर्त्तं
घोरे संसार-सागरे ॥

उपलेपो भवति भोगेषु
अभोगी नोपलप्यते ।
भोगी भ्रमति संसारे
अभोगी विप्रमुच्यते ॥

आर्द्रः शुष्कश्च द्वौ क्षिप्रौ
गोलको मृत्तिकामयो ।
हावप्यापतितौ कुट्टे
य आर्द्रः स तत्र लगति ॥

एवं लगन्ति दुर्मेक्षसः
ये नराः काम-लालसाः ।
विरक्तास्तु न लगन्ति
यथा शुष्कस्तु गोलकः ॥

एवं स विजयघोषः
जयघोषस्यान्तिके ।
अनगारस्य निष्कान्तः
धर्मं श्रुत्वाऽनुत्तरम् ॥

अपयित्वा पूर्वं-कर्मणि
संयमेन तपसा च ।
जयघोष-विजयघोषो
सिद्धिं प्राप्तावनुत्तराम् ॥
—इति त्रयोमि ।

३८—“मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है । हे द्विज ! तू तुरन्त ही निष्काम कर मुनि-जीवन को स्वीकार कर । जिससे भय के आवर्त्तों से आकीर्ण इस घोर संसार-सागर में मुझे चक्कर लगावा न पड़े ।

३९—“भोगों में उपलब्ध होता है । अभोगी लित नहीं होता । भोगी संसार में भ्रमण करता है । अभोगी उससे मुक्त हो जाता है ।

४०—“मिट्टी के दो गोले—एक गीला और एक सूखा-फेंक गए । दोनों भीत पर गिरे । जो गीला था वह वहाँ चिपक गया ।

४१—“इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-भोगों में आसक्त होते हैं, वे विषयों से चिपट जाते हैं । जो विरक्त होते हैं, वे उनसे नहीं चिपटते, जैसे सूखा गोला ।”

४२—“इस प्रकार वह विजयघोष जयघोष अनगार के समीप अनुत्तर धर्म सुन कर प्रव्रजित हो गया ।

४३—“जयघोष और विजयघोष ने संयम और तप के द्वारा पूर्वं संवित कर्मों को क्षीण कर अनुत्तर सिद्धि प्राप्त की ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. भयावर्त्ते (६० पा०) ।

२. हीहं (६० पा०) ।

३. सोत्थ (६०, ६०) ।

४. सोच्चाण केवलं (६० पा०) ।

कवीसङ्गमं अन्वयवर्णनं :
सामायारी

षष्ठ्विंश अध्यायन :
सामायारी

आस्तुख

इस अध्ययन में 'इच्छा' आदि का समाचरण वर्णित है इसलिए इस अध्ययन का नाम 'सामाचारी'—
'सामाचारी' है ।

“णाणस्स सारं आचारो”—ज्ञान का सार है आचार । आचार जीवन-सुक्ति का साधन है । जैन मनीषियों ने जिस प्रकार तत्त्वों की सूक्ष्मतम छानबीन की है उसी प्रकार आचार का सूक्ष्मतम निरूपण भी किया है । आचार दो प्रकार का होता है—व्रतात्मक-आचार और व्यवहारात्मक-आचार । व्रतात्मक-आचार अहिंसा है । वह शाश्वत धर्म है । व्यवहारात्मक-आचार है परस्परानुग्रह । वह अनेक विध होता है । वह अशाश्वत है ।

जो मुनि संघीय-जीवन यापन करते हैं उनके लिए व्यवहारात्मक-आचार भी उतना ही उपयोगी है जितना कि व्रतात्मक-आचार । जिस संघ या समूह में व्यवहारात्मक-आचार की उन्नत विधि है और उसकी सम्यक् परि-
पालना होती है, वह संघ दीर्घायु होता है । उसकी एकता अखण्ड होती है ।

जैन आचार-शास्त्र में दोनों आचारों का विशद् निरूपण प्राप्त है । प्रस्तुत अध्ययन में व्यवहारात्मक-
आचार के दस प्रकारों का स्फुट निदर्शन है । ये दस प्रकार सम्यक्-आचार के आधार हैं इसलिए इन्हें 'समाचार',
सामाचार या सामाचारी कहा है ।

सामाचारी के दो प्रकार हैं—

- १—ओघ सामाचारी ।
- २—पद-विभाग सामाचारी ।

प्रस्तुत अध्ययन में ओघ सामाचारी का निरूपण है । टीकाकार ने अध्ययन के अन्त में यह जानकारी
प्रस्तुत की है कि ओघ सामाचारी का अन्तर्भाव धर्मकथानुयोग में होता है और पद-विभाग सामाचारी का चरण-
करणानुयोग में । उत्तराध्ययन धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत है ।^१ ओघ सामाचारी के दस प्रकार हैं । (इ.० ३, ४)

- | | |
|--------------|---------------|
| १—आवश्यक | २—नैपेथिकी |
| ३—आपृच्छा | ४—प्रतिपृच्छा |
| ५—छन्दना | ६—इच्छाकार |
| ७—मिच्छाकार | ८—तथाकार |
| ९—अभ्युत्थान | १०—उपसंपदा |

स्थानाङ्ग (१०।७४९) तथा भगवती (२५।७) में दस सामाचारी का उल्लेख है । इनमें क्रम-भेद के अतिरिक्त
एक नाम-भेद भी है—‘अभ्युत्थान’ के बदले ‘निमंत्रणा’ है । निर्युक्ति (गाथा ४८२) में भी ‘निमंत्रणा’ ही दिया है ।
मूलाधार (गाथा १२५) में स्थानाङ्ग में प्रतिपादित क्रम से ओघ सामाचारी का प्रतिपादन हुआ है ।

१—बृहद् सूत्रि, पत्र ५४७ :

अन्तर्गत सामाचारी दशविधा ओषक्या च पदविभागात्मिका येह मोका धर्मकथाऽनुयोगत्वात्स्य क्षेत्रपूत्रान्तर्गतत्वाच्च तस्याः— ।

दिग्गम्बर-साहित्य में सामाचारि के स्थान पर समाचार, सामाचार शब्द का प्रयोग हुआ है और इसके पार अर्थ किए हैं—

- १ समता का आधार ।
- २—सम्यग आधार ।
- ३ सम (तुल्य) आधार ।
- ४—समान (परिमाण सहित) आधार ।^१

वचचित् चक्रवाल-सामाचारि का भी उल्लेख मिलता है । वर्द्धमान देशना (पत्र १०२) में शिक्षा के दो प्रकार बताए हैं—आसेवना शिक्षा और ग्रहण शिक्षा ।

आसेवना शिक्षा के अन्तर्गत दस-विध चक्रवाल सामाचारि का उल्लेख हुआ है ।^२

- | | |
|--------------|----------------------------|
| १—प्रतिलेखना | ६—भोजन |
| २—प्रमार्जना | ७—पात्रक धावन |
| ३—मिक्षा | ८—विचारण (बहिर्भूमि-गमन) |
| ४—चर्या | ९—स्थाण्डिल |
| ५—आलोचना | १०—आवश्यक |

उपशुक्त दस सामाचारियों में आवश्यक विभाग में सारी औषध सामाचारियों का ग्रहण हुआ है ।

सामाचारि का अर्थ है—मुनि का आधार-व्यवहार या इति-कर्तव्यता । इस व्यापक परिभाषा से मुनि-जीवन की दिन-रात की समस्त प्रवृत्तियों 'सामाचारि' शब्द से व्यवहृत हो सकती हैं । दस-विध औषध सामाचारि के साथ-साथ प्रस्तुत अध्ययन में अन्यान्य कर्तव्यों का निर्देश भी हुआ है ।

शिष्य के लिए आवश्यक है कि वह जो भी कार्य करे गुरु से आज्ञा प्राप्त कर करे । (श्लो० ८६.१०) दिन-चर्या की व्यवस्था के लिए दिन के चार भागों और उनमें करणीय कार्यों का उल्लेख श्लो० ११ और १२ में है । श्लो० १३ से १६ तक दैवसिक काल-ज्ञान—दिन के चार प्रहरों को जानने की विधि है । श्लो० १७ और १८ में रात्रि-चर्या के चार भागों और उनमें करणीय कार्यों का उल्लेख है । श्लो० १९ और २० में रात्रिक काल-ज्ञान—रात के चार प्रहरों को जानने की विधि और प्रथम और चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करने का निर्देश है । श्लो० २१ में तपश्चि-प्रतिलेखना और स्वाध्याय का विधान है । ८ व १० श्लोक में भी यज्ञावष्य प्रतिपादित है । यहाँ थोड़े परिवर्तन के साथ पुनरुक्त है । श्लो० २२ में पात्र-प्रतिलेखना तथा २३ में उसका क्रम है । श्लो० २४ से २८ तक वस्त्र-प्रतिलेखना की विधि है । श्लो० २९ और ३० में प्रतिलेखना-प्रमाद के दोष का निरूपण है । श्लो० ३१ से ३५ तक में दिन के तीसरे प्रहर के कनड्य-मिक्षाचर्या, आहार तथा दूसरे गौव में मिक्षाय जाने आद का विधान है । श्लो० ३६ एवं ३७ तथा ३८ के प्रथम दो चरणों तक चतुर्थ प्रहर के कर्तव्य—वस्त्र-पात्र-प्रतिलेखन, स्वाध्याय, शय्या और उच्चार-भूमि की प्रतिलेखना का विधान है । श्लो० ३८ के अन्तिम दो चरणों से ४२ के तीन चरणों तक दैवसिक प्रतिक्रमण का विधान है । चतुर्थ चरण में रात्रिक काल-प्रतिलेखना का विधान है । श्लो० ४३ व ४८ व ४९ का पुनरुक्त है तथा ४४ व ४० व ४९ का पुनरुक्त है । श्लो० ४५ से ५१ तक रात्रिक प्रतिक्रमण का विधान है । ५२ व ५३ श्लोक में उपसंहार है । २० व ५३ श्लोक तक एक प्रकार से ओष सामाचारि (दिन और रात की चर्या) का प्रतिपादन हो चुकता है । श्लो० २१ से ५१ तक प्रतिपादित विषय का ही विस्तार से प्रतिपादन किया है । इसलिए यत्र वचचित् पुनरुक्तियाँ भी हैं ।

१—शूलाचार, गाथा १२३ :

समदा सामाचारि, सम्माचारि समो व आचारो ।

सर्वेभ्य सम्मान्य, सामाचारि इ आचारो ॥

२—प्रबन्धन सारोद्धार, गाथा ७६०, ७६१ में 'इच्छा, मिच्छा' आदि की चक्रवाल-सामाचारि के अन्तर्गत माना है और गाथा ७६८ में प्रतिलेखना, प्रमार्जना आदि को प्रकारान्तर से दस-विध सामाचारि माना है ।

सुनि दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचर्या और चौथे में पुनः स्वाध्याय । (श्लो० १२)

सुनि रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे में ध्यान, तीसरे में निद्रा-भोक्ष (शयन) और चौथे में पुनः स्वाध्याय । (श्लो० १८)

यह सुनि के औत्सर्गिक कर्तव्यों का निर्देश है । इसमें कई अपवाद भी हैं ।

दैनिक-कृत्यों का विस्तार से वर्णन २१ वें से ३८ वें श्लोक तक हुआ है और रात्रिक-कृत्यों का ३९ वें से ५१ वें श्लोक तक ।

यह सारा वर्णन सामाचारी के अन्तर्गत आता है । सामाचारी संघीय जीवन जीने की कला है । इससे पारस्परिक एकता की भावना पनपती है और इससे संघ दृढ़ बनता है । दस-विध सामाचारी की सम्यक् परिपालना से व्यक्ति में निम्न विशेष गुण उत्पन्न होते हैं—

१—आवश्यकता और नैवेधिकों से निष्प्रयोजन गमनागमन पर नियंत्रण रखने की आदत पनपती है ।

२—मिष्टाकार से पापों के प्राप्ति सजगता के भाव पनपते हैं ।

३—आपृच्छा और प्राप्तपृच्छा से अमशील तथा दूसरों के लिए उपयोगी बनने के भाव बनते हैं ।

४—धनदना से अतिथि-सत्कार की प्रवृत्ति बढ़ती है ।

५—इष्टाकार से दूसरों के अनुग्रह को सहर्ष स्वीकार करने तथा अपने अनुग्रह में परिवर्तन करने की कला आती है ।

परस्परानुग्रह संघीय-जीवन का अनिवार्य तत्त्व है । परन्तु व्यक्ति उस अनुग्रह को अधिकार मान बैठता है, वहाँ स्थिति जटिल बन जाती है । दूसरों के अनुग्रह की हार्दिक स्वीकृति स्वयं में विनय पैदा करती है ।

६—उपसम्पदा से परस्पर-ग्रहण की अभिलाषा पनपती है ।

७—अभ्युत्थान (गुरु-पूजा) से गुरुता की ओर अभिमुखता होती है ।

८—तथाकार से आग्रह की आदत छूट जाती है, विचार करने के लिए प्रवृत्ति सदा तन्मूक्त रहती है ।

उत्तराभ्ययणं (उत्तराभ्ययन)

३५०

अभ्ययन २६ : श्लोक ५-८

५—गमणे आवस्सियं कुज्जा
ठाणे कुज्जा निसीहियं ।
आपुच्छणा सयंकरणे
परकरणे पडिपुच्छणा ॥

गमने आवस्यकीं कुर्यात्
स्थाने कुर्यान्निषीधिकाम् ।
आप्रच्छन्ता स्वयं करणे
पर-करणे प्रतिप्रच्छन्ता ॥

५—(१) स्थान से बाहर जाने समय आवस्यकी करे—आवस्यकी का उच्चारण करे ।
(२) स्थान में प्रवेश करते समय नैवेधिकी करे—नैवेधिकी का उच्चारण करे ।
(३) अपना कार्य करने से पूर्व आपृच्छा करे—गृह से अनुमति ले ।
(४) एक कार्य से दूसरा कार्य करते समय प्रतिपृच्छा करे—गृह से पुनः अनुमति ले ।

६—छन्दणा दब्बजाएणं
इच्छाकारो य सारणे ।
मिच्छाकारो य निन्दाए
तहकारो य^१ पडिस्सुए ॥

छन्दना द्रव्यजातेन
इच्छाकारश्च सारणे ।
मिथ्याकारश्च निन्दायां
तथाकारश्च प्रतिश्रुते ॥

६—(५) पुनः-एहीत द्रव्यों से छंदना करे—
गुरु आदि को निर्मजित करे ।
(६) सारणा (ओचित्य से कार्य करने और कराने) में इच्छाकार का प्रयोग करे—आपकी इच्छा हो तो मैं आपका अमुक कार्य करूँ ! आपकी इच्छा हो तो कृपया मेरा अमुक कार्य करे ।
(७) अनाश्रित की निन्दा के लिए मिथ्याकार का प्रयोग करे ।
(८) प्रतिवचन (गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश की स्वीकृति) के लिए तथाकार (सह मेरे ही हैं) का प्रयोग करे ।

७—अब्भुट्ठाणं गुरुपूया
अच्छणे उपसंपदा ।
'एवं' दुपंचसंयुत्ता^२
सामायारी पवेइया ॥

अभ्युत्थानं गुरु-पूजायां
आसने उपसम्पदा ।
एवं द्विपंच-संयुक्ता
सामाचारी प्रवेदिता ॥

७—(८) गुरु-पूजा (आचार्य, ग्लान, बाल आदि साधुओं) के लिए अभ्युत्थान करे—आहार आदि लाए ।
(१०) दूसरे गण के आचार्य आदि के पास रहने के लिए उपसम्पदा ले—
मर्यादित काल तक उनका सिध्यत्स्व स्वीकार करे—इस प्रकार दश-विंश सामाचारी का निरूपण किया गया है ।

८—पुव्विल्लंमि चउग्भाए
आइच्चंमि समुट्ठिए ।
भण्डयं पडिलेहिता
वन्दिता य ततो गुरुं ॥

पूर्वस्मिन् वस्तुभोगे
आदित्ये समुत्थिते ।
भाण्डकं प्रतिलिख्य
वन्दित्वा च ततो गुरुम् ॥

८—सूर्य के उदय होने पर दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भाण्ड-उपकरणों की प्रतिलेखना करे । तदनन्तर गुरु को वन्दना कर—

१. × (ड) ।

२. यथा कसंजा साहू' (६० पा०) ।

द्वितीयं अध्यायः : षड्विंश अध्यायः सामायारी : सामाचारी

मूल

१—सामायारि पवक्वामि
सव्वदुक्खविमोक्खणि ।
जं चरित्ताण निग्गन्था
तिण्णा संसारसागरं ॥

संस्कृत छाया

सामाचारी प्रवक्ष्यामि
सर्व-दुःख-विमोक्षणीम् ।
यां चरित्वा निग्रन्थाः
तीर्थाः संसार-सागरम् ॥

हिन्दी अनुवाद

१—मैं सब दुःखों से मुक्त करने वाली
उस सामाचारी का निरूपण करूँगा, जिसका
वाचरण कर निग्रन्थ संसार-सागर को तिर
गए ।

२—पढमा आवस्सिया नाम
विइया य^१ निसीहिया ।
आपुच्छणा य तइया
चउत्थो पडिपुच्छणा ॥

प्रथमा आवश्यकी नाम्नी
द्वितीया च निषेधिका ।
आप्रच्छन्ता च तृतीया
चतुर्थी प्रतिप्रच्छन्ता ॥

२—पहली आवश्यकी, दूसरी नैषेधिकी,
तीसरी आपृच्छन्ता, चौथी प्रति-प्रच्छन्ता—

३—पंचमा छन्दणा नाम
इच्छाकारो य छट्ठो ।
सत्तमो मिच्छाकारो य^२
तट्ठकारो य अट्ठमो ॥

पंचमी छन्दना नाम्नी
इच्छाकारश्च षष्ठः ।
सप्तमः मिच्छाकारश्च
तथाकारश्च अष्टमः ॥

३—पाँचवी छन्दना, छठी इच्छाकार,
सातवी मिच्छाकार, आठवी तथाकार—

४—अब्भुत्थानं नवमं
दसमा उपसंपदा ।
एसा दसंगा साहणं
सामायारी पवेइया ॥

अभ्युत्थानं नवमं
दशमी उपसम्पद ।
एसा दशांगा साधूनां
सामाचारी प्रवेदिता ॥

४—नौवीं अभ्युत्थान, दशवी उपसंपदा—
भगवान् ने इस दश अंग वाली साधुओं की
सामाचारी का निरूपण किया है ।

१. होइ (व) ।

२. उ (आ, इ) ।

सामायारी (सामाचारी)

३५१

अध्ययन २६ : श्लोक ६-१४

९—पुच्छेज्जा पंजलिउडो
किं कायव्वं मए इहं ? ।
इच्छं निओइउं भन्ते !
वेयावच्चे व सज्जाए ॥

पुच्छेत् प्रांजलिपुटः
किं कर्तव्यं मया इह ? ।
इच्छामि नियोजयितुं भवन्त !
वैयावृत्ये वा स्वाध्याये ॥

९—हाथ जोड़ कर पूछे—अब मुझे क्या करना चाहिए ? भन्ते ! मैं चाहता हूँ कि आप मुझे वैयावृत्य या स्वाध्याय में से किसी एक कार्य में नियुक्त करें ।

१०—वेयावच्चे निउत्तेणं
कायव्वं अगिलायओ ।
सज्जाए वा निउत्तेणं
सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥

वैयावृत्ये नियुक्तेन
कर्तव्यमग्राप्येन ।
स्वाध्याये वा नियुक्तेन
सर्व-दुःख-विमोक्षणे ॥

१०—वैयावृत्य में नियुक्त किए जाने पर अलान भाव से वैयावृत्य करे अथवा सर्व दुःखों से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किए जाने पर अलान भाव से स्वाध्याय करे ।

११—दिवसस्स चउरो भागे
कुज्जा भिक्खू वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा
दिणभागेसु चउसु वि ॥

विषयस्य चतुरो भागान्
कुर्याद् भिक्षुर्विचक्षणः ।
तत उत्तर-गुणान् कुर्यात्
दिन-भागेषु चतुर्विधं ॥

११—विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे । उन चारों भागों में उत्तर-गुणों (स्वाध्याय आदि) की आराधना करे ।

१२—पढमं पोरिसि सज्जायं
बीयं भाणं भियायई ।
तइयाए भिक्खायरियं
पुणो चउत्थीए सज्जायं ॥

प्रथमां पौर्वीं स्वाध्यायं
द्वितीयां ध्यानं ध्यायति ।
तृतीयायां भिक्षाचर्यां
पुनश्चतुर्थ्यां स्वाध्यायम् ॥

१२—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे में ध्यान करे । तीसरे में भिक्षाचर्य और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे ।

१३—आसाढे मासे दुपया
पोसे मासे चउपया ।
चित्तासोएसु मासेसु
तिपया हवइ पोरिसी ॥

आषाढे मासे द्विपदा
पौषे मासे चतुष्पदा ।
चैत्रादिचतुर्मासयोः
त्रिपदा भवति पौर्वी ॥

१३—आषाढ़ मास में दो पाद प्रमाण, पौष मास में चार पाद प्रमाण, चैत्र तथा आश्विन मास में तीन पाद प्रमाण पौर्वी होती है ।

१४—अंगुलं सत्तरत्तेणं
पक्खेण य दुअंगुलं ।
वड्डए हायए वाकी
मासेणं चउरंगुलं ॥

अंगुलं सप्त-रात्रेण
पक्षेण च द्व्यंगुलम् ।
वर्षंते हीयते आपि
मासेन चतुरंगुलम् ॥

१४—सात दिन रात में एक अंगुल, पक्ष में दो अंगुल और एक मास में चार अंगुल वृद्धि और हानि होती है । वर्षण मास से पौष मास तक वृद्धि और माघ से आषाढ़ तक हानि होती है ।

१५—आसाढबहुलपक्षे

भट्टवए कत्तिए य पोसे य ।
फगुणवइसाहेसु य
नायव्वा^१ अमोरत्ताओ ॥

१६—जेठामूले आसाढसावणे
छहि अंगुलेहि पडिलेहा ।
अट्टहि वीयतियंमी
तइए दस अट्टहि चउत्थे ॥

१७—रत्ति पि चउरो भागे
भिकखू कुज्जा वियक्खणे ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा
राइभाएमु चउस् वि ॥

१८—पढमं पोरिसि सज्झायं
वीयं भाणं फियायई ।
तइयाए निट्ठमोक्खं तु
चउत्थी भुज्जो^२ वि सज्झायं ॥

१९—जं नेइ जया रत्ति
नक्खवंतं तंमि नहचउव्भाए ।
संपत्ते विरमेज्जा
सज्झायं पओसकालम्मि ॥

२०—तम्मेव य नक्खत्ते
गयणचउव्भागसावसेसंमि ।
वेरत्तियं पि कालं
पडिलेहिता मुणी कुज्जा ॥

आषाढ-बहुलपक्षे
भाद्रपदे कार्तिके च पोसे च ।
फाल्गुन-वैशाखयोश्च
ज्ञातव्या अवम-रात्रयः ॥

ज्येष्ठा-मूले आषाढ-श्रावणे
वटिभरंमूलेः प्रतिलेखा ।
अष्टाभिर्द्वितीयत्रिके
तृतीये दशभिरेष्टमिश्चतुर्थे ॥

रात्रिमपि चतुरो भागान्
भिभुः कुर्याद्विचक्षणः ।
तत उत्तर-गुणान् कुर्यान्
रात्रि-भागेषु चतुष्टयं ॥

प्रथमां पौर्णमीं स्वाध्यायं
द्वितीयां ध्यानां ध्यायति ।
तृतीयायां निद्रा-मोक्षं तु
चतुर्थ्यां भूयोपि स्वाध्यायम् ॥

यन्मयति यदा रात्रि
नक्षत्रं तस्मिन् नभश्चतुर्भागे ।
सम्प्राप्ते विरमेत
स्वाध्यायान् प्रदोष-काले ॥

तस्मिन्नेव च नक्षत्रे
गगन-चतुर्भागे-सावशेषे ।
वैरात्रिकमपि कालं
प्रतिलिख्य मुनिः कुर्यात् ॥

१५—आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, पौष,
फाल्गुन और वैशाख—इनके कृष्ण-पक्ष में
एक-एक अहोरात्र (तिथि) का क्षय होता है ।

१६—ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण इस प्रथम-
त्रिक में छह, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक इस
द्वितीय-त्रिक में आठ, मृगशिर, पौष, माघ
इस तृतीय-त्रिक में दश और फाल्गुन, चैत्र,
वैशाख इस चतुर्थ-त्रिक में आठ आंगुल की
वृद्धि करने से प्रतिलेखना का समय होता है ।

१७—विचक्षण भिक्षु रात्रि के भी चार
भाग करे । उन चारो भागों में उत्तर-गुणों की
आराधना करे ।

१८—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में
ध्यान, तीसरे में नींद और चौथे में पुनः
स्वाध्याय करे ।

१९—जो नक्षत्र जिस रात्रि की पूर्ति
करता हो, वह (नक्षत्र) जब आकाश के
चतुर्थ भाग में आए (प्रथम प्रहर समाप्त हो)
तब प्रदोष-काल (रात्रि के प्रारम्भ) में
प्रारम्भ स्वाध्याय से विरत हो जाए ।

२०—वही नक्षत्र जब आकाश के चतुर्थ
भाग में शेष रहे तब वैरात्रिक काल (रात
का चतुर्थ प्रहर) आया हुआ जान फिर
स्वाध्याय में प्रवृत्त हो जाए ।

१. बोद्धव्वा (आ) ।

२. पुणो (अ) ।

सामायारी (सामाचारी)

३५३

अध्ययन २६ : श्लोक २१-२५

२१—पुब्बिल्लंमि चउवभाए
पडिलेहिताण भण्डयं ।
गुरुं वन्दितु सज्जायं
कुज्जा दुक्खविमोक्षणं ॥

पूर्वस्मिन् चतुर्भागे
प्रतिलिख्य भाण्डकम् ।
गुरुं वन्दित्वा स्वाध्यायं
कुप्याह दुःख-विमोक्षणम् ॥

२१—दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ
भाग में भाण्ड-उपकरणों का प्रतिलिखन कर,
गुरु को वन्दना कर, दुःख से मुक्त करने वाला
स्वाध्याय करे ।

२२—पारिसीए चउवभाए
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
अपडिक्कमिता कालस्स
भायणं पडिलेहए ॥

पौलष्याऽवसुभागे
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
अप्रतिक्म्य कालस्य
भाजनं प्रतिलिखन् ॥

२२—पीत पौलषी बीत जाने पर गुरु को
वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण—कायोत्सर्ग
किए बिना ही भाजन की प्रतिलिखना करे ।

२३—मुहपोत्तिं^१ पडिलेहिता
पडिलेहिज्ज गोच्छयं ।
गोच्छल्लइयंगुलिओ
वत्थाडं पडिलेहए ॥

मुख-पोतिका प्रतिलिख्य
प्रतिलिखेत् गोच्छयम् ।
अंगुलिगत-गोच्छयकः
वस्त्राणि प्रतिलिखेत् ॥

२३—मुख-वस्त्रिका की प्रतिलिखना कर
गोच्छय की प्रतिलिखना करे । गोच्छय की
अंगुलियों से पकड़ कर भाजन को ढाँकने के
पटलों की प्रतिलिखना करे ।

२४—उडुढं थिरं अनुरियं
पुब्बं ता वत्थमेव पडिलेहे ।
तो बिइयं पप्फोडे
तइयं च पुणो पमज्जेज्जा ॥

ऊर्ध्वं स्थिरमन्विरितं
पूर्वं तावद् वस्त्रमेव प्रतिलिखेत् ।
ततो द्वितीयं प्रस्फोटयेत्
तुतीयं च पुनः प्रमुञ्चयेत् ॥

२४—सबसे पहले ऊँचा आसन बैठ,
वस्त्र को ऊँचा रखे, स्थिर रखे और धीमे
किए बिना उसकी प्रतिलिखना करे—चक्षु से
देखे । दूसरे में वस्त्र को मटकए और तीसरे
में वस्त्र की प्रमांजना करे ।

२५—अण्णावियं अवलियं
अण्णानुबन्धि अमोसलि^२ चेव ।
छप्पुरिमा नव खोडा
‘पाणीपाणविमोहणं’^३ ॥

अर्नातितमवलिनां
अननुबन्धवसौशाली चैव ।
षट्-पूर्वा नव-खोडा
पाणि-प्राणि-विमोचनम् ॥

२५—प्रतिलिखना करते समय (१) वस्त्र
या शरीर को न नचाए, (२) न मोड़े, (३)
वस्त्र के दृष्टि से अलक्षित विभाग न करे,
(४) वस्त्र का भीत आदि से स्पर्श न करे,
(५) वस्त्र के छह पूर्व और नौ खोटक करे
और (६) जो कोई प्राणी हो उसका हाथ पर
नौ बार विमोचन (प्रमांजन) करे ।

१. मुहपोत्ति (आ, इ, उ, ऋ) ।

२. अमोसलं (अ); अमोसलि (बु) ।

३. पाणीपाणि (बु) ।

४. ‘पमज्जनं’ (आ, इ=पा०); ‘पमज्जणा’ (ओचनिर्मुक्ति, ४२५) ।

२६—आरभटा सम्मदा
वज्जेयव्वा य मोसली तद्द्या ।
पण्णोडणा चउत्थी
विक्खित्ता वेद्द्या छट्ठा ॥

आरभटा सम्मदा
वज्जेयितव्या च मोसली तृतीया ।
प्रस्फोटना चतुर्थी
विशिक्षा वेदिका षष्ठी ॥

२६—मृनि प्रतिलेखना के छह दोषों का वर्जन करे—(१) आरभटा—विधि से विपरीत प्रतिलेखन करना अथवा एक वस्त्र का पूरा प्रतिलेखन किए बिना आकुलता से दूसरे वस्त्र को ग्रहण करना ।

(२) सम्मदा—प्रतिलेखन करते समय वस्त्र को इस प्रकार पकड़ना कि उसके बीच में सबूत पड़ जाय अथवा प्रतिलेखनीय उपधि पर बैठ कर प्रतिलेखना करना ।

(३) मोसली—प्रतिलेखन करते समय वस्त्र को ऊपर, नीचे, तिरछे किसी वस्त्र या पदार्थ से संघटित करना ।

(४) प्रस्फोटना—प्रतिलेखन करते समय रज-लिप्त वस्त्र को गृहस्थ की तरह वेग से भटकाना ।

(५) विशिक्षा—प्रतिलेखित वस्त्रों का अप्रतिलिखित वस्त्रों पर रखना अथवा वस्त्र के अक्षर को हटाना ऊँचा उठाना कि उसकी प्रतिलेखना न हो सके ।

(६) वेदिका—प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर, नीचे या पार्श्व में हाथ रखना अथवा घुटनों को भुजाओं के बीच रखना ।

२७—(१) प्रशिषिल—वस्त्र को ढीला पकड़ना ।

(२) प्रलम्ब—वस्त्र को विपश्मता से पकड़ने के कारण कोनों का लटकना ।

(३) मालो—प्रतिलेख्यमान वस्त्र का हाथ या भूमि से संघर्षण करना ।

(४) एकामशी—वस्त्र को बीच में से पकड़ कर उसके दोनों पार्श्वों का एक बार से ही स्पर्श करना—एक दृष्टि में ही समूचे वस्त्र को देख लेना ।

(५) अनेक रूप धूनना—प्रतिलेखना करते समय वस्त्र को अनेक बार (तीन बार से अधिक) भटकाना अथवा अनेक वस्त्रों को एक साथ भटकाना ।

(६) प्रमाण-प्रमाद—प्रस्फोटन और प्रमार्जन का जो प्रमाण (नौ-दो बार करना) बतलाया है, उसमें प्रमाद करना ।

(७) गणनोपगणना—प्रस्फोटन और प्रमार्जन के निर्दिष्ट प्रमाण में बाध्ता होने पर उसकी गिनती करना ।

२७—पसिद्धिलपलम्बलोला
एगामोसा अणेरूवधुणा^१ ।
कुणइ पमाणि पमायं
संकिण्णणोवगं कुज्जा ॥

प्रशिषिल-प्रलम्ब-लोलाः
एकामशानिकरूपधूनना ।
करोति प्रमाणे प्रमादं
शंकिते गणनोपगं कुर्यात् ॥

२८—अणूणाइरित्तपडिलेहा
अविचक्षासा तहेव य ।
पढमं पयं पसत्थं
सेसाणि उ अप्यसत्थाइं ॥

२९—पडिलेहणं कुणन्तो
मिहो कहं कुणइ जणवय कहं वा ।
देइ व पच्चक्खाणं
वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥

३०—पुढवीआउक्काए
तेऊवाऊवणस्सइत्तसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो
छहं पि विराहओ होइ ॥

[पुढवीआउक्काए
तेऊवाऊवणस्सइत्तसाणं ।
पडिलेहणाउत्तो
छहं आराहओ होइ ॥]^१

३१—तइयाए पोरिसीए
भत्तं पाणं गवेसए ।
छहं अन्नयरागम्मि
कारणंमि समुट्टिए ॥

३२—वेयणवेयावच्चे
इरियद्दाए य संजमद्दाए ।
तह पाणवत्तिपाए
छहं पुण धम्मचिन्ताए ॥

अनूनाऽतिरिक्ता प्रतिलेखा
अविचक्ष्यत्यासा तथैव च ।
प्रथमं पदं प्रशस्तं
शेषाणि त्वप्रशस्तानि ॥

प्रतिलेखनां कुर्वन्
मित्रः-कथां करोति जनपद-कथां
वा ।
वदाति वा प्रत्याख्यानं
वाचयति स्वयं प्रतीच्छति वा ॥

पृथिव्यपकाययोः
तेजो-वायु-वनस्पति-त्रसाणाम् ।
प्रतिलेखना-प्रमत्तः
वण्णामपि विराधको भवति ॥

[पृथिव्यपकाययोः
तेजो-वायु-वनस्पति-त्रसाणाम् ।
प्रतिलेखना-आयुक्तः
वण्णामाराधको भवति ॥]

तृतीययायां पौरुष्यां
भक्तं पानं गवेक्षयेत् ।
वण्णामन्यतरस्मिन्
कारणे समुत्तिष्ठते ॥

वेदना-वैद्यावुरयाय
ईर्यायाय च संयमार्याय ।
तथा प्राण-प्रत्ययाय
छट् पुनः धर्म-चिन्तायै ॥

२८—वस्त्र के प्रस्फोटन और प्रभाजन के प्रमाण से अन्यून अनतिरिक्त (न कम और न अधिक) और अविपरीत प्रतिलेखना करनी चाहिए । इन तीन विषयों के आधार पर प्रतिलेखना के आठ विकल्प बनते हैं । इनमें प्रथम विकल्प (अन्यून अनतिरिक्त और अविपरीत) प्रशस्त है और शेष अप्रशस्त ।

२९—जो प्रतिलेखना करते समय काम-कथा करता है अथवा जन-पद की कथा करता है अथवा प्रत्याख्यान करता है, दूसरों को पढ़ाता है अथवा स्वयं पढ़ता है—

३०—वह प्रतिलेखना में प्रमत्त मुनि पृथ्वीकाय, अकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसाकाय—इन छहों कायों का विराधक होता है ।

[प्रतिलेखना में अप्रमत्त मुनि पृथ्वीकाय, अकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—इन छहों कायों का आराधक होता है ।]

३१—छह कारणों में से किसी एक के उपस्थित होने पर तीसरे प्रहर में भक्त और पान की गवेक्षणा करे ।

३२—वेदना (धुषा) शान्ति के लिए, वैद्यावुर्य के लिए, ईर्या सभिति के शोधन के लिए, संयम के लिए तथा प्राण-प्रत्यय (जीवित रहने) के लिए और धर्म-चिन्तन के लिए भक्त-पान की गवेक्षणा करे ।

उत्तराभ्ययन (उत्तराध्ययन)

३५६

अध्ययन २६ : श्लोक ३३-३८

३३—निगम्यो विडमन्तो
निगम्यो वि न करेज्छहि चैव ।
ठाणेहि उ इमेहि
अणइक्कमणा य से होइ ॥

निगम्योऽनुत्तिमान्
निगम्यपि न कुर्याद्बहिर्भिरक्षेव ।
स्थाने स्त्वेभिः
अनतिक्रमणं च तस्य भवति ॥

३३—धृतिमान् साधु और साध्वी इन
छह कारणों से भक्त-पान की गवेषणा न करें,
जिससे उनके संयम का अतिक्रमण न हो ।

३४—आयंके उवससो^१
तिक्खया बम्भचेरगुत्तीसु ।
पाणिदया तवहेउं
सरोरवोच्छेयणाए ॥

आतङ्क उपसग
तिक्खया ब्रह्मचर्यं-गुप्तिषु ।
प्राणि-दया तपोहेतोः
शरीर-व्यवच्छेदार्थाय ॥

३४—रोग होने पर, उपसर्ग आने पर,
ब्रह्मचर्यं गुप्ति की तितिक्षा (सुरक्षा) के लिए,
प्राणियों की दया के लिए, तप के लिए और
शरीर-विच्छेद के लिए मुनि भक्त-पान की
गवेषणा न करें ।

३५—अवसेसं भण्डगं गिज्झा
चक्कुसा पडिलेहए ।
परमद्वजोयणाओ
विहारं विहरए मुणी ॥

अवशेषं भाण्डकं गृहीत्वा
चक्षुषा प्रतिलिखेत् ।
परमार्थयोजनान्
विहारं विहरेन्मुनिः ॥

३५—मय (मिश्रोपयोगी) भाण्डोपकरणों
को प्रहरण कर चक्षु से उनकी प्रतिलिखना करें
और दूसरे गाँव में मिश्रा के लिए जाना
आवश्यक हो तो अधिक से अधिक अर्थ-योजन
प्रदेश तक जाए ।

३६—चउत्थीए पोरिसीए
निक्खित्ताण भायणं ।
सज्जायं तओ कुज्जा
सव्वभावविभावणं^२ ॥

चतुर्थ्यां पौरुष्यां
निक्षिप्य भाजनम् ।
स्वाध्यायं ततः कुर्यात्
सर्वं-भाव-विभावनम् ॥

३६—चौथे प्रहर में भाजनों को प्रति-
लिखन पूर्वक बाँध कर रख दें, फिर सर्व भावों
को प्रकाशित करने वाला स्वाध्याय करें ।

३७—पोरिसीए चउवभाए
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स
सेज्जं तु पडिलेहए ॥

पौरुष्याश्चतुर्भागे
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
प्रतिक्रम्य कालस्य
शय्यां तु प्रतिलिखेत् ॥

३७—चौथे प्रहर के चतुर्थ भाग में पौन-
पौरुषी धीत जाने पर स्वाध्याय के पश्चात्
गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर
(स्वाध्याय-काल से निवृत्त होकर) शय्या की
प्रतिलिखना करें ।

३८—पासवणञ्चारभूमिं च
पडिलेहिज्ज जयं जई ।
काउत्समं तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

प्रसवणोच्चार-भूमिं च
प्रतिलिखेद्दयं यतिः ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्वं-दुःख-विमोक्षणम् ॥

३८—यतनाशील यति फिर प्रसवण और
उच्चार-भूमि की प्रतिलिखना करें । तदनन्तर
सर्व-दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग
करे ।

१. वससो (उ) ।

२. सव्वदुक्खविमोक्खणं (वृ० पा०) ।

३९—देसियं च अईयारं
चिन्तिज्ज अणुपुण्वसो ।
नाणे^१ दंसणे चैव
चरित्तम्मि तहेव य ॥

दैवसिकं चातिचारं
चिन्त्येवमुपवृत्तः ।
ज्ञाने वर्तने चैव
चरित्रे तथैव च ॥

३९—ज्ञान, वर्तन और चारित्र सम्बन्धी
दैवसिक अतिचार का अनुक्रम से चिन्तन करे ।

४०—पारियकाउस्समो
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
देसियं तु अईयारं
आलोएज्ज जहक्कमं ॥

पारित-कायोत्सर्गः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
दैवसिकं त्वतिचारं
आलोचयेत् यथाक्रमम् ॥

४०—कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु
को वन्दना करे । फिर अनुक्रम से दैवसिक
अतिचार की आलोचना करे ।

४१—पडिक्कमित्तु निस्सल्लो
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्समं तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

प्रतिक्रम्य निःशल्यः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

४१—प्रतिक्रमण से निःशल्य होकर
गुरु को वन्दना करे । फिर सर्व दुःखों से मुक्त
करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

४२—पारियकाउस्समो
वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
'धुइमंगलं च काऊण'^२
काळं संपडिलेहए ॥

पारित-कायोत्सर्गः
वन्दित्वा ततो गुरुम् ।
स्तुति-मंगलं च कृत्वा
कालं संप्रतिलिखेत् ॥

४२—कायोत्सर्ग को समाप्त कर गुरु को
वन्दना करे । फिर स्तुति-मंगल करके काल
की प्रतिलेखना करे ।

४३—'पढमं पोरिसि सज्जायं
बीय भाणं क्रियायई ।
तइयाए निहमोक्खं तु
सज्जायं तु चउत्थिए ॥'^३

प्रथमां पौरुषीं स्वाध्याय
द्वितीयां ध्यानं ध्यायति ।
तृतीयायां निद्रा-मोक्षं तु
स्वाध्यायं तु चतुर्थ्याम् ॥

४३—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे
में ध्यान, तीसरे में नीद और चौथे में पुनः
स्वाध्याय करे ।

४४—'पोरिसोए चउत्थीए
काळं तु पडिलेहिया ।
सज्जायं तओ कुज्जा
अबोहेन्तो असंजए ॥'^४

पौरुष्यां चतुर्थ्यां
कालं तु प्रतिलिख्य ।
स्वाध्यायं ततः कुर्यात्
अबोधयन्संयतान् ॥

४४—चौथे प्रहर में काल की प्रतिलेखना
कर असंयत व्यक्तियों को न जगाता हुआ
स्वाध्याय करे ।

१. नाणे व (आ) ; मार्गसि (ड) ।

२. सिद्धान्त संभव किंवा (६० पा०) ।

३. प्रथमा पोरिसि सज्जायं बीय भाणं क्रियायति ।

तत्तियाए निहमोक्खं च चउत्थाए चउत्थाए ॥ (६० पा०) ।

४. काळं तु पडिलेहिया अबोहेन्तो असंजए ।

कुज्जा सुणी व सज्जायं सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥ (६० पा०) ।

४५—पोरिसीए चउव्भाए
'वन्दिळण तओ गुरु' ।
पडिकमित्तु कालस्स
कालं तु पडिलेहए ॥

पोरुष्याडक्तुमणि
बन्दित्वा ततो गुरुम् ।
प्रतिक्रम्य कालस्य
कालं तु प्रतिलिखन् ॥

४५—चोपे प्रहर के चतुर्थ भाग में गुरु को बन्धना कर, काल का प्रतिक्रमण कर (स्वाध्याय काल से निवृत्त होकर) काल की प्रतिलेखना करे ।

४६—आगए कायवोस्सग्गे
सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउस्सगं तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

आगते काय-व्युत्सर्गं
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

४६—सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला काय-व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग) का समय आने पर सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

४७—राइयं च अईयारं
चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणंमि दंसणंमी
चरित्तंमि तवमि य ॥

रात्रिकं चातिचारं
चिन्त्येदनुपूर्वशः ।
ज्ञाने वर्तने
चरित्रे तपसि च ॥

४७—ज्ञान, दशंग, चारित्र और तप सम्बन्धी रात्रिक अतिचार का अनुक्रम में चिन्तन करे ।

४८—पारियकाउस्सग्गे
वन्दिताण तओ गुरुं ।
राइयं तु अईयारं
आलोणज्ज जहकमं ॥

पारित-कायोत्सर्गः
बन्दिता ततो गुरुम् ।
रात्रिकं त्वतिचारं
आलोचयेद् यथाक्रमम् ॥

४८—कायोत्सर्ग को समाप्त कर, भक्त को वन्दना कर । फिर अनुक्रम में रात्रिक अतिचार की आलोचना करे ।

४९—पडिकमित्तु निस्सल्लो
वन्दिताण तओ गुरुं ।
काउस्सगं तओ कुज्जा
सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

प्रतिक्रम्य निःशल्यः
बन्दिता ततो गुरुम् ।
कायोत्सर्गं ततः कुर्यात्
सर्व-दुःख-विमोक्षणम् ॥

४९—प्रतिक्रमण से निःशल्य होकर गुरु को वन्दना करे, फिर सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

५०—किं तवं पडिवज्जामि
एवं तत्थ विचिन्तए ।
काउस्सगं तु पारित्ता
वन्दई य तओ गुरुं ॥

किं तपः प्रतिपद्ये
एवं तत्र विचिन्तयेत् ।
कायोत्सर्गं तु पारित्यक्वा
बन्धते च ततो गुरुम् ॥

५०—मैं कौन-सा तप ग्रहण करूँ— कायोत्सर्ग में ऐसा चिन्तन करे । कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु को बन्धना करे ।

सामायारी (सामाचारी)

३५६

अध्ययन २६ : श्लोक ५१-५२

५१—पारियकाउस्सग्गो

वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
तवं संपडिवज्जेत्ता'
करेज्ज सिद्धाण संघवं ॥

पारित-कायोत्सगं:

बन्दिता ततो गुरुम् ।
तपः संप्रतिपद्य
कुर्यात् सिद्धानां संस्तवम् ॥

५१—कायोत्सगं पारित होने पर मुनि
गुरु को बन्दना करे । फिर तप को स्वीकार
कर सिद्धों का संस्तव (स्तुति) करे ।

५२—एसा

सामायारी
समासेण वियाहिया ।
जं चरित्ता बहु जीवा
तिण्णा संसारसागरं ॥
—ति बेमि ।

एसा सामाचारी

समासेन व्याख्याता ।
यां चरित्वा बहवो जीवाः
तीर्णाः संसार-सागरम् ॥
—इति ब्रवीमि ।

५२—यह सामाचारी मैंने संक्षेप में कही
है । इसका आचरण कर बहुत से जीव संसार-
सागर को तर गए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सत्तावीसद्वयं अद्वयवर्णः
खलुकिञ्च

सप्तविंशद्वयवर्णः
खलुकीय

आस्तुत्त्व

इस अध्ययन में खलुंक (दुष्ट बेल) को उद्घण्टता के माध्यम से अविनीत की उद्घण्टता का चित्रण किया गया है, इसलिए इसका नाम 'खलुंकिज'—'खलुंकीय' है।

इस ग्रन्थ के प्रथम अध्ययन में विनीत और अविनीत के स्वरूप की व्याख्या की गई है। विनीत को पग-पग पर सम्पत्ति मिलती है और अविनीत को विपत्ति। अनुशासन विनय का एक अंग है। भगवान् महावीर के शासन में अनुशासन की शिक्षा-दीक्षा का बहुत महत्त्व रहा है। आत्मानुशासन अध्यात्म का पहला सोपान है। जो आत्म-शासित है वही मोक्ष-मार्ग के योग्य है। जो शिष्य अनुशासन की अवहेलना करता है, उसका न इहलोक सधता है और न परलोक।

आन्तरिक अनुशासन में प्रवीण व्यक्ति ही बाह्य अनुशासन को क्रियान्वित कर सकता है। जिसकी आन्तरिक वृत्तियाँ अनुशासित हैं उसके लिए बाह्य अनुशासन, चाहे फिर वह कितना ही कठोर क्यों न हो, सरल हो जाता है।

यह अध्ययन प्रथम अध्ययन का ही पूरक अंश है। इसमें अविनीत शिष्य के अविनय का यथार्थ चित्रण किया गया है और उसकी 'खलुंक' (दुष्ट बेल) से तुलना की गई है—

“दुष्ट बेल शकट और स्वामी का नाश कर देता है, यत्किंचित् देख कर संक्रस्त हो जाता है, जुए और चाबुक को तोड़ डालता है और विपथगामी हो जाता है।”^१

“अविनीत शिष्य खलुंक जैसा होता है। वह दंश-मशक की तरह कट देने वाला, जलोक की तरह गुरु के दोष ग्रहण करने वाला, वृश्चिक की तरह वषण-कण्टकों से बौधने वाला, असहिष्णु, आलसी और गुरु के कथन को न मानने वाला होता है।”^२

“वह गुरु का प्रत्यन्तीक, चारित्र में दोष लगाने वाला, असमाधि उत्पन्न करने वाला और कलह करने वाला होता है।”^३

“वह पिशुन, दूसरों को तपाने वाला, रक्षस्य का उदघाटन करने वाला, दूसरों का तिरस्कार करने वाला, भ्रमण-धर्म से सिन्न होने वाला और मायावी होता है।”^४

१—उत्तराध्ययन निर्वृत्ति, पाया ४८६ :

अवशाकी उत्तमओ जीतनुमंसं तुत्तमंसो अ ।
उप्पहविप्पहमासी एष खलुंका भवे गोणा ॥

२—वही, पाया ४९२ :

देसमसगस्समाणा जलुपकाविष्णुपसमा ष जे हुत्ति ।
ते किर होत्ति खलुंका तिक्कम्मिउपंमहविभा ॥

३—वही, पाया ४९३ :

जे किर गुहुरिगीआ सख्खा अवमाहिंकारमा पावा ।
अहिणरणकाराअप्पा जिणवयणे ते किर खलुंका ॥

४—वही, पाया ४९४ :

पिड्डणा परोसवावी भिन्नरहस्सा परं परिअवत्ति ।
मिज्जिअजिज्जा य सदा जिणवयणे ते किर खलुंका ॥

सत्तावीसद्वयं अज्ज्ञयणं : सप्तविंश अभ्ययन

खलुंकिज्जं : खलुंकीय

१- थरे गणहरे गग्गे
मुणो आसि विसारण ।
आइण्णं गणिभावम्मि
समाहि पडिसंघण ॥

२- वहणे वहमाणस्स
कन्तारं अइवत्तई ।
जाण वहमाणस्स
संसारा अइवत्तई ॥

३- खलुंके जो उ जाएइ
विहम्माणो किलिस्सई ।
असमाहि च वेएइ
तांतओ य से भज्जई ॥

४- एगं डसइ पुच्छंमि
एगं विन्धइऽभिवक्खणं ।
एगो भंजइ समिलं
एगो उप्पहपट्ठिओ ॥

५- एगो पडइ पासेणं
निवेसइ निवज्जई ।
उक्कुदइ उप्पिडई
सट्ठे बालगवी वए ॥

सस्कृत छाया
स्थविरो गणजरो गार्ग्यः
मुनिरासीह विशारदः ।
आकीर्णो गणि-भावे
समाधि प्रतिसंघसे ॥

वहने वहमानस्य
कान्तारमतित्वते ।
योगे वहमानस्य
संसाराऽतिवन्तते ॥

खलुंको यस्तु योजयति
विघ्नं क्लिश्यति ।
असमाधि च वेदयति
तोत्रकं च तस्य भज्यते ॥

एकं वशीतं पुच्छे
एकं विप्रत्यभोक्षणम् ।
एको भनक्ति समिलं
एक उत्पत्त्य-प्रस्थितः ॥

एकः पतति पाशेन
निविशति निपद्यते ।
उत्कूर्वते उत्प्लवते
शठः बालगवीं व्रजेत् ॥

हिन्दी अनुवाद

१- एक गर्ग नामक मुनि हुआ । वह
स्थविर, गणधर और शास्त्र विशारद था । वह
गुणों से आकीर्ण, गणी पद पर स्थित होकर
समाधि का प्रतिसंधान करता था ।

२- वाहन को वहन करते हुए बेल के
अरण्य स्वयं उल्लंघित हो जाता है । वैसे ही
योग को वहन करते हुए मुनि के संसार स्वयं
उल्लंघित हो जाता है ।

३- जो अयोग्य बेलों का जोतता है,
वह उनको आहत करता हुआ क्लेश पाता
है । उसे असमाधि का संवेदन होता है और
उसका बाहुक टूट जाता है ।

४- वह कूट हुआ बाहुक किसी एक
की पूँछ को काट देता है और किसी एक को
बार-बार बीधता है । तब कोई अयोग्य बेल
जुए की कील की तीड देता है और कोई
उत्पत्त्य में प्रस्थान कर जाता है ।

५- कोई एक पाश से गिर पड़ता है,
कोई बैठ जाता है तो कोई लेट जाता है ।
कोई कूटता है, कोई उछलता है तो कोई शठ
तुरण गाय की ओर भाग जाता है ।

१. बाह्वमाणस्स (अ, छ०) ; वहणमाणस्स (ञ०) ।

२. किकामाई (इ०) ; किकिस्सई (इ० पा०) ।

स्वविर गणधर गार्ग्य मुदु, समाधि-सम्पन्न और आधारवान् गणो थे। जब उन्होंने देखा कि उनके सारे शिष्य अविनीत, उद्धण्ड और उच्छ्वल हो गए, तब आत्म-भाव से प्रेरित हो, शिष्य-समुदाय को छोड़, वे अकेले हो गए। आत्म-निष्ठ मुनि के लिए यही कर्तव्य है। जो शिष्य-सम्पदा समाधि में सहायक होनी है वही गुरु के लिए आवेय है, अनुशासनीय है और जो समाधि में बाधक बनती है वह त्याज्य है, अवाञ्छनीय है।

सामुदायिकता साधना की समृद्धि के लिए है। वह लक्ष्य की पूर्ति के लिए सहायक हो तो उसे अंगीकार किया जाता है और यदि वह बाधक बनने लगे तो साधक स्वयं अपने को उससे मुक्त कर लेता है। यह लक्ष्य सदा से मान्य रहा है। यह अध्ययन उसी परम्परा की ओर संकेत करता है।

६—माई मुदण पडइ
कुढे गच्छइ पडिप्पहं ।
'मयलक्खेण चिट्ठई'^१
वेगेण य पहावई ॥

मायी मूर्णा पतति
कुढो गच्छति प्रतिपथम् ।
मृत-लक्षणे तिष्ठति
वेगेन च प्रधावति ॥

६—कोई धूल बेल गिर को निडाल बना
कर लुट जाता है तो कोई क्रुद्ध होकर पीछे
को और चलता है । कोई मृतक-सा बन कर
गिर जाता है तो कोई वेग से दौड़ता है ।

७—छिन्नाले छिन्दइ सेक्कि
दुदन्तो भंजए जुगं ।
से वि य सुस्सुयाइत्ता^२
उज्जाहिता^३ पलायए ॥

'छिन्नाले' छिनति 'सोह्लि'
दुर्बान्तो भनक्ति युगम् ।
सोपि च सूक्ष्म
उत्थाय पलायते ॥

७—छिन्नाल वृषभ रास को छिन्न-भिन्न
कर देता है, दुर्बान्त होकर जाए को तोड़ देता
है और सौ-सौ कर बाहन को छोड़ कर भाग
जाता है ।

८—खलुंका जारिसा जोज्जा
दुसीसा वि द्दु तारिसा ।
जोइया धम्मजाणम्मि
भजन्ति धिइदुब्बला ॥

खलुंका याटना योज्याः
कुशिक्ष्याः अपि खलुताट्ठनाः ।
योजिता धर्म-याने
भज्यन्ते धृति-दुर्बलाः ॥

८—जुते हुए अयोध बेल जैसे बाहन
को भन्न कर देते हैं, वैसे ही दुर्बल धृति वाले
शिष्यों को धर्म-यान में जोत दिया जाता है
तो वे उसे भन्न कर डालते हैं ।

९—इड्ढीमारविए एगे
एगेऽत्थ रसमारवे ।
सायमारविए एगे
एगे मुचिरकोहणे ॥

ऋद्धि-गौरविक एकः
एकोत्र रस-गौरवः ।
सात-गौरविक एकः
एकः मुचिर-क्रोधनः ॥

९—कोई शिष्य ऋद्धि का गौरव करता
है तो कोई रस का गौरव करता है, कोई
सातों का गौरव करता है तो कोई चिरकाल
तक क्रोध रखने वाला होता है ।

१०—भिक्षालसिए एगे
एगे ओमाणभोरुए थद्वे ।
एगं च^४ अणुसासम्मी
हेऊहि कारणेहि य ॥

भिक्षालस्यिक एकः
एकोऽवमान-भोरुः स्तब्धः ।
एकं च अनुशास्ति
हेतुभिः कारणेऽव ॥

१०—कोई भिक्षाचरी में आलस्य करता
है तो कोई अवमान-भीष और अहंकारी होता
है । किसी को गुरु हेतुओं व कारणों द्वारा
अनुशासित करते हैं—

१. पल्लवं (पल्ल) ते न चिट्ठिवा (इ० पा०) ।

२. सुस्सुयता (अ) ।

३. उज्जुहिता (आ, इ०, छ०) ।

४. × (अ) ।

११—सो वि अन्तरासिल्लो
दोसमेव पकुव्वई^१ ।
आयरियाणं तं वयणं
पडिकूलेइ अभिक्खणं ॥

सोप्यन्तर-आवाधान्
दोषमेव प्रकरोति ।
आचार्याणां तह वचनं
प्रतिकूल्यस्यभीषजम् ॥

११—तब वह बीच में ही बोल उठता है, मन में द्वेष ही प्रकट करता है तथा बार-बार आचार्य के वचनों के प्रतिकूल आचरण करता है ।

१२—न सा ममं वियाणाइ
न वि^२ सा मज्झ दाहिई ।
निगया होहिई मन्ने
साहू अन्नोत्थ वञ्चउ ॥

न सा मां विजानाति
नापि सा मह्यं दास्यति ।
निर्गता भविष्यति मन्ये
साधुरन्योऽत्र व्रजतु ॥

१२—(गुरु प्रयोजनवश किसी श्राविका से कोई वस्तु लाने को कहे, तब वह कहता है,) वह मुझे नहीं जानती, वह मुझे नहीं देगी, मैं जानता हूँ, वह घर से बाहर गई होगी । इस कार्य के लिए मैं ही क्यों, कोई दूसरा साधु चला जाए ।

१३—पेसिया^३ पलिउंचन्ति
ते परियन्ति समन्तओ ।
रायवेदि^४ व मन्नन्ता
करेन्ति मिउडि मुहे ॥

प्रेषिताः परिकुञ्चन्ति
ते परियन्ति समस्ततः ।
राज-वेष्टिभिश्च मन्यमानाः
कुर्वन्ति भृकुटि मुहे ॥

१३—किसी कार्य के लिए उन्हें भेजा जाता है और वह कार्य किए बिना ही लौट आते हैं । पृथक् पर कहते हैं—उस कार्य के लिए आपने हमसे कब कहा था ? वे चारों ओर घूमते हैं, किन्तु गुरु के पास कभी नहीं बैठते । कभी गुरु का कहा कोई काम करते हैं तो उसे राजा की बेगार की भाँति मानते हुए मुँह पर भुट्टी तान लेते हैं—मुँह को सँकोट लेते हैं ।

१४—वाइया संगहिया चेव
'भत्ताणे य'^५ पोसिया ।
जायपक्खा जहा हंसा
पक्कमन्ति विसोदिसि ॥

वाचिताः संगृहीताश्चैव
भक्त-पानेन च पोषिताः ।
जात-पक्षा यथा हंसा
प्रक्रमन्ति विशो विशम् ॥

१४—(आचार्य सोचते हैं) मैंने उन्हें पढ़ाया, संगृहीत (दीक्षित) किया, भक्त-पान से पोषित किया, किन्तु कुछ योग्य बनने पर ये बेसे ही बन गए हैं, जैसे पंख आने पर हंस विभिन्न दिशाओं में प्रक्रमण कर जाते हैं—दूर-दूर उड़ जाते हैं ।

१५—अह सारही विचिन्तेइ^६
खलुकेहि समागओ ।
कि मज्झ दुइसीसेहि
अप्पा मे अवसीयई ॥

अथ सारथिचिन्तयति
खलुकेः श्रमागतः ।
कि मम कुष्ट-शिष्यः
आत्मा मेजसीवति ॥

१५—कृषिप्यों द्वारा खिन्न होकर सारथि (आचार्य) सोचते हैं—इन दुष्ट शिष्यों से मुझे क्या ? इनके संसर्ग से मेरी आत्मा अवसन्न—व्याकुल होती है ।

१. पमासए (वृ० पा०) ।

२. व (व) ।

३. पोसिया (वृ० पा०) ।

४. राधाविट्ठ (व) ।

५. अल्लपाणेण (अ, आ, इ) ।

६. हि चिन्तेइ (अ) ।

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

३६८

अध्ययन २७ : श्लोक १६-१७

१६—जारिसा^१ मम सीसाउ
तारिसा^२ गलिगद्दहा ।
गलिगद्दहे चइत्ताण^३
दहं परिगिण्हइ^४ तवं ॥

यादृशा मम शिष्यास्तु
तादृशा गलि-गर्दभाः ।
गलि-गर्दभान् त्यक्त्या
दहं परिगृह्णामि तपः ॥

१६—जैसे मेरे शिष्य हैं वैसे ही गली-
गर्दभ होते हैं। इन गली-गर्दभों को छोड़ कर
गर्माचार्य ने दहता के साथ तपः मार्ग को
अंगीकार किया ।

१७—मिउ मद्दवसंपन्ने
गम्भीरे सुसमाहिण् ।
विहरइ महि महप्पा
सोलभूएण अप्पणा ॥
—त्ति वेमि ।

मृदुमार्दव-सम्पन्नो
गम्भीरः सुप्रमाहितः ।
विहरति महीं महात्मा
शीलभूतिनात्मना ॥

१७—बह धुनु और मार्दव से सम्पन्न
गम्भीर और सुप्रमाहित महात्मा शील-सम्पन्न
होकर पृथ्वी पर विचरने लगा ।

—येसा मैं कहता हूँ ।

—इति ब्रवीमि ।

१. तारिसा (अ) ।

२. जारिसा (अ) ।

३. जइत्ताण (आ) ।

४. परिगिण्हइ (इ०) ; परिगिण्हइ (अ० पा०) ।

**अट्ठावीसहमं अङ्गवर्णः
मोक्षस्वमगगई**

**अष्टाविंश अध्यायनः
मोक्ष-मार्ग-गति**

आस्तुख

इस अध्ययन का नाम 'मोक्षमार्गगर्ह'—'मोक्षमार्ग-गति' है। मोक्ष प्राप्य है और मार्ग है उसकी प्राप्ति का उपाय। गति व्यक्ति का अपना पुरुषार्थ है। प्राप्य हो और प्राप्ति का उपाय न मिले तो वह प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार प्राप्य भी हो और प्राप्ति का उपाय भी हो किन्तु उसकी ओर गति नहीं होतो तो वह प्राप्त नहीं होता। मार्ग और गति—ये दोनों प्राप्त हों तभी प्राप्य प्राप्त हो सकता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप—इन चारों द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है; इसलिए इनके समवाय को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। ज्ञान-दर्शन ज्ञान-योग, भाक्त-योग (भक्ता) और कर्म-योग (चारित्र्य और तप) इन तीनों को संयुक्त रूप में मोक्ष का मार्ग मानता है, किसी एक को नहीं। (३६.१० २) इस चतुरंग मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

चौथे से चौदहवें श्लोक तक ज्ञान-योग का निरूपण है—ज्ञान और श्रय का प्रतिपादन है।

पन्द्रहवें से इकतीसवें श्लोक तक भक्ता-योग का निरूपण है।

बचोसवें से चौसीसवें श्लोक तक कर्म-योग का निरूपण है।

पचासवें श्लोक में इन योगों के परिणाम बतलाए गए हैं।

मोक्ष-प्राप्त का पहला साधन ज्ञान है। ज्ञान पाँच है—मति, श्रुति, अर्वाधि, मनःपर्यव और केवल। ज्ञान के विषय हैं—द्रव्य, गुण और पर्याय। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव—ये छह द्रव्य हैं। गुण और पर्याय अनन्त हैं।

मोक्ष-प्राप्ति का दूसरा साधन दर्शन है। उसका विषय है तथ्य की उपलब्धि। वे नौ हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। दर्शन को दस रुधियों में विभक्त किया गया है। यह विभाग स्वानां (१०।७।५१) और प्रज्ञापना (प्रथम पद) में भी मिलता है। यह विभाग यह है—

- | | |
|--------------|------------------|
| १—निसंगरुचि, | ६—अभिगमरुचि, |
| २ उपदेशरुचि, | ७—विस्ताररुचि, |
| ३—आज्ञारुचि, | ८—क्रियारुचि, |
| ४—सूत्ररुचि, | ९—संक्षेपरुचि और |
| ५—बीजरुचि, | १०—धर्मरुचि। |

मोक्ष-प्राप्ति का तीसरा साधन चारित्र्य—आचार है। वे पाँच हैं :

- १—सामायिक चारित्र्य,
- २—छेदोपस्थापनीय चारित्र्य,
- ३—परिहार-विशुद्धि चारित्र्य,
- ४—सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र्य और
- ५—यथारुथात चारित्र्य।

मोक्ष-प्राप्ति का चौथा साधन तप है। वह दो प्रकार का है—बाह्य और आभ्यन्तर। प्रत्येक के छह-छह विभाग हैं।

अट्ठावीसहमं अङ्गप्रवर्णः : अष्टविंश अध्यायः

मोक्षमार्गगई : मोक्ष-मार्ग-गति

मूल
१—मोक्षमार्गगई तच्चं
मुण्ह जिणभासियं ।
चउकारणसंजुत्तं
नाणदंसणलक्खणं ॥

संस्कृत छाया
मोक्ष-मार्ग-गति तच्छ्यां
श्रुत जिन-भाषिताम् ।
चतुष्कारण-संयुक्तां
ज्ञान-दर्शन-लक्षणाम् ॥

हिन्दी अनुबाव
१—चार कारणों से संयुक्त, ज्ञान-दर्शन,
लक्षण वाली जिन-भाषित मोक्ष-मार्ग की गति
को मुता ।

२—नाण च दंसणं चैव
चरित्तं च तवो तहा ।
एसं मग्गो त्ति पन्नत्तां
जिण्हि वरदंसिहि* ॥

ज्ञानं च दर्शनं चैव
चरित्रं च तपस्तथा ।
एष मार्ग इति प्रज्ञप्तः
जिनवर-दर्शभिः ॥

२—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—यह
मोक्ष-मार्ग है, ऐसा वरदर्शी अर्हन्तों ने प्रकृषित
किया ।

३—नाण च दंसणं चैव
चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्गमणुपत्ता
जोवा गच्छन्ति सोग्गइ ॥

ज्ञानं च दर्शनं चैव
चरित्रं च तपस्तथा ।
एनं मार्गं मनुप्राप्ता
जोवा गच्छन्ति मुगतिम् ॥

३—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—इस
मार्ग का पालन करने वाले जीव मुक्ति में
जाते हैं ।

४—तत्थ पंचविहं नाणं
मुय आभिनिबोहिणं ।
ओहीनाणं तइयं
मणनाणं च केवलं ॥

तत्र पंचविधं ज्ञानं
श्रुतमाभिनिबोधिकम् ।
अवधिज्ञानं तुतीयं
मनोज्ञानं च केवलम् ॥

४—उनमें ज्ञान पाँच प्रकार का है—
श्रुत ज्ञान, आभिनिबोधिक ज्ञान, अवधि ज्ञान,
मनः ज्ञान और केवल ज्ञान ।

५—एयं पंचविहं नाणं
दब्बाणं य गुणाणं य ।
पज्जवाणं च सज्जेसि
नाणं नाणीहि देसियं ॥

एतन् पंचविधं ज्ञानं
द्रव्याणां च गुणानां च ।
पर्यवाणां च सब्बा
ज्ञानं ज्ञानिभिर्देसितम् ॥

५—यह पाँच प्रकार का ज्ञान सर्व द्रव्य,
गुण और पर्यायों का अवबोधक है—ऐसा
ज्ञानियों ने बताया है ।

१. एय (अ) ।

२. सज्जेसिहि (अ) ।

३. एव* (अ) ।

दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना चारित्र नहीं आता । चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता । (श्लो० ३०)

ज्ञान से तत्त्व जाने जाते हैं ।

दर्शन से उन पर श्रद्धा होती है ।

चारित्र से आस्रव का निरोध होता है ।

तप से शोधन होता है । (श्लोक ३५)

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में इन चार मार्गों का निरूपण है । जब आत्म-शोधन पूर्ण होता है तब जीव सिद्ध-गति को प्राप्त हो जाता है ।

सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के ग्यारहवें अध्ययन का नाम 'मार्गाध्ययन' है । उसमें भी मोक्ष के मार्गों का निरूपण है ।

उत्तरञ्जयणं (उत्तराध्ययन)

३७४

अध्ययन २८ : श्लोक ६-११

६—गुणाणमासओ दव्वं
एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु
उभओ^१ अस्सिया भवे ॥

गुणानामाधयो द्रव्यं
एक द्रव्याश्रिता गुणाः ।
लक्षणं पर्यवाणं तु
उभयोराश्रिता भवेयुः ॥

६—जो गुणों का आश्रय होना है, वह द्रव्य है । जो किसी एक द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण होते हैं । द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहना पर्याय का लक्षण है—जो द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहते हैं, वे पर्याय होते हैं ।

७—धम्मो अहम्मो आगासं
कालो पुगलजन्तवो ।
एस लोको ति पन्तो
जिणेहि वरदंसिहि ॥

धर्मोऽधर्म आकाशं
कालः पुगल-जन्तवः ।
एष लोक इति प्रज्ञः
जिनैर्वर-वशिभिः ॥

७—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव—ये छह द्रव्य हैं । यह षट्-द्रव्यात्मक जो है वही लोक है—ऐसा वरदर्शी अर्हन्तो ने प्रकृत किया है ।

८—धम्मो अहम्मो आगासं
दव्वं इक्खिमाहिंयं ।
अणन्ताणि य दव्वाणि
कालो पुगलजन्तवो ॥

धर्मोऽधर्म आकाशं
द्रव्यमेकैकमाख्यातम् ।
अनन्तानि च द्रव्याणि
कालः पुगल-जन्तवः ॥

८—धर्म, अधर्म, आकाश—ये तीन द्रव्य एक-एक हैं । काल, पुद्गल और जीव ये तीन द्रव्य अनन्त-अनन्त हैं ।

९—गइलक्खणो उ^२ धम्मो
अहम्मो ठाणलक्खणो ।
भायणं सव्वदव्वाणं
नहं ओगाहलक्खणं ॥

गति-लक्षणस्तु धर्मः
अधर्मः स्थान-लक्षणः ।
भाजनं सर्व-द्रव्याणां
नभोऽवगाह-लक्षणम् ॥

९—धर्म का लक्षण है गति, अधर्म का लक्षण है स्थिति और आकाश सर्व द्रव्यों का भाजन है । उनका लक्षण है अवकाश ।

१०—वत्तणालक्खणो कालो
जीवो उवओगलक्खणो ।
नाणेणं दंसणेणं च
सुहेण य दुहेण य ॥

वर्तना-लक्षणः कालः
जीव उपयोग-लक्षणः ।
ज्ञानेन दर्शनेन च
सुखेन च दुःखेन च ॥

१०—वर्तना काल का लक्षण है । जीव का लक्षण है उपयोग । वह ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से जाना जाता है ।

११—नाणं च दंसणं चैव
चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य
एयं जीवस्स लक्खणं ॥

ज्ञानं च दर्शनं चैव
चरित्रं च तपस्तथा ।
वीर्यमुपयोगश्च
एतज्जीवस्य लक्षणम् ॥

११—ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग—ये जीव के लक्षण हैं ।

१. उभओ (अ) ।

२. य (अ) ।

१२—सहस्रधारउज्जोओ

पहा 'छायातवे इ वा'¹ ।

वण्णरसगन्धपासा

पुग्गलानं तु लक्षणं ॥

शब्दान्धकार उज्जोतः

प्रभाच्छायाऽऽतप इति वा ।

वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शः

पुद्गलानां तु लक्षणम् ॥

१२—शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पुद्गल के लक्षण हैं ।

१३—एगत्तं च पुहत्तं² च

संखा संठाणमेव य ।

संजोगा य विभागा य

पज्जवाणं तु लक्षणं ॥

एकत्वं च पुण्यत्वं च

संख्या संस्थानमेव च ।

संयोगाश्च विभागाश्च

पर्यङ्गानां तु लक्षणम् ॥

१३—एकत्व, पुण्यत्व, संख्या, संस्थान, संयोग और विभाग—ये पर्यायों के लक्षण हैं ।

१४—जीवाजीवा य बन्धो य

पुण्णं पावासवो तथा ।

संवरो निज्जरा मोक्खो

सन्तेए तहिया नव ॥

जीवाऽजीवाश्च बन्धश्च

पुण्यं पापाश्चवी तथा ।

सम्बरो निर्जरा मोक्षः

सन्त्येते तथ्या नव ॥

१४—जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आश्रय, संबरो, निर्जरा और मोक्ष—ये नौ तथ्य (तत्त्व) हैं ।

१५—तहियाणं तु भावाणं

'सम्भावे उवएसणं ।

भावेणं सहहन्तस्स

सम्मत्तं तं वियाहियं'³ ॥

तथ्यानां तु भावानां

सम्भावे उपवेशनम् ।

भावेन श्रुतद्वयतः

सम्यक्त्वं तद्व्याख्यातम् ॥

१५—द्वय तथ्य भावों के सद्भाव (वास्तविक अस्तित्व) के निरूपण में जो अन्तःकरण से श्रद्धा करता है, उसे सम्यक्त्व होता है । उस अन्तःकरण की श्रद्धा की ही भगवान् ने सम्यक्त्व कहा है ।

१६—निसग्गुवएसरुई

आणारुई मुत्तवीयरुईमेव ।

अभिगमवित्याररुई

किरियासंखेवधम्मरुई ॥

निसर्गोपवेश-रुचिः

आशा-रुचिः सूत्र-बीज-रुचिरेव ।

अभिगम-विस्तार-रुचिः

क्रिया-संज्ञेय-धर्म-रुचिः ॥

१६—बहु दस प्रकार का है—निसर्ग-रुचि, उपवेश-रुचि, आशा-रुचि, सूत्र-रुचि, बीज-रुचि, अभिगम-रुचि, विस्तार-रुचि, क्रिया-रुचि, संज्ञेय-रुचि और धर्म-रुचि ।

१७—भूयत्थेणाहिगया

जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।

सहसम्मुड्यासवसंवरो य⁴

रोएइ उ निसग्गो ॥

भूतार्थेनाधिपताः

जीवाऽजीवाश्च पुण्यं पापं च ।

स्व-सम्प्रत्ययाऽऽश्रय-संवरो च

रोक्षते तु निसर्गः ॥

१७—जो परोपदेश के बिना केवल अपनी आत्मा से उपजे हुए भूतार्थ (यथार्थ ज्ञान) से जीव, अजीव, पुण्य, पाप को जानता है और जो आश्रय और संबरो पर श्रद्धा करता है, वह निसर्ग-रुचि है ।

१. 'तवे इ वा (अ, ऋ०) ; 'सङ्घि वा (इ०) ।

२. पुहत्तं (उ) ।

३. सम्भावी (वेणी) वएसणं ।

भावेण उ सहहणा सम्मत्तं होति आहियं ॥ (ष० पा०) ।

४. व (अ) ।

उत्तरउभयर्ण (उत्तराव्ययन)

३७६

अध्ययन २८ : श्लोक १८-२२

१८—जो जिणदिट्ठे भावे
चउव्विहे सदहाइ सयमेव ।
एमेव^१ नऽन्नह ति य
निसगरुइ ति नायव्वो ॥

यो जिन-ट्टष्टान् भावान्
चतुर्विधान् श्रद्धधाति स्वयमेव ।
एवमेव तान्यथेति च
निसर्ग-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

१८—जो जिनेन्द्र द्वारा दृष्ट तथा द्रव्य,
क्षेत्र, काल और भाव से विरोधित पदार्थों पर
स्वयं ही—“यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है”—
ऐसी श्रद्धा रखना है, उसे निसर्ग-रुचि वाला
जानना चाहिए ।

१९—एए चेव उं भावे
उव्वट्ठे जो परेण सदहई ।
छउमत्थेण जिणेण व^२
उवएसइ ति नायव्वो ॥

एतान् चैव तु भावान्
उपविष्टान् यः परेण श्रद्धधाति ।
छद्मस्थेन जिनेन वा
उपदेश-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

१९—जो दूसरों—छद्मस्थ या जिन- के
द्वारा उपदेश प्राप्त कर, इन भावों पर श्रद्धा
करता है, उसे उपदेश-रुचि वाला जानना
चाहिए ।

२०—रागो दोसो मोहो
अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाग रायंतो
सो खलु आणारुइ नाम ॥

रागो दोषो मोहः
अज्ञानं यस्यापगतं भवति ।
आजयां रोचमानः
स खल्वज्ञा-रुचिर्नाम ॥

२०—जो व्यक्ति राग, द्वेष, मोह और
अज्ञान के दूर हो जाने पर वीतराग की आज्ञा
में रुचि रखना है, वह आज्ञा-रुचि है ।

२१—जो सुत्तमहिज्जन्तो
सुएण ओगाहई उ सम्मतं ।
अंणेण बाहियेण व^३
सो सुत्तरुइ ति नायव्वो ॥

यः सूत्रमधीयानः
श्रुतेनावगाहते तु सम्यक्त्वम् ।
अङ्गीने बाह्येन वा
स सूत्र-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२१—जो अंग-प्रतिष्ठा या अंग-वाक्य
सूत्रों को पढ़ता हुआ सम्यक्त्व पाता है, वह
सूत्र-रुचि है ।

२२—एणेण अणेमाइं
पयाइं जो पसरई उ सम्मतं ।
उदए व्व तेलविन्दु
सो बीयरुइ ति नायव्वो ॥

एकेतानेकानि
पदानि यन् प्रसरति तु सम्यक्त्वम् ।
उबके इव नेल-विन्दुः
स बीज-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२२—पानी में डाले हुए तेल की बूंद
की तरह जो सम्यक्त्व (रुचि) एक पद
(तत्त्व) में अनेक पदों में फैलता है, उसे
बीज-रुचि जानना चाहिए ।

१. एमेव (अ, ड, ह०) ।

२. डु (ऋ०) ।

३. व (ऋ०) ।

४. व (ऋ०) ।

मोक्षमार्ग-गति (मोक्ष-मार्ग-गति)

३७७

अध्ययन २८ : श्लोक २३-२८

२३—सो होइ अभिगमरुई
सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं ।
'एक्कारस अंगाड'^१
पइण्णमं^२ दिट्ठिवाओ य ॥

स भवति अभिगम-रुचिः
श्रुतज्ञानं येन अर्धतो दृष्टम् ।
एकादशाङ्गानि
प्रकीर्णकानि दृष्टि-वादश्च ॥

२३—जिसे प्यारह अंग, प्रकीर्णक और
दृष्टिवाद आदि श्रुत-ज्ञान अर्ध सहित प्राप्त है,
वह अभिगम-रुचि है ।

२४—दब्बाण सव्वभावा
सव्वपमाणेहि जस्स उवल्लभा ।
सव्वाहि नयविहीहि य
वित्थाररुइ त्ति नायव्वो ॥

द्रव्याणां सर्वभावाः
सर्वप्रमाणैर्यस्योपलब्धाः ।
सर्वेनय-विधिभिश्च
विस्तार-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२४—जिसे द्रव्यों के सब भाव, सभी
प्रमाणों और सभी नय-विधियों से उपलब्ध हैं,
वह विस्तार-रुचि है ।

२५—दंसणनाणचरित्ते
तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु^३ ।
जो किरियाभावरुई
सो खलु किरियारुई नाम ॥

दर्शन-ज्ञान-चरित्रो
तपो-विनये सत्य-समिति गुप्तियु ।
यः क्रिया-भाव-रुचिः
स खलु क्रिया-रुचिर्नाम ॥

२५—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय,
सत्य, समिति, गुति आदि क्रियाओं में जिसकी
वास्तविक रुचि है, वह क्रिया-रुचि है ।

२६—अणभिग्गहियकुट्ठि
सखेरुइ त्ति होइ नायव्वो ।
अविसारओ पवयणं
अणभिग्गहिआं य सेसेसु ॥

अनभिगृहीत-कुट्टिष्टिः
संक्षेप-रुचिरिति भवति ज्ञातव्यः ।
अविशारदः प्रवचने
अनभिगृहीतश्च शेषेषु ॥

२६—जो जिन-प्रवचन में बिशारद नहीं
है और अन्याय प्रवचनों का अभिज्ञ भी नहीं
है, किन्तु जिसे कुट्टिष्टि का आग्रह न होने के
कारण स्वल्प ज्ञान मात्र से जो तरव-श्रद्धा
प्राप्त होती है, उसे संक्षेप-रुचि जानना
चाहिए ।

२७—जो अत्थिकायधम्मं
सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च ।
सद्दह्द जिणाभिहियं
सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो ॥

योऽस्तिकाय-धर्मं
श्रुत-धर्मं खलु चरित्र-धर्मं च ।
अदृष्टाति जिनाभिहितं
स धर्म-रुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

२७—जो जिन-प्रकृषित अस्तिकाय-धर्मं,
श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म में श्रद्धा रखता है,
उसे धर्म-रुचि जानना चाहिए ।

२८—परमत्थसंघवो वा
सुदिइपरमत्थसेवणा वा वि ।
वावन्नकुदंसणवज्जणा
य सम्मतसद्दहणा ॥

परमार्थ-संस्तवो वा
सुदृष्ट-परमार्थ-सेवनं वापि ।
व्यापन्न-कुददर्शन-वर्जनं
च सम्यक्त्व-श्रद्धानम् ॥

२८—परमार्थ का परिचय, जिन्होंने
परमार्थ को देखा है उसकी सेवा, व्यापन्न-
दर्शनी (सम्यक्त्व से श्रद्धा) और कुददर्शनी
व्यक्तियों का वर्जन, यह सम्यक्त्व का
श्रद्धान है ।

१. इक्कारसंगाहं (व, ख०) ।

२. पइण्णधं (अ) ।

३. खण्वं (अ) ।

२९—नत्थि चरित्तं सम्मतविहूणं
दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मतचरित्ताइं
जुगवं पुव्वं व' सम्मतं ॥

नास्ति चरित्रं सम्यक्त्व-विहीनं
वशने तु भक्त्ययम् ।
सम्यक्त्व-चरित्रे
युगपत् पुवं वा सम्यक्त्वम् ॥

२९—सम्यक्त्व-विहीन चारित्र नहीं होता । वशने (सम्यक्त्व) में चारित्र की भजना (विकल्पर) है । सम्यक्त्व और चारित्र युगपत् (एक साथ) उत्पन्न होते हैं और जहाँ वे युगपत् उत्पन्न नहीं होते, वहाँ पहले सम्यक्त्व होता है ।

३०—नादंसणिस्स नाणं
नाणेण विष्णा न हुत्ति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मांखो
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥

नाऽदर्शनिनो ज्ञानं
ज्ञानेन विना न भवन्ति चरणगुणाः ।
अगुणिनो नास्ति मोक्षः
नास्ति अमोक्षस्य निर्वाणम् ॥

३०—अदर्शनी (अमम्यक्त्वा) के ज्ञान (सम्यग् ज्ञान) नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नहीं होते । अगुणी व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती । अमृत् का निर्वाण नहीं होता ।

३१—निस्संखिय निक्कंखिय
निव्वित्तिगिच्छा अमूढदिट्ठो य ।
उव्वूह थिरीकरणे
वच्छल्ल पभावणे अट्ट ॥

निःशङ्कित-निष्काङ्क्षितं
निर्विचिकित्सं अमूढ-दृष्टिश्च ।
उपबृंह-स्थिरीकरणं
वात्सल्य-प्रभावनमष्ट ॥

३१—निःशंका, निष्कांक्षा, निर्विचिञ्चिता, अमूढ-दृष्टि, उपबृंहण (गम्यम् वशने की पुष्टि), स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना—ये आठ सम्यक्त्व के अंग हैं ।

३२—सामादयत्थं पढमं
छेओवट्ठावणं भवे बोयं ।
परिहारविसुद्धीयं
सुहुमं तह संपरायं च ॥

सामायिकमत्र प्रथमं
छेदोपस्थापनं भवेद्वितीयम् ।
परिहार-विशुद्धिकं
सूक्ष्मं तथा सम्परायं च ॥

३२—चारित्र पाँच प्रकार के होते हैं—
पहला—सामायिक, दूसरा—छेदोपस्थापनीय, तीसरा—परिहार-विशुद्धि, चौथा—सूक्ष्म-सम्पराय और ।

३३—अकसायं अहक्कायं
छउमत्थस्स जिणस्स वा ।
एयं चयरित्तकरं
चारित्तं होइ आहियं ॥

अकथायं यथाख्यातं
छद्मस्थस्य जिनस्य वा ।
एतत् चय-रित्तकरं
चारित्रं भवत्याख्यातम् ॥

३३—पाँचवाँ-यथाख्यात-चारित्र कथाय रहित होता है । वह छद्मस्थ और केवली दोनों के होता है । ये सभी चारित्र कर्म-संबन्धकी रित्त करते हैं, इसीलिए इन्हें चारित्र कहा जाता है ।

३४—तवो य दुविहो वृत्तो
बाहिरवभन्तरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वृत्तो
एवमवभन्तरो तवो ॥

तपसश्च द्विविधमुक्तं
बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
बाह्यं धर्माविधमुक्तं
एवमाभ्यन्तरं तपः ॥

३४—तप दो प्रकार का कहा है—बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य-तप छह प्रकार का कहा है । इसी प्रकार आभ्यन्तर-तप भी छह प्रकार का है ।

१. च (अ. उ., ख. ०) ।

२. सामादयं च (उ., ख. ०) ।

३५—नाणेण जाणई भावे
दंसणेण य सदहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ^१
तवेण परिसज्झई ॥

ज्ञानेन जानाति भावान्
दंसनेन च श्रद्धात्ते ।
चरित्रेण निगृह्णाति
तपसा परिशुध्यति ॥

३५—जीव ज्ञान से पदार्थों को जानता
है, दंसोम से श्रद्धा करता है, चारित्र से निग्रह
करता है और तप से शुद्ध होता है ।

३६—खवेत्ता पुव्वकम्माडं
संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा
पक्कमन्ति महिसिणो ॥
—त्ति वेमि ।

अपयित्वा पूर्व-कर्माणि
संयमेन तपसा च ।
सर्व-दुःख-प्रहाणार्थाः
प्रकामन्ति महर्षयः ॥
—इति अबोमि ।

३६—सर्व दुःखों से मुक्ति पाने का लक्ष्य
रखने वाले महर्षि संयम और तप के द्वारा
पूर्व-कर्मों का क्षय कर सिद्धि को प्राप्त होते हैं ।
—ऐसा मैं कहता हूँ ।

संगुणतीसहस्रं अज्ज्ञवर्णः :
सम्मतपरक्रमे

एकोनत्रिंश अध्ययनः :
सम्यक्त्व-पराक्रम

आस्तुष्ट

इस अध्ययन का नाम 'सम्मतपरक्रमे'—'सम्यक्त्व-पराक्रम' है। इससे सम्यक्त्व में पराक्रम करने की दिशा मिलती है, इसलिए यह 'सम्यक्त्व-पराक्रम' गुण-निष्पन्न नाम है। नियुक्तिवार के अनुसार 'सम्यक्त्व-पराक्रम' आदि पद में है, इसलिए इसका नाम 'सम्यक्त्व-पराक्रम' हुआ है।^१ उनके अभिमत में इसका गुण-निष्पन्न नाम 'अप्रमाद-भूत' है।^२ कुछ आचार्य इसे 'वीतराग-भूत' भी कहते हैं।^३

प्रस्तुत अध्ययन में ७१ प्रश्न और उत्तर हैं। उनमें साधना-पद्धति का बहुत सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। साधना के सूत्रों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१—संवेग (१)^४

२—निर्वेद (२)

३—धर्म-श्रद्धा (३)

४—शुश्रूषा—सेवा (४), वैद्यावृत्त्य (४३)

५—आलोचना (५)

६—निन्दा (६)

७—गर्ह (७)

८—आवश्यक-कर्म—

सामायिक (८), चतुर्विंशतिस्तव (९), वन्दना (१०), प्रतिक्रमण (११), कायोत्सर्ग (१२), प्रत्याख्यान (१३), स्तव-स्तुति (१४)

९—प्रायश्चित्त (१५)

१०—क्षमा-याचना (१७)

११—स्वाध्याय (१८)—

वाचना (१९), प्रतिप्रश्न (२०), परिवर्तना (२१), अनुप्रेक्षा (२२), धर्म-कथा (२४), श्रुताराधना (२५), काल-प्रतिष्ठान (१५)

१२—मानसिक अनुशासन—

एकाग्र-मन-सन्निवेश (२५), मनो-गुप्ति (५३), मन-समाधारणता (५६), भाव-सत्यता (५०)

१—उत्तराध्ययन निष्ठुलि, भाषा ५०३ :

आयाणपण्येयं, सम्मतपरक्रमंति अशक्यं ।

२—बही, भाषा ५०६ :

सम्मतसप्यपाशो, इहमशक्यंभि बणिजो जेणं ।

तम्हेयं अशक्यं, भायब्बं अप्यमाव सुभं ॥

३—बही, भाषा ५०३ :

..... एते पुण्ण बीयरारतुयं ।

४—कोष्ठकों के अक्षर के अक्षर सूत्र सत्या के सूत्रक हैं ।

१३—वाथिक अनुशासन—

वचो-गुप्ति (५४), वचन-समाधारणता (५७)

१४—काथिक अनुशासन—

करण-सत्यता (५१), काय-गुप्ति (५५), काय-समाधारणता (५८)

१५—योग-सत्य (५३)

१६—कषाय-विजय—

क्रोध-विजय (६७), मान-विजय (६८), माया-विजय (६९), लोभ-विजय (७०), क्षान्ति (७६), मुक्ति (४७), आर्जव (४८), मार्दव (४९), वीतरागता (४५), राग, द्वेष और मिथ्यादर्शन-विजय (७१)

१७—सम्पन्नता—

सर्वगुण-सम्पन्नता (४४), ज्ञान-सम्पन्नता (५९), दर्शन-सम्पन्नता (६०), चारित्र्य-सम्पन्नता (६१)

१८—इन्द्रिय-निग्रह—

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह (६३), चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह (६३), घ्राणेन्द्रिय-निग्रह (६४), रसनेन्द्रिय-निग्रह (६५), स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह (६६)

१९—प्रत्याख्यान—

सम्भोग-प्रत्याख्यान (३३), उपधि-प्रत्याख्यान (३४), आह्वार-प्रत्याख्यान (३५), कषाय-प्रत्याख्यान (३६), योग-प्रत्याख्यान (३७), शरीर-प्रत्याख्यान (३८), सहाय-प्रत्याख्यान (३९), भक्त-प्रत्याख्यान (४०), सद्भाव-प्रत्याख्यान (४१)

३०—संयम (३६)

३१—तप (३०)

३२—विशुद्धि (३८)

३३—सुखासक्ति का त्याग (३९)

३४—अप्रतिबद्धता (३०)

३५—विवेकशयनाशन (३१)

३६—विनिवर्तना (३२)

३७—प्रतिरूपता (४२)

जिस प्रकार पातञ्जल योग-दर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, ईश्वर-प्रणिधान, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम के परिणाम बतलाए गए हैं^१, उसी प्रकार यहाँ संवेग आदि के परिणाम बतलाए गए हैं ।

संवेग के परिणाम—

(१) अनुत्तर धर्म-श्रद्धा की प्राप्ति ।

(२) अनुत्तर धर्म-श्रद्धा से तीव्र संवेग की प्राप्ति ।

(३) तीव्रतम (अनन्तानुबन्धी) क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय ।

(४) मिथ्यात्व-कर्म का अपुनर्बन्ध ।

(५) मिथ्यात्व-विशुद्धि ।

(६) उसी जन्म में या तीसरे जन्म में मुक्ति । (सू० ११)

निर्वेद के परिणाम—

- (१) काम-भोगों के प्राप्ति अनासक्त-भाव ।
- (२) इन्द्रियों के विषयों में विरक्ति ।
- (३) आरम्भ-परित्याग ।
- (४) संसार-मार्ग का विच्छेद और मोक्ष-मार्ग का स्वीकरण । (सू० २)

धर्म-ब्रह्मा के परिणाम

- (१) सुख-सुविधा के प्राप्ति विरक्ति ।
- (२) अनगार-धर्म का स्वीकरण ।
- (३) वेदन-स्वेदन आदि शारीरिक और संयोग-विषय आदि मानसिक दुःखों का उच्छेद ।
- (४) निर्बाध-सुख की प्राप्ति । (सू० ३)

गुरु और साधमिकों की सेवा के परिणाम—

- (१) विनय-प्रतिपत्ति—आवश्यक कर्तव्यों का पालन ।
- (२) अनाशान्तनशोकता—गुरुजनों की अवज्ञा आदि से दूर रहने की मनोवृत्ति ।
- (३) दुर्गाति का निरोध ।
- (४) गुण-आहिता, गुण-प्रकाशन, भक्ति और बहुमान की मनोवृत्ति का विकास ।
- (५) सुगति की ओर प्रयाण ।
- (६) विनय-हेतुक ज्ञान आदि की प्राप्ति ।
- (७) दूसरों की सेवा-धर्म में प्रवृत्त करना । (सू० ४)

आलोचना के परिणाम—

- (१) आन्तरिक शक्तियों की चिकित्सा ।
- (२) सरल मनोभाव की विशेष उपलब्धि ।
- (३) सौवर्तर विचारों से दूर रहने की क्षमता और पूर्व-संचित विकार के संस्कारों का विलय । (सू० ५)

आत्म-निन्दा के परिणाम—

- (१) पश्चात्ताप-पूर्ण मनोभाव ।
- (२) अभूत-पूर्व विशुद्धि की परिणाम-धारा का प्रादुर्भाव ।
- (३) मोह का विलय । (सू० ६)

आत्म-गर्हा के परिणाम—

- (१) अपने लिए अवज्ञा-पूर्ण वातावरण का निर्माण ।
- (२) अप्रशस्त आचरण से निवृत्ति ।
- (३) ज्ञान आदि के आवरण का विलय । (सू० ७)

सामायिक का परिणाम—

- (१) विषमता-पूर्ण मनोभाव (सावद्य प्रवृत्ति) की विरति । (सू० ८)

बहुविश्लि-स्तव का परिणाम—

- (१) दर्शन की विशुद्धि । (सू० ९)

वन्दना के परिणाम—

- (१) मोक्ष-गोत्र-कर्म का क्षय और उच्च गोत्र-कर्म का अर्जन ।
- (२) सौभाग्य—लोक-प्रियता ।
- (३) अनुल्लेखनीय आज्ञा को प्राप्ति ।
- (४) अनुकूल परिस्थिति । (सू० १०)

प्रतिक्रमण के परिणाम—

- (१) त्रुटि होने वाले वेदों का निरोध ।
- (२) चारित्र्य के धब्बों का परिमार्जन ।
- (३) आठ प्रवचन-माताओं के प्रति जागरूकता ।
- (४) अप्रयत्न—संयमलौक्यता ।
- (५) मानसिक निमलता । (सू० ११)

कायोत्सर्ग के परिणाम—

- (१) अलिप्ता का विशेषण ।
- (२) हृदय को स्वस्थता और भार-हीनता ।
- (३) प्रशस्त-ध्यान की उपलब्धि । (सू० १२)

प्रत्याख्यान का परिणाम—

- (१) आश्रय-निरोध । (सू० १३)

स्तव-स्तुति-मंगल के परिणाम—

- (१) बोधि-लाभ ।
- (२) अन्त क्रिया—मुक्ति ।
- (३) स्वर्ग-गमन । (सू० १४)

काल-प्रतिलेखना का परिणाम—

- (१) ज्ञानावरण कर्म का विलय । (सू० १५)

प्रायश्चित्तकरण के परिणाम—

- (१) पाप-कर्म का विशेषण ।
- (२) दोष-विशुद्धि ।
- (३) मार्ग और मार्ग-फल—ज्ञान को प्राप्ति ।
- (४) आचार और आचार-फल—आत्म-स्वतंत्रता की आराधना । (सू० १६)

ज्ञान-याचना के परिणाम—

- (१) आह्लाद-पूर्ण मनोभाव ।
- (२) सब के प्रति मैत्रीभाव ।
- (३) मन को निमलता ।
- (४) अमय । (सू० १७)

स्वाध्याय का परिणाम—

- (१) ज्ञानावरण कर्म का विलय । (सू० १८)

वाचना—अध्यापन के परिणाम—

- (१) निर्जरा—संस्कार-क्षय ।
- (२) श्रुत की अनाशातना—ज्ञान का विनय ।
- (३) सौध-धर्म का अवलम्बन—धर्म-परम्परा की अविच्छिन्नता ।
- (४) चरम साध्य की उपलब्धि । (सू० १६)

प्रतिप्रश्न के परिणाम—

- (१) सूत्र, अर्थ और तदुभय की विशुद्धि—संशय, विपर्यय आदि का निराकरण ।
- (२) काङ्क्षा—मोहनीय कर्म का विच्छेद । (सू० २०)

परावर्तना के परिणाम—

- (१) स्मृत की पुष्टि और विस्मृत की याद ।
- (२) व्यञ्जन-लब्धि—पदानुसारिणी बुद्धि का विकास । (सू० २१)

अनुप्रेक्षा के परिणाम—

- (१) दृढ़ कर्म का शिथिलीकरण, दीर्घकालीन कर्म-स्थिति का संक्षेपोकरण और सौत्र अनुभाव का मन्दीकरण ।
- (२) असातवेदनीय कर्म का अनुपपद्य ।
- (३) संसार से शीघ्र मुक्ति । (सू० २३)

धर्म-कथा के परिणाम—

- (१) निर्जरा ।
- (२) प्रवचन—धर्म-शासन की प्रभावना ।
- (३) कुशल-कर्म्मों का अर्जन । (सू० २३)

श्रुताराधना के परिणाम—

- (१) अज्ञान का क्षय ।
- (२) वलेश-हानि । (सू० २४)

मन को एकाग्र करने का परिणाम—

- (१) चित्त-निरोध । (सू० २५)

संयम का परिणाम—

- (१) अनाश्रव—आश्रव-निरोध । (सूत्र २६)

तप का परिणाम—

- (१) व्यवदान—कर्म-निर्जरा । (सू० २७)

व्यवदान के परिणाम—

- (१) अक्रिया—प्रवृत्ति-निरोध ।
- (२) सर्व दुःख-मुक्ति । (सू० २८)

सुख-स्पृहा त्यागने के परिणाम—

- (१) अनुसुक्त मनोभाव ।
- (२) अनुकम्पा-पूर्ण मनोभाव ।
- (३) प्रशान्तता ।

(४) शोक-रहित मनोभाव ।

(५) चारित्र्य को विकृत करने वाले मोह का विलय । (सू० २६)

अप्रतिबद्धता—मानसिक अनासक्ति के परिणाम—

(१) निःसंगता—निर्लेपता ।

(२) चिन्त को एकान्तता ।

(३) प्रतिपल अनासक्ति । (सू० ३०)

विविक्त शयनासन के परिणाम—

(१) चारित्र्य की सुरक्षा ।

(२) विविक्त-आहार—विकृति-रहित भोजन ।

(३) निस्पृहता ।

(४) एकान्त उभय ।

(५) कर्म-ग्रन्थि का मोक्ष । (सू० ३१)

विनिवर्त्तना- विषयों से मन को संतुष्ट करने के परिणाम—

(१) पापाचरण के प्रति अनुत्साह ।

(२) अशुभ संस्कारों के विलय का प्रयत्न ।

(३) संसार की पार-प्राप्ति । (सू० ३२)

संभोग (मंडली-भोजन) प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) परावलम्बन से मुक्ति ।

(२) प्रवृत्तियों का मोक्ष की ओर केन्द्रीकरण ।

(३) अपने लाभ में सन्तुष्टि और परलभ की ओर निस्पृहता ।

(४) दूसरी सुख-शय्या की प्राप्ति । (सू० ३३)

उपधि-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) प्रतिलेखना आदि के द्वारा होने वाली स्वाध्याय की क्षति से बचाव ।

(२) वस्त्र की अभिलाषा से मुक्ति ।

(३) उपधि के बिना होने वाले संकलेश का अभाव । (सू० ३४)

आहार-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) जीने के मोह से मुक्ति ।

(२) आहार के बिना होने वाले संकलेश का अभाव । (सू० ३५)

कषाय-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) कीर्तारागता ।

(२) सुख-दुःख में सम रहने की स्थिति की उपलब्धि । (सू० ३६)

योग-प्रत्याख्यान के परिणाम—

(१) स्थिरता ।

(२) नवीन कर्म का अग्रहण और पूर्वार्जित कर्म का विलय । (सू० ३७)

शरीर-प्रत्याख्यान के परिणाम—

- (१) आत्मा का पूर्णोदय ।
- (२) लोकाग्र-स्थिति ।
- (३) परम सुख की प्राप्ति । (सू० ३८)

सहाय-प्रत्याख्यान के परिणाम—

- (१) अकेलेपन को प्राप्ति ।
- (२) कलह आदि से मुक्ति ।
- (३) संयम, संवर और समाधि की विशिष्ट उपलब्धि । (सू० ३९)

भक्त-प्रत्याख्यान—अनशन का परिणाम—

- (१) जन्म-परम्परा का अन्तीकरण । (सू० ४०)

सद्भावना-प्रत्याख्यान—पूर्ण संवर के परिणाम—

- (१) अनिवृत्ति—मन-वचन और काया की प्रवृत्ति का सर्वथा और सर्वदा अभाव ।
- (२) अधाति-कर्म का विलय ।
- (३) सर्व दुःख-मुक्ति । (सू० ४१)

प्रतिरूपता अचेलता के परिणाम—

- (१) लाघव ।
- (२) अप्रमाद ।
- (३) प्रकट लिंग होना ।
- (४) प्रशस्त लिंग होना ।
- (५) विद्युद्ग सम्यक्त्व ।
- (६) सत्त्व और सामंति को प्राप्त करना ।
- (७) सर्वत्र विश्वसनीय होना ।
- (८) अप्रतिलेखना ।
- (९) जितेन्द्रियता ।
- (१०) विपुल तप सहित होना—परीषद्-सहृष्ट्य होना । (सू० ४२)

वैद्यावृत्त्य का परिणाम—

- (१) धर्म-शासन के सर्वोच्च पद तीर्थकरत्व की प्राप्ति । (सू० ४३)

सर्व-गुण सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) अपुनरावृत्ति—मोक्ष की प्राप्ति ।
- (२) शारीरिक और मानसिक दुःखों से पूर्ण मुक्ति । (सू० ४४)

कीतरागता के परिणाम—

- (१) स्नेह और पुष्पा के बन्धन का विच्छेद ।
- (२) प्रिय शब्द आदि इन्द्रिय-विषयों में विरक्ति । (सू० ४५)

क्षान्ति—सहिष्णुता का परिणाम—

- (१) परीषद्-विजय । (सू० ४६)

मुक्ति के परिणाम—

- (१) आकषिण्य ।
- (२) अर्ध-लुब्ध व्यक्तियों के द्वारा अस्पृष्टणीयता । (सू० ४७)

ऋजुता के परिणाम—

- (१) काया की सरलता ।
- (२) भावों की सरलता ।
- (३) भाषा की सरलता ।
- (४) अविसंवादन—अव्यंचना-वृत्ति । (सू० ४८)

मृदुता के परिणाम—

- (१) अनुद्धत मनोभाव ।
- (२) आठ मद-स्थानों पर विजय । (सू० ४९)

भाव-सत्य के परिणाम—

- (१) भाव-विशुद्धि ।
- (२) अहं-धर्म की आराधना ।
- (३) परलोक धर्म की आराधना । (सू० ५०)

करण-सत्य के परिणाम—

- (१) कार्यजा शक्ति की प्राप्ति ।
- (२) कथनी और करनी का सामंजस्य । (सू० ५१)

योग-सत्य का परिणाम—

- (१) मानसिक, वायिक और कायिक प्रवृत्ति की विशुद्धि । (सू० ५२)

मनो-गुप्ति के परिणाम—

- (१) रकाग्रता ।
- (२) संयम की आराधना (सू० ५३)

वचन-गुप्ति के परिणाम—

- (१) विकार-शून्यता या विचार-शून्यता ।
- (२) अध्यात्म-योग और ध्यान की प्राप्ति । (सू० ५४)

काय-गुप्ति के परिणाम—

- (१) संघर ।
- (२) पापाश्रव का निरोध । (सू० ५५)

मन-समाधारणा के परिणाम—

- (१) रकाग्रता ।
- (२) ज्ञान की विशिष्ट क्षमता ।
- (३) सम्यक्त्व की विशुद्धि और मिथ्यात्व का क्षय । (सू० ५६)

वचन-समाधारणा के परिणाम—

- (१) वायिक सम्यग्-दर्शन की विशुद्धि ।
- (२) सुलभ-बोधिता की प्राप्ति और दुर्लभ-बोधिता का क्षय । (सू० ५७)

काय-समाधारणा के परिणाम—

- (१) चारित्र-विशुद्धि ।
- (२) वीतराग-चारित्र की प्राप्ति ।
- (३) भवोपग्राही कर्मों का क्षय ।
- (४) सर्व-दुःखों से मुक्ति । (सू० ५८)

ज्ञान-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) पदार्थ-बोध ।
- (२) पारगमिता ।
- (३) विशिष्ट विनय आदि की प्राप्ति ।
- (४) प्रामाणिकता । (सू० ५९)

दर्शन-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) भव-मिथ्यात्व का ज्ञेय ।
- (२) सत्त प्रकाश ।
- (३) ज्ञान और दर्शन की उत्तरोत्तर विशुद्धि । (सू० ६०)

चारित्र-सम्पन्नता के परिणाम—

- (१) अप्रकम्प-दशा की प्राप्ति ।
- (२) भवोपग्राही कर्मों का विलय ।
- (३) मुक्ति । (सू० ६१)

भोक्तेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय शब्दों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) शब्द हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६२)

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय रूपों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) रूप-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६३)

घ्राणेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय गन्धों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) गन्ध-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६४)

रसनेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय रसों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) रस-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६५)

स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह के परिणाम—

- (१) प्रिय और अप्रिय स्पर्शों में राग और द्वेष का निग्रह ।
- (२) स्पर्श-हेतुक नष्ट कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित कर्म का क्षय । (सू० ६६)

क्रोध-विलय के परिणाम—

- (१) क्षमा ।
- (२) क्रोध-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित क्रोध-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ६७)

मान-विजय के परिणाम—

(१) मार्दव ।

(२) मान-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित मान-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ६८)

माया-विजय के परिणाम—

(१) आर्जव ।

(२) माया-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित माया-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ६९)

लोभ-विजय के परिणाम—

(१) सन्तोष ।

(२) लोभ-वेदनीय कर्म का अग्रहण और पूर्व संचित लोभ-वेदनीय कर्म का विलय । (सू० ७०)

प्रेम, द्वेष, और मिथ्या-दर्शन विजय के परिणाम—

(१) ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य-आराधना की तत्परता ।

(२) मुक्ति । (सू० ७१)

सगुणतीसहस्रं अज्झयणं : एकोनत्रिंश अध्ययन

सम्मत्तपरक्रमे : सम्यक्त्व-पराक्रम

मूल

सू०१—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—इह खलु सम्मत्त-परक्रमे 'नाम अज्झयणे' समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए जं सम्मं सद्दहिता पत्तियाइत्ता रोयइत्ता फासइत्ता पालइत्ता तीरइत्ता किट्टइत्ता सोहइत्ता आराहइत्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिनिब्बायन्ति सब्बदुक्खाणमन्तं करेन्ति । तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ तं जहा—

संवेगे १

निब्बेए २

धम्मसद्धा ३

गुरुसाहम्मियसुस्सुसणया ४

आलोचणया ५

निन्दणया ६

गरहणया ७

सामाइए ८

चउख्वीसत्यए ९

वन्दणए १०

संस्कृत छाया

सू०१—श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवतेवमाख्यातम् । इह खलु सम्यक्त्व-पराक्रमं नामाध्ययनं श्रमणन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेक्षितम् । यत्सम्यक् श्रद्धाय, प्रतीत्य, रोचयित्वा, स्तुष्ट्वा, पालयित्वा, तीरयित्वा, कीर्तयित्वा, शोधयित्वा, आराध्य, आज्ञया अनुपाल्य, बहवो जीवाः सिध्यन्ति, बुध्यन्ते, मुच्यन्ते, परिनिब्रान्ति, सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति । तस्य अयमर्थः एवमाख्यायते, तद् यथा—

संवेगः १

निबंदः २

धर्म-प्रज्ञा ३

गुरु-साधर्मिक-गुरुश्रवणम् ४

आलोचनम् ५

निन्दनम् ६

गरहणम् ७

सामायिकम् ८

चतुर्विंशति-स्तवः ९

वन्दनम् १०

हिन्दी अनुवाद

सू०१—आयुष्मन् ! मैंने सुना है भगवान् ने इस प्रकार कहा है—इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में काश्यप-गौरी श्रमण भगवान् महावीर ने सम्यक्त्व-पराक्रम नाम का अध्ययन कहा है, जिस पर भलीभाँति श्रद्धा कर, प्रतीति कर, रुचि रख कर, जिसके विषय का स्पर्श कर, स्मृति में रख कर, समग्र-रूप से हस्तगत कर, गुरु को पठित पाठ का निवेदन कर, गुरु के समीप उच्चाचरण का शुद्धि कर, सहा अर्थ का बोध प्राप्त कर और अहंत्वा की आज्ञा के अनुसार अनुपालन कर बहुत बोध सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण (शान्त) होते हैं और सब दुःखों का अन्त करते हैं । सम्यक्त्व-पराक्रम का अर्थ इस प्रकार कहा गया है । जैसे—

संवेग १

निबंद २

धर्म-प्रज्ञा ३

गुरु और साधर्मिक की श्रवणा ४

आलोचना ५

निन्दा ६

गर्ही ७

सामायिक ८

चतुर्विंशति-स्तव ९

वन्दन १०

१. नाम अज्झयणे (अ, ५०) ; नामअज्झयणे (स, ३) ।

२. पालइत्ता, पूहइत्ता (अ) ।

३. बंधणे (अ) ।

पडिकमणे ११
 काउस्सग्गे १२
 पच्चक्खाणे १३
 थवथुइमंगले^१ १४
 कालपडिलेहणया १५
 पायच्छित्तकरणे १६
 खमावणया १७
 सज्जाए^२ १८
 वायणया^३ १९
 पडिपुच्छणया २०
 परियट्ठणया २१
 अणुप्पेहा २२
 धम्मकहा २३
 सुयस्स आराधणया २४
 एगममणसंनिवेशणया २५
 संजमे २६
 तवे २७
 बोदाणे २८
 मुहसाए २९
 अप्पडिबद्धया ३०
 विवित्तसयणासणसेवणया ३१
 विणियट्ठणया ३२
 सम्भोगपच्चक्खाणे ३३
 उवहिपच्चक्खाणे ३४
 आहारपच्चक्खाणे ३५
 कसायपच्चक्खाणे ३६
 जागपच्चक्खाणे ३७
 सरीरपच्चक्खाणे ३८
 सहायपच्चक्खाणे ३९

प्रतिक्रमणम् ११
 कायोत्सर्गः १२
 प्रत्याख्यानम् १३
 स्तव-स्तुति-मङ्गलम् १४
 काल-प्रतिलेखनम् १५
 प्रायश्चित्तकरणम् १६
 क्षमापनम् १७
 स्वाध्यायः १८
 वाचनम् १९
 प्रतिप्रच्छनम् २०
 परिवर्तनम् २१
 अनुप्रेक्षा २२
 धर्म-कथा २३
 श्रुतस्य आराधना २४
 एकाग्रमनः-सन्निवेशनम् २५
 संयमः २६
 तपः २७
 व्यवदानम् २८
 सुख-शातनम् २९
 अप्रतिबद्धता ३०
 विविक्त-शयनासन-सेवनम् ३१
 विनिवर्तनम् ३२
 सम्भोग-प्रत्याख्यानम् ३३
 उपवि-प्रत्याख्यानम् ३४
 आहार-प्रत्याख्यानम् ३५
 कषाय-प्रत्याख्यानम् ३६
 योग-प्रत्याख्यानम् ३७
 शरीर-प्रत्याख्यानम् ३८
 सहाय-प्रत्याख्यानम् ३९

प्रतिक्रमण ११
 कायोत्सर्ग १२
 प्रत्याख्यान १३
 स्तव-स्तुति-मंगल १४
 काल-प्रतिलेखन १५
 प्रायश्चित्तकरण १६
 क्षामणा १७
 स्वाध्याय १८
 वाचना १९
 प्रतिप्रच्छना २०
 परावर्तना २१
 अनुप्रेक्षा २२
 धर्म-कथा २३
 श्रुताराधना २४
 एकाग्र-मन की स्थापना २५
 संयम २६
 तप २७
 व्यवदान २८
 सुख की स्पृहा का त्याग २९
 अप्रतिबद्धता ३०
 विविक्त-शयनासन-सेवन ३१
 विनिवर्तना ३२
 सम्भोग-प्रत्याख्यान ३३
 उपवि-प्रत्याख्यान ३४
 आहार-प्रत्याख्यान ३५
 कषाय-प्रत्याख्यान ३६
 योग-प्रत्याख्यान ३७
 शरीर-प्रत्याख्यान ३८
 सहाय-प्रत्याख्यान ३९

१. थय थुइ मंगले (अ, क०) ; थण थुई मंगळे (ड) ।

२. वायणाए (ञ०) ; वायणा (ङ) ।

भक्तपञ्चकलाणे ४०

सन्भावपञ्चकलाणे ४१

पडिरूवया^१ ४२

वेयावुच्चे ४३

सर्वगुणसंपण्णया^२ ४४

वीयरागया ४५

खन्ती ४६

मुत्ती ४७

अज्जवे^३ ४८

मद्वे^४ ४९

भावसच्चे ५०

करणसच्चे ५१

जोगसच्चे ५२

मणगुत्तया ५३

वयगुत्तया ५४

कायगुत्तया ५५

मणसमाधारणया ५६

वयसमाधारणया ५७

कायसमाधारणया ५८

नाणसंपन्नया ५९

दंसणसंपन्नया ६०

चरित्संपन्नया ६१

सोइन्दियनिग्गेह ६२

चक्खिन्दियनिग्गेह ६३

घाणिन्दियनिग्गेह ६४

जिह्मिन्दियनिग्गेह ६५

फासिन्दियनिग्गेह ६६

कोह्विजए ६७

भक्त-प्रत्याख्यानम् ४०

सद्भाव-प्रत्याख्यानम् ४१

प्रतिरूपता ४२

वैयावृत्त्यम् ४३

सर्वगुण-सम्पन्नता ४४

वीतरागता ४५

क्षान्तिः ४६

मुक्तिः ४७

आर्जवम् ४८

मार्दवम् ४९

भाव-सत्यम् ५०

करण-सत्यम् ५१

योग-सत्यम् ५२

मनो-गुह्यता ५३

वाक्-गुह्यता ५४

काय-गुह्यता ५५

मनः-समाधारणम् ५६

वाक्-समाधारणम् ५७

काय-समाधारणम् ५८

ज्ञान-सम्पन्नता ५९

दर्शन-सम्पन्नता ६०

चरित्र-सम्पन्नता ६१

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रहः ६२

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहः ६३

घ्राणेन्द्रिय-निग्रहः ६४

जिह्वेन्द्रिय-निग्रहः ६५

स्पर्शेन्द्रिय-निग्रहः ६६

क्रोध-विजयः ६७

भक्त-प्रत्याख्यान ४०

सद्भाव-प्रत्याख्यान ४१

प्रतिरूपता ४२

वैयावृत्त्य ४३

सर्वगुण-सम्पन्नता ४४

वीतरागता ४५

क्षान्ति ४६

मुक्ति ४७

आर्जव ४८

मार्दव ४९

भाव-सत्य ५०

करण-सत्य ५१

योग-सत्य ५२

मनो-गुह्यता ५३

वाक्-गुह्यता ५४

काय-गुह्यता ५५

मनःसमाधारणा ५६

वाक्-समाधारणा ५७

काय-समाधारणा ५८

ज्ञान-सम्पन्नता ५९

दर्शन-सम्पन्नता ६०

चारित्र-सम्पन्नता ६१

श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह ६२

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह ६३

घ्राणेन्द्रिय-निग्रह ६४

जिह्वेन्द्रिय-निग्रह ६५

स्पर्शेन्द्रिय-निग्रह ६६

क्रोध-विजय ६७

१. पडिरूवणया (५०) ।

२. 'संपण्णया' (अ, भा, इ, उ०) ।

३. मद्वे (अ, छ०, उ०) ।

४. अज्जवे (अ, छ०, उ०) ।

माणविजए ६८
मायाविजए ६९
लोहविजए ७०
पेज्जदोसमिच्छादंसणविजए ७१
सेलेसी ७२
अकम्मया ७३

मान-विजयः ६८
माया-विजयः ६९
लोभ-विजयः ७०
प्रेयो-दोष-मिथ्यादर्शन-विजयः ७१
शैलेसी ७२
अकर्मता ७३

मान-विजय ६८
माया-विजय ६९
लोभ-विजय ७०
प्रेयो-दोष-मिथ्या-दर्शन विजय ७१
शैलेसी ७२
अकर्मता ७३

संवेगेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संवेगेणं अनुत्तरं धम्मसदं जणयइ । अनुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ । अणत्ताणुबन्धि-कोहमाणमायालोभे खवेइ । कम्मं न बन्धइ । तण्णवइयं च णं मिच्छत्त-विसोहि काऊण दंसणाराहए भवइ । दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्जइ । सोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणे भवग्गहणं नाइकमइ ॥

सू०२—निव्वेएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

निव्वेएणं दिव्वमाणुसतेरिच्छिण्णु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमाणच्छइ । सव्वविसएसु विरज्जइ सव्वविसएसु विरज्जमाण आरम्भपरिच्चायं करेइ । आरम्भपरिच्चायं करेमाणे संसारमगं वोळ्ळवइ सिद्धिमग्गे पडिवन्ते य भवइ ॥

संवेगेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

संवेगेनानुत्तरं धर्म-श्रद्धां जनयति अनुत्तरया धर्म-श्रद्धया संवेगं शीघ्रमागच्छति । अनन्तानुबन्धि-क्रोध-मान-माया-लोभान् क्षपयति । नव कर्म न बध्नाति । तन् प्रत्ययिकां च मिथ्यात्व-विशोधिं कृत्वा दर्शना-राशको भवति । दर्शन-विशोष्या च विमुद्धया स्त्येककः तेनैव भव-ग्रहणेन सिध्यति । विशोष्या च विमुद्धः तुरीयं पुनर्भव-ग्रहणम् नातिक्रमति ॥

सू०२—निर्व्वेदेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

निर्व्वेदेन विषय-मानुष-तैरहकैषु काम-भोगेषु निर्व्वेदं शीघ्रमागच्छति । सर्व्वविषयेषु चिरञ्जयति । सर्व्वविषयेषु चिरञ्जयमानः परित्यागं करोति । आरम्भ-परित्यागं कुर्वाणः संसार-मार्गं व्युज्जिघ्रसि सिद्धि-मार्गं प्रतिपन्नदव भवति ॥

भन्ते ! संवेग (मोक्ष की अभिलाषा) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

संवेग से वह अनुत्तर धर्म-श्रद्धा को प्राप्त होता है । अनुत्तर धर्म-श्रद्धा से शीघ्र ही और अधिक संवेग को प्राप्त करता है । अनन्तानु-बन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है । नव कर्मों का संग्रह नहीं करता । कर्माय के क्षीण होने में प्रकट होने वाली मिथ्यात्व-विमुद्धि कर दर्शन (सम्यक् श्रद्धान) की आराधना करता है । दर्शन-विशोधि के विमुद्ध होने पर कई एक जीव उसी जन्म से सिद्ध हो जाते हैं और कई उसके विमुद्ध होने पर तीसरे जन्म का अतिक्रमण नहीं करते—उसमें अवश्य ही सिद्ध हो जाते हैं ।

सू०२—भन्ते ! निर्व्वेद (भव-वैराग्य) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

निर्व्वेद से वह देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी काम-भोगों में लाली को प्राप्त होता है । सब विषयों से विरक्त हो जाता है । सब विषयों से चिरन्त होता हुआ वह आरम्भ और परिग्रह का परित्याग करता है । आरम्भ और परिग्रह का परित्याग करता हुआ संसार-मार्ग का विच्छेद करता है और सिद्धि-मार्ग को प्राप्त होता है ।

१. नव व कम्म (अ, आ, इ) ।

२. आरम्भपरिग्गहा (अ) ।

सू० ३—धम्मसद्धाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

धम्मसद्धाए णं सायासोक्खेसु
रज्जमाणे विरज्जइ। अगरधम्मं च
णं चयइ अणगारे णं जीवे सारीर-
माणसाणं दुक्खणं छेयणभेयण-
संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ अवावाहं
च सुहं निव्वेत्तेइ^१ ॥

सू० ४—गुरुसाहम्मियसुसुसणयाए
णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

गुरुसाहम्मियमुसुसणयाए णं
विणयपडिवत्ति जणयइ। 'विणय-
पडिवन्ते य ण'^२ जीवे अणच्चासायण-
सीले नेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्स-
देवदोगईओ निरुम्भइ। वण्णसंजलण-
भत्तिबहुमाणयाए मणुस्सदेवसोगईओ
निबन्धइ सिद्धि सोमगइं च विसोहेइ।
पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सव्व-
कजाइं साहेइ। अन्ने य बह्वे जीवे
विणइत्ता भवइ ॥

सू० ३—धर्म-अद्वया भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

धर्म-अद्वया सात-सौहृदेषु रज्यमानः
विरज्यति। अगर-धर्मं च त्यजति।
अनगारो जीवः शारीर-मानसानां
दुःखानां छेदन-भेदन-संयोगादीनां
व्युत्प्लव्यं करोति अव्याबाधं च सुखं
निर्वर्तयति ॥

सू० ४—गुरु-साधर्मिक-शुश्रूषणया
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

गुरु-साधर्मिक शुश्रूषणया विनय-
प्रतिपत्तिं जनयति। विनय-प्रतिपन्नइव
जीवः अन्त्याशातनशालो नेरयिक-
तियेगोनिक्-मनुष्य-देव दुर्गती
निरुगट्ठि। वणं-संजवलन-भत्ति-
बहुमानेन मनुष्य-देव-सुगती
निबध्नाति। सिद्धिं सुगतिं च
विशोषयति। प्रशस्तानि च विनयमूलानि
सर्वकार्याणि साधयति। अन्याइव
बहून् जीवान् विनेता भवति ॥

सू० ३—भन्ते ! धर्म-अद्वया से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

धर्म-अद्वया से वह वैषयिक सुखों की
आसक्ति को छोड़ विरक्त हो जाता है, अगर-
धर्म—गृहस्थी को त्याग देता है। वह अनगार
होकर छेदन-भेदन, संयोग-वियोग आदि
शारीरिक और मानसिक दुःखों का विच्छेद
करता है और निर्बाध (बाधा-रहित) सुख
को प्राप्त करता है।

सू० ४—भन्ते ! गुरु और साधर्मिक की
शुश्रूषा (पर्युपासना) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा से वह
विनय को प्राप्त होता है। विनय को प्राप्त
करने वाला व्यक्ति गुरु का शिष्य या
परिवाद करने वाला नहीं होता, इसलिए वह
नेरयिक, निर्यग-यानिक, मनुष्य और देव
सम्बन्धी दुर्गति का निरोध करता है। श्लाघा,
गुण-प्रकाशन, भक्ति और बहुमान के द्वारा
मनुष्य और देव-सम्बन्धी सुगति से सम्बन्ध
जोड़ता है। सिद्धि और सुगति का मार्ग
प्रशस्त करता है। विनय-मूलक सब प्रशस्त
कार्यों को सिद्ध करता है और दूसरे बहुत
व्यक्तियों को विनय के पथ पर ले आता है।

१. निष्किते (ऋ०)।

२. पडिवन्णएणं (ऋ०)।

सू०५—आलोचनाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

आलोचनाए णं मायानियाण-
मिच्छादंसणसङ्गाणं मोक्खममा-
विग्घाणं अणत्तसंसारवद्धणाणं^१
उद्धरणं करेइ । उज्जुभावं च^२
जणयइ । 'उज्जुभावपडिवन्ने य णं'^३
जीवे अमाई इत्थीवेयनपुंसगवेयं च
न बन्धइ । पुव्ववद्धं च णं निज्जरेइ ॥

सू०५—आलोचनाया भवन्त ! जीवः
किं जनयति ?

आलोचनाया माया-निदान-मिथ्या-
दर्शन-शल्यानां मोक्ष-मार्ग-विघ्नाना-
मनन्त-सत्सार-वद्धं तानामुद्धरणं करोति ।
ऋजुभावं च जनयति । प्रतिपन्नजु-
भावपच जीवोऽमायी स्त्री-वेदं नपुंसक-
वेदं च न बध्नाति । पूर्ववद्धं च
निर्जरयति ॥

सू०५—भन्ते ! आलोचना (गुरु के सम्मुख
अपनी भूलों का निवेदन करने) से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

आलोचना से वह अनन्त संसार को बढ़ाने
वाले, मोक्ष-मार्ग में विघ्न उत्पन्न करने वाले,
माया, निदान तथा मिथ्या-दर्शन-शल्य को
निकाल फेंकता है और ऋजु-भाव को प्राप्त
होता है । ऋजु-भाव को प्राप्त हुआ व्यक्ति
अमायी होता है, इसलिए वह स्त्री-वेद और
नपुंसक-वेद कर्म का बन्ध नहीं करता और यदि वे
पहले बन्ध हुए हों तो उनका क्षय कर देता है ।

सू०६—निन्दणयाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

निन्दणयाए णं पच्छाणुतावं
जणयइ । पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे
कर्णमुणत्तेइ^४ पडिवज्जइ ।
कर्णमुणत्तेइ 'पडिवन्ने य'^५ णं
अणगारे मोहणज्जं कम्म उग्घाएइ ॥

सू०६—निन्दनेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

निन्दनेन पश्चादनुतापं जनयति ।
पश्चादनुतापेन विरज्यमानः कर्ण-
गुण-श्रेणीं प्रतिपद्यते । कर्ण-गुण-
श्रेणीं प्रतिपन्नश्चानगारो मोहनीयं
कर्मोद्घातयति ॥

सू०६—भन्ते ! निन्दा (अपना भूलों के
प्राप्त अन्याय का भाव प्रकट करने) से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

निन्दा से वह पश्चात्ताप का प्राप्त होता
है । उसके द्वारा विरज्य होता हुआ मोक्ष का
क्षीण करने में समर्थ परिणाम प्राप्त को प्राप्त
करता है । वैसा परिणाम-प्राप्त को प्राप्त
हुआ अनगार मोहनीय-कर्म को क्षीण कर
देता है ।

सू०७—गरहणयाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

गरहणयाए णं अपुरक्कारं
जणयइ । अपुरक्कारणं जीवे
अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ^१
पसत्थजोगपडिवन्ने य णं अणगारे
अणन्तघाटपज्जवे खवेइ ॥

सू०७—गर्हणेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?

गर्हणेनापुरस्कारं जनयति ।
अपुरस्कारगतो जीवोऽप्रशस्तेभ्यो
योगेभ्यो निषत्ते, प्रतिपन्न-प्रशस्त-
योगश्च अनगारोऽनन्त-धाति-पर्यवसानं
क्षपयति ॥

सू०७—भन्ते ! गरी (दुवरो के समक्ष
अपनी भूलों को प्रकट करने) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

गरी से वह अन्याय का प्राप्त होता है ।
अन्याय को प्राप्त हुआ वह अप्रशस्त प्रवृत्तियों
में निवृत्त होता है और प्रशस्त प्रवृत्तियों को
अंगीकार करता है । वैसा अनगार आत्मा के
अनन्त-विकास का घात करने वाले ज्ञानावरण
आदि कर्मों की परिणतियों का क्षय करता है ।

१. 'यद्धसाणाण (अ) ।

२. च णं (उ, ऋ०, स) ।

३. 'पडिवन्नणं (ऋ०) ।

४. 'सेहीण (अ) ; 'सेही (हृ०) ।

५. पडिवन्ने य (ऋ०) ; पडिवन्ने (उ, अ) ।

६. नियत्तेइ पसत्थे य पवत्तइ (उ, ऋ०) ।

सू०८—सामाहणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
सामाहणं सावज्जजोगविरइं
जणयइ ॥

सू०८—सामायिकेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?
सामायिकेन सावद्य-योग-विरति
जनयति ॥

सू०८—भन्ते ! सामायिक (समभाव
की साधना) से जीव क्या प्राप्त करता है ?
सामायिक से वह अस्तु प्रवृत्ति की विरति
को प्राप्त होता है ।

सू०९—चउव्वीसत्थएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
चउव्वीसत्थएणं दंसणविसोहिं
जणयइ ॥

सू०९—चतुर्विंशति-स्तवेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
चतुर्विंशति-स्तवेन दर्शन-विशोधिं
जनयति ॥

सू०९—भन्ते ! चतुर्विंशति-स्तव (चौबीस
नीचंकरों की स्तुति करने) से जीव क्या
प्राप्त करता है ?
चतुर्विंशति-स्तव से वह सम्यक्त्व की
विशुद्धि को प्राप्त होता है ।

सू०१०—वन्दणएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
वन्दणएणं तीयागायं कम्मं
खवेइ । उच्चागायं निवन्धइ । सोहमं
च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ
दाहिणभावं च णं जणयइ ॥

सू०१०—वन्दनकेन भदन्त ! जीवः
किं जनयति ?
वन्दनकेन नीचेर्गायं कर्म
क्षपयति । उच्चैर्गायं निबध्नाति ।
सौभाग्यं साप्प्रतिहृतं आजा-फलं-
निर्वर्तयति । दक्षिण-भावं च जनयति ॥

सू०१०—भन्ते ! वन्दना से जीव क्या
प्राप्त करता है ?
वन्दना से वह नीच-कुल में उत्पन्न करने
वाले कर्मों का क्षीण करता है । ऊँचे-कुल
में उत्पन्न करने वाले कर्म का अर्जन करता
है । जिसकी आज्ञा को लोग शिरोधार्य करें
वैसा अबाधित सौभाग्य और जनता की
अनकल भावना को प्राप्त होता है ।

सू०११—पडिक्कमणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
पडिक्कमणेणं वयच्छिद्दाहं पिहेइ ।
पिहियवयच्छिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे
असबलचरित्ते अट्टसु पवयणमायासु
उवउत्ते अपुहत्ते^१ सुप्पणिहिण^२
विहरइ ॥

सू०११—प्रतिक्रमणेन भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
प्रतिक्रमणेन व्रत-च्छिद्राणि पिब-
घाति । पिहित-व्रत-च्छिद्रः पुनर्जीवो
निरुद्धाभवोऽशबल-चरित्रः अष्टसु
प्रवचन-मातृषु उपयुक्तोऽपृथक्त्वः
सुप्रणिहितो विहरति ॥

सू०११—भन्ते ! प्रतिक्रमण से जीव
क्या प्राप्त करता है ?
प्रतिक्रमण से वह व्रत के छेदों को दब
देता है । जिसने व्रत के छेदों को भर दिया
वैसा जीव आश्रयों को रोक देता है, चारित्र्य के
घब्रों को मिटा देता है, आठ-प्रवचन माताओं
में सावधान हो जाता है, संयम में एक-रस
हो जाता है और म्लीर्भाति समाधिस्थ होकर
विहार करता है ।

१. अपुहत्ते (५० पा०) ।

२. सुप्पणिहिण (५० पा०) ; अप्पणिहिण (अ, द, ५०) ।

सू०१२—काउस्सग्गेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

काउस्सग्गेणं तीयपटुप्पन्नं
पायच्छित्तं विसोहेइ । विमुद्धपाय-
च्छित्ते य जीवे निब्बुयहियए
'ओहरियभारो च्व' भारवहे
पसत्थज्जाणोवगए^१ सुहंसुहेणं
विहरइ ॥

सू०१३—पच्चक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं
निरुभइ^२ ॥

सू०१४—थवथुइमंगलेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
थवथुइमंगलेणं नाणदंसणचरित-
बोहिलाभं जणयइ । नाणदंसण-
चरितबोहिलाभरूपन्ते य णं जीवे
अन्तकिरियं कप्पविमाणोववत्तिणं
आराहणं आराहेइ ॥

सू०१५—कालपडिलेहणयाए
णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
कालपडिलेहणयाए णं नाणा-
वरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

सू०१२—कायोस्सर्गेण भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
कायोस्सर्गेण अतीत-प्रत्युत्पन्नं
प्रायश्चित्तं विशोध्यति । विशुद्ध-
प्रायश्चित्तश्च जीवो निर्वृत्त-हृदयोऽपहृत
भार इव भारवहः प्रशस्तध्यानोपगतः
सुखं सुखेन विहरति ॥

सू०१३—प्रत्याख्यानैन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
प्रत्याख्यानैनाश्रव-द्वाराणि
निरुणधि ॥

सू०१४—स्त्व-स्तुति-मङ्गलेन
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?
स्त्व-स्तुति-मङ्गलेन ज्ञान-दर्शन-
चारित्र-बोधि-लाभं जनयति । ज्ञान-
दर्शन-चारित्र-बोधि-लाभ - सम्पन्नश्च
जीवोऽन्त-क्रियां कल्पविमानोपपत्ति-का-
माराधनामाराधयति ॥

सू०१५—काल-प्रतिलेखनेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
काल-प्रतिलेखनेन ज्ञानावरणीयं
कर्म क्षययति ॥

सू०१२—भन्ते ! कायोस्सर्गं (ध्यान की
मुद्रा) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

कायोस्सर्गं से वह अतीत और वर्तमान
के प्रायश्चित्तोचित कार्यों का विशोधन करता
है । ऐसा करने वाला व्यक्ति भार को नीचे
रख देने वाले भार-वाहक की भाँति स्वस्थ
हृदय वाला—हल्का हो जाता है और प्रशस्त-
ध्यान में लीन होकर उत्तरोत्तर बढ़ने वाले
सुखपूर्वक विहार करता है ।

सू०१३—भन्ते ! प्रत्याख्यान से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

प्रत्याख्यान से वह आश्रव-द्वारों (कर्म-
बन्धन के हेतुओं) का निरोध करता है ।

सू०१४—भन्ते ! स्त्व और स्तुति रूप
मंगल से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्त्व और स्तुति रूप मंगल से वह ज्ञान,
दर्शन और चारित्र की बोधि का लाभ करता
है । ज्ञान, दर्शन और चारित्र के बोधि-लाभ
से सम्पन्न व्यक्ति मोक्ष-प्राप्ति या वैमानिक देवों
में उत्थन होने योग्य आराधना करता है ।

सू०१५—भन्ते ! काल-प्रतिलेखना (स्वा-
ध्याय आदि के उपयुक्त समय का ज्ञान करने)
से जीव क्या प्राप्त करता है ?

काल-प्रतिलेखना से वह ज्ञानावरणीय कर्म
को क्षीण करता है ।

१. ^० भरुव (उ, ऋ०) ।

२. ^० उक्काणत्ताइ (ऋ० पा०) ।

३. निरुभइ । पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ । इच्छानिरोहं गए य णं जीवे सम्पत्त्येव विभीषणयइ सीइयए विहरइ । (इ, उ) ।

सू० १६—पायच्छित्तकरणेणं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

पायच्छित्तकरणेणं पावकम्म-विसोहि जणयइ निरुदयारे यावि भवइ। सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ आयारं च आयारफलं च आराहेइ ॥

सू० १७—खमावणयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

खमावणयाए णं पट्हायणभावं^१ जणयइ। पट्हायणभावमुवगए य सब्बपाणभूयजोवसत्तेसु मित्तीभाव-मुपाएइ। मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविंसोहि काऊण निब्भए भवइ ॥

सू० १८—सज्झाएण भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

सज्झाएण नाणावरणज्जं कम्मं खवेइ ॥

सू० १९—वायणाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

वायणाए णं निज्जरं जणयइ। सुयस्स य 'अणासायणाए वट्टए'^२। सुयस्स अणासायणाए वट्टमाणे तित्थधम्मं अवलम्बइ। तित्थधम्मं अवलम्बमाणे महाजिज्जे महापज्जवसाणे भवइ ॥

सू० १६—प्रायश्चित्त-करणेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

प्रायश्चित्त-करणेन पाप-कर्म-विशोधि जनयति। निरतिचारदच्चापि भवति। सम्यक् च प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यमानो मार्गं च मार्ग-फलं च विशोधयति। आचारउच्चाचार-फलद्वाराधयति ॥

सू० १७—क्षमणया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

भन्ते ! क्षमणया प्रह्लादन-भावं जनयति। प्रह्लादन-भावमुपगतद्वय सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वेषु मित्री-भावमुत्पादयति मित्री-भाव-मुपगतद्वयः जीवः भाव-विशोधि कृत्वा निर्भयो भवति ॥

सू० १८—स्वाध्यायेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

स्वाध्यायेन ज्ञानावरणोप-कर्म क्षपयति ॥

सू० १९—वाचनया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

वाचनया निर्जरां जनयति। श्रुतस्य अनाशातनायां वर्तते। श्रुतस्य अनाशातनायां वर्तमानः तीर्थ-धर्ममवलम्बते। तीर्थ-धर्ममवलम्बमानो महाजिज्जेरं महापयबसानद्वय भवति ॥

सू० १६—भन्ते ! प्रायश्चित्त करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रायश्चित्त करने से वह पाप-कर्म को विमुक्ति करता है और निरतिचार हो जाता है। सम्यक्-प्रकार से प्रायश्चित्त करने वाला मार्ग (सम्यक्) और मार्ग-फल (ज्ञान) को निर्मल करता है तथा आचार (चारित्र्य) और आचार-फल (मुक्ति) की बाराधना करता है।

सू० १७—भन्ते ! क्षमा करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

क्षमा करने से वह मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त होता है। मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त हुआ व्यक्ति सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के साथ मैत्री-भाव उत्पन्न करता है। मैत्री-भाव को प्राप्त हुआ जीव भावना को विशुद्ध बनाकर निर्भय हो जाता है।

सू० १८—भन्ते ! स्वाध्याय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्वाध्याय से वह ज्ञानावरणोप कर्म को क्षीण करता है।

सू० १९—भन्ते ! वाचना (अध्यापन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वाचना से वह कर्मों को क्षीण करता है। श्रुत की उपेक्षा के दोष से बच जाता है। इस उपेक्षा के दोष से बचने वाला तीर्थ-धर्म का अवलम्बन करता है—वह गणधर की भक्ति शिष्यो को श्रुत देने में प्रवृत्त होता है। तीर्थ-धर्म का अवलम्बन करने वाला कर्मों और संसार का अन्त करने वाला होता है।

१. पट्हाएणं भावं (वृ०); पट्हायणभावं (वृ० पा०)।

२. अनुसज्झाए वट्टइ (वृ० पा०)।

सू० २०—पडिपुच्छणयाए णं भन्ते ! जीवे कि जणयइ ?

पडिपुच्छणयाए णं सुत्तत्थतदुभयाइं विसोहेइ । कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिन्दइ ॥

सू० २१—परियट्ठणाए णं भन्ते ! जीवे कि जणयइ ?

परियट्ठणाए णं वंजणाइं जणयइ वंजणलद्धिं च उप्पाएइ ॥

सू० २२—अणुप्पेहाए णं भन्ते ! जीवे कि जणयइ ?

अणुप्पेहाए णं आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडोओ षणियबन्धनबद्धाओ सिद्धिलबन्धनबद्धाओ पकरेइ । दोहकालद्विइयाओ हस्सकालद्विइयाओ पकरेइ । तिव्वाणुभावाओ मन्दाणुभावाओ पकरेइ । 'बहुपए-सग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ' । आउयं च णं कम्मं सिय बन्धइ सिय नो बन्धइ । 'असायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ' । अणाइयं च णं अणवदग्गं दोहमद्धं चाउरत्तं संसार-कन्तारं खिप्पामेव वोइवयइ ॥

सू० २०—प्रतिप्रच्छनेन भवन्त ! जीवः कि जनयति ?

प्रतिप्रच्छनेन सूत्रार्थतदुभयानि विज्ञोषयति । काङ्क्षा-मोहनीयं कर्म व्युच्छिनति ॥

सू० २१—परिवर्तनया भवन्त ! जीवः कि जनयति ?

परिवर्तनया व्यञ्जनानि जनयति । व्यञ्जन-लब्धिं-वोत्पादयति ॥

सू० २२—अनुप्रेक्षा भवन्त ! जीवः कि जनयति ?

अनुप्रेक्षा आयुष्क-वर्जाः मग्न-कर्म-प्रकृतीः दृढ़-बन्धन-बद्धाः शिथिल-बन्धन-बद्धाः प्रकरोति । दीर्घ-काल-स्थितिकाः ह्रस्व-काल-स्थितिकाः प्रकरोति । तीव्रानुभावाः मन्दानुभावाः प्रकरोति । बहु-प्रदेशकाः अल्प-प्रदेशकाः प्रकरोति । आयुष्कञ्च कर्म स्याद्बध्नाति स्यान्नो बध्नाति । असात-वेदनीयञ्च कर्म नो भूयोभूय उपचिनोति । अनाविकं च अनवदग्गं दीर्घाधिं चतुरन्तं संसार-कान्तारं क्षिप्रमेव उपतिव्रजति ॥

सू० २०—भन्ते ! प्रतिप्रश्न करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रतिप्रश्न करने से वह सूत्र, अर्थ और उन दोनों से सम्बन्धित सन्देहों का निवर्तन करता है और कांक्षा-मोहनीय कर्म का विनाश करता है ।

सू० २१—भन्ते ! परावर्तना (पठित-पाठ के पुनरावर्तन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

परावर्तना में वह अक्षरों को उत्पन्न करता है - स्मृत को परिपक्व और विस्मृत को याद करता है तथा व्यञ्जन-लब्धि (वर्ण-विद्या) को प्राप्त होता है ।

सू० २२—भन्ते ! अनुप्रेक्षा (अर्थ-चिन्तन) में जीव क्या प्राप्त करता है ?

अनुप्रेक्षा में वह आयुष्-कर्म को छोड़ कर गेप सात वर्गों को ग्राह्य-बन्धन में बन्धी हुई प्रकृतियों को शिथिल-बन्धन वाली कर देता है, उनकी दीर्घ-कालीन स्थिति को अल्प-कालीन कर देता है, उनके तीव्र अनुभव को मन्द कर देता है । उनके बहु-प्रदेशों को अल्प-प्रदेशों में बदल देता है । आयुष्-कर्म का बन्धन कदाचित् करता है, कदाचित् नहीं भी करता । असात-वेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता और अनावि-अनन्त लब्धे-मार्ग वाली तथा चतुर्गति-व्य वार अस्तीं वाली संसार अटकी को तुरन्त ही पार कर जाता है ।

१. बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ, पकरेइ (वृ० पा०) ।

२. साया वेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ (वृ० पा०) ।

सू० २३—धम्मकहाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

धम्मकहाए णं 'निज्जरं
जणयइ'^१ । 'धम्मकहाए णं पवयणं
पभावेइ'^२ । पवयणपभावे णं जीवे
आगमिस्स भट्ठाए कम्मं
निबन्धइ ॥

सू० २४—सुयस्स आराहणयाए
णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सुयस्स आराहणयाएणं अन्ताणं
खवेइ न य संकिल्हियेइ ॥

सू० २५—एगग्गमणसंनिवेशेण-
याए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
एगग्गमणसंनिवेशेणयाए णं
चित्तिनिराहं करेइ ॥

सू० २६—संजमेणं भन्ते ! जीवे
किं जणयइ ?
संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ ॥

सू० २७—तवेणं भन्ते ! जीवे
किं जणयइ ?
तवेणं वोदाणं जणयइ ॥

सू० २३—धर्म-कथया भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

धर्म-कथया निज्जरां जनयति !
धर्म-कथया प्रवचनं प्रभावयति ।
प्रवचन-प्रभावको जीवः आगमिष्यतः
भद्रतया कर्म निबध्नाति ॥

सू० २४—श्रुतस्य आराधनया
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

श्रुतस्य आराधनया अज्ञानं
क्षययति, न च संक्लिश्यते ॥

सू० २५—एकाग्र-मनः-संनिवेशेन
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?
एकाग्र-मनः-संनिवेशेन चित्त-
निरोधं करोति ॥

सू० २६—संयमेन भवन्त ! जीवः
किं जनयति ?
संयमेन अनास्नवत्वं जनयति ॥

सू० २७—तपसा भवन्त ! जीवः
किं जनयति ?
तपसा व्यवधानं जनयति ॥

२३—भन्ते ! धर्म-कथा से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

धर्म-कथा से वह प्रवचन की प्रभावना
करता है । प्रवचन की प्रभावना करने वाला
जीव भविष्य में कल्याणकारी फल देने वाले
कर्मों का अर्जन करता है ।

सू० २४—भन्ते ! श्रुत की आराधना से
जीव क्या प्राप्त करता है ?

श्रुत की आराधना से अज्ञान का क्षय
करता है और राग-द्वेष आदि से उत्पन्न
होने वाले मानसिक संक्लेशों से बच जाता है ।

सू० २५—भन्ते ! एक अग्र (आलम्बन)
पर मन को स्थापित करने से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

एकाग्र-मन की स्थापना से वह चित्त का
निरोध करता है ।

सू० २६—भन्ते ! संयम से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

संयम से वह आश्रय का निरोध
करता है ।

सू० २७—भन्ते ! तप से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

तप से वह व्यवधान—पूर्व-संचित कर्मों
को क्षीण कर विमुक्ति को प्राप्त होता है ।

१. पवयणं पभावेइ (वृ० पा०) ।

२. × (वृ०) ।

सू० २८—बोदाणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

बोदाणं अकिरियं जणयइ ।
अकिरियाए भविता तओ पच्छा
सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ
सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सू० २९—सुहसाएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ ।
अणुस्सुयाए णं जीवे अणुकम्पए
अणुवभडे विगयसंगे चरित्तमोहणिज्जं
कम्मं खवेइ ॥

सू० ३०—अप्पडिबद्धयाए णं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अप्पडिबद्धयाए णं निस्संगत्तं
जणयइ । निस्संगत्तेणं जीवे एगे
एगग्गचित्ते दिया य राओ य
असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावि
विहरइ ॥

सू० ३१—वित्तसयणासण-
याए णं भन्ते ! जीवे किं
जणयइ ?

वित्तसयणासणयाए णं
चरित्तमुत्ते जणयइ । चरित्तमुत्ते य
णं जीवे वित्ताहारे दडचरित्ते
एगन्तरए मोक्खभावपडिवन्ते
अद्विहकम्मगण्ठि निज्जेइ ॥

सू० २८—व्यवदानेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

व्यवदानेन अकियां जनयति ।
अकियाको भूत्वा ततः पदवान्
सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति,
सर्व-दुःखानामन्तं करोति ॥

सू० २९—सुख-शान्तेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

सुख-शान्तेन अनुत्सुकत्वं जनयति ।
अनुत्सुको जीवोऽनुकम्पकोऽनुवभटो
विगत-शोकवारिद्र-मोहनीयं कर्म
क्षपयति ॥

सू० ३०—अप्रतिबद्धतया भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

अप्रतिबद्धतया निस्सङ्गत्वं
जनयति । निस्सङ्गत्वेन जीवः एकः
एकाग्र-चित्तो विद्या च रात्रौ
वासजन्मऽप्रतिबद्धश्चापि विहरति ॥

सू० ३१—विविक्त-शयनासनेन
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

विविक्त-शयनासनेन चरित्र-गुणं
जनयति चरित्र-गुणद्वय जीवः
विविक्ताहारः दृढ-चारित्रः एकान्त-रतः
मोक्ष-भाव-प्रतिपन्नः अष्टविच-
कर्मप्रस्थिं निजयति ॥

सू० २८—भन्ते ! व्यवदान से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

व्यवदान से वह अकिया (मन, वचन और
शरीर की प्रवृत्ति के पूर्ण निरोध) को प्राप्त
होता है, वह अकियावान होकर सिद्ध होता
है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण
होता है और दुःखों का अन्त करता है ।

सू० २९—भन्ते ! सुख की स्पृहा का
निवारण करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सुख की स्पृहा का निवारण करने से
वह विषयों के प्रति अनुत्सुक-भाव को प्राप्त
करता है । विषयों के प्रति अनुत्सुक जीव
अनुकम्पा करने वाला, प्रशान्त और शोक मुक्त
होकर चरित्र को विकृत करने वाले मोह-कर्म
का क्षय करता है ।

सू० ३०—भन्ते ! अप्रतिबद्धता (मन
की अनावृत्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

अप्रतिबद्धता से वह असंग हो जाता
है—बाह्य संसर्गों से मुक्त हो जाता है ।
असंगता से जीव अकेला (राग-द्वेष रहित),
एकाग्र-चित्त वाला, दिन और रात बाह्य-
संसर्गों को छोड़ता हुआ प्रतिबन्ध रहित होकर
बिहार करता है ।

सू० ३१—भन्ते ! विविक्त-शयनासन के
सेवन से जीव क्या प्राप्त करता है ?

विविक्त-शयनासन के सेवन से वह चारित्र
की रक्षा को प्राप्त होता है । चारित्र की
सुरक्षा करने वाला जीव पौष्टिक आहार का
वर्जन करने वाला, दृढ़ चरित्र वाला, एकान्त
में रत, अन्तःकरण से मोक्ष साधना में लगा
हुआ वृष्ट प्रकार के कर्मों की गाँठ को तोड़
देता है ।

१. छहसाइयाएणं (६०); छहसायाएणं, छहसाएणं (६० पा०); छहसायाएणं (अ, भा, इ, ड, झ०) ।

२. निस्संगत्तं वण्णं (उ, झ०) ।

३. 'सयणासनेवणयाए (आ, ड) ।

सू० ३२—विणियट्ठयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

विणियट्ठयाए णं पावकम्माणं अकरणयाए अम्भुदेइ । पुव्ववद्धानं य निज्जरणयाए तं नियत्तेइ तओ पच्छा चाउरन्तं संसारकन्तारं विइवयइ ॥

सू० ३३—संभोगपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संभोगपच्चक्खाणेणं आलम्बणां खवेइ । निरालम्बणस्स य आययट्ठिया जोगा भवन्ति । सएणं लाभेणं संतुसइ^१ परलाभं 'नो आसाएइ'^२ नो तक्केइ नो पीहेइ नो पत्थेइ नो अभिलसइ । परलाभं अणासायमाणं अतक्केमाणं अपोहेमाणं अपत्थेमाणं अणभिलसमाणं दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥

सू० ३४—उवहिपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उवहिपच्चक्खाणेणं अपलिमन्थं जणयइ । निरुवहिए णं जीवे निक्कले^३ उवहिमन्तरेण य न संकिलिस्सइ ॥

सू० ३२—विनिवर्तनेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

विनिवर्तनेन पाप-कर्मणां अकरणेन अम्भुतिष्ठते । पूर्वं-वद्धानां च निज्जरणेन तत् निवर्तयति । ततः पश्चात् चतुरन्तं संसार-कान्तारं व्यतिष्ठति ॥

सू० ३३—संभोग-प्रत्याख्यानं भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

संभोग-प्रत्याख्यानेन आलम्बनानि क्षपयति । निरालम्बनस्य च आयता-धिकारयोगाः भवन्ति । स्वकेन लाभेन सन्तुष्टयति । परलाभं 'नो' आस्वादयति नो तर्कयति, नो स्पृहयति, नो प्रार्थयति, नो अभिलषति । परलाभमनास्वादयन्, अतर्कयन्, अस्पृहयन्, अप्रार्थयन्, अनभिलषन्, द्वितीयां सुख-शय्यामुपसम्पद्य विहरति ॥

सू० ३४—उपधि-प्रत्याख्यानं भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

उपधि-प्रत्याख्यानेन अपरिमन्थं जनयति । निरुपधिको जीवो निष्काङ्क्षः उपधिमन्तरेण च न संकलियति ॥

सू० ३२—भन्ते ! विनिवर्तना (इन्द्रिय और मन को विषयों से दूर रखने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

विनिवर्तना से वह नए सिरे से पाप-कर्मों को नहीं करने के लिए तत्पर रहता है और पूर्व-अश्रित पाप-कर्मों का क्षय कर देता है—इस प्रकार वह पाप-कर्म का विनाश कर देता है । उसको पश्चात् चार-गति रूप चार अन्तों वाली संसार अटवों को पार कर जाता है ।

सू० ३३—भन्ते ! संभोग-प्रत्याख्यान (सण्दली-भोजन) का त्याग करने वाला जीव क्या प्राप्त करता है ?

संभोग-प्रत्याख्यान से वह पराबलम्बन को छोड़ता है । उस पराबलम्बन को छोड़ने वाले मुनि के सारे प्रयत्न मोक्ष की सिद्धि के लिए होते हैं । वह भिक्षा में स्वयं को जो कुछ मिलता है उसी में सन्तुष्ट हो जाता है । दूसरे मुनियों को मिली हुई भिक्षा में आस्वाद नहीं लेता, उबकी स्पृहा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता और अभिलाषा नहीं करता । दूसरे को मिली हुई भिक्षा में आस्वाद न लेता हुआ उसका ताक न रखता हुआ, स्पृहा न करता हुआ, प्रार्थना न करता हुआ और अभिलाषा न करता हुआ दूसरी सुख-शय्या को प्राप्त कर विहार करता है ।

सू० ३४—भन्ते ! उपधि (वस्त्र आदि उपकरणों) के प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उपधि के प्रत्याख्यान से वह स्वाध्याय-ध्यान में होने वाली क्षति से बच जाता है । उपधि रहित मुनि अभिलाषा से मुक्त होकर उपधि के अभाव में मानसिक संकल्पा को प्राप्त नहीं होता ।

१. तुस्सइ (उ, ऋ०) ।

२. × (उ, ऋ०, ए०) ।

३. 'निक्कले' एतच्च पदं क्वचिदेव दृश्यते (वृ०) ।

सू० ३५—आहारपचक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

आहारपचक्खाणेणं 'जीविया-
संसपओगं' वोच्छिन्दइ । जीविया-
संसपओगं वोच्छिन्दिता जीवे
आहारमन्तरेणं न संकिल्हसइ ॥

सू० ३५—आहार-प्रत्याख्यानेन
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

आहार-प्रत्याख्यानेन जीवितानंसा-
प्रयोगं व्युच्छिन्नति । जीवितानंसा-
प्रयोगं व्युच्छिन्न जीवः आहार-
मन्तरेण न संकिलयति ॥

सू० ३५—भन्ते ! आहार-प्रत्याख्यान
(सद्यो भक्त-पान का त्याग करने) से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

आहार-प्रत्याख्यान से वह जीवित रहने
की अभिलाषा के प्रयोग का विच्छेद कर देता
है । जीवित रहने की अभिलाषा का विच्छेद
कर देने वाला व्यक्ति आहार के बिना (तपस्या
आदि में) संकलेश को प्राप्त नहीं होता ।

सू० ३६—कसायपचक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

कसायपचक्खाणेणं वीयरगभावं
जणयइ । वीयरगभावपडिवन्ते वि
य णं जीवे सममुहदुक्खे भवइ ॥

सू० ३६—कषाय-प्रत्याख्यानेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

कषाय-प्रत्याख्यानेन बीतराग-
भावं जनयति बीतरागभाव-प्रतिपन्नोपि
च जीवः सम-मुल-दुःखो भवति ॥

सू० ३६—भन्ते ! कषाय (क्रोध, मान,
माया और लोभ) के प्रत्याख्यान से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

कषाय-प्रत्याख्यान से वह बीतराग-भाव
को प्राप्त होता है । बीतराग-भाव को प्राप्त
हुवा जीव मुल-दुःख में सम हो जाता है ।

सू० ३७—जोगपचक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

जोगपचक्खाणेणं अजोगत्तं
जणयइ । अजोगी^१ णं जीवे नवं
कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं निज्जरेइ ॥

सू० ३७—योग-प्रत्याख्यानेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

योग-प्रत्याख्यानेन अयोगत्वं
जनयति । अयोगी जीवो नवं कर्म न
बध्नाति, पूर्व-बद्धं निर्जरेयति ॥

सू० ३७—भन्ते ! योग (शरीर, वचन
और मन की प्रवृत्ति) के प्रत्याख्यान से जीव
क्या प्राप्त करता है ?

योग-प्रत्याख्यान से वह अयोगत्व (संवा
अप्रकम्प भाव) को प्राप्त होता है । अयोगी
जीव नए कर्मों का अर्जन नहीं करता और
पूर्वाजित कर्मों को क्षीण कर देता है ।

सू० ३८—सरीरपचक्खाणेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

सरीरपचक्खाणेणं सिद्धाहसय-
गुणत्तणं^२ निव्वत्तेइ । सिद्धाहसय-
गुणसंपन्ने य णं जीवे लोगसामुवगए
परमसुही भवइ ॥

सू० ३८—शरीर-प्रत्याख्यानेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

शरीर-प्रत्याख्यानेन सिद्धातिशय-
गुणत्वं निर्वर्तयति । सिद्धातिशय-
गुण-सम्पन्नस्य जीवो लोकादमुपगतः
परम-सुखी भवति ॥

सू० ३८—भन्ते ! शरीर के प्रत्याख्यान
(देह-मुक्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

शरीर के प्रत्याख्यान से वह मुक्त-
आत्माओं के अतिशय गुणों को प्राप्त करता
है, मुक्त-आत्माओं के अतिशय गुणों को प्राप्त
करने वाला जीव लोक के सिद्ध में पूर्णकर
परम सुखी हो जाता है ।

१. जीवितस्य विप्यजोगं (वृ० वा०) ।

२. वोच्छिन्नविच (वृ० वा०) ।

३. अजोगीच (वृ०) ।

४. " अणुगुणच (वृ० वा०) ।

सम्भक्तपरकम् (सम्यक्त्व-पराक्रम)

४०७

अध्ययन २६ : सूत्र ३६-४१

सू० ३९—सहायपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सहायपच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ । एगीभावभूए वि' य णं' जीवे एगमं भावेमाणे अप्पसट्ठे' अप्पभंभे अप्पकलहे अप्पकसाए अप्पतुमंतुमे संजमबहुले संवरबहुले समाहिए यावि भवइ ॥

सू० ३९—सहाय-प्रत्याख्यानेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

सहाय-प्रत्याख्यानेन एकीभावं जनयति । एकीभाव-भूतोऽपि च जीवः ऐकाग्र्यं भावयन् अल्प-शब्दः अल्प-कलहः अल्प-कलहः अल्प-कषायः अल्प-स्वभावः संयम-बहुलः संवर-बहुलः, समाहितश्चापि भवति ॥

सू० ३९—भन्ते ! सहाय-प्रत्याख्यान (दूसरों का सहयोग न लेने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सहाय-प्रत्याख्यान से वह अकेलेपन को प्राप्त होता है । अकेलेपन को प्राप्त हुआ जीव एकत्व के आलम्बन का अभ्यास करता हुआ कोलाहल पूर्ण शब्दों से मुक्त, वाचिक-कलह से मुक्त, शगड से मुक्त, कषाय से मुक्त, तृ-दु से मुक्त, संयम बहुल, संवर बहुल और समाधिस्थ हो जाता है ।

सू० ४०—भक्तपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ॥

भक्तपच्चक्खाणेणं अणेगाइं भवसयाइं निरुम्भइ ॥

सू० ४०—भक्त-प्रत्याख्यानेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

भक्त-प्रत्याख्यानेन अनेकानि भव-शतानि निरुणद्धि ॥

सू० ४०—भन्ते ! भक्त-प्रत्याख्यान (अनशन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

भक्त-प्रत्याख्यान से वह अनेक सैकड़ों जन्म-मरणों का निरोध करता है ।

सू० ४१—सम्भावपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सम्भावपच्चक्खाणेणं अनियट्ठि' जणयइ । अनियट्ठिपडिवन्ते' य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खवेइ तं जहा वेयणिज्जं आउयं नामं गोयं । तओ' पच्छा सिज्फइ, बुज्फइ, मुच्चइ, परिनिब्बाएइ सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सू० ४१—सम्भाव-प्रत्याख्यानेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

सम्भाव-प्रत्याख्यानेन अनिवृत्तिं जनयति । अनिवृत्तिप्रतिपन्नानगारः चतुरः केवलिकम्मं शान्ं क्षययति, तह यथा—वेदनीयं, आयुः नाम गोत्रम् । ततः पश्चात् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति, तब-दुःखाणाकल्पं करोति ॥

सू० ४१—भन्ते ! सद्भाव-प्रत्याख्यान (पूर्ण संवर रूप शैलेयी) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सद्भाव-प्रत्याख्यान से वह अनिवृत्ति को प्राप्त होता है—किर मन, वाणी और शरीर की प्रवृत्ति नहीं करता । अनिवृत्ति को प्राप्त हुआ अनगार केवलिकम्म (केवली के विद्यमान) चार कर्मों, जैसे—वेदनीय, आयुष नाम और गोत्र को क्षीण कर देता है । उसके पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब दुःखों का अन्त करता है ।

१. × (४, ५०) ।

२. × (४, ५०) ।

३. × (५०) ।

४. निबद्धि (५० वा०) ।

५. निबद्धि (५० वा०) ।

६. × (४, ५०) ।

सू० ४२—पडिस्वयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पडिस्वयाए णं लाघवियं जणयइ । लहुभूए णं^१ जीवे अप्पमत्ते पागडल्लिगे पसत्थल्लिगे विमुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्वपाणभूय-जीवसत्तेसु वीससणिज्जस्ववे अप्पडिलेहे^२ जिइन्दिए विउलतव-समिइसमन्ताए यावि भवइ ॥

सू० ४३—वेयावच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? वेयावच्चेणं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं निबन्धइ ॥

सू० ४४—सव्वगुणसंपन्नायाए^३ णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? सव्वगुणसंपन्नायाए णं अपुणरावत्तिं जणयइ । अपुणरावत्तिं पत्तए य^४ णं जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खाणं नो भागो भवइ ॥

सू० ४५—वीयरागयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? वीयरागयाएणं नेहाणुबन्धणाणि तण्हाणुबन्धणाणि^५ य वोच्छिन्दइ मणुत्तेसु^६ सट्ठफरिसरस्वरूपगन्धेषु चैव विरज्जइ ॥

सू० ४२—प्रतिरूपतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

प्रतिरूपतया साधयित्वा जनयति । लघुभूतो जीवः अप्रमत्तः प्रकट-लिंगः प्रवस्त-लिंग विमुद्ध-सम्यक्त्वः समाप्त-सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वेषु बिम्बसनीय-रूपोऽल्प-प्रतिलेखो जितेन्द्रियो विपुल-तपः-समिति-समन्वागतश्चापि भवति ॥

सू० ४३—वैयावृत्त्येन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

वैयावृत्त्येन तीर्थङ्कर-नाम-गोत्रं कर्म निबध्नाति ॥

सू० ४४—सर्व-गुण-सम्पन्नतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

सर्व-गुण-सम्पन्नतया अपुनरावृत्तिं जनयति । अपुनरावृत्तिं प्राप्तश्च जीवः शारीर-मानसानां दुःखानां नो भागो भवति ॥

सू० ४५—बीतरागतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

बीतरागतया स्नेहाणुबन्धनानि तण्हाणुबन्धनानि च व्युच्छिन्ति । मनोमेषु शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धेषु चैव विरज्यते ॥

सू० ४२—भन्ते ! प्रतिरूपता (जिनकल्पिक जैसे आचार का पालन करने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रतिरूपता से वह हृत्केपन को प्राप्त होता है । उपकरणों के अल्पीकरण से हल्का बना हुआ जीव अप्रमत्त, प्रकटलिंग वाला, प्रवस्त-लिंग वाला, विमुद्ध सम्यक्त्व वाला, पराक्रम और समिति से परिपूर्ण, सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए विद्वसनीय रूप वाला, अल्प-प्रतिलेखन वाला, जितेन्द्रिय तथा विपुल तप और समितियों का सर्वत्र प्रयोग करने वाला होता है ।

सू० ४३—भन्ते ! वैयावृत्त्य (साधु-संघ की सेवा करने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वैयावृत्त्य से वह तीर्थङ्कर नाम-गोत्र का अजन करता है ।

सू० ४४—भन्ते ! सर्व-गुण-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सर्व-गुण-सम्पन्नता से वह अपुनरावृत्ति (सृति) को प्राप्त होता है । अपुनरावृत्ति को प्राप्त करने वाला जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता ।

सू० ४५—भन्ते ! बीतरागता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

बीतरागता से वह स्नेह के अनुबन्धनों और तण्हा के अनुबन्धनों का विच्छेद करता है तथा मनोमेष और अमनोज शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से विरक्त हो जाता है ।

१ य णं (उ, ऋ०) ।

२ अप्पपडिलेहे (वृ० पा०) ।

३ संपुणयाए (अ, आ) ।

४ य (उ, ऋ०) ।

५ बंधणाणि तण्हाबंधणाणि (वृ०) ; नेहाणुबन्धनानि, तण्हाणुबन्धनानि (वृ० पा०) ;

६ मणुत्तामणुत्तेसु (अ) ।

सू० ४६—खन्तीए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

खन्तीए णं परीसहे जिणइ ॥

सू० ४७—मुत्तीए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

मुत्तीए णं अकिचणं जणयइ ।
अकिचणे य जीवे अत्थल्लोलाणं^१
अपत्थजिणो भवइ ॥

सू० ४८—अज्वयाए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

अज्वयाए णं काउज्जुयं
भावुज्जुयं भासुज्जुयं अविस्वायणं
जणयइ । अविस्वायणसंपन्नाए णं
जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥

सू० ४९—मह्वयाए णं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

मह्वयाए णं 'अणुस्सियत्तं
जणयइ । अणुस्सियत्ते णं जीवे
मिउमद्वसंपन्ने अट्ठ मयट्ठाणाइं
निट्ठवेइ'^२ ॥

सू० ५०—भावसच्चेणं भन्ते!
जीवे किं जणयइ ?

भावसच्चेणं भावविसोहिं
जणयइ । भावविसोहोए वट्ठमाणे
जीवे अरहत्तपन्नत्तस्स धम्मस्स
आराहणयाए अभुट्ठेइ । अरहत्त-
पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए^३
अबुद्धिता 'परलोकधम्मस्स आराहए'^४
हवइ ॥

सू० ४६—आन्त्या भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

आन्त्या परीवहान् जयति ॥

सू० ४७—मुक्स्या भवन्त ! जीवः
किं जनयति ?

मुक्स्या आकिचन्यं जनयति ।
अकिचनश्च जीवो अर्थ-लोलानां
अप्राथनीयो भवति ॥

सू० ४८—आज्जेव भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

आज्जेव कायजुक्तां, भावजुक्तां
भावजुक्तां, अविस्वादनं जनयति ।
अविस्वादन-सम्पन्नतया जाबोधम-
स्याराधको भवति ॥

सू० ४९—माद्वेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

माद्वेन अनुत्सिक्तत्वं जनयति ।
अनुत्सिक्तत्वेन जीवो मृदु-माद्व-
सम्पन्नः अष्ट मद-स्थानानि
निष्ठापयति ॥

सू० ५०—भाव-सत्त्वेन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?

भाव-सत्त्वेन भाव-विशोधिं
जनयति । भाव-विशोधो वर्तमानो
जीवोऽर्हत्-प्रज्ञस्य धर्मस्याराधनायै
अभ्युत्तिष्ठते । अर्हत्-प्रज्ञस्य धर्म-
स्याराधनायै अभ्युत्थाय परलोक-
धर्मस्याराधको भवति ॥

सू० ४६—भन्ते ! अमा से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

अमा से वह परीवहो पर विजय प्राप्त कर
लेता है ।

सू० ४७—भन्ते ! मुक्ति (निर्लोभता)
से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मुक्ति से वह अकिचनता को प्राप्त होता
है । अकिचन जीव अर्थ-लोलूप पुरुषों के द्वारा
अप्राथनीय होता है — उसके पास कोई याचना
नहीं करता ।

सू० ४८—भन्ते ! मृदुता से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

मृदुता से वह काया की सरलता,
मन की सरलता, भाषा की सरलता
और अवंचक वृत्ति को प्राप्त होता है । अवंचक
वृत्ति से सम्पन्न जीव धर्म का आराधक
होता है ।

सू० ४९—भन्ते ! मृदुता से जीव क्या
प्राप्त करता है ?

मृदुता से वह अनुदत्त मनोभाव को प्राप्त
करता है । अनुदत्त मनोभाव वाला जीव मृदु-
माद्व से सम्पन्न होकर मद के आठ स्थानों
का विनाश कर देता है ।

सू० ५०—भन्ते ! भाव-सत्य (अन्तर-
आत्मा की सच्चाई) से जीव क्या प्राप्त
करता है ?

भाव-सत्य से वह भाव की विगृही को
प्राप्त होता है । भाव-विगृही में वर्तमान जीव
अर्हत्-प्रज्ञ धर्म की आराधना के लिए तैयार
होता है । अर्हत्-प्रज्ञ धर्म की आराधना में
तत्पर होकर वह परलोक-धर्म का आराधक
होता है ।

१. अत्यलोलानं पुरिसानं (आ, इ, उ, ऋ, ए) ।

२. अणुत्स्रअसं जणइ । अणुत्स्रअसं जणइ जीवे मह्वयाएणं मिउं (अ) ; मह्वयाए णं मिउं (उ, ऋ, ए) ; अणुत्स्रअसं जणइ,
अणुत्स्रअसं णं जीवे मिउं (उं पा०) ।

३. आराहणयाए णं (ऋ०) ।

४. परलोकाराहए (उं पा०) ।

सू० ५१—करणसच्चेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?

करणसच्चेणं करणसत्ति
जणयइ । करणसच्चे वट्टमाणे जीवे
जहावाई तहाकारी यावि भवइ ॥

सू० ५२—जोगसच्चेणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
जोगसच्चेणं जोगं विसाहेइ ॥

सू० ५३—मणगुत्तयाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
मणगुत्तयाए णं जीवे एग्गमं
जणयइ । एग्गमचित्ते णं जीवे मणगुत्ते
संजमाराहए भवइ ॥

सू० ५४—वयगुत्तयाए णं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
वयगुत्तयाए णं निव्वियारं^१
जणयइ । 'निव्वियारेणं जीवे धइगुत्ते
अज्झणजोगज्जाणगुत्ते'^२ यावि
भवइ ॥

सू० ५५—कायगुत्तयाए णं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
कायगुत्तयाए णं संवरं जणयइ ।
संवरें कायगुत्ते पुणे पावासवनिरोहं
करेइ ॥

सू० ५१—करण-सत्येन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
करण-सत्येन करण-शक्तिं जन-
यति । करण-सत्येन वर्तमानो जीवो
यथावादी तथाकारी चापि भवति ॥

सू० ५२—योग-सत्येन भवन्त !
जीवः किं जनयति ?
योग-सत्येन योगान् विशोधयति ॥

सू० ५३—मनो-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
मनो-गुप्ततया ऐकाग्र्यं जनयति ।
एकाग्र-चित्तो जीवो मनो-गुप्तः
संयमाराधको भवति ॥

सू० ५४—वाग्-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
वाग्-गुप्ततया निर्विकारं जनयति ।
निर्विकारो जीवो वाग्-गुप्ताऽऽध्यात्म-
योग-ध्यान-गुप्तरूपापि भवति ॥

सू० ५५—काय-गुप्ततया भदन्त !
जीवः किं जनयति ?
काय-गुप्ततया संवरं जनयति ।
संवरणे काय-गुप्तः पुनः पापाश्व-
निरोधं करोति ॥

सू० ५१—भन्ते ! करण-सत्य (कार्य
की सच्चाई) से जीव क्या प्राप्त करता है ?
करण-सत्य से वह करण-शक्ति (अपूर्व
कार्य करने को सामर्थ्य) को प्राप्त होता है ।
करण-सत्य में वर्तमान जीव जैसा कहता है
वैसा करता है ।

सू० ५२—भन्ते ! योग-सत्य (मन,
वार्ता और काया की सच्चाई) में जीव क्या
प्राप्त करता है ?
योग-सत्य में वह मन, वाणी और काया
का पटुन को विधुन करता है ।

सू० ५३—भन्ते ! मनो-गुप्ततया (कुशल
मन के प्रयोग) में जीव क्या प्राप्त करता है ?
मनो-गुप्तता में वह एकाग्रता को प्राप्त
होता है । एकाग्रचित्त वाला जीव अद्भुत
संयमों में मन को रक्ता करने वाला और
समय की आराधना करने वाला होता है ।

सू० ५४—भन्ते ! वाग्-गुप्ततया (कुशल
वचन के प्रयोग) में जीव क्या प्राप्त
करता है ?
वाग्-गुप्तता में वह निर्विकार भाव को
प्राप्त होता है । निर्विकार जीव सर्वथा वाग्-
गुप्त और अध्यात्म-योग के साधन—चित्त की
एकाग्रता आदि से युक्त हो जाता है ।

सू० ५५—भन्ते ! काय-गुप्ततया (कुशल
काय के प्रयोग) में जीव क्या प्राप्त
करता है ?
काय-गुप्तता से वह संवर (अशुभ प्रवृत्ति
के निरोध) को प्राप्त होता है । संवर के
द्वारा कायिक स्थिरता को प्राप्त करने वाला
जीव फिर पाप-कर्म के उपादान-हेतुओं
(आश्रयों) का निरोध कर देता है ।

१. निव्वियारत्तं (ज, स) ।

२. साहजजुत्ते (उ, ऋ०, वृ०) ।

३. निव्वियारे णं जीवे वयगुत्तयं जणयइ (वृ० पा०) ।

सू० ५६—मणसमाहारणयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

मणसमाहारणयाए णं एगमं जणयइ । एगमं जणइत्ता नाणपज्जवे जणयइ । नाणपज्जवे जणइत्ता सम्मतं विसोहेइ मिच्छंतं च निजरेइ ॥

सू० ५६—मनः-समाधारणेन भवन्तः जीवः किं जनयति ?

मनः-समाधारणेन ऐकाग्र्यं जनयति । ऐकाग्र्यं जनयित्वा ज्ञान-पर्यवान् जनयति । ज्ञान-पर्यवान् जनयित्वा सम्यक्त्वं विशोधयति, मिथ्यात्वञ्च निजंरयति ॥

सू० ५६—मन्ते ! मन-समाधारणा (मन को आग्रम-कथित भावों में भली-भाँति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मन-समाधारणा से वह एकाग्रता को प्राप्त होता है । एकाग्रता को प्राप्त होकर ज्ञान-पर्यवो (ज्ञान के विविध प्रकारों) को प्राप्त होता है । ज्ञान-पर्यवों को प्राप्त कर सम्यक्-दर्शन को विशुद्ध और मिथ्या-दर्शन को क्षीण करता है ।

सू० ५७—वयसमाहारणयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

वयसमाहारणयाए णं वय-साहारणदंसणपज्जवे विसोहेइ । वयसाहारणदंसणपज्जवे विसोहेत्ता सुलहबांहियत्तं निव्वत्तेइ दुलह-बोहियत्तं निजरेइ ॥

सू० ५७—वाक्-समाधारणेन भवन्तः जीवः किं जनयति ?

वाक्-समाधारणेन वाक्-साधारण-दर्शन-पर्यवान् विशोधयति । वाक्-साधारण-दर्शन-पर्यवान् विशोध्य सुलभ-बोधिकत्वं निवेनंयति, दुलभ-बोधिकत्वं निजंरयति ॥

सू० ५७ भन्ते! वाक्-समाधारणा (वाणी को व्याख्याय में भली-भाँति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वाक्-समाधारणा से वह भाषा के विषय-भूत दर्शन-पर्यवो (सम्यक्-दर्शन के प्रकारों) को विशुद्ध करता है । वाणी के विषयभूत दर्शन-पर्यवों को विशुद्ध कर बोधि का मूलभूतता को प्राप्त होता है और बोधि की दुर्लभता को क्षीण करता है ।

सू० ५८—कायसमाहारणयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

कायसमाहारणयाए णं चरित्त-पज्जवे विसोहेइ । चरित्तपज्जवे विसोहेत्ता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ । अहक्खायचरित्तं विसोहेत्ता चत्तारि केवलिकम्मसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्जइ बुज्जइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सब्बदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सू० ५८—काय-समाधारणेन भवन्तः जीवः किं जनयति ?

काय-समाधारणेन चरित्र-पर्यवान् विशोधयति । चरित्र-पर्यवान् विशोध्य यथास्थित-चरित्रं विशोधयति । यथा-स्थित-चरित्रं विशोध्य चतुरः केवलिकर्माज्ञानं क्षपयति । ततः पञ्चान् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति, सर्वबुःक्षानामन्तं करोति ॥

सू० ५८—भन्ते ! काय-समाधारणा (संयम-योगों में काय को भली-भाँति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

काय-समाधारणा से वह चरित्र-पर्यवो (चरित्र के प्रकारों) को विशुद्ध करता है । चरित्र-पर्यवों को विशुद्ध कर यथास्थित चरित्र (सीतरागभाव) को प्राप्त करने योग्य विशुद्ध करता है । यथास्थित चरित्र को विशुद्ध कर केवलिक-सत्त (केवली के विद्यमान) चार कर्मा — आयुष्, वेदनीय, नाम और मोक्ष को क्षीण करता है । उसके पश्चात् सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब दुःखों का अन्त करता है ।

सू० ५९—नाणसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

नाणसंपन्नयाए णं जीवे सब्ब-भावाङ्गिणं जणयइ । नाणसंपन्ने णं जीवे चाउरन्ते संसारकत्तारे न विणस्सइ ।

जहा सुई समुत्ता पडिया वि न विणस्सइ ।

तहा जीवे समुत्ते संसारे न विणस्सइ ॥

नाणविणयतवचरित्तजोगे सं-पाउणइ ससमयपरसमय^१ संघाय-णिज्जे भवइ ॥

सू० ६०—दंसणसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

दंसणसंपन्नयाए णं भवमिच्छत्त-ल्लेखणं करेइ, परं न विज्झायइ^२ । 'अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोगमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ'^३ ॥

सू० ६१—चरित्तसंपन्नयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

चरित्तसंपन्नयाए णं सेलसीभावं जणयइ । 'सेलसी पडिवन्ते य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाणइ सब्बदुक्खाण-मन्तं करेइ'^४ ॥

सू० ५९—ज्ञान-सम्पन्नतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

ज्ञान-सम्पन्नतया जीवः सर्व-भावाङ्गिणं जनयति । ज्ञान-सम्पन्नो जीवश्चक्षुरन्ते संसार-कान्तारे न विनश्यति ।

यथा सूची समुद्रा, पतित्तापि न विनश्यति ।

तथा जीवः समुद्रः संसारे न विनश्यति ॥

ज्ञान-विनय-तपश्चरित्त-योगान् सम्प्राप्नोति, स्वस्वमय-परसमय-संघातनीयो भवति ॥

सू० ६०—दर्शन-सम्पन्नतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

दर्शन-सम्पन्नतया भव-मिध्यात्व-छेदनं करोति । परं न विध्यायति अनुत्तरेण ज्ञान-दर्शनेनात्मानं संयोजयन् सम्यग् भावयन् विहरति ॥

सू० ६१—चरित्र-सम्पन्नतया भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

चरित्र-सम्पन्नतया शैलेशी-भावं जनयति । शैलेशीं प्रतिपन्नश्च अनगारः क्षतुरः केवलिकर्मांशान् क्षपयति । ततः पश्चान् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते परिनिर्वाति संबुद्धि-नामन्तं करोति ॥

सू० ५९—भन्ते ! ज्ञान-सम्पन्नता (शुद्ध ज्ञान की सम्पन्नता) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

ज्ञान-सम्पन्नता से वह सब पदार्थों को जान लेता है । ज्ञान-सम्पन्न जीव चार गति-रूप चार भक्तों वाली संसार-अटवी में विनष्ट नहीं होता ।

जिस प्रकार समुद्र (बागें में पड़े हुए) सूई गिरने पर भी गम नहीं होता, उसी प्रकार समुद्र (शुद्ध संहति) जीव संसार में रहने पर भी विनष्ट नहीं होता ।

(ज्ञान-सम्पन्न) अवधि आदि विधिष्ठ ज्ञान, विनय, तप और चरित्र के योगों को प्राप्त करता है तथा स्वसमय और परसमय की व्याख्या या बुझना के लिए प्रामाणिक गुरुत्व माना जाता है ।

सू० ६०—भन्ते! दर्शन-सम्पन्नता (सम्यक्-दर्शन की सम्प्राप्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

दर्शन-सम्पन्नता से वह संसार-पर्वट के हेतु-भूत मिध्यात्व का उच्छेद करता है—आयिक सम्यक्-दर्शन को प्राप्त होता है । उसमें आगे उसकी प्रकाश-विद्या बुझती नहीं । वह अनुत्तर ज्ञान और दर्शन को आत्मता से संयोजित करता हुआ, उन्हे सम्यक् प्रकार से आत्मनात् करता हुआ विहरण करता है ।

सू० ६१—भन्ते ! चरित्र-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

चरित्र-सम्पन्नता से वह शैलेशी-भाव को प्राप्त होता है । शैलेशी-दशा को प्राप्त करने वाला अनगर चार केवलिकर्मों को क्षीण करता है । उसके पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है अरु सब दुःखों का ओत करता है ।

१. 'समय विसारए य (अ) ।

२. विज्झाइ (ज्ञ०) ; वज्झाइ । परं आणाज्झायमाणे (अ) ।

३. अणुत्तरेणं संजोगमाणे सम्मं भावेमाणे अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं विहरइ (अ) ; अनुत्तरेणं नाणदंसणेणं विहरइ (वृ० पा०) ।

४. सेलसी पडिवन्ते विहरइ (वृ०) ; सेलसी पडिवन्ते अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेति, तवो पच्छा सिज्झन्ति (वृ० पा०) ।

सू० ६२—सोइन्द्रियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सोइन्द्रियनिगहेणं मणुन्ता-
मणुन्तेसु सहेसु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू० ६३—चक्खिन्द्रियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

चक्खिन्द्रियनिगहेणं मणुन्ता-
मणुन्तेसु रुवेसु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू० ६४—घाणिन्द्रियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

घाणिन्द्रियनिगहेणं मणुन्ता-
मणुन्तेसु गन्धेषु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू० ६५—जिह्विन्द्रियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

जिह्विन्द्रियनिगहेणं मणुन्ता-
मणुन्तेसु रसेसु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू० ६२—ओत्रेन्द्रिय-निग्रहेण
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

ओत्रेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु
शब्देषु राग-द्वेष-निग्रहं जनयति ।
तत्-प्रत्ययिकं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निज्जरयति ॥

सू० ६३—चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहेण
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

चक्षुरिन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनो-
ज्ञेषु रूपेषु राग-द्वेष-निग्रहं जनयति ।
तत्-प्रत्ययिकं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निज्जरयति ॥

सू० ६४—घ्राणेन्द्रिय-निग्रहेण
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

घ्राणेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु
गन्धेषु राग-द्वेष-निग्रहं जनयति ।
तत्-प्रत्ययिकं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निज्जरयति ॥

सू० ६५—जिह्वेन्द्रिय-निग्रहेण
भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

जिह्वेन्द्रिय-निग्रहेण मनोज्ञा-
मनोज्ञेषु रसेषु राग-द्वेष-निग्रहं
जनयति । तत्-प्रत्ययिकं कर्म न
बध्नाति । पूर्वं-बद्धं च निज्जरयति ॥

सू० ६२—भन्ते ! ओत्रेन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

ओत्रेन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ शब्दों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह शब्द सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्वं-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६३—भन्ते ! चक्षु-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

चक्षु-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ रूपों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह रूप सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्वं-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६४—भन्ते ! घ्राण-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

घ्राण-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ गन्धों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह गन्ध सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्वं-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ६५—भन्ते ! जिह्वा-इन्द्रिय का
निग्रह करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

जिह्वा-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ
और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष
का निग्रह करता है । वह रस सम्बन्धी राग-
द्वेष के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्वं-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६६—फासिन्दियनिगहेणं
भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
फासिन्दियनिगहेणं मणुन्ता-
मणुन्तेसु फासेसु रागदोसनिगहं
जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६७—कोहविजएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
कोहविजएणं खन्ति जणयइ
कोहवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६८—माणविजएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
माणविजएणं मद्दवं जणयइ
माणवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ पुव्व-
बद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६९—मायाविजएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
मायाविजएणं उज्जुभावं जणयइ
मायावेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०७०—लोभविजएणं भन्ते !
जीवे किं जणयइ ?
लोभविजएणं संतोसीभावं
जणयइ लोभवेयणिज्जं कम्मं न
बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सू०६६—स्पशोन्निव-निग्रहेण
भन्त ! जीवः किं जनयति ?
स्पशोन्निव-निग्रहेण मनोभा-
मनोशेषु स्पशेषु राग-दोष-निग्रहं
जनयति । तत्-प्रत्ययिकं कर्म न
बध्नाति । पूर्वं-बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६७—क्रोध-विजयेन भन्त !
जीवः किं जनयति ?
क्रोध-विजयेन क्षान्तिं जनयति ।
क्रोध-वेदनीयं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६८—मान-विजयेन भन्त !
जीवः किं जनयति ?
मान-विजयेन मार्दवं जनयति ।
मान-वेदनीयं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६९—माया-विजयेन भन्त !
जीवः किं जनयति ?
माया-विजयेन शृङ्गुभावं जनयति ।
माया-वेदनीयं कर्म न बध्नाति । पूर्वं-
बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०७०—लोभ-विजयेन भन्त !
जीवः किं जनयति ?
लोभ-विजयेन सन्तोषीभावं
जनयति । लोभ-वेदनीयं कर्म न
बध्नाति । पूर्वं-बद्धं च निर्जरयति ॥

सू०६६—भन्ते ! स्पर्श-इन्द्रिय का निग्रह
करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?
स्पर्श-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और
अमनोज्ञ स्पर्शों में होने वाले राग और द्वेष का
निग्रह करता है । वह स्पर्श सम्बन्धी राग-द्वेष
के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६७—भन्ते ! क्रोध-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?
क्रोध-विजय से वह क्षमा को उत्पन्न
करता है । वह क्रोध-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६८—भन्ते ! मान-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?
मान-विजय से वह मृदुता को उत्पन्न
करता है । वह मान-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०६९—भन्ते ! माया-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?
माया-विजय से वह शृङ्गुता को उत्पन्न
करता है । वह माया-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू० ७०—भन्ते ! लोभ-विजय से जीव
क्या प्राप्त करता है ?
लोभ-विजय से वह सन्तोष को उत्पन्न
करता है । वह लोभ-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं
करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण
करता है ।

सू०७१—प्रेज्जदोसमिच्छा-
एणं भन्ते! जीवे किं
जणयइ ?

सू०७१—प्रेयो-दोष-मिथ्यादर्शन-
विजयेन भवन्त ! जीवः किं जनयति ?

सू०७१—भन्ते ! प्रेम, द्वेष और मिथ्या-
दर्शन के विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रेज्जदोसमिच्छादंसणविजएणं
नाणदंसणचरित्तराहणयाए अब्भुट्ठेइ ।
'अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगण्ठि-
विमोयणयाए'^१ तप्पढमयाए जहाणु-
पुव्वि अट्ठवीसइविहं मोहाणज्जं
कम्मं उग्घाएइ पंचविहं नाणा-
वरणज्जं नवविहं दंसणावरणज्जं^२
पंचविहं अन्तराय एए तन्नि वि
कम्मसे जुगवं खवेइ । तओ पच्छा
अणुत्तरं अणंतं कसिणं पडिपुणं
निरावरणं वित्तिमिरं विसुद्धं लोगा-
लोगप्पभावमं^३ केवल-वरनाणदंसणं
समुप्पाडेइ । जाव सजोगी भवइ ताव
य इरियावहियं कम्मं बन्धइ सुहं-
फरिसं दुसमयठिइयं । तं पढमसमए
बद्धं बिइयसमए वेइयं तट्ठयसमए
नज्जिणं^४ तं बद्धं पुट्ठं उदोरियं
वेइयं निज्जिणं सेयाले य अकम्मं
चावि भवइ ॥

प्रेयो-दोष-मिथ्यादर्शन-विजयेन
ज्ञान-दर्शन-चारित्र्याराधनायां अभ्यु-
त्तिष्ठते । अष्टविधस्य कर्मणः कर्म-
गन्थि-विमोचनाय तत्प्रयत्नतया
यथानुपूर्वि अष्टाविंशतिविधं मोहनीयं
कर्मोद्घातयति । पंचविधं ज्ञाना-
वरणोपयम् नवविधं दर्शनावरणायं
पंचविधमन्तरायं एतान् श्रौतपि
कर्माज्ञान युगपन् क्षपयति । ततः
पश्चादनुत्तरं अनन्तं कृत्स्नं प्रतिपू-
निरावरणं वित्तिमिरं विशुद्धं लोका-
लोक-प्रभावकं केवलवरज्ञान-दर्शनं
समुत्पादयति । यावत्-सयोगी भवति
तावद्वैपायिकं कर्म बध्नाति सुख-
स्पर्शं द्विसमय-स्थितिकम् । तत् प्रथम-
समये बद्धं द्वितीय-समये वेदितं तृतीय-
समये निर्जोषं तत्र बद्धं स्पृष्टमूढोरितं
वेदितं निर्जोषं एष्यत्काले चाकर्मचापि
भवति ॥

प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन के विजय से
बह ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की आराधना के
लिए उद्यत होता है । आठ कर्मों में जो कर्म-
गन्धि (वाच्य-कर्म) है, उसे खोलने के लिए
बह उद्यत होता है । वह जिससे पहले कभी भी
पूर्णतः क्षीण नहीं कर पाया उस अट्ठाईस
प्रकार वाले मोहनीय कर्म को क्रमशः सर्वथा
क्षीण करता है, फिर वह पाँच प्रकार वाले
ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार वाले दर्शनावरणोपय
और पाँच प्रकार वाले अन्तराय—इन तीनों
विद्यमान कर्मों को एक साथ क्षीण करता है ।
उसके पश्चात् वह अनुत्तर, अनन्त, कृत्स्न,
प्रतिपूर्ण, निरावरण, तिमिर रहित, विशुद्ध,
लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाले
केवल ज्ञान और केवल दर्शन को उत्पन्न करता
है । जब तक वह सयोगी होता है तब तक
उसके ईयो-पयिक-कर्म का बन्ध होता है । वह
बन्ध सुख-स्पर्श (पुण्य-मय) होता है । उसकी
स्थिति दो समय की होती है और तीसरे समय
में वह निर्जोष हो जाता है । वह कर्म बद्ध
होता है, स्पृष्ट होता है, उदय में आता है,
भोगा जाता है, नष्ट हो जाता है और अन्त में
वकर्म भी हो जाता है ।

१. अट्ठविहकम्म विमोचणाए (६० पा०) ।

२. दंसणावरणं (३, पा०) ।

३. लोगालोगसभावं (६० पा०) ।

४. निज्जिणं (अ) ।

सू० ७२—अहाउयं पालइता
अन्तोमुहुतद्वावसेसाउए^१ जोगनिरोहं
करेमाणे सुहुमकिरियं अप्पडिवाइ
सुक्कम्भाणं भ्मायमाणे तप्पडमयाए
'मणजोगं निरुम्भइ २ ता वइजोगं
निरुम्भइ २ ता आणापाणुनिरोहं'^२
करेइ २ ता ईसि पंचरहस्सकक्ख-
रुच्चारद्वाए यणं अणगारे समुच्छिन्न-
किरियं अनियट्टिसुक्कम्भाणं भ्माय-
माणे वेयणज्जं आउयं नामं गोत्तं
च एए चत्तारि वि^३ कम्मसे जुगव^४
खवेइ ॥

सू० ७३—तओ ओरालिय-
कम्माइ च सव्वाहि विप्पजह्णाहि
विप्पजहिता उज्जुसेडिप्पते अफुसमाण-
गई उड्डं एगसमएणं अविग्गहेणं
तत्थ गन्ता सागारोवउत्ते सिज्झइ
बुज्झइ मुच्चइ परिनिब्बाएइ सव्व-
दुक्खाणमन्तं करेइ^५ ॥

एस खलु सम्मतपरकमसस
अऊर्ध्वयणसस अट्ठे समणेणं भगवया
महावीरेणं आधविए पन्नविए
परुविए दंसिए^१ उवदंसिए ॥

—ति बेमि ।

सू० ७२—अथ आयुष्कं पालयित्वा-
न्तर्मूहताश्चावसेषायुष्कः योग-निरोधं
कुर्वणः सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति शुक्ल-
ध्यानं ध्यायन् तत्प्रथममया मनो-योगं
निरुणद्धि निरुध्य बाण-योगं निरुणद्धि
निरुध्य आनापान-निरोधं करोति
कृत्वा ईषत् पंच ह्रस्वाक्षरोच्चारणाध्वनि
च अनगारः समुच्छिन्नक्रियं अनिवृत्ति
शुक्लध्यानं ध्यायन् वेदनीयमायुष्कं
नाम गोत्रज्जं तान् चतुरः कर्मांशान्
युगपत् अपयति ॥

सू० ७३—तत औदारिक-कामेणे च
सर्वाभिः विप्रहाणिभिः विप्रहाय श्रृज-
श्रेणिप्राप्तो स्पृशन्न-गतिरुच्छां एक सम-
येन अविग्रहेण तत्र गत्वा साकारोपयुक्तः
सिष्यति बुध्यते मुच्यते परिनिर्वाति
सर्वदुःखानामन्तं करोति ॥

एष खलु सम्यक्त्वपराक्रमस्या-
ध्ययनस्यायः श्रमणेन भगवता
महावीरेणालयातः प्रज्ञापितः प्ररूपितः
दशितः उपदशितः ॥

—इति ब्रवीमि ।

सू० ७२—केवली होने के पश्चात् वह
शेष आयुष्य का निर्वाह करता है । जब
अन्तर-मूर्तों परिमाण आयु शेष रहती है, तब
वह योग-निरोध करने में प्रवृत्त होता है । उस
समय सूक्ष्म-क्रिय अवप्रतिपाति नामक शुक्ल
ध्यान में लीन बना हुआ वह सबसे पहले मनो-
योग का निरोध करता है । फिर बचन-योग
का निरोध करता है, उसके पश्चात् आनापान
(उच्छ्वाससन्निवास) का निरोध करता है ।
उसके पश्चात् स्वल्पकाल तक पाँच ह्रस्वाक्षरों
अ ए उ ऋ लृ का उच्चारण किया जाए उतने
काल तक समुच्छिन्न-क्रिय अनिवृत्ति नामक
शुक्ल ध्यान में लीन बना हुआ अनगार वेदनीय,
आयुष्य, ताम और पात्र—इन चारों सत्कर्मा
को एक साथ क्षीण करता है ।

सू० ७३—उसके अनन्तर ही औदारिक और
कामेण वरीर को पूर्ण अनस्तित्व के रूप में छोड़
कर वह मोक्ष स्थान में पहुँच साकारोपयुक्त
(ज्ञानप्रवृत्ति काल) में सिद्ध होता है, बुद्ध होता
है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब
दुःखों का अन्त करता है । विद्वद्धाने में पूर्वं
बह श्रृजश्रेणी (आकाश-प्रदेशों की सीधी
पंक्ति) से गति करता है । उसकी गति ऊपर
को होती है, आत्म-प्रदेश जितने हो आकाश-
प्रदेशों का स्पर्श करने वाली होनी है और एक
ममय की होती है—श्रृजु होती है ।

सम्यक्त्व-पराक्रम अध्ययन का यह
पूर्वोक्त अर्थ श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा
आख्यात, प्रज्ञापित, प्ररूपित, दशित और
उपदशित है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. अन्तोमुहुतद्वावसेसाउए (बु० पा०) ; अन्तोमुहुतावसेसाउए (उ, श्रु०, इ० पा०) ।

२. मणजोगं निरुम्भइ वइजोगं निरुम्भइ आणापाणुनिरोहं करेइ (बु०) ; मणजोगं निरुम्भइ, वइजोगं निरुम्भइ, आणापाणु (आ, ह) ।

३. × (उ, श्रु०) ।

४. × (उ, श्रु०) ।

५. (क) इह च वर्णिहना—“लेखीएणं अन्ते ! जीवे किं जणयइ ? अकम्मयं जणति, अकम्मयाए जीवा सिज्झन्ति” इति पठः, पूर्वत्र च
क्वचित्किञ्चिद्व्याप्तमेवेनाल्प एव प्रश्ना आश्रिताः, अस्माभिस्तु भूयसीषु प्रतिबुध्यान्वाख्यातवाद्यद्वयनाविष्टमुन्मीलितमिति (बु० पा०) ।
(ब) लेखीएणं अन्ते ! जीवे किं जणयइ ? अकम्मयं जणति अकम्मयाए जीवा सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्यन्ति परिनिर्वायन्ति सव्वदुक्खानां अन्तं
करोति (वृ०) ।

६. दंसिए निर्दंसिए (बु०) ।

तीसहमं अज्झयणं :
तवमग्गई

त्रिसम अध्वयन :
तपो-भार्ग-गति

आस्तुत्स

तपस्या मोक्ष का मार्ग है। उससे तपस्वी की मोक्ष की ओर गति होती है—यह इस अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है। इसलिए इस अध्ययन का नाम 'तपमग्गगई'—'तपो-मार्ग-गति' है।^१

प्रत्येक संसारी ओष प्रातःकृष्ण कुष्ठ-न-कुष्ठ प्रवृत्ति अवश्य करता है। जब वह सक्रिय होता है तब वह सुख हो जाता है। जहाँ प्रवृत्ति है वहाँ कर्म-पुद्गलों का आकर्षण और निर्जरण होता है। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है—शुभ और अशुभ। शुभ प्रवृत्ति से अशुभ कर्मों का निर्जरण और शुभ-कर्म (पुण्य) का बन्ध होता है। अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ-कर्म (पाप) का बन्ध होता है।

तपस्या कर्म-निर्जरण का मुख्य साधन है। इससे आत्मा पवित्र होती है।

भारतीय साधना-पद्धति में तपस्या का प्रमुख स्थान रहा है। जैन और वैदिक मनीषियों ने उसे साधना का अपारिहार्य अंग माना है। बौद्ध तत्त्व-द्रष्टा उससे उदासीन ही रहे हैं।

महात्मा बुद्ध अपनी साधना के प्रथम चरण में उग्र तपस्वी थे। उन्होंने कई वर्षों तक कठोर तपस्या की थी, परन्तु जब उन्हें सफलता नहीं मिली तब उन्होंने उसे अपनी साधना में स्थान नहीं दिया।

जैन-साधना के अनुसार तपस्या का अर्थ काय-वर्त्तन या उपवास ही नहीं है। स्वाध्याय, ध्यान, विनय आदि सब तपस्या के विभाग हैं।

काय-वर्त्तन और उपवास अकरणीय नहीं हैं और उनकी सबके लिए कोई समान मर्यादा भी नहीं है। अपनी ऊर्ष और शक्ति के अनुसार जो जितना कर सके उसके लिए उतना ही विहित है।

जैन-दृष्टि से तपस्या दो प्रकार की है—बाह्य और आभ्यन्तर।

बाह्य तप के छह प्रकार हैं—

- १—अनशन;
- २—अवमोदरिका;
- ३—मिक्षा-चर्या;
- ४—रस-परित्याग;
- ५—काय-वर्त्तन और
- ६—प्रतिसंलीनता।

इनके आचरण से देहाध्यास छूट जाता है। देहासक्ति साधना का विघ्न है। इसीलिए मनीषियों ने देह के ममत्व-त्याग का उपदेश दिया है। शरीर धर्म-साधना का साधन है इसलिए उसकी निताम्य उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। देहासक्ति विलासिता और प्रमाद को जन्म देती है। परन्तु धर्म-साधना के लिए देह की सुरक्षा करना भी निताम्य अपेक्षित है। जैन-मुनि का 'वोसहृत्तदेहे'^२—यह विशेषण देहासक्ति के त्याग का परिचायक है।

^१—अपराधधर्म निर्दोष, पाथा ५१३ :

दुर्विहृतवोसगगई, धम्मिक्कं अहं इत्थं अक्कचमे।

उम्हा एअक्कचणं, तप्पसरागगहि वाचण्वं॥

१-२—अनशन और अवमोदरिका से मूल और प्यास पर विजय पाने की ओर गति होती है।

३-४—भिक्षा-चर्या और रस-परित्याग से आहार को लालसा सीमित होती है। जिह्वा की लोलुपता मिटती है और निद्रा, प्रमाद, उन्माद आदि को प्रोत्साहन नहीं मिलता।

५—काय-वर्तेश से सङ्घिष्णुता का विकास होता है। देह में उत्पन्न दुःखों को समभाव से सहने की वृत्ति बनती है।

६—प्रतिसंलोकता से आत्मा की सन्निधि में रहने का अभ्यास बढ़ता है।

आभ्यन्तर तप के छह भेद हैं—

१—प्रायश्चित्,

२—विनय,

३—वैथावृत्त्य,

४—स्वाध्याय,

५—ध्यान और

६—व्युत्सर्ग।

१—प्रायश्चित् से आतिथार-मोहता और साधना के प्राप्ति जागरूकता विकसित होती है।

२—विनय से अभिमान-मुक्ति और परस्परोपग्रह का विकास होता है।

३—वैथावृत्त्य से सेवाभाव पनपता है।

४—स्वाध्याय से विविधा त्यक्त हो जाते हैं।

५—ध्यान से एकाग्रता, एकाग्रता से मानसिक विकास एवं मन तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण पाने की क्षमता बढ़ती है और अन्त में उनका पूर्ण निरोध हो जाता है।

६—व्युत्सर्ग से शरीर, उपकरण आदि पर हाने वाले ममत्व का विसर्जन होता है।

अथवा तप दो प्रकार का है—सकाम और असकाम। एकनात्र मोक्ष-साधना को दृष्टि से किया जाने वाला तप सकाम होता है। और इसके अतिरिक्त अन्यान्य उपलक्ष्यों के लिए किया जाने वाला असकाम। जैन साधना-पद्धति में सकाम तप की उपादयता है और उसे ही पूर्ण पवित्र माना गया है।

तप के तीन प्रकार भी किए गए हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक। शौच, आर्जव, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करना कायिक तप है। प्रिय, हितकर, सत्य और अनुत्तम वचन बोलना, स्वाध्याय में रत रहना वाचिक तप है। आत्म-निग्रह, मोक्ष-मात्र, सोम्यता आदि मानसिक तप है।

शिष्य ने पूछा—“मन्ते। तप से जीव क्या प्राप्त करता है ?”

मगवान् ने कहा—“तप से वह पूर्व-संचित कर्मों का क्षय कर विमुक्ति को प्राप्त होता है। इस विमुक्ति से वह मन, वचन और शरीर को प्रवृत्ति के पूर्ण निरोध को प्राप्त होता है। अक्रियावान् होकर वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और दुःखों का अन्त करता है।”^१

मगवान् ने कहा—“ब्रह्मलोक के निमित्त तप मत करो। परलोक के लिए तप मत करो। इलावा-प्रशंसा के लिए तप मत करो। केवल निर्जरा के लिए—आत्म-विमुक्ति के लिए तप करो।”^२

तपस्या के अवाप्तर भेदों का निरूपण आगमों तथा व्याख्या-ग्रन्थों में प्रचुरता से हुआ है।

१—उत्तराध्ययन, २६। २०२७, २८।

२—व्याख्यात्मक, ६। १। सू० ६।

तीसहमं अजज्ञयणं : त्रिंशु अध्वयन तवमगगई : तपो-मार्ग-गति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—जहा उ पावगं कम्मं रागदोससमज्झिं । खवेइ तवसा भिक्खू तमेगगमणो सुण ॥	यथा तु पावकं कर्म राग-दोष-समजितम् । क्षपयति तपसा भिक्षुः तमेकाग्र-मनाः शृणु ॥	१—राग-द्वेष से अजित पाप-कर्म को भिक्षु तपस्या से जित प्रकार क्षीण करता है, उसे एकाग्र-मन होकर सुन ।
२—पाणवहमुसावाया' अदत्तमेहुणपरिग्गहा विरओ । राईंभोयणविरओ जीवो भवइ अणासवो ॥	प्राणवध-मृषावादा- ऽवस्त-सैषुन-परिग्रहेभ्यो विरतः । रात्रिभोजन-विरतो जीवो भवति अनाश्रवः ॥	२—प्राण-वध, मृषावाद, अवस्त-ग्रहण, मैषुन, परिग्रह और रात्रि-भोजन से विरत जीव अनाश्रव होता है ।
३—पंचसमिओ तिगुत्तो अकसाओ जिइन्दिओ । अगारवो य निस्सल्लो जीवो होइ अणासवो ॥	पंच-समितस्त्रि-गुप्तः अकषायो जितेन्द्रियः । अपौरुषेय निःशल्पः जीवो भवत्यनाश्रवः ॥	३—पाँच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, अकषाय, जितेन्द्रिय, अपौरुष (गर्व रहित) और निःशल्प- जीव अनाश्रव होता है ।
४—एएसि तु विवच्चासे' रागदोससमज्झिं । 'जहा खवयइ भिक्खू' 'तं मे एगमणो' सुण ॥	एतेषां तु विव्यत्यासे राग-दोष-समजितम् । यथा क्षपयति भिक्षुः तन्मे एक-मनाः शृणु ॥	४—इनसे विपरीत आचरण में राग-द्वेष से जो कर्म उपाजित होता है, उसे भिक्षु जिस प्रकार क्षीण करता है, उसे एकाग्र-मन होकर सुन ।
५—जहा महातलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे । उत्सिञ्चणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे ॥	यथा महातडागत्य सन्निरुद्धे जलागमे । उत्सेवनेन तपनेन क्रमेण शोषणं भवेत् ॥	५—जिस प्रकार कोई बड़ा तालाब जल आने के मार्ग का निरोध करने से, जल को उलीचने से, सूर्य के ताप से क्रमशः सूख जाता है—

१. पाणिबइ मुसावाए (उ, ऋ०) ।

२. विवच्चासे (इ०) ।

३. कमेइ अ जहा कम्मं (उ, ऋ०) ; खवेइ तं जहा भिक्खू (इ०) ।

४. तं मे एगमणो (स) ; तमेकवमणो (उ०) ।

६—'एवं तु' संजयस्सावि
पावकम्मनिरासवे ।
भवकोटीसंचियं कम्मं
तवसा निज्जरिज्जइ ॥

एवं तु संयतस्यापि
पापकर्म-निरासवे ।
भव-कोटी-संख्यितं कर्म
तपसा निर्जय्यते ॥

६—उसी प्रकार संयमी मुख्य के पाप-
कर्म बाने के मार्ग का निरोध होने से करोड़ों
भवों के संचित कर्म तपस्या के द्वारा निर्जोण
हो जाते हैं ।

७—सो तवो दुविहो वुत्तो
बाहिरम्भन्तरो तथा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो
एवमम्भन्तरो तवो ॥

तत्तपो द्विविधमुक्तं
बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
बाह्यं षड्विधमुक्तं
एवमाभ्यन्तरं तपः ॥

७—वह तप दो प्रकार का कहा है—
(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर ।
बाह्य तप छह प्रकार का है, उसी प्रकार
आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का है ।

८—अणसणमूणोरियया
भिक्षावरियया यरसपरिखाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य
वज्झो तवो होइ ॥

अनशनमूनोदरिका
भिक्षा-चर्या च रस-परित्यागः ।
काय-क्लेशः संलीनता
च बाह्यं तपो भवति ॥

८—(१) अनशन, (२) ऊनोदरिका,
(३) भिक्षा-चर्या, (४) रस-परित्याग, (५)
काय-क्लेश और (६) संलीनता—यह बाह्य
तप है ।

९—इत्तिरिया मरणकाले
'दुविहा अणसणा' भवे ।
इत्तिरिया सावकंखा
निरवकंखा बिइज्जिया ॥

इत्वरकं मरण-कालं
अनशनं द्विविधं भवेत् ।
इत्वरकं सावकाङ्क्षं
निरवकाङ्क्षं द्वितीयम् ॥

९—अनशन दो प्रकार का होता है—
(१) इत्वरिक, (२) मरण-काल । इत्वरिक
सावकांक्ष (अनशन के पश्चात् भोजन की
इच्छा से युक्त) और दूसरा निरवकांक्ष (भोजन
की इच्छा से मुक्त) होता है ।

१०—जो सो इत्तरियतवो
सो समासेण छव्विहो ।
सेडितवो पयरतवो
घणो य 'तह होइ वगो य' ॥

यत्त इत्वरिकं तपः
तत्समासेन षड्विधम् ।
अधि-तपः प्रतर-तपः
घनदच तथा भवति वर्गदच ॥

१०—जो इत्वरिक तप है, वह संक्षेप में
छह प्रकार का है—(१) अधि-तप, (२) प्रतर-
तप, (३) घन तप, (४) वर्ग-तप,

११—तत्तो य वगवग्गो उ
पंचमो छट्ठो पडण्तवो ।
मणइच्छियचित्तत्थो
नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥

ततदच वर्गवर्गस्तु
पंचमं षष्ठकं प्रकीर्णतपः ।
मनईप्पितचित्रायं
ज्ञातदय भवति इत्वरकम् ॥

११—(५) वर्ग-वर्ग-तप, (६) प्रकीर्ण-
तप ।
इत्वरिक तप नाना प्रकार के मनो-
बांछित फल देने वाला होता है ।

१. एमेव (अ) ।

२. ° काळा व (उ, ख०) ।

३. अणसणा दुविहा (उ, ख०, घ०) ।

४. निरकंखा उ (घ०) ; निरवकंखा उ (छ०) ; निरवकंखा (घ० पा०) ।

५. वगो चउत्थो उ (अ) ।

तबमगगई (तपो-मार्ग-गति)

४२३

अध्ययन ३० : श्लोक १२-१६

१२—जा सा अनसणा मरणे
दुविहा सा वियाहिया ।
सवियारअवियारा^१
कायचिट्ठं पई भवे ॥

यत्सदनशनं मरणे
द्विविधं तद्व्याख्यातम् ।
सविचारमविचारं
काय-चेष्टां प्रति भवेत् ॥

१२—मरण-काल अनशन के काय-चेष्टा के आधार पर सविचार और अविचार—ये दो भेद होते हैं ।

१३—अहवा 'सपरिकम्मा
अपरिकम्मा'^२ य आहिया ।
नीहारिमणीहारी
आहारच्छेओ य दोसु वि ॥

अथवा सपरिकर्म
अपरिकर्म व्याख्यातम् ।
निर्हारि अनिर्हारि
आहारच्छेदश्च द्वयोरपि ॥

१३—अथवा इसके दो भेद ये होते हैं—
(१) सपरिकर्म और (२) अपरिकर्म ।

१४—ओमोयरियं^३ पंचहा
समासेण वियाहियं ।
दव्वओ खेत्तकालेण^४
भावेण^५ पज्जवेहि य ॥

अवमौदर्यं पंचधा
समासेन व्याख्यातम् ।
द्रव्यतः क्षेत्र-कालेन
भावेन पर्यवैश्व ॥

१४—अविचार अनशन के (१) निर्हारी और (२) अनिर्हारी—ये दो भेद होते हैं । आहार का त्याग दोनों (सविचार और अविचार तथा सपरिकर्म और अपरिकर्म) में होता है ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्यायों की दृष्टि से अवमौदर्य (अनौदरिका) संक्षेप में पाँच प्रकार का है ।

१५—जो जस्स उ आहारो
ततो ओमं^६ तु जो करे ।
जहत्तेण्णेगसित्थाई
एवं दव्वेण ऊ भवे ॥

यो यस्य त्वाहारः
ततोऽवमं तु यः कुर्यात् ।
जघन्येनैकसिक्खावि
एवं द्रव्येण तु भवेत् ॥

१५—जिसका जितना आहार है उससे कम खाता है, कम से कम सिक्ख (धाम्य कण) खाता है और उल्लङ्घितः एक कवल कम खाता है, वह द्रव्य से अवमौदर्य तप होता है ।

१६—गामे नगरे तह रायहाणि-
निगमे य आगरे पल्ली ।
खेडे कब्बडदोणमुहु-
पट्टणमडम्बसंवाहे ॥

ग्रामे नगरे तथा राजधानी
निगमे खाडकरे पल्ल्याम् ।
खेटे कवंट-द्रोणमुख-
पत्तन-मडम्ब-सम्वाहे ॥

१६—ग्राम, नगर, राजधानी, निगम, आकर, पल्ली, खेडा, कवंट, द्रोणमुख, पत्तन, मण्डप, संवाह,

१. सविचारमविचारा (अ, झ०, ट०, ध०) ।

२. सपरिकम्मा अपरिकम्मा (अ) ।

३. ओमोयरियं (अ, झ०, पा०, झ०) ।

४. कित्तओ काके (झ०) ; क्षेत्र काके य (अ) ।

५. भावेण (अ) ।

६. ऊमं (अ) ।

१७—आसमपए विहारे
सन्निवेशे समायघोसे य ।
धलिसेणाखन्वारे
सत्ये संवट्टकोट्टे य ॥

आश्रम-पदे विहारे
सन्निवेशे सम्राज-घोषे च ।
स्थली-सेना-रक्षन्वाचारे
सार्धेसंवर्त-कोट्टे च ॥

१७—आश्रम-पद, विहार, सन्निवेश,
समाज, घोष, स्थली, सेना का शिविर, सार्ध,
संवर्त, कोट,

१८—वाडेसु व रच्छासु व
घरेमु वा एवमित्तिं खेत्तं ।
कप्पइ उ एवमाई
एवं खेत्तेण ऊ भवे ॥

वाटेषु वा रक्ष्यासु वा
गृहेषु बंशमेतावत् क्षेत्रम् ।
कल्पे त्वेवमादि
एवं क्षेत्रेण तु भवेत् ॥

१८—पाड़ा, गुलियाँ, घर—इनमें अथवा
इस प्रकार के अन्य क्षेत्रों में से पूर्व निश्चय के
अनुसार निर्धारित क्षेत्र में भिक्षा के लिए जा
सकता है । इस प्रकार यह क्षेत्र से अवमोदय
तप होता है ।

१९—पेडा य अद्धपेडा
गोमुत्तिपयंगवीहिया चैव ।
सम्बुकावट्टाऽययगन्तुं
पञ्चागया छट्टा ॥

पेटा सार्ध-पेटा
गोमूत्रिका पतंग-वीथिका चैव ।
शम्बूकावर्ता
आयत्त-गत्वा-प्रत्यागता षष्ठी ॥

१९—(प्रकारान्तर से) पेटा, अर्द्ध-पेटा,
गोमूत्रिका, पतंग-वीथिका, शम्बूकावर्ता और
आयत्त-गत्वा-प्रत्यागता - यह छह प्रकार का
क्षेत्र से अवमोदय तप होता है ।

२०—दिवसस्य पोरुसीणं
चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो ।
एवं चरमाणो खलु
कालोमाणं मुणेयव्वो' ॥

दिवसस्य पोरुशीणं
क्षतसृणामपि तु यावान् भवेत् कालः ।
एवं चरतः खलु
कालावसानं ज्ञातव्यम् ॥

२०—दिवस के चार प्रहरों में जितना
अभिग्रह-काल हो उसमें भिक्षा के लिए
जाऊंगा, अन्यथा नहीं—इस प्रकार क्या करने
वाले मूनि के काल से अवमोदय तप होता है ।

२१—अहवा तइयाए पोरिखीए
ऊणाइ घासमेसन्तो ।
चउभागुणए वा
एवं कालेण ऊ भवे ॥

अथवा तृतीयायां पोरुष्यां
ऊनायां घासमेवयन् ।
चतुर्भागोनायां वा
एवं कालेन तु भवेत् ॥

२१—अथवा कुछ न्यून तीसरे प्रहर
(चतुर्थ भाग आदि न्यून प्रहर) में जो भिक्षा
की एषणा करता है, उसे (इस प्रकार) काल से
अवमोदय तप होता है ।

२२—इत्थो वा पुरिसो वा
अलंकिओ वाऽणलंकिओ वा वि ।
अन्नयरवयथो वा
अन्नयरेण व वत्थेण ॥

एत्री वा पुक्खो वा
अलङ्कृतो वाऽणलङ्कृतो वापि ।
अन्धतर-वयस्थो वा
अन्धतरेण वा वत्त्रेण ॥

२२—एत्री अथवा पुष्प, अलङ्कृत वयवा
अलङ्कृत, वयुक् वय वाले, अयुक् वय वाले—

२३—अन्नेण विसेसेण
वण्णेण भावमणुमुयन्ते उ ।
एवं चरमाणो खलु
भावोमाणं मुण्येव्वो^१ ॥

अन्नेन विशेषेण
वर्णेन भावमनुमुचन् तु ।
एवं चरतः खलु
भावभावमानं ज्ञातव्यम् ॥

२३—अमुक विशेष प्रकार की दशा वर्ण या भाव से युक्त दाता से भिक्षा ग्रहण कर्त्तवा, अन्यथा नहीं—इस प्रकार चर्या करने वाले मुनि के भाव से अवमोदय तप होता है ।

२४—दव्वे खेत्ते काले
भावम्मि य आहिया उ जे भावा ।
एएहि ओमचरओ
पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥

द्रव्ये क्षेत्रे काले
भावे आख्यातास्तु ये भावाः ।
एतैरवमचरकः
पर्यवचरको भवेद्भिक्षुः ॥

२४—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो पर्याय (भाव) कहे गए हैं, उन सबके द्वारा अवमोदय करने वाला भिक्षु पर्यवचरक होता है ।

२५—अट्टविहागोयरग्गं तु
तहा सत्तेव एसणा ।
अभिग्गहा य जे अन्ने
भिक्खाययरियमाहिया ॥

अष्टविधागोचरस्तु
तथा सप्तवैषणा ।
अभिग्रहादय ये अन्ये
भिक्षा-चर्या आख्याता ॥

२५—आठ प्रकार के गोचराग्र तथा सात प्रकार की एषणाएँ और जो अन्य अभिग्रह हैं, उन्हें भिक्षा-चर्या कहा जाता है ।

२६—खीरदहिसप्पिमाई
पणोयं पाणभोयणं ।
परिवज्जणं रसाणं तु
भणियं रसविवज्जणं ॥

क्षीर-दधि-सपिरादि
प्रणीतं पान-भोजनं ।
परिवर्जनं रसानां तु
भणितं रस-विवर्जनम् ॥

२६—दूध, दही, घृत आदि तथा प्रणीत पान-भोजन और रसों के वर्जन को रस-विवर्जन तप कहा जाता है ।

२७—ठाणा वीरासणाईया
जोवस्स उ मुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जन्ति
कायकिलेसं तमाहियं ॥

स्थानानि वीरासनादिकानि
जोवस्य तु सुखावहाणि ।
उप्राणि यथा धार्यन्ते
काय-क्लेशः स आख्यातः ॥

२७—आत्मा के लिए सुखकर वीरासन आदि उक्त आसनों का जो अभ्यास किया जाता है, उसे कायक्लेश कहा जाता है ।

२८—एगन्तमणावाए
इत्थोपसुविवज्जिए ।
सयणासनसेवणया
विवित्तसयणासनं ॥

एकान्तेऽनापाते
स्त्री-पशु-विवर्जिते ।
शयनासन-सेवनं
विविक्त-शयनासनम् ॥

२८—एकान्त, अनापात (जहाँ कोई आता-जाता न हो) और स्त्री-पशु आदि से रहित शयन और आसन का सेवन करना विविक्त-शयनासन (संलीनता) तप है ।

२९—एसो बाहिरगतवो
समासेन वियाहिओ ।
अब्भित्तरं 'तवं एतो'^१
वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥

एतद्बाह्यकं तपः
समासेन व्याख्यातम् ।
आभ्यन्तरं तप इतो
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

२९—यह बाह्य तप संक्षेप में कहा गया
है । अब मैं अनुक्रम से आभ्यन्तर तप को
कहूँगा ।

३०—पायच्छित्तं विणओ
वेयावच्चं तहेव सज्जाओ ।
'क्काणं च विउत्सग्गो'^२
'एसो अब्भित्तरो तवो'^३ ॥

प्रायश्चित्तं विनयः
वेयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यानं च व्युत्सर्गः
एतदाभ्यन्तरं तपः ॥

३०—प्रायश्चित्त, विनय, वेयावृत्त्य,
स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग—यह आभ्यन्तर
तप है ।

३१—आलोयणारिहाईयं
पायच्छित्तं तु दसविहं ।
जे भिक्खू वहई सम्मं
पायच्छित्तं तमाहियं ॥

आलोचनाहर्दिकं
प्रायश्चित्तं तु दशविधम् ।
यद्भिक्खुर्वहति सम्यक्
प्रायश्चित्तं तदाख्यातम् ॥

३१—आलोचनाहर्द आदि जो दस प्रकार
का प्रायश्चित्त है, जिसका भिक्षु सम्यक्
प्रकार से पालन करता है, उसे प्रायश्चित्त
कहा जाता है ।

३२—अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं
तहेवासणदायणं ।
गुरुभक्तिभावसुसूसा
विणओ एस वियाहिओ ॥

अभ्युत्थानसञ्जलि-करणं
तथैव आसन-दानम् ।
गुरु-भक्तिः भाव-शुश्रूषा
विनय एव व्याख्यातः ॥

३२—अभ्युत्थान (खड़े होना), हाथ
जोड़ना, आसन देना, गुरुजनों की भक्ति करना,
और भावपूर्वक शुश्रूषा करना विनय
कहलाता है ।

३३—आयरियमाइयम्मि^४ य
वेयावच्चम्मि दसविहे ।
आसेवणं जहायामं
वेयावच्चं तमाहियं ॥

आचार्यादिके च
वेयावृत्त्ये दशविधे ।
आसेवनं यथास्थाय
वेयावृत्त्यं तदाख्यातम् ॥

३३—आचार्य आदि सम्बन्धी दस प्रकार
के वेयावृत्त्ये का यथाशक्ति आसेवन करने को
वेयावृत्त्य कहा जाता है ।

३४—वायणा पुच्छणा चेव
तहेव परियट्ठणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा
सज्जाओ पंचहा भवे ॥

वाचना प्रच्छना चैव
तथैव परिवर्तना ।
अनुप्रेक्षा धर्म-कथा
स्वाध्यायः पञ्चधा भवेत् ॥

३४—स्वाध्याय पाँच प्रकार का
होता है—

- (१) वाचना (अध्यापन)
- (२) प्रच्छना
- (३) परिवर्तना (पुनरावृत्ति)
- (४) अनुप्रेक्षा (अर्थ-चिन्तन) और (५) धर्म-
कथा ।

१. तवो इतो (उ, ऋ०) ।

२. क्काणं उत्सग्गो वि व (उ, ऋ०, स) ।

३. अब्भित्तरओ तवो होइ (उ, ऋ०, स) ।

४. आयरिमाइए (उ, ऋ०) ।

तवमग्गई (तपो-मार्ग-गति)

४२७

अध्ययन ३० : श्लोक ३५-३७

३५—अट्टरुहाणि वज्जित्ता
भाएज्जा सुसमाहिण ।
धम्मसुक्काइ भाणाइ
भाणं तं तु बुहा वए ॥

आस-रीद्रे बर्जयित्वा
ध्यायेत् सुसमाहितः ।
धर्म-शुक्ले ध्याने
ध्यानं तत्तु बुधा वदन्ति ॥

— ३५—सुसमाहित मुनि आसं और रीद्रे
ध्यान को छोड़ कर धर्म और शुक्ल ध्यान का
अभ्यास करे । बुध-जन उसे ध्यान कहते हैं ।

३६—सयणासणठाणे वा
जे उ भिक्खू न वावरे ।
कायस्स विउत्सग्गो
छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥

शयनासन-स्थाने वा
यस्तु भिक्षुनं व्याप्रियते ।
कायस्य व्युत्सर्गः
षष्ठः स परिकीर्तितः ॥

३६—सोने, बैठने या सड़े रहने के समय
जो भिक्षु व्यापृत नहीं होता (काया को नहीं
हिलावा-डूलावा) उसके काया की चेष्टा का
जो परित्याग होता है, उसे व्युत्सर्ग कहा जाता
है । वह आत्मन्तराप का छठा प्रकार है ।

३७—एयं तवं तु दुविहं
जे सम्मं आयरे मुणो ।
'से खिप्पं सव्वसंसार
विप्पमुच्चइ पण्डिण' ॥
—त्ति वेमि ।

एवं तपस्तु द्विविधं
यत्सम्यगाचरेन्मुनिः १) :
स क्षिप्रं सर्व-संसारान्
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति ब्रवीमि ।

३७—इस प्रकार जो पण्डित मुनि दोनों
प्रकार के तपों का सम्यक् रूप से आचरण
करता है, वह क्षीघ्र ही समस्त संसार से मुक्त
हो जाता है ।

—ऐसा-मैं कहता हूँ ।

१. सो कनेसुरयं अरको

नीरयं तु गहं गण ॥ (५० पा०) ।

इस अध्ययन के आदि के दो श्लोकों तथा अन्त के एक श्लोक को छोड़ कर शेष १८ श्लोकों में “जे भिक्खु अयइ भिक्खं, से न अण्डइ मण्डले” —ये दो चरण समान हैं। इनके अध्ययन से भिक्षु के स्वरूप का सहज ज्ञान हो जाता है। साथ-साथ संसार-मुक्ति के साधनों का भी ज्ञान होता है।

इस अध्ययन में एक से तेईस तक की संख्या में अनेक विषयों का ग्रहण हुआ है। उनमें से कुछ शब्दों का विस्तार अन्य अध्ययनों में प्राप्त होता है। जैसे—कपाय का २१।६७-७० में, ध्यान का ३०।३५ में, व्रत का २१।१२ में, इन्द्रिय-अर्थ का ३२।२३, ३६, ४६, ६२, ७५ में, समिति का २४।२ में, लेइया का २४।३ में, छडु जोवनिक्काय का ३६।६६, १०७ में, आहार के छडु कारण का २६।३२-३४ में और ब्रह्मचर्य गुणि का १६ में।

इसे पन्द्रहवें अध्ययन ‘संभिवसु’ का परिशेष भी माना जा सकता है। समवायांग (३३) तथा आवश्यक (४) में भी इस अध्ययन में वर्णित विषयों का उल्लेख हुआ है।

सातवें श्लोक से २१ वें श्लोक तक ‘यत्तते’ का प्रयोग हुआ है। इसका सामान्य अर्थ ‘चरन करता है’ होता है। प्रसंगानुसार यत्न का अर्थ है—पालनीय का पालन, परिहरणीय का परिहार, ज्ञेय का ज्ञान और उपदेष्टव्य का उपदेश।

सगतीसठमं अज्झवणं :
चरणविही

सकत्तिख अज्झवण :
चरण-विधि

सगतीसङ्गमं अजल्लयणं : सर्कात्रिंश अध्यायन

चरणविही : चरण-विधि:

मूल

१—चरणविहि पवक्खामि
जोवस्स उ सुहायहं ।
जं चरित्ता बहू जीवा
तिण्णा संसारसागरं ॥

संस्कृत छाया

चरण-विधि प्रवक्ष्यामि
जीवस्य तु सुहायहम् ।
यं चरित्वा बहवो जीवाः
तीर्णाः संसार-सागरम् ॥

हिन्दी अनुबाद

१—अब मैं जीव को सुख देने वाली उस
चरण-विधि का कथन कहूँगा जिसका आचरण
कर बहुत से जीव संसार-सागर को तर गए ।

२—एगओ विरइं कुज्जा
एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियतिं च
संजमे य पवत्तणं ॥

एकतो विरतिं कुर्यान्
एकतश्च प्रवर्तनम् ।
असंयमान्निवृत्तिं च
संयमे च प्रवर्तनम् ॥

२—भिन्नु एक स्थान से निवृत्ति करे
और एक स्थान में प्रवृत्ति करे । असंयम से
निवृत्ति करे और संयम में प्रवृत्ति करे ।

३—रागदोसे य दो पावे
पावकम्मपवत्तणे ।
जे भिक्खू हम्मई निच्चं
से न अच्छइ^१ मण्डले ॥

राग-दोषो य द्वौ पापौ
पाप-कर्म-प्रवर्तकौ ५
यो भिक्षुः रुणद्धि नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

३—राग और द्वेष—ये दो पाप पाप-कर्म
के प्रवर्तक हैं । जो भिक्षु इनका सदा निरोध
करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

४—दण्डाणं गारवाणं च
सल्लाणं च तियं तियं ।
जे भिक्खू चयई निच्चं
से न अच्छइ^१ मण्डले ॥

दण्डानां गौरवाणां च
शल्यानां च त्रिकं त्रिकम् ।
यो भिक्षुस्त्यजति नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

४—जो भिक्षु तीन-तीन दण्डों, गौरवों
और शल्यों का सदा त्याग करता है, वह
संसार में नहीं रहता ।

५—दिब्बे य जे^२ उवसग्गे
तहा तेरिच्छमाणुसे ।
जे भिक्खू सहई निच्चं
से न अच्छइ^३ मण्डले ॥

विष्वाशे यानुपसर्गान्
तथा तैरद्वैतैश्चमानुवान् ।
यो भिक्षुः सहते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

५—जो भिक्षु देव, तिर्यञ्च और मनुष्य
सम्बन्धी उपसर्गों को सदा सहता है, वह संसार
में नहीं रहता ।

१, २. अच्छइ (अ, वृ०पा०) ।

३. × (अ, वृ०पा०) ।

४. अच्छइ (अ, वृ०पा०) ।

आनुसूच

इस अध्ययन में मुनि की चरण-विधि का निरूपण हुआ है, इसलिए इसका नाम 'चरणविधि' — 'चरण-विधि' है। चरण का प्रारम्भ यतना से होता है और उसका अन्त पूर्ण निवृत्ति (अक्रिया) में होता है। निवृत्ति के इस उत्कर्ष को प्राप्त करने के लिए जो मध्यवर्ती साधना की जाती है, वह चरण है। मोक्ष प्राप्ति को चार साधनाओं में यह तीसरी साधना है।^१

प्रवृत्ति और निवृत्ति—ये दोनों साधना के अंग हैं। मन, वचन और काया को गुप्ति का अर्थ है निवृत्ति। मन, वचन और काया के सम्यक् प्रयोग का अर्थ है प्रवृत्ति। चौबीसवें अध्ययन (श्लोक २६) में बताया गया है कि समितियों से चरण का प्रवर्तन होता है और गुप्तियों से अशुभ-अर्थों का निवर्तन होता है—

रयाओ पंच समिद्धौ, चरणस्स य पवचणे।

गुप्ती नियचणे वृत्ता, असुमत्पेसु सव्वसो ॥

प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों सापेक्ष शब्द हैं। निवृत्ति का अर्थ पूर्ण निषेध नहीं है और प्रवृत्ति का अर्थ पूर्ण विधि नहीं है। प्रत्येक निवृत्ति में प्रवृत्ति और प्रत्येक प्रवृत्ति में निवृत्ति रहती है। इसके अनुसार निवृत्ति का अर्थ होता है—एक कार्य का निषेध और दूसरे कार्य की विधि तथा प्रवृत्ति का अर्थ होता है—एक कार्य की विधि और दूसरे कार्य का निषेध। इसी तथ्य को प्रस्तुत अध्ययन के दूसरे श्लोक में प्रतिपादित किया गया है—

रगओ विरद्धं कुज्जा, रगओ य पवचणे।

असंजमे नियसिं थ, संजमे य पवचणे ॥

इससे एक यह तथ्य निष्पन्न होता है कि प्रत्येक प्रवृत्ति सम्यक् नहीं होती। किन्तु निवृत्ति में से जो प्रवृत्ति फलित होती है, वह ही सम्यक् होती है। उसी का नाम चरण-विधि है। इसे साधना-पद्धति भी कहा जा सकता है।

भगवान् महावीर की चरण-विधि का प्रारम्भ संयम से होता है। उसका आचरण करते हुए जिन विषयों को स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिए, उन्हीं का इस अध्ययन में सांकेतिक उल्लेख है। किन्तु कुछ विषय ऐसे भी हैं, जिनका संयम-पालन से सम्बन्ध नहीं किन्तु वे श्रेयसात्र हैं। जैसे—परमाधार्मिकों के पन्द्रह प्रकार (श्लोक १२) तथा देवताओं के चौबीस प्रकार (श्लोक १६)।

ग्यारह उपासक-प्रतिमाओं का भी मुनि के चरण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। सम्भव है संख्या-पूर्ति की दृष्टि से इन्हें सम्मिलित किया गया हो।

छेद-सूत्रों की रचना श्रुत-केवली भद्रबाहु ने की। उनका सत्रहवें और अठारहवें श्लोक में नामोल्लेख हुआ है। इससे दो सम्भावनाओं की ओर ध्यान जाता है—

१—उत्तराध्ययन की रचना छेद-सूत्रों की रचना के पश्चात् हुई है।

२—उत्तराध्ययन की रचना एक साथ नहीं हुई है।

दूसरा विकल्प ही अधिक सम्भव है।

६—विगहाकसायसन्नाणं
भाषाणं च दुयं तथा ।
जे भिक्खू वज्जई निच्चं
से न अच्छइ^१ मण्डले ॥

विकथा-कषाय-सन्नानां
ध्यानयोश्च द्विकं तथा ।
यो भिक्षुर्वज्यति नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

६—जो भिक्षु विकथाओं, कषायों,
संज्ञाओं तथा आसं और रोग—इन दो ध्यानों का
सदा वर्जन करता है, वह संसार में नहीं
रहता ।

७—वएसु इन्द्रियत्थेसु
‘समिइसु किरियासु य’^२ ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

व्रतेष्विन्द्रियाद्येषु
समितेषु क्रियासु च ।
यो भिक्षुर्व्रतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

७—जो भिक्षु व्रतों और समितियों के
पालन में, इन्द्रिय-विषयों और क्रियाओं के
परिहार में सदा यत्न करता है, वह संसार में
नहीं रहता ।

८—लेसासु छसु काएसु
छक्के आहारकारणे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

लेइयासु वट्सु कायेषु
वट्के आहार-कारणे ।
यो भिक्षुर्व्रतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

८—जो भिक्षु छह लेइयाओं, छह कायों
और आहार के (विधि-निषेध के) छह
कारणों में सदा यत्न करता है, वह संसार में
नहीं रहता ।

९—पिण्डोग्गाहपडिमासु
भयट्ठाणसु सत्तसु ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

पिण्डावग्रह-प्रतिमासु
भय-स्थानेषु सत्तसु ।
यो भिक्षुर्व्रतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

९—जो भिक्षु, आहार-ग्रहण की मात्रा
प्रतिमाओं में और मान भय-स्थानों में सदा
यत्न करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१०—मयेसु वम्भगुत्तीसु
भिकवुधम्ममि दसविहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

मयेसु ब्रह्म-गुप्तिषु
भिक्षु-धर्मं दशचिहे ।
यो भिक्षुर्व्रतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१०—जो भिक्षु आठ मदन-स्थानों में,
ब्रह्मचर्य की ती गृहियों में और दस प्रकार के
भिक्षु-धर्म में सदा यत्न करता है, वह संसार
में नहीं रहता ।

११—उवासगणं पडिमासु
भिकवूणं पडिमासु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

उपासकानां प्रतिमासु
भिक्षूणां प्रतिमासु च ।
यो भिक्षुर्व्रतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

११—जो भिक्षु उपासकों की म्यारह
प्रतिमाओं तथा भिक्षुओं की बारह प्रतिमाओं
में सदा यत्न करता है, वह संसार में नहीं
रहता ।

१. अच्छइ (अ, वृ० पा०) ।

२. समीनाउ य महव य (वृ० पा०) ।

चरणविही (चरण-विधि)

४३५

अच्ययन ३१ : श्लोक १२-१७

१२—किरियासु भूयामेसु
परमाह्मिणसु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

क्रियासु भूत-प्राप्तेषु
परमाध्यात्मिकेषु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१२—जो भिक्षु तेरह क्रियाओं, चौदह
बीज-समुदायों और पन्द्रह परमाध्यात्मिक देवों
में सदा यत्न करता है, वह संसार में नहीं
रहता ।

१३—गाहासोलसएहि
तहा अस्संजमम्मि य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

गाथा-बोडशकेषु
तथाऽसंयमे च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१३—जो भिक्षु गाथा-बोडशक (सूत्र-
कृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्यायनों)
और सनह प्रकार के असंयम में सदा यत्न
करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१४—बम्भम्मि नायज्झयणेसु
ठाणेसु यऽ समाहिण ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

ग्रहपणि ज्ञाताध्ययनेषु
स्थानेषु चाऽलमाधेः ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१४—जो भिक्षु अठारह प्रकार के
ग्रहचर्य, उन्नीस ज्ञात-अध्ययनों और बीस
असमाधि-स्थानों में सदा यत्न करता है, वह
संसार में नहीं रहता ।

१५—एगवीसाण सबलेसु
बावीसाण परीसहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

एकविंशतीशबलेषु
द्वाविंशतीपरीषहेषु ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१५—जो भिक्षु दक्कीम प्रकार के सबल-
दोषों और बाईस परीषहों में सदा यत्न करता
है, वह संसार में नहीं रहता ।

१६—तेवीसइ सूर्यगडे
रूवाहिणसु सुरेसु अ ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

त्रयोविंशतीसूरकृतेषु
रूपविशेषेषु सुरेसु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१६—जो भिक्षु सूरकृतांग के तीस
अच्ययनों और चौबीस प्रकार के देवों में सदा
यत्न करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१७—पणवीसभावणाहिं
उद्देसेसु दसाइणं ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

पंचविंशति-भावनासु
उद्देशेषु दशादीनाम् ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१७—जो भिक्षु पचीस भावनाओं और
दशाधुतस्केषु, व्यवहार और बृहत्कल्प के
छब्बीस उद्देशों में सदा यत्न करता है, वह
संसार में नहीं रहता ।

१८—अणगारगुणेहि च
पक्कप्पम्मि तहेव य' ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

अणगार-गुणेषु च
प्रकल्पे तथैव च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१८—जो भिक्षु साधु के सत्ताईस गुणों
और अठाईस आचार-प्रकल्पों में सदा यत्न
करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

१९—पावसुयपसगेसु
मोहडाणेषु चेव य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

पाप-श्रुत-प्रसंगेषु
मोह-स्थानेषु चैव च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

१९—जो भिक्षु उनकी पाप-श्रुत
प्रसंगों और तीस मोह के स्थानों में सदा यत्न
करता है, वह संसार में नहीं रहता ।

२०—सिद्धाद्दिगुणजोगेसु
तेत्तीसासायणासु^१ य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मण्डले ॥

सिद्धादिगुण-योगेषु
अप्यस्त्रिंशदासातनासु च ।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं
स न आस्ते मण्डले ॥

२०—जो भिक्षु सिद्धों के इकतीस आदि
गुणों, बत्तीस योग-संग्रहों तथा तृतीस आशात-
नाशों में सदा यत्न करता है, वह संसार में
नहीं रहता ।

२१—इह एएसु ठाणेषु
जे भिक्खू जयई सया ।
खिप्पं से सव्वसंसारा
विप्पमुच्चइ पण्डिओ^२ ॥
—त्ति बेमि ।

इत्येतेषु स्थानेषु
यो भिक्षुर्यतते सदा ।
भिक्खुं स सर्व-संसाराह
विप्रमुच्यते पण्डितः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२१—जो पण्डित भिक्षु इस प्रकार इन
स्थानों में सदा यत्न करता है, वह क्षीप्र ही
समस्त संसार से मुक्त हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. उ (उ, ख, घ, ङ) ।

२. ० नाणि (अ) ।

बन्नीसहमं अज्जय्यणं :
पमायट्टाणं

द्वान्निष्ठं अज्जय्यणं :
प्रमाद-स्थान

आस्तुत्य

इस अध्ययन में प्रमाद के कारण तथा उनके निवारण के उपायों का प्रतिपादन किया गया है। इसलिये इसका नाम 'पमायद्धारण'—'प्रमाद-स्थान' है। प्रमाद साधना का विधन है। उसका निवारण कर साधक जितेन्द्रिय बनता है। प्रमाद के प्रकारों का विभिन्न क्रमों में संकलन हुआ है :

१—प्रमाद के पाँच प्रकार^१—

मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विक्रया ।

२—प्रमाद के छह प्रकार^२—

मद्य, निद्रा, विषय, कषाय, द्यूत और प्रतिलेखना ।

३—प्रमाद के आठ प्रकार^३—

अज्ञान, संशय, मिथ्या-ज्ञान, राग, द्वेष, स्मृति-भ्रंश, धर्म में अनादर, मन, वचन और काया का दुष्टप्रणिधान ।

मानसिक, वार्षिक और कार्यात्मक—इन सभी दुःखों का मूल है विषयों की सतत आकांक्षा ।

विषय आपात-भद्र (सेवन काल में सुखद) होते हैं किन्तु उनका परिणाम विरस होता है। शास्त्रकारों ने उन्हें 'किपाक फल' की उपमा से उपमित किया है। (श्लो० १६, २०)

आकांक्षा के मूल हैं—राग और द्वेष। वे संसार-अमण के हेतु हैं। उनको विद्यमानता में वीतरागता नहीं आती। वीतराग-भाव के बिना जितेन्द्रियता सम्पन्न नहीं होती।

जितेन्द्रियता का पहला साधन है—आहार-विवेक। साधक को प्रणीत आहार नहीं करना चाहिए। अर्ति-मात्रा में भोजन नहीं करना चाहिए। बार-बार नहीं खाना चाहिए। प्रणीत या अर्ति-मात्रा में किया हुआ आहार उद्दीपन करता है, उससे वासनाएँ उभरती हैं और मन खंचल हो जाता है।

इसी प्रकार एकान्तवास, अल्पभोजन, विषयों में अननुरक्ति, दृष्टि-संयम, मन, वाणी और काया का संयम, चिन्तन की पवित्रता—ये भी जितेन्द्रिय बनने के साधन हैं।

प्रथम ३१ श्लोकों में इन उपायों का विशद निरूपण हुआ है। पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होने से क्या-क्या दोष उत्पन्न होते हैं ? उनके उत्पादन, संरक्षण और व्यापरण से क्या-क्या दुःख उत्पन्न होते हैं ?—इन प्रश्नों का स्पष्ट समाधान मिलता है।

१—उत्तराध्ययन निर्णय, गाथा ५२० :

२—स्थानां ६, सूत्र ५०२ :

छत्विहं पमादं पण्णते—तं जहा—मज्जपमाद, णिहापमाद, विसवपमाद, कसायपमाद, ज्ञयपमाद, पक्खिहणपमाद ।

३—प्रबन्धन सारोद्धार, द्वार २०७, गाथा ११२२, ११२३ :

पमाओ ष मणिदेहि, भणिओ अट्टपेयओ ।

अन्नाणं संसओ येव, मिच्छानाणं तहैव य ॥

रागो दोषो मरुभंसो, धम्मस्मि ष अणापरो ।

जोगाणं दुप्पणीहाणं, अट्ठा वज्जियव्वओ ॥

जब तक व्यक्ति इन सब उपायों को जान कर अपने आचरण में नहीं उतार लेता तब तक वह दुःखों के दारुण परिणामों से नहीं छूट सकता ।

विषय अपने आप में अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं है । वह व्यक्ति के राग-द्वेष से सम्मिश्रित होकर अच्छा या बुरा बनता है । इन्द्रिय तथा मन के विषय वीतराग के लिए दुःख के हेतु नहीं हैं, राग-यस्त व्यक्ति के लिए वे परम दारुण परिणाम वाले हैं । इसलिए ब्रम्हचर्य और मुक्ति अपनी ही प्रवृत्ति पर अवलम्बित है ।

जो साधक इन्द्रियों के विषयों के प्रति विरक्त है, उसे उनकी मनोज्ञता या अनमोज्ञता नहीं सताती । उसने समता का विराट होता है । साम्य के विराट से काम-गुणों को पुष्पा का नाश हो जाता है और साधक उत्तरोत्तर गुणस्थानों में आरोह करता हुआ लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । (स्क० १०६, १०७, १०८)

साधना को दृष्टि से इस अध्ययन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । अप्रमाद ही साधना है । साधक को प्रति १५ अमनस्य जागृक रहना चाहिए । नियुक्तिकार ने बताया है कि भगवान् ऋषभ साधना में प्रायः अप्रमत्त रहे । उनका साधना-काल हजार वर्ष का था । उसमें प्रमाद-काल एक दिन-रात का था । भगवान् महावीर ने बारह वर्ष और तेरह पञ्चम साधना की । उसमें प्रमाद-काल एक अन्तर्मुहूर्त का था । दोनों तोषिकारों के प्रमाद-कालों में नियुक्तिकार ने 'संकलित-काल' कहा है । इसका तात्पर्य यह है कि एक दिन-रात और एक अन्तर्मुहूर्त का प्रमाद एक साथ नहीं हुआ था । किन्तु उनके साधना-काल में जो प्रमाद हुआ, उसे संकलित किया जाए तो वह एक दिन-रात और एक अन्तर्मुहूर्त का होता है ।^१

शान्त्याचार्य ने बताया है कि कुछ आचार्य अनुपपत्ति के भय से भगवान् ऋषभ और महावीर के प्रमाद को केवल निद्रा-प्रमाद मानते हैं ।^२ किन्तु नियुक्तिकार और शान्त्याचार्य का यह अभिमत नहीं है और वह संगत भी है । नियुक्तिकार के निरूपण का उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार भगवान् ऋषभ और महावीर अधिक से अधिक अप्रमत्त रहे हैं, उसी प्रकार सब भ्रमण भी अधिक से अधिक अप्रमत्त रहे ।

१—क) उत्तराध्ययन नियुक्ति, पाथा ५२३, ५२४ :

वाससहस्रं उग्रं, तथमाह्वारस्स आयरंतस्स ।
ओ किर पमायकाळो, अहोरत्तं तु संकलितं ॥
वासवासे अहिए, तव चरंतस्स वदमाणस्स ।
ओ किर पमायकाळो, अंतमुदुत्तं तु संकलितं ॥

(क) बृहद्बृहति, पत्र ६२० :

किमथयेकावस्यमाविनः प्रमादस्य काल उताप्ययेत्यायह्वयाह—संकलितः, किमुकं भवति ?—अप्रमादगुणस्यानन्तमौदृष्टिकल्पेनानेकावधिं प्रमादवातौ तद्विषयविषयवृत्तत्वात्तन्मुहूर्तस्य ह्येयमेव वात्सल्यमातिवृत्तमथा संकलितप्रकृत्यामप्यहोरात्रमेवाम्बु तथा द्वाय वर्षाग्यविकानि सपर्यवर्तो वर्तमानस्य यः किल प्रमादकालः प्राक्कालोऽन्तर्मुहूर्तमेव संकलितः, इहाप्यन्तर्मुहूर्तामसहस्रेष्वेकस्याप्यमावस्थितविषयान्तर्मुहूर्तानां सुस्मत्त्वं, संकलनान्तर्मुहूर्तस्य च बृहत्तरत्वमिति भावनीयम् ।

२—बृहद्बृहति, पत्र ६२० :

अन्यं त्वेत्तदनुपपत्तिभीत्या निद्राप्रमाद एवायं विवक्षित इति व्याचक्षत इति ।

वनीसङ्गमं अज्ज्ञयणं : द्वात्रिंश अध्वयन

प्रमायट्टाणं : प्रमाद-स्थानम्

मूल

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

- १—अचन्तकालस्स समूलगस्स
सव्वस्स दुक्खस्स उ जां पमाक्खो ।
तं भासओ मे पडिपुणञ्जित्ता
मुण्ह एग्गहियं^१ हियत्थं ॥
- २—नाणस्स सव्वस्स^२ पगासणाए
अन्ताणमोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स थ संखएणं
एगन्तसोक्खं समुवेइ मांक्खं ॥
- ३—तस्सेस मग्गा गुरुविद्धसेवा
विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।
'सज्जायएगन्तनिसेवणा य'^३
मुत्तत्थसं चिन्तणया धिई य ॥
- ४—आहारमिच्छे^४ मियमेसणिज्जं
सहायमिच्छे निउणत्थवुद्धिं^४ ।
निकेयमिच्छेज्ज विवेकजांगं
समाधिकामं समणे तवस्सो ॥
- ५—न वा लभेज्जा निउणं सहायं
गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
एको वि पावाइ विवज्जयन्तो^५
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

- अत्यन्त-कालस्य समूलकस्य
सर्वस्य दुःखस्य तु यः प्रमोक्षः ।
तं भाषमाणस्य से प्रतिपूर्ण-चित्ताः
शृणुनकाग्र्य-हितं हितायम् ॥
- ज्ञानस्य सर्वस्य प्रकाशनया
अज्ञान-मोहस्य विवर्जनया ।
रागस्य दोषस्य च संश्लेषेण
एकान्त-सौख्यं समुपैति मोक्षम् ॥
- तस्यैव मार्गो गुरु-बुद्ध-सेवा
विवर्जना बाल-जनस्य दूरात् ।
स्वाध्यायैकान्त-निषेवणा च
सूत्रार्थ-संविन्तना धूर्तिदिव ॥
- आहारमिच्छेन्मिमतमेवणीयं
सहायमिच्छेन्नपुणाथं-बुद्धिम् ।
निकेतमिच्छेद् विवेक-प्राप्त्यं
समाधिकामः श्रमणस्तपस्वी ॥

न वा लभेत निपुणं सहायं
गुणाधिकं वा गुणतः समं वा ।
एकोऽपि पापानि विवर्जयन्
विहरेत् कामेष्वसज्जन् ॥

१—अनादि-कालीन सब दुःखों और उनके कारणों (कषाय आदि) के मोक्ष का जो उपाय है वह मैं कह रहा हूँ। वह ऐकाग्र्य-हित (ध्यान के लिए हितकर) है, अतः तुम प्रतिपूर्ण चित्त होकर हित (मोक्ष) के लिए मुनो ।

२—सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश, अज्ञान और मोह का नाश तथा राग और द्वेष का क्षय होने में आत्मा एकान्त मूलमय मोक्ष को प्राप्त होता है ।

३—गुरु और बुद्धों (स्थविर मुनियों) की सेवा करना, अज्ञानी-जनों का दूर से हो वर्जन करना, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना तथा धैर्य रखना, यह मोक्ष का मार्ग है ।

४—समाधि चाहने वाला तपस्वी श्रमण परिमित और एवणीय आहार को छोड़ा करे । जीव आदि पदार्थ के प्रति निपुण बुद्धि वाले नीतार्थ को सहायक बनाए और विविक्त (स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित) घर में रहे ।

५—यदि अपने में अधिक गुणबान् या अपने गमान निपुण सहायक न मिले तो वह पापों का वर्जन करता हुआ, विषयों में अनासक्त रह कर अकेला ही विहार करे ।

१. एगन्त' (५० पा०, छ०) ।

२. सव्वस्स (५० पा०, छ०, आ) ।

३. 'निसेवणा य (५० पा०) ; 'निसेवणा य (५०) ।

४. निउणत्थ' (५० पा०) ।

५. अणासक्को (५० पा०) ।

६—जहा य अण्डप्पभवा बलागा
अण्ड बलागप्पभवं जहा य ।
एमेव मोहाययणं सु तण्हं^१
मोहं च तण्हाययणं वयन्ति ॥

यथा व्याण्ड-प्रभवा बलाका
अण्ड बलाका-प्रभवं यथा च ।
एवमेव मोहायतनं खलु तृष्णां
मोहं च तृष्णायतनं वदन्ति ॥

६—जैसे बलाका अण्ड में उत्पन्न होती है और अण्ड बलाका से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तृष्णा मोह में उत्पन्न होती है और मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है ।

७—रागो य दोसो वि य कम्मवीयं
कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति ।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं
दुक्खं च जाईमरणं वयन्ति ॥

रागइव दोषोऽपि च कर्म-बीजं
कर्म च मोह-प्रभवं वदन्ति ।
कर्म च जाति-मरणस्य मूलं
दुःखं च जाति-मरणं वदन्ति ॥

७—राग और द्वेष कर्म के बीज हैं । कर्म मोह में उत्पन्न होता है और वह जन्म-मरण का मूल है । जन्म-मरण को दुःख को मूल कहा गया है ।

८—दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो
मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो
लोहो हओ जस्स न किचणाइ^२ ॥

दुःखं हनं यस्य न भवति मोहो
मोहो हतो यस्य न भवति तृष्णा ।
तृष्णा हता यस्य न भवति लोभः
लोभो हतो यस्य न किञ्चनानि ॥

८—जिसके मोह नहीं है, उसने दुःख का नाश कर दिया । जिसके तृष्णा नहीं है, उसने मोह का नाश कर दिया । जिसके लोभ नहीं है, उसने तृष्णा का नाश कर दिया । जिसके पाप कुछ नहीं है, उसने लोभ का नाश कर दिया ।

९—रागं च दोसं च तद्देव मोहं
उद्धत्तकामेण समूलजालं ।
जे जे 'उवाया पडिवज्जियव्वा'^३
ते कित्तइस्सामि अहाण्पुण्वि ॥

रागं च दोषं च तथैव मोहं
उद्धर्तुकामेन समूलजालम् ।
ये ये उपायाः प्रतिपत्तव्याः
तान् कीर्तयिष्यामि यथानुपूर्वि ॥

९—राग, द्वेष और मोह का समूल उन्मूलन चाहने वाले भूमि को जिन-जिन उपायों का आलम्बन लेता चाहेगा उन्हें मैं क्रमशः बतूँगा ।

१०—रसा पगामं न निसेवियव्वा
पायं रसा दित्तकरा^४ नराणं ।
दित्तं च कामा समभिद्वन्ति
दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥

रसाः प्रकामं न निषेवितव्याः
प्राप्यो रसा दत्तिकरा नराणाम् ।
दत्तं च कामाः समभिद्वन्ति
दुमं यथा स्वादुफलमिव पक्षिणः ॥

१०—रसों का प्रकाम (अधिक मात्रा में) सेवन नहीं करना चाहिए । वे प्रायः मनुष्य की धातुओं को उड़ोस करते हैं । जिसकी धातुएं उड़ोस होती हैं उसे काम-भोग खाने हैं, जैसे स्वादित फल वाले पक्षी को पक्षा ।

११—जहा दवगो पउरिन्धणे वणे
समाओ नोवसमं उवेइ ।
एविन्दियगो वि पगामभोजो
न बम्भयारिस्स हियाय कस्सई ॥

यथा दवाग्निः प्रचुरेन्धने बने
स-मास्तो नोपशममुपैति ।
एवमिन्द्रियाग्निरपि प्रकामभोजिनो
न ब्रह्मचारिणो हिताय कस्यचित् ॥

११—जैसे पवन के भोको के साथ प्रचुर इन्धन वाले वन में लगा हुआ दावानल उप-शान्त नहीं होता, उसी प्रकार प्रकाम-भोजी (दूस-दूस कर खाने वाले) की इन्द्रियाग्नि (कामाग्नि) शान्त नहीं होती । इसलिए प्रकाम-भोजन किसी भी ब्रह्मचारी के लिए हितकर नहीं होता ।

१. तण्हा (अ) ।

२. किचमत्थि (हु० पा०) ।

३. अवाया परि^० (हु० पा०) ।

४. दित्तकरा (हु० पा०) ।

१२—विविक्तमेजासणजन्तियाणं
ओमासणाणं^१ दमिइन्दियाणं ।
न रागसत्तु धरिसेइ चित्तं
पराइओ वाहिरिवासहेहि ॥

१३—जहा विगालावसहस्स मूले
न मुसमाणं वसहो पसत्था ।
एमेव इत्थो निलयस्स मज्जे
न बम्भयारिस्स समो निवासो ॥

१४—न रुवलावणविलासहासं
न जप्पिय इगियपेहियं^२ वा ।
इत्थो जणं चित्तं निवेसइत्ता
दट्ठं ववस्से समणे तवस्सी ॥

१५—अदंसणं चेव अपत्थणं च
अविन्तणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थो जणस्सारियभाजो गमं
हिय सया वम्भवए^३ रयाणं ॥

१६—कामं तु देवीहि विभूसियाहि
न चाइया खोभइउं तिगुत्ता ।
तहा वि एगन्तहियं ति नचा
विवित्तवासो^४ मुणिणं^५ पसत्थो ॥

विविक्त शब्दायन-यन्त्रितानां
अवमाशनानां दमितेन्द्रियाणाम् ।
न राग-शत्रुं धर्ययति चित्तं
पराजितो व्याघ्रिबोवधेः ॥

यथा विडालावसयस्य मूले
न मूषकाणां वसतिः प्रशस्ता ।
एवमेव स्त्री-निलयस्य मध्ये
न ब्रह्मचारिणः क्षमो निवासः ॥

न रूप-लावण्य-विलास-हासं
न जल्पितमिगितं वीक्षितं वा ।
स्त्रीणां चित्तं निवेद्य
दृष्टुं व्यवस्थेत् श्रमणस्तपस्वी ॥

अवशेन चैवाप्रायेणं न
अविन्तनं चैवाकीर्तनं च ।
स्त्रीजनस्याप्रायध्यान-योग्यं
हितं सदा ब्रह्मव्रतेरतानाम् ॥

कामं तु देवीभिर्बिभूषिताभिः
न शक्ताः शोभयितुं त्रिगुणाः ।
तथाप्येकान्तहितमिति ज्ञात्वा
विविक्त-वासो मुनीनां प्रशस्तः ॥

१२—जो विविक्त-शय्या और बासन से
नियंत्रित होते हैं, जो कम खाते हैं और
जितेन्द्रिय होते हैं, उनके चित्त को राग-शत्रु
वैसे ही आक्रान्त नहीं कर सकता—जैसे
ओषध से पराजित रोग देह को ।

१३—जैसे बिल्ली की बस्ती के पास बूढ़ों
का रहना अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार
स्त्रियों की बस्ती के पास ब्रह्मचारी का रहना
अच्छा नहीं होता ।

१४—तपस्वी श्रमण स्त्रियों के रूप,
लावण्य, विलास, हास्य, मधुर आलाप,
इङ्गित और चितवन को चित्त में रमा कर उन्हें
देखने का संकल्प न करे ।

१५—जो मदा ब्रह्मचर्य में रत हैं, उनके
लिए स्त्रियों को न देखना, न चाहना, न
चिन्तन करना और न वर्णन करना हितकर है
तथा धर्म-ध्यान के लिए उपयुक्त है ।

१६—यह ठीक है कि तीन गुणों से
गुप्त मुनियों को विभूषित देवियों भी विचलित
नहीं कर सकतीं, फिर भी भगवान् ने एकान्त
हित की दृष्टि से उनके विविक्त-वास को
प्रशस्त कहा है ।

१. ओमासणाए, ओमासणाई (६०, पा०) ।

२. 'वीहिचं' (६०, ड०) ।

३. बंभवेरे (ड, पु० पा०, मू०) ।

४. 'वासो' (ड, मू०) ।

५. मणिजो (ड) ।

१७—मोक्षामिक्खिस्स वि माणवस्स
संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे ।
नेयारिस्स^१ दुत्तरमत्थि लोए
जहत्थिओ बालमणोहराओ ॥

मोक्षामिक्खिणोपि मानवस्य
संसार-भीरोः स्थितस्य धर्मे ।
नेतादृशं दुस्तरमस्ति लोके
यथा स्त्रियो बाल-मनोहराः ॥

१७—मोक्ष चाहने वाले संसार-भीरु एवं धर्म में स्थित मनुष्य के लिए लोक में और कोई वस्तु ऐसी दुस्तर नहीं है, जैसी दुस्तर भ्रष्टानियों के मन को हरने वाली स्त्रियाँ हैं ।

१८—एण य संगे समइक्कमिता
सुहृत्तरा चेव भवन्ति सेसा ।
जहा महासागरमुत्तरिता
नई भवे अवि गंगासमाणा ॥

एतांश्च सङ्गान् समतिक्रम्य
सुहृत्तराश्चैव भवन्ति शेषाः ।
यथा महासागरमुत्तोयं
नदी भवेदपि गंगा-समाना ॥

१८—जो मनुष्य इन स्त्री-विषयक आसक्तियों का पार पा जाता है, उसके लिए शेष सारी आसक्तियाँ वैसे ही गुजर (गुल से पार पाने योग्य) हो जाती हैं जैसे महासागर का पार पाने वाले के लिए गंगा जैसी बड़ी नदी ।

१९—कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं
सव्वस्स लोमस्स सदेवगस्स ।
जं काइयं माणसियं च किंचि
तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरारो ॥

कामानुगुद्धि-प्रभवं खलु दुःखं
सर्वस्य लोकस्य सदेवकस्य ।
यत्कायिकं मानसिकं च किंचित्
तस्यान्तर्गतं गच्छति वीतरागः ॥

१९—सब जीवों के, और क्या देवताओं के भी जो कुछ कायिक और मानसिक दुःख हैं, वह काम-भोगों का सतत अभिलाषा से उत्पन्न होता है; वीतराग उस दुःख का अन्त पा जाता है ।

२०—जहा य किपागफला मणोरमा
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा ।
'ते खुहुए जीविय'^२ पच्चमाणा
एओवमा कामगुणा विवागे ॥

यथा च किम्पाक-फलानि
मनोरमाणि
रसेन वर्णेन च भुज्यमानानि ।
तानि भुज्जके जीविते पच्यमानानि
एतद्वदुपाः काम-गुणाविपाके ॥

२०—जैसे किपाक फल खाने के समय रस और वर्ण सं मनोरम होते हैं और परिपाक के समय भुज्ज-जीवन का अन्त कर देते हैं, काम-गुण भी विपाक काल में ऐसे ही होते हैं ।

२१—जे इन्दियाणं विसया मणुन्ना
न तेसु^३ भावं निसिरे कयाइ ।
न याऽमणुन्नेसु मणं पि^४ कुज्जा
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥

ये इन्द्रियाणां विषया मनोज्ञाः
न तेषु भावं निवृज्जेन् कदापि ।
न चात्मनोऽपि मनोऽपि कुर्वन्
समाधि-कामः धमनस्तपस्वी ॥

२१—समाधि चाहने वाला तपस्वी धमन इन्द्रियों के जो मनोज्ञ विषय हैं उनको और भी मन न करे—राग न करे और जो अमनोज्ञ विषय हैं उनकी ओर भी मन न करे—द्वेष न करे ।

१. न तारिस्सं (आ, इ, उ, ऋ०) ।

२. ते जीविचं खुहर (अ) ; ते जीविचं खंदि (ब० पा०) ; ते खुहर जीविचं (ख०) ।

३. तेसि (अ) ।

४. इ (अ) ।

पमायट्टाणं (प्रमाद-स्थान)

४४५

अध्ययन ३२ : श्लोक २२-२६

२२—चक्रवुस्स ख्वं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणून्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणून्नमाहु
समो य जां तेसु स दोसरागो ॥

चक्षुषो रूपं ग्रहणं वदन्ति
तद् राग-हेतु तु मनोजमाहुः ।
तद् दोष हेतु अमनोजमाहुः
समस्त यस्तयोः स वीतरागः ॥

२२—चक्षु का विषय कर है । जो रूप
राग का हेतु होता है उसे मनोज कहा जाता
है, जो दोष का हेतु होता है, उसे अमनोज कहा
जाता है । जो मनोज और अमनोज रूपों में
समान रहता है, वह वीतराग होता है ।

२३—ख्वस्स चक्रवुं गहणं वयन्ति
चक्रवुस्स ख्वं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणून्नमाहु^१
दोसस्स हेउं अमणून्नमाहु^२ ॥

रूपस्य चक्षुर्ग्रहणं वदन्ति
चक्षुषो रूपं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतु समनोजमाहुः
दोषस्य हेतु अमनोजमाहुः ॥

२३—चक्षु रूप का ग्रहण करता है । रूप
चक्षु का बाह्य है जो रूप राग का हेतु होता
है उसे मनोज कहा जाता है, जो दोष का
हेतु होता है, उसे अमनोज कहा जाता है ।

२४—ख्वेसु जा गिद्धिमुवेइ तिव्वं^३
अकालियं पावइ से विणासं^४ ।
रागाउरे से जह वा पर्यगे
आलायलोले समुवेइ मच्चुं ॥

रूपेण यो गुद्धिमुपैति तीव्रं
अकारलकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरः स यथा वा पतद्भ्रूः
आलोक-लोलः समुपैति मृत्युम् ॥

२४—जो मनोज रूपों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है, जैसे प्रकाश-मौलुप पतंगा रूप में
आसक्ति होकर मृत्यु को प्राप्त होता है ।

२५—जे यावि दांसं समुवेइ तिव्वं^५
तंसि क्खणे से उ 'उवेइ दुक्खं'^६ ।
दुहन्तदासेण सएण जन्तु
न किंचि ख्वं अवरज्झई से ॥

यश्चापि दोष समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स त्रपेति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चिदपमपराध्यति तस्य ॥

२५—जो मनाज रूपों में तीव्र द्वेष करता
है, वह अपने दुर्दम दोष से उन्नीक्षण दुःख को
प्राप्त होता है । रूप उसका कोई अपराध नहीं
करता ।

२६—एगन्तरत्तं^७ रहइरसि ख्वे
अताल्लिसे से कुणई पजांसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिण्णई तेण मुणी विरागो ॥

एकान्तरक्तो रहिरे रूपे
अताट्ठे स करोति प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

२६—जो मनोहर रूप में एकान्त अनुरक्त
होता है और अमनोहर रूप में द्वेष करता है,
वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता
है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं
होता ।

१. समणूणमाहु (वृ० पा०) ।

२. समणूणमाहु (वृ० पा०) ।

३. निच्वं (अ) ।

४. किलेसं (वृ० पा०) ।

५. निच्वं (वृ०, अ) ।

६. समुवेति सव्वं (वृ० पा०) ।

७. एगो (अ) ।

२७—रूपाणुगासाणुगए^१ य जीवे
चराचरे हिंसइ ऽणेगख्वे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले
पोलेइ अत्तट्ठगुरू किल्लिहे ॥

२८—रूपाणुवाएण^२ परिगहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे^३ ।
वए विओगे य कहि सुहं से ?
संभोगकाले य अतित्तिताभे^४ ॥

२९—ख्वे अतित्ते य परिगहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुष्टि ।
अतुष्टिदोसेण दुहो परस्स
लोभाविळे आययई अदत्तं ॥

३०—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
ख्वे अतित्त्स्स परिगहे य ।
मायामुसं वड्डइ लोभदोसा
तत्थाऽवि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

३१—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुहो दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
ख्वे अतित्तो दुह्मिओ अणिस्सो ॥

रूपानुगासानुगतइच्च जीवान्
चराचरान् हिनस्यन्तेक-रूपान् ।
चित्रंस्तान्परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्थ-गुरुः क्लिष्टः ॥

रूपानुगतेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्निधौगे ।
व्यये विद्यौगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

रूपेऽनुग्रहं परिग्रहे च
सत्तोपसत्तो नोपेति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखी परस्य
लोभाविळ आवसोऽवत्तम् ॥

तृष्णाभिभूतस्याऽवत्तहारिणः
रूपेऽनुग्रहं परिग्रहे च ।
माया-मृषा बद्धं ते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

मृषा पदवाञ्छ पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखी दुरन्तः ।
एवमवस्तानि समादधानः
रूपेऽनुग्रो दुःखितोऽनिधः ॥

२७—मनोज्ञ रूप की अभिलाषा के पोछे
बलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के व्रत-स्वावर
जीवों को हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को
प्रधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी
पुरुष नाना प्रकार से उन चराचर जीवों को
परितप्त और पीड़ित करता है ।

२८—रूप में अनुराग और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन सब में उसे सुख
कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

२९—जो रूप में अतृप्त होता है और
उसके परिग्रह में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती । वह असन्तुष्टि के
दोष से दुःखी और लोभग्रस्त होकर दूसरों को
रूपवान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

३०—वह तृष्णा से पराजित होकर चोरी
करता है और रूप-परिग्रह में अतृप्त होता
है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा
की वृद्धि होती है । माया-मृषा का प्रयोग
करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

३१—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह रूप में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ,
दुःखी और आश्रय-हीन हो जाता है ।

१. 'वाचाणुगए' (वृ० पा०) ।

२. 'वाए य (अ) ; 'रामेण (वृ० पा०) ; 'वाए ण (छ०) ।

३. 'सन्निओगे (उ) ।

४. 'अतित्त' (वृ०) ; 'अतित्त' (वृ० पा०) ।

३२—रूपाणुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किचि? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

३३—एमेव रूवन्मि गआं पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुइजित्तो य* चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

३४—रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पए भवमज्जे वि सत्तो
जलेण वा पोक्खारिणीपलासं ॥

३५—सोयस्स सट्ठं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्ममाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्ममाहु
समो य जो तेसु स वीयरारो ॥

३६—सट्ठस्स सोयं गहणं वयन्ति
सोयस्स सट्ठं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्ममाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्ममाहु ॥

३७—सट्ठेसु जो गिद्धिसुवेइ तिव्वं*
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे हरिणमिगे व* सुद्धे*
सदे अतित्ते समुवेइ मच्चुं ॥

रूपानुरक्तस्य नरस्येवं
कुतः सुखं भवेत्कदापि किञ्चित् ? ।
तत्रोपभोगोऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

एवमेव रूपे गतः प्रदोषं
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रवृष्ट-चित्तस्य चिन्तयति कम्
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

रूपे विरक्तो मनुजो विदोषकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्न
जलेनैव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

श्रोत्रस्य शब्दं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोजमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोजमाहुः
समश्च यस्तेषु स वीतरागः ॥

शब्दस्य श्रोत्रं ग्रहणं वदन्ति
श्रोत्रस्य शब्दं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोजमाहुः
दोषस्य हेतुमनोजमाहुः ॥

शब्देषु यो गृद्धिमुपैति तीर्षां
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरः हरिण-मृग इव मुखः
शब्दे अनुग्रहः समुपैति मृत्युम् ॥

३२—रूप में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अनुति का दुःख) बना रहता है ।

३३—इसी प्रकार जो रूप में द्वेष रखता
है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता
है । प्रदोष-युक्त चित्त वाला व्यभिचर कर्म का
बंध करता है, वही परिणाम-काल में उसके
लिए दुःख का हेतु बनता है ।

३४—रूप से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनो का पत्र जल से
लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह कर
अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं
होता ।

३५—श्रोत्र का विषय शब्द है । जो
शब्द राग का हेतु होता है, उसे मनोज कहा
जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे
अमनोज कहा जाता है । जो मनोज और
अमनोज शब्दों में समान रहता है, वह वीतराग
होता है ।

३६—श्रोत्र शब्द का ग्रहण करता है ।
शब्द श्रोत्र का प्राप्ता है । जो शब्द राग का
हेतु होता है, उसे मनोज कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज कहा
जाता है ।

३७—जो मनोज शब्दों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है । जैसे—शब्द में अनुग्रह बना हुआ
रागातुर मृग हरिण नामक पशु मृत्यु को प्राप्त
होता है ।

१. व (अ) ।

२. निष्पत्ति (अ) ।

३. व्य (अ, अ०) ।

४. कुद्धे (अ) ।

३८—जे यावि दोसं समुवेइ तिक्कं^१
तंसि कलणे से उ उवेइ दुक्कं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किंचि सद्धं अवरज्जई से ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तोषं^२
तस्मिन् क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चित्कृद्दोऽपराधप्रति तस्य ॥

३८—जो मनोज शब्द में तीव्र द्वेष करता है, वह अपने दुर्दम दोष में उगो क्षण दुःख का प्राप्ति होता है, शब्द उसका कोई अपराध नहीं करता ।

३९—एगन्तरत्ते रुद्धरंसि सद्धे
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणो विरागो ॥

एकान्तरक्तो रुद्धिरे शब्दे
अतादृशे स कृते प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

३९—जो मनोहर शब्द में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर शब्द में द्वेष करता है, वह अज्ञान, दुःसात्मक पीड़ा को प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्य नहीं होता ।

४०—सद्धानुगासाणुणं य जीवे
चराचरे हिंसइ ऽणैगरूवे ।
चित्तेहि ते परिखावेइ बाले
पीलेइ अत्तङ्गुरु किलिट्ठे ॥

शब्दानुगाशानुगतश्च जीवः
चराचरान् हिंसत्यनेक-रूपान् ।
चित्रैस्तान् परित्यापयति बालः
पीडयत्यतमार्थ-गुरुः क्लिष्टः ॥

४०—मनोहर शब्द की अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनैक प्रकार के वस्तु-स्वावर अर्थों का हिंसा करता है । अपने प्रयोगों को प्रधान मानने वाला व क्लेश-ग्रस्त अज्ञानी पुरुष नाश प्रकार में उन चराचर जीवों को परित्याग और पीडित करता है ।

४१—सद्धानुवाएण^३ परिग्रहेण
उप्पायणे रक्खणस्सिओगे ।
वए विआगे य कहि सुहं से ?
संभांगकाले य अतित्तिलाभे^४ ॥

शब्दानुगतेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्निधौगे ।
ध्यये विधौगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

४१—शब्द में अनुराग और मत्स्य का भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन, रक्षण और ध्यापार करता है । उसका व्यय और विधौग होता है, इन सबमें उस मनुष्य कहाँ है ? और क्या, उसके उपयोग काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

४२—सद्धं अतित्ते य परिग्रहे य
सत्तोवसतो न उवेइ तुट्ठि ।
अनुद्धिदामेण दुहो परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

शब्देऽनुग्रहश्च परिग्रहे च
सत्तोवसक्तो नोपैति तुष्टिम् ।
अतृष्टि-दोषेण दुःखो परस्य
लोभाविल आदत्त-उदत्तम् ॥

४२—जो शब्द में अवृत्त होता है, उसके परिग्रहण में आसक्त-उपनक्त होता है, उसे संतुष्टि नहीं मिलती । वह असंतुष्टि के दोष से दुःखी और लाभप्रस्त होकर दूसरे की शब्दवान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

४३—तण्णामिभूयस्स अदत्तहारिणो
सद्धं अतित्त्स परिग्रहे य ।
मायामुस वड्डइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्त-हारिणः
शब्देऽनुग्रहस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा वर्धते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान् विमुच्यते सः ॥

४३—वह तृष्णा से पराजित होकर चोरी करता है और शब्द परिग्रहण में अवृत्त होता है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-मृषा की वृद्धि होती है । माया-मृषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

१. तिक्कं (अ, हु०) ।

२. 'वाए य (अ) ; रागेण (हु० पा०) ; वाए य (छ०) ।

३. अतित्त (हु०) ; अतित्ति (क० पा०) ।

४४—मोसस्स पच्छा य पुरत्यओ य
पओगकाले य दुहो दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
सहे अतितो दुहिओ अणित्तो ॥

४५—सद्धानुरत्तस्स तरस्स एवं
कत्तो मुहं होज्ज कयाइ किञ्चि ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

४६—एमेव सद्धम्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठित्तो य' चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

४७—सहे विरत्तो मणुआ विसोगो'
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पए भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

४८—घाणस्स गन्धं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्त्तमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्त्तमाहु
समो य जो तेसु स वोयरागो ॥

४९—गन्धस्स घाणं गहणं वयन्ति
घाणस्स गन्धं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्त्तमाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्त्तमाहु ॥

मूषा पशुवाञ्छ पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखो दुरन्तः ।
एवमदत्तानि समावदानः
शब्दे अतृप्तो दुःखितोऽनिश्चः ॥

शब्दानुरक्तस्य तरस्वैवं
कुतः मुखं भवेत् कदापि किञ्चित् ?
तन्मोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निवर्त्यति यस्य कृते दुःखम् ॥

एवमेव शब्दे गतः प्रबोधं
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तद्वय चिन्तितं कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

शब्दो विरक्तो मनुजो विषोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
अलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

घ्राणस्य गन्धं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समद्वय यस्तेषु स वीतरागः ॥

गन्धस्य घ्राणं ग्रहणं वदन्ति
घ्राणस्य गन्धं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

४४—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और
बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह शब्द में अतृप्त होकर बोरी करता हुआ,
दुःखी और बाध्य हीन हो जाता है ।

४५—शब्द में अनुक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

४६—इसी प्रकार जो शब्द में द्वेष
रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त
होता है । प्रद्वेष-मुक्त चित्तवाला व्यक्ति कर्म
का बन्ध करता है, वही परिणाम-काल में
उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

४७—शब्द से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में
लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह कर
अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता ।

४८—घ्राण का विषय गन्ध है । जो
गन्ध राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा
जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे
अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ और
अमनोज्ञ गन्धों में समान रहता है, वह वीतराग
होता है ।

४९—घ्राण गन्ध का ग्रहण करता है ।
गन्ध घ्राण का प्राप्ता है । जो गन्ध राग का
हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा
जाता है ।

५०—गन्धेषु^१ जो गन्धिमुवेइ तिष्ठं^२
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे ओसहिगन्धगिद्धे
सपे बिलाओ विव निक्खमन्ते ॥

५१—जे यावि दोसं समुवेइ तिष्ठं^३
तंसि कखणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किंचि गन्धं अवयज्झई से ॥

५२—एगन्तरत्ते रुद्धरंसि गन्धे
अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपोलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण सुणी विरागो ॥

५३—गन्धानुगासाणुगए य जोवे
चराचरे हिसइ ऽणेगख्वे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले
पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे ॥

५४—गन्धानुवाएण^४ परिगहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं ते ?
संभोगकाले य अतितिलाभे^५ ॥

गन्धेषु धो गृद्धिमुपति तोव्रं
अकालिकं प्राप्नोति स बिनाशम् ।
रागातुर ओषधि-गन्ध-गृद्धः
सर्पां बिलाविष निष्कामम् ॥

यद्यपि दोषं समुपति तोव्रं
तस्मिन् क्षणे स तूपेति दुःखम् ।
दुर्वन्ति-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चिद् गन्धोऽपराध्यति तस्य ॥

एकान्तरक्त्वो रुचिरे गन्धे
अतादृशेऽस करोति प्रवोपम् ।
दुःखस्य सम्पोडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागः ॥

गन्धानुगाशानुगतश्च जीवः
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रंस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्माथ-गुरुः क्लिष्टः ॥

गन्धानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्नियोगे ।
व्यये वियोगे च क्व मुखं तस्य ?
संभोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

५०—जो मनोज्ञ गन्ध में तीव्र आसक्ति करता है, वह अकाल में ही बिनाश को प्राप्त होता है । जैसे नाग-दमनी आदि ओषधियों के गन्ध में गृद्ध बिल से निकलता हुआ रागातुर सर्प ।

५१—जो अमनोज्ञ गन्ध में तीव्र देख करता है, वह अपने दुर्बल दोष से उसी क्षण दुःख को प्राप्त होता है । गन्ध उसका कोई अपराध नहीं करता ।

५२—जो मनोहर गन्ध में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर गन्ध में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता ।

५३—मनोज्ञ गन्ध की अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चरा-चर जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है ।

५४—गन्ध में अनुराग और समत्व का भाव होने के कारण मनुष्य, उसका उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय और वियोग होता है । इन सबमें उसे कुछ कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग-काल में भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

१. गन्धस्स (अ, झ०) ।

२. निष्ठं (अ) ।

३. निष्ठं (झ०, अ) ।

४. 'वाए ष (अ) ; 'रागेण (ब० पा०) ; 'वाए ण (छ०) ।

५. अतिष्ठ (झ०) ; अतिप्ति (झ० पा०) ।

५५—गन्धे अतित्तं य परिग्गहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविळे आययई अदत्तं ॥

गन्धेऽनुसृज्य परिग्रहे च
सत्तोपसक्तो नोपैति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखी परस्य
लोभाविल आदत्ते ऽदत्तम् ॥

५५—जो गन्ध में अतुप्त होता है, उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है, उसे संतुष्टि नहीं मिलती । वह अंतुष्टि के दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की गन्ध-वान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

५६—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
गन्धे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्त-हारिणः
गन्धेऽनुसृत्य परिग्रहे च ।
माया-मुषा बध्नेते लोभ-दोषाश्च
तत्रापि दुःखान् विमुच्यते स्म ॥

५६—बहु तृष्णा में पराजित होकर चोरी करता है और गन्ध-परिग्रहण में अतुप्त होता है । अतुप्ति-दोष के कारण उसके माया-मुषा की वृद्धि होती है । माया-मुषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

५७—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
गन्धे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

मुषा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखी दुरन्तः ।
एवमेवतानि समादधानः
गन्धेऽनुस्रो दुःखितोऽनिशः ॥

५७—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार वह गन्ध से अतुप्त होकर चोरी करता हुआ दुःखी और आश्रमहीन हो जाता है ।

५८—गन्धानुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज कयाइ किच्चि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

गन्धानुरक्तस्य नरस्यैवं
कृतः सुखं भवेत्कदापि किञ्चित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वसंयति यस्य कृते दुःखम् ॥

५८—गन्ध में अनुरक्त पुरुष को उक्त कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहाँ से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-दुःख (अवृत्ति का दुःख) बना रहता है ।

५९—एमेव गन्धम्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य' चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

एवमेव गन्धे गतः प्रबोध्य
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तवच चिन्तयति कर्म
यतस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

५९—इसी प्रकार जो गन्ध में द्वेष रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है । प्रदुष्टचित्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का बन्ध करता है, वही परिणाम काल में उसके लिए दुःख का हो बनता है ।

६०—गन्धे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

गन्धे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनैव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

६०—गन्ध से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रहकर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता ।

६१—जिहाए रसं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्त्तमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्त्तमाहु
समो य जो तेसु स वीतरागो ॥

६२—रसस्स जिह्वं^१ गहणं वयन्ति
जिह्वाए रसं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्त्तमाहु
दोसस्स हेउं अमणुन्त्तमाहु ॥

६३—रसेसु^२ जो गिद्धिमुवेइ तिक्खं^३
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे बडिस्सविभिन्नकाए
मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे^४ ॥

६४—जे यावि दोसं समुवेइ तिक्खं^५
तंसि खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
'रसं न किञ्चि'^६ अवरज्झई से ॥

६५—एगन्तरत्ते रुद्धे रसम्मि
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

जिह्वायाः रसं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समस्य यस्तेषु स वीतरागः ॥

रसस्य जिह्वां ग्रहणं वदन्ति
जिह्वाया रसं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

रसेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरो बडिज-विभिन्न-कायः
मत्स्यो यथाऽमिष-भोग-गृद्धः ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तूपैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
रसो न किञ्चिदपराध्यति तस्य ॥

एकान्तरवत्तो रुद्धिरे रसे
अतादृशो स करोति प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडमुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

६१—रसना का विषय रस है । जो रस
राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता
है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ
कहा जाता है । जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों
में समान रहता है, वह वीतराग होता है ।

६२—रसना रस का ग्रहण करती है ।
रस रसना का शास्त्र है । जो रस राग का
हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ
जाता है ।

६३—जो मनोज्ञ रसों में तीव्र आसक्ति
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है, जैसे मांस खाने में रूढ़ बना हुआ
रागातुर मत्स्य काँटे से बीधा जाता है ।

६४—जो मनोज्ञ रस में तीव्र द्वेष करता
है, वह अपने दुर्दम दोष से उसी क्षण दुःख को
प्राप्त होता है । रस उसका कोई अपराध नहीं
करता ।

६५—जो मनोहर रस में एकान्त अनुरक्त
रहता है और अमनोहर रस में द्वेष करता है,
वह अज्ञानी दुःखात्मक पीड़ा को प्राप्त होता
है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें क्लेश नहीं
होता ।

१. जीह्वा (उ, म०) ।

२. रसस्स (अ, म०) ।

३. तिक्खं (अ) ।

४. 'लोभगिद्ध' (अ) ।

५. तिक्खं (म०, अ) ।

६. न किञ्चि रस्सं (अ) ।

६६—रसाणुगासाणुगं य जीवे
चराचरे हिसइ ऽणेरुवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले
पीलेइ अत्थगुरु किलिट्ठे ॥

६७—रसाणुवाएण^१ परिग्रहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं से ?
संभोगकाले य अत्तित्तितामे^२ ॥

६८—रसे अत्तित्ते य परिग्रहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोषेण दुहो परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

६९—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
रसे अत्तित्तस्स परिग्रहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुचई से ॥

७०—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पआंगकाले य दुहो दुरत्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
रसे अत्तित्तो दुहिओ अणित्तो ॥

७१—रसाणुरत्तस्स नरस्स एव
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ? ॥

रसानुगासानुगतइ जीवः
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपान् ।
चित्रस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्य-गुरुः किलष्टः ॥

रसानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्नियोगे ।
व्यये वियोगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाजुति-लाभः ॥

रसेऽनुग्रहं परिग्रहे च
सक्तोपसक्तो नोपति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखो परस्य
लोभाविल आवत्तेऽदत्तम् ॥

तृष्णाभिभूतस्यादत्तहारिणः
रसेऽनुग्रहं परिग्रहे च ।
माया-मुखा वधेत् लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

मुखा पदवाञ्छ पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखो दुरस्तः ।
एवमवत्तानि समाददानः
रसेऽनुग्रहो दुःखितोऽनिश्चः ॥

रसानुरक्तस्य नरस्येवं
कृतः सुखं भवेत् कदापि किञ्चित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वचयति यस्य कृते दुःखम् ॥

६६—मनोहर रस को अभिलाषा के
पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के वन-
स्थावर जीवों की हिंसा करता है । अपने
प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-
युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चराचर
जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है ।

६७—रस में अनुराग और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन सबमें उसे सुख
कहाँ है ? और क्या उसके उपभोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

६८—जो रस में अतृप्त होता है और
उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे संतुष्टि नहीं मिलती । वह अंतर्मुख के
दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की
रसवान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

६९—वह तृष्णा से पराजित होकर
चोरी करता है और रस-परिग्रह में अतृप्त
होता है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके
माया-मुखा की वृद्धि होती है । माया-मुखा
का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त
नहीं होता ।

७०—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह रस में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ
दुःखी और आश्रय-हीन हो जाता है ।

७१—रस में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

१. ० बाए ष (अ) ; १ गेण (वृ० पा०) ; २ बाए ण (छ०) ।

२. अत्तित् (वृ०) ; अत्तित्ति (वृ० पा०) ।

७२—एमेव रसस्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुइचित्तो य' चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

७३—रसे विरक्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सत्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

७४—कायस्स फासं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु
समो य जो तेसु स वोयरगो ॥

७५—फासस्स कायं गहणं वयन्ति
कायस्स फासं गहणं वयन्ति ।
'रागस्स हेउं समणुन्नमाहु'
'दोसस्स हेउं' अमणुन्नमाहु ॥

७६—फाससु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं'
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे सीयजलावसन्ने
गाहमहीए महिसे व ऽरन्ने ॥

एवमेव रसे गतः प्रदोषम्
उपैति दुःखौघ-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तस्य चिन्तति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

रसे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखौघ-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमज्जेऽपि सन्
जलेनैव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

कायस्य स्पर्शं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोज्ञमाहुः
समञ्च यस्तेषु सबीतरागः ॥

स्पर्शस्य कायं ग्रहणं वदन्ति
कायस्य स्पर्शं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः
दोषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥

स्पर्शेषु यो गृह्णिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम् ।
रागातुरः शीतजलावसन्नः
ग्राह-गृहीतो महिष इवारण्ये ॥

७२—इसी प्रकार जो रस में डूब रहता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है । प्रदोष-युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का बन्ध करता है । वही परिणाम-काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

७३—रस से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है, जैसे कमलिनी का पत्र जल में लित नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह कर अनेक दुःखों की परम्परा से लित नहीं होता ।

७४—काय का विषय स्पर्श है । जो स्पर्श राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है । जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में समान रहता है, वह बीतराग होता है ।

७५—काय स्पर्श का ग्रहण करता है । स्पर्श काय का ग्राह्य है । जो स्पर्श राग का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता है, उसे अमनोज्ञ कहा जाता है ।

७६—जो मनोज्ञ स्पर्शों में तीव्र आसक्ति करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है । जैसे घड़ियाल के द्वारा पकड़ा हुआ, अरण्य-जलाशय के शीतल जल के स्पर्श में मग्न बना रागातुर भेता ।

१. ड (अ) ।

२. तं राग हेतुं तु मणुन्नमाहु (अ) ।

३. तं दोष हेतुस्व (अ) ।

४. निच्चं (अ) ।

७७—जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं^१
तंसि कखणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुइत्तदोसेण सएण जन्तू
न किचि फासं अवरज्जई से ॥

७८—एगान्तरत्ते रुइरंसि फासे
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

७९—फासाणुगासाणुगए य जीवे
चराचरे हिंसइ जेगखूवे ।
चित्तेहि ते परित्तावेइ बाले
पीलेइ अत्तगुरु किलिट्ठे ॥

८०—फासाणुवाएण^२ परिग्गहेण
उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहि सुहं से ?
संभोगकाले य अतित्तिग्गहे^३ ॥

८१—फासे अतित्ते य परिग्गहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविळे आययई अदत्तं ॥

८२—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
फासे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्डइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

यइचापि दोषं सम्पत्तिं तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तृपेति दुःखम् ।
दुर्वान्त-बोधेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चित्स्पर्शाऽपराध्यति तस्य ॥

एकान्तररूपो रुचिरे स्पर्शं
अतादृशे स करोति प्रबोधम् ।
दुःखस्य सम्प्रोक्षासम्पत्तिं बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

स्पर्शानुगासानुगतवच्च जीवः
चराचरान् हिनस्यनेक-रूपान् ।
चित्रं स्तान् परित्तापयति बालः
पीडयत्यास्माध-गुरुः किलिट्ठः ॥

स्पर्शानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्षण-सन्निधौगे ।
व्यये वियोगे च क्व मुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चातृप्ति-लाभः ॥

स्पर्शानुसृतव परिग्रहे च
सत्तोपसत्तो नोवेति तुट्ठिम् ।
अतुट्ठि-बोधेण दुःखो परस्य
लोभाविळ आवसेज्जत्तम् ॥

तुण्णाभिभूतस्याऽदत्तहारिणः
स्पर्शानुसृतस्य परिग्रहे च ।
माया-मृषा बध्नेते लोभ-बोधात्
तत्रापि दुःखान् विमुच्यते सः ॥

७७—जो अमनोज्ञ स्पर्श में तीव्र द्वेष
करता है, वह अपने बुद्धि-बोध से उसी क्षण
दुःख को प्राप्त होता है । स्पर्श उसका कोई
अपराध नहीं करता ।

७८—जो मनोहर स्पर्श में एकान्त
अनुरक्त होता है और अमनोहर स्पर्श से द्वेष
करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीड़ा को
प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त
नहीं होता ।

७९—मनोहर स्पर्श को अभिलाषा के
पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के वस-
स्वावर जीवों की हिंसा करता है । अपने
प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-
गुक्त अज्ञानी पुख ताता प्रकार के उन चरा-
चर जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है ।

८०—स्पर्श में अनुराग और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन सबमें उसे मुख
कहाँ है ? और क्या उसके उपभोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

८१—जो स्पर्श में अतृप्त होता है और
उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे संतुष्टि नहीं मिलती । वह असंतुष्टि के
दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की
स्पर्शवान् वस्तुएं चुरा लेता है ।

८२—वह तुण्या से पराजित होकर
चोरी करता है और स्पर्श-परिग्रहण में अतृप्त
होता है । अतृप्ति-दोष के कारण उसके माया-
मृषा की दृष्टि होती है । माया-मृषा का
प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं
होता ।

१. तिव्वं (७०, अ) ।

२. 'वाए' (अ) ; 'रागेण' (७० पा०) ; 'वाए' (७०) ।

३. अतित्तं (७०) ; अतित्ति (७० पा०) ।

८३—मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुहो दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
फासे अतित्तो दुहो अणिस्सो॥

८४—फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

८५—एमेव फासम्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य^१ चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

८६—फासे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

८७—मणस्स भावं गहणं वयन्ति
तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु
समो य जो तेसु स वीयरगो ॥

८८—भावस्स मणं गहणं वयन्ति
मणस्स भावं गहणं वयन्ति ।
रागास्स हेउं समणुन्नमाहु
दोसास्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥

मृषा पक्षमात्र प्रस्तात्र
प्रयोग-काले च दुःखो दुरन्तः ।
एवमवस्तानि समादधानः
स्पर्शोऽनृतो दुःखितोऽनिश्चः ॥

स्पर्शानुरक्तस्य नरस्यैवं
कुतः सुख भवेत् कदापि किंचित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

एवमेव स्पर्शं गतः प्रबोधम्
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रमुष्ट-चित्तश्च चिनोति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

स्पर्शं विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्
जलेनैव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

मनसो भावं ग्रहणं वदन्ति
तं राग-हेतुं तु मनोजमाहुः ।
तं दोष-हेतुममनोजमाहुः
समश्च यस्तेषु स वीतरागः ॥

भावस्य मनो ग्रहणं वदन्ति
मनसः भावं ग्रहणं वदन्ति ।
रागस्य हेतुं समनोजमाहुः
दोषस्य हेतुममनोजमाहुः ॥

८३—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमय होता है । इस प्रकार
वह स्पर्श में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ
दुःखी और आश्वयहीन हो जाता है ।

८४—स्पर्श में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किंचित् सुख भी कहाँ
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अतृप्ति का दुःख) बना रहता है ।

८५—इसी प्रकार जो स्पर्श में द्वेष
रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त
होता है । प्रद्वेष युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म
का बन्ध करता है । वही परिणाम-काल में
उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

८६—स्पर्श से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में
लित नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह
कर अनेक दुःखों की परम्परा से लित नहीं
होता ।

८७—मन का विषय भाव (अभिप्राय)
है । जो भाव राग का हेतु होता है, उसे
मनोज कहा जाता है । जो द्वेष का हेतु होता
है, उसे अमनोज कहा जाता है । जो मनोज
और अमनोज भावों में समान रहता है, वह
वीतराग होता है ।

८८—मन भाव का ग्रहण करता है ।
भाव मन का प्राज्ञ है । जो भाव राग का
हेतु होता है उसे मनोज कहा जाता है । जो
द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज कहा
जाता है ।

८९—भावेसु^१ जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं^२
अकालिय पावइ से विणासं ।
रागाउरे कामगुणेषु गिद्धे
करेणुमग्गावहिण 'व नागे'^३ ॥

९०—जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं^४
तंसं कवणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू
न किंचि भावं अवज्जई से ॥

९१—एगन्तरसे रुद्धरंसि भावे
अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमवेइ बाले
न लिप्पई तेण मूणो विरागो ॥

९२—भावाणमासाणुग्गं य जीवे
चराचरे हिमइ उणंगरुवे ।
चिन्हेहि ते परितावेइ बाले
पोल्लइ अन्तदुग्गु किळिद्धे ॥

९३—भावाण्वाएणं परिग्गहेण
उप्पायणं रक्खणसन्निओगे ।
बए विओगे य कहि मुहं से ?
संभोगकाले य अतित्थिभाभे^५ ॥

भावेसु यो गृद्धिमुपैति तीव्रं
अकालिकं प्राप्नोति विनाशम् ।
रागातुरः काम-गुणेषु गृद्धः
करेणुमार्गापहत इव नागः ॥

यश्चापि दोषं समुपैति तीव्रं
तस्मिन्क्षणे स तूषैति दुःखम् ।
दुर्दान्त-दोषेण स्वकेन जन्तुः
न किञ्चिद्भावोऽपराधप्रति तस्य ॥

एकान्तरक्षतो रुद्धिरे भावे
अतादृशे स कुस्ते प्रदोषम् ।
दुःखस्य सम्पीडामुपैति बालः
न लिप्यते तेन मुनिविरागः ॥

भावानुगाशानुगतश्च जीवः
चराचरान् हिनस्त्यनेक-रूपां ।
विष्यंस्तान् परितापयति बालः
पीडयत्यात्मार्थ-गुरुः क्लिष्टः ॥

भावानुपातेन परिग्रहेण
उत्पादने रक्खण-सन्निधौगे ।
व्यये विधौगे च क्व सुखं तस्य ?
सम्भोग-काले चाऽतृप्ति-लाभः ॥

८९—जो मनोज्ञ भावों में तीव्र भावलिप्त
करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त
होता है, जैसे हथिनो के पंख में आकृष्ट काम-
गुणों में गृद्ध बना हुआ हाथी ।

९०—जो मनोज्ञ भाव में तीव्र द्वेष
करता है, वह अपने दुर्दैव दोष से उसी क्षण
दुःख को प्राप्त होता है । भाव उसका कोई
अपराध नहीं करता ।

९१—जो मनोहर भाव में एकान्त अनु-
रक्त होता है और अमनोहर भाव में द्वेष
करता है, वह अशानी दुःखारम्भक पीड़ा को
प्राप्त होता है । इसलिये विरक्त मुनि उनमें
लिप्त नहीं होता ।

९२—मनोहर भाव की अभिलाषा के
पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-
स्थावर जीवों को हिंसा करता है । अपने
प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-
युक्त अज्ञानी पुरुष माना प्रकार के उन चराचर
जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है ।

९३—भाव में अनुरक्त और ममत्व का
भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पादन,
रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यय
और वियोग होता है । इन सबमें उसे सुख
कहाँ है ? और क्या, उसके उपयोग-काल में
भी उसे तृप्ति नहीं मिलती ।

१. मणेण (अ) ; भावस्स (झ०) ।

२. निच्वं (अ) ।

३. गए व्व (अ) ।

४. निच्वं (झ०, अ) ।

५. 'वाए य (अ) ; 'रागेण (झ० पा०) ; 'वाए ण (घ०) ।

६. अतित्तं (झ०) ; अतिप्तिं (झ० पा०) ।

९४—भावे अतित्ते य परिग्रहे य
सतोवसतो न उवेइ दुट्ठि ।
अतुट्ठिदोषेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ॥

भावेऽनुग्रहं परिग्रहे च
सक्तोपसक्तो नोपैति तुष्टिम् ।
अतुष्टि-दोषेण दुःखो परस्य
लोभाविल आवतेऽवत्तम् ॥

६४—जो भाव में अवृत्त होता है और
उसके परिग्रहण में आसक्त-उपसक्त होता है,
उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती । वह धनसन्तुष्टि के
दोष से दुःखी और लोभ-ग्रस्त होकर दूसरे की
वस्तुएं चुरा लेता है ।

९५—तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो
भावे अतित्तस्स परिग्रहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा
तत्थावि दुक्खा न विमुचई से ॥

भिभूतस्याऽवत्तहारिणः
भावेऽनुग्रहं परिग्रहे च ।
माया-मृषा बध्धते लोभ-दोषात्
तत्रापि दुःखान्न विमुच्यते सः ॥

६५—वह तृष्णा से पराजित होकर
चोरी करता है और भाव-परिग्रहण में अवृत्त
होता है । अतुष्टि-दोष के कारण उसके माया-
मृषा की वृद्धि होती है । माया-मृषा का
प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं
होता ।

९६—मोत्तस्स पच्छा य पुरत्थओ य
पओगकाले य दुही दुरत्तं ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो
भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

मृषा पश्चाच्च पुरस्ताच्च
प्रयोग-काले च दुःखा दुरन्तः ।
एवमवत्तानि समावदानः
भावेऽनुग्रहो दुःखितोऽनिशः ॥

६६—असत्य बोलने के पश्चात्, पहले
और बोलते समय वह दुःखी होता है । उसका
पर्यवसान भी दुःखमेव होता है । इस प्रकार
बहु भाव में अवृत्त होकर चोरी करता हुआ
दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

९७—भावाणुरत्तस्स नरस्स एवं
कत्तो मुहं होज्ज कयाइ किचि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं
निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

भावानुरक्तस्य नरस्यैवं
कृतः सुखं भवेन कदापि किञ्चित् ? ।
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश-दुःखं
निर्वर्त्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥

९७—भाव में अनुरक्त पुरुष को उक्त
कथनानुसार कदाचित् किञ्चित् सुख भी कहीं
से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख
प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी क्लेश-
दुःख (अवृत्ति का दुःख) बना रहता है ।

९८—एमेव भावम्मि गओ पओसं
उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य' विणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

एवमेव भावे गतः प्रदोषम्
उपैति दुःखोद्य-परम्पराः ।
प्रदुष्ट-चित्तस्य त्रिभोक्ति कर्म
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥

९८—इसी प्रकार जो भाव में दोष
रखता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त
होता है । प्रदुष्ट-चित्त वाला व्यक्ति कर्म
का बन्ध करता है, वही परिणाम-काल में
उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

९९—भावे विरत्तो मणुओ विसागो
एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि सत्तो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

भावे विरक्तो मनुजो विशोकः
एतेन दुःखोद्य-परम्परेण ।
न लिप्यते अवमज्जेऽपि सन्
जलेनेव पुष्करिणी-पलाशम् ॥

९९—भाव से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त
बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में
लप्ट नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह
कर अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं
होता ।

१००—एविन्दियत्था य मणस्स अत्था
दुक्खस्स हेउं मणुयस्स राणिणो।
ते चेव थोवं पि क्याइ दुक्खं
न वोयरागस्स करेन्ति किच्चि॥

१०१—न कामभोगा समयं उवेन्ति
न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।
जे तप्पओसो य परिग्गही य
सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥

१०२—कोहं च माणं च तहेव मायं
लोहं दुग्गं अरइं रइं च।
हासं भयं सोमपुमिलियेवयं
तपुंसवेयं विविहं य भावे ॥

१०३—आवज्जई एवमणेगरुवे
एवंविहे कामगुणेषु सत्तो।
अन्ने य एयप्पभावे विसेसे
कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से ॥

१०४—कप्पं न इच्छिज्ज सहायलिच्छू
पच्छाणुतावेयं तवप्पभावं।
एवं वियारे अमियप्पयारे
आवज्जई इन्दियचोरवस्से ॥

१०५—तओ से जायन्ति पओयणाई
निमज्जिउं मोहमहणवम्मि।
सुहेसिणो दुक्खविणोयणट्ठा^१
तप्पच्चयं^२ उज्जमए य रागो ॥

एवमिन्द्रियाणांश्च मनसोऽर्थाः
दुःखस्य हेतवो भवन्त्यस्य राणिणः।
ते चैव स्तोकात्मनः कदापि दुःखं
न वीतरागस्य कुर्वन्ति किञ्चित् ॥

न काम-भोगाः समतामुपयन्ति
न चापि भोगा विकृतिमुपयन्ति।
यस्तत्प्रदोषो च परिग्रही च
स तेषु मोहाद् विकृतिमुपैति ॥

क्रोधं च मानं च तथैव मायां
लोभं जुगुप्साभरति रतिं च।
हासं भयं शोक-पुंस्त्री-वेदं
नपुंसक-वेदं विविधांश्च भावान् ॥

आपद्यते एवमनेक-रूपान्
एवं विधान् काम-गुणेषु सक्तः।
अन्यांश्चैतत्प्रभवान् विषयान्
कारुण्य-वीरो हीमान् हृष्यः ॥

कल्पं नैच्छेत्सहाय-लिप्सुः
पश्चादवनुतापेन तपः प्रभावम्।
एवं विकारानमित-प्रकारान्
आपद्यते इन्द्रिय चोर-वदयः ॥

ततस्तस्य जायन्ते प्रयोजनानि
निमज्जितुं मोह-महान्धवं।
सुखैषिणो दुःख-विनोदनायं
तत्प्रत्ययमुच्छ्रित्य च रागो ॥

१००—इस प्रकार इन्द्रिय और मन के
विषय रागी मनुष्य के लिए दुःख के हेतु होते
हैं। वे वीतराग के लिए कभी किञ्चित् भी
दुःखायी नहीं होते।

१०१—काम-भोग समता के हेतु भी
नहीं होते और विकार के हेतु भी नहीं होते।
जो पुरुष उनके प्रति द्वेष या राग करता है,
वह तद्विषयक मोह के कारण विकार को
प्राप्त होता है।

१०२—जो काम-गुणों में आसक्त होता
है, वह क्रोध, मान, माया, लोभ, जुगुप्सा,
अरति, रति, हास्य, भय, शोक, पुरुष-वेद,
स्त्री-वेद, नपुंसक-वेद तथा हर्ष, विषाद आदि
विविध भाव—

१०३—इस प्रकार अनेक प्रकार के
विकारों की ओर उनसे उत्पन्न अन्य परिणामों
को प्राप्त होता है और वह कण्ठास्वद, दीन,
लजित और अप्रिय बन जाता है।

१०४—'यह मेरो शारीरिक मेवा
करेगा'—इस लिप्सा से कल्प (योज्य शिष्य)
की भी इच्छा न करे। साथ बनकर मैंने
कितना कष्ट स्वीकार किया—इस प्रकार
अनुतप्त व भोग-सुगुप्सादु होकर तप के फल की
इच्छा न करे। जो ऐसी इच्छा करता है वह
इन्द्रियरूपी चोरों का वसवर्ती बना हुआ
अपरिमित प्रकार के विकारों को प्राप्त
होता है।

१०५—विकारों की प्राप्ति के पश्चात्
उसके सम्पर्क में मोह-महान्धवं में डूबने वाले
विषय-सेवन के प्रयोजन उपस्थित होते हैं।
फिर वह सुख की प्राप्ति और दुःख के विनाश
के लिए अनुरक्त बनकर उन प्रयोजनों की पूर्ति
के लिए उद्यम करता है।

१. पच्छाणुतावेयं (छ०)।

२. दुक्ख विनोयणाय (हु० पा०)।

३. तप्पच्चया (हु० पा०)।

१०६—विरजमाणस्स य इन्दियत्था
सद्वाइया^१ तावइयप्पमारा ।
न तस्स सब्बे वि मणुन्नयं वा
निव्वत्तयन्ती अमणुन्नयं वा ॥

१०७—एवं ससंकप्पविकल्पाणासु^२
संजायई समयमुवट्ठियस्स ।
'अत्थे य संकणयओ'^३ तओ से
पहीयए कामगुणेषु तण्हा ॥

१०८—स बोयरागो कयस्वक्किच्चो
खवेइ नाणावरणं खण्णेण ।
तहेव जं दंसणमावरेइ
जं चउत्तरायं पकरेइ कम्मं ॥

१०९—सर्वं तओ जाणइ पासए य
अमोहणं होइ निरन्तराए ।
अणासवे भाणसमाहिजुत्ते
आउक्खए मोक्खमुवेइ सुद्धे ॥

११०—सा तस्स सब्बस्स दुहस्स मुक्को
जं वाहई सयय जन्तुमेयं ।
दोहामयविप्पमुक्को पसत्थो
तो हाइ अच्चन्तसुहो कयत्थो ॥

१११—अणाइकालप्पभवस्स एसो
'सब्बस्स दुक्खस्स
पमोक्खमगो'^४ ।
वियाहिओ जं समुविच्च सत्ता
कमेण अच्चन्तसुहो भवन्ति ॥
—ति बेमि ।

विरज्यमानस्य चेन्द्रियार्थाः

शब्दाद्यास्तावत्प्रकाशः ।

न तस्य सर्वेऽपि मनोज्ञतां वा
निर्वर्त्तयन्ति अमनोज्ञतां वा ॥

एवं स्व-संकल्प-विकल्पनासु

संजायन्ते समतोपस्थितस्य ।

अर्थाश्च संकल्पयतस्ततस्तस्य
प्रहीयते काम-गुणेषु तुष्णा ॥

स वीतरागः कृत-सर्व-कृत्यः

क्षययति ज्ञानावरणं अणेन ।

तथैव यन् दर्शनमावृणोति
यदन्तरायं प्रकरोति कर्म ॥

सर्वं ततो जानाति पश्यति च

अमोहनो भवति निरन्तरायः ।

अनाभवं ध्यान-समाधि-युक्तः
आयुः क्षये मांक्षमुपैत शुद्धः ॥

स तस्मात् सर्वस्मान् दुःखाश्च मुक्तः

यद् बाधते सततं जन्तुमेनम् ।

दोषामय-विप्रमुक्तः प्रशस्तः
ततो भवत्यत्यन्त-सुखी कृतार्थः ॥

अनाद-काल-प्रभवस्त्यैवः

सर्वस्य दुःखस्य प्रमोक्ष-मार्गः ।

व्याख्यातः यं समुपेत्य सर्वथा
क्रमेणात्यन्त-सुखितो भवन्ति ॥

—इति ब्रवीमि ।

१०६—चित्तने प्रकार के शब्द आदि

इन्द्रिय-विषय हैं, के सब विरलत मनुष्य के मन
में मनोज्ञता या अमनोज्ञता उत्पन्न नहीं करते ।

१०७—'अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही
सब दोषों के मूल हैं'—जो इस प्रकार के
चिन्तन में उद्यत होता है तथा 'इन्द्रिय-विषय
दोषों के मूल नहीं हैं'—इस प्रकार का संकल्प
करता है, उसके मन में समता उत्पन्न होती
है । उससे उसकी काम-गुणों में होने वाली
तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है ।

१०८— फिर वह बोतराग सब विद्याओं
में कृतकृत्य होकर क्षण भर में ज्ञानावरण,
दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय कर
देता है ।

१०९—तत्पश्चात् वह सब कुछ जानता
और देखता है तथा मोह और अन्तराय रहित
हो जाता है । अन्त में वह आश्रय रहित और
ध्यान के द्वाग समाधि में लीन और शुद्ध
होकर आयुष्य का क्षय होने ही मोक्ष का प्राप्त
कर लेता है ।

११०—जो इस जाब को निरन्तर
पीड़ित करता है, उस अणेषु दुःख और दीर्घ-
कालीन कर्म-रोग में वह मुक्त हो जाता है ।
इसलिए वह प्रमोक्षनीय, अत्यन्त सुखी और
कृतार्थ हो जाता है ।

१११—मैंने अनादि कालीन सब दुःखों
से मुक्त होने का मार्ग बताया है, उन स्वीकार
कर और क्रमशः सुखी हो जाते हैं ।

—एसा मैं कहना हूँ ।

१. वणाइया (वृ० पा०) ।

२. 'विकल्पाणासो' (वृ० पा०)

३. अत्थे असकणयतो (वृ० पा०) ।

४. सत्ता चक्खस्स विमोक्खमगो (वृ० पा०) ।

तीतीसहमं अन्वयणं :
कम्मपयडी

अवस्त्रिक्क अघ्वयन :
कर्म-प्रकृति

आस्त्युपन

इस अध्यायन में कर्म की प्रकृतियों का निरूपण है, इसलिये इसका नाम 'कर्मप्रवृत्ति'—'कर्म-प्रवृत्ति' है।

'कर्म' शब्द भारतीय दर्शन का बहु पारचित शब्द है। जैन, बौद्ध और वैदिक—सभी दर्शनों ने इसे मान्यता दी है। यह क्रिया का प्रतिक्रिया है—अतः इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। वैदिक आदि दर्शन कर्म को संस्कार रूप में स्वीकार करते हैं। जैन-दर्शन को व्याख्या करनेसे विलक्षण है। उसके अनुसार कर्म पौष्टिक है। जब-जब जीव शुभ या अशुभ प्रवृत्ति में प्रवृत्त होता है तब-तब वह अपनी प्रवृत्ति से पुष्टियों का आकर्षण करता है। वे आकृष्ट पुष्टिगत आत्मा के परिपक्व में अपने विशिष्ट रूप और शक्ति का निर्माण करते हैं। उन्हें कर्म कहा जाता है।

कर्म की मूल प्रवृत्तियाँ आठ हैं—

१. ज्ञानावरण— जो पुष्टिगत ज्ञान को जड़ित करते हैं।
२. दर्शनावरण— जो पुष्टिगत दर्शन को आवृत्त करते हैं।
३. वेदनीय— जो पुष्टिगत सुख-दुःख के हेतु बनते हैं।
४. मोहनीय— जो पुष्टिगत दृष्टिकोण और चारित्र्य में विकार उत्पन्न करते हैं।
५. आस्त्युपन— जो पुष्टिगत ज्ञान-काल को निधन करते हैं।
६. नास— जो पुष्टिगत शरीर आदि विविध रूपों को प्राप्ति में हेतु होते हैं।
७. गोत्र— जो पुष्टिगत उच्छेदा या मोचना को अनुभूति में हेतु होते हैं।
८. अन्तराय— जो पुष्टिगत शक्ति-विकास में बाधक होते हैं।

१—ज्ञानावरण पाँच प्रकार का है—

- (१) आभिलषोधिक (माने) ज्ञानावरण,
- (२) श्रुत ज्ञानावरण,
- (३) अविधि ज्ञानावरण,
- (४) मनःपथ्य ज्ञानावरण और
- (५) केवल ज्ञानावरण।

२—दर्शनावरण नौ प्रकार का है—

- (१) निद्रा,
- (२) प्रचला,
- (३) निद्रा-निद्रा,
- (४) प्रचला-प्रचला,
- (५) स्थायिक,
- (६) चक्षुदर्शनावरण,
- (७) अचक्षुदर्शनावरण,
- (८) अवधिदर्शनावरण और
- (९) केवलदर्शनावरण।

३—वेदनोय दो प्रकार का है—

- (१) सात वेदनीय और
- (२) असात वेदनीय ।

४—मोहनीय दो प्रकार का है—

- (१) दर्शन मोहनीय । इसके तीन भेद हैं—सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्-मिथ्यात्व मोहनीय ।

- (२) चारित्र्य मोहनीय । यह दो प्रकार का है—कषाय मोहनीय और नो-कषाय मोहनीय ।

कषाय मोहनीय १६ प्रकार का है—

अनन्तानुबन्धी चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
अप्रत्यारूपान चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
प्रत्यारूपान चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।
संज्वलन चतुष्क—	क्रोध, मान, माया, लोभ ।

नो-कषाय मोहनीय नौ प्रकार का है—

हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, पुंवेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद ।

५—आयुष्य चार प्रकार का है—

- (१) नैरयिक आयु,
- (२) तिर्यग् आयु,
- (३) मनुष्य आयु और
- (४) देव आयु ।

६—नाम दो प्रकार का है—

- (१) शुभ और
- (२) अशुभ ।

इन दोनों के अनेक अवान्तर भेद हैं ।

७—गोत्र दो प्रकार का है—

- (१) वरुच गोत्र और
- (२) नोष गोत्र ।

उच्च गोत्र-कर्म के आठ भेद हैं—

- (१) प्रशस्त जाति,
- (२) प्रशस्त कुल,
- (३) प्रशस्त बल,
- (४) प्रशस्त रूप,
- (५) प्रशस्त तपस्या,
- (६) प्रशस्त भुत (ज्ञान),
- (७) प्रशस्त लाभ और
- (८) प्रशस्त ऐश्वर्य ।

नीच गोत्र-कर्म के आठ भेद हैं—

- (१) अप्रशस्त जाति,
- (२) अप्रशस्त कुल,
- (३) अप्रशस्त बल,
- (४) अप्रशस्त रूप
- (५) अप्रशस्त तपस्या,
- (६) अप्रशस्त (ज्ञान)
- (७) अप्रशस्त काम
- (८) अप्रशस्त ऐश्वर्य

८—अन्तराय-कर्म पाँच प्रकार का है—

- (१) दानान्तराय,
- (२) लाभान्तराय,
- (३) भोगान्तराय,
- (४) उपभोगान्तराय और
- (५) वीर्यान्तराय

१—कर्मों की प्रकृति—

कर्म की मूल प्रकृतियों उपर्युक्त आठ ही हैं। शेष सब उनकी उत्तर प्रकृतियाँ हैं। इनका विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना (पद २३) में है।

२—कर्मों की स्थिति—

प्रत्येक कर्म की स्थिति होती है। स्थिति-काल के पूर्ण होने पर वह कर्म नष्ट हो जाता है। कई निमित्तों से स्थिति न्यून या अधिक हो जाती है।

(१) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनोय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस करोड़करोड़ सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(२) मोहनोय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० करोड़करोड़ सागर तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(३) आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

(४) नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति २० करोड़करोड़ सागर तथा जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है।

३—कर्मों का अनुभाव—

कर्म के विपाक की अनुभाग, अनुभाव, फल या रस कहा जाता है। विपाक दो प्रकार का है—तोत्र और मन्द। तोत्र परिणामों से बन्धे हुए कर्म का विपाक तोत्र और मन्द परिणामों से बन्धे हुए कर्म का मन्द होता है। विशेष प्रयत्न के द्वारा तोत्र मन्द और मन्द तोत्र हो जाता है।

४—कर्मों का प्रदेशाश्रय—

कर्म प्रायोग्य पुद्गल जीव की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट होकर आत्मा के प्रदेशों के साथ विपाक जाते हैं। कर्म अनन्त-प्रदेशी पुद्गल-स्कन्ध होते हैं और आत्मा के असंख्य प्रदेशों के साथ एकीभाव हो जाते हैं।

तेतीसहमं अज्ज्ञयणं : त्रयस्त्रिंश अश्वयन

कम्मपयडो : कर्म-प्रकृतिः

मूल
१—अट्ट कम्माइं वोच्छामि
आणुपुब्बि जहकम्मं^१ ।
जेहि बद्धो अयं जीवो
संसारे परिवत्तए^२ ॥

संस्कृत ध्याय
अष्ट कर्माणि वक्ष्यामि
आनुपूर्व्या यथाक्रमम् ।
यंबद्धोऽयं जीवः
संसारे परिवर्तते ॥

हिन्दी अनुबाव
१—मैं अनुपूर्वी से क्रमानुसार (पूर्वानु-
पूर्वा से) आठ कर्मों का निरूपण करूँगा,
जिनसे बन्धा हुआ यह जीव संसार में परिवर्तन
करता है ।

२—नाणस्सावरणिज्जं
दंसावरणं तद्वा ।
वेयणिज्जं तद्वा मोहं
आउकम्मं तद्वा य ॥

ज्ञानस्यावरणोयं
दशनावरणं तथा ।
वेदनीयं तथा मोहः
आयुः-कर्म तथैव च ॥

२—ज्ञानावरण, दशनावरण, वेदनीय,
मोह, आयु,

३—नामकम्मं च गोयं च
अन्तरायं तद्वा य ।
एवमेयाइ कम्माइं
अट्टेव उ समासओ ॥

नाम कर्म च गोत्रं च
अन्तरायस्तथैव च ।
एवमेतानि कर्माणि
अष्टैव तु समासतः ॥

३—नाम, गोत्र और अन्तराय— इस
प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म हैं ।

४—नाणावरणं पंचविहं
सुयं आभिणिबोधिं ।
ओहिनाणं तदयं
मणनाणं च केवलं ॥

ज्ञानावरणं पंचविधं
श्रुतमाभिनिबोधिकम् ।
अवधि-ज्ञानं तृतीयं
मनो-ज्ञानं च केवलम् ॥

४—ज्ञानावरण पाँच प्रकार का है—
(१) श्रुत-ज्ञानावरण, (२) आभिनिबोधिक-
ज्ञानावरण, (३) अवधि-ज्ञानावरण, (४) मनो-
ज्ञानावरण और (५) केवल-ज्ञानावरण ।

५—निद्रा तद्वा पयला
निद्रानिद्रा य पयलपयला य ।
तत्तो य धीणगिद्धी उ
पंचमा होइ नायव्वा ॥

निद्रा तथैव प्रचला
निद्रा-निद्रा प्रचला-प्रचला च ।
ततश्च स्थान-गुच्छिस्तु
पंचमी भवति जातव्या ॥

५—(१) निद्रा, (२) प्रचला, (३) निद्रा-
निद्रा, (४) प्रचला-प्रचला, (५) स्थान-
गुच्छि,

१. छणेह मे (६० पा०) ।

२. परिभम्मए (६० पा०) ।

६—चक्षुमचक्षुओहिस्स

दंसणे केवले य आवरणे ।

एवं^१ तु नवविगणं
नायवं दंसणावरणं ॥

चक्षुरक्षुरवधेः

दर्शने केवले आवरणे ।

एवं तु नव-विकल्पं
ज्ञातव्यं दर्शनावरणम् ॥

६—(६) चक्षु-दर्शनावरण, (७) अक्षु-
दर्शनावरण, (८) अवधि-दर्शनावरण और
(९) केवल-दर्शनावरण—इस प्रकार दर्शनावरण
नौ प्रकार का है ।

७—वेयणीयं पि य^२ दुविहं

सायमसायं च आहियं ।

सायस्स उ बहू भेया
एमेव असायस्स वि ॥

वेदनीयमपि च द्विविधं

सातमसातं व्याख्यातम् ।

सातस्य तु बहवो भेदाः
एवमेवासत्तास्यापि ॥

७—वेदनीय दो प्रकार का है—(१) सात-
वेदनीय और (२) असात-वेदनीय । इन दोनों
वेदनीयों के अनेक प्रकार हैं ।

८—मोहणिज्जं पि दुविहं

दंसणे चरणे तहा ।

दंसणे तिविहं वुत्तं
चरणे दुविहं भवे ॥

मोहनीयमपि द्विविधं

दर्शने चरणे तथा ।

दर्शने त्रिविधमुक्तं
चरणे द्विविधं भवेत् ॥

८—मोहनीय भी दो प्रकार का है—(१)
दर्शन-मोहनीय और (२) चारित्र-मोहनीय ।
दर्शन-मोहनीय तीन प्रकार का और चारित्र-
मोहनीय दो प्रकार का होता है ।

९—सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं

सम्मामिच्छत्तमेव य ।

एयाओ तिल्लि पयडोओ
मोहणिज्जस्स दंसणे ॥

सम्यक्त्वं चैव मिथ्यात्वं

सम्यङ्मिथ्यात्वमेव च ।

एतास्तिस्रः प्रकृतयः
मोहनीयस्य दर्शने ।

९—(१) सम्यक्त्व, (२) मिथ्यात्व और
(३) सम्यग्-मिथ्यात्व—दर्शन-मोहनीय की ये
तीन प्रकृतियाँ हैं ।

१०—‘चरित्तमोहणं कम्मं

दुविहं तु वियाहियं’^३ ।

‘कसायमोहणिज्जं तु’^४
नोकसायं तहेव य ॥

चरित्र-मोहनं कर्म

द्विविधं तु व्याख्यातम् ।

कषाय-मोहनीयं च
नोकषायं तथैव च ॥

१०—चारित्र-मोहनीय दो प्रकार का
है—(१) कषाय-मोहनीय और (२) नोकषाय-
मोहनीय ।

११—सोलसविहभेएणं

कम्मं तु कसायजं ।

सत्तविहं नवविहं वा

कम्मं नोकसायजं ॥

षोडशविधं भेदेन

कर्म तु कषायजम् ।

सप्तविधं नवविधं वा
कर्म च नोकषायजम् ॥

११—कषाय-मोहनीय कर्म के सोलह
भेद होते हैं और नोकषाय-मोहनीय कर्म के सात
या नौ भेद होते हैं ।

१. एवं (अ) ।

२. दु (दु०) ।

३. चरित्तमोहणिज्जं दुविहं बोच्छामि अणुपणसो (६० पा०) ।

४. वेयणिज्जं च (६०) ।

१२—नेरइयतिरिक्खाउ

मणुस्साउ उहेव य ।
देवाउयं चउत्थं तु^१
आउकम्मं चउत्विहं ॥

१३—नामं कम्मं तु^२ दुविहं
सुहमसुहं 'च आहियं'^३ ।
सुहस्स उ^४ बहु भेया
एमेव असुहस्स वि ॥

१४—गोयं कम्मं दुविहं
उच्चं नोयं च आहियं ।
उच्चं अउविहं होइ
एवं नोयं पि आहियं ॥

१५—टाणं लाभे य भोगे य
उवभोगे वीरिए तहा ।
पंचविहमन्तरायं
समासेण वियाहियं ॥

१६—एयाओ मूलपयडोओ
उत्तराओ य आहिया ।
पएसगं खेत्तकाले य
भावं चादुत्तरं सुण ॥

१७—सव्वेसिं चेव कम्माणं
पएसगमणन्तगं ।
गण्ठियसत्ताईयं^५
अन्तो सिद्धाण आहियं ॥

नेरयिक-तिर्यगायुः

मनुष्यायुस्तथैव च ।
देवायुदकतुषं तु
आयुः-कर्म चतुर्विधम् ॥

नाम कर्म द्विविधं
शुभमनुभं चाख्यातम् ।
शुभस्य बहवो भेदाः
एवमेवाऽशुभस्यापि ॥

गोत्रं कर्म द्विविधं
उच्चं नीचं चाख्यातम् ।
उच्चमण्डविधं भवति
एवं नीचमप्याख्यातम् ॥

दाने लाभे च भोगे च
उपभोगे वीर्यं तथा ।
पंचविधोन्तरायः
समासेन व्याख्यातः ॥

एता मूल-प्रकृतयः
उत्तराश्चाख्याताः ।
प्रदेशाग्रं क्षेत्र-कालौ च
भावं चोत्तरं शृणु ॥

सर्वेषां चैव कर्मणां
प्रदेशाग्रमन्तकम् ।
ग्रन्थिक-सत्त्वातीतम्
अन्तः सिद्धान्तमाख्यातम् ॥

१२—आयु-कर्म चार प्रकार का है—

(१) नेरयिक-आयु, (२) तिर्यग-आयु, (३)
मनुष्य-आयु और (४) देव-आयु ।

१३—नाम-कर्म दो प्रकार का है—(१)

शुभ-नाम, और (२) अशुभनाम ।
इन दोनों के अनेक प्रकार हैं ।

१४—गोत्र-कर्म दो प्रकार है—(१) उच्च
गोत्र और (२) नीच गोत्र । इन दोनों के आठ-
घाट प्रकार हैं ।

१५—अन्तराय-कर्म संक्षेप में पाँच प्रकार
का है—(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय,
(३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय और
(५) वीर्यान्तराय ।

१६—कर्मों की ये ज्ञानावरण आदि
आठ मूल प्रकृतियाँ और श्रुत-ज्ञानावरण आदि
मनावन उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं । इसके
आगे तू उनके प्रदेशाग्र (परमाणुओं के परि-
माण) क्षेत्र, काल और भाव (अनुभाग-पर्याय)
को सुन ।

१७—एक समय में प्राप्य सब कर्मों का
प्रदेशाग्र अनन्त है । वह अभव्य जीवों से अनन्त
गुण अधिक और सिद्ध आरम्भों के अनन्तव
भाग जितना होता है ।

१. २.—× (उ, ऋ०) ।

३. चिषाहियं (उ, ऋ०) ।

४. य (उ, ऋ०) ।

५. गण्ठि सत्ताणाइ (इ० पा०) ।

उत्तरउभयणं (उत्तराध्ययन)

४७०

अध्ययन ३३ : श्लोक १८-२३

१८—सर्वजीवाणं कर्मं तु
संगहे छद्दिसागयं ।
सर्वेषु वि पसेसु
सर्वं सर्वेण बद्धगं ॥

सर्व-जीवानां कर्मं तु
संगहे षड्विंशतगतम् ।
सर्वेष्वपि प्रवेशेषु
सर्व-सर्वेण बद्धकर्म ॥

१८—सब जीवों के संग्रह-योग्य पुद्गल
छद्दों दिशाओं—आत्मा में संलग्न सभी
आकाश प्रदेशों में स्थित हैं । वे सब कर्म-
परमाणु वन्ध-काल में एक आत्मा के सभी
प्रदेशों के साथ सम्बद्ध होते हैं ।

१९—उदहीसरित्नामाणं
तोसई कोडिकोडिओ ।
उकोसिया ठिई होइ
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उदधि-सहग-नाम्नां
त्रिंशत्कोटि-कोट्यः ।
उत्कृष्टा स्थितिर्भवति
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यिका ॥

१९-२०—जानावरणीय, दर्शनावरणीय,
वेदनीय और अनन्तराय-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
तीस कोटि-कोटि सागर और जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

२०—आवरणज्जाणं दुण्हं पि
वेयणिज्जे तहेव य ।
अन्तराए य कम्मम्मि
ठिई एसा वियाहिया ॥

आवरणयोद्धं घोरपि
वेदनीये तथैव च ।
अन्तराये च कर्मणि
स्थितरेषा व्याख्याता ॥

२०—

२१—उदहोसरित्नामाणं
सत्तरि कोडिकोडिओ ।
मोहणिज्जस्स उकोसा
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उदधि-सहग-नाम्नां
सप्ततिः कोटि-कोट्यः ।
मोहनीयस्योत्कृष्टा
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यिका ॥

२१—मोहनीय-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
सत्तर कोटि-कोटि सागर और जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

२२—तेत्तीस सागरोवमा
उकोसेण वियाहिया ।
ठिई उ आउकम्मस्स
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा
उत्कृषेण व्याख्याता ।
स्थितिस्त्वायुःकर्मणः
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यिका ॥

२२—आयु-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति
तेत्तीस सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की
होती है ।

२३—उदहोसरित्नामाणं
वीसई कोडिकोडिओ ।
नामगोत्ताणं उकोसा
अट्ट मुहुत्ता जहन्निया ॥

उदधि-सहग-नाम्नां
विंशति कोटि-कोट्यः ।
नाम-गोत्रयोत्कृष्टा
अष्ट मुहूर्ता जघन्यिका ॥

२३—नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट
स्थिति बीस कोटि-कोटि सागर और जघन्य
स्थिति आठ मुहूर्त की होती है ।

कम्मपयडी (कर्म-प्रकृति)

४७१

अभ्ययन ३३ : श्लोक २४-२५

२४—सिद्धाणऽणन्तभागो य'
अणुभागा हवन्ति उ ।
सव्वेसु वि एसग्गं
सव्व जीवेसुऽइच्छियं* ॥

सिद्धालायनन्त-भागश्च
अणुभागा भवन्ति तु ।
सर्वेष्वपि प्रवेशायं
सर्वजीवेभ्योऽतिक्रान्तम् ॥

२४—कर्मों के अनुभाग सिद्ध आत्माओं
के अनन्त भाग जितने होते हैं । सब अनुभागों
का प्रवेश-परिमाण सब जीवों से अधिक
होता है ।

२५—तस्मा एएसि कम्माणं
अणुभागे वियाणिया ।
एएसि संवरे चैव
खवणे य जए बुहे ॥
—त्ति वेमि ।

तस्माचित्तेषां कर्णणाम्
अणुभागान् विज्ञाय ।
एतेषां सम्भरे चैव
अपणे च यतेत बुधः ॥

२५—इत कर्मों के अनुभागों को जान-
कर बुद्धिमान इनका निरोध और लय करने
का यत्न करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

— इति ब्रवीमि ।

१. * (उ, ख०) ।

२. जीवे स इच्छियं (अ, ख०) ; जीवे अइच्छियं (स) ।

३—कर्म-निवृत्त्यन्तः ।^१

४—कर्मणः शरीर की भौतिक कर्म-वर्गणा निवृत्त्यन्त कर्म-वृत्त्यः ।^२

इस शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार लेश्या से जोव और कर्म पुद्गलों का सम्बन्ध होता है, कर्म की स्थिति निवृत्त्यन्त होती है और कर्म का उदय होता है । इन सारे अभिमतों से इतनी निवृत्ति तो निश्चित है कि आत्मा को शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेश्या जुड़ी हुई है ।

प्रभाववाद की दृष्टि से दोनों परस्परार्थ प्राप्त होती हैं—

१—पौद्गलिक लेश्या का मानसिक विचारों पर प्रभाव ।

२—मानसिक विचारों का लेश्या पर प्रभाव ।

कृष्णादिद्रव्यसाधित्यात्, परिणामो य आत्मनः ।

स्फटिकस्येव तन्नायं, लेश्या-शब्दः प्रवर्तते ॥

इस प्रसिद्ध श्लोक की ध्वनि यहो है—कृष्ण आदि लेश्या-पुद्गल जैसे होते हैं, वैसे ही मानसिक परिणति होती है । दूसरी धारा यह है—कषाय को मंदता से अध्यवसाय की शुद्धि होता है और अध्यवसाय की शुद्धि से लेश्या को शुद्धि होती है ।^३ प्रस्तुत अध्ययन से भी यहो ध्वनि होता है ।

पाँच आश्रवों में प्रवृत्त मनुष्य कृष्ण-लेश्या में परिणत होता है अर्थात् उसको आणविक-आभा (पर्यावरण) कृष्ण होता है । लेश्या के लक्षण गोममतसार (जोषकाण्ड ५०८-५१६) तथा तत्त्वार्थ-वार्तिक (४।२२) में मिलते हैं ।

मदुरमुति (१२।२६-३८) में सत्त्व, रजस् और तमस् के जो लक्षण और कार्य बतलाए गए हैं, वे लेश्या के लक्षणों से तुलनीय हैं ।

१—बृहद्ब्रह्मि, पत्र ६५० ।

२—बही, पत्र ६५१ ।

३—(क) मूलाराधना, ७।१६११ :

लेखासोधी अक्षयसाणविसोधीए होइ जनस्स ।

अक्षयसाणविसोधी, मंदलेसायस्स णादव्वा ॥

(ख) मूलाराधना (अभिसर्गात), ७।१६६० :

अन्तर्गुह्यतो जन्तोः, शुद्धिः सम्पद्यते बहिः ।

बाहयो हि शुष्यते दोषः सर्वमन्तरदोषतः ॥

चतुर्त्तिसहस्रं अन्वयणं :
लेसज्जयणं

चतुस्त्रिंश अन्वयणं :
लेस्याज्जयणं

चउतीसह्रमं अङ्गवर्णः : चतुस्त्रिंशः अध्ययन लेसज्जकयणं : लेस्याध्ययनम्

सूत्र	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुबाध
१—लेसज्जकयणं पवक्खामि आणुपुञ्चि जहक्कमं । छण्हं पि कम्मलेसाणं अणुभावे सुणेह मे ॥	लेस्याध्ययनं प्रवक्ष्यामि आणुपुञ्चं यथाक्रमम् । वर्णनामि कर्म-लेस्यानां अनुभावान् शृणुत मे ॥	१—मैं अनुपूर्वों से क्रमानुसार (पूर्वोक्त- पूर्वी से) लेस्या-अध्ययन का निरूपण करूँगा । छहों कर्म-लेस्याओं के अनुभावों को तुम मुझ से सुनो ।
२—नामाइं वण्णरसगन्ध- फासपरिणामलक्खणं । ठाणं ठिइं गइं चाउं लेसाणं तु सुणेह मे ॥	नामानि वर्ण-रस-गन्ध- स्पर्श-परिणाम-लक्षणानि । स्थानं स्थितिं गतिं चायुः लेस्यानां तु शृणुत मे ॥	२—लेस्याओं के नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य को तुम मुझ से सुनो ।
३—किण्हा नीला य काऊ य तेऊ पम्हा तहेव य । सुक्कलेसा य छट्ठा उ' नामाइं तु जहक्कमं ॥	कृष्णा नीला च कापोती च तेजसी पद्मा तथैव च । शुक्ल-लेस्या च षष्ठी तु नामानि तु यथाक्रमम् ॥	३—यथाक्रम से लेस्याओं के ये नाम हैं—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) कापोत, (४) तेजस, (५) पद्म और (६) शुक्ल ।
४—जीमूयनिद्वसंकासा गवलरिद्धसन्निभा । खंजणंजननयणनिभा किण्हलेसा उ वण्णओ ॥	स्निग्ध-जीमूत-संकाशा गवलादिष्टक-सन्निभा । खंजनाञ्जननयन-निभा कृष्ण-लेस्या तु वर्णतः ॥	४—कृष्ण लेस्या का वर्ण स्निग्ध मेघ, मक्षिप-शृंग, द्रोण-काक, खज्जन, अंजन व नयन-तारका के समान होता है ।
५—नीलाऽसोगसंकासा चासपिच्छसम्पभा । वेरुलियनिद्वसंकासा नीललेसा उ वण्णओ ॥	नीलाऽशोक-संकाशा चापपिच्छ-सम्प्रभा । स्निग्धवैडूर्य-संकाशा नील-लेस्या तु वर्णतः ॥	५—नील-लेस्या का वर्ण नील, अशोक चाप पत्ती के पत्तों व स्निग्ध वैडूर्य मणि के समान होता है ।

आस्तुख

इस अध्ययन का नाम 'लेसऽभ्ययन'—'लेदयाध्ययन' है। इसका अधिकृत विषय कर्म-लेदया है।^१ इसमें कर्म-लेदया के नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य का मनःकरण किया गया है। इसका त्रिशद वर्णन प्रज्ञापना (पद १७) में मिलता है।

लेदया एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। इसकी खोज जीव और पुद्गल के स्कन्धों का अध्ययन करते समय हुई है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलों के अनेक वर्ग हैं। उनमें एक वर्ग का नाम लेदया है। लेदया शब्द का अर्थ आणविक-आमा, कान्ति, प्रमा या छाया है।^२ छाया पुद्गलों से प्रभावित होने वाले जीव-परिणामों को भी लेदया कहा गया है।^३ प्राचीन साहित्य में शरीर के वर्ण, आणविक-आमा और उससे प्रभावित होने वाले विचार—इन तीनों अर्थों में लेदया की मार्गणा को गई है।

शरीर के वर्ण और आणविक-आमा को द्रव्य-लेदया^४ (पौद्गलिक-लेदया) और विचार को भाव-लेदया^५ (मानसिक-लेदया) कहा गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में कृष्ण, नील और कापोत—इस प्रथम त्रिक को 'अधर्म-लेदया' कहा गया है। (श्लो० ५६, ५७)

अध्ययन के आरम्भ में छहों लेदयाओं को 'कर्म-लेदया' कहा गया है। (श्लो० १)

आणविक-आमा कर्म-लेदया का ही नामान्तर है। आठ कर्मों में छठा कर्म नाम है। उसका सम्बन्ध शरीर-रचना सम्बन्धी पुद्गलों से है। उसको एक प्रकृति शरीर-नाम-कर्म है। शरीर-नाम-कर्म के पुद्गलों का ही एक वर्ग 'कर्म-लेदया' कहलाता है।^६

लेदया को अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं। जैसे—

१—योग-परिणाम।^७

२—कषारोदय रज्जित योग-प्रवृत्ति।^८

१—उत्तराध्ययन निर्घुंकि, गाथा ४४१ :

अहिगारो कम्मलेसाण् ।

२—बृहद्बृत्ति, पत्र ६४० :

लेखयति—लेपयतीवात्मनि अनन्यनानीति लेखा—अतीव बहुशुद्धिपिका स्निग्धदीप्तस्या छाया ।

३—मूलाराधना, अ१६०७ :

जह वाहिरलेस्साओ, किन्हादीओ बयति पुरिसस्स ।

अन्धन्तरलेस्साओ, सह किन्हादीओ पुरिसस्स ॥

४—(क) गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४६४ :

वणोदयेण जणिदो सरिरवणो दु दब्बदो लेस्सा ।

सा सोढा कियहादी अणेयमेया समेयेण ॥

(ख) उत्तराध्ययन निर्घुंकि, गाथा ४३९ ।

क—उत्तराध्ययन निर्घुंकि, गाथा ४४० ।

६—बृहद्बृत्ति, पत्र ६४० ।

७—बही, पत्र ६४० ।

८—गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४६० :

जोगपवची लेस्सा कसायउद्धापुरणिपा होइ ।

६—अयसीपुष्पसंकासा

कोइलच्छदसन्निभा^१ ।

पारिवयगोवनिभा

काउलेसा उ वर्णतो ॥

अतसी पुष्प-संकाशा

कोकिलच्छद-सन्निभा ।

पारापतप्रोवा-निभा

कापोत-लेख्या तु वर्णतः ॥

६—कापोत लेख्या का वर्ण अतसी के

पुष्प, तेल-कण्टक व कवूर की प्रोवा के समान होता है ।

७—हिगुलुयधाउसंकासा

तरुणाइच्चसन्निभा ।

सुयतुण्डपईवनिभा^२

तेउलेसा उ वर्णतो ॥

हिगुलुक-धातु-संकाशा

तरुणादित्य-सन्निभा ।

शुकतुण्ड-प्रदाप-निभा

तेजो-लेख्या तु वर्णतः ॥

७—तेजो लेख्या का वर्ण हिगुलु, गेह,

नवोदित सूर्य, तोते की चोंच, प्रदाप की लो के समान होता है ।

८—हरियालभेयसंकासा

हलिहाभेयसन्निभा^३ ।

सणासणकुसुमनिभा

पम्हलेसा उ^४ वर्णतो ॥

हरितालभेद-संकाशा

हरिद्राभेव-सन्निभा ।

सणासनकुसुम-निभा

पद्म-लेख्या तु वर्णतः ॥

८—पद्म लेख्या का वर्ण भिन्न हरिताल,

भिन्न-हल्दी, सण और धमन के पुष्प के समान होता है ।

९—संखंकुन्दसंकासा

खीरपूरसमप्रभा^५ ।

रय्यहारसंकासा

सुक्कलेसा उ वर्णतो ॥

शङ्खाकूकुन्द-संकाशा

खीरपूर-समप्रभा ।

रजतहार-संकाशा

शुक्ल-लेख्या तु वर्णतः ॥

९—शुक्ल लेख्या का वर्ण शख, अंकमणि,

कुन्द-गुग्गु, दुग्ध-प्रवाह, चांदी व मुक्ताहार के समान होता है ।

१०—जह कडुयतुम्बररसो

निम्बररसो कडुयरोहिणिरसो वा ।

एत्तो वि अणन्तगुणो

रसो उ^६ किप्पहाए नायव्वो ॥

यथा कटुकतुम्बरक-रसः

निम्बर-रसः कटुकरोहिणी-रसो वा ।

इतोऽप्यनन्त-गुणः

रसस्तु कृष्णायै ज्ञातव्यः ॥

१०—कडुवे तुम्ब, नीम व कटुक रोहिणी

का रस जमा कडुवा होता है, उससे भी अनन्त गुणा कडुवा रस कृष्ण लेख्या का होता है ।

१. छवि (वृ० पा०) ।

२. छपतुम्बरसंकासा, छपतुम्बरालक्षणीभाभा (वृ० पा०) ;

३. सप्यसा (अ, आ, इ) ।

४. व (ऋ०) ।

५. खीरवुल (क०) ; खीरधार ; खीरवृ (वृ० पा०) ।

६. व (ऋ०) ।

११—जह तिगडुयस्स य रसो
तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ नीलाए नायव्वो ॥

१२—जह तरुणअम्बगरसो
तुवरकविट्ठस्स^१ वावि जारिस्सओ ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ काऊए नायव्वो ॥

१३—जहपरिणयम्बगरसो
पक्कविट्ठस्स वावि जारिस्सओ ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ तेऊए नायव्वो ॥

१४—वरवारुणोए व रसो
विविहाणव आसवाणजारिस्सओ ।
'महुभेरगस्स व रसो
एत्तो पम्हाए^२ परएण'^३ ॥

१५—खज्जूरमुट्ठियरसो
खोररसो खण्डसक्कररसो वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥

१६—जह गोमडस्स गन्धो
सुणगमडगस्स^४ व जहा अहिमडस्स ।
'एत्तो वि'^५ अणन्तगुणो
लेशाणं अपसत्थार्याणं ॥

यथा त्रिकटुकस्य च रसः
तीक्ष्णः यथा हस्तिपिप्पल्या वा ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु नीलाया ज्ञातव्यः ॥

यथा तरुणाश्रक-रसः
तुवर-कपित्थस्य वापि यादृशः ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु कापोताया ज्ञातव्यः ॥

यथा परिणताश्रक-रसः
पक्व-कपित्थस्य वापि यादृशः ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु तेजो-लेश्याया ज्ञातव्यः ॥

वरवारुण्या इव रसः
विविधानामिवाऽसवानां यादृशः ।
मधु-भरेयकस्येवरसः
इतः षड्रभायाः परकेण ॥

खज्जूर-मुट्ठीका-रसः
क्षीर-रसः खण्ड-शर्करा-रसो वा ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
रसस्तु शुक्लाया ज्ञातव्यः ॥

यथा गो-मृतकस्य गन्धः
शुनक-मृतकस्य वा यथाऽहि-मृतकस्य ।
इतोऽप्यनन्तगुणो
लेश्यानामप्रशस्तानाम् ॥

११—त्रिकटु और गजपीपल का रस
जैसा तीखा होता है, उससे भी अनन्त गुण
तीखा रस नील लेश्या का होता है ।

१२—कच्चे आम और कच्चे कपित्थ का
रस जैसा कसैला होता है, उससे भी अनन्त
गुण कसैला रस कापोत लेश्या का होता है ।

१३—पके हुए आम और पके हुए कपित्थ
का रस जैसा खट-मीठा होता है, उससे भी
अनन्त गुण खट-मीठा रस तेजो लेश्या का
होता है ।

१४—प्रधान मुरा, विविध आसवों, मधु
और भरेयक मदिरा का रस जैसा अम्ल—कसैला
होता है, उससे भी अनन्त गुण अम्ल—कसैला
रस षड्रभा लेश्या का होता है ।

१५—खजूर, दास, क्षीर, खांड और
शर्करा का रस जैसा मीठा होता है, उससे भी
अनन्त गुण मीठा रस शुक्ल लेश्या का
होता है ।

१६—गाय, श्वान और सर्प के मृत
कलेबर की जैसी गन्ध होती है, उससे भी
अनन्त गुण गन्ध तीनों अप्रशस्त लेश्याओं की
होती है ।

१. 'मुत्तर' (अ); 'सुक्क' (उ); 'अह' (बू पा०) ।

२. व (बू०) ।

३. पम्हाव (अ) ।

४. एत्तो वि अणन्त गुणो रसो उ पम्हाए नायव्वो (बू० पा०) ।

५. व (बू०) ।

६. 'अवस्स' (उ, बू०) ।

७. एत्तो उ (अ); इत्तो वि (उ, बू०) ।

१७—जह सुरहिकुसुमगन्धो
गन्धवासाण^१ पिस्समाणाण^२ ।
'एत्तो वि'^३ अणन्तगुणो
पसत्य्लेसाण तिहं पि ॥

१८—जह करगयस्स फासो
गोजिम्भाए व सागपत्ताण ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
लेसाण अप्पसत्थाण ॥

१९—जह बूरस्स व फासो
नवणीयस्स व सिरोसकुसुमाण ।
एत्तो वि अणन्तगुणो
पसत्य्लेसाण तिहं पि ॥

२०—तिविहो व नवविहो वा
सत्तावीसइविहेकसीओ वा ।
दुसआं तेयालो वा
लेसाण होइ परिणामो ॥

२१—पंचासवप्पवत्तो^४
तीहि अगुत्तो छसुं अविरओ य ।
'तिव्वारम्भं परिणओ
बुद्धो साहसिओ नरो' ॥

२२—'निद्वन्धसपरिणामो
निस्संसो अजिइन्दिओ'^५ ।
एयजोगसमाउत्तो
किण्हल्लेसं तु परिणमे ॥

यथा सुरभिःकुसुम-गन्धः
गन्ध-वासानां पिप्यमाणानाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
प्रशस्त-लेश्यानां तिसृणामपि ॥

यथा करगयस्य स्पर्शः
गो-जिह्वायाश्च शाक-पत्राणाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणो
लेश्यानामप्रशस्तानाम् ॥

यथा बूरस्य वा स्पर्शः
नवनीतस्य वा शिरीष-कुसुमानाम् ।
इतोऽप्यनन्तगुणः
प्रशस्त-लेश्यानां तिसृणामपि ॥

त्रिविधो वा नवविधो वा
सप्तविंशतिविध एकाशीतिविधो वा ।
त्रिचत्वारिंशदधिकद्विंशत्तत्रिविधो वा
लेश्यानां भवति परिणामः ॥

पंचाश्व-प्रवृत्तः
तिसृभिरगुणः षट्स्वविरतश्च ।
तीव्वारम्भ-परिणतः
शुद्धः साहसिको नरः ॥

निद्वन्ध-परिणामः
नृशंसोऽजितेन्द्रियः ।
एतद्योगसमायुक्तः
कृष्ण-लेश्यां तु परिणमेत् ॥

१७—सुगन्धित पुष्पों और पीसे जा रहे
सुगन्धित पदार्थों की जैसे गन्ध होती है,
उससे भी अनन्त गुण गन्ध तीनों प्रशस्त
लेश्याओं की होती है ।

१८—करबत, गाय की जीभ और शाक
वृक्ष के पत्रों का स्पर्श जैसा कर्कश होता है,
उससे भी अनन्त गुण कर्कश स्पर्श तीनों अप्रशस्त
लेश्याओं का होता है ।

१९—बूर, नवनीत और शिरीष के पुष्पों
का स्पर्श जैसा मृदु होता है, उससे भी अनन्त
गुण मृदु स्पर्श तीनों प्रशस्त लेश्याओं का
होता है ।

२०—लेश्याओं के तीन, नौ, सत्ताईस,
इक्यासी या दो सौ तैत्तालीस प्रकार के
परिणाम होते हैं ।

२१—जो मनुष्य पाँचों वाश्रवों में प्रवृत्त
है, तीन गुणियों में अगस्त है, षट्काय में
अविरत है, तीव्र आरम्भ (सावध-व्यापार)
में संलग्न है, शुद्ध है, बिना विचारे कार्य करने
वाला है,

२२—लौकिक और पारलौकिक दोनों
की शंका से रहित मन वाला है, तृप्त है,
व्यजितेन्द्रिय है—जो इन सभी से युक्त है, वह
कृष्ण लेश्या में परिणत होता है ।

१. गंधाण थ (४० पा०) ।

२. पिस्समाणेण (थ) ।

३. एत्तो (थ) ; इत्तो वि (व, ऋ०) ।

४. 'प्यवत्तो (४०) ; 'प्यवत्तो (४० पा०) ।

५. निद्वन्धसपरिणामो निस्संसो अजिइन्दिओ (४० पा०) ।

६. तिव्वारम्भ परिणओ बुद्धो साहसिको नरो (४० पा०) ।

२३—इत्साअमरिसअतवो
अविज्जमाया 'अहोरिया य' ।
गेद्धी पओसे य सढे
पमत्ते^१ रसलोलुए साय
गवेसए य ॥

२४—आरम्भाओ^२ अविरओ
खुद्दो साहस्सिओ नरो ।
एयजोगसमाउत्तो
नीललेसं तु परिणमे ॥

२५—वंके वंसमायारे
नियडिल्ले अणज्जुए ।
पल्लिउंचग ओवहिए
मिच्छदिट्ठा अणारिए ॥

२६—'उप्फालागदुडुवाई य'^३
तेणे यावि य मच्छरी ।
एयजोगसमाउत्तो
काउलेसं तु परिणमे ॥

२७—नीयावित्ती अचवले
अमाई अकुउहले ।
विणोयविणए दन्ते
जोगवं उवहाणवं ॥

२८—पियधम्मे दढधम्मे
वज्जभोरू हिएसए^४ ।
एयजोगसमाउत्तो
तेउलेसं तु परिणमे ॥

ईष्यामिर्भावपः
अविद्या मायाज्ञीकता च ।
गृद्धिः प्रबोवश्च शठः
प्रमत्तो रस-लोलुपः सात-गवेषकश्च ॥

आरम्भावविरतः
क्षुद्रः साहसिको नरः ।
एतद्योग-समायुक्तो
नील-लेखां तु परिणमेत् ॥

बन्धो बन्ध-समावारः
निष्कृतिमान् अनुयुक्तः ।
परिकुंचक ओपाधिकः
मिथ्या-दृष्टिरनार्थः ॥

उत्प्रासक-दुष्टवादी च
स्तेनइवापि च मत्सरो ।
एतद्योग-समायुक्तः
कापोत-लेखां तु परिणमेत् ॥

नीचैर्बुद्धिरचपलः
अमाय्यकृतहलः ।
विनोत-विनयः दान्तः
योगवानुपधानवान् ॥

प्रियधर्मा दृढ़धर्मा
अबद्ध-भीरुहितेषकः ।
एतद्योग-समायुक्तः
तेजो-लेखां तु परिणमेत् ॥

२३—जो मनुष्य ईष्यालु है, कदाप्रही है, अतपस्वी है, अज्ञानी है, मायावी है, निर्लेख है, गृद्ध है, प्रदं प करने वाला है, शठ है, प्रमत्त है, रस-लोलुप है, सुख का गवेषक है,

२४—आरम्भ से अविरत है, क्षुद्र है, बिना विचार के कार्य करने वाला है—जो इन सभी से युक्त है, वह नील लेखा में परिणत होता है ।

२५—जो मनुष्य बन्धन से बन्ध है, जिसका आचरण बन्ध है, कपट करता है, सरलता से रहित है, अपने दोषों को छुपाता है, छद्म का आचरण करता है, मिथ्या-दृष्टि है, अनार्थ है,

२६—हंसोड़ है, दुष्ट वचन बोलने वाला है, खोर है, मत्सरी है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह कापोत लेखा में परिणत होता है ।

२७ - जो मनुष्य नम्रता से वतीव करता है, अचपल है, माया से रहित है, अकृतहली है, विनय करने में निपुण है, दान्त है, समाधि-युक्त है, उपधान (श्रुत अध्ययन करते समय तप) करने वाला है,

२८—धर्म में प्रेम रखता है, धर्म में दृढ़ है, पाप-भीरु है, मुक्ति का गवेषक है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह तेजो लेखा में परिणत होता है ।

१. अहोरियगयाय (अ) ।

२. य सत्ते (वृ० पा०) ।

३. आरम्भओ (अ) ; आरम्भा (उ, वृ०) ।

४. उप्फालागदुडुवाई (अ) ; उप्फालाग (उ) ; उप्फालाग (वृ०) ।

५. हिवासए, अणालए (वृ० पा०) ।

२९—पयणुकोहमाणे य
मायालोभे य पयणुए ।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा
जोगवं उवहाणवं ॥

३०—तहा पयणुवाई^१ य
उवसन्ते जिइन्दिए ।
एयजोगसमाउत्तो
पम्हलेसं तु परिणमे ॥

३१—अट्टरुदाणि वज्जिता
धम्ममुक्काणि भायए^२ ।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा
समिए गुत्ते य गुत्तिहि ॥

३२—सरागे वीयरगे वा^३
उवसन्ते^४ जिइन्दिए ।
एयजोगसमाउत्तो
मुक्कलेसं तु परिणमे ॥

३३—असंखिज्जाणोसप्पिणीण^५
उत्सप्पिणीण जे समया ।
संखाईया^६ लोगा
लेसाण हुत्ति ठाणाइं ॥

३४—'मुहत्तदं तु'^७ जहन्ना
तेत्तीसं सागरा मुहुत्तगहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा किण्हेसाए ॥

प्रतनु-क्रोध-मानश्च
माया-लोभश्च प्रतनुकः ।
प्रशान्त-चित्तो दान्तात्मा
योगवानुपधानवान् ॥

तथा प्रतनुबावो च
उपशान्तो जितेन्द्रियः ।
एतद्योग-समामुक्तः
पद्म-लेइयां तु परिणमेत् ॥

आत्तं-रोद्रे वर्जयित्वा
धम्मं-शुक्ले ध्यायेत् ।
प्रशान्त-चित्तो दान्तात्मा
समितो गुप्पश्च गुप्पिमिः ॥

सरागो वातरागो वा
उपशान्तो जितेन्द्रियः ।
एतद्योग-समामुक्तः
शुक्ल-लेइयां तु परिणमेत् ॥

असंख्येयानामवसप्पिणीनां
उत्सप्पिणीनां ये समयाः ।
संख्यातीता लोका
लेइयानां भवन्ति स्थानानि ॥

मुहूर्त्तं तु जघन्या
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा मुहूर्त्तार्धिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या कृष्ण-लेइयायाः ॥

२९—जिस मनुष्य के क्रोध, मान, माया
और लोभ अत्यन्त अल्प है, जो प्रशान्त-चित्त
है, अपनी आत्मा का दमन करता है, समाधि
युक्त है, उपधान करने वाला है,

३०—अत्यल्प भावी है, उपशान्त है,
जितेन्द्रिय है—जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त
है, वह पद्म-लेइया में परिणत होता है ।

३१—जो मनुष्य आत्तं और रोद्रे—इन
दोनों ध्यानों को छोड़ कर धर्म और शुक्ल—
इन दो ध्यानों में लीन रहता है, प्रशान्त-चित्त
है, अपनी आत्मा का दमन करता है, समितियों
में समित है, गुप्तियों में गुप्त है,

३२—उपशान्त है, जितेन्द्रिय है—जो इन
सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह सराग हो
या वातराग, शुक्ल-लेइया में परिणत होता है ।

३३—असंख्येय अवसप्पिणी और उत्सप्पिणी
के जितने समय होते हैं, असंख्यात लोकों के
जितने आकाश-न्देश होते हैं, उतने ही
लेइयाओं के म्यान (अण्ववमाय-परिमाण)
होते हैं ।

३४—कृष्ण लेइया की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त
अधिक तेतीस सागर की होती है ।

१. 'वाई (अ) ।

२. साइए (हुं, छ०) ; भायए (हुं पा०) ।

३. व (अ) ।

४. छदजोगे (हुं पा०) ।

५. असंखेज्जाणओ उत्सप्पिणीण (अ) ।

६. असंखेया (हुं पा०) ।

७. मुहुत्तदा व (हुं पा०) ।

३५—‘मुहुत्तद्धं तु’^१ जहन्ना
दस उदही पलियमसंखभाग-
मम्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा नीललेसाए ॥

३६—‘मुहुत्तद्धं तु’^२ जहन्ना
तिण्णुदही पलियमसंखभाग-
मम्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा काउलेसाए ॥

३७—‘मुहुत्तद्धं तु’^३ जहन्ना
दाउदही पलियमसंखभाग-
मम्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा तेउलेसाए ॥

३८—‘मुहुत्तद्धं तु’^४ जहन्ना
दस ‘हान्ति सागरा
मुहुत्तहिया’^५ ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा पम्हलेसाए ॥

३९—‘मुहुत्तद्धं तु’^६ जहन्ना
तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई
नायव्वा सुक्कलेसाए ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
वशोदधिपल्यासंख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या नील-लेखायाः ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
त्र्युदधिपल्यासंख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या कापोत-लेखायाः ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
द्वयुदधिपल्यासंख्यभागाधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या तेजो-लेखायाः ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
दश भवन्ति सागरा मुहुत्तर्धिकाः ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या पद्म-लेखायाः ॥

मुहुत्तर्धं तु जघन्या
त्रयोस्त्रिंशत्सागरा मुहुत्तर्धिकाः ।
उत्कृष्टा भवति स्थितिः
ज्ञातव्या शुक्ल-लेखायाः ॥

३५—नील लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पत्योपम के
असंख्यातव भाग अधिक दश सागर की
होती है ।

३६—कापोत लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पत्योपम के
असंख्यातव भाग अधिक तीन सागर की
होती है ।

३७—तेजो लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पत्योपम के
असंख्यातव भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

३८—पद्म लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति मुहूर्त अधिक
दश सागर की होती है ।

३९—शुक्ल लेखा की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति मुहूर्त अधिक
तेतीस सागर की होती है ।

१. शुद्धा उ (५० पा०) ।

२. शुद्धा उ (५० पा०) ।

३. शुद्धा उ (५० पा०) ।

४. शुद्धा उ (५० पा०) ।

५. उदही हुंति मुहुत्तमहिया (उ, ५०) ।

६. शुद्धा उ (५० पा०) ।

४०—एसा खलु लेसाणं
ओहेण ठिई उ वण्णिया होइ ।
चउमु वि गईसु एत्तो
लेसाण ठिई तु वोच्छामि ॥

४१—दस वाससहस्साइं
काऊए ठिई जहन्निया होइ ।
'तिण्णुदही' 'पलिओवम
असंखभागं'^१ च उक्कोसा'^२ ॥

४२—तिण्णुदही पलिय-
मसंखभागा जहन्नेण नीलठिई ।
दस उदही 'पलिओवम
असंखभागं'^३ च उक्कोसा ॥

४३—'दस उदही' 'पलिय-
मसंखभागं'^४ जहन्निया होइ ।
तेत्तीससागराइं उक्कोसा
होइ किण्णुए ॥'^५

४४—एसा नेरइयाणं
लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि
तिरियमणुसाण देवाणं ॥

एसा खलु लेस्यानां
ओघेन स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
वस्तुष्वपि गतिश्चितः
लेस्यानां स्थिति तु वक्ष्यामि ॥

दशवर्षसहस्राणि
कापोतायाः स्थितिर्जघन्यका भवति ।
त्र्युदधिपल्योपमा
ऽऽङ्कुष्यभागं चोत्कृष्टा ॥

त्र्युदधिपल्या
असङ्ख्ययभागा जघन्येन नीलस्थितिः ।
दशोदधिपल्योपमा
ऽऽङ्कुष्यभागं चोत्कृष्टा ॥

दशोदधिपल्या
ऽऽङ्कुष्यभागं जघन्यका भवति ।
त्रयस्त्रिंशत्सागराः
उत्कृष्टा भवति कृष्णायाः ॥

एसा नेरयिकाणां
लेस्यानां स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
ततः परं वक्ष्यामि
तिर्यङ्-मनुष्याणां देवानाम् ॥

४०—लेस्याओं की यह स्थिति ओघ रूप
(अपुष्प-भाव) से कही गई है । अब आगे
पुष्प-भाव से चारों गतियों में लेस्याओं की
स्थिति का वर्णन करूंगा ।

४१—नारकीय जीवों के कापोत लेस्या
की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट
स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक
तीन सागर की होती है ।

४२—नील लेस्या की जघन्य स्थिति
पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर
और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें
भाग अधिक दश सागर की होती है ।

४३—कृष्ण लेस्या की जघन्य स्थिति
पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दश सागर
और उत्कृष्ट स्थिति तेजीस सागर की होती है ।

४४—यह नेरयिक जीवों के लेस्याओं की
स्थिति का वर्णन किया गया है । इससे आगे
तिर्यङ्, मनुष्य और देवों की लेस्या स्थिति का
वर्णन करूंगा ।

१. पलियमसंख भागं (६०) ; पलियमसंखेय भागं (६०) ।

२. उक्कोसा तन्नुदही पलियमसंखेयभागऽष्टिच (६० वा०) ।

३. पलिय असंखभागं (६, ६०) ।

४. पलियमसंख भागं च (६) ।

५. दस उदही पलियमसंख भागं च जहन्नेण कण्ठ केसाए । तेत्तीस सागराईं सुत्तुअहिंसा च उक्कोसा ॥ (अ) ।

४५—अन्तोमुहुत्तमद्धं

लेसाण ठिई जहि जहि जा उ ।
तिरियाण नराणं वा'
वज्जिता केवलं लेसं ॥

अन्तर्मुहूर्ताध्वानं

लेस्यानां स्थितिः पस्मिन् पस्मिन्
यास्तु ।

तिरिचवां नराणां वा
वर्जयित्वा केवलं लेस्याम् ॥

४५—तिर्यङ्ग और मनुष्य में जितनी

लेस्याएँ होती हैं, उनमें से शुक्ल लेस्या को
छोड़ कर शेष सब लेस्याओं की जघन्य और
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

४६—मुहुत्तद्धं तु जहन्ना
उकासा होइ पुव्वकोडो उ ।
नवहि वरिसेहि ऊणा
नायव्वा मुक्कलेसाए ॥

मुहूर्ताद्यं तु जघन्या
उत्कृष्टा भवति पूर्वकोटो तु ।
नवभिर्वर्णना
शतव्या शुक्ल-लेस्यायाः ॥

४६—शुक्ल लेस्या की जघन्य स्थिति
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ग मूल एक
कोटि पूर्व की होती है ।

४७—एसा तिरियनराणं
लेसाण ठिई उ वणिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि
लेसाण ठिई उ देवाणं ॥

एषा तिर्यङ्-नराणां
लेस्यानां स्थितिस्तु वर्णिता भवति ।
ततः परं ब्रह्म्यामि
लेस्यानां स्थितिस्तु देवानाम् ॥

४७—यह तिर्यङ्ग और मनुष्य के लेस्याओं
की स्थिति का वर्णन किया गया है । इससे
प्रागे देवों की लेस्याओं की स्थिति का वर्णन
करूंगा ।

४८—दस वाससहस्साइं
किण्हाए ठिई जहन्निया होइ ।
पलियमसंखिज्जइमो
उकासा हाइ किण्हाए ॥

दशवर्षसहस्राणि
कृष्णायाः स्थितिजघन्यका भवति ।
पल्यासंख्येयतमः
उत्कृष्टा भवति कृष्णायाः ॥

४८—भवनपति और वाणव्यन्तर देवों के
कृष्ण लेस्या की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष
और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें
भाग की होती है ।

४९—जा किण्हाए ठिई खलु
उकासा सा उ समयमव्वहिया ॥
जहन्नेण नीलाए
'पलियमसंखं तु'^१ उकासा ॥

या कृष्णायाः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाम्यविक्रमा ।
जघन्येन नीलायाः
पल्यासङ्ख्यं तुत्कृष्टा ॥

४९—कृष्ण लेस्या की जो उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह नील
लेस्या की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग
जितनी है ।

५०—जा नीलाए ठिई खलु
उकासा सा उ समयमव्वहिया ।
जहन्नेण काऊए
पलियमसंखं च उकासा ॥

या नीलायाः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाम्यविक्रमा ।
जघन्येन कापोतायाः
पल्यासङ्ख्यं चोत्कृष्टा ॥

५०—नील लेस्या की जो उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह कापोत
लेस्या की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग
जितनी है ।

१. तु (बु०) ; च (ड, झ०) ।

२. पलियमसंखं च (ड, झ०) ; पलियमसंखिज्ज (बु०) ।

५१—तेण परं वोच्छामि
तेउलेसा जहा सुरगणाणं ।
भवणवइवाणमन्तर-
जोइसवेमाणियाणं च ॥

५२—पलिओवमं^१ जहन्ता
उक्कोसा सागरा उ दुण्ह^२इहिया^३ ।
पलियमसंखेज्जेणं
होई भागेण^४ तेऊए ॥

५३—दस वाससहस्साइं
तेऊए ठिई जहन्निया होइ ।
दुण्हदही पलिओवम
असंखभागं च उक्कोसा ॥

५४—जा तेऊए ठिई खलु
उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं पम्हाए दसउ
मुहुत्त^५इहियाइं च उक्कोसा ॥

५५—जा पम्हाए ठिई खलु
उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं सुक्काए
तेत्तोसमुहुत्तमब्भहिया ॥

५६—किण्हा नीला काऊ
तिन्नि वि एयाओ
अहम्मलेसाओ^१ ।
एयाहि तिहि वि जीवो
दुग्गइ उववज्जई बहुसो^२ ॥

ततः परं वक्ष्यामि
तेजो-लेइयां यथा सुर-गणानाम् ।
भवनपति-वाणव्यन्तर-
ज्योतिर्वैमानिकानां च ॥

पल्पोपमं जघन्या
उत्कृष्टा सागरो तु द्व्यधिकौ ।
पल्यासङ्ख्येयेन
भवति भागेन तंजस्याः ॥

दशवर्षसहस्राणि
तंजस्याः स्थितिः जघन्यका भवति ।
द्व.पुत्रविपल्पोपमा-
ऽसङ्ख्येयभागं चोत्कृष्टा ॥

या तंजस्याः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका ।
जघन्येन पद्मायाः दश तु
मूहूर्ताधिकानि चोत्कृष्टा ॥

या पद्मायाः स्थितिः खलु
उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका ।
जघन्येन शुक्लायाः
त्रयस्त्रिंशत् मूहूर्ताभ्यधिका ॥

कृष्णा नीला कापोताः
तित्रोऽप्येता अधर्म-लेइयाः ।
एताभिस्तिसृभिरपि जीवो
गं तमुपगच्छते ॥

५१—इससे आगे भवनपति, वाणव्यन्तर,
ज्योतिक और वैमानिक देवों के तेजो लेइया
की स्थिति का निरूपण करूँगा ।

५२—तेजो लेइया की जघन्य स्थिति एक
पल्पोपम और उत्कृष्ट स्थिति पल्पोपम के
असंख्यातबे भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

५३—तेजो लेइया की जघन्य स्थिति दश
हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पल्पोपम के
असंख्यातबे भाग अधिक दो सागर की
होती है ।

५४—जो तेजो लेइया की उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह पद्म
लेइया की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक दश सागर की
होती है ।

५५—जा पद्म लेइया की उत्कृष्ट स्थिति
है, उसमें एक समय मिलाने पर वह शुक्ल
लेइया की जघन्य स्थिति होती है और उसकी
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक त्रिंशत् सागर
की होती है ।

५६—कृष्ण, नील और कापोत—ये
तीनों अधर्म-लेइयाएँ हैं । इन तीनों से जीव
दुर्गति को प्राप्त होता है ।

१. पलिओवमं च (अ) ।

२. दुण्हइया (उ, ऋ०) ।

३. त्रिभागेण (अ) ।

४. अहमं (अ, ऋ० पा०) ।

५. × (अ, ऋ०) ।

५७—तेऊ पम्हा सुक्का
तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो
सुग्गइ उववज्जई बहुसो' ॥

५८—लेसाहि सव्वाहि
पढमे समयम्मि परिणयाहि तु ।
'न वि कस्सवि उववाओ'^१
परे भवे अत्थि' जीवस्स ॥

५९—लेसाहि सव्वाहि
चरमे समयम्मि परिणयाहि तु ।
'न वि कस्सवि उववाओ'^२
परे भवे अत्थि' जीवस्स ॥

६०—अन्तमुहुत्तम्मि गए
अन्तमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेसाहि परिणयाहि
जीवा गच्छन्ति परलोयं ॥

६१—तम्हा एयाण^३ लेसाणं
अणुभागे वियाणिया ।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता
पसत्थाओ अहिहेज्जासि^४ ॥
—ति वेमि ।

तंजसी पद्ममा शुक्ला
तिन्नोऽप्येता धर्म-लेखाः ।
एताभिस्तिरुभिरपि जीवः
सुगतिमुपपद्यते ॥

लेखाभिः सर्वाभिः
प्रथमे समये परिणताभिस्तु ।
नापि कस्याप्युपपादः
परे भवेऽस्ति जीवस्य ॥

लेखाभिः सर्वाभिः
चरमे समये परिणताभिस्तु ।
नापि कस्याप्युपपादः
परे भवेऽस्ति जीवस्य ॥

अन्तर्मुहूर्ते गते
अन्तर्मुहूर्ते शेषके चैव ।
लेखाभिः परिणताभिः
जीवा गच्छन्ति परलोकम् ॥

तस्मादेतासां लेखानां
अनुभागान् विज्ञाय ।
अप्रशस्ता वर्जयित्वा
प्रशस्ता अचित्तिष्ठेत् ॥
—इति ब्रवीमि ।

५७—तेजस्, पद्म और शुक्ल—ये तीनों
धर्म-लेखाएँ हैं । इन तीनों से जीव सुगति का
प्राप्त होता है ।

५८—पहले समय में परिणत सभी
लेखाओं में कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न
नहीं होता ।

५९—अन्तिम समय में परिणत सभी
लेखाओं में कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न
नहीं होता ।

६०—लेखाओं की परिणति होने पर
अन्तर्मुहूर्त भीत जाता है अन्तर्मुहूर्त शेष रहता
है, उस समय जीव परलोक में जाता है ।

६१—इसलिए इन लेखाओं के अनुभागों
को जान कर मुनि अप्रशस्त लेखाओं का वर्जन
करे और प्रशस्त लेखाओं की स्वीकार करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. * (ड, ण०) ।

२. न हु कस्सवि उववाणि (ड०) ; न वि (व० पा०) ; न हु (ड, ण०, छ०) ।

३. अयइ (ड०, छ०) ।

४. न हु कस्सवि उववाणि (ड०) ; न वि (व० पा०) ; न हु (ड, ण०, छ०) ।

५. अयइ (ड०, छ०)

६. एयाणि (ड, ण०) ।

७. अहिदिण (ड, ण०) ।

इस अध्ययन (३६० १६) में केवल सुखलभ्यमान के अभ्यास की विधि बतलाई गई है—“सुखकभाणं म्रियारुज्जा” ।

इसमें मृत्यु-धर्म को ओर मोड़ गित किया गया है । मुनि जब तक जोर तब तक असंग जीवन जोर और जब काल-धर्म उपस्थित हो, तब वह आहार का परित्याग कर दे । (३६० २०) आगमकार को अनशनपूर्वक मृत्यु अधिक अमोघित है ।

जीवन-काल में देह-व्युत्सर्ग के अभ्यास का निर्देश दिया गया है । (३६० १६) देह-व्युत्सर्ग का अर्थ देह-मुक्ति नहीं, किन्तु देह के प्रतिबन्ध से मुक्ति है । मनुष्य के लिए देह तब तक बन्धन रहता है, जब तक वह देह से प्रतिबद्ध रहता है । देह के प्रतिबन्ध से मुक्त होने पर वह मात्र साधन रहता है, बन्धन नहीं ।

देह-व्युत्सर्ग असंग का मुख्य हेतु है । यहाँ अनगारुका मार्ग है । इससे दुःखों का अंत होता है । (३६० १) अनगारुका मार्ग दुःख-प्राप्ति के लिए नहीं, किन्तु दुःख-मुक्ति के लिए है । अनगारुका को स्वीकार नहीं करता, किन्तु उसके मूल को विनष्ट करने का मार्ग चुनता है और उसमें चलता है । उस पर चलने में जो दुःख प्राप्त होते हैं, उन्हें वह भेलता है ।

मनोहर युद्ध का त्याग और समान, शून्यागार व वृक्ष-मूल में निवास कष्ट है पर यह कष्ट भेलने के लक्ष्य से निवृत्त कष्ट नहीं है, किन्तु इन्द्रिय-विजय (३६० ४, ५) के मार्ग में प्राप्त कष्ट है । इसी प्रकार अन्न-पाक न करना और भिक्षा लेना कष्ट है पर यह भी अहिंसा-धर्म के अनुपालन में प्राप्त कष्ट है । (३६० १०, ११, १२, १६)

इस प्रकार इस लघु-काय अध्ययन में अनेक महत्वपूर्ण चर्या-अंगों की प्ररूपणा हुई है ।

पष्ठातीसहमं अज्जवणं :
अणगारमग्गइ

पंचत्रिंश अध्वयन :
अनगार-मार्ग-गति

पणतीसद्वयं अङ्गमयः पंचत्रिंशद्वयम् अणगारमगगई : अनगार-मार्ग-गति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१—मुणेह मगः बुद्धेहि जमायरन्तो दुक्खान्तकरो	मेगगमणा ^१ देसियं । भिक्षु भवे ॥	१—तुम एकाग्र मत छोकर बुद्धी (तीर्थंकरों) के द्वारा उपदिष्ट उस मार्ग को मुभ. ते मुने, जिसका आचरण करता हुआ भिष्टु दुःखों का अन्त कर देता ।
२—गिहवासं पवज्जंअस्सिओ ^२ इमे संगे जेहि सज्जन्ति	परिचज्ज मुणी । वियाणज्जा ^३ माणवा ॥	२—जो मूनि गृह-वास को छोड़ कर प्रव्रज्या को अंगीकार कर चुका, वह उन संगों (लेपों) को जाने, जिनसे मनुष्य सक्त (निस्त) होता है ।
३—तहेव चोज्जं इच्छाकामं च संजआ	हिसं अल्लियं अवभसेवणं । लोभं च परिचज्जे ॥	३—संयमी मूनि हिंसा, झूठ, चोरी, अवग्रहचर्य-नेवन, इच्छा-काम (अप्राप्त वस्तु की आकांक्षा) और लोभ इन—सबका परिवर्जन करे ।
४—मणोहरं मल्लधूवेण सकपाडं मणसा वि न	चित्तहरं वासिय । पण्डुरेल्लोयं पत्ये ॥	४—जो म्यान मनोहर चित्रों से आकीर्ण, माल्य और धूप से युवासित, किवाड़ सहित, श्वेत चन्दवा से युक्त हो वैसे स्थान की मन से भी प्रार्थना (अभिलाषा) न करे ।
५—इन्दियाणि उ तारिसम्मि दुक्कराईं कामरागविवड्डणे	भिक्षुस्स उवस्सए । निवारेउं ^४ ॥	५—काम-राग को बढ़ाने वाले वैसे उपाध्य में इन्द्रियों का निवारण करना (उन पर नियन्त्रण पाना) भिक्षु के लिए दुष्कर होता है ।

१. मे एगगमणा (उ, ऋ०) ।

२. पवज्जंअस्सिओ (उ, ऋ०) ।

३. वियाणेल्ला (अ) ।

४. उ वारेउं (ऋ०) ; निवारेउं (ऋ० पा०) ।

आच्युत

अज्ञातसर्वे अध्ययन में मोक्ष-मार्ग की गति (अवबोध) दी गई है और इस अध्ययन में अनगार-मार्ग की । इसीलिए उसका नाम—‘मोक्षमार्गगई’ और इसका नाम—‘अनगारमार्गगई’—‘अनगार-मार्ग-गति’ है ।

अनगार सुसुप्त होता है, अतः उसका मार्ग मोक्ष-मार्ग से भिन्न कैसे होगा ? यदि नहीं होगा तो इसके प्रतिपादन का फिर क्या अर्थ है ?

इस प्रश्न को हम इस भाषा में सोचें—मोक्ष-मार्ग व्यापक शब्द है । उसके चार अंग हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप :

नाणं च दंसणं चेव, चरिचं च तपो तह्मा ।

एस मग्गो वि पन्नसो, जिणेहि वरदंसिहि ॥ (२८।२)

अनगार-मार्ग मोक्ष-मार्ग को तुलना में सीमित है । ज्ञान, दर्शन और तप की आराधना गृहवास में भी हो सकती है । उसके जीवन में केवल अनगार—चारित्र की आराधना नहीं होती । प्रस्तुत अध्ययन में उसी का प्रतिपादन है । इस तथ्य को इस भाषा में भी रखा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन में मोक्ष-मार्ग के तीसरे अंग (चारित्र) के द्वितीय अंश—अनगार-चारित्र—का कर्त्तव्य-निर्देश है ।

इस अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य संग-विज्ञान है । संग का अर्थ लेप या आसक्ति है । उसके १३ अंग बतलाए गए हैं—

१—हिंसा,	८—गृह-निर्माण,
२—असत्य,	९—अन्न-पाक,
३—चौर्य,	१०—धनार्जन की वृत्ति,
४—अश्रद्धा-सेवन,	११—प्रतिबद्ध भिक्षा,
५—इच्छा-काम,	१२—स्वाद-वृत्ति और
६—लोभ,	१३—पूजा को अभिलाषा ।
७—संसक्त-स्थान,	

इसके अध्येयन में पाँचवाँ महाव्रत अप्रतिग्रह है । इस अध्ययन में उसके स्थान पर इच्छा-काम व लोभ-वर्जन है :

अहिंस सचयं च अतेणं च, ततो य बभ्मं अपरिगृहं च ।

परिवज्जिया पंच महवयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विक्क ॥ (२१।१२)

तह्वेव हिंसं अलियं, चोज्जं अबम्मसेवणं ।

इच्छाकामं च लोभं च, संजओ परिवज्जर ॥ (२५।३)

चौतीसवें अध्ययन (श्लो० ३९) में बतलाया गया है—‘धम्मसुक्काणि मायए’—‘सुनि धर्म्य और शुक्ल ध्यान का अभ्यास करे ।

६—सुसाणे सुलगारे वा
रुक्खमूले व एकओ^१ ।
पट्टरिके^२ परकडे वा
वासं तत्थऽभिरोगेण ॥

रुक्खमूले सुलगागे वा
वृक्ष-मूल वा एककः ।
प्रतिरिक्ते परकृते वा
वासं तत्राभिरोग्येत् ॥

६—इसलिए एकाकी भिक्षु रुक्खान में,
दूर्य गृह में, वृक्ष के मूल में अथवा परकृत
एकान्त स्थान में रहने की इच्छा करे ।

७—फासुयस्मि अणाबाहे
इत्थीहि अणभिदुट्टे ।
तत्थ संकप्पे वासं
भिक्षू परमसंजए ॥

प्रासुके अनाबाधे
स्त्रीभिरनभिदूते ।
तत्र संकल्पेद्वासं
भिक्षुः परम-संयतः ॥

७—परम संयत भिक्षु प्रासुक, अनाबाध
और स्त्रियों के उपद्रव से रहित स्थान में रहने
का संकल्प करे ।

८—न सयं गिहाइं कुज्जा
णेव अन्नेहि कारए ।
गिहकम्मसमारम्भे
भूयाणं दीसई वहे ॥

न स्वयं गृहाणि कुर्वीत
नैव अन्यः कारयेत् ।
गृहकर्म-समारम्भे
भूतानां ददयते वधः ॥

८—भिक्षु न स्वयं घर बनाए और न
दूसरों से बनवाए । गृह-निर्माण के समारम्भ
(प्रवृत्ति) में जोवों—यस और स्वावर, सुधम
और बादर—का वध देना जाता है । इसलिए
संयत भिक्षु गृह-समारम्भ का परित्याग करे ।

९—तसाणं थावराणं च
सुहुमाणं वायराणं य ।
तम्हा गिहसमारम्भं
संजओ परिवज्जेण ॥

त्रसानां थावराणां च
सूक्ष्माणानां वादराणां च ।
तस्माद् गृह-समारम्भं
संयतः परिवर्जयेत् ॥

१०—तहेव भत्तपाणेसु
पयणं पयावणं सु य ।
पाणभूयदयट्ठाए
न पये न पयावए ॥

तथैव भक्त-पानेषु
पचन-पाचनेषु च ।
प्राण-भूत-दयायं
न पचेत् न पाचयेत् ॥

१०—भक्त-पान के पकाने और पकवाने
में हिंसा होती है, अतः प्राणी और भूतों की
दया के लिए भिक्षु न पकाए और न पकवाए ।

११—जलधन्निस्सिया जीवा^३
पुट्टोकोट्टनिस्सिया^४ ।
हम्मन्ति भत्तपाणेसु
तम्हा भिक्षू न पायए ॥

जल-धान्य-निश्चिता जीवाः
पृथिवी-काष्ठ-निश्चिताः ।
हन्त्यन्ते भक्त-पानेषु
तस्माद् भिक्षुर्न पाचयेत् ॥

११—भक्त और पान के पकाने में जल
और धान्य के आश्रित तथा पृथ्वी और काष्ठ
के आश्रित जीवों का हनन होता है, इसलिए
भिक्षु न पकाए ।

१. पयाओ (उ. ५०) ; पयाया (वृ०) ; एकतो (वृ० पा०) ।

२. परक्के (वृ०) ; पट्टरिके (वृ० पा०) ।

३. पयणं (वृ०) ; पयणे य (अ) ।

४. पाणा (अ) ।

५. "काय" (उ) ।

१२—विसप्पे सव्वओधारे
बहुपाणविणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे
तम्हा जोई न दोवए ॥

विसर्पन् सर्वतोधारं
बहुप्राणि-विनाशनम् ।
नास्ति ज्योतिः-समं शस्त्रं
तस्माज्ज्योतिर्न दोषयेत् ॥

१२—अग्नि फैलने वाला, सब ओर से
घार वाली ओर बहुत जीवों का विनाश करने
वाली होती है, उसके समान दूसरा कोई शस्त्र
नहीं होता, इसलिए भिक्षु उसे न जलाए ।

१३—हिरण्णं जायरूवं च
मणसा वि न पत्थए ।
समलेट्टु-कांचनो भिक्खू
विरए कयविक्रए ॥

हिरण्यं जातरूपं च
मनसापि न प्रार्थयेत् ।
समलेष्टु-कांचनो भिक्षुः
विरतः क्रय-विक्रयान् ॥

१३—क्रय और विक्रय से विरत, मिट्टी
के ढंके और सोने का समान समझने वाला
भिक्षु सोने और चाँदी की मत से भी इच्छा
न करे ।

१४—किणन्तो कइओ होइ
वि-किणन्तो य वाणिजो ।
कयविक्रयम्मि वट्टन्तो
भिक्खू न भवइ तारिसो ॥

कीर्णन् क्रयिको भवति
विक्रीणन् च वाणिजः ।
क्रय-विक्रये वर्तमानः
भिक्षुर्न भवति तादृशः ॥

१४—वस्तु को खरीदने वाला क्रयिक
होता है और बेचने वाला वणिक् । क्रय और
विक्रय में वर्तन करने वाला भिक्षु वैसा नहीं
होता—उत्तम भिक्षु नहीं होता ।

१५—भिक्खयव्वं न केयव्वं
भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा ।
कयविक्रओ महादोसो
भिक्खावत्तो' मुहावहा ॥

भिक्षितव्यं न क्रेतव्यं
भिक्षुणा श्रेष्ठ-वृत्तिना ।
क्रय-विक्रयो महान् दोषो
भिक्षा-वृत्तिः सुखावहा ॥

१५—भिक्षा-वृत्ति वाले भिक्षु को भिक्षा
ही करने की चाहिए, क्रय-विक्रय नहीं । क्रय-
विक्रय महान् दोष है । भिक्षा-वृत्ति सुख को
देने वाली है ।

१६—समुयाणं उंछमेसिज्जा
जहामुत्तमणिन्दियं ।
लाभालाभम्मि सत्तुट्ठे
पिण्डवायं 'चरे मुणी' ॥

सुमुदानमुअङ्गमेययेत्
यथा-सूत्रमनिन्दितम् ।
लाभालाभे सन्तुष्टः
पिण्ड-पातं चरेत् मुनिः ॥

१६—मुनि सूत्र के अनुसार, अनिन्दित
और सामुदायिक उच्छेद की एषणा करे । वह
लाभ और अलाभ से सन्तुष्ट रहकर पिण्ड-पात
(भिक्षा) की चर्चा करे ।

१७—अलोले न रसे गिडे
जिब्भादन्ते अमुच्छिण्ण ॥
न रसट्ठाए भुंजिज्जा
जवणट्ठाए महामुणी ॥

अलोलो न रसे गृद्धो
बान्त-जिह्वोऽमूर्च्छितः ।
न रसायं भुंजीत
यापनायं महामुनिः ॥

१७—अलोलुप, रस में अग्रद, जीभ का
दमन करने वाला और अमूर्च्छित महामुनि
रस (स्वाद) के लिए न खाए, किन्तु जीवन-
निर्वाह के लिए खाए ।

१८—अर्चनं रयणं चैव
वन्दनं पूयणं तथा ।
इहोसकृत्सम्मानं
मणता वि न पत्यए ॥

अर्चनां रचनां चैव
बन्धनं पूजनं तथा ।
श्रद्धि-सत्कार-सम्मानं
मनसाऽपि न प्राप्येत् ॥

१८—मुनि अर्चना, रचना (असत, मोती आदि का रचितक बनाना), वन्दना, पूजा, श्रद्धि, सत्कार और सम्मान की मन से भी प्राप्यता (अभिलाषा) न करे ।

१९—सुक्कभाणं भियाएज्जा
अणियाणे अकिंचणे ।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा
जाव कालस्स पज्जओ ॥

शुक्ल-ध्यानं ध्यायत्
अनिदानोऽकिंचनः ।
व्युत्सृष्ट-कायो विहरेत्
यावत्कालस्य पर्ययः ॥

१९—मुनि शुक्ल ध्यान ध्याए । अनिदान और अकिंचन रहे । वह जीवन भर व्युत्सृष्ट-काय (देहाध्यास से मुक्त) होकर विहार करे ।

२०—निज्जुहिऊण आहारं
कालधम्मे उवट्ठिए ।
जहिऊण* माणुसं बोन्दि
पह दुक्खे विमुच्चर्ह ॥

निर्युह्य आहारं
काल-धर्म उपन्यते ।
त्यक्त्वा मानुषं शरीरं
प्रभु दुःखं विमुच्यते ॥

२०—समर्थ मुनि काल-धर्म के उपन्यत होने पर आहार का परित्याग करके, मनुष्य शरीर को छोड़ कर दुःखों से विमुक्त हो जाता है ।

२१—निम्ममो निरहंकारो
वीयरगो अणासवो* ।
संपत्तो केवलं नाणं
सासयं परिणिव्वुए ॥
—त्ति वेमि ।

निर्ममो निरहंकार
वीतरागोऽनाश्रयः ।
सम्प्राप्तः केवलं ज्ञानं
शाश्वतं परिनिर्वृतः ॥
—इति ब्रवीमि ।

२१—निर्मम, निरहंकार, वीतराग और आश्रयों में रहित मुनि शाश्वत केवलज्ञान का प्राप्त कर परिनिर्वृत हो जाता है—सर्वथा आत्मसत्य हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

छत्तीसगढ़ अन्वयण :
जीवाजीवविभक्ती

षट्त्रिंश अध्वयन :
जीवाजीव-विभक्ति

आप्तुख

इस अध्ययन में जीव और अजीव के विभागों का निरूपण किया गया है। इसलिए इसका नाम—‘जीवा-जीवावभरी’—‘जीवाजीव-विभक्ति’ है।

जैन तत्त्व-विद्या के अनुसार मूल तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। शेष सब तत्त्व इनके अवान्तर विभाग हैं। प्रस्तुत अध्ययन में लोक की परिभाषा इसी आधार पर की गई है: “जीवा चैव अजीवा य, एस लोस विद्याहिए”। (३लो० २)

प्रज्ञापना के प्रथम पद में जीव और अजीव की प्रज्ञापना की गई है। उसकी जीव-प्रज्ञापना का क्रम प्रस्तुत अध्ययन की जीव-विभक्ति से कुछ भिन्न है। यहाँ संसारी जीवों के दो प्रकार किए गए हैं—जस और स्थावर। स्थावर के तीन प्रकार हैं—पृथ्वी, जल और वनस्पति। (३लो० ६८, ६९) जस के भी तीन प्रकार हैं—आग्नि, वायु और उदार। (३लो० १०७) उदार के चार प्रकार हैं—द्रोन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। (३लो० १२६)

प्रज्ञापना में संसारी जीवों के पाँच प्रकार किए गए हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।^१

प्रस्तुत अध्ययन के जीव-विभाग में एकेन्द्रिय का उल्लेख नहीं है और प्रज्ञापना में जस-स्थावर का विभाग नहीं है। आचारांग (प्रथम श्रुत-स्कन्ध) सबसे प्राचीन आगम माना जाता है। उसमें जीव-विभाग छह जीव-निकाय के रूप में प्राप्त है। छह जीव-निकाय का क्रम इस प्रकार है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वनस्पति, जस और वायु।^२ आचारांग के नौवें अध्ययन में छह जीव-निकाय का क्रम भिन्न प्रकार से मिलता है—पृथ्वी, जल, तेजस्, वायु, वनस्पति और जस।^३ वहाँ जस और स्थावर ये दो विभाग भी मिलते हैं।^४

आचारांग के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि जीवों का प्राचीनतम विभाग छह जीव-निकाय के रूप में रहा है। जस और स्थावर का विभाग भी प्राचीन है, किन्तु स्थावर के तीन प्रकार और जस के तीन प्रकार—यह विभाग आचारांग में नहीं मिलता। स्थानांग में यह प्राप्त है।^५ सम्भव है स्थानांग से ही उत्तराध्ययन में यह गृहीत हुआ है।

प्रज्ञापना का विभाग और भी उत्तरवर्ती जान पड़ता है।

जीव और अजीव का विशद वर्णन जीवाजीवाभिगम सूत्र में मिलता है।^६ वह उत्तरवर्ती आगम है,

१—प्रज्ञापना, (प्रथम पद), सूत्र ६।

२—आचारांग, १।१२-७।

३—वही, १।६।१।१२।

४—वही, १।६।१।१४।

५—स्थानांग, ३।२।सू० १६४ :

विधिहा तसा पं० तं०—तेजकाहवा वादकाहवा उराका तसा पाणा,

विधिहा थावरा, पं० तं०—पुहकाहवा आदकाहवा वणस्सइकाहवा।

६—जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति १-६।

इसलिए उसमें जीव-विभाग सम्बन्धी अनेक मतों का संग्रहण किया गया है :

- (१) दो प्रकार के जीव— जस और स्वावर ।
 (२) तीन प्रकार के जीव— स्त्रो, पुरुष और नपुंसक ।
 (३) चार प्रकार के जीव— नैरयिक, तिर्य्यच-योनिक, मनुष्य और देव ।
 (४) पाँच प्रकार के जीव— एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।
 (५) छह प्रकार के जीव— पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और असकायिक ।
 (६) सात प्रकार के जीव— नैरयिक, तिर्य्यच, तिर्य्यची, मनुष्य, स्त्रो, देव और देवी ।
 (७) आठ प्रकार के जीव— प्रथम समय के नैरयिक, अप्रथम समय के नैरयिक ।
 " " तिर्य्यच, " " तिर्य्यच ।
 " " मनुष्य, " " मनुष्य ।
 " " देव, " " देव ।
 (८) नौ प्रकार के जीव — पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।
 (९) दस प्रकार के जीव— प्रथम समय के एकेन्द्रिय, अप्रथम समय के एकेन्द्रिय ।
 " " द्वीन्द्रिय, " " द्वीन्द्रिय ।
 " " त्रीन्द्रिय, " " त्रीन्द्रिय ।
 " " चतुरिन्द्रिय, " " चतुरिन्द्रिय ।
 " " पंचेन्द्रिय, " " पंचेन्द्रिय ।

इस प्रकार आगम-ग्रन्थों में अनेक विवक्षाओं से जीवों के अनेक विभाग प्राप्त होते हैं । प्रस्तुत अध्ययन में अजीव के दो भेद किए हैं—रूपी और अरूपी । (श्लो० ४)

अरूपी अजीव के दस भेद हैं (श्लो० ४, ५, ६) :

- (१) धर्मास्तिकाय, (६) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश,
 (२) धर्मास्तिकाय का देश, (७) आकाशास्तिकाय,
 (३) धर्मास्तिकाय का प्रदेश, (८) आकाशास्तिकाय का देश,
 (४) अधर्मास्तिकाय, (९) आकाशास्तिकाय का प्रदेश और
 (५) अधर्मास्तिकाय का देश, (१०) अद्धा-समय ।

रूपी अजीव के चार भेद हैं (श्लो० १०) :

- (१) स्कन्ध, (३) स्कन्ध-प्रदेश और
 (२) स्कन्ध-देश, (४) परमाणु ।

प्रज्ञापना और जीवाजीवाभिगम सूत्र में भी अजीव का यही विभाग मान्य है ।

छन्नीसङ्गमं अज्जय्यणं : पट्त्रिंशत् अध्यायन जीवाजीवविभत्ती : जीवाजीव-विभक्ति

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुबाव
१—जीवाजीवविभत्ति 'सुणेहे मे' एगमणा इओ । जं जाणिऊण समणे ^१ सम्मं जयइ संजमे ॥	जीवाजीवविभक्ति शृणुत मम एक-मनसः इतः । यां हात्वा श्रमणः सम्यग् यतते संयमे ॥	१—तुम एकाग्र-मन होकर मेरे पास जीव और अजीव का वह विभाग सुनो, जिसे जान कर श्रमण संयम में सम्यक् प्रयत्न करता है ।
२—जीवा चैव अजीवा य एस लोए वियाहिए । अजीवदेसमागासे अलोए से वियाहिए ॥	जीवाश्चैवाजीवाश्च एष लोको व्याख्यातः । अजीव-देश आकाशः अलोकः स व्याख्यातः ॥	२—यह लोक जीव और अजीवमय है । जहाँ अजीव का देश आकाश ही है, उसे अलोक कहा गया है ।
३—द्ववओ खेत्तओ चैव कालओ भावओ तहा । परूवणा तेसि भवे जीवाणमजीवाण य ॥	द्वयतः क्षेत्रद्वयैव कालतोभावतस्तथा । परूपणा तेषां भवेत् जीबनामजीवानां च ॥	३—जीव और अजीव की प्ररूपणा द्वय, क्षेत्र, काल और भाव—इन चार दृष्टियों से होती है ।
४—रूपिणो चैत्तरूवी य अजोवा दुविहा भवे । अरूवी दसहा वुत्ता रूपिणो वि चउत्थिहा ॥	रूपिणश्चैत्तरूपिणश्च अजोवा द्विविधा भवेद्युः । अरूपिणो दशघोरूपाः रूपिणोऽपि चतुर्विधाः ॥	४—अजीव दो प्रकार का है—रूपी और अरूपी । अरूपी के दश और रूपी के चार प्रकार हैं ।
५—धम्मत्थिकाए तद्देसे तप्पएसे य आहिए । अहम्मसे तस्स देसे य तप्पएसे य आहिए ॥	धर्मास्तिकायस्तद्देशः तत्प्रदेशश्चाख्यातः । अधर्मस्तस्य देशश्च तत्प्रदेशश्चाख्यातः ॥	५—धर्मास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश, अधर्मास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश,

१. मे छणेइ (ह०) ।

२. भिक्खु (उ, ष०, ह०) ; समणे (ह० पा०) ।

६—आगासे तस्स देसे य
तप्पएसे य आहिण्ण ।
अद्दासमए चेव
अरूढी दसहा भवे ॥

आकाशस्तस्य देशश्च
तत्प्रदेशश्चाख्यातः ।
अध्वासमयश्चैव
अरूपिणो दशधा भवेयुः ॥

६—आकाशास्तिकाय और उसका देश
तथा प्रदेश तथा एक अध्वासमय (काल)—ये
दस भेद अरूपी अजीव के होते हैं ।

७—धम्माधम्मो य दोज्जेए^१
लोगमित्ता वियाहिया ।
लोगालोगे य आगासे
समए समयखेत्तिण्ण ॥

धर्माधर्मो च द्वावप्येतो
लोकमात्रौ व्याख्यातो ।
लोकालोके चाकाशः
समयः समय-क्षेत्रिकः ॥

७—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय
लोक-प्रमाण हैं । आकाश लोक और अलोक
दोनों में व्याप्त है । समय समय-क्षेत्र (मनुष्य-
लोक) में ही होता है ।

८—धम्माधम्मागासा
तिन्नि वि एए अणाइया ।
अपज्जवसिया चेव
सव्वद्धं तु वियाहिया ॥

धर्मऽधर्माऽकाशानि
त्रिण्यप्येतान्यनादीनि ।
अपर्यवसितानि चैव
सर्वाण्यं तु व्याख्यातानि ॥

८—धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन
द्रव्य अनादि-अनन्त और सार्वकालिक होते हैं ।

९—'समए वि सन्तइं पप्प
एवमेव'^२ वियाहिण्ण ।
आएसं पप्प साईए
सपज्जवसिए वि य ।

समयोऽपि सन्तति प्राप्य
एवमेव व्याख्यातः ।
आवेशं प्राप्य सादिकः
सपर्यवसितोऽपि च ॥

९—प्रवाह की अपेक्षा समय अनादि-
अनन्त है । एक-एक क्षण की अपेक्षा से बह
सादि-सान्त है ।

१०—खन्धा य खन्धदेसा य
तप्पएसा तहेव य ।
परमाणुणो य बोद्धव्वा
रूपिणो य चउच्चिहा ॥

स्कन्धाश्च स्कन्ध-देशाश्च
तत्प्रदेशास्तथैव च ।
परमाणवश्च बोद्धव्या
रूपिणश्च चतुर्विधाः ॥

१०—रूपी पुरुषल के चार भेद होते
हैं—१-स्कन्ध, २-स्कन्ध-देश, ३-स्कन्ध-प्रदेश
और ४-परमाणु ।

११—एगत्तेण पुहत्तेण
खन्धा य परमाणुणो ।
लोएग्गदेसे लोए य
भइयव्वा ते उ खेतओ ॥
इत्तो कालविभागं तु
तेसि वुच्छं चउच्चिहं ॥

एकत्वेन पृथक्त्वेन
स्कन्धाश्च परमाणवः ।
लोकैकदेशे लोके च
भक्तव्यास्ते तु क्षेत्रतः ॥
इतः काल-विभागं तु
तेषां बध्यं चतुर्विधम् ॥

११—अनेक परमाणुओं के एकत्व से
रक्तव्य बनता है और उसका पृथक्त्व होने से
परमाणु बनते हैं । क्षेत्र की अपेक्षा से वे
(स्कन्ध) लोक के एक देश और समूचे लोक
में भाज्य हैं—असंख्य विकल्प युक्त हैं । अब
उनका चतुर्विध काल-विभाग कहूँगा ।

१. दोएए (उ) ; दोसे व (ऋ०) ।

२. एवमेव संतइं पप्प समए वि (६० पा०) ।

१२—संतई पव्व तेऽणार्इ
अपज्जवसिया वि य ।
ठिई पडुच्च सार्इया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राव्व तेऽनादयः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१२—वे (स्कन्ध और परमाणु) प्रवाह
की अपेक्षा से अनादि-अनन्त हैं तथा स्थिति
(एक क्षेत्र में रहने) की अपेक्षा से सावि-
सान्त हैं ।

१३—असंखकालमुक्कोसं
'एगं समयं जहन्निया'^१ ।
अजीवाण^२ य रूवीणं
ठिई एसा वियाहिया ॥

असङ्ख्यकालमुत्कर्षं
एकं समयं जघन्यका ।
अजीवानां न रूपिणां
स्थितिरैवा व्याख्याता ॥

१३—रूपी अजीवों (पदार्थों) की स्थिति
जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः असंख्यात
काल की होती है ।

१४—अणन्तकालमुक्कोसं
एगं समयं जहन्नयं ।
अजीवाण^२ य रूवीणं
अन्तरेयं वियाहियं ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
एकं समयं जघन्यकाम् ।
अजीवानां च रूपिणां
अन्तरमिदं व्याख्यातम् ॥

१४—उनका अन्तर (स्वस्थान से स्थलित
होकर वापिस नहीं आने तक का काल)
जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः अनन्त काल
का होता है ।

१५—वण्णओ गन्धओ चैव
रसओ फासओ तहा ।
संठाणओ य विन्नेओ
परिणामो तेसि पंचहा ॥

वर्णतो गन्धतश्चैव
रसतः स्पर्शतस्तथा ।
संस्थानतश्च विज्ञेयः
परिणामस्तेषां पंचधा ॥

१५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान
की अपेक्षा से उनका परिणामन पाँच प्रकार का
होता है ।

१६—वण्णओ परिणया जे उ
पंचहा ते पक्कितिया ।
किण्हा नीला य लोहिया
हालिदा मुकिला तहा ॥

वर्णतः परिणता ये तु
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
कृष्णा नीलाश्च लोहिताः
हारित्राः शुक्लास्तथा ॥

१६—वर्ण की अपेक्षा से उनकी परिणति
पाँच प्रकार की होती है—१-कृष्ण, २-नील,
३-रक्त, ४-पीत और ५-शुक्ल ।

१७—गन्धओ परिणया जे उ
दुविहा ते वियाहिया ।
सुब्बिगन्धपरिणामा
दुब्बिगन्धा तहेव य ॥

गन्धतः परिणता ये तु
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
सुरभिगन्ध-परिणामाः
दुरगन्धास्तथैव च ॥

१७—गन्ध की अपेक्षा से उनकी परि-
णति दो प्रकार की होती है—१-सुगन्ध
और २-दुगन्ध ।

१. एगो समयो जहन्नयं (श्र०) ; इक्को समयो जहन्निया (उ) ।

२. अजीवाणं (उ) ।

१८—रसओ परिणया जे उ
पंचहा ते पकितिया ।
तितकडुकसाया
अम्बिला मधुरा तहा ॥

रसतः परिणता ये तु
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
तित्त-कटुक-कषायाः
अम्बला मधुरास्तथा ॥

१८—रस की अपेक्षा से उनकी परिणति
पाँच प्रकार की होती है—१-तित्त, २-कटुक,
३-कसला, ४-खट्टा और ५-मधुर ।

१९—फासओ परिणया जे उ
अट्टहा ते पकितिया ।
ककखडा मउया चव
गछया लहुया तहा ॥

स्पर्शतः परिणता ये तु
अष्टधा ते प्रकीर्तिताः ।
ककखडा मुदुकाश्चैव
गुरुका लघुकास्तथा ॥

१९-२०—स्पर्श की अपेक्षा से उनकी
परिणति आठ प्रकार की होती है—१-ककषा,
२-मुदु, ३-गुह, ४-लघु, ५-शीत, ६-उष्ण,
७-स्निग्ध और ८-रक्ष ।

२०—सीया उण्हा य निद्धा य
तहा लुक्खा य आहिया ।
इइ फासपरिणया एए
पुग्गला समुदाहिया ॥

शीता उष्णाश्च स्निग्धाश्च
तथा लुक्खाश्चाह्वयाः ।
इति स्पर्श-परिणता एते
पुद्गलाः समुदाहिताः ॥

२१—संठाणपरिणया जे उ
पंचहा ते पकितिया ।
परिमण्डला 'य वट्टा'^१
तंसा चउरंसमायया ॥

संस्थान-परिणता ये तु
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
परिमण्डलाश्च वृत्ताः
प्रयन्नाश्चतुरन्ना आयताः ॥

२१—संस्थान की अपेक्षा से उनकी
परिणति पाँच प्रकार की होती है—१-परि-
मण्डल, २-वृत्त, ३-त्रिकोण, ४-चतुष्क और
५-आयत ।

२२—वण्णओ जे भवे किण्हे
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतो यो भवेत् कृष्णः
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२२—जो पुद्गल वर्ण से कृष्ण है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक
विकल्प युक्त) होता है ।

२३—वण्णओ जे भवे नीले
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतो यो भवेत् नीलः
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२३—जो पुद्गल वर्ण से नील है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२४—वण्णओ लोहिए जे उ ,
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतो लोहितो यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२४—जो पुद्गल वर्ण से रक्त है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२५—वण्णओ पीयए जे उ
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतः पीतको यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२५—जो पुद्गल वर्ण से पीत है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२६—वण्णओ मुक्किले जे उ
भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

वर्णतः शुक्लो यस्तु
भाज्यः स तु गन्धतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२६—जो पुद्गल वर्ण से श्वेत है, वह
गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२७—गन्धओ जे भवे सुब्धी
भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

गन्धतो यो भवेत् सुरभिः
भाज्यः स तु वर्णतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२७—जो पुद्गल गन्ध से सुगन्ध वाला
है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२८—गन्धओ जे भवे दुर्गन्धो
भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

गन्धतो यो भवेद्दुर्गन्धः
भाज्यः स तु वर्णतः ।
रसतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२८—जो पुद्गल गन्ध से दुर्गन्ध वाला
है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

२९—रसओ तित्ते जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतस्तिक्तो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

२९—जो पुद्गल रस से तिक्त है, वह
वर्ण, गंध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३०—रसओ कडुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः कटुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३०—जो पुद्गल रस से कडुवा है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३१—रसओ कसाए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः कषायो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३१—जो पुद्गल रस से कसैला है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३२—रसओ अम्बिले जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतः अम्लो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३२—जो पुद्गल रस से खट्टा है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३३—रसओ महुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

रसतो मधुरको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतः स्पर्शतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३३—जो पुद्गल रस से मधुर है, वह
वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३४—फासओ ककखडे जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतः ककखटो यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३४—जो पुद्गल स्पर्श से ककषा है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३५—फासओ मउए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो मृदुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३५—जो पुद्गल स्पर्श से मृदु है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३६—फासओ गुरुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो गुरुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३६—जो पुद्गल स्पर्श से गुरु है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३७—फासओ लहुए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो लघुको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३७—जो पुद्गल स्पर्श से लघु है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३८—फासओ सीयए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो शीतको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३८—जो पुद्गल स्पर्श से शीत है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

३९—फासओ उण्हए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो उण्णको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

३९—जो पुद्गल स्पर्श से उण्ण है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

४०—फासओ निद्धए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो स्निग्धको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

४०—जो पुद्गल स्पर्श से स्निग्ध है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

४१—फासओ लुक्खए जे उ
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चैव
भइए संठाणओ वि य ॥

स्पर्शतो कठको यस्तु
भाज्यः स तु वर्णतः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः संस्थानतोऽपि च ॥

४१—जो पुद्गल स्पर्श से कठ है, वह
वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य
होता है ।

४२—परिमण्डलसंठाणे

भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

परिमण्डल-संस्थानः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४२—जो पुद्गल संस्थान से परिमण्डल है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४३—संठाणओ

भवे वट्टे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

संस्थानतो भवेत् वृत्तः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४३—जो पुद्गल संस्थान से वृत्त है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४४—संठाणओ

भवे तंसे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

संस्थानतो भवेत् त्रयस्त्रयः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४४—जो पुद्गल संस्थान से त्रिकोण है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४५—संठाणओ

व चउरंसे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

संस्थानतो यश्चतुरस्रः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४५—जो पुद्गल संस्थान से चतुष्कोण है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४६—जे

आययसंठाणे
भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव
भइए फासओ वि य ॥

य आयत-संस्थानः

भाज्यः स तु वर्णितः ।
गन्धतो रसतश्चैव
भाज्यः स्पर्शतोऽपि च ॥

४६—जो पुद्गल संस्थान से आयत है, वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ।

४७—एसा

अजीवविभती
समासेण वियाहिया ।
इतो जीवविभत्ति
बुच्छामि अणुपुब्बसो ॥

एसाजीव-विभक्तिः

समासेन व्याख्याता ।
इतो जीव-विभक्ति
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

४७—यह अजीव-विभाग संक्षेप में कहा गया है । अब अनुक्रम से जीव-विभाग का निरूपण करूंगा ।

४८—संसारत्वा य सिद्धा य
दुविहा जीवा वियाहिया' ।
'सिद्धा णेगविहा वुत्ता'
तं मे कित्तयओ सुण ॥

संसारस्थितश्च सिद्धाश्च
द्विविधाः जीवा व्याख्याताः ।
सिद्धा अनेकविधा उक्ताः
तान् मे कीर्तयतः शृणु ॥

४८—जीव दो प्रकार के होते हैं—
(१) संसारी और (२) सिद्ध । सिद्ध अनेक प्रकार
के होते हैं । मैं उनका निरूपण करता हूँ, तुम
मुझ से सुनो ।

४९—इत्थो पुरिससिद्धा य
तहेव य नपुंसगा ।
सल्लिगे अन्नल्लिगे य
गिहिल्लिगे तहेव य ॥

स्त्री-पुरुष-सिद्धाश्च
तथैव च नपुंसकाः ।
स्व-लिंगा अन्य-लिंगाश्च
गृह-लिंगास्तथैव च ॥

४९—स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंग सिद्ध,
नपुंसकलिंग सिद्ध, स्वलिंग सिद्ध, अन्यलिंग
सिद्ध, गृहलिंग सिद्ध आदि उनके अनेक
प्रकार हैं ।

५०—उक्कोसोगाहणाए य
जहन्मज्झमाइ य ।
उडुहं अहे य तिरियं च
समुट्ठमि जलमि य ॥

उत्कर्षावगाहनायां च
जघन्यमध्यमयोश्च ।
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् च
समुद्धे जले च ॥

५०—उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम
अवगाहना (कद) में, ऊँचे, नीचे और तिरछे
लाक में तथा समुद्र व अन्य जलाशयों में भी
जीव सिद्ध होते हैं ।

५१—दस 'चव नपुंसेसु'^१
वोसं इत्थियासु य ।
पुरिसेसु य अट्टसयं
समण्णेगेण सिज्झई ॥

दस चैव नपुंसकेषु
विजातिः स्त्रीषु च ।
पुरुषेषु चाष्टशतं
समयेनैकेन सिध्यति ॥

५१—दस नपुंसक, बीस स्त्रियाँ और
एक सौ आठ पुरुष एक ही क्षण में सिद्ध हो
सकते हैं ।

५२—चत्तारि य गिहिल्लिगे
अन्नल्लिगे दसेव य ।
सल्लिगेण य अट्टसयं
समण्णेगेण सिज्झई ॥

चत्वारदश गृह-लिंगे
अन्य-लिंगे दशैव च ।
स्व-लिंगेन चाष्टशतं
समयेनैकेन सिध्यति ॥

५२—गृहस्थ येश में चार, अन्य तीर्थिक
वेश में दश और निर्ग्रन्थ येश में एक सौ आठ
जीव एक साथ सिद्ध हो सकते हैं ।

५३—उक्कोसोगाहणाए य
सिज्झन्ते जुगवं दुवे ।
चत्तारि जहन्ताए
जवमज्झमट्ठत्तरं^२ सयं ॥

उत्कर्षावगाहनायां च
सिध्यतो युगपद् द्वौ ।
चत्वारो जघन्यायाम्
यवमध्यायामट्ठोत्तरं शतम् ॥

५३—उत्कृष्ट अवगाहना में दो, जघन्य
अवगाहना में चार और मध्यम अवगाहना में
एक सौ आठ जीव एक ही क्षण में सिद्ध हो
सकते हैं ।

१. भवति ते (५० पा०) ।

२. लब्धाणगविहा सिद्धा (५० पा०) ।

३. च नपुंसकेषु (५०) ।

४. मज्जे अट्ठत्तरं (अ) ।

५४—‘चउरुड्डलोए य दुवे समुहे
तओ जले बीसमहे तहेव’ ।
सयं च अट्टुत्तर तिरियलोए
समएणेण उ ‘सिज्झई उ’ ॥^१

चत्वार ऊर्ध्व-लोके च द्वौ समुद्रौ
त्रयो जले बिशतिरधस्तथैव ।
शतं चाष्टोत्तरं तिर्यग्-लोके
समयेनेन तु सिध्यति ॥

५४—ऊँचे लोक में बार, समुद्र में दो,
अन्य जलाशयों में तीन, नीचे लोक में बीस,
तिरछे लोक में एक सी आठ जीव एक ही ण
में सिद्ध हो सकते हैं ।

५५—कहिं पडिहया सिद्धा ?
कहिं सिद्धा पडिहया ? ।
कहिं बोन्दि चइत्ताणं ?
कत्थ गन्तूण सिज्झई ? ॥

कथः प्रतिहताः सिद्धाः ?
कथः सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ? ।
कथः शरीरं त्यक्त्वा ?
कुत्र गत्वा सिध्यन्ति तु ? ॥

५५—सिद्ध कहाँ सकते हैं ? कहाँ स्थित
होते हैं ? कहाँ शरीर को छोड़ते हैं ? और
कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ?

५६—अलोए पडिहया सिद्धा
लोयगे य पडिहया ।
इहं बोन्दि चइत्ताणं
तत्थ गन्तूण सिज्झई ॥

अलोके प्रतिहताः सिद्धाः
लोकाद्ये च प्रतिष्ठिताः ।
इह शरीरं त्यक्त्वा
तत्र गत्वा सिध्यन्ति ॥

५६—सिद्ध अलोक में सकते हैं । लोक
के अग्रभाग में स्थित होते हैं । मनुष्य लोक में
शरीर को छोड़ते हैं और लोक के अग्रभाग में
जाकर सिद्ध होते हैं ।

५७—बारसहिं जोयणेहिं
सव्वट्ठमुवरि भवे ।
ईसीपम्भारनामा उ^२
पुडवी छत्तसंठिय ॥

द्वावशमियोजनं:
सर्वायंस्योपरि भवेत् ।
ईषत्प्राग्भारनाम्नी तु
पृथ्वी छत्र-संस्थिता ॥

५७—सर्वायंसिद्ध विमान से बारह
योजन ऊपर ईषत्-प्राग्भारा नामक पृथ्वी
है । वह छत्राकार में अवस्थित है ।

५८—पणयालसयसहस्सा
जोयणार्ण तु आयया ।
तावच्चं चंव वित्थिणा
‘तिगुणो तस्सेव परिरओ’ ॥

पंचवत्वारिंशन् शतसहस्राणि
योजनानां त्वायता ।
तावन्ति चं व वित्थीणां
त्रिगुणस्तस्मादेव परिरयः ॥

५८—उसकी लम्बाई और चौड़ाई
पैंतालीस लाख योजन की है । उसकी परिधि
उस (लम्बाई-चौड़ाई) से तिगुनी है ।

१. तहेव य (अ) ।

२. सिज्झई पुवं (उ, ऋ०) ।

३. चउरो उड्डलोगमि बीसपटुत्तं अहे भवे ।
सयं अट्टोत्तरं तिरिप् एग समएण सिज्झई ॥
दुवे समुहे सिज्झति तेस जल्लेह ततो जणा ।
एसा तु सिज्झणा भगिन्ना पुक्कभावं ववुच्च उ ॥ (५० पा०) ।

४. × (उ, ऋ०) ।

५. सिडण साहिय पडिरचं (५० पा०) ।

५९—अद्वजोयणबाह्ला

सा मज्झमि वियाहिया ।
परिहायन्ती चरिमन्ते
मच्छियपत्ता तण्युरी ॥

अष्टयोजन-बाहल्या

सा मध्ये व्याख्याता ।
परिहोयमाणा चरमान्ते
मक्षिका-पत्रात् तनुरा ॥

५९—मध्य भाग में उसकी मोटाई आठ योजन की है । वह क्रमशः पतली होती-होती अन्तिम भाग में मक्खी के पर से भी अधिक पतली हो जाती है ।

६०—अज्जुणसुवण्णगमई

सा पुढवी निम्मला सहावेणं ।
उत्ताणगद्धतगसठिया य
भणिया जिनवरंहि ॥

अज्जुन-सुवर्णकमयी

सा पृथिवी निर्मला स्वभावेन ।
उत्तानकच्छत्रक-संस्थिता च
भणिता जिनवरः ॥

६०—वह श्वेत-स्वर्णमयी, स्वभाव से निर्मल और उत्तान (सीधे) छत्राकार वाली है—ऐसा जिनवर ने कहा है ।

६१—संखकुन्दसंकासा

पण्डुरा निम्मला सुहा ।
सीयाए जोयणे तत्तो
लोयन्तो उ वियाहियो ॥

शङ्खकुन्द-संकाशा

पाण्डुरा निर्मला शुभा ।
सीताया योजने ततः
लोकास्तस्तु व्याख्यातः ॥

६१—वह शंख, अंक-रत्न और कुन्द पुष्प के समान श्वेत, निर्मल और शुद्ध है । उस सीता नाम की ईश्वर-प्राग्भारा पृथ्वी से एक योजन ऊपर लोक का अन्त (अग्रभाग) है ।

६२—जोयणस्स उ जो तस्स'

कोसो उवरिमो भवे ।
'तस्स कोसस्स छुभाए
सिद्धाणोगाहुणा भवे'* ॥

योजनस्य तु यस्तस्य

क्रोश उपरिधर्तो भवेत् ।
तस्य क्रोशस्य षड्भागे
सिद्धानामवगाहना भवेत् ॥

६२—उस योजन के उपरले कोस के छठे भाग में सिद्धों की अवगाहना (अवस्थिति) होती है ।

६३—तत्थ सिद्धा महाभागा

लोयगम्मि पइट्ठिया' ।
भवप्पवंच उम्मुक्का
सिद्धि वरगइ गया ॥

तत्र सिद्धा महाभागाः

लोकान् प्रतिष्ठिताः ।
भव-प्रपञ्चोन्मुक्ताः
सिद्धि वरगति गताः ॥

६३—अनन्त शक्तिशाली भव-प्रपञ्च से उन्मुक्त और सर्वश्रेष्ठ गति (सिद्धि) को प्राप्त होने वाले सिद्ध वहाँ लोक के अग्रभाग में स्थित होते हैं ।

६४—उस्सेहो जस्स जो होइ

भवम्मि चरिमम्मि उ' ।
तिभागहीणा तत्तो य
सिद्धाणोगाहुणा भवे ॥

उस्सेहो यस्य यो भवति

भवे चरमे तु ।
त्रिभागहीणा ततश्च
सिद्धानामवगाहना भवेत् ॥

६४—अन्तिम भव में जिसकी जितनी कैचई होती है, उससे त्रिभागहीन (एक तिहाई—क्रम) उसकी अवगाहना होती है ।

१. तस्य (६०) ; तस्स (६० पा०) ।

२. कोसस्सचि य ओ तस्य छम्भाणो उवरिमो भवे (६० पा०) ।

३. य सट्ठिया (य) ।

४. य (६०) ।

६५—एगत्तेण साईया
अपज्जवसिया वि य ।
पृहुत्तेण अणाईया
अपज्जवसिया वि य ॥

एकत्वेन साविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
पृथुत्वेनानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ॥

६५—एक-एक की अपेक्षा से सिद्ध
सादि-अनन्त और पृथुता (बहुत्व) की अपेक्षा से
अनादि-अनन्त हैं ।

६६ - अरुविणो जीवघणा
नाणदंसणसन्निया ।
अउठं मुहं संपत्ता
उवमा जस्स नत्थि उ ॥

अरूपिणो जीव-घनाः
ज्ञान-दर्शन-संज्ञिताः ।
अतुलं सुखं सम्प्राप्ता
उपमा यस्य नास्ति तु ॥

६६—वे निष्ठ-जीव अरूप, सघन (एक
दूसर से मटे हुए) और ज्ञान-दर्शन में सतत
उपयुक्त होते हैं । उन्हें वैसा सुख प्राप्त होता
है, जिसके लिए संसार में कोई उपमा
नहीं है ।

६७—लोएगदेसे^१ ते सब्बे
नाणदंसणसन्निया ।
संसारपागनिच्छिन्ना
सिद्धि वरगई गया ॥

लोकैकदेशे ते सर्वे
ज्ञान-दर्शन-संज्ञिताः ।
संसार-पार-निस्तोर्णाः
सिद्धि वरयन्ति यतः ॥

६७—ज्ञान और दर्शन से सतत उपयुक्त,
संसार समुद्र से निम्नार्ण और सर्वभेद यति
(सिद्धि) का प्राप्त होने वाले सब सिद्धलोक के
एक देश में अवस्थित हैं ।

६८—संसारत्था उ जे जीवा
दुविहा ते वियाहिया ।
तसा य थावरा चेव
थावरा तिविहा तहि ॥

संसारस्यास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
असादृश स्यावरादचैव
स्यावरास्त्रिविधास्तत्र ॥

६८—संसारों जीव दो प्रकार के हैं—
(१) त्रय और (२) म्बावर । म्बावर तीन प्रकार
के हैं—

६९—पुढवो आउजीवा य
तहैव य वणस्सई ।
इच्चेए थावरा तिविहा
तेसि भेए सुणह मे ॥

पृथिव्यब्जजीवाश्च
तथैव च वनस्पतिः ।
इत्येते स्यावरास्त्रिविधाः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

६९—(१) पृथ्वी, (२) जल और (३)
वनस्पति । ये तीन स्यावर के मूल भेद हैं ।
इनके उत्तर भेद मुझ से सुनो ।

७०—दुविहा पुढवीजीवा उ
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए^२ दुहा पुणो ॥

द्विविधा पृथिवी-जीवास्तु
सूक्ष्मा बावरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
एकमेव द्विधा पुनः ॥

७०—पृथ्वी-काय के जीव दो प्रकार के
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बावर । इन दोनों के
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त—ये दो-दो भेद
होते हैं ।

१. कोगरग^१ (वृ० पा०) ।

२. एगमेए (वृ० पा०) ।

७१—बायरा जे उ पज्जता
डुविहा ते वियाहिया ।
सण्हा खरा य बोद्धव्वा
सण्हा सत्तविहा तहि ॥

७२—किण्हा नीला य रुहिरा य'
हालिहा मुक्किला तहा ।
पण्डुपणगमट्टिया
खरा छत्तीसईविहा ॥

७३—पुढवी य सक्करा बालुया य
उवले सिला य लोणूसे ।
'अयत्तम्बतउय'^१—सोसग-
रूपमुवण्णे य वडरे य ॥

७४—हरियाले हिगुलए
मणोसिला सासगंजणपवाले ।
अन्नपडलअन्नबालुय
बायरकाए मणिविहाणा ॥

७५—गोमेजए य रुयगे
अंके फलिहे य लोहियक्खे य ।
मरगयमसारगल्ले
भुयमोयगइन्दनीले य ॥

७६—चन्दणगेरुयहंसगन्न
पुलए सोगन्धिकए य बोद्धव्वे ।
चन्दप्पह्वेरुलए
जलकन्ते सूरकन्ते य ॥

बादरा ये तु पर्याप्तः
द्विविधास्ते ध्याख्याताः ।
श्लक्ष्णाः खरादश्च बोद्धव्याः
श्लक्ष्णाः सप्तविधास्तत्र ॥

कृष्णा नीलादश्च श्विरादश्च
हारिद्राः शुक्लास्तथा ।
पाण्डु-पनक-मुस्तिका
खराः वर्द्धनशश्विषाः ॥

पृथिवी च शर्करा बालुका च
उपलः शिला च लवणोष्ण ।
अयस्ताम्र-त्रपुक-सोसक-
कृम्य-मुवणै च वज्रं च ॥

हरितालं हिगुलकः
मनःशिला सस्यकाऽन्नप्रवालाणि ।
अन्नपटलमन्नबालुका
बादरकाये मणिविधानानि ॥

गोमेदकदश्च रुचकः
अंक-स्फटिकदश्च लोहिताक्षदश्च ।
मरकत-मसारगल्लः
भुजमोचक इन्द्रनीलश्च ॥

चन्दन-गौरिक-हंसगर्भः
पुलकः सोगन्धिकदश्च बोद्धव्यः
चन्द्रप्रभो वैडूर्यः
जलकान्तः सूर्यकान्तश्च ॥

७१—बादर पर्याप्त पृथ्वीकाविक जीवों
के दो भेद हैं—(१) मृदु, और (२) कठोर ।
मृदु के सात भेद हैं :

७२—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) रक्त,
(४) पीत, (५) श्वेत, (६) पाण्डु (भूरी मिट्टी)
और (७) पनक (अति सूक्ष्म रत्न) । कठोर
पृथ्वी के छत्तीस प्रकार हैं :

७३—(१) शुद्ध पृथ्वी, (२) शर्करा, (३)
बालु, (४) उपल, (५) शिला, (६) लवण, (७)
नौनी मिट्टी, (८) लोहा, (९) रांघा, (१०)
ताम्बा, (११) शीशा, (१२) चाँदी, (१३)
सोना, (१४) वज्र,

७४—(१५) हरिताल, (१६) हिगुल,
(१७) मैनसिल, (१८) सस्यक, (१९) अन्न,
(२०) प्रवाल, (२१) अन्नक पटल, (२२) अन्न
बालुक । मणिगणों के भेद, जैसे—

७५—(२३) गोमेदक, (२४) रुचक,
(२५) अंक, (२६) स्फटिक और लोहिताक्ष,
(२७) मरकत एवं मसार गल्ल, (२८) भुज-
मोचक, (२९) इन्द्रनील,

७६—(३०) चन्दन, गेरू एवं हंस गर्भ,
(३१) पुलक, (३२) सोगन्धिक, (३३) चन्द्रप्रभ,
(३४) वैडूर्य, (३५) जलकान्त और (३६) सूर्य
कान्त ।

१. x (अ) ।

२. अर्थव तथो व (अ) ; अथ तदथ तन्म (व, ऋ०) ।

७७—एए खरपुठवीए
भेया छतीसमाहिया ।
एगविहमणणता
सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥

७८—सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे य बायरा ।
इत्तो कालविभागं तु
तेसि वुच्छं चउव्विहं ॥

७९—संतइ पप्पणाईया^१
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुब साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

८०—बावीसहस्साइं
वासाणुकोसिया भवे ।
आउठिई पुठवीणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया^२ ॥

८१—असंखकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायठिई पुठवीणं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

८२—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजठमि सए काए
पुठवीजीवाण अन्तरं ॥

एते खरपुठिव्याः
भेदाः षट्त्रिंशदाख्याताः ।
एकविधा अमानात्वाः
सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याताः ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
लोक-देशे च बाधराः ।
इतः काल-विभागं तु
तेषां वक्ष्ये चतुर्विधम् ॥

संतति प्राग्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

द्वाविंशति-सहस्राणि
वर्षाणामुत्कृषिता भवेत् ।
आयुः-स्थितिः पृथिवीनां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

असंख्यकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
काय-स्थितिः पृथिवीनां
तं कायं त्वमुंचताम् ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यपते स्वके काये
पृथिवी-जीवानामन्तरम् ॥

७७—कठोर पृथ्वी के ये छतीस प्रकार होते हैं । सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं । उनमें नानात्व (बहु विधता) नहीं होता ।

७८—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समूचे लोक में और बाधर पृथ्वीकायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । इनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण रू.क. में ।

७९—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनावि-
अन्न और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
मान्त हैं ।

८०—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः बाईस हजार वर्ष
की है ।

८१—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर उसी
काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः असंख्यात-
काल की है ।

८२—उनका अन्तर (पृथ्वीकाय की छोड़
कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का
काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
अनन्त काल का है ।

१. 'तेणाई' (अ) ।

२. 'जहम्मणं' (अ) ।

८३—एएसि वणओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाई सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

८३—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

८४—दुविहा आउजीवा उ
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

द्विविधा अजीवास्तु
सूक्ष्मा बावरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
एवमेव द्विधा पुनः ॥

८४—अकार्यिक जीव दो प्रकार के हैं—
(१) सूक्ष्म और (२) बावर । इन दोनों के
पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो भेद होते हैं ।

८५—बायरा जे उ पज्जत्ता
पंचहा ते पकित्तिया ।
सुद्धोदए य उस्से
हरतण् महिया हिमे ॥

बावरा ये तु पर्याप्ताः
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
शुद्धोदकं वायुदयायः
हरतनुर्महिकाहिमम् ॥

८५—बावर पर्याप्त अकार्यिक जीवों के
पाँच भेद होते हैं—(१) शुद्धोदक, (२) ओस,
(३) हरतनु, (४) कुहासा और (५) हिम ।

८६—एगविहमणात्ता
सुहुमा तत्थ विघाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे य बायरा ॥

एकविधा अनात्माः
सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याताः ।
सूक्ष्माः सर्वलोके
लोक-देशे च बावराः ॥

८६—सूक्ष्म अकार्यिक जीव एक ही
प्रकार के होते हैं, उनमें नातात्व नहीं होता ।
वे समूचे लोक में तथा बावर अकार्यिक जीव
लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

८७—सन्तई पप्पणाईया^१
अपज्जवसिया वि य ।
ठिई पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्ततिं प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

८७—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनल और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

८८—सत्तेव सहस्साईं
वासाणुक्कोसिया भवे ।
आउद्दि आऊणं
अन्तोमुहुतं जहन्निया^२ ॥

सत्पक्षे सहस्राणि
वर्षाणमुत्काशिता भवेत् ।
आयुः-स्थितिरपि
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

८८—उनकी आयु स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः सात हजार वर्ष
की है ।

१. 'तेणाई' (अ) ।

२. 'जहन्नया' (अ) ।

८९—असंखकालमुक्कोसं

अन्तोमुहुतं जहन्मिया ।
कायद्विई आऊणं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

असंख्यकालमुक्कवं
अन्तमुं हुतं जघन्यका ।
काय-स्थितिरपां
तं कायं त्वमुंचताम् ॥

८९—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर उसकी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा) वघन्यतः अन्तर्मुहुतं और उत्कृष्टतः असंख्यात काल की है ।

९०—अणन्तकालमुक्कोसं

अन्तोमुहुतं जहन्मयं ।
विजडंमि सए काए
आऊजीवाण अन्तरं ॥

अणन्तकालमुक्कवं
अन्तमुं हुतं जघन्यकम् ।
विन्यक्तं स्वके काये
अब्जीवानामन्तरम् ॥

९०—उनका अन्तर (अकाय को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहुतं और उत्कृष्टतः अणन्त-काल का है ।

९१—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ बावि
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतद्वैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेगतो बापि
विधानानि सहस्रशः ॥

९१—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्यान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

९२—दुविहा वणस्सईजीवा
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए' दुहा पुणो ॥

द्विविधा वनस्पति-जीवाः
सूक्ष्मा बावरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
एवमेते द्विविधा पुनः ॥

९२—वनस्पतिकामिक जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बावर । इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो भेद होते हैं ।

९३—बायरा जे उ पज्जत्ता
दुविहा ते वियाहिया ।
साधारणसरीरा य
पत्तेगा य तहेव य ॥

बावरा ये तु पर्याप्ताः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
साधारण-शरीरादय
प्रत्येकादय तथैव च ॥

९३—बावर पर्याप्त वनस्पतिकामिक जीवों के दो भेद होते हैं—(१) साधारण-शरीर और (२) प्रत्येक-शरीर ।

९४—पत्तेगसरीरा उ
णेगहा ते पकित्तिया^१ ।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य
लया वल्ली तथा तहा ॥

प्रत्येक शरीरास्तु
अनेकधा ते प्रकृतितयाः ।
रुक्खा गुच्छादय गुम्माश्च
लता-वल्ली तुणानि तथा ॥

९४—प्रत्येक-शरीर वनस्पतिकामिक जीवों के अनेक प्रकार हैं—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली और तुण ।

१. पक्षमेव (अ) ।

२. बारसविड भेदणं पत्तेया इ विवाहिय (५० पा०) ।

९५—लयावल्या^१ पञ्चगा^२ कुहणा
जलरुहा ओसहोतिगा^३ ।
हरियकाया य बोद्धव्या
पत्तया इति आहिया ॥

लता-बलपानि पञ्चगाः
कुहणा जलरुहा ओषधि-तृणानि ।
हरित-कायाश्च बोद्धव्याः
प्रत्येका इति आख्याताः ॥

६५—लता-बलय (नारियल आदि), पर्वज
(ईल आदि), कुहण (भूकोड़ आदि), जलरुह
(कमल आदि), ओषधि-तृण (अनाज) और
हरित-काय - ये सब प्रत्येक-शरीर हैं ।

९६—साधारणशरीरा उ
गेगहा ते पकितिया ।
आलुए मूलए चैव
सिगबेरे तहेव य ॥

साधारण-शरीरास्तु
अनेकविधा ते प्रकौतिताः ।
आलुको मूलकश्चैव
शृङ्गबैर तथैव च ॥

९६—साधारण-शरीर वनस्पतिकायिक
जीवों के अनेक प्रकार हैं—आलू, मूली,
अदरक,

९७—हिरिली सिरिली सिस्सिरिली
जावई केदकन्दली^४ ।
पलङ्गुलसणकन्दे य
कन्दली य कुडुंबए^५ ॥

हिरिली सिरिली सिस्सिरिली
जावई केदकन्दली ।
पलाण्डु-लङ्गुल-कन्दश्च
कन्दली च कुस्तुम्बकः ॥

९७—हिरलोकन्द, सिरिलीकन्द, सिस्सि-
रिलीकन्द, जावईकन्द, केव-कंदलीकन्द, प्याज,
लहसुन, कन्दली, कुस्तुम्बक,

९८—लोहि णीह य थिह य
कुहगा य तहेव य ।
कण्हे य वज्जकन्दे य
कन्दे मूरणए^६ तहा ॥

लोही स्निह इव स्तिभु इव
कुहकाश्च तथैव च ।
कुण्डलश्च वज्रकन्दश्च
कन्दः मूरणकस्तथा ॥

९८—लोही, स्निह, कुहक, कृष्ण, वज्र-
कन्द, मूरणकन्द,

९९—अस्सकण्णी य बोद्धव्या
सोहकण्णी तहेव य ।
मुमुण्डी य हल्लिहा य
ऽणेगहा एवमायओ ॥

अश्वकर्णी च बोद्धव्या
सहकर्णी तथैव च ।
मुमुण्डी च हरिद्रा च
अनेकधा एवमावयः ॥

९९—अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुंडी और
हरिद्रा आदि । ये सब साधारण-शरीर हैं ।

१००—एगविहमणात्ता
सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि
लोगदेसे य बायरा ॥

एकविधा अनात्माः
सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याताः ।
सूक्ष्माः सर्वलोके
लोक-देशे च बावराः ॥

१००—सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव एक
ही प्रकार के होते हैं, उनमें नामाल नहीं
होता । वे समूचे लोक में तथा बादर वनस्पति-
कायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

१. वल्या च (अ) ।

२. पञ्चगा (वृ०) ; पञ्चगा (वृ० पा०) ।

३. गहा (अ, आ, इ, उ, छ०) ।

४. केलि (उ) ।

५. कुडुम्बए (उ, छ०) ; कुडुम्बए (स) ।

६. मूरणे (उ) ।

१०१—संतर्हं पप्पण्णाय्या^{*}
अपज्जवसिया वि य ।
ठिहं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तर्हित प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१०१—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अन्त धोर स्थिति की अपेक्षा में सादि-
सान्त हैं ।

१०२—दस चैव सहस्साइं
वासाणुकोसिया भवे ।
वणप्फण्ण^{*} आउं तु
अन्तोमुहुत्तं जहन्नगं ॥

दश चैव सहस्राणि
वर्षाणामुक्तेषिता भवेत् ।
वनस्पतीनामायुस्तु
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१०२—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्तं और उत्कृष्टतः दस हजार वर्ष
की है ।

१०३—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायठिहं पणमाणं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
काय-स्थितिः पनकानां
तं कायन्त्वमुंचताम् ॥

१०३—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मुहूर्तं और उत्कृष्टतः अनन्त काल
की है ।

१०४—असखकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजडंमि सए काए
पणगजीवाण अन्तरं ॥

असङ्ख्यकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्पक्ते स्वके काये
पनक-जीवानामन्तरम् ॥

१०४—उनका अन्तर 'वनस्पतिकाय को
झाड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक
का काल' जघन्यतः अन्तर्मुहूर्तं और उत्कृष्टतः
असंख्यतः काल का है ।

१०५—एएसि वण्णओ चैव
गन्धआं रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१०५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान
की दृष्टि से उनमें हजारों भेद होते हैं ।

१०६—इच्चेण थावरा तिविहा
समासेण वियाहिया ।
इत्तो उ तसे तिविहे
वुच्छामि अण्णुव्वसो ॥

इष्टेयै स्वावरास्त्रिविधाः
समासेन व्याख्याताः ।
इतस्तु त्रयान् त्रिविधान्
वक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥

१०६—यह तीन प्रकार के स्वावरा जोषों
का संक्षिप्त वर्णन है । अब तीन प्रकार के त्रय
जोषों का क्रमशः निरूपण करेंगे ।

१. *तेणाइ (अ) ।

२. वणस्सण्ण (उ, ऋ२, वृ०) ; वणप्फण्ण (वृ० पा०) ।

१०७—तेऊ वाऊ य बोद्धव्वा
उराला य तसा तहा ।
इच्चंए तसा तिविहा
तेसि भेए सुणेह मे ॥

तेजो वायुश्च बोद्धव्यो
उदाराश्च त्रसास्तथा ।
इत्येते त्रसास्त्रिविधाः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१०७—तेजस्काय, वायुकाय और
उदार त्रसकाय—ये तीन भेद त्रसकाय के हैं ।
अब इनके भेदों को मुझ से सुनो ।

१०८—दुविहा तेउजीवा उ
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

द्विविधास्तेजोजीवास्तु
सूक्ष्मा बादरास्तथा ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता
एवमेते द्विधा पुनः ॥

१०८—तेजस्कायिक जीवों के दो प्रकार
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बादर । उन दोनों के
पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होते हैं ।

१०९—बायरा जे उ पज्जत्ता
णेगहा ते वियाहिया ।
इंगाले मुम्मुरे अणो
अच्चि जाला तहेव य ॥

बादरा ये तु पर्याप्ताः
अनेकधा ते व्याख्याताः ।
अंगारो मुमूरोऽग्निः
अचिच्चात्ता तथैव च ॥

१०९—बादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों
के अनेक भेद हैं—अंगार, मुर्मुर, अग्नि, अर्चि,
ज्वाला,

११०—उक्का विज्जू य बोद्धव्वा
णेगहा एवमायओ ।
एगविहमुणाणत्ता
सुहुमा ते वियाहिया ॥

उक्का विज्जू बोद्धव्याः
अनेकधा एवमादयः ।
एकविधा अनानात्वाः
सूक्ष्मास्ते व्याख्याताः ॥

११०—उक्का, विज्जू आदि । सूक्ष्म
तेजस्कायिक जीव एक ही प्रकार के होते
हैं, उनमें नानात्व नहीं होता ।

१११—सुहुमा सब्वलोगम्मि
लोगदेसे' य बायरा ।
इतो कालविभागं तु
तेसि वुच्छं चउव्विहं ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
लोके-देशे च बादराः ।
इतः काल-विभागं तु
तेषां त्रय्यामि चतुर्विधम् ॥

१११—वे (सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव)
समूचे लोक में और बादर तेजस्कायिक जीव
लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । अब मैं उनके
चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

११२—संतइं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्ततिं प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

११२—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सात हैं ।

११३—तिष्णोव अहोराता
उक्कोसेण विद्याहिया ।
आउट्टिई तेऊणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

ग्रीष्मेबाहोरात्राणि
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थिति स्तेजसाम्
अन्तर्मुहूर्तं अध्यन्यका ॥

११३—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः तान विन-रात
की है ।

११४—असंखकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायट्टिई तेऊणं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

असंखकालमुक्कव
अन्तर्मुहूर्तं अध्यन्यकम् ।
काय-स्थितिस्तेजसाम्
तं कायत्वचमुंचताम् ॥

११४—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः असंस्थान
काल की है ।

११५—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजडंमि सए काए
तेउजीवाण अन्तरं ॥

अणन्तकालमुक्कव
अन्तर्मुहूर्तं अध्यन्यकम् ।
चित्यक्ते स्वके काये
तेजोजीवानामन्तरम् ॥

११५—उनका अन्तर (तेजस्काय को
छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक
का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
अणन्त काल का है ।

११६—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतत्त्वैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वायि
विधानानि सहस्रशः ॥

११६—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद हैं ।

११७—दुविहा वाउजीवा उ
सुद्धमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
एवमेए दुहा पुणो ॥

द्विविधा वायु-जीवास्तु
सूक्ष्मा बादराहत्या ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता
एवमेते द्विधा पुनः ॥

११७—वायुकायिक जीवों के दो प्रकार
हैं—(१) सूक्ष्म और (२) बादर । उन दोनों के
पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होते हैं ।

११८—बायरा जे उ पज्जत्ता
पंचहा ते पकित्तिमा ।
उक्कलियामण्डलिया-
घणगुंजा सुद्धवाया य ॥

बादरा ये तु पर्याप्ता
पंचधा ते प्रकीर्तिताः ।
उत्कलिका मण्डलिका
घन-गुंजाः शुद्ध-वाताश्च ॥

११८—बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवों
के पाँच भेद होते हैं—(१) उत्कलिका, (२)
मण्डलिका, (३) घनवात, (४) गुंजावात और
(५) शुद्धवात ।

११९—संवट्टगवाते य
 ऽणंगविहा^१ एवमायओ ।
 एगविहमणाणत्ता
 सुहुमा ते वियाहिया ॥

संवत्तंक-वाताश्च
 अनेकधा एवमादयः ।
 एकविधा अनानात्वाः
 सूक्ष्मास्ते व्याख्याताः ॥

११६—उनमें संवत्तंक-वात आदि और
 भी अनेक प्रकार हैं । सूक्ष्म वायुकायिक जीव
 एक ही प्रकार के होते हैं, उनमें नानात्व नहीं
 होता ।

१२०—सुहुमा सव्वलोगम्मि
 लोगदेसे^२ य बायरा ।
 इतो कालविभागं तु
 तेसि वुच्छं चउव्विहं ॥

सूक्ष्माः सर्वलोके
 लोक-वेसे च बादराः ।
 इतः काल-विभागं तु
 तेषां वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥

१२०—वे 'सूक्ष्म-वायुकायिक जीव'
 समूचे लोक में और बादर वायुकायिक जीव
 लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । अब मैं उनके
 चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१२१—संतं पप्पण्णाय्या
 अपज्जवसिया वि य ।
 ठिइं पडुच्च साईया
 सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानाविकाः
 अपयंवसिता अपि च ।
 स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
 सपयंवसिता अपि च ॥

१२१—प्रवाह की अपेक्षा में वे अनादि-
 अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सावि-
 द-वात हैं ।

१२२—निण्णेव सहस्साडं
 वासाण्णकोसिया भवे ।
 आउट्ठिं वाऊणं
 अन्तोमुहुतं जहन्निया ॥

श्रोण्येव सहस्राणि
 वर्षाणामुत्कर्षिता भवेन् ।
 आयुः-स्थितिर्वायूनाम्
 अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१२२—उनका आयु-स्थिति जघन्यतः
 अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः तीन हजार वर्षों
 की है ।

१२३—असंखकालमुक्कोसं
 अन्तोमुहुतं जहन्नयं ।
 कायट्ठिं वाऊणं
 तं कायं तु अमुंचओ ॥

असंख्यकालमुत्कर्षं
 अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
 काय-स्थितिर्वायूनां
 तं कायन्त्वमंबताम् ॥

१२३—उनका काय-स्थिति (निरन्तर
 उसी काय में जन्म लेने रहने की काल-
 मर्यादा) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
 असंख्यात काल की है ।

१२४—अणन्तकालमुक्कोसं
 अन्तोमुहुतं जहन्नयं ।
 विजडंमि सए काए
 वाउजोवाण अन्तरं ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
 अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
 वित्यक्ते स्वके काये
 वायु-जीवानामन्तरम् ॥

१२४—उनका अन्तर (वायुकाय को
 छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक
 का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
 अनन्त काल का है ।

१. ऽणंगविहा (उ, ऋ०) ।

२. एगदेसे (अ) ।

१२५—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वाऽपि
विधानानि सहस्रशः ॥

१२५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१२६—ओराला तसा जे उ
चउहा^१ ते पकितिया ।
वेइन्दियतेइन्दिय-
चउरोपंचिन्दिया चैव ॥

उदाराः त्रसा ये तु
चतुर्धा ते प्रकीर्तिताः ।
द्वीन्द्रियाश्चोन्द्रियाः
चतुर्पञ्चेन्द्रियाश्चैव ॥

१२६—उदार त्रय-कारिक जीव चार
प्रकार के हैं—(१) द्वीन्द्रिय, (२) चोन्द्रिय,
(३) चतुरिन्द्रिय और (४) पञ्चेन्द्रिय ।

१२७—वेइन्दिया उ^२ जे जीवा
दुविहा ते पकितिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
तेसि भेए सुणेह मे ॥

द्वीन्द्रियास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते प्रकीर्तिताः ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१२७—द्वीन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद तुम
मुझसे सुनो ।

१२८—किमिणो सोमंगला
चैव अलसा माइवाहया ।
वासोमुहा य सिप्पीया^३
संखा संखणगा^४ तथा ॥

कृमयः सोमङ्गलाश्चैव
अलसा मातृवाहकाः ।
वासीमुखाश्च शुक्लयः
शङ्खवा शङ्खनकास्तथा ॥

१२८—कृमि, सोमंगल, अलस, मातृ-
वाहक, वासीमुख, सीप, शंख, शंखनक,

१२९—पल्लोयाणुल्लया^५ चैव
तहेव य वराट्ठगा ।
जलूगा जालगा चैव
चन्दणा य तहेव य ।

‘पल्लोया’ ‘अणुल्लया’ चैव
तथैव च वराट्ठकाः ।
जलौका जालकाश्चैव
चन्दनाश्च तथैव च ॥

१२९—पल्लोय, अणुल्लक, कोडी, जौक,
जालक, चन्दनिवा,

१३०—इइ वेइन्दिया एए
णेगहा एवमायओ ।
लोमेगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्य वियाहिया ॥^६

इति द्वीन्द्रिया एते
अनेका एवमादयः ।
लोककदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ॥

१३०—जादि अनेक प्रकार के द्वीन्द्रिय
जीव हैं । वे लोक के एक भाग में ही प्राप्त
होते हैं, समूचे लोक में नहीं ।

१. चउविहा (ऋ०) ।

२. य (अ, ऋ०) ।

३. सिप्पीया (आ, इ, ऋ०) ।

४. संखलगा (अ) ; संखणगा (उ) ।

५. पल्लोया^१ (आ) ; अल्लोया^२ (ऋ०) ।

६. इस श्लोक के बाद इसमा और हैं ।

एतौ काल विभागं नु तेसि बुच्छ वउविहं ॥ (उ) ।

१३१—संतर्द्धं पप्पण्णाया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिहं पडुच्च साइया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तर्द्धं प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतप्त्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१३१—प्रवाह को अपेक्षा से वे अनावि-
भक्त और स्थिति की अपेक्षा से सावि-
सन्त हैं ।

१३२—वासाहं बारहे व उ
उक्कोत्तेण वियाहिया ।
वेइन्दियआउठिहं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

वर्षाणि द्वावशेष तु
उत्कर्षणं व्याख्याता ।
द्वीन्द्रियायुः स्थितिः
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१३२—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः बारह वर्ष की है ।

१३३—संखिज्जकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं^१ ।
वेइन्दियकायठिहं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

संख्येयकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
द्वीन्द्रियकाय-स्थितिः
तं कायन्त्वमुंचताम् ॥

१३३—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-
मर्यादा) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
संख्यात काल की है ।

१३४—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
वेइन्दियजीवानं
अन्तरेयं^२ वियाहियं ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
द्वीन्द्रिय-जीवानां
अन्तरं च व्याख्यातम् ॥

१३४—उनका अन्तर (द्वीन्द्रिय के काय
को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काय) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

१३५—एएसि वण्णओ जेव
गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाहं सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतत्त्वेष्वेव
गन्धता रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१३५—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१३६—तेइन्दिया उ जे जीवा
दुविहा ते पकितिया ।
पज्जतमपज्जता
तेसि भेए सुणेह मे ॥

द्वीन्द्रियास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते प्रकीर्तिताः ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१३६—द्वीन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—
(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद
शुभ मुन्ने सुनो ।

१. जहन्निया (अ) ।

२. °णं (अ) ।

उत्तरज्जयणं (उत्तराध्ययन)

५२४

अध्ययन ३६ : श्लोक १३७-१४२

१३७—कुन्पु-पिपीलिकोदृशाः
उक्कलुद्वेहिया तहा ।
तणहारकट्टहारा
मालुगा पत्तहारगा ॥

कुन्पु-पिपीलिकोदृशाः
उक्कलोपवेहिकास्तथा ।
तुणहार-काण्डहाराः
मालूकाः पत्रहारकाः ॥

१३७—कुंद, चोटी, खटमल, मकड़ी,
दोमरू, तुगाहारक, काण्डहारक (घुन), मालुक,
पत्राहारक,

१३८—कप्पासऽट्टिमिजा य
तिदुगा तउसमिजगा ।
सदावरी य गुम्मी य
बोद्धव्वा इन्दकाइया ॥

कर्पासास्थिमिजादय
तिन्दुकाः त्रयुषमिजकाः ।
शतावरी च गुल्मी च
बोद्धव्या इन्द्रकायिकाः ॥

१३८—कर्पासास्थि मिजक, तिन्दुक,
त्रयुष मिजक, शतावरी, कानखजूरी, इन्द्र-
कायिक.

१३९—इन्द्रगोवगमाईया
गेगहा एवमायओ ।
लोएगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्य वियाहिया ॥

इन्द्रगोवकायिकाः
अनेकषा एवमादयः ।
लोककदेशे ते सर्व
न सर्वत्र व्याख्याताः ॥

१३९—इन्द्रगोपक आदि अनेक प्रकार
के शीन्द्रिय जीव है । वे लोक के एक भाग में
ही प्राप्त होते हैं, समूच लोक में नहीं ।

१४०—संतं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राण्यनादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतप्त्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१४०—प्रवाह की श्रेष्ठा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त है ।

१४१—एगुणपण्णहोस्ता*
उक्कोसेण वियाहिया ।
तेइन्दियआउठिई
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

एकोनपंचाशदहोरात्राणि
उत्कर्षणं व्याख्याता ।
श्रीन्द्रियायुःस्थितिः
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१४१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः उनचास दिनों
की है ।

१४२—संखिज्जकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं* ।
तेइन्दियकायठिई
तं कायं तु अमुंचओ ॥

संख्येयकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
श्रीन्द्रियकाय-स्थितिः
तं कायन्त्वमुंचताम् ॥

१४२—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उची काय में जन्म लेते रहने को काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः संख्यात-काल
की है ।

१. एगुणवयणं (उ, ख०) ।

२. अहन्निया (अ) ।

१४३—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुतं जहन्नयं ।
तेइन्द्रियजीवाणं
अन्तरेयं विद्याहियं ॥

अनन्तकालमुक्कवँ
अन्तर्मूहुतं जघन्यकम् ।
बीन्द्रिय-जीवानां
अन्तरमेतद् व्याख्यातम् ॥

१४३—उनका अन्तर (बीन्द्रिय के काय को छोड़कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मूहुतं और उत्कृष्टतः अनन्तकाल का है ।

१४४—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसपासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाई सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेगतो वापि
विधानानि सहस्रतः ॥

१४४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

१४५—चउरिन्द्रिया उ जे जीवा
दुविहा ते पाकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता
तेसि भेए सुणेह मे ॥

चतुरिन्द्रियास्तु ये जीवाः
द्विविधास्ते प्रकीर्तिताः ।
पर्याप्ता अपर्याप्ताः
तेषां भेदान् शृणुत मे ॥

१४५—चतुरिन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त । उनके भेद तुम मुझ से सुनो ।

१४६—अन्धिया पोत्तिया चैव
मच्छिया मसगा तथा ।
भमरे कोडपयंगे य
ठिकुणे कुंकुणे तथा ॥

अन्धिकाः पोत्तिकाश्चैव
मक्षिका मशकास्तथा ।
भ्रमराः कीट-पतंगश्च
टिकुणा कुंकणास्तथा ॥

१४६—अन्धिका, पोत्तिका, मक्षिका, मच्छर, भ्रमर, कीट, पतंग, टिकुण, कुंकुण,

१४७—कुक्कुडे सिगिरोडो य
नन्दावत्ते य विच्छिण् ।
डोले भिगारी^१ य
विरलो अच्छिवेहए ॥

कुक्कुटाः शृङ्गरीटश्चैव
नन्दावत्तश्च वृश्चिकाः ।
डोला भृङ्गारिणश्च
विरल्योऽपि वेषकाः ॥

१४७—शृङ्गरीटा, कुक्कुड़, नन्दावन, विष्णु, डोल, भृङ्गरीटक, बिरली, अक्षिवेषक,

१४८—अच्छिले माहए^२ अच्छि-
रोडएविचित्ते चित्तपत्तए ।
ओहिजलिया जलकारी य
नोया तन्तवगाविय^३ ॥

अक्षिला मागवा अक्षिरोडका
विवित्रासिचित्रपत्रकाः ।
ओहिजलिया जलकायंश्च
नीचास्तन्तवका अपि च ॥

१४८—अक्षिल, मागवा, अक्षिरोडक विचित्र-पत्रक, चित्र-पत्रक, ओहिजलिया, जलकारी, नीचक, तन्तवक,

१. भिगिरीडी (उ, ऋ०, ल) ।

२. साहिए (अ) ।

३. तंबगाहिया (उ, ऋ०) ।

१४९—इह चउरिन्दिया एए
ऽणगहा एवमायओ ।
लोगस्स एग देसस्मि
ते सव्वे परिकित्तिआ ॥'

१५०—संतइं पप्पऽण्णिया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साइया
सपज्जवसिया वि य ॥

१५१—'छृच्चेव य' मासा उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
चउरिन्दियआउठिइं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

१५२—संखिज्जकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
चउरिन्दियकायठिइं
तं कायं तु अमुंचओ ॥

१५३—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
'विजडमि सए काए'
अन्तरेयं वियाहियं ॥

१५४—एएसि वण्णओ चैव
गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणादेसओ वावि'
विहाणाइं सहस्सओ ॥

इति चतुरिन्द्रिया एते
अनेकधा एवमावयः ।
लोकस्यैकदेशे
ते सर्वं परिकीर्त्ताः ॥

सन्ततिं प्राप्स्यान्नाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

षट् चंब च मासास्तु
उत्कषणं व्याख्याता ।
चतुरिन्द्रियायुः-स्थितिः
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

संख्येयकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
चतुरिन्द्रियकाय-स्थितिः
तं कायं त्वमुंचताम् ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
अन्तरभेदज्ञं व्याख्याताम् ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्राः ॥

१४९—आदि अनेक प्रकार के चतुरिन्द्रिय
जीव हैं । वे लोक के एक भाग में ही प्राण
होते हैं, समूचे लोक में नहीं ।

१५०—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त
होते हैं ।

१५१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः छह मास की है ।

१५२—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-
मर्यादा) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
संख्यात काल की है ।

१५३—उनका अन्तर (चतुरिन्द्रिय के
काय को छोड़कर पुनः उसी काय में उत्पन्न
होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उत्कृष्टतः अनन्त काल का है ।

१५४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
ऽपि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१. इस श्लोक के पर्याय इतना और है :—
एषो काल विभारं तु तेसि दुब्बं चउरिण्हं ॥ (४) ।

२. छृच्चेविड (अ) ।

३. चउरिन्दिया च आउठिइं (अ) ।

४. जहन्निया (अ) ।

५. जहन्निया (अ) ।

६. चउरिन्दिचओमाणं (४) ।

७. संठाण भेषओ वा वि (अ) ।

१५५—पंचिन्दिया उ जे जीवा
चउज्विहा ते वियाहिया ।
नेरइयतिरिक्खा य
मणुया देवा य आहिया ॥

पंचेन्द्रियास्तु ये जीवाः
चतुर्विधास्ते व्याख्याताः ।
नैरयिकास्तिर्यग्चक्ष
मनुया देवाश्चाख्याताः ॥

१५५—पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—(१) नैरयिक, (२) तिर्यग्, (३) मनुष्य और (४) देव ।

१५६—नेरइया सत्तविहा
पुढवीसु सत्तमू भवे ।
रयणाभ सक्कराभा
वालुयाभा य आहिया ॥

नैरयिकाः सप्तविधाः
पृथिवीषु सप्तसु भवेयुः ।
रत्नाभा शर्कराभा
वालुकाभा चाख्याता ॥

१५६—नैरयिक जीव सात प्रकार के हैं । वे सात पृथिव्यों में उत्पन्न होते हैं । वे सात पृथिव्यों में हैं—(१) रत्नाभा, (२) शर्कराभा (३) वालुकाभा,

१५७—पंकाभा धूमाभा
तमा तमतमा तहा ।
इइ नेरइया एए
सत्तहा परिकित्तिमा ॥

पंकामा धूमाभा
तमः तमस्तमः तथा ।
इति नैरयिका एते
सप्तधा परिकीर्तिताः ॥

१५७—(४) पंकामा, (५) धूमाभा, (६) तमः और (७) तमस्तमः । इन सात पृथिव्यों में उत्पन्न होने के कारण ही नैरयिक सात प्रकार के हैं ।

१५८—लोगस्स एगदेसम्मि
ते सन्वे उ वियाहिया ।
एत्तो कालविभागं तु
बुच्छं तेसि चउज्विहं ॥

लोकस्यैक-देशे
ते सर्वे तु व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१५८—वे लोक के एक भाग में हैं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१५९—संतइ पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानाविकाः
अपयंबसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपयंबसिता अपि च ॥

१५९—अवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अमल और स्थिति अपेक्षा से सावि-सात हैं ।

१६०—सागरोपममेकं तु
उत्कर्णेण व्याख्याता ।
पठमाए जहन्नेणं
दसवाससहसिसया ॥

सागरोपममेकं तु
उत्कर्णेण व्याख्याता ।
प्रथमायां अध्ययन
दशसहस्रहस्तिका ॥

१६०—पहली पृष्ठी में नैरयिकों की आयु-स्थिति बचन्यतः दस हजार वर्ष और ऊच्छ्रुतः एक सागरोपम की है ।

१६१—तिष्णेव सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
दोच्चाए जहन्नेणं
एगं तु सागरोपमं ॥

त्रय एव सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
द्वितीयायां जघन्येन
एकं तु सागरोपमम् ॥

१६१—दूसरी पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः एक सागरोपम और
उत्कृष्टतः तीन सागरोपम की है ।

१६२—सत्तेव सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
तइयाए जहन्नेणं
तिष्णेव उ सागरोपमा ॥

सप्तैव सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
तृतीयायां जघन्येन
त्रिणि एव तु सागरोपमाणि ॥

१६२—तीसरी पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः तीन सागरोपम और
उत्कृष्टतः सात सागरोपम की है ।

१६३—दस सागरोपमा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
चउत्थोए जहन्नेणं
सत्तेव उ सागरोपमा ॥

दशसागरोपमाणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
चतुर्थ्यां जघन्येन
सप्तैव तु सागरोपमाणि ॥

१६३—चौथी पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः सात सागरोपम और
उत्कृष्टतः दस सागरोपम की है ।

१६४—सत्तरस सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
पंचमाए जहन्नेणं
दस चैव उ सागरोपमा ॥

सप्तदश सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
पंचम्यां जघन्येन
दश चैव तु सागरोपमाः ॥

१६४—पाँचवीं पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः दस सागरोपम और
उत्कृष्टतः सतरह सागरोपम की है ।

१६५—बावीस सागरा ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
छट्ठोए जहन्नेणं
सत्तरस सागरोपमा ॥

द्वाविंशतिः सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
षष्ठ्यां जघन्येन
सप्तदश सागरोपमाणि ॥

१६५—छठीं पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः सतरह सागरोपम और
उत्कृष्टतः बाईस सागरोपम की है ।

१६६—तेतीस सागरा' ऊ
उक्कोसेण वियाह्रिया ।
सत्तमाए जहन्नेणं
बावोसं सागरोपमा ॥

त्रयस्त्रिंशन् सागरास्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
सप्तम्यां जघन्येन
द्वाविंशतिः सागरोपमाणि ॥

१६६—सातवीं पृथ्वी में नैरयिकों की
आयु-स्थिति जघन्यतः बाईस सागरोपम और
उत्कृष्टतः तेतीस सागरोपम की है ।

१६७—जा चेव उ आउठई
नेरइयाणं वियाहिया ।
सा तेसिं कायठई
जहन्नुकसिया भवे ॥

या खं व तु आयुः-स्थितिः
नैरयिकाणां व्याख्याता ।
सा तेषां काय-स्थितिः
जघन्योत्कृष्टता भवेत् ॥

१६७—नैरयिक जीवों की वो आयु-
स्थिति है, वही उनकी जघन्यतः या उत्कृष्टतः
काय-स्थिति है ।

१६८—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजडमि सए काए
नेरइयाणं तु अन्तरं ॥

अनन्तकालमुक्कयं
अन्तर्मूर्तं जघन्यकम् ।
विजयस्ते स्थके काये
नैरयिकाणान्तु अन्तरम् ॥

१६८—उनका अन्तर (नैरयिक के काय
को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मूर्त और
उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

१६९—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणादेसओ वावि'
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रतः ॥

१६९—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि में उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१७०—पंचिन्द्रियतिरिक्खाओ
दुविहा ते वियाहिया ।
सम्मच्छिमतिरिक्खाओ^१
गम्भवक्कन्तिया तथा ॥

पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
सम्मच्छिम-तिर्यञ्चः
गम्भविक्रान्तिकास्तथा ॥

१७०—पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च जीव दो प्रकार
के हैं—(१) सम्मच्छिम-तिर्यञ्च और (२) गम्भ-
उत्पन्न-तिर्यञ्च ।

१७१—दुविहावि ते भवे तिविहा
जलयरा थलयरा तथा ।
खहयरा य बोद्धव्वा
तेसिं भए सुणेह मे ॥

द्विविधा अपि ते भवेयुस्त्रिविधाः
जलचराः स्थलचरास्तथा ।
लवचराश्च बोद्धव्याः
तेषां भेदाश्च शृणुतु मे ॥

१७१—ये दोनों ही जलचर, स्थलचर
और लवचर के भेद से तीन-तीन प्रकार के हैं ।
उनके भेद तुम मुझ से सुनो ।

१७२—मच्छा य कच्छभा य
गाहा य मगरा तथा ।
सुसुमारा य बोद्धव्वा
पंचहा^२ जलयराहिया ॥

मत्स्याश्च कच्छपाश्च
ग्राहाश्च मकरास्तथा ।
सुसुमाराश्च बोद्धव्याः
पंचधा जलचरा आख्याताः ॥

१७२—जलचर जीव पाँच प्रकार के
हैं—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (३) ग्राह,
(४) मकर और (५) सुसुमार ।

१. सठाण भेषओ वा वि (अ) ।

२. ० तिरिक्खा थ (उ) ।

३. पंचविहा (अ) ।

१७३—लोएगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
एत्तो कालविभागं तु
वुच्छं तेसि चउव्विहं ॥

लोककदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१७३—वे लोक के एक भाग में ही होते हैं, समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१७४—संतइं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च सईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तांति प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१७४—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनावि-
जन्य और स्थिति की अपेक्षा से सावि-
मान्त हैं ।

१७५—एगा य पुव्वकोडोओ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिइं जलयराणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

एका च पूर्वकोटी
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिर्जलचराणां
अन्तर्मूहृतं जघन्यका ॥

१७५—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मूहृतं और उत्कृष्टतः एक करोड़ पूर्व
की है ।

१७६—पुव्वकोडोपुहत्तं तु
उक्कोसेण वियाहिया ।
कायट्ठिइं जलयराणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

पूर्वकोटिपृथक्त्वन्तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
काय-स्थितिर्जलचराणां
अन्तर्मूहृतं जघन्यका ॥

१७६—उनकी काय-स्थिति (निरन्तर
उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा)
जघन्यतः अन्तर्मूहृतं और उत्कृष्टतः (दो से नौ)
पूर्व की है ।

१७७—अणन्तकालमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नियं ।
विजडंमि सए काए
जलयराणं तु अन्तरं ॥

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मूहृतं जघन्यकम् ।
वित्यक्ते स्वके काये
जलचराणां तु अन्तरम् ॥

१७७—उनका अन्तर (अलवर के काय
को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मूहृतं और
उत्कृष्टतः अनन्त काल का है ।

१७८—'एएसि वण्णओ चव
गंघओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्ससो ॥'

एतेषां वर्णतत्त्वैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो बापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१७८—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१७९—चउप्पया य परिसप्पा
दुविहा थलयरा भवे ।
चउप्पया चउविहा
ते मे कित्तयओ सुण ॥

चतुष्पदाश्च परिसर्पाः
द्विविधाः स्थलचरा भवेयुः ।
चतुष्पदाश्चतुर्विधाः
तान् मे कीर्तयतः शृणु ॥

१७९—स्थलचर जीव दो प्रकार के हैं—
(१) चतुष्पद और (२) परिसर्प । चतुष्पद चार
प्रकार के हैं । वे तुम मुझ से सुनो ।

१८०—एगखुरा दुखुरा चैव
गण्डीपयसणप्पया ।
हयमाइगोणमाइ-
गयमाइसीहमाइणो ॥

एकसुरा द्विसुराश्चैव
गण्डीपवाः सनत्सपदाः ।
हयादयो गवादयः
गजादयः सिंहादयः ॥

१८०—(१) एक सुर—घोड़े आदि,
(२) दो सुर—बैल आदि, (३) गण्डीप—
हाथी आदि । (४) सनत्सपद—सिंह आदि ।

१८१—भुओरगपरिसप्पा य
परिसप्पा दुविहा भवे ।
गोहाई अहिमाई य
एकैक्का णेगहा भवे ॥

भुज-उरग-परिसर्पाश्च
परिसर्पा द्विविधा भवेयुः ।
गोधादयो ह्यादयश्च
एकैके अनेकधा भवेयुः ॥

१८१—परिसर्प के दो प्रकार हैं—(१)
भुजपरिसर्प—हाथों के बल चलने वाले गौह
आदि, (२) उरःपरिसर्प—पेट के बल चलने
वाले साँप आदि । ये दोनों अनेक प्रकार के
होते हैं ।

१८२—लोएगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
एत्तो कालविभागं तु
वुच्छं तेसि चउज्विहं ॥

लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१८२—वे लोक के एक भाग में होते हैं,
समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध
काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१८३—संतइं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिहं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राण्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि य ।
स्थितिं प्रतीत्य साविकाः
सपर्यवसिता अपि य ॥

१८३—प्रवाह की अपेक्षा से वे जनाव-
जन्त और स्थिति की अपेक्षा से सावि-
सान्त हैं ।

१८४—पलिओवमाउ' तिणि उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिई थलयराणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

पल्योपमानि तु त्रीणि तु
उत्कर्णेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिः स्थलचराणां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१८४—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्णतः तीन पल्योपम
की हैं ।

१८५—पलिओवमाउ तिणि उ'
उक्कोसेण तु साहिया ।
पुव्वकोडीपुहत्तेणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

पल्पोवमानि तु त्रीणि तु
उत्कर्षेण तु साधिका ।
पूर्वकोटि-पुष्पकत्वेन
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१८५—अध्वन्यतः अन्तर्मुहूर्तं और उत्कृष्टतः
पुष्पकम् करोड़ पूर्व अधिक तीन पल्पोपम की है ।

१८६—कायट्ठिं थलयराणं
अन्तरं तेसिमं भवे ।
कालमणन्तमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥

काय-स्थितिः स्थलचराणां
अन्तरं तेषामिव भवेत् ।
कालमनन्तमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१८६—यह स्थलचर जीवों की काय-
स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते
रहने की काल-मर्यादा) है । उनका अन्तर
(स्थलचर के काय को छोड़ कर पुनः उसी काय
में उत्पन्न होने तक का काल) अध्वन्यतः अन्त-
र्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

१८७—एएसि वण्णओ चेव
गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि
विहाणाइं सहस्सओ ॥

एतेषा वर्णतश्चेव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१८७—वर्णं, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१८८—चम्मे उ लोमपक्खी य
तइया समुग्गपक्खिया ।
विययपक्खी य बोद्धव्वा
पक्खिणो य चउज्जिह्वा ॥

चर्म (पक्षिणः) तु रोमपक्षिणश्च
तृतीयः समुद्रपक्षिणः ।
विततपक्षिणश्च बोद्धव्याः
पक्षिणश्च चतुर्विधाः ॥

१८८—लेखर जीव चार प्रकार के हैं—
(१) चर्म पक्षी, (२) रोम पक्षी, (३) समुद्र
पक्षी और (४) वितत पक्षी ।

१८९—लोगेगदेसे ते सव्वे
न सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु
वुच्छं तेसि चउज्जिह्वा ॥^१

लोकैकदेशे ते सर्वे
न सर्वत्र व्याख्याताः ।
इतः काल-विभागं तु
वदामि तेषां चतुर्विधम् ॥

१८९—वे लोक के एक भाग में होते हैं,
समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध
काल-विभाग का निरूपण करूंगा ।

१. य (अ) ।

२. श्लोक क्रमांक १८७ से १८९ के स्थान पर निम्न श्लोक हैं :

विजडमि सए काए थलयराणं तु अंतरं ।
चम्मेय लोम पक्खीय तइया समुग्ग पक्खिया ॥
विततपक्खी उ (य) बोद्धव्वा पक्खिणो उ चउज्जिह्वा ।
लोएग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ (अ, झ०) ।
विजडमि सए काए थलयराणं तु अंतरं ।
एएसि वण्णओ चेव गंधओ रसफासओ ॥
संठाण देसओ वावि विहाणाइं सहस्सओ ।
चम्मे उ लोम पक्खीय तइया समुग्ग पक्खिया ॥
विययपक्खी य बोद्धव्वा पक्खिणो य चउज्जिह्वा ।
ओएग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ (उ) ।

जीवाजीवविभत्ती (जीवाजीव-विभक्ति)

५३३

अध्ययन ३६ : श्लोक १६०-१६५

१९०—संतद्धं पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिं पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तर्गत प्राप्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

१६०—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
सान्त हैं ।

१९१—पलिओवमस्स भागो
असंखेज्झमो भवे ।
आउट्ठिं खह्यराणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

पल्लोपमस्य भागः
असंख्येयतमो भवेत् ।
आयुः-स्थितिः खेचराणां
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१६१—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उल्लुप्यतः पल्लोपम के अत्यव्यक्त
भाग की है ।

१९२—असंखभागो पल्लियस्स
उक्कोसेण उ साहिओ ।
पुव्वकोडोपुहुत्तेणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

असंख्यभागः पल्लस्य
उत्कर्षेण तु साधिकः ।
पूर्वकोटो-पृथक्त्वेन
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

१६२—जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उल्लुप्यतः
पृथक्त्वं करोड़ पूर्व अधिक पल्लोपम का
अत्यव्यक्त भाग—

१९३—कायठिं खह्यराणं
अन्तरं तेसिमं भवे ।
कालं अणन्तमुक्कोसं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥

काय-स्थितिः खेचराणां
अन्तरं तेषामिव भवेत् ।
कालमनन्तमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥

१६३—यह खेचर जीवों की काय-
स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते रहने
की काल-मर्यादा) है । उनका अन्तर (खेचर
के काय को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न
होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उल्लुप्यतः अनन्त-काल का है ।

१९४—एएसि वण्णओ जेव
गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणोदेसओ वावि'
विहाणां सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णरसद्वन्द्वं
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानावेवतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

१६४—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

१९५—मणुया कुविहभेया उ
ते मे कित्तयो सुण ।
समुच्छिमा य मणुया
गम्भवक्कन्तिया तहा ॥

मनुजा द्विविधभेदास्तु
तान् मे कीर्तयतः शृणु ।
सम्मुख्यमात्रं मनुजाः
गर्वावकाशिकास्तथा ॥

१६५—मनुष्य दो प्रकार के हैं—(१)
सम्मुख्य और (२) गर्व-उत्पन्न ।

१९६—गम्भवक्कन्तिया जे उ
तिविहा ते वियाहिया ।
अकम्मकम्मभूमा य
अन्तरद्दीवया तहा ॥

१९७—‘पन्नरस तीसइ विहा’
भेया अट्टवीसइ ।
संखा उ कमसो तेसि
इइ एस वियाहिया ॥

१९८—संमुच्छिमाण एसेव
भेओ होइ आहिओ ।
लोगस्स एगदेसम्मि
ते संखे वि^१ वियाहिया ॥

१९९—संतइ पप्पणाईया
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पडुच्च साईया
सपज्जवसिया वि य ॥

२००—पलिओवमाइ तिणि उ
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्टिई मणुयाणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

२०१—पलिओवमाइ तिणि उ
उक्कोसेण वियाहिया^२ ।
पुव्वकोडोपुहुत्तेणं
अन्तोमुहुत्तं जहन्निया^३ ॥

गर्भाविकान्तिका ये तु
त्रिविधास्ते व्याख्याताः ।
अकर्मकर्म-भूमाश्च
अन्तर-द्वापकास्तथा ॥

पञ्चशत्रिंशद्विधाः
भेदा अष्टाविंशतिः ।
सङ्ख्या तु क्रमशस्तेषां
इत्येषा व्याख्याता ॥

सम्मुच्छिमाणामेव एव
भेदो भवति आख्यातः ।
लोकस्यैकदेशे
ते सर्वेऽपि व्याख्याताः ॥

सन्ततिं प्राप्यानाविकाः
अपर्यवसिता अपि न्व ।
स्थितिं प्रतीत्य सादिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

पत्न्योपमानि त्रीणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः-स्थितिर्भन्तुजानां
अन्तर्मुहूर्ता जघन्यका ॥

पत्न्योपमानि त्रीणि तु
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
पूर्वकोटि-पृथक्स्थेन
अन्तर्मुहूर्ता जघन्यका ॥

१६६—गर्भ-उत्पन्न मनुष्य तीन प्रकार
के हैं—(१) अकर्म-भूमिक, (२) कर्म-भूमिक
और (३) अन्तर्दीपक ।

१६७—कर्म-भूमिक मनुष्यों के पन्द्रह,
अकर्म-भूमिक मनुष्यों के तीस तथा अन्तर्दीपक
मनुष्यों के अट्ठाईस भेद होते हैं ।

१६८—सम्मुच्छिद्य मनुष्यों के भी उनसे
ही भेद हैं, जिनसे गर्भ-उत्पन्न मनुष्यों के हैं ।
वे लोक के एक भाग में ही होते हैं ।

१६९—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-
मान्त हैं ।

२००—उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः तीन पत्न्योपम
की हैं ।

२०१—जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः
पृथक्च करोड़ पूर्व अधिक तीन पत्न्योपम—

१. तीस पन्नरस विहा (५० पा०) ।

२. य (अ) ; × (ड) ।

३. तु साहिया (अ०) ।

४. जहन्मग (अ) ।

२०२—कायद्विर्द्धं मणुयाणं
अन्तरं तेसिमां भवे ।
अणन्तकालमुक्कासं
अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥

काय-स्थितिसंनुजानां
अन्तरं तेवामिदं भवेत् ।
अनन्तकालमुक्कासं
अन्तर्मुहुत्तं जघन्यकम् ॥

२०२—यह मनुष्यों की काय-स्थिति (निरन्तर उसी काय में जन्म लेते रहने की काल-मर्यादा) है। उनका अन्तर (मनुष्य के काय को छोड़ कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहुत्त और उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

२०३—एएसि वण्णओ चंव
गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणादंसओ वावि'
विहाणाइं सहस्ससो ॥

एतेषां वर्णतदचंच
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानावेशतो वापि
विधानानि सहस्रशः ॥

२०३—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

२०४—देवा चउर्त्तवहा वुत्ता
ते मे कित्तयओ मुण ।
भोमिज्जवाणमन्तर-
जोइसवेमाणिया तहा ॥

देवाश्चतुर्विधा उक्ताः
तान् मे कीर्तयतः शृणु ।
भोमेया व्यन्तराः
ज्योतिष्काः वैमानिकास्तथा ॥

२०४—देव चार प्रकार के हैं—
(१) भवन-वासी, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ।

२०५—दसहा उ भवनवासी
अट्ठहा वणचारिणो ।
पंचविहा जोइसिया
दुविहा वेमाणिया तहा ॥

दशधा तु भवनवासिनः
अष्टधा वनचारिणः ।
पंचविधा ज्योतिष्का
द्विविधा वैमानिकास्तथा ॥

२०५—भवनवासी देव दस प्रकार के हैं। व्यन्तर आठ प्रकार के हैं। ज्योतिष्क पाँच प्रकार के हैं। वैमानिक दो प्रकार के हैं ।

२०६—अमुरा नागसुवण्णा
विज्जू अग्गो य आहिया ।
दीवोदहिदिसा वाया
थणिया भवनवासिणो ॥

अमुरा नाग-सुपर्णाः
विद्युद्गन्निद्व आख्याताः ।
द्वापोदविदिशो वाताः
स्तनिता भवनवासिनः ॥

२०६—(१) अमुर कुमार, (२) नाग कुमार, (३) सुपर्ण कुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधि कुमार, (८) दिक् कुमार, (९) वायु कुमार और (१०) स्तनित कुमार—ये भवनवासी देवों के दस प्रकार हैं ।

२०७—पिसायभूय जक्खा य
रक्खसा किन्नरा य किपूरिसा ।
महोरगा य गन्धव्वा
अट्ठविहा वाणमन्तरा ॥

पिशाच-भूत-यक्षाश्च
राक्षसाः किन्नराश्च किपूरिषाः ।
महोरगाश्च गन्धर्वाः
अष्टविधा वाणमन्तराः ॥

२०७—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) राक्षस, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किपूरिष (७) महोरग और (८) गन्धर्व—ये व्यन्तर देवों के आठ प्रकार हैं ।

२०८—चन्दा सूरः यः नक्षत्रात्
गृहा तारामणा तहा ।
दिसाविचारिणो^१ चैव
पंचहा^२ जोइसालया ॥

२०९—वेमाणिया उ जे देवा
दुविहा ते बियाहिया ।
कप्पोवगा य बोद्धव्वा
कप्पाईया तहेव य ॥

२१०—कप्पोवगा बारसहा
सोहम्मीसाणगा तहा ।
सणकुमारमाहिन्दा
बम्भलोगा य लन्तगा ॥

२११—महासुक्का सहसारा
आणया पाणया तहा ।
आरणा अच्युया चैव
इइ कप्पोवगा सुरा ॥

२१२—कप्पाईया उ^३ जे देवा
दुविहा ते बियाहिया ।
गेविज्जाऽणुत्तरा चैव
गेविज्जा नवविहा तहि^४ ॥

२१३—हेट्ठिमाहेट्ठिमा चैव
हेट्ठिमाभज्जिमा तहा ।
हेट्ठिमा उवरिमा चैव
मज्जिमाहेट्ठिमा तहा ॥

चन्द्राः सूर्यादि नक्षत्राणि
ग्रहस्तारामणास्तथा ।
विशा-विचारिणश्चैव
पंचधा ज्योतिषालयाः ॥

वैमानिकास्तु ये देवाः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
कल्पोपगाश्च बोद्धव्याः
कल्पातीतास्तथैव च ॥

कल्पोपगा द्वादशधा
सौधर्मशानगास्तथा ।
सन्त्कुमार-माहेन्द्राः
ब्रह्मलोकाश्च लान्तकाः ॥

महासुक्काः सहसाराः
आनताः प्राणतास्तथा ।
आरणा अच्युताश्चैव
इति कल्पोपगाः सुराः ॥

कल्पातीतास्तु ये देवाः
द्विविधास्ते व्याख्याताः ।
प्रेय्यानुत्तराश्चैव
प्रेय्या नवविधास्तत्र ॥

अधस्तनाऽधस्तनाश्चैव
अधस्तनमध्यमास्तथा ।
अधस्तनोपरितनाश्चैव
मध्यमाऽधस्तनास्तथा ॥

२०८—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) नक्षत्र,
(४) ग्रह और (५) तारा—ये पाँच भेद
ज्योतिषक देवों के हैं । ये दिसा-विचारी-भेद
की प्रवक्षिणा करते हुए विचरण करने
वाले हैं ।

२०९—वैमानिक देवों के दो प्रकार हैं—
(१) कल्पोप और (२) कल्पातीत ।

२१०—कल्पोपग बारह प्रकार के हैं—
(१) सौधर्म, (२) ईशानक, (३) सन्त्कुमार,
(४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक,

२११—(७) महासुक्क, (८) सहसार,
(९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण और
(१२) अच्युत ।

२१२—कल्पातीत देवों के दो प्रकार हैं—
(१) प्रेयिक और (२) अनुत्तर । प्रेयिकों के
निम्नोक्त नौ प्रकार हैं :

२१३—(१) अध-अधस्तन, (२) अध-
मध्यम, (३) अध-उपरितन, (४) मध्य-
अधस्तन,

१. दिसा^१ (आ, व, ऋ०) ।

२. पंचविहा (अ) ।

३. य (अ०) ।

४. सहा (अ०) ।

जीवाजीवविभक्ती (जीवाजीव-विभक्ति)

५३७

अध्ययन ३६ : श्लोक २१४-२३६

२१४—मज्झिममज्झिमा चैव
मज्झिमाउवरिमा तथा ।
उवरिमाहेहिमा चैव
उवरिमासमज्झिमा तथा ॥

मध्यममध्यमाश्चैव
मध्यमोपरितनास्तथा ।
उपरितनाऽवस्तनाश्चैव
उपरितनमध्यमास्तथा ॥

२१४—(५) मध्य-मध्यम, (६) मध्य-
उपरितन, (७) उपरि-अवस्तन, (८) उपरि-
मध्यम,

२१५—उवरिमाउवरिमा चैव
इय गेविज्जया सुरा ।
विजया वेजयन्ता य'
जयन्ता अपराजिया ॥

उपरितनोपरितनाश्चैव
इति प्रवेयकाः सुराः ।
विजया वेजयन्ताश्च
जयन्ता अपराजिताः ॥

२१५—और (६) उपरि-उपरितन—ये
प्रवेयक देव हैं । (१) विजय, (२) वेजयन्त,
(३) जयन्त, (४) अपराजित

२१६—सन्वद्वसिद्धगा' चैव
पंचहाऽनुत्तरा सुरा ।
इह वेमाणिया देवा'
णेगहा एवमायओ ॥

सर्वायंसिद्धकाश्चैव
पंचया अनुत्तराः सुराः ।
इति वैमानिका देवाः
अनेकथा एवमावयः ॥

२१६—और (५) सर्वायंसिद्धक—ये अनुत्तर
देवों के पाँच प्रकार हैं । इस प्रकार वैमानिक
देवों के अनेक प्रकार हैं ।

२१७—लोगस्स एगदेसम्मि
ते सव्वे परिकित्तिया ।
इतो कालविभागं तु
वुच्छं तेसि चउव्विहं ॥

लोकस्यैकदेशे
ते सर्वे परिकीर्तिताः ।
इतः काल-विभागं तु
वक्ष्यामि तेषां चतुर्विधम् ॥

२१७—ये सब लोक के एक भाग में
रहते हैं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग
का निरूपण करूँगा ।

२१८—संतइं पप्पाऽणाईया
अपज्जबसिमा वि य ।
छिहं पबुब्ब साईबा
सपज्जवसिया वि य ॥

सन्तति प्राप्यानादिकाः
अपर्यवसिता अपि च ।
स्थितिं प्रतीत्य साधिकाः
सपर्यवसिता अपि च ॥

२१८—प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-
अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से साधि-
मान हैं ।

२१९—साहियं सागरं एकं
उकोसेण ठिई भवे ।
ओबैज्जाणं जहन्नेणं
दसंघोससहस्रिया ॥

साधिकाः सागर एकः
उत्कर्षेण स्थितिं भवेत् ।
भौमेषामां अजहन्नेय
सप्तसहस्रल्लिका ॥

२१९—मवनवासी देवों की आयु-स्थिति
अनन्त, दस हजार वर्ष और उल्लुप्यतः किञ्चित्
साधिका एक सागरोपम की है ।

१. × (अ) ।

२. °सिद्धिया (अ) ।

३. एर (अ, अ०) ।

२२०—पलिओवममेगं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
वन्तराणं जहन्तेणं
दसवाससहस्सिया ॥

पल्योपममेकन्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अधन्तराणां जघन्येन
दशवर्षसहस्रिका ॥

२२०—व्यन्तर देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः दस हजार वर्ष और उत्कृष्टतः एक
पल्योपम की है ।

२२१—पलिओवमं एगं तु
वासलक्खेण साहियं ।
पलिओवमउट्टभागां
जोइसेसु जहन्निया ॥

पल्योपममेकन्तु
वर्षलक्षेण साधिकम् ।
पल्योपमाष्टमभागः
ज्योतिष्केषु जघन्यका ॥

२२१—ज्योतिष्क देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः पल्योपम के आठवें भाग और
उत्कृष्टतः एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम
की है ।

२२२—दो चंव सागराईं
उक्कोसेण वियाहिया* ।
सोहम्ममि जहन्तेणं
एगं च पलिओवमं ॥

द्वौ चंव सागरो
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
सौधमं जघन्येन
एकं च पल्योपमम् ॥

२२२—सौधमं देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः एक पल्योपम और उत्कृष्टतः दो
सागरोपम की है ।

२२३—सागरा साहिया दुन्नि
उक्कोसेण वियाहिया* ।
ईसाणम्मि जहन्तेणं
साहियं पलिओवमं ॥

सागरो साधिको द्वौ
उत्कर्षेण व्याख्याता ।
ईशाने जघन्येन
साधिकं पल्योपमम् ॥

२२३—ईशान देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः किञ्चित् अधिक एक पल्योपम और
उत्कृष्टतः किञ्चित् अधिक दो सागरोपम
की है ।

२२४—सागराणि य सत्तेव
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सणकुमारे जहन्तेणं
दुन्नि ऊ सागरोवमा ॥

सागराश्च सप्तैव
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सन्त्कुमारं जघन्येन
छे तु सागरोपमे ॥

२२४—सन्त्कुमार देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः दो सागरोपम और उत्कृष्टतः सात
सागरोपम की है ।

२२५—साहिया सागरा सत्त
उक्कोसेण ठिई भवे ।
माहिन्दम्मि जहन्तेणं
साहिया दुन्नि सागरा ॥

साधिकाः सागराः सप्त
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
साहेन्द्रे जघन्येन
साधिको द्वौ सागरो ॥

२२५—साहेन्द्रे देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः किञ्चित् अधिक दो सागरोपम
और उत्कृष्टतः किञ्चित् अधिक सात सागरोपम
की है ।

१. ठिई भवे (आ, स) ।

२. ठिई भवे (आ, स) ।

२२६—दस चैव सागराङ्गं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
बम्भलोए जहन्नेणं
सत्त ऊ सागरोवमा ॥

दश चैव सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
ब्रह्मलोके जघन्येन
सप्त तु सागरोपमाणि ॥

२२६—ब्रह्मलोक देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः सात सागरोपम और उत्कृष्टतः दस
सागरोपम की है ।

२२७—चउइस^१ सागराङ्गं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
लत्तगम्मि जहन्नेणं
दस ऊ सागरोवमा ॥

चतुर्दश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
लान्तके जघन्येन
दश तु सागरोपमाणि ॥

२२७—लान्तक देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः दस सागरोपम और उत्कृष्टतः चौदह
सागरोपम की है ।

२२८—सत्तरस सागराङ्गं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
महासुक्के जहन्नेणं
चउइस सागरोवमा ॥

सप्तदश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
महाशुक्ले जघन्येन
चतुर्दश सागरोपमाणि ॥

२२८—महाशुक्ल देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः चौदह सागरोपम और उत्कृष्टतः
सत्तरह सागरोपम की है ।

२२९—अट्टारस सागराङ्गं
उक्कासेण ठिई भवे ।
सहस्सारे जहन्नेणं
सत्तरस सागरोवमा ॥

अष्टादश सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सहस्रारे जघन्येन
सप्तदश सागरोपमाणि ॥

२२९—सहस्रार देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः सत्तरह सागरोपम और उत्कृष्टतः
अठारह सागरोपम की है ।

२३०—सागरा अउणवोसं तु
उक्कासेण ठिई भवे ।
आणयम्मि जहन्नेणं
अट्टारस सागरोवमा ॥

सागरा एकोनविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
आनते जघन्येन
अष्टादश सागरोपमाणि ॥

२३०—आनत देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः अठारह सागरोपम और उत्कृष्टतः
उन्नीस सागरोपम की है ।

२३१—वोसं तु सागराङ्गं
उक्कासेण ठिई भवे ।
पाणयम्मि जहन्नेणं
सागरा अउणवोसई ॥

विंशतिस्तु सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
प्राणते जघन्येन
सागरा एकोनविंशतिः ॥

२३१—प्राणत देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः उन्नीस सागरोपम और उत्कृष्टतः
बीस सागरोपम की है ।

२३२—सागरा इक्कवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
आरणम्मि जहन्नेणं
वीसई सागरोवमा ॥

सागरा एकविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
आरणे जघन्येन
विंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३२—आरण देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः बीस सागरोपम और उत्कृष्टतः इक्कीस
सागरोपम की है ।

२३३—बावोसं सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
अच्चुयम्मि जहन्नेणं
सागरा इक्कवीसई ॥

द्वाविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अच्युते जघन्येन
सागरा एकविंशतिः ॥

२३३—अच्युत देवों की आयु-स्थिति
जघन्यतः इक्कीस सागरोपम और उत्कृष्टतः
द्वाविंशतिः सागरोपम की है ।

२३४—तेवीस सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पढम्मि जहन्नेणं
बावीसं सागरोवमा ॥

त्रयोविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
प्रथमे जघन्येन
द्वाविंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३४—प्रथम प्रवेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः बाईस सागरोपम और
उत्कृष्टतः तेईस सागरोपम की है ।

२३५—चउवीस सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
बिइयम्मि जहन्नेणं
तेवीसं सागरोवमा ॥

चतुर्विंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
द्वितीये जघन्येन
त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३५—द्वितीय प्रवेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः तेईस सागरोपम और उत्कृष्टतः
चौबीस सागरोपम की है ।

२३६—पणवीस सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
तइयम्मि जहन्नेणं
चउवीसं सागरोवमा ॥

पंचविंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
तृतीये जघन्येन
चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि ॥

२३६—तृतीय प्रवेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः चौबीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः पणवीस सागरोपम की है ।

२३७—छव्वीस सागराई
उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउत्थम्मि जहन्नेणं
सागरा पणवीसई ॥

षड्विंशतिः सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
चतुर्थ जघन्येन
सागराः पंचविंशतिः ॥

२३७—चतुर्थ प्रवेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः पणवीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः छवीस सागरोपम की है ।

२३८—सागरा सत्तवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पंचमम्मि जहन्नेणं
सागरा उ छवीसई ॥

सागराः सप्तविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
पंचमे जघन्येन
सागराः तु षड्विंशतिः ॥

२३८—पंचम ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः छवीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः सत्ताईस सागरोपम की है ।

२३९—सागरा अट्टवीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
छट्ठम्मि जहन्नेणं
सागरा सत्तवीसई ॥

सागराः अष्टाविंशतिस्तु
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
षष्ठे जघन्येन
सागराः सप्तविंशतिः ॥

२३९—षष्ठ ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः सत्ताईस सागरोपम और
उत्कृष्टतः अट्टाईस सागरोपम की है ।

२४०—सागरा अउणतीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सत्तमम्मि जहन्नेणं
सागरा अट्टवीसई ॥

सागरा एकोनविंशत्
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सप्तमे जघन्येन
सागरा अष्टाविंशतिः ॥

२४०—सप्तम ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः अट्टाईस सागरोपम और
उत्कृष्टतः उनतीस सागरोपम की है ।

२४१—तीसं तु सागराडं
उक्कोसेण ठिई भवे ।
अट्ठमम्मि जहन्नेणं
सागरा अउणतीसई ॥

त्रिंशत् सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अष्टमे जघन्येन
सागराः एकोनविंशत् ॥

२४१—अष्टम ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः उनतीस सागरोपम और
उत्कृष्टतः तीस सागरोपम की है ।

२४२—सागरा इक्कतीसं तु
उक्कोसेण ठिई भवे ।
नवमम्मि जहन्नेणं
तीसई सागरोवमा ॥

सागरा एकत्रिंशत्
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
नवमे जघन्येन
त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥

२४२—नवम ग्रंथेयक देवों की आयु-
स्थिति जघन्यतः तीस सागरोपम और उत्कृष्टतः
इक्कतीस सागरोपम की है ।

२४३—तेत्तीस सागराउ
उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउसुं पि विजयासिंसुं
जहन्नेणेक्कतीसई ॥

त्रयस्त्रिंशत् सागराः
उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
चतुर्धापि विजयासिंसुं
जघन्येनेकत्रिंशत् ॥

२४३—विजय, वैजयन्त, जयन्त और
अपराजित देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः
इक्कतीस सागरोपम और उत्कृष्टतः तैत्तीस
सागरोपम की है ।

२४४—अजहन्नमणुक्कोसा^१

तेत्तीसं सागरोवमा ।
महाविमानं सञ्चट्टे
ठिई एसा वियाहिया ॥

अजघनयानुत्कर्षा

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ।
महा-विमानं सर्वाथै
स्थितिरेषा व्याख्याता ॥

२४४—सर्वाथैसिद्धं देवों की जघन्यतः

और उत्कृष्टतः आयु-स्थिति तैनीस सागरोपम
की है ।

२४५—जा चेव उ^२ आउठिई
देवाणं तु वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई
जहन्नुक्कोसिया^३ भवे ॥

या कैत्र तु आयु-स्थिति
देवानान्नु व्याख्याता ।
सा तेषां काय-स्थितिः
जघन्योत्कर्षिता भवेत् ॥

२४५—सारे ही देवों को जितनी आयु-
स्थिति है उतनी ही उनकी जघन्य या उत्कृष्ट
काय-स्थिति है ।

२४६—अणन्तकालमुक्कोसं

अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढंमि सए काए
देवाणं हुज्ज अन्तरं ॥^४

अनन्तकालमुत्कर्षं
अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ।
चित्पक्षे स्वके काये
देवानां भवेदन्तरम् ॥

२४६—उनका अन्तर (अपने-अपने काय
को छोड़कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने
तक का काल) जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और
उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

२४७—एएसि वण्णओ चेव
गन्धओ रसफासओ ।
'संठाणादेसओ वावि'^५
विहाणाई सहस्सओ ॥

एतेषां वर्णतश्चैव
गन्धतो रस-स्पर्शतः ।
संस्थानादेशतो वापि
विधानानि सहस्रतः ॥

२४७—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद
होते हैं ।

२४८—संसारत्था य सिद्धा य
इइ जीवा वियाहिया ।
रुविणो चेव ऽरुवो य
अजीवा दुविहा वि य ॥^६

संसारस्थ्याश्च सिद्धाश्च
इति जीवा व्याख्याताः ।
रूपिणश्चैवारूपिणश्च
अजीवा द्विविधा अपि च ॥

२४८—संसारो और सिद्ध—इन दोनों
प्रकार के जीवों की व्याख्या की गई है । इसी
प्रकार रूपी और अरूपी—इन दोनों प्रकार के
अजीवों की व्याख्या की गई है ।

१. 'मणुक्कोसं' (अ, क०) ।

२. य (अ) ।

३. 'जहन्नयं' (ख०, व०) ।

४. इस श्लोक के बाद दो श्लोक और हैं—

अणन्तकालमुक्कोसं वासपुह्णं जहन्नयं ।

आणयादीयं कप्पाणं मेविजाणं तु अन्तरं ॥

संविज्जसागस्सोसं वासपुह्णं जहन्नयं ।

अणुत्तराण देवाणं अन्तरं तु वियाहिया ॥ (उ) ।

५. संठाण भेषओ वा वि (अ) ।

६. श्लोक क्रमांक २४८ से २६८ के स्थान पर चर्च में निम्न दो श्लोक हैं :—

जीवमजीवे एते गण्णा सङ्खित्तं य ।

सक्कन्तुसंसत्तमी जण्णा संजमे विदू ॥

पसत्पसत्तमाणीवगाए, कालं किच्चा गं संजए ।

सिद्धे वा सासए भवति देवे वावि मइविहए ॥

२४९—इह जीवमजीवे य
सोषा सद्दृष्टिः य ।
सर्वनयाण अणुमए
रमेजा संजमे मुणी ॥

इति जीवानजीवांश्च
श्रुत्वा श्रद्धाय च ।
सर्वनयानामनुमते
रमेत संयमे मुनिः ॥

२४९—इस प्रकार जीव और अजीव के
स्वरूप को मुनकर, उसमें श्रद्धा उत्पन्न कर मुनि
ज्ञान-क्रिया आदि सभी नयों के द्वारा अनुमत
संयम में रमण करे ।

२५०—ततो बहूणि वासाणि
सामण्यमणुपाल्या ।
इमेण कमजोगेण
अप्याणं संलिहे मुणी ॥

ततो बहूनि वर्षाणि
श्रामण्यमनुपाल्य ।
अनेन क्रम-योगेन
आत्मानं संलिखेन्मुनिः ॥

२५०—मुनि अनेक वर्षों तक श्रामण्य का
पालन कर इस क्रमिक प्रयत्न से आत्मा को
कले—संलिखना करे ।

२५१—बारसेव उ वासाई
संलुकोसिया^१ भवे ।
संवच्छरं मज्झिमिया^२
छम्मासा^३ य जहल्लिया^४ ॥

इवसौव तु वर्षाणि
संलुकोत्पिता भवेत् ।
संवत्सरं मध्यमिका
वर्णमासा च जघन्यका ॥

२५१—संलिखना उत्कृष्टतः बारह वर्षों,
मध्यमतः एक वर्ष तथा जघन्यतः छह मास की
होती है ।

२५२—पदमे वासचउक्कम्मि
विगईनिज्जहणं^५ करे ।
बिइए वासचउक्कम्मि
विचित्तं तु तवं चरे ॥

प्रथमे वर्ष-चतुष्के
बिहृति-निर्युहणं कुर्यात् ।
द्वितीये वर्ष-चतुष्के
बिचित्रं तु तपश्चरेत् ॥

२५२—संलिखना करने वाला मुनि पहले
चार वर्षों में बिहृति (रवों) का परित्याग
करे । दूसरे चार वर्षों में बिचित्र तप (उपवास,
बेला, तैला आदि) का आचरण करे ।

२५३—एगन्तरमायामं
कटु संवच्छरे दुवे ।
ततो संवच्छरदं तु
नाइविगिदं तवं चरे ॥

एकान्तरमायामं
कृत्वा संवत्सरो द्वौ ।
ततः संवत्सरादं तु
नातिबिहृष्टं तपश्चरेत् ॥

२५३—फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप
(एक दिन उपवास तथा एक दिन भोजन)
करे । भोजन के दिन आशाम्ल करे । यद्यपि
वर्ष के पहले छः महीनों तक कोई भी बिहृष्ट
तप (तेला, बेला आदि) न करे ।

१. संलुकोसियो (वृ० पा०) ।

२. मज्झिमियो (वृ० पा०) ; मज्झिमिया (वृ०) ।

३. छम्मासे (अ) ।

४. जहल्लियो (वृ० पा०) ।

५. बिहृति (वृ०) ; विगई (वृ० पा०) ।

२५४—'तओ संवच्छरद्धं तु
विगिद्धं तु तवं चरे ।
परिमिच्चं चव आयामं
तमि संवच्छरे करे ॥'^१

२५५—कोडीसहियमायामं
कट्टु संवच्छरे मुणी ।
मासद्धमासिएणं तु
आहारेणं तवं चरे ॥

२५६—कन्दप्पमाभिओगं^२
किम्बिसियं मोहमासुरत्तं च ।
एयाओ दुग्गईओ
मरणम्मि विराहिया होन्ति ॥

२५७—मिच्छादंसणरत्ता
सनियाणा हु हिसगा ।
इय जे मरन्ति जीवा
तेसि पुण दुल्ला बोही ॥

२५८—सम्महंसणरत्ता
अनियाणा मुक्कल्लेसमोगाढा ।
इय जे मरन्ति जीवा
मुल्ला तेसि भवे बोही ॥

२५९—मिच्छादंसणरत्ता
सनियाणा कण्हल्लेसमोगाढा ।
इय जे मरन्ति जीवा
तेसि पुण दुल्ला बोही ॥

ततः संवत्सराद्धन्तु
विकृष्टन्तु तपद्वरेत् ।
परिमितश्चैवायामं
तस्मिन् संवत्सरे कुर्यात् ॥

कोटी-सहितमायामं
कृत्वा संवत्सरे मुनिः ।
मासिकेनाद्धं मासिकेन तु
आहारेण तपस्वरेत् ॥

कान्तर्पा अभियोगी
क्लिब्वधिकी मोहा आयुस्त्वंच ।
एता दुग्गयः
मरणे विराधिका भवन्ति ॥

मिथ्यादर्शन-रक्ताः
सनिदानाः खलु हिसकाः ।
इति ये स्त्रियन्ते जीवाः
तेषां पुनर्दुर्लभा बोधिः ॥

सम्यग्दर्शन-रक्ताः
अनिदानाः शुक्ल-लेश्यामवगाढाः ।
इति ये स्त्रियन्ते जीवाः
सुलभा तेषां भवेद् बोधिः ॥

मिथ्या-दर्शन-रक्ताः
सनिदानाः कृष्ण-लेश्यामवगाढाः ।
इति ये स्त्रियन्ते जीवाः
तेषां पुनर्दुर्लभा बोधिः ॥

२५४—यारहवें वर्ष के पिछले छः
महीनों में विकृष्ट तप करें । इस पूरे वर्ष में
परिमित (पारणा के दिन) आचाम्ल करें ।

२५५—बारहवें वर्ष में मुनि कोटी-सहित
(निरन्तर) आचाम्ल करें । फिर पक्ष या मास
का आहार-त्याग (अनशन) करें ।

२५६—कांदर्वी भावना, अभियोगी
भावना, क्लिब्वधिकी भावना, माही भावना
तथा आसुरी भावना—ये पाँच भावनाएँ
दुर्गति की हेतुभूत हैं । भूत्यु के समय ये
सम्यग्-दर्शन आदि की विराधना करती हैं ।

२५७—मिथ्या-दर्शन ने रक्त, सनिदान
और ह्यिक दया में जो मरते हैं, उनके लिए
फिर बोधि बहुत दुर्लभ होती है ।

२५८—सम्यग्-दर्शन में रक्त, अनिदान
और शुक्ल-लेश्या में प्रवर्तमान जो जीव मरते
हैं, उनके लिए फिर बोधि सुलभ है ।

२५९—जो मिथ्या-दर्शन में रक्त,
सनिदान और कृष्ण-लेश्या में प्रवर्तमान होते
हैं, उनके लिए फिर बोधि बहुत दुर्लभ
होती है ।

१. परिमियं चव आयामं गुणुल्लसं सुणी चरे ।
तओ संवच्छरद्धं विगिद्धं तु तवं चरे ॥ (५० पा०) ।

२. कसणेण (५० पा०) ।

३. कन्दप्पमाभिओगं च (५०) ।

२६०—जिणवयणे अनुरत्ता
जिणवयणं जे करेन्ति भावेण ।
अमला असंकिल्लटा
ते होन्ति परित्तसंसारी ॥

जिनवचनेऽनुरक्ताः
जिनवचनं ये कुर्वन्ति भावेन ।
अमला असंकिलप्टाः
ते भवन्ति परीत-संसारिणः ॥

२६०—जो जिन-वचन में अनुरक्त हैं
तथा जिन वचनों का भाव-पूर्वक आचरण करते
हैं, वे निमल और असंकलित होकर परीत-
संसारी (अल्प जन्म मरण वाले) हो जाते हैं ।

२६१—बालमरणणि बहुसो
अकाममरणणि चेव 'य
बहूणि' ।
मरिहन्ति' ते वराया
जिणवयणं जे न जाणन्ति ॥

बाल-मरणानि बहुशः
अकाम-मरणानि चैव च बहूनि ।
मरिष्यन्ति ते वराकाः
जिनवचनं ये न जानन्ति ॥

२६१—जो प्राणी जिन-वचनों के परि-
चित नहीं हैं, वे बेचारे अनेक बार बाल-मरण
तथा अकाम-मरण करते रहेंगे ।

२६२—बहुआगमविन्नाणा
समाहिउपायगा* य गुणगाहो।
एएण कारणेणं
अरिहा आलोयणं सोउं ॥

बहुआगम-विज्ञानाः
समाध्युत्पादकाश्च गुणप्राहिणः ।
एतेन कारणेन
अर्हा आलोचनां श्रोतुम् ॥

२६२—जो अनेक शास्त्रों के विज्ञाता,
आलोचना करने वाले के मन में समाधि उत्पन्न
करने वाले और गुणप्राही होते हैं, वे अपने
इन्हीं गुणों के कारण आलोचना सुनने के
अधिकारी होते हैं ।

२६३—कन्दप्पकोकुइवाइ* तह
सीलसहावहासविगहाहि* ।
विम्हावेन्तो य परं
कन्दप्पं भावणं कुणइ ॥

कन्दर्प-कोत्कुब्धे
तथा शील-स्वभाव-हास्य-विकषामिः।
विस्मापयन् च परं
कान्दपा भावनां कुरुते ॥

२६३—जो काम-कषा करता रहता है,
दूसरों को हँसाने की चेष्टा करता रहता है,
शील, स्वभाव, हास्य और विकषाओं के द्वारा
दूसरों की विस्मित करता रहता है, वह कांक्षणी
भावना का आचरण करता है ।

२६४—मन्ताजोगि* काउं
भूईकम्मं च जे पउंजन्ति ।
सायरसइडिडहेउं
अभिओगं भावणं कुणइ ॥

मंत्र-योगं कृत्वा
भूति-कर्म च यः प्रयुङ्क्ते ।
सातरसद्विहेतो
आभियोगी भावनां कुरुते ॥

२६४—जो मुख, रस और समृद्धि के
लिए मंत्र, योग और भूति-कर्म का प्रयोग
करता है, वह अभियोगी भावना का आचरण
करता है ।

१. बहुषाणि (इ, उ, ऋ०, ए०) ।

२. मरहन्ति (उ) ; मरिहन्ति (ऋ०) ।

३. 'उपायगा (अ) ।

४. 'कोकुब्ध' (इ०, उ०) ।

५. 'इसण' (इ०, उ०) ।

६. संस' (अ) ।

२६५—ताणस्स केवलीणं
धम्मयारियस्स संघसाहूणं ।
माई अवण्णवाई
किब्बिसियं भावणं कुणइ ॥

२६६—अणुबद्धरोसपसरो
तह य निमित्तंमि होइ
पडिसेवि ।
एएहि कारणेहि
आसुरियं भावणं कुणइ ॥

२६७—सत्थमाहणं विसभक्खणं च
ज्जलणं च जलप्पवेसो य ।
अणायारभण्डसेवा
जम्ममरणणि बन्धन्ति ॥

२६८—इह पाउकरे बुद्धे
नामए परिनिब्बुए ।
छत्तीसं उत्तरज्जाए
भवसिद्धीयसंमए' ॥
—ति वेमि ।

ज्ञानस्य केवलिनं
धर्माचार्यस्य सहस्रसाधूनाम् ।
मायी अवर्णबाहो
किञ्चिद्विकीं भावनां कुरुते ॥

अनुबद्धरोषप्रसरः
तथा च निमित्तो भवति प्रतिसेवी ।
एताभ्यां कारणाभ्यां
आसुरीं भावनां कुरुते ॥

शस्त्र-ग्रहणं विष-भक्षणं च
ज्वलनं च जल-प्रवेशश्च ।
अनाचार-भाण्ड-सेवा
जन्म-मरणानि बध्न्वन्ति ॥

इति प्रादुरकरोऽबुद्धः
ज्ञातव्यः परिनिर्बृत्तः ।
षट्त्रिंशदुत्तराध्यायान्
अव्य सिद्धिक-सम्पदान् ॥

—इति ब्रवीमि ।

२६५—जो ज्ञान, केवल-ज्ञानी, धर्माचार्य,
संघ तथा साधुओं की निन्दा करता है, वह
मायावी पुरुष किञ्चिद्विकी भावना का
आचरण करता है ।

२६६—जो क्रोध को सतत् बढ़ावा देता
रहता है और निमित्त कहता है, वह अपनी इन
प्रवृत्तियों के कारण आसुरी भावना का
आचरण करता है ।

२६७—जो शस्त्र के द्वारा, विष-भक्षण
के द्वारा अग्नि में प्रविष्ट होकर वा पानी में
कूद कर आत्म-हत्या करता है और जो मर्षादा
से अधिक उपकरण रखता है, वह जन्म-मरण
की परम्परा को गुप्त करता है—मोहो
भावना का आचरण करता है ।

२६८—इस प्रकार अव्य जीवों द्वारा
सम्मत छत्तीस उत्तराध्यायनों का, तत्त्ववेत्ता,
परिनिर्बृत्ति (उपशान्तात्मा) ज्ञात-वशोय
अममान् महाबोर ने प्रादुर्करण किया ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

पदानुक्रम

अ	अ	अ	अ	अ	
पद	स्थल	अकिचिं परिबज्जए	१८-३३	अचत्तनियणसमा	१८-५२
अदगया बारमापुरि	२२-२७	अकुक्कुओ तत्त्वडिहासएज्जा	२१-१८	अचत्तपरमो आसो	२०-५
अदित्तककट्टादण्णे	१६-५२	अकुक्कुओ निसोएज्जा	२-२०	अचिं जाला तहेव य	३६-१०६
अदमाय पाणमोयणं	१६-१२	अकोहुओ सत्तरए	११-५	अचुयम्मि बह्णेणं	३६-२३३
अदयाओ नराहिओ	२०-५६	अककोसवहं बिइत्तु धीरे	१५-३	अचचेइ कालो तूरत्ति राइओ	१३-३१
अउलं सुहंसपत्ता	३६-६६	अककोसा पुक्खसेज्जा य	१६-३१	अच्चेमु ते महाभाग !	१२-३४
अउला मे अण्डिवेयणा	२०-१६	अककोसा य बहा य मे	१-३८	अच्छेओ उवसम्पदा	२६-७
अउला हवइ वेयणा	२-१५	अककोसेज्ज परो भिक्खुं	२-२४	अच्छत्तं वक्खमूलम्मि	१६-७८
अठलो क्वचिम्हओ	२०-५	अकसाया मारणत्तिया	५-२	अच्छिल्ले माहए अच्छि	३६-१४८
अएव आगया एसे	७-६	अकसाहिं ओ संजय ! अक्खपूदया !	१२-४०	अच्छेरागममुदए	६-५१
अकुसण जहा नागो	२२-४६	अक्खे भग्गिं सोयई	५-१४	अक्खहन्मण्णकोसा	३६-२४४
अंके फलिहे य लोहिइक्खे य	३६-७५	अक्खे भग्गे व सोयई	५-१५	अजाणया जन्मबाई	२५-१८
अगलक्खगंसंठाणं	१६-४	अगणि व वक्खन्द पयंगसेणा	१२-२७	अजीबदेसमागासे	३६-२
अगविज्जं च जे पउज्जित्त	८-१३	अगारवो य निस्सल्लो	३०-३	अजीवाण य क्वणिं	३६-१३
अगवियारं सरस्स विजयं	१५-७	अगारिं च विद्याणिया	७-२२	अजीवाण य क्वीण	३६-१४
अंगुलं सत्तरनेणं	२६-१४	अगारिसामाइयंगं	५-२३	अजीवा दुविहा भवे	३६-४
अणेण बाहिरेण व	२८-२१	अगुणिसं नत्थि मोक्खो	२८-३०	अजीवा दुविहा वि य	३६-२४८
अंगुणोहिं नयणेहिं	२०-२८	अग्गिबण्णाइ' गेगसो	१६-६६	अज्जवयाएणं भन्ते ! जीवे किं...२६ सू० ४६	
अकट तो कक्के ति य	१-११	अग्गिहोत्तमुहा वेया	२५-१६	अज्जाइ'कम्माइ' करेहिं राय !	१३-३२
अकम्मकम्मभूमा य	३६-१६६	अग्गी चिट्ठइ गोयमा	२३-५०	अज्जुणमुक्खगमई	३६-६०
अकलेख'सेणिमुत्सिया	१०-३५	अग्गी य दइ के बुत्ता	२३-५२	अज्जेव धम्मं पडिबज्जयामो	१४-२८
अकसाओ जिइण्णो	३०-३	अग्गी बा माहिओ जहा	२५-१६	अज्जेवाहं न लब्भामि	२-३१
अकसायं अहक्खायं	२८-३३	अग्गी बिवा सव्वभक्खी भवित्ता	२०-४७	अज्जत्तं सव्वओ सव्वं	६-६
अकामभरणं वेव	५-२	अचक्किया केणइ दुणहंसया	११-३१	अज्जत्तं हेउं निमयज्जसं बन्धो	१४-१६
अकामभरणं मरई	५-१६	अचयनो तहिं दिओ	२५-१३	अज्जभापज्जाणजोयेहिं	१६-६३
अकामभरणणि वेव य बह्णि	३६-२६१	अचिन्तनं वेव अकित्ताणं च	३२-१५	अज्जमत्तानग्गिं सोहणे	१६-७
अकामा जत्ति दोगाई	६-५३	अचिरकालकयंमिय	२४-१७	अज्जावयाणं पडिक्खमासी	१२-१६
अकारिणोअथ बज्जत्ति	६-३०	अचिरणेव कालेण	१४-५२	अज्जावयाणं वयणं गुणेतो	१२-१६
अकालं च विवट्ठिअत्ता	१-३१	अचेलमसं लुहस	२-३४	अज्जावया बा सह सण्णिएहिं	१२-१८
अकामिं पावइ से विणासं	३२-२४	अचेलो य ओ धम्मो	२३-१३, २६	अट्टट्ठाणि वज्जित्ता	३०-३५; ३४-३१
	३७-५०, ६३, ७६, ८६	अचणं रयणं वेव	३५-१८	अट्ठं न जाणाहं अहिज्ज वेए	१२-१५

अट्ट कम्पाई बोष्णामि	३३-१	अणत्ताणि य दम्भाणि	२८-८	अणुत्तरे सो नरए पण्डितो	१३-३४
अट्टजुत्ताणि सिक्खेज्जा	१-८	अणमिमाहिजो य सेसेसु	२८-२६	अणुत्तए नावणाए महेत्ती	२१-२०
अट्टजोयवाहल्ला	३६-५६	अणमिमाहिज कुण्डितो	२८-२६	अणुत्तेहाएणं भन्ते ! बीजे किं	
अट्टो पवयणमायाओ	२४-१	अणवजेसतिणजस्स	१६-२७	अणयइ ?	२६ सु० २३
अट्टमम्मि अहन्नेणं	३६-२४१	अणसणमणोयरिया	३०-८	अणुत्तेहा चम्मकहा	३०-३४
अट्टमुहुत्ता अहन्मिया	३३-२३	अणाअकालपमवस्स एसो	३२-१११	अणुबढोसपसरो	३६-२६६
अट्टविहोरोयरमं तु	३०-२५	अणागंयं नेव य क्षरिय किंचि	१४-२८	अणुबन्धकुहायहा	१६-११
अट्टविहा बाणमत्तारा	३६-२०७	अणाद्विस्स देवस्स	११-२७	अणुमागा ह्वन्ति उ	३३-२४
अट्टसहस्सलक्खणवरो	२२-५	अणागुन्विं अमोसल्लि वेव	२६-२५	अणुभागे विपाणिया	३३-२५; ३४-६१
अट्टहा ते पकितिया	३६-१६	अणायारमण्डसे	३६-२६७	अणुभावे सुणेह मे	३४-१
अट्टहा वणचारिणो	३६-२०५	अणारवाए वेव होइ संलोए	२४-१६	अणुपाणिताण बह्विहं	१६-२६६
अट्टहिं बीयितियंमी	२६-१६	अणावायमसंलोए	२४-१६, १७	अणुरत्ता अणुवया	२०-२८
अट्टाए य अणट्टाए	५-८	अणाविले अतपसन्नेसे	१२-४६	अणुसट्ठि सुणेह मे	२०-१
अट्टारस सागराई	३६-२२६	अणासवा बूलवया कुलीका	१-१३	अणुसासनं नागणुपोबधं	२०-५१
अट्टारस सागरोबमा	३६-२३०	अणासवे भागसासाहिजुरो	३२-१०६	अणुसासनोभायं	१-२८
अट्टिअत्ता भविस्ससि	२२-४४	अणाहं जहाभूयं	२०-५६	अणुसास्त्रिको न कुयेज्जा	१-६
अट्टेवज समासओ	३३-३	अणाहो मि सहाराय !	२०-६	अणुसाहरितपडिलेहा	२६-२८
अणअक्कममाया य ते होइ	२६-३३	अणिअओ पखिअए	२-१६	अणुसाणाछत्ता इह साणवेहिं	२१-१६
अणगारं अकिचणं	२-१४; २५-२७	अणिज्जे जीव लोगमि	१८-११, १२	अणा क्वा समणं वरन्तं	४-११
अणगारं तत्त्व पासई	१-६	अणिवागे अकिचणे	३५-१६	अणेगवासानउवया	७-१३
अणगारगुणिं च	३१-१	अणिस्सओ इहं लोए	१६-६२	अणेगवासे धुवागोयरे य	१६-८३
अणगारसीह परमाइ भतिए	२०-५८	अणकम्पओ तस्स महामुग्गिस्स	१२-८	ओगविहा एवमायओ	३६-११६
अणगारस्स	१८-८, १६	अणकम्पयं सुहि वावी	२०-६	ओगहा एवमायओ	३३-६६, ११०,
अणगारस्स निक्खन्तो	२४-४२	अणुकसाई अणिय्जे	२-३६		१३०, १३६, १४६, २१६
अणगारस्स निक्खणुओ	१-१; २-२८; ६-१६; ११-१	अणुकसाई लहुअणमवसी	१५-१६	ओगहा ते पकितिया	३६-६४, ६६
		अणुज्जे अकुए पिये	१-३०	ओगहा ते विपाटिया	३६-१०६
		अणुजाणए पव्खस्सामि अमो !	१६-१०	ओगगाण सहस्साणं	२३-३४
अणगारस्स सो निवो	१८-८	अणुत्तरं चरिउ चम्मसंभयं	२१-२३	अण्णं जलाणमयव्वं जहा य	३२-६
अणगारे भागमस्तिए	१८-६	अणुत्तरं संजम पाळइत्ता	१३-३४	अण्णं बसिं महोहंति	५-१; २३-७०
अणगारे तवोषणे	१८-७	अणुत्तरं संजम पालियाणं	२०-५२	अणुरिउ तत्तत्तेगे	१८-५२
अणगारो मणाज्जओ	२६-२५	अणुत्तरं सिद्धिइ गमो	१३-३५	अणुराल्लिसे सुणई पकोसं	३२-२६; ३६, ३७; ६५, ७८, ६१
अणकम्पावियं अल्लियं	१८-४६	अणुत्तरदंसी अणुत्तरनागदंस्सणवरे	६-१७	अणुत्तिट्ठोसेण बुद्धो परस्स	३२-२६, ५२, ५४, ६६, ६१, ६६
अणट्टा जे य सव्वत्था	१८-३०	अणुत्तरनागवरे अस्सी	२१-२३	अणुत्तिट्ठोसेण बुद्धो परस्स	३२-२६, ५२, ५४, ६६, ६१, ६६
अणत्ताकालमुक्कसं	३६-१४, ८२, ६०, १०३, ११४, १२४, १३४, १४३, १५३, १६८, १७७, २०२, २४६	अणुत्तरे भुजिय कावभोयो	१३-३६	अणुत्तिट्ठोसेण बुद्धो परस्स	३२-२६, ५२, ५४, ६६, ६१, ६६

अतट्टे अवरजम्हई	७-२५	अनिगहण्या य रसेवु गिडे	२०-३६	अन्यवरेणं व बल्येण	३०-२२
अतट्टे नावरजम्हई	७-२६	अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा	३६-२५८	अनल्लिगे दसेव य	३६-५२
अताणं परिचायसे ?	१८-५३	अनियाणो अब्बवणो	१६-६१	अनस्स अट्ठा इहमागो मि	१२-६
अत्थं व धम्मं व विद्यापमाणा	१२-३३	अन्तमुहुत्तस्मिं गाए	३४-६०	अन्नागस्सि अलोक्खुए	२-३६
अत्थन्तस्मिं य सूरस्मिं	१७-१६	अन्तमुहुत्तस्मिं सेसाए जेव	३४-६०	अन्नाणं व सहामुणी !	१८-२३
अत्थं पोत्थं व परिचाय !	२०-१६	अन्तरं तेस्मिं भवे	३६-१८६, १६३, २०२	अन्नाणं जस्स अणायं होह	२८-२०
अत्थवच्चमगाहं तच्चं	२०-१	अन्तरहीवया तद्वा	३६-१६६	अन्नाणमोहस्स विवज्जाणए	३२-२
अत्थवच्चमोवसोहिंयं	१८-३४	अन्तराए य कम्मस्मिं	३३-२०	अन्नायायस्सी परिब्बाए जे स भिक्खू	१५-५
अत्थि एगो धुमं ट्ठाणं	२३-८१	अन्तरायं त्तेहिं य	३३-३	अन्निओ रायसहस्सेहिं	१८-४३
अत्थि एगो महादीवो	२३-६६	अन्तरेयं विमाहिंयि	३६-१४, १३४, १४३, १५३	अन्नेण विसेसो	३०-२३
अत्थि वा तत्थि वा पुणो ?	५-६	अन्तेउरवरगो बरे भोए	६-३	अन्ने य एयणभवे विसेसे	३२-१०३
अत्थे य संकपयवो तओ से	३२-१०७	अन्तोमुहुत्तं जहन्नां	३६-१०२	अन्ने सत्ता पमोयन्ति	१४-४२
अत्थेहिं कामेहिं य उत्तमेहिं	१३-१०	अन्तोमुहुत्तां जहन्मयं	३६-८१, ८२, १०३, १०४	अन्तो वि संजजा मज्जं	२३-२६, ३४, ३६
अत्थिरब्बा तत्थिमयेहिं अट्टे	२०-४१	१०४, ११४, ११५, १२३, १२४, १३३, १३४, १४२, १४३, १४४, १६८, १७७, १८६, १८३, २०२, २४६	१६३, २०२, २४६	अपजवसिया जेव	३६-८
अत्थिराखो कुक्कुट्ठाए	१७-१३	अन्तोमुहुत्तं जहन्निया	३३-१६, २१, २२, ३६-८०, ८८, ८९, ११३, १२२, १३२, १४६, १४९, १७५, १७६, १८४, १८५, १८६, १८७, २००, २०१	अपजवसिया वि य	३६-१२, ६५, ७६, ८७
अत्थए पडिसेहिं, नियण्ठे	१५-११	अन्तोमुहुत्तं जहन्निया	३३-१६, २१, २२, ३६-८०, ८८, ८९, ११३, १२२, १३२, १४६, १४९, १७५, १७६, १८४, १८५, १८६, १८७, २००, २०१	अपडिक्कमिरा कालस्स	२६-२२
अत्थसणं जेव अपत्थणं व	३२-२५	अन्तोमुहुत्तमडं	३४-४५	अपत्थं अम्मणं भोच्चा	७-११
अत्थत्तमेहुत्तरिगगाढा विरओ	३०-२	अन्तो लयणस्स सा ट्ठिया	२२-३३	अपरिकम्मा य आहिया	३०-१३
अत्थत्तस्स विवज्जणं	१६-२७	अन्तो सिद्धाण आहियं	३३-१०	अपारंओ पवज्जई	१६-१८
अदिनत्तस्स वि किच्चाणं	६-४०	अन्तोहिययसंभूया	२३-४५	अप्य चाहंकिच्चवई	११-११
अदिस्साणं च भूयाणं	२३-२०	अन्वयायो तमे वीरे	२३-७५	अप्यं वा जइ वा वहुं	२५-२४
अदीगमणतो बरे	२-३	अन्धिया पात्तिया जेव	३६-१४६	अप्यकम्मे अवैयो	१६-२१
अदीयो बाबाए पन्नं	२-३२	अन्नं पत्थेहिं आसमं	६-४२	अप्यच्चल्लाय पावणं	६-८
अट्ठा वंछिओ मि ति	२-४४	अन्नं भूयं भवयाणमेयं	१२-१०	अप्यट्ठियण, यट्ठे	१७-५
अट्ठावाव भविससई	२-४५	अन्नं पाणं व प्ढाणं व	२०-२६	अप्यविड्ढयागं णं भन्ते ! जीवे	२६ सू० ३१
अट्ठावाव सवेलए होक्खं	२-१२	अन्नं वावि तद्वाविहं	२४-१५	अप्यहिक्खे अट्ठाउयं	३-१६
अट्ठु बुक्कसं युलागं वा	८-१२	अन्नदहरे वेगे	७-५	अप्यहिक्खवले जोहे	११-२१
अट्ठाय सिरसा सिरं	१८-१०	अन्नपयसत्तं घणमेसमाणे	१४-१४	अप्यणट्ठा परट्ठा वा	१-२५
अट्ठायो अन्ति देवयं	७-२१	अन्नमन्नमणूरत्ता	१३-५	अप्यणा अणाहो सन्तो	२०-१२
अट्ठाए सुट्ठारादवि	७-१८	अन्नमन्नमसाणुा	१३-५	अप्यणा वि अणाहो सि	२०-१२
अट्ठाणं जो अहत्तं तु	१६-१८, २०	अन्नमन्नाहिएणियो	१३-५	अप्यणा सम्भवेसजा	६-२
अट्ठाणंमि विलोवए	७-५	अन्नमन्नेण वा विणा	१३-५	अप्यणो व परस्स य	२०-३२
अट्ठाणे कह्म वट्ठने	२३-६०	अन्नपरवत्थयो वा	३०-२२		
अट्ठासएण जेव	३६-६				
अथवे अट्ठासयंमि	८-१				

अप्यो व परेसि च	१८-२६	अबले बहू भारबाहए	१०-३३	अमोहा रचणी मुत्ता	१४-२३
अप्यो बसहि बए	१४-४८	अबालं चेव पणिए	७-३०	अमोहाहि पडलीहि	१४-२१
अप्यपानोप्योमि	१-३५	अबालं सेवए मुणी	७-३०	अम्बिका महुरा तहा	३६-१८
अप्यमजियमासह	१७-७	अबोया सल्लकुसला	२०-२२	अम्भताय ! मए भोगा	१६-११
अप्यमत्तो पमत्तेहि	६-१६	अबोहेत्तो असंजए	२६-४४	अम्मापिऊग दइए	१६-२
अप्यमत्तो परिबए	६-१२	अठमपडलजमवायु	३६-७४	अम्मापिऊहि अणुत्ताओ	१६-८४
अप्यव्वइएण व संमुदा हविजा	१५-१०	अबमाहयमि कोणंमि	१४-२१	अम्मापियर उवागम्म	१६-६
अप्यसत्ताओ बजिता	३४-६१	अबिमतंरं तवं एत्तो	३०-२६	अयं दन्नेहि लायह	१२-२६
अप्यसत्तेहि दारेहि	१६-६३	अबमुट्ठाणं अञ्जलिकरणं	३०-३२	अयं साहसिओ भीमो	२३-५५
अप्या कत्ता बिकत्ता य	२०-३७	अबमुट्ठाणं गुरुमुया	२६-७	अयसि कोए अमयं व पूइए	१७-२१
अप्या काममुहा चेण	२०-३६	अबमुट्ठाणं नवमं	२६-४	अयसि कोए विसमेव गरहिए	१७-२०
अप्या वेव देमयव्वो	१-१५	अबमुट्ठियं रायरिसि	६-६	अयकक्करभोई य	७-७
(अप्याणं उबसंहरे)	२२-४५	अबओ परिपवा ! तुज्जं	१८-११	अयत्तम्वत्तउय-सीसग	३६-७३
अप्याणं तारइस्तामि	१६-२३	अबमदाया भवाहि य	१८-११	अयत्तिए कूड कहाणे वा	२०-४२
अप्याणं पि न कोवए	१-४०	अभिओणं माचणं कुणई	३६-२६४	अय व्व आगयाएत्ते	७-६
अप्याणं सल्लिहे मुणो	३६-२५०	अभिक्षणं उल्लवई	११-२	अयसीपुप्फसंकासा	३४-६
अप्याणं संबरे तहि	२२-३६	अभिक्षणं कोही हवइ	११-७	अरइ पिट्ठओ किच्चा	२-१५
अप्याममेव अप्याणं	६-३५	अभिगमविस्वारहई	२८-१६	अरइरइवहे पहीणसंयवे	२१-२१
अप्याममेव जुज्झाहि	६-३५	अभिगमाहा य जे जन्ने	३०-२५	अरई अणुपचिते	२-१४
अप्याणरक्खो चरमप्यमत्तो	४-१०	अभिजाए जसोबले	१-१८	अरइं गणं विमुइया	१०-२७
अप्या दत्तो सुद्धो होइ	१-१५	अभिणिकखमई नमी राया	६-२	अरए य तवो कम्मे	१७-१५
अप्या नई बैयरणो	२०-३६	अभिनुए पार गमितए	१०-३६	अरओ मियपक्खिण ?	१६-७६
अप्या मित्तममितं व	२०-३७	अभिमुय वरीसहे	२-१८	अरहा नायपुत्ते	६-१७
अप्या मे अवसीयई	२७-१५	अभिबन्दिऊग सिरसा	२०-५६	अरहा कोमपूइओ	२३-१
अप्या मे कूडसाम्भो	२०-३६	अभिबन्दितासिरसा	२३-८६	अरिट्ठमोमि बन्दिता	२२-२७
अप्या मे नन्दनं वणं	२०-३६	अभिबन्दितासिरसा	२-३८	अरिहा आलोयणं सोउं	३६-२६२
अप्यामेव महापन्ने	३-१८	अभू जिणा अथि जिणा	२-४५	अरुक्खिणो ओवघणा	३६-६६
अप्या हु लल्लु दुइओ	१-१५	अभोमी नोवलिणई	२५-३६	अरुक्खी वसहा भवे	३६-६
अप्याहेओ पवजइ	१६-१८	अभोमी विप्यमुचवई	२५-३६	अरुक्खी वसहा मुत्ता	३६-४
अपियं पि न विजए	६-१५	अमला असंकिट्ठा	३६-२६०	अरो य अयं पत्तो	१८-४०
अपियस्तामि मिरास्स	११-१२	अमहवए होइ हु जाणएसु	२०-४२	अरुकिजो वाणलकिजो वा वि	३०-२२
अपिया देवकामाणं	३-१५	अमई अकुडहले	११-१०; ३४-२७	अलसा माइवाहया	३६-१२८
अपुट्ठाई निरुट्ठाई	१-३०	अमाणासु ओणीसु	३-६	अलसा तं न तजए	२-३१
अफोबमण्डबमि	१८-५	अमृतमाभा वि य होइ पिण्णो	१४-१६	अलोए पडिहया सिद्धा	३६-५६
अफकाजत्ति राइओ	१४-२४	अमोहो होइ निरत्तराए	३२-१०६	अलोए से विहाहिए	३६-२
अग्रमचारिणा वाला	१२-५				

पदानुक्रम

५

अलोलुपं मुहूर्त्तौ	२५-२७	असंविभागी अविष्यते	११-६; १७-११	अह कालमि संपत्ते	५-३२
अलोलो न रसे मिदो	३५-१७	असंसत्तं गिहत्थेषु	२५-२७	अह केसरमि उज्जाणे	१८-५
अल्लोणा सुसमाहिद्या	२३-६	असंसत्तो गिहत्थेहि	२-१६	अह चउपसहिं ट्ठाणेहिं	११-६
अन्नउज्जमह पायकम्बलं	१७-६	असणे अणसणे तहा	१६-६२	अह जाणासि तो भण	२५-१२
अन्नउज्जिऊण माहणरुक्कं	६-५५	असतो कामे पसेसि	६-५३	अह जे संवुडे भिक्खू	२-२५
अन्नउज्जिभय मितवन्धवं	१०-३०	असमाणो चरे भिक्खू	२-१६	अह तस्य भइच्छन्तं	१६-५
अन्नविषयमसतोपियं	२५-२१	असमाहि च वेएइ	२७-३	अह तायागो तस्य भुगीण तेसिं	१५-८
अन्नसेसं भण्डं गिज्जका	२६-३५	असावज्जं मियं काले	२५-१०	अह तेगेव कालेणं	२३-५; २५-५
अन्नसो लोहरहे जूलो	१६-५६	असारं अवउज्जमह	१६-२२	अह ते तस्य सीसाणं	२३-१५
अन्नसोहिद्य कण्टगापहं	१०-३२	असासए सरीरम्मि	१६-१३	अह दारए तहि जाए	२१-५
अन्नसोहिद्य पिट्ठसउत्तमरे	१२-२६	असासयं दट्ठु इमं विहारं	१५-७	अह निक्खमइ उ चित्ताहिं	२२-२३
अवि एयं विणमसउ अन्नपाणं	१२-१६	असासवासावमिणं	१६-१२	अह पंचहिं ट्ठाणेहिं	११-३
अविज्जनाया अहीरिया य	३५-२३	असिणह विणेहकुरेहिं	८-२	अह पच्छा उइज्जन्ति	२-५१
अविणीए अवहुसुए	११-२	असिधारागमणं येव	१६-३७	अह पत्तामि आपसे	७-३
अविणीए त्ति तुण्हई	१-३; ११-६	असिपत्तं महावणं	१६-६०	अह पन्नरसहिं ट्ठाणेहिं	४१-१०
अविणीए वण्हई सो उ	११-६	असिपत्तेहि पण्णेहिं	१६-६०	अह पासिस्स वरणी	२१-५
अवि पावपरिक्खेवी	११-८	असिपज्जीवी अगिहे अमिते	१५-१६	अह भवे पड्ढा उ	२३-३३
अवि मित्तमु कुपुई	११-८	असीलाणं च जा रई	५-१२	अह मासी महापाणे	१८-२८
अवि लामो मुए सिया	२-३१	असीहि अयसिबण्णाहिं	१६-५५	अह भोगेण सो भगवं	१६-६
अविबण्णासा तहेव य	२६-२८	अमुइं अमुइसम्भवं	१६-१२	अहम्मं कुणमाणस्स	१५-२५
अविसाराओ पवयणे	२८-२६	अमुभलेसु सव्वसो	२५-२६	अहम्मं पडिबज्जिया	५-१५; ७-२८
अव्वक्खिलेणे येयसा	१८-५०; २०-१७	अमुरा तहिं तं अणं तासमन्ति	१२-२५	अहम्मो अत्तपन्हा	१७-१२
अव्वयामणे अंसंरहिंटे	१५-३	अमुरा नागसुवणा	३६-२६	अहम्मो तस्स देसे य	३६-५
असइं तु मणुस्सेहिं	६-३०	अस्सकण्णी य बोद्धव्वा	३६-६६	अहम्मो ट्ठाणलक्खणी	२८-६
असइं दुक्खमयाणि य	१६-५५	अस्साया वेइया मए	१६-५७	अह राया तस्य संमत्तो	१८-७
असंलकाकमुक्कसं	३६-१३,	अस्सा हत्थी मणुस्सा ये	२०-१३	अहवा तदयाए पोरिस्सीए	३०-२१
	८१, ८६, १०५, ११५, १२३	अस्सि ओए परत्त य	१-१५	अहवा सपरिकम्मा	३०-१३
असंलभाणं च उक्ककोसा	३५-५१, ५२, ५३	अस्से य इह के वुत्ते ?	२३-५७	अह सन्ति सुव्वया साहू	८-६
असंलभाणो पलियस्स	३६-१६२	अह भट्ठहिं ठाणेहिं	११-५	अह सा भमर-सन्निभे	२२-३०
असंल्लो जीविय मा पमायए	५-१	अह अन्त्या कयाई	२१-६	अह सारही तलो यणइ	२२-१७
असंल्लिज्जाणोसपिणीण	३५-३३	अह आसगओ राया	१८-६	अह सारही विच्चित्तेइ	२७-१५
असंल्लेज्जइमो भवे	३६-१६१	अह ऊसिए छत्तेण	२२-११	अह सा रायवरकान्ना	२२-७, ५०
असंजए संवयमन्नमाणे	१७-६	अहं च भोयरायस्स	२२-५३	अह से तस्य अणगाणे	२५-५
असंजए संवयलप्यमाणे	२०-५३	अहं तु अग्निं सेवामि	२-७	अह से सुगन्धगणिए	२७-२५
अवगमे विमसि च	३१-२	अहं पि जाणामि अहेह साहू !	१३-२७	अह सो तस्य निज्जन्तो	२२-१५

अह सो वि रायपुतो	२२-३६	आउं आगे अहा तथा	१८-२६	आणानिहेसकरे	१-२
अहिसरे सया रन्ते	११-४	आउं सुहमपुत्तरं	७-२७	आणारुई सुतबीधरुमेव	२८-१६
अहाउयं पालइता अन्तो०	२६ सु० ७३	आऊकम्मं अउविहं	३३-१२	आणुपुब्बि अहकम्मं	३१-१; ३४-१
अहाह अणाओ तीसे	२२-८	आऊकम्मं तहेव य	३३-२	आणुपुब्बि सुणेह मे	१-१; २-१; ११-१
अहिंस सच्चं च अतेशं च	२१-१२	आउक्काममइगओ	१०-६	आणुपुब्बि कयाइ उ	३-७
अहिउय वेए परिस्सि विये	१४-६	आउक्कए मोनसमुवेह सुट्टे	३२-१०६	आणुपुब्बि य तइया	२६-२
अहिगन्तविट्ठीए	१६-३८	आऊमीषाण अन्तरं	३६-६०	आणुपुब्बि सयंकरणे	२६-४
अहीणपंचिन्दिमसं पि से लहे	१०-१८	आउटिठई आऊणं	३६-८८	आणुच्छम्मारियरो	२१-१०
अहीणपंचिन्दिमया हु बुल्लहा	१०-१७	आउटिठई लहयराणं	३६-१६१	आणुच्छलाण बन्धने	२०-३४
अहुणोवन्नसंकासा	४-२७	आउटिठई जलयराणं	३६-१७४	आसरणाणि य सव्वाणि	२२-२०
अहे बयइ कोहेणं	६-४४	आउटिठई तेऊणं	३६-११३	आसरणेहि विमूंसिओ	२२-६
अहो ! अज्जस सोमया	२०-६	आउटिठई थलयराणं	३६-१८४	आमतयाओ चरिस्तामु भोणं	१४-७
अहो अटिए अहोरायं	१८-३१	आउठिई पुडवीणं	३६-८०	आमिसं सव्वमुज्झता	१४-४६
अहो ! अन्ती अहो ! मुत्ती	२०-६	आउटिठई बाऊणं	३६-१२२	आमोयमाणा गच्छन्ति	१४-४६
अहो ते अज्जसं साहु	६-४७	आउटिठई मणुयाणं	३६-२००	आमोसे लोमहारे य	६-२८
अहो ते उत्तमा अन्ती	६-४७	आउत्तमा जस्स न अत्थि काइ	२०-४०	आयंका विविहा फुसन्ति ते	१०-२७
अहो ते निज्जओ कोहो	६-४६	आउयं नएए कंखे	७-७	आयंका विविहा फुसन्ति देहं	२१-१८
अहो ते निरक्किया माया	६-४६	आउरे सरणं तिगिच्छियं च	१४-८	आयंके उवसणे	२६-३४
अहो ते माओ पराविओ	६-४६	आउरे सुगिवासिए	२-४	आययन्ति मणुस्सयं	३-७
अहो ते मुत्ति उत्तमा	६-४७	आएसं पप्प साईए	३६-६	आयरिएहिं वाहिन्तो	१-२०
अहो ते लोभो बसीकओ	६-४६	आएसं परिकंखए	७-२	आयरियं कुवियं नचचा	१४-१
अहो ते साहु महं	६-४७	आएसए समीहिए	७-४	आयरियं विदिराणं	६-८
अहोत्था विउलो दाहो	२०-१६	आए. कायवोस्सणे	२६-४६	आयरियउवज्जमाएहिं	१७-४
अहो हुल्लो हु ससारो	१६-१४	आगओ तय वाणिओ	७-१४	आयरियउवज्जमायाणं	१७-४
अहो ! भोणे असंया	२०-६	आगम्मुक्कुडुओ सन्ती	१-२२	आयरियवगिच्चाई	१७-१७
अहो य राओ परितयमाणे	१४-१४	आगासे अहो दाणं च घुट्टं	१२-३६	आयरियमाइयम्मि य	३०-३३
अहो ! वण्णो अहो ! रुबं	२०-६	आगसे गंगसोउ व्व	१६-३६	आयरियाणं तं वययं	२७-११
अहोऽनुभाण कम्माणं	२१-६	आगासेणुयइओ	६-६०	आयरियाण वन्दिता	
आ		आगासे तस्स देसे य	३६-६	आयवत्स निवाणं	२-३४
आइए निक्खवेजा वा	२४-१४	आघायय समुत्सयं	४-३२	आयाणं नयं दिस्स	६-७
आइसले गे संजय ! जल्लनुइया !	१२-४४	आणयम्मि अहन्नेणं	३६-२३०	आयाणनिकलेवडुगुछणाए	२०-४०
आइसम्मि समुट्ठिए	१६-८	आणया पाणया तथा	३६-२११	आयाणहेउं अभिणिकलमाहि	१३-२०
आइण्णं कन्णए सिद्या	१७-१६	आणाइस्सरियं च मे	२०-१४	आयामगं वेव जवीदाणं च	१४-१३
आइण्णे गणिभाजम्मि	२७-१	आणाए रोयंतो	२८-२०	आया ममं पुणफलोववेए	१४-१०
आउं कामा य दिब्बिया	७-१२	आणाजिह्दुसकरे	१-३	आयारं पाउकरिस्तामि	११-१

आचार्यम्पणिही	२३-११	आसनं सयणं जाणं	७-८	इ	
आरण्यम् बहनेणं	३६-२३२	आसनगळो न पुच्छेजा	१-२२	इह इतरियम्मि आवए	१०-३
आरणा अण्वया चैव	३६-२११	आसनम्मि अणाजले	१७-१३	इह एएसु ठाणेतु	३१-२१
आरण्णा होह मुणो पसत्ता	१४-६	आसणे उवचिट्ठेजा	१-३०	इह एस वम्मे अक्खाए	८-२०
आरम्भा सम्मदा	२६-२६	आसमपए विहारे	३०-१७	इह एसा वियाहिवा	३६-१६७
आरम्भम्मि तहेव य	२४-२५	आसाह बह्लणक्खे	२६-१५	इह कपोयगा मुरा	३६-२११
आरम्भाओ अविरजो	३४-२४	आसाह माते दुपया	२६-१३	इह चउरिन्दिया एए	३६-१४६
आरम्भेय तहेव य	२४-२१, २३	आसि अम्मे महिन्दिया	१३-७	इह जीवमजीवे य	३६-२४६
आरसतो सुमेरवं	१६-५३, ६८	आसि भिक्खु जिहन्दिओ	१२-१	इह जीवा वियाहिवा	३६-२४८
आराहए दुहओ लोगमिणं	१७-२१	आसिमो भायरा दो वि	१३-५	इह दुपूरए इमे आया	८-१६
आराहए पुणमिणं लु क्षेत्र	१२-१२	आसि राया महिन्दिए	२२-१, ३	इह नेरहया एए	३६-१५७
आरियं धम्मज्जुतरं	२-३७	आसि विणो महायसो	२५-१	इह पाउकरे कुट्ठे	१८-२४, ३६-२६८
आरियत्तं पुनरापि दुल्लहं	१०-१६	आसि सीसे महायसे	२३-२, ६	इह फासपरियया एए	३६-२०
आरुओ सोहए अरियं	२२-१०	आसी तयय समागमो	२३-२०	इह बाले पगम्भई	५-७
आलओ योजणाण्णो	१६-११	आसी मिहिलाए पक्खयत्तांमि	६-५	इह वेदन्दिवा एए	३६-१३०
आलम्भणेण कालेण	२४-४	आसीविओ उगगतओ महेसी	१२-२७	इह भिक्खु न चिन्तए	२-७, १२, २६, ४४, ४५
आलयं तु निसेवाए	१६-१	आमुपरियं दिसं बाला	७-१०	इह विज्जा तवं बरं	६-४६, १८-११
आलम्बन्ते लम्बन्ते वा	१-२१	आमुपरियं भावणं कुणइ	३६-२६६	इह विज्जामणुसंचरे	१८-३०
आलुए मूलए चैव	३६-६६	आसे जवेण पवरे	११-१६	इह वेमाणिया देवा	३६-२१६
आलोएइ नगरस्स	१६-४	आसे जहा सिक्खिय वम्पारायी	४-८	इओ वुओ गच्छइ कट्टं पावं	२०-४७
आलोएज अहक्कमं	२६-४०, ४८	आसेवणं जहायामं	३०-३३	इंगाले मुम्मुरे अणणी	३६-१०६
आलोयणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६ सू० ६	आहण्व वण्णालियं कट्टु	१-११	इंगियावारसंणणी	१-२
आलोयणारिहाइमं	३०-३१	आहण्व सवणं लळुं	३-६	इविकक्कभगवहणे	१०-१४
आलोयलोले समुवेइ मण्णुं	३२-२६	आहरितु पणामए ?	१६-७६	इक्खारायवसमो	१८-३६
आबई बहमूलिया	७-१७	आहाकम्मेहि गच्छई	३-३	इक्खो तसा तिबिहा	३६-१०७
आबजई इन्दियचोरवस्से	३२-१०४	आहाकम्मेहि गच्छन्तो	५-१३	इक्खो यावरा तिबिहा	३६-६६, १०६
आबजई एकमगेगक्खे	३२-१०३	आहारं उवहि देहं	२४-१५	इच्छं निओइउं भन्ते !	२६-६
आवन्ना दीहमद्धानं	६-१२	आहारक्खेओ य दोमु वि	३०-१२	इच्छन्तो हियमण्णो	१-६
आवरणिजाणं दुण्हं पि	३३-२०	आहारपच्छन्नाणेणं भन्ते ! जीवे किं...		इच्छा उ आगाससमा अणत्तिया	६-४८
आवाए चैव संलोए	२४-१६		२६ सू० ३६	इच्छाकामं व लोभं व	३५-३
आवायमसंलोए	२४-१६	आहारमिच्छे मियमसजिज्जं	३२-४	इच्छाकारो य छट्ठओ	२६-३
आवासाइं असत्तिओ	५-२६	आहारदे अमिक्खणं	१७-१५, १६	इच्छाकारो य सारणे	२६-६
आवी वा जइ वा रहस्से	१-१७	आहारेइ तवं बरे	३६-२५५	इच्छामि अणुसासिउं	२०-५६
आसं विज्जइत्ताणं	१८-८	आहारोवहिसेजाए	२४-११	इच्छामो नाउं भवओ सगासे	१२-४५
				इच्छियमणोवहे तुरियं	२२-२५

इष्टा रामकेसवा	२२-२	इमं वि लोए ऋतुवा परत्या	४-५	इह कामगुणेहि मुष्णिया	१०-२०
इष्टिं वितं च मिते य	१६-८७	इमं वक्कं उदाहरे	२२-३६	इह कामगिण्टुस्स	७-२६
इष्टीगारमिए एगे	२७-६	इमं वयं वेयविको वयन्ति	१४-८	इह कामगिण्टुस्स	७-२५
इष्टी जुं जसो वण्णो	७-२७	इमं वयममब्बवी	६-६; १२-५; १३-४; १६-६; २५-१०	इह जीविए राय ! असासयम्मि	१३-२१
इष्टी वरुं तस्स वि य प्पभूया	१३-११	इमं सरीरं वणिच्चं	१६-१२	इह जीवियं वणवकंलमाणो	१२-२२
इष्टी वावि तवस्सणो	२-४४	इमाइ वयणाइमुदाहरित्या	१२-८	इहजीवियं वणियमेत्ता	८-१४
इष्टीसककारसम्माणं	३५-१८	इमा वा सा व केरिसी ?	१३-११	इहमेण उ मलन्ति	६-८
इणमुदाहु कयंजली	२०-४४; २५-३५	इमा वा सा व केरिसी ?	२३-११	इह लोए निप्पिवासस्स	१६-४४
इत्तिरिया मरणकाले	३०-६	इमाहि महुराहि वगूहि	६-४५	इहागण्छक कुमारो	२२-८
इत्तिरिया सावकंसा	३०-६	इमा ह अन्ना वि अणाहया निवा!	२०-३८	इहेव पोसहरओ	६-४२
इत्तो उ तसे तिभिहे	३६-१०६	इमे खलु ते धैरेहि भगवन्तेहि	१६-१०३		
इत्ता कालविभागं तु	३६-११, ७८, १११, १२०, १८६, २१७	इमे ते खलु बावीसं परोसहा०	२१-३	ईसाणम्मि जह्ण्णेणं	३६-२२३
इत्तो जीवविभत्ति	३६-४७	इमेण कम्मजोणेण	३६-२५०	ईसीपवभारतामा उ	३६-५७
इत्थोजणस्सारिवभाणभोग्ग	३२-१५	इमे य बद्धा फन्दन्ति	१४-४५	ईहई नरयादयं	७-४
इत्थोण वित्तसि निवेसइत्ता	३२-१५	इमे वि से नत्थि परं वि लोए	२०-४६		
इत्थोपमुत्तिवजिए	३०-२८	इमे संगे वियाणिज्जा	३५-२	उ	
इत्थी पुरिससिद्धा य	३६-४६	इमोषम्मो व केरिस्सो ?	२३-११	उक्कतो य अणगसो	१६-६२
इत्थी वा पुरिसो वा	३०-२२	इय वेविज्जगा मुरा	३६-१२४	उक्कलियामण्डलिया	३६-११८
इत्थी विण्णजहे वणगारे	८-१६	इय जे मरन्ति जीवा	३६-२५७, २५८, २५६	उक्कलुदेहिया तहा	३६-१३७
इत्थी विसयगिठे य	७-६	इयरो वि गुणसमिद्धो	२०-६०	उक्का विज्जू य वोद्धव्वा	३६-११०
इत्थीहि वणमिडुए	३५-७	इरिएवणभासाए	१२-२	उक्कुद्द उप्पिह्वई	२७-५
इवगोवगमाईया	३६-१३६	इरियट्ठाए य संजमट्ठाए	२६-३२	उक्कोसं जीवो उ सवसे	१०-४, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
इव्वासिणसमा घोरा	२०-२१	इरियाए भासाए तहेसणाए	२०-४०	उक्कोसा ता उ समयमग्गहिया	३४-४६, ५०,
इन्दियग्गामनिग्गाही	२५-२	इरियाभासेसणादाणे	२४-२	५४, ५५	
इन्दियण्ये विवजित्ता	२४-८	इमि पसाएइ सभारियाओ	१२-३०	उक्कोसा सागरा उ पुण्डुइहिया	३४-५२
इन्दियमाण य जुंणेणे	२४-२४	इत्तिज्जकं जीविय बहूइत्ता	२०-४३	उक्कोसा होइ किप्पाए	३४-४८
इन्दियाणि उ भिक्खुस्स	३५-५	इत्तिस्स वेयावडियट्ठयाए	१२-२४	उक्कोसा होइ ठिई	३४-३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९
इमं एयारिस्सं फलं	१३-२६	इसीहि विण्णाइ महायसेहि	२१-४२२	उक्कोसा होइ पुण्णकोडी उ	३४-४६
इमं गिहं चित्तवणपभूयं	१३-१३	इस्सरियं केवलं हिच्चा	१८-३५	उक्कोसिया ठिई होइ	३३-१६
इमं च मे अरिय इमं च नत्थि	१४-१५	इस्सावमरित्तवत्तवो	३४-२३	उक्कोसेण उ साहिओ	३६-१६२
इमं च मे अरिय पभूयमन्	१२-३५	इहज्जन्तेस्स सणो म्हि जाओ	१३-१२	उक्कोसेण ठिई अवे	३६-२१६, २२०, २२४, २२५
इमं च मे किच्चा इमं वणिच्चं	१४-१५	इहं तु कम्माइ 'पुरेकडाइ'	१३-१६		
इमं देहं समुच्चरे	६-१३	इहं बोमिदं वड्डसाणं	६-४६		
इमं पट्ठमुदाहरे	५-१	इहं सि उत्तमो भते!	६-५८	उक्कोसेण तु साहिया	३६-१८५

अककोसेन विषादिया	३३-२२; ३६-११३,	उत्तमसं व पीछई	२०-२१	उरगो मुक्कणपासे व	१४-४७
१३२, १४१, १४१, १४० से	१६६, १७५,	उत्तमं मणहारिणो	२५-१७	उराला व तस्ता नहा	३६-१०७
१७६, १८४, २००, २०१, २२२, २२३		उत्तमदुगबेसए	११-३२	उल्लंघनपल्लंघणे	२४-२४
उत्तकोसेन सटं भवे	५-३	उत्तमदुगबेसओ	२५-६	उल्लंघणे व ऋण्ड व	१७-८
उत्तकोसोमाहणाए व	३६-५०, ५३	उत्तमधम्मसुई हु कुल्लहा	१०-१८	उल्लिओ फालिओ गहिओ	१६-६४
उत्तमो लीणसंसारो	२३-७८	उत्तराई विमोहाई	५-२६	उल्लो मुको व दो छुडा	२५-४०
उत्तमो विमलो माणू	२३-७६	उत्तराओ व आहिया	३३-१६	उल्लट्टो जो परेण षट्ठई	२८-१६
उत्तं तव चरित्तानो	२२-४८	उत्ताणमद्वलपसठिया व	३६-६०	उल्लउत्ते हरियं रिए	२४-८
उत्तम महवधं वध्मं	१६-२८	उत्तिट्ठो दिवाये	११-२४	उल्लउत्ते व भावओ	२४-७
उत्तमप्यायणं पठमे	२४-१२	उटएण सोहि वहिया विमगहा ?	१२-३८	उल्लएसरइ तित नायओ	२८-१६
उत्तमा जहा धरिज्जन्ति	३०-२७	उटए अब तेस्वविन्दु	२८-२२	उल्लक्खंडंभोगण माहणाणं	१२-११
उत्तमं अट्ठविहं होइ	३३-१४	उत्तमागग्निस्तवो महमो	१३-३५	उल्लविट्ठो गुरुं मया	१-२०
उत्तमं नोय च आहिंसं	३३-१४	उत्तमो बुपहसए	११-२०	उल्लविट्ठो सिं सामणे	२०-८
उत्तमागोय व वण्णव	३-१८	उत्तमो अक्खआए	११-३०	उल्लविट्ठो मे आरिया	२०-२२
उत्तमा वामवर्ण	२४-१५	उत्तमो सग्नितामाणं	३३-१६, ११, २३	उल्लविज्जई जीवियमपमयामं	१३-२६
उत्तमावर्गमिणु य	१२-२	उत्तमिणवल्लभाणे	१८-१	उल्लभोगे वोरिए तहा	३३-१५
उत्तमारार्त्ति वोरिये	२४-१८	उत्तमायणो पव्वइओ	१८-४७	उत्तमा अस्स मत्थि उ	३६-६६
उत्तमा समिई इय	२४-२	उत्तमियं कोयगट निपाय	२०-४७	उत्तमिआउत्तमिआ चव	३६-२१४
उत्तमावयादं गुणियो चरत्ति	१०-१५	उत्तमिमु दसाठण	३१-१७	उत्तमिआमाउत्तमिआ तहा	३६-२१४
उत्तमावयाहि मेउज्जाहि	२-२२	उत्तमुक्कामेण समुल्लाल	३२-६	उत्तमिआहेट्ठिआ चव	३६-२१४
उत्तमायए महु कक्के य वम्मे	१३-१३	उत्तमिआ समुल्लय	२३-४६	उत्तमिओ होइ भोगेमु	२५-३६
उत्तमिहिला पलायए	२७-७	उत्तमिआ तय वहु कुमारा	१२-१६	उत्तमं मिला व लोण्णे	३६-७३
उत्तमिणं नत्तणोवमं	२०-३	उत्तमिज्जई भोत्तुं तहेव पाउ	१७-२	उत्तमज्जति आमुने काण	८-१४
उत्तमिणं मणोरमे	२४-३	उत्तमिणो रक्खणसन्निओगे	३२-२८, ४१, ५४,	उत्तमलो पउमग्ग्माओ	१३-१
उत्तमिणं संपत्तो	२२-२३		६७, ८०, ६३	उत्तमलो माणुसंमि लोणमि	६-१
उत्तमिआ अन्नमासणं	२-२१	‘उत्तमिमुदुट्ठवाई’ य	३४-२६	उत्तमहु पिरोकरणे	२८-३१
उत्तमि अहे य तिरिय च	३६-५०	उत्तमो अस्सिया भवे	२८-६	उत्तमग्ग्माभिआए	२-२२
उत्तमि कप्पेमु चिट्ठन्ति	३-१५	उत्तमो केसिगोयमा	२३-१४	उत्तमन्तमाहणिओ	६-१
उत्तमिं पिणं अतुरियं	२६-२४	उत्तमो नत्तिपोसेणं	११-१७	उत्तमन्ते अविहेइए म भिवक्	१५-१५
उत्तमि पक्कमई दिंसं	३-१३; १६-८२	उत्तमो नित्तणा सोहन्ति	२३-१८	उत्तमन्ते जिहन्दिआ	३४-३०-२२
उत्तमिओ अहोसिरो	१६-४६	उत्तमो वि तय विहरिमु	२३-६	उत्तमन्ते मुणो वणे	१२-५
उत्तमिं बट्ठो अवन्थो	१६-५१	उत्तमो सीससणाणं	२३-१०	उत्तमहसिआ अणारिया	१२-४
उत्तमिमुने निगयजीहन्ते	१२-२६	उत्तमस्यस्तरणे वा	१-२५	उत्तमिपक्कवक्कणाणे भन्ते ! जीवे कि जणयद ?	
उत्तमिपत्ततो संपत्तो	१६-६०	उत्तमत्तो अब महि वरे ?	१८-५१	उत्तमसणाणं पडिमासु	२६५० ३५
उत्तमिहन्ते मेहावी	२-६	उत्तमं मे परिचिबई	२०-२८	उत्तमिओ भोगा पुरिसं वणं	३१-११

उवेह ठाणं बिजलुत्तं पुषं	२०-५२	एसि संवरं वेब	३३-२५	एगन्तरत्ते रुहरसि फासे	३२-७८
उवेह दुक्कोहपरंपराओ	३२-३३, ४६, ५६, ७२, ८५, ८८	एएहिं चउहिं ठाणेहिं	१८-२३	एगन्तरत्ते रुहरसि भावे	३२-६१
उवेहिं माणुसं जोणि	३-१६, ७-२०	एएहिं ओमबरओ	३०-२४	एगन्तरत्ते रुहरसि रुवे	३२-२६
उवेहमाणो उ परिमएजा	२१-१५	एएहिं कारोहिं	३६-२६६	एगन्तरत्ते रुहरसि सदे	३२-३६
उवेहे न हुणे पाणे	२-११	एओवमा कामगुणा विबागे	३२-२०	एगन्तरत्ते रुहरे रसम्मि	३२-६५
उसिणपरियावेणं	२-८	एककारस अंगाई	२८-२३	एगन्तरमायां	३६-२५३
उस्सिचणाए तवणाए	३०-५	एक्केवका गेगहा अवे	३६-१८१	एगन्तसोक्कं समुवेह मोक्कं	३२-२
उमुयारि ति मे सुयं	१४-४८	एक्को वि पावाड विवज्जयन्तो	३२-५	एगन्ते संजयं तयं	२२-३५
उस्सपिणीण जे समय	३४-३३	एक्को सयं पच्चण्होइ दुक्कं	१३-२३	एगया अजिए सत्तू	२३-३८
उस्सुल्लसयन्पीओ	६-१८	एक्को हु धम्मो नरवेव ! ताणं	१४-४०	एगमुओ अरणो वा	१६-७७
उत्तेहो जस्स ओ होइ	३६-६४	एग एव चरे लाहे	२-१८	एगया ज्वेल ए होइ	२-१३
ऊ		एगओ य पवत्तणं	३१-२	एगया आमुनं कायं	३-३
ऊणाइ धासमेसन्तो	३०-२१	एगओ विरट कुज्जा	३१-२	एगया ल्खिओ होइ	३-४
ऊगे बासमाउए	७-१३	एगओ संवसित्ताणं	१४-२६	एगया देबलोएमु	३-३
ऊससियरोमकूओ	२०-५६	एयं च अणुतामम्मी	२७-१०	एगरायं न हावए	५-२३
ए		एयं च पल्लिओवम	३६-२२२	एगबिहमगाणत्ता	३६-७७, ८६, १००, ११०, ११६
एए अहम्मे ति दुग्गुमाणो	४-१३	एयं जिणेज्ज अपाणं	६-३४	एगबीसाए सबलेमु	३१-१५
एए कन्दन्ति ओ! लया	६-१०	एयं डसइ पुच्छमि	२७-४	एगामोसा अणेगरुवण्णा	२६-२७
एए लरपुडबीए	३६-७७	एयं तु सागरोवमं	३६-१६१	एगा य पुव्वकोडीओ	३६-१७५
एए वेब उ मावे	२८-१६	एयं विन्धइअमिल्लणं	२७-४	एगाणणपण्णोरत्ता	३६-१४१
एएण कारणेणं	३६-२६२	एयं समयं जहन्मियं	३६-१४	एगेज्ज रसगारये	२७-६
एएण दुक्कोहपरंपरेण	३२-३४, ४७, ६०, ७३, ८६, ८८	एयं समयं जहन्मिया	३६-१३	एगे ओमाणबीषए धडे	२७-१०
एए तिन्नि विसोहाए	२४-११	एगकज्जपवन्नाणं	२३-१३, २४, ३०	एगे कूहाय गच्छई	५-५
एए नरिउवसभा	१८-४६	एगलुरा दुवररा वेब	३६-१८०	एगे जिए जिया पंच	२३-३६
एए परीसहा सव्वे	२-४६	एगममणमनिवेसगयाए णं भन्ते !	२६-२०६	एगेण अणेगाई	२८-२२
एए पाउकरे बुडे	२५-३२	एगच्छत्तं पसा हित्ता	१८-४२	एगे तिण्णो दुक्कलं	५-१
एए भट्टा उ पाणिओ	२२-१७	एगत्तं च पुहत्तं च	२८-१३	एगे मुचिरकोहणे	२७-६
एए य सगे समडक्कमिता	३२-१८	एगतेण पुहत्तेण	३६-११	एगोत्थ लहई लाह	७-१४
एए विसेसमादाय	१८-५१	एगतेण साईया	३६-६५	एगो उपपहपट्ठिओ	२७-४
एए सव्वे सुहेसिणो	२२-१६	एगदव्वहिसया गणा	२८-६	एगो एगिरिया सद्धिं	१-२६
एएसि तु विवच्चासे	३०-४	एगन्तमाणाए	३०-२८	एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा	१-३३
एएसि वण्णो वेब	३६-८३, ८१, १०५, ११६, १२५, १३५, १४४, १६६, १७८, १८७, १९४, २०३, २४७	एगन्तमणुप्पमओ	६-१६	एगो पडह पासेणं	२७-५
		एगन्तमहिट्ठिओ भयवं	६-४	एगो अजइ वमिल्लं	२७-४
		एगन्तरत्ते रुहरसि गम्मे	३२-५२	एगो मूलं वि हास्सित्ता	७-१५

एतो मूलैः आगबो	७-१४	एयमगमगुपत्ता	२८-३	एय गुणसमावृत्ता	२५-३३
एतोऽन्तगुणं तर्हि	१६-४८	एय मे संसयं सव्यं	२५-१५	एयं च चित्तवृत्ताणं	२०-३३
एतो अन्तगुणिना	१६-७३	एयं विषाणं कुसलेहि विट्ठं	१२-४७	एयं चरमाणो लब्ध	३०-२०, २३
एतोऽन्तगुणे तर्हि	१६-४७	एयचोगममावृत्तो	३४-२२, २४, २६, २८,	एयं त्रियं सपेहाए	७-१६
एतो कालविभागं तु	३६-१५८, १७३, १८२		३०, ३२	एयं तत्प्राहिय्यासए	२-२३
एतो एषहाए पररणं	३४-१४	एयमट्ठं निःसामिता	६-८, ११, १३, १७, १८,	एयं तत्प्रा चित्तिए	२६-५०
एतो य तवो गुत्तीओ	२४-१६	२३, २५, २७, २८, ३१, ३३, ३७, ३८, ४१, ४३,		एयं तव तु दुविहं	३०-३७
एतो वि अणन्तगुणो	३४-१०, ११, १२, १३,	४५, ४७, ५०, ५२ ।		एयं ताय ! विषाणह	१४-२३
	१५, १६, १७, १८, १९	एयमट्ठं सपेहाए	६-४	एयं तु नवविगयं	३३-६
एतो सकाममरणं	५-१७	एयमट्ठं सुणोमि ता	२०-८	एयं तु संय्यस्सावि	३०-६
एमेव असायस्स वि	३३-७	एयादं अट्ठं ठाणादं	२४-१०	एयं तु संसए छिन्ने	२३-८६, २५-३४
एमेव असुहस्स वि	३३-१३	एयादं तीसे बयणाह सोच्चा	१२-२४	एयं ते इन्द्रिमन्तस्स	२०-१०
एमेवज्जाणन्दकुसिलक्खे	२०-५०	एसाए मद्धाए दलाह मज्जं	१२-१२	एयं ते कमसो बुद्धा	१४-५१
एमेव इत्थो निलयस्स मज्जे	३२-१३	एयाओ अट्ठं समिहंओ	२४-३	एयं ते रामकेमवा	२२-२७
एमेव गम्भमि गओ पओसं	३२-५६	एयाओ निमि पयडोओ	३३-६	एयं धुणित्ताण स रायसीहो	२०-५८
एमेए जाया पयहन्ति भोए	१४-३४	एयाओ दुग्गईओ	३६-२५६	एयं दव्वेण क भवे	३०-१५
एमेव जाया ! सरीरसि सत्ता	१४-१८	एयाओ वंभं समिहंओ	२४-१६, २६	एयं दुपंचसजुत्ता	२६-७
एमेव जल्लह ति य	२८-१८	एयाओ मूलपयडीओ	३३-१६	एयं दुस्सीलपडिणीए	१-४
एमेव कासमि गओ पओसं	३२-८५	एयाणि वि न तायन्ति	५-२१	एयं धम्मं अकाऊणं	१६-१६
एमेव भावमि गओ पओसं	३२-८८	एया पववणमाया	२४-२७	एयं धम्मं चरित्तामि	१६-७७
एमेव मोहाययणं खु तहं	३२-६	एया रिसीए इहडोए	२२-१३	एयं धम्मं पि काऊणं	१६-२१
एमेव रसमि गओ पओसं	३२-७२	एयारिसि पंचकुसीलसंबुद्धे	१४-२०	एयं धम्मं विडवकम्म	५-१५
एमेव रुद्धमि गओ पओसं	३२-३३	एयाहि तिहि वि ओओ	३४-५६	एयं धम्मं विषाणह	७-१५
एमेव सट्ठमि गओ पओसं	३२-४६	एरिसि समययगम्मि	२०-१५	एयं नन्वा न सेवन्ति	२-३५
एयं अकाममरणं	५-१७	एयं अणित्सरो तं पि	२२-४५	एयं नाणेण चरणेण	१६-६४
एयं चवर्तितकरं	२८-३३	एयं अवत्ताणि समाययन्तो	३२-३१, ४४, ५७,	एयं नीयं पि आहियं	३३-१४
एयं जीवस्स लक्खणं	२८-११		७०, ८३, ८६	एयं पया पेक्ख इह लोए	४-३
एयं डण्डह मन्दिरं	६-१२	एयं अभियुणन्तो	६-५६	एयं पि बिहुरो मे	२-४३
एयं तव तु दुविहं	३०-३७	एयं अलितो कामेहि	२५-२६	एयं पुत्ता ! अहामुहं	१६-८४
एयं दव्वेण फलेण हन्ता	१२-१८	एयं आयरिएहि अक्खायं	८-१३	एयं पेहेज्जं सजए	२-२७
एयं धम्महियं तच्चा	२-१३	एयं करन्ति संबुद्धा	१६-६६	एयं बाले अहम्मिट्ठे	७-४
एयं वंभविहं नाणं	२८-५	एयं करन्ति संबुद्धा	६-६२, २२-४६	एयं भवसंसारं	१०-१५
एयं पत्थं महाराय !	१४-४८	एयं कालेण क भवे	३०-२१	एयं भुत्ताण भोगाणं	१६-१७
एयं परिणाय चरन्ति दन्ता	१२-४१	एयं खु तस्स सामण्यं	२-३३	एयं मणुषाण जीवियं	१०-१, २
एयं पुण्यपयं सोच्चा	१८-३४	एयं सेतेण क भवे	३०-१८	एयं माणुस्सगा कामा	७-१२, २३

एवं मृगो गोययि पविट्टे	१६-८३	एषणासमिधो लज्ज	६-१६	ओहिमाणं तदयं	३३-४
एवं मे अश्विषेयण	२०-२०	एष धम्मे धुवे निब्रए	१६-१७	ओहिमाणमुए धुवे	२३-३
एवं लगन्ति दुम्मेहा	२५-४१	एष मग्गो त्ति पन्नतो	२८-२	ओहीमाणं तदयं	२८-४
एवं लोए पलित्तिमि	१६-२३	एष मग्गे हि उत्तमे	२३-६३	ओहेण तिई उ वणिग्गा होह	३४-४०
एवं वयं कामगुणमु विद्धा	१३-३०	एष लोए विद्याहिए	३६-२	ओहोवहवग्गहिंयं	२४-१३
एवं विग्गयजुत्तस्स	१-२३	एष लोमो त्ति पन्नतो	२८-७	क	
एवं विद्याणाहि जणे एमने	४-१	एष से परमो जओ	६-३४	कओ विज्जाणुसासणं ?	६-१०
एवं विद्यारे अमियय्यारे	३०-१०४	एसा अजीवविमत्ती	३६-४७	कले गुणे जाव सरीरमेओ	४-१३
एवंविहे कामगुणमु सत्तो	३२-१०३	एसा खलु लेमाणं	३४-४०	कच्चि नाभिसमेमज्ज	२०-६
एवं वृत्तो नरिन्दो सो	२०-१३	एसा तिरियतराणं	३४-४७	कसं दूत व वाहणं	६-४६
एवं समुट्ठिओ भिक्खु	१६-८२	एसा दसमा साहणं	२६-४	कन्तलडा मउया चंव	३६-१६
एवं ससकपविकप्यणासु	३२-१०७	एसा नेरइयाणं	३४-४४	कट्टु संबच्छरे दुवे	३६-२५३
एवं सिक्खसमावन्ने	५-२४	एसा मज्ज अणायया	२०-२३, २४, २५, २६,	कट्टु संबच्छरे मणो	३६-२५५
एवं सीलं चहत्ताणं	१-५		२७, ३०	कडं कडं त्ति भासेज्जा	१-११
एवं से विजयपोसे	२५-४२	एसा सामायारी	२६-५२	कड लद्धण भक्खए	६-१४
एव से उदाहु अणुत्तरताणी	६-१७	एमे व धम्मो वित्तओववन्तो	२०-४४	कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि	४-३, १३-१०
एव सो अम्मापियरो	१६-८६	एमा अविमत्तो तवो	३०-३०	कड्ढोकड्ढाहि दुक्कए	१६-५२
एवं हवइ वहुम्मए	११-१६ से ३०	एसो वाहरिगतवो	३०-२६	कणकुण्डां चडनाणं	१-५
एवमहीणवं भिक्खु	७-२०	एसोवमा सासयवाइयाणं	४-६	कण्डम्मि पेतण खलेज्ज जो ण ?	१२-१८
एवमवगतरो तवो	२८-३४, ३०-७	एसो हु सो उगतवो महाप्पा	१२-२२	कण्ण विहिंसा अजया एहिंनि	४-१
एवमस्तासि ज्ञाप्याणं	२-४१	एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खु !	१२-४३	कण्ठे य वज्जकन्दे य	३६-६८
एवमादाय मेहावी	२-१७	एहि ता भुजिमो भोए	२२-३८	कत्तारमेवं अणुज्जाइ कम्म	१३-२३
एवमावट्टुजोणीसु	३-५	ओ		कत्तो मुहं होज्ज कयाइ किं ?	३२-३२,
एवमेए दुहा पुणो	३६-७०, ८४, ६२,	ओइणो उत्तमाओ सोयाओ	२२-२३	४५, ५८, ७१, ८४, ८७	
	१०८, ११७	ओइणो पावकम्मणा	१६-५५	कत्थ गन्तुं सिज्जमई ?	३६-५५
एवमेयं जहाकुड	१६-४४, ७६	ओइणो सि एह महाक्क	१०-३२	कत्तारं अडवमई	२७-२
एवमेयाइ कम्माइ	३३-३	ओभासई सूरिए वल्लिकव्वे	२१-२३	कन्दतो कन्दुकुम्भोसु	१६-४६
एवमेव अणेणओ	१६-८२	ओमवेलए वसुमिस्सायभूए	१२-६	कन्दणं भावण कुण्ड	३६-२६३
एवमेव वयं मुट्ठा	१४-४३	ओमवेलणा वसुमिस्सायभूया	१२-७	कन्दयकोक्कुडयाइ तह	३६-२६६
एवमेव विद्याहिए	३६-६	ओमासणाणं दमिइदिवाणं	३२-१२	कन्दयमाभिओम	३६-२५६
एवारिएहि अवज्जायं	८-८	ओमोवरियं ववहा	३०-१४	कन्दली य कुहुं वए	३६-६७
एविन्दियमो वि पवामभोइणो	३२-११	ओयणं जवसं देज्जा	७-१	कन्दे सूरणए तहा	३६-६८
एविन्दियत्था य मणस्त अत्था	३२-१००	ओराला तत्ता जे उ	३६-१२६	कण्ड उ एवमाई	३०-१८
एवुगन्दे वि महातवोषणे	२०-५३	ओत्तममाणा परिरेक्खियत्ता	१४-२०	कणं न दक्खिज्ज सहायसिक्खु	३२-१०४
एव अणो य वाऊ य	६-१२	ओहिजलिया जलकारी य	३६-१४८	कण्णिया उ जे देवा	३६-११२

कपाईया तहेव य	३६-२०६	कयरेण होमेण णुणासि जोहं ?	१२-४३	कहं पडियरसी बुद्धे ?	१८-२१
कपासट्ठिजिजा य	३६-१३८	कयरे ते खलु बावीसं परीसहा...	२६०-२	कहं पारं गमिस्सति ?	२३-७०
कप्पिओ कालिओ छिन्नो	१६-६२	कयरे तुमं इय अदसणिज्जे	१२-७	कहं विज्जाविद्या तुमे ?	२३-५०
कप्पो मज्झिमाणां तु	२३-२७	कयविककओ महादोसो	३५-१५	कहं विणोए ति बुद्धसि ?	१८-२१
कप्पोवणा बारसहा	३६-११०	कयविककयम्मि वट्टत्तो	३५-१४	कहं विप्पखओ न ते ?	२३-२४, ३०
कप्पोवणा य बोद्धव्या	३६-२०६	करकण्डू कलिमु	१८-४५	कहं सुवट्ठं कुसला वयन्ति ?	१२-४०
कमेण अचन्तसुहो भवन्ति	३२-१११	करणसक्केणं भन्ते ! जीवे किं	२६६०५२	कहणु चिक्खेलिक्कं	७-२२
कमेण सोसणा भवे	३०-५	करवत्तकरकयाईहि	१६-५१	कहिं पडिहया सिद्धा ?	३६-५५
कप्पित्तम्मि य नयरे	१३-३	करेज सिद्धाना संयवं	२६-५१	कहिं बोदिं वइत्ताणं ?	६६-५५
कप्पित्तुज्जाणकसरे	१८-३	करेणुसगावहिए व नागे	३२-८६	कहिं मन्नेरिजं क्वं	१६-६
कप्पित्तले नयरे राया	१८-१	करेत्ति भिउडि मुहे	२७-१३	कहिति ष्ठाओ व रय जहासि ?	१२-४५
कप्पित्तले संसुओ	१३-२	कलं अम्मइ सालसि	६-४४	कहिं सिद्धा पडिट्ठया ?	३६-५५
कम्मं व जाईमरणस्स मूलं	३२-७	कलम्बवापुथाए य	१६-१०	कहेत्ति ते एक्कमेक्कस्स	१३-३
कम्मं व मोहप्पभवं वयन्ति	३२-७	कलहडमरवज्जए	११-१३	का	
कम्म तु कसायजं	३३-११	कल्लाणं अदुव पावगं	२-२३	काउलेसं तु पारिणमे	३४-२६
कम्मं सोकसायजं	३३-११	कल्लाणमणासन्तो	१-३८	काउलेसा उ वण्णओ	३४-६
कम्म एहा सज्जमोगसन्तो	१२-४४	कल्लिणं व विमुद्धपन्तेणं	८-२०	काउलसमां तओ कुजा	२६-३८, ४१, ४६, ४८
कम्मपवीओ अवसो पयाइ	१३-२४	कमं व दट्ठुत्ताण्णो	११-२	काउलसमां तु पारित्ता	२६-५०
कम्मसंभिदिं सम्मूढा	३-६	कसायपक्कवक्खणिणं भन्ते ! जीवे...	२६६०३७	काउलसमेणं भन्ते ! जीवे	
कम्माप्पा हु पाणिणो	७-२०	‘कसायमोहणिज्जं’ तु	३३-१०	किं जणयइ ?	२६६०१३
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले	४-४	कसाया अमिणो वृत्ता	२३-५३	काऊण ठिई जहन्निया होइ	३४-४१
कम्माणं तु पहाणाए	३५७	कसाया इन्द्रियाणं य	२३-३८	काऊण य पयाहिणं	२०-७, ५६
कम्माणि दलवन्ति हु	२५-२८	कसिणं पि जो इयं लोयं	८-१६	काएण कामेज परीसहाइ	२१-२२
कम्माणुपेहि अण्यो	५-११	कस्स अट्ठा “इमे पाणा”	२२-१६	काए व आसा दहमागओ सि	१२-७
कम्माणापफला कडा	२-४०	कस्सट्ठाए व माहणे ?	१८-२१	काणणुज्जाणसोहिए	१६-१
कम्मा नाणाविहा कट्टु	३-२	कस्स हेव’ पुराकाउ’	७-२४	का ते मुया ? किं व ते कारिसं	१२-४३
कम्मा नियाणयगहा	१३-८	कहं अणाहो भवइ ?	१२-१५	कामं तु देवीहि विमुत्तिव्याहिं	३२-१६
कम्मा एव पुरा कडा	१३-६	कहं चरे ? भिक्खु ! वयं जयामो ?	२०-१०	कामसिद्धे जहा बाले	५-४
कम्मुणा उववायए	१-४३	कहं तं बिहरसी ? मुणी !	२३-४०	कामजोगरस्सुणा	१६-२८
कम्मुणा तेण संजुत्तो	१८-१७	कहं तेण न हीरसि ?	२३-५५	कामजोगराएणां	५-७
कम्मुणा बम्भओ होइ	२५-३१	कहं ते जिज्जा तुमे ?	२३-३५	कामजोगा य दुज्जया	१६-१३
कम्मुणा होइ लत्तिओ	२५-३१	कहं बीरे अहेऊहि	१८-५३	कामजोगे परिचज	१८-४८
कयकोयसंयलो	२२-६	कहं बीरो अहेऊहि	१८-५१	कामजोगे य मुच्चए	१४-४६
कयरे आगण्णइ विलक्खे	१२-६	कहं माहो न भिज्जइ ?	२०-१०	कामजोगेसु गिच्छेणं	१३-२८
कयरे खलु ते वेरेहि भगवन्तेहि	१६६०२	कहं माहो भविस्सति ?	२०-१२	कामजोगेसु मुच्छिओ	१३-२६

कामभोगेयु मुच्छिया	१४-४३	कालं तु पडिलेहए	२६-४४	किं नु बित्ते भि से तहा ?	१३-६
कामसमविषदडणि	१६-२	कालं तु पडिलेहिमा	२६-४४	किं पुण बिट्ठसि सीरमागबो	१०-३४
कामरागविषदडणे	३४-५	कालं संसाईयं	१०-५,६,७,८	किं मज्जम दुट्ठसीसेहिं	२७-१५
कामरुक्खविषयिणो	३-१५	कालं संखिज्जसन्नियं	१०-१०,११,१२	किं माहणा ! जोइसमारभन्ता	१२-३८
कामरुक्खी भविस्ससि	६-५	कालं संपडिलेहए	२६-४२	किं रज्जिम पसज्जसि ?	१८-१२
कामा भासीविसोवमा	६-५३	कालकंखी परिब्बए	६-१४	किं हित्ताए पसज्जसि ?	१८-११
कामाणुमिद्विम्भसवं सु दुक्खं	३२-१६	कालधम्मो उब्बट्ठिए	३५-२०	किच्चाई कुब्बई सया	१-४४
कामे पत्थेमाणा	६-५३	कालपडिलेहणयाए णं		किणत्तो कइवो होइ	३५-१४
कामे संसारवडुणे	१४-४७	अन्ते ! जीवे कि...	२६६०१६	किण्णु भो ! अज मिहिलाए	६-७
कायं पवतमाणं तु	२४-२५	कालमणत्तदुग्गं	१०-६	किण्णुल्लं तु परिणमे	३४-२२
कायकिल्लं तमाहिंय	३०-२७	कालमणत्तमुक्कोसं	३६-१६	किण्णुल्लेसा उ बण्णवो	३४-४
कायकिल्लं सलीणया य	३०-८	कालम्मि तम्मिंसहरा भवंति	१३-२२	किण्णुहा डिई जहन्निया होई	३४-४८
कायगत्ययाए णं अन्ते ! जीवे कि...	२६६०५६	कालिया जे अणागया	५-६	किण्णुहा नीला काज	३४-३
कायगुत्ती य अट्ठमा	२४-२	कालीपव्वंगसकासे	२-३	किण्णुहा नीला य काज य	३४-३
कायगुत्तो जिह्णिवो	१२-३	काले कालं समायरे	१-३१	किण्णुहा नीला य रुहिरा य	३६-७२
कायबिट्ठं वई भवे	३०-१२	कालेण कालं बिहरेज रट्ठे	२१-१४	किण्णुहा नीला य लोहिंया	३६-१६
कायट्ठिई आऊणं	३६-८६	कालेण निम्बमं भिक्खु	१-३१	किम्बित्थं भावणं कुणई	३६-२६५
कायट्ठिई अलयरानं	३६-१७६	कालेण य अहिजित्ता	१-१०	किम्बित्थं मोहमायुरत्तं च	३६-२५६
कायट्ठिई तेऊणं	३६-११४	कालेण य पडिक्कमे	१-३१	किमज जन्नाण लहिंय लाहं ?	१२-१७
कायट्ठिई यलयरानं	३६-१८६	काले य दिवसे वृत्ते	२४-५	किमिणो सोमंगला वेव	३६-१२८
कायट्ठिई मणुयाणं	३६-२०२	काले बिगराले फोक्कनासे	१२-६	किमेगरायं करिस्सह	२-२३
कायट्ठिई आऊणं	३६-१२३	कालो पुणलजन्तवो	२८-७,८	किरियं अकिरियं विणयं	१८-३३
कायट्ठिई लहयरानं	३६-१६३	कालोमाणं मुणेरवो	३०-२०	किरियं च रोयए धीरे	१८-२३
कायट्ठिई पणमाणं	३६-१०३	कालोवणीए सरीरस्स मेए	४-६	किरियासंखेवधम्मरुई	२८-१६
कायट्ठिई पुडवीणं	३६-८१	का बा अमोहा वृत्ता ?	१४-२२	किरियासु भूयगामेसु	३१-१२
कायव्वं अगिलायवो	२६-१०	का बोया जा इमा वित्ती	१६-३३	किल्लिन्नाए मेहावी	२-३६
कायसमाहारणयाए णं अन्ते!जीवे...	२६६०५६	कासवेणं पवेदया	२-१	किसे धमणिस्तए	२-३
कायहा वयसा मत्ते	५-१०	कासवेण पवेइया	२-२६		
कायस फासं गहणं वयसि	३२-७४,७५	कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि	१३-१		
कायस विउत्तसणो	३०-३६	कि कायव्वं मए इहं ?	२६-६	की	
कारणंमि समुट्ठिए	२६-३१	कि तव पडिबज्जामि	२६-५०	कीलए सइ इत्थिहिं	१६-३
कासण्णीयो हिमिमे बइस्से	३२-१७३	कि ते जुज्जमं बज्जमो	६-३५	कीलन्तज्जे नरा रायं !	१८-१६
काळो जाय दीएजा	२४-७	किं नाम काहामि सुएण अन्ते!	१७-२	कीवेणं समणत्तणं	१६-४०
काळो भाववो तहा	२४-६,३५-३	किं नाम होज त कम्मयं	८-१	कीस णं नावपेक्कसि ?	६-१२
कालं अणत्तमुक्कोसं	३६-३६३	किनामे ? किणोत्ते ?	१८-२१	कुडयं रुद्धं नीयं	१६-५,१२
				कुंजर सट्ठिहायणे	११-१८

कुम्हरे सिंगीरीय	३६-१४७	के ते जोई ? के ब ते जोइठाणे ?	१२-४३	कोहं च माणं च तहेच मायं	३२-१०२
कुम्हकणपसार्हिए	२२-३०	के ते हरए ? के य ते सप्तितिवे ?	१२-४५	कोहंविजएणं भन्ते ! जीवे	
कुम्हा दुक्खविमोक्कणं	२६-२१	केरिसो बा इमो घम्मो ?	२३-११	कि जणयइ ?	२६४०६८
कुट्टिओ फाल्लो छिल्लो	१६-६६	केवलं वाहिं बुज्झिअया	३-१६	कोहो बा जइ बा हासा	२५-२३
कुट्टुम्भसारं विउल्लुसं तं	१४-३७	केसं सपडिबज्जइ	५-७	कोहं माणे य मायाए	२४-६
कुणइ पमाण पमायं	२६-२७	केसलोओ य दाळ्ळो	१६-३३	कोहो य माणो य बहो य जेसि	१२-१४
कुत्तिपिनिमेष अणे	१०-१८	केसा पण्डुरया हवन्ति ते	१०-२१से२६	ख	
कुट्ठे कुमारे परिनिव्वेधे	१२-२०	केसिमेवं बुबंत्तं तु	२३-४२, ४७, ५२, ६२, ६७, ७२, ७७, ८२	खजणंजणनयणनिभा	३४-४
कुट्ठे गच्छइ पडिपहं	२७-६	केसिमेवं बुबाणं तु	२३-३१	खत्तिं सेविज्ज पण्डिए	१-६
कुट्ठे तेएण अणगारे	१८-१०	केसीकुमारसमणे	२३-२, ६, १६, १८	खज्जुरमुदियरसो	३४-१५
कुण्डुपिबीलउड्डंसा	३६-१३७	केसांगोयमखो निज्जं	२३-८८	खड्डया भं खवेडा मे	१-३८
कुण्डू-नाम नराहिबो	१८-३६	केसी गोयमब्बवी	२३-२१, २२, ३७, ४२, ४७, ५२, ५७, ६२, ९७, ७२, ७७, ८२	खणं पि म रमासज्जं	१६-१४
कुणययणपासण्ठी	२३-६३	केसी बीरपरक्खे	२३-८६	खणमेत्तसोक्खा बहुकालुक्खत्ता	१४-१३
कुपहा बहो लोए	२३-६०	को		खण्डां सोल्लाणि य	१६-६६
कुमारया ते वसमिक्ख वक्कं	१४-११	कोइ पोसेज एल्लं	७-१	खत्तिए परिभासइ	१८-२०
कुमारेहिं थयं पिब	१६-६७	कोइल्लच्छइसन्निभा	३४-६	खत्तिनयणउण्णायपुत्ता	१५-६
कुमुयं सारइयं व पाणियं	१०-२८	को करिस्सइ उज्जोयं	२३-७५	खत्ति निजणपागारं	६-२०
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा	२०-५०	को वाणइ परे लोए	५-६	खत्तिस्सोहिंकरं पयं	१-२६
कुत्तेसु दग्गेसु य ते पसुया	१४-२	कोट्ठुयं नाम उज्जाणं	२३-८	खत्तीए णं भन्ते ! जीवे कि	
कुसं व जूवं सणकट्ठमणि	१२-३६	कोट्ठागारे सुरक्खिए	११-२६	जणयइ ?	२६-४७
कुसमभेत्ता इमे काभा	७-२४	कोटीए वि न निट्ठियं	८-१७	खत्तीए मुत्तीए	२२-२६
कुसणे जह ओसविणुए	१०-२	कोटीसहियमायामं	३६-२५५	खत्तो दग्गो निरारम्भो	२०-३२, ३४
कुसणेण मुं भुजए	६-४४	को णं ताहे तिगिच्छई ?	१६-७८	खत्त्वा य खन्देसा य	३६-१०
केसवीरेण न तावतो	२५-२६	को णाम ते अणुमन्तेज्ज एयं	१४-१२	खत्त्वा य परमाणुणो	३६-११
कुसील्लिणं इह धारइत्ता	२०-४३	कोलाहलमभूयं	६-५	खमावणयाए णं भन्ते जीवे कि...	२६४०१८
कुहाडकरसुमारिहं	३६-६६	कोलाहलसंकुला	६-७	खरा छत्तोसईविहा	३६-७२
कुहया य तहेव य	३६-६८	को बा से ओसहं देई ?	१६-७६	खलुंका जारिसा ओजा	२७-८
कुहेइविजासबदारओबी	२०-४५	को बा से पुच्छई सुहं ?	१६-७६	खलुंके ओ उ जोएइ	२७-३
कू		कोहं बड्ढावइत्ताणं	६-४६	खलुंकेहिं समाभो	२७-१५
कूबन्तो कोलमुणएहिं	१६-५४	कोल्मी नाम नयरी	२०-१८	खणे य जए बुहे	३३-२५
के		को से भत्तं व "पाणं व"	१६-७६	खविता पुच्छकम्माइं	२५-४३
के एव्य सत्ता उवओइया बा	१२-१८	कोलो खवरिणो मणे	३६-६२	खवितु कम्मं गइमुत्तमं गया	११-३१
केईं बुया एणमिमाणवासी	१४-१	कोहं अल्लणं कुम्भेज्जा	६-१४	खवेइ तवसा भिक्खू	३०-१
केण अन्धाहो लोणो ?	१४-२२				
केण वा परिचारिओ ?	१४-२२				

खवेइ नाणावरणं खणेणं	३२-१०८	खेमं सिक्खमाणाहं	२३-८०	गम्भओ रसओ चेव	३६-३४ से ४६
खवेता पुष्पकम्माइ	२८-३६	खेमेण आगए अणं	२१-५	गम्भओ रसफासओ	३६-८३, ६१, १०५, ११६
खहरया य बोद्धव्वा	३६-१७१	खेलं सिंघाणजल्लयं	२४-१५	१२५, १३५, १४४, १५४, १६६, १७८, १८८	
खा		खेल्लान्ति जहा व दासिहिं	८-१८		१६४, २०३, २४७
खाइता पाणियं पाउं	१६-८१	खेयियं पासबद्धेणं	१६-५२	गम्भमल्लविलेखणं	२०-२६
खाइमसाइमं परेसि लद्धं	१५-१२			गम्भवासाण पिस्समाणाणं	३४-१७
खाए समिद्धे मुरलोगरम्मे	१४-१			गम्भस्स घाणं गहणं बयन्ति	३२-५६
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा	१४-१३	ग		गम्भाणुपासाणए य जीवे	३२-५३
खामेमि ते महाभाग !	२०-५६	गइलक्खणो उ धम्मो	२८-६	गम्भाणुरत्तस्स नरस्स एव	३२-५८
खावावो मि समसाइ	१६-६६	गई तथ्य न विउज्जई	२३-६६	गम्भाणुवाएण परिगमाहेण	३२-५४
		गहण्यहणं च तिलोयविस्सुयं	१६-६७	गम्भारेणु य नगई	१८-४५
खि		गई सरणमुत्तमं	२-६८	गम्भे अतिउत्तस्स परिगहे य	३२-५६
खियं न सक्केइ विवेगमेउ	४-१०	गठिमेए य तक्करे	६-२८	गम्भे अतित्ते य परिगहे य	३२-५५
खियं निक्खमसू दिया	२५-३८	गंढवच्छाणुज्जोगचितासु	८-१८	गम्भे अतित्ते य परिगहे य	३२-५५
खियं मयविबद्धणं	१६-७	गच्छई उ परं भवं	१८-१७	गम्भे अतित्तां दुहिओ अणिस्सो	३२-५७
खियं संपणामए	२३-१७	गच्छई मिगचारियं	१६-८१	गम्भे विरत्तो मणुओ विसोमो	३२-६०
खियं मे सव्वसंसारा	३१-२१	गच्छ कल्लाहि किमिहं ठिओसि ?	१२-७	गम्भेणु जो गिद्धिमुवइ तिब्बं	३२-५०
खियं इवइ मुचोइए	१-४४	गच्छन्ति अवसा तमं	७-१०	गम्भवक्कन्तिआ जे उ	३६-१८६
खियमागम्म सो तहिं	१-६	गच्छन्तो सो मुही होई	१६-१८, १६	गम्भवक्कन्तिआ तहा	३६-१७०, १६५
खीरदहिंसणिमाई	३०-२६	गच्छन्तो सो मुही होइ	१६-२०, २१	गम्भो आवोस्सयं कुज्जा	२६-५
खीरपूरसमयभा	३४-६	गच्छ पुत्त ! जहामुहं	१६-८५	गम्भीरे सुसमाहिए	२७-१७
खीररसो खण्डसक्कररसो वा	३४-१५	गच्छ सिमं विसोहिआ	१०-३३	गयण च उभागासावसेसंमि	२६-२०
खीरे धयं तेत्तन महातिलेमु	१४-१८	गच्छासि राय ! आमान्तिओ सि	१-३३	गयमाइ सोहमाइणी	३६-१८०
		गच्छे जक्खसलोगयं	५-२४	गयासभग्य गत्तं	१६-६१
खु		गण्ठियसलाईयं	३३-१७	गरहं नाभिगच्छई	१-४२
खुडुहि सह संसमं	१-६	गण्ठोमयसणणया	३६-१८०	गरहणयाए णं भन्ते ! जीवे कि...	२६सू०८
खुटो साहसिओ नरो	३४-२१, २४	गतभूसाणमिट्ठं च	१६-१३	गम्भा लहुया तहा	३६-१६
खुरमारहि विवाइओ	१६-५६	गम्भाणस्स भगवओ	१८-१६	गल्मिह्हे बहत्ताणं	२७-१६
खुरेहि तिलघारेहि	१६-६२	गम्भाओ परिणया जे उ	३६-१७	गल्लियस्सं च बाहए	१-३७
खे		गम्भओ फासओ चेव	३६-२६ से ३३	गलेहिं मगरजालेहिं	१६-६४
खेडे कब्बडदोगमुह	३०-१६			गवलरिट्ठण सन्निभा	३४-४
खेतं गिहं वणघनं च सव्वं	१३-२४			गवांसं मणिक्कुलं	६-५
खेतं वत्थं हिरण्यं च	३-१७, १६-१६			गवेसणाए गहणे य	२४-११
खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए	१२-१३			गहा तारागता तहा	३६-२०८
खेमं च सिवं अणुत्तरं	१०-३५			गह्णो लमो वडो य	१६-६५
खेमं सिवं अणावाहं	२३-८३				

गा

गाढा य विभाग कम्पुधो	१०-४	गुणार्ण तु महाभरो	१६-३५	गोयमो इगमब्जबी	२३-२१, २५,
गांगंगणिए दुष्मूए	१७-१७	गुणार्ण तु सहससाइं	१६-२४	३१, ३७, ४२, ४७, ५२, ५७, ६२, ६७,	
गामगए नगरे ब सणए	१०-३६	गुणाणमासओ दब्बं	२८-६	७२, ७७, ८२	
गामाणुगामं रीयत्तं	२-१४	गुणाहियं वा गुणओ समं वा	३२-५	गोयमो कालगच्छबी	२२-५
गामाणुगामं रीयत्ते	२३-३, ७, २५-२	गुणुत्तरघरो मुणी	१२-१	गोयरगणविट्ठस्स	२-२६
गामे अणियओ चरे	६-१६	गुत्तो नियत्तेषु वुत्ता	२४-२६	गोलया मदियामया	२५-४०
गामे नगरे तह रायहाणि	३०-१६	गुत्तीहि गुत्तस्स जिइन्दियस्स	१२-१७	गोशालो भण्डवालो वा	२२-४५
गामे वा नगरे वावि	२-१८	गुत्तो लोहभारो ज्व	१६-३५	गोहाई अहिमाई य	३६-१८१
गामं नो परिसिञ्ज्या	२-६	गुत्तं वन्दितु सज्जायं	१६-२१	घ	
गारथा संजमुत्तरा	५-२०	गुत्तरिभाजए निच्चं	१७-१०	घणमुंजा सुद्धवाया य	३६-११८
गारत्थेहि य सज्जेहिं	५-२०	गुत्तमत्तिभाकमुत्तुसा	३०-३२	घणो य तह होइ वगो य	३०-१०
गारत्थेसु कसाएसु	१६-६१	गुत्ताहम्मिबसुत्तणयाए णं भत्ते !	२६ सु०५	घयसित ज्व पावए	३-१२
गाहगाहीए महिसे ब जल्ले	३२-७६	गुत्तमणववायकारए	१-३	घरेसु वा एववित्तिं सेत्तं	३०-१८
गाहाणुगीया नरसंघमज्जे	१३-१२	गुत्तमुत्तमवायकारए	१-२	घा	
गाहा य मगरा तहा	३६-१७२	गुत्ता सज्जायतवसा	२५-८	घाणस्स गम्भं गहणं वयत्ति	३२-४८, ४९
गाहासोलसएहिं	३१-१३	गु		घाणित्थिदयनिगाहेणं भत्ते ! जीवे०	२६सु०६५

गि

गिज्ज वारि जल्लतमं	२३-५१	गेहणा अवि दुक्करं	१६-२७	घित्तु वा परिपावेणं	२-८, ३६
गिण्हत्तो निक्खिबंतो य	२४-१३	गेढो पओसे य सडे	३४-२३	घो	
गिढोवमे उ नज्जाणं	१४-४७	गेविज्जाणुत्तरा वेव	३६-२१२	घोरं घोरपरक्कमा	१४-५०
गिढो सि आरम्भपरिगाहेसु	१३-३३	गेविज्जा णवविहा तहिं	३६-२१२	घोरवओ घोरपरक्कमो य	१२-२३, २७
गिरि रेवयं जत्ती	२२-३३	गो		घोराओ अइदुस्सहा	१६-७२
गिरिं नहेहिं लणह	१२-२६	गोच्छगलदयंगुलिओ	२६-२३	घोराओ अइदुस्सहा	४-६
गिलाणो वरित्तपई	५-११	गोविज्जभाए व सागपत्ताणं	३४-५८	घोरासमं चइत्ताणं	६-४२
गिहंति न रइं लभे	१४-२१	गोपुट्टालगाणि व	६-१८	घोरे संसारतागरे	२५-३८
गिहकम्मसारम्भे	३५-८	गोमुत्तियं गवीहिया वेव	३०-१६	च	
गिहत्थणां अणोपाओ	२३-१६	गोमेज्जए य ययगे	३६-०५	चइज्ज गेहं वइदेही	६-६१
गिहवासं परिचज्ज	३५-२४	गोयं कम्मं दुविहं	३३-१४	[चइज्ज गेहं वइदेही]	१८-४४
गिहवासे वि सुज्जए	५-२४	गोयमं इगमब्जबी	२३-२२	चइज्ज देवलोपाओ	६-१
गिह्णिओ जे पवइएण विट्ठा	१५-१०	गोयमं तु महायसं	२३-८६	चइज्ज बालमावं	७-३०
गिह्निज्जेज्जं च बाहेइ	१७-१६	गोयमं विसमागयं	२३-१६	चइज्जमाखणं धीरो	१-२१
गिह्निज्जे तहेव य	३६-४६	गोयमस्स भित्तिज्जाए	२३-१७	चइत्ता उत्तमे ओए	१८-४१
गु		गोयमे पविसल्लू	२३-१५	चइत्ताणं इमं देहं	१६-१६
गुणवत्ताण तादर्थं	२३-१०	गोयमे य महायमे	२३-६, १८	चइत्ताणं मुणी चरे	१८-४४
				चइत्ता आरहं वासं	१८-३६, ३८, ४१

उत्तरज्झयणं (उत्तराज्ययन)

१८

चट्ठा बिजलं रज्जं	१४-४६	चट्ठा ते पकितिया	३६-१२६	चरितं वेव निष्छए	२३-३३
चट्ठु देहं मल्लंकपुज्जयं	१-४८	चक्ककुस लक्खणे मुणिवरस्स	६-६०	चरितंति तवमि य	२६-४७
चट्ठु भोगाह असासयाई	१३-२०	चक्कट्टी नराहिओ	१८-४१	चरितमावारमुणनिए तथो	२०-५२
चउत्तराणपरिसुखं	२४-४	चक्कट्टी महिड्डिए	११-२२	चरितमोहणं कम्मं	३३-१०
चउत्तरिणचक्कचरे	१६-४	चक्कट्टी महिड्डिओ	१८-३६, ३७, ३८	चरितंमि तहेव य	२६-३६
चउत्तराणत्तुत्तं	२८-१	चक्कट्टी महिड्डिओ	१३-४	चरितसम्पन्नाए णं भन्ते जीवे किं	२६सू०६२
चउत्तरं पि उ जतिओ भवे कालो	३०-२०	चक्खान्दियनिगाहेणं भन्ते जीवे०	२६ सू० ६४	चरिता धम्ममारियं	१८-२५
चउत्तराणि जहन्नेणं	३६-२३७	चक्खुणिज्जं विवज्जए	१६-४	चरितेण तहेव य	२२-२६
चउत्तरो असक्खमोसा	२४-२०, २२	चक्खुडिट्ठा इमा रई	५-५	चरितेण निगिण्हाइ	२८-३५
चउत्तराण जहन्नेणं	३६-१६३	चक्खुमुचक्खुओहिम्स	३३-६	चरिते पुत्त दुक्करे	१६-३८
चउत्तराण पारिणीए	२६-३६	चक्खुसा पारिणिए	२३-२५	चरिमाणं दण्डुपालओ	२३-२७
चउत्तरो पडिउच्छणा	२६-२	चक्खुसा पडिल्लित्ता	२४-१४	चरिम समयम्म परिणयाहि तु	३४-५६
चउत्तरो मुज्जो िव सज्जमायं	२६-१८	चक्खुस्सरुवं गहणं वयन्ति	३२-२२, २३	चउत्तजत्तगवेंसाए	२-१७
चउत्तरमयण-हिबई	११-२२	चत्तुत्तकत्तत्तस्स	६-१५	चरे पयाटं परिगंकाणो	४-७
चउत्तरा सागराई	३६-२२७	चत्तारि कामखन्वाणि	३-१७	चवेइमट्टिमाईहिं	१८-६७
चउत्तरा सागरावमा	३६-२२८	चत्तारि जहन्ताए	३६-५३		
चउत्तरा चउत्तिहा	३६-१७६	चत्तारि परमाणि	३-१		
चउत्तरा य परिस्सया	३६-१७६	चत्तारि य गिहिल्लिगे	३६-५२		
चउत्तराणए वा	३०-२१	चन्दणेरुवहंसगम्भ	३६-७६		
चउत्तरं दुल्लहं मत्ता	३-२०	चन्दणा य तहेव य	३६-१२६		
चउत्तरिणीए सेनाए	२२-१२	चन्दप्पहवेहल्लिए	३६-७६		
चउत्तरिण्डियाउठिई	३६-१५१	चन्दमूरममपमा	२३-१८		
चउत्तरिण्डियाकायउठिई	३६-१५२	चन्दमूरा य तक्खत्ता	३६-२०८		
चउत्तरिण्डियाकायमइगलो	१०-१२	चम्पाए पालिए नाम	२१-१		
चउत्तरिण्डिया उ जे जोवा	३६-१४५	चम्मे उ लोमपक्खी य	३६-१८८		
चउत्तरुल्लोए य दूवे समुदे	३६-५४	चरणविहि पक्खत्तामि	३१-१		
चउत्तरपचिन्दिया वेव	३६-१२६	चरणस्स य वत्तणे	२४-२६		
चउत्तिहा ते विपाहिया	३६-१५५	चरणे दुविहं भवे	३३-८		
चउत्तीसं नागरोवमा	३६-२३६	चरत्तं विरयं ल्हूं	२-६		
चउत्तीस सागराई	३६-२३५	चरमे समयम्म परिणयाहि तु	३४-५६		
चउत्तीसत्तएणं भन्ते जीवे किं०	२६ सू०१०	चराचरे हिंसइ ओगख्वे	३२-२७,		
चउत्तिहइ वि आहारो	१६-३०		४०, ५३, ६६, ७६, ८२		
चउत्तिहइ सइहाइ समयेव	२८-१८	चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विज्ज	२१-१२		
चउत्तं पि विवय्याईसुं	३६-२४३	चरिज्ज भिक्खुं मुक्खमाहिइन्दिए	२१-१३		
चउत्तु वि गईसु एत्तो	३४-४०	चरितं च तथो तद्वा	२८-२, ३, ११		

चा

चि

चितं पि जाणाहि तहेव रायं !

चित्तसन्तमचित्तं वा	२५-२४	छत्रमथेण जिणेण व	२८-१६	छु	
चित्ताण्णा महु मल्लोववेया	१-१३	छक्के आहारकारणे	३१-८	छुरियाहि कण्णीति य	१६-६२
चित्तासोपमु मासेसु	२६-१३	छक्केव य मासा उ	३६-१५१	छुदातण्हाए पीडिओ	१६-१८
चित्तेहि ते परितावेइ बाले	३२-२७, ४०, ५३, ६६, ७६, ८२	छउजीवकाए अससारमत्ता	१२-४१	छुहातण्हा व सोउण्हं	१६-३१
चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था	१३-१५	छट्ठं पुण धम्मचित्ताए	२६-३२	छुहातण्हाविबज्जिओ	१६-२०
चित्तो पुण जाओ पुरिमत्तालमि	१३-२	छट्ठिम्मि जहन्नेणं	३६-२३६	छे	
चित्तो वि कामेहि विरलकामो	१३-३५	छट्ठीण जहन्नेणं	३६-१६५	छेओवठावणं भवे वीयं	२८-३२
चित्तिज अणुपुअसो	२६-३६, ४७	छट्ठो सा परिकित्तिओ	३०-३६	ज	
चिन्तइ से महापग्ने	२२-१८	छण्ह अन्नयरागमि	२६-३१	जइ इच्छह जोविं वा षणं वा	१२-२८
चियामु महिसो विव	१६-५७	छण्हं पि कम्मलेसाणं	३४-१	जइ तं काहिसि भाव	२२-४४
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता	२०-४१	छण्हं पि विराहओ होइ	२६-३०	'जइ ता मि' भोगे चइउं असत्तो	१३-३२
चिरं पि से सुणइइ मवित्ता	२०-४१	छत्तांग उत्तरउक्काए	३६-२६८	जइत्ता विउले जन्ने	६-३८
चिरकालेण पि सव्वपाणिणं	१०-४	छन्दं निरोधेण उवेइ मोक्खं	४-८	जइत्ता सुहमेए	६-३५
चो		छन्दणा दव्वजाएणं	२६-६	जइ मज्झ कायणा एए	२२-१६
चोरजिणं नमिणिणं	५-२१	छन्देणं पुत्त ! पअया	१६-७५	जइ मे न दाहिण्य अहेसणिज्जं	१२-१७
चोवरहं विमारस्सो	२२-३४	छण्णुरिमा नव खोडा	२६-२५	जइ मि क्वणे वेसम्मो	२२-४२
चु		छम्मासा य जहन्निया	३६-२५१	जइ सि सक्खं पुरन्दरो	२२-४१
चुण्णलो य अणत्तसो	१६-६७	छवित्ताणं न विजई	२-७	जओ आयाण निक्खेवे	१२-२
चया देहा विहिमगा	७-१०	छव्वीस सागराइ	३६-२३७	जओ अत्तं पडिस्सुणे	१-२१
चुल्लोण वममदत्तो	१३-१	छाई अंगेलेहि पडिहेहा	२६-१६	जं काइयं माणिमियं च किचि	३२-१६
चे		छि		जं किचि आहारपाणं विविहं	१५-१२
चेदयंमि मणोरमे	६-१०	छिन्द मेहि सिणेहं च	६-४	जं किचि पास इह मणमाणो	४-७
चेक्खा कामणे परं	१४-५०	छिन्दन्नु जालं अबलं व रोहिया	१४-३५	जं चउत्तरायं पकरेइ कम्मं	३२-१०८
चेक्खा कामाद पव्वए	१८-३४	छिन्नं सरं भोमं अत्तल्लक्खं	१५-७	जं च धम्मणा वा मुहं	२५-११
चेक्खागिहं एगवरे स भिक्खु	१५-१६	छिन्नपुअो अणत्तसो	१६-५१	जं च मे पुच्छसी काले	१८-३२
चेक्खा दुपयं च चउत्तयं च	१३-२४	छिन्नपुअो अणगसो	१६-६०	जं चरन्ति महेसिणो	२३-८३
चेक्खा रउजं मुणी चरे	१८-४७	छिन्नसोए अयमे अकिक्खे	२१-२१	जं चरित्ता वहु जीवा	२६-५२: ३१-१
चो		छिन्नाले छिन्दइ सेल्लिं	२७-७	जं जाणिऊण सवणे	३६-१
चोइओ तोत्तनुलेहि	१६-५६	छिन्नावाएसु पव्वेसु	२-५	जं जिए लोअयासहे	७-१७
चोइओ पडिओइ	१७-१६	छिन्नाहि साहाहि तमेव णाणुं	१४-२६	जं तरन्ति महेसिणो	२३-७३
चोउजं अयममेवणं	३५-३	छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य	१६-५५	जं न कुजा न कारवे	२-३३
छ		छिन्नो मे संसओ इओ	२३-२८, ३४, ३६, ४४, ४६, ५४, ५६, ७४, ७६, ८५	जं नेइ जया रत्ति	२६-१६
छंउत्तं न नियट्ठई	२-४३			जं बाहई सययं जन्तुमेयं	३२-११०
छंउत्तंअत्थस्स जिणस्स वा	२८-३३			जं भिक्खुणं सीलपुणे रयाणं	१३-१७

जं भिक्षुणो सीलुणोभवेया	१३-१२	जलट्टी बेयसां मुहं	२५-१६	जल्ला जालमा वेव	३६-१२६
जं मुजो परिमस्सई	७-२५	जल्लाड उवट्टिओ	१२-३	जलेण वा पोक्खरिणी पलासं	३२-३५,
जं मे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं	२०-५५	जमायारतो भिक्षू	३५-१	५७, ६०, ७३, ८६, ८८	
जं भगवा वाहिरियं विसोहि	१२-३८	जम्हं नाम सुदंसणा	११-२७	जल्लं काएण बारस्	२-३७
जं मे तुमं ताहसि वक्कमेयं	१३-२७	जम्हं तुक्कं जरा तुक्कं	१६-१५	जलेणट्ठाए निसेवए मं	८-१२
जं मे बुद्धाणुसासन्ति	१-२७	जमणमरणाणि बन्धन्ति	३६-२६७	जलेणट्ठाए महाणुणी	३५-१७
जं विवित्त मणाएणं	१६-१	जम्ममच्चुभउक्किमा	१४-५१	जबमज्जट्टुत्तरं सयं	३६-५३
जं संपत्ता न सोयन्ति	२३-८४	जम्माणि मरणाणि य	१६-४६	जबा लोहमया वेव	१६-३८
जं तावा नखि वेयणा	१६-७४	जयं अपरिताडियं	१-३५	जसं सविणु खल्लिए	३-१३
जंसि गोयम ! आरुडो	२३-५५	जयघोसं महाणुणि	२५-३४	जस्स एया परिन्नाया	२-१६
जंसि गोयममारुडो	२३-७०	जयघोसविजयघोसा	२५-४३	जस्सत्थि मच्चुणा सक्कं	१४-२७
जं से करे अण्णिया दुरया	२०-४८	जयघोसस्स जन्तिए	२५-४२	जस्स बट्ठिय पलायणं	१४-२७
जं से पुणो होइ दुहं विवागे	३२-३३,	जयघोसस्स त्ति नामजो	२५-१	जस्सेरिसा इड्डि महाणुमाभा	१२-३७
	४६, ५६, ७२, ८५, ८८	जयणा वउज्झिहा तुत्ता	२५-६	जह कडयमुम्भारतो	३५-१०
जं सोचा पडिबजन्ति	३-८	जयणा वउज्झिहा तुत्ता	२५-६	जह करगयस्स कासो	३५-१८
जं हौकिया सस्स समाह भन्ते !	१२-३१	जयनामो जिज्जसायं	१८-४३	जहकमं कामगुणेहि वेव	१४-११
जक्खरस्ससक्किन्तरा	१६-१६; २३-२०	जयन्ता अपराजिया	३६-२११	जह गोमहस्स गम्भो	३५-१६
जक्खा आउक्खए चुया	३-१६	जया भिगस्स आयंको	१६-७८	जह तरणजम्भारतो	३५-१२
जक्खा उत्तरउत्तरा	३-१४	जया य से मुही होइ	१६-८०	जह तिगडुयस्स य रसो	३५-११
जक्खा कुमारेविणिवाडयन्ति	१२-२४	जया सक्कं परिच्छज्ज	१८-१२	जहन्मज्जिमाइ य	३६-५०
जक्खा हु वेयावडियं करेन्ति	२२-३२	जराए परिवारो	१४-२३	जहन्नुकोसिया भवे	३६-१६७, २५५
जक्खो तहि तिन्ययस्सवासी	१२-८	जराए मरणेण य	१६-२६	जहन्नेणं काऊए	३४-५०
जगन्तिसिएहि भूएहि	८-१०	जराए मरणेण य	१६-२६	जहन्नेणं नीलाए	३४-५६
जट्ठं च पावकम्मणा	२५-२८	जरामरणधत्थम्भि	१६-१४	जहन्नेणं पम्हाए दसव	३४-५४
जडीसंचाडिमणिणं	५-२१	जरामरणवेगेण	२३-६८	जहन्नेणं तुक्काए	३४-५५
जणेण सडि होक्खामि	५-७	जरोक्खणीयस्स हु नलिय ताणं	४-१	जहन्नेणेकतीसई	३६-२४३
जत्तयं गहणयं च	२३-३२	जलं 'वाहिं ति' चिन्ततो	१६-५६	जहन्नेणेगसिवाई	३०-१५
जत्तयं पणहाणव	१६-८	जलकन्ते सूरकन्ते य	३६-७६	जहपरिययम्भारतो	३४-१३
जत्थं कीसन्ति जन्तवो	१६-१५	जलणं च जलप्यवेसो य	३६-२६७	जह दूरस्स न कासो	३५-१६
जत्थं तं मुण्भसी रायं	१८-१३	जलधन्मिस्सया बीबा	३५-११	जह दुरहिउमुमंगंभो	३४-१७
जत्थं तत्थं निसीयई	१७-१३	जलन्ते इव तेएण	११-२४	जहा अगिसिहा दित्ता	१६-३६
जत्थं नलिय जरा मच्चू	२३-८१	जलन्ते तमिलाजुए	१६-५६	जहा बणाहो भवई	२०-१६, १७
जत्थं गन्तुमिच्छेजा	६-२६	जल्यराणं तु भन्तरं	३६-१७७	जहाइणस्समाकटो	११-१७
जत्थं जयइ वेवभो	२५-४	जल्यराणं तु भन्तरं	३६-१७७	जहा 'इयं इह' सीयं	१६-४८
जम्माद्वा य 'जे दिया'	२५-७	जल्यराणं तु भन्तरं	३६-६५	जहाइ उवहि तजो	१६-४८

जहा इहं उ अगणी उज्झो	१६-४७	जहा संखम्मि पयं	११-१५	जाईपराबिओ सल्लु	१३-१
जहा उ बरई सिओ	१६-७७	जहा सागबिओ बाणं	५-१४	जाईमयपडिपडा	१२-५
जहा उ पावयं कम्मं	३०-१	जहा सा दुमाग पवरा	११-२७	जाईसरणं समुपन्नं	१६-७
जहाएसं व एलए	७-७	जहा सा नईण पवरा	११-२८	जाईसरणे समुपन्ने	१६-८
जहाएसं समुहिस्स	७-१	जहा सुक्को उ मोलओ	२५-४१	जा उ अस्साबिणी नावा	२३-७१
जहा करेणुरकिओ	११-१८	जहा पुणी पुइकणी	१-४	जाओ पुरिसं पवोमिता	८-१८
जहा कागिणिए हेउं	७-११	जहासुलमणिन्दियं	३५-१६	जाओ लोमंमि इत्थिओ	२-१६
जहाकिम्प्यागफलाणं	१६-१७	जहा से उडुवई चन्ने	११-२५	जा किण्हाए ठिई सल्लु	३४-४६
जहा कुसोमे उवयं	७-२३	जहा से कम्भोयाणं	११-१६	जा केव उ आउठिई	३६-१६७, २४५
जहा सल्लु ते उरक्खे	७-४	जहा सल्लु से उरक्खे	७-४	जा जा विष्मसि नाबिओ	२२-४४
जहा खवयइ भिक्खू	३०-४	जहा से चाउरन्ते	११-२२	जा जा वल्लवइ रयणी	१४-२४, २५
जहा मेहे पल्लवमि	१६-२२	जहा से तिक्खदाढे	११-२०	जाणमाणी बि जं चम्मं	१३-२६
जहा चन्दं गहाईया	२५-१७	जहा से तिक्खसिमे	११-२६	जाणांमि जं वट्टइ आउसु ! ति	१७-२
जहा आया ति पासिया	२२-३४	जहा से तिमिरबिडंसे	११-२४	जाणांमि संभूय ! महाणुमायं	१३-११
जहा तद्धवणिससरो	२२-४५	जहा से तणाग पवरे	११-२६	जाणाहि मे जायणवीणिणु ति	१२-१०
जहा तुलाए तोलेउं	१६-४१	जहा से नमी रायरिति	६-६२	जाणि जीयन्ति दुम्मेहा	७-१३
जहा ते दीसई ख्वं	१८-२०	जहा से मामुदेवे	११-२१	जाणित्तायरियस्स उ	१-४३
जहा दवमी पडरिक्खणे वणे	३२-११	जहा से सयंभूरमणे	११-३०	जा तेऊए ठिई सल्लु	३४-५४
जहा दुक्कं जरेउं जे	१६-४०	जहा से सहस्सक्खे	११-२३	जा निरस्साबिणी नावा	२३-७१
जहा न होई असुयाण लोमो	१४-८	जहा से सामाइयाणं	११-२६	जा नीलाए ठिई सल्लु	३४-५०
जहा पोमं जले जायं	२५-२६	जहा सो पुरिसोत्तमो	२२-४६	जा पम्हाए ठिई सल्लु	३४-५५
जहा बिजालावसहस्स मूले	३२-१३	जहिउण माणुसं बोन्दि	३५-२०	जायसन्ने विरायई	११-१६
जहा मुयाहि तरिउं	१६-४२	जहि पकिणा बिहन्ति पुज्जा	१२-१३	जायगो पडिसेहाए	२५-६
जहा महातलायस्स	३०-५	जहि पवना न पुणअमवामो	१४-२८	जायगेण महामुणी	२५-६
जहा महासागरमुत्तरिता	३२-१८	जहि सयं सव्वजणस्स वेस्सा	१३-१८	जायणा य अलाभया	१६-३२
जहा मिगे एग अणेणचारी	१६-८३	जहिस्सि प्हाओ बिमलो विसुद्धो	१२-४६	जायतेयं पाएहि हणह	१२-२६
जहा मे य पवत्तियं	२०-१७	'जहिस्सि प्हाया' विमला विसुद्धा	१२-४७	जायपक्खा जहा हंसा	२७-१४
जहा भेयमणुस्सुयं	५-१३, १८	जहिणु संगं च महाफिल्लेसं	२१-११	जायमेए महोदरे	७-२
जहा य अग्गी अरणीउज्जस्सो	१४-१८	जहित्थिओ बालमणोहराओ	३२-१७	जायरुवं जहामट्ठं	२५-२१
जहा य अण्डप्यमवा बलागा	३२-६	जहेह सीहो व मियं गहाय	१३-२२	जायाई जमजन्नंमि	२५-१
जहा य किपायफला मणोरमा	३२-२०	जहोवट्ठं सुकयं	१-४४	जायाए चासमेसेज्जा	८-११
जहा य तिनि वणिवा	७-१४	जा		जाया ! चित्तवरो ठुमि	१४-२२
जहा य सीई ! तणुयं मुयंमो	१४-३४	जाई सरित्तु भववं	६-२	जाया दोणि बि केवली	२२-४८
जहा लाहो तहा कोहो	८-१७	जाई कुलं च सीलं च	२२-४०	जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं	१४-१२
जहा बयं चम्मसजाणमाणा	१४-२०	जाईजममण्णुमयाभिभूया	१४-४	जायिता मम सीसाउ	२७-१६

आरिसा माणुसे लोए	१६-७३	जीबा गच्छन्ति पुरलोयं	३४-६०	जे केइ सरीरे सत्ता	६-११
जावई केदकदली	३६-६७	जीबा गच्छन्ति सोमहं	२८-३	जे गिडे कामभोगेसु	४-५
जाव कालस पजबो	३४-१६	जीबा येव अजीबा य	३६-२	जे जे उवाया पडिवजियव्वा	३२-६
जावजोबं दडव्वाओ	२२-४७	जीबाजीबविमत्ति	३६-१	जेट्टं कुलमवैक्खन्तो	२३-१५
जावजीबाए दुक्करा	१६-२५	जीबाजीबा य पुणंपाबं व	२८-१७	जेट्टाम्मे आसाडसावणे	२६-१६
जावजीबविमत्तामो	१६-३५	जीबाजीबा य बन्वो य	२८-१४	जे बहन्ति सरीरत्था	२३-५०
जाव न एह आएसे	७-३	जीबागमजीबाण य	३६-३	जेणप्पाणं परं चेव	११-३२
जावन्तःविज्जापुरिसा	६-१	जीबा सोहिमणुपत्ता	३-७	जेण पुण जहाइ जीवियं	१४-६
जाव सरीरजेउ त्ति	२-३७	जीविए मरणे तहा	१६-६०	जेणम्हि वन्ता इत्थिणा स एसो	१२-२१
जा सा अणसणा मरणे	३०-१२	जीवियए बहुपण्णवायए	१०-३	जेणाहं दोमाई न गच्छेज्जा	८-१
जा सा पन्मवओ डिई	७-१३	जीवियं येव क्वं व	१०-१३	जेणाहं नामिजाणामि	२-४०
जा सा पाली महापाली	१८-२८	जीवियत्तं तु संपत्ते	२२-१५	जे तत्प न पउत्ताई स भिक्खू	१५-११
जा से कल्लं दलाम हं	२२-८	जीबो उवओगलक्खणो	२८-८	जे तत्पओसी य परिग्गही य	३२-१०१
जा हं तेण परिच्छत्ता	२२-२६	जीबो पमायबहुलो	१०-१५	जे तरन्ति अतरं वणिग्गा व	८-६
जि		जीबो भवइ अणासवो	३०-२	जे ताइ पडिसेवन्ति	२-३८
		जीबो वृचवइ नाविओ	२३-७३	जे दुजया अओ अन्हारित्तेहि	१३-२७
जिइन्दिए सव्वओ वियुम्फ्फे	१५-१६	जीबो होइ अणासवो	३०-३	जे नरा काम लालसा	२४-४१
जिइन्दिओ संजओ बन्मयारी	१२-२२	जु		जे नरा गिहिसुखया	७-२०
जिण्णमाणे न सविदे ?	७-२२			जे नरा पावकारिणो	१८-२५
जिणमयं वरिसिमाओ	२२-३८	जुइमं वरिसओवओ	१८-२८	जे पावकम्मेहि धणं मणुत्ता	४-२
जिणवयणं जे करेन्ति भावेण	३६-२६०	जुइमत्ताणुपुव्वसो	५-२६	जे भवन्ति विउत्तमा	२५-३३
जिणवयणं जे न जाणन्ति	३६-२६१	जुईए उत्तिमाए य	२२-१३	जे भावओ संयगरेइ भिक्खू	२१-१६
जिणवयणे जे अणुरत्ता	३६-२६०	जुगमितं व लेतओ	२४-७	जे भिक्खू अवमन्नह	१२-२६
जिणिन्दमयं सरणं पवन्ता	१४-२	जुवव पुव्वं व सम्मत्तं	२८-१६	जे भिक्खुयं भतकाले वहेह	१२-२७
जिणे पासे त्ति नामेण	२३-१	जुण्णो व हंसो पडिसोत्तागामी	१४-३३	जे भिक्खू चयई निज्जं	३१-४
जिणेहि बरदसिहि	२८-२,७	जुवराया वसीसरे	१६-२	जे भिक्खू जयई निज्जं	३१-७ से २० तक
जिण्णए रसं गहणं वयन्ति	३२-६२	जे		जे भिक्खू जयई सया	३१-२१
जिण्णवन्ते अमुच्छिए	३२-१७			जे भिक्खू न विहन्तेज्जा	२-४६
जिस्मिन्दियनिमाहेणं भन्ते ! जीवे कि	२६-६६	जे आयायाउठाणे	३२-२१	जे भिक्खू वजई निज्जं	३१-६
जिहाए रसं गहणं वयन्ति	३२-६१	जे इन्दियाणं विसया मणुन्ता	२०-४६	जे भिक्खू रुग्गई निज्जं	३१-३
जी		जे उत्तमट्टं विवजासमेई	३०-३६	जे भिक्खू बहई सम्मं	३०-३१
		जे उ भिक्खू न वावरे	१५-२	जे भिक्खू सहाई निज्जं	३१-५
जीमूयनिदंसाकासा	३४-४	जे कम्हिचि न मुच्छिए स भिक्खू	१५-३,४	जे माहणा जाइविज्जोववेया	१२-१३
जीव च इररं सया	६-२१	जे केइ परिग्गया तुअं	६-२२	जे य सम्मगपट्ठिया	२३-६१
जीवत्तमणुजीवन्ति	१८-१४	जे के इमे पम्भए	१७-३	जे य सम्मग पारगा	२५-७
जीवस्स उ मुहावहं	३१-१	जे के इमे पम्भए निवण्ठे	१७-१		
जीवस्स उ मुहावहा	३०-२७				

ज य मगणे गच्छन्ति	२३-६१	जोगमलेमं न संबिदे ?	७-२४	भाण विम्भो उ जो कळो	२०-५७
जं य वेयविज विषया	२५-७	जो गच्छइ परं भवं	१६-१६, २१	भाणार्णं च युयं तहा	३१-६
जे यावि दोसं समुवेइ तिळं	३२-२५, ३८, ५१, ६४, ७७, ८०	जोगपच्छममाणेणं भन्ते ! जीवे किं	२६६०३८	भायई भविषासवे	१८-५
जे यावि होइ निखिज्जे	११-२	जोगवं उवाणवं	११-१४/३४-२७, २६	ठा	
जे लल्लणं च सुविणं च	८-१३	जोगसन्नेणं भन्ते ! जीवे किं जणय ?	२६ ६० ५३	ठाणं किं मलसी मुणी ?	२३-८०
जे लल्लणं सुविणं पडंजमाणे	२०-४५	जोगा मुया सरीरं कारिसं	१२-४४	ठाणं ठिई गहं वाडं	३४-२
जे वज्रए एए सया उ दोसे	१७-२१	जो जस्त उ आहारो	३०-१५	ठाणा बीरासणाईया	३०-२७
जे संख्या तुच्छ पर्यवाई	४-१३	जो जाणे न मरिस्साहि	१४-२७	ठाणं कुजा निसीहियं	२६-५
जे सन्ति परिनिब्बुडा	५-२८	जो जणदिट्ठे भावे	२८-१८	ठाणे निसीयेणे चैव	२४-२४
जे सन्ति सुवषया साहू		जो तं जीविणकारणा	२२-४२	ठाणे य इह के वुत्ते ?	२३-८२
जे समत्था समुच्चत्तं	२५-८, १२, १५	जो तं तिचिहेण नागुकम्पे	१५-१२	ठाणेमु यऽ समाहिण	३१-१४
जे सम्मं आचरे मुणी	२४-२७/३०-३७	जो धम्मं सोच्छ सट्ठे	३-११	ठाणेहि उ इमेहि	२६-३३
जेसि तु बिउला सिकला	७-२१	जो न सजइ आगन्तुं	२५-२०	ठि	
जेसि यो नरिय किंण	६-१४	जो न सेवइ मेहुणं	२५-२५	ठिई आउकम्मस्त	३३-२२
जेहि इमो साहुषम्भो पल्लो	८-८	जो न हिंसइ तिचिहेणं	२५-२२	ठिई एसा बिधाहिमा	३३-२०; ३६-१३, २४४
जेहि नासन्ति जंतो	२३-६०	जो पञ्चइत्ताणं महल्लयाई	२०-३६	ठिई पट्ठक साईया	३६-१२, ७६, ८७, १०१, ११२, १२१, १३१, १४०, १४०, १४६, १७४, १८३, १८०, १८६, २१८
जेहि बद्धो अयं जीवो	३३-१	जो पुला ! होइ दुअहो	१६-३५	ड	
जेहि सज्जन्ति माणवा	३५-२	जो ममो कुणई घरं	६-२६	डज्जमाणं न वुज्जामो	१४-४३
जेहि सिकला न लम्भई	११-३	‘जो मे’ तया नेच्छइ दिज्जमाणि	१२-२२	डज्जमाणेसु जन्तुसु	१४-४२
जेहि होइ सिपायवो	२५-३२	जोयणस्स उ जो तस्स	३६-६२	डहेज्ज मरकोडिओ	१८-१०
जो		जोयणार्णं तु आयया	३६-५८	डो	
जो अल्लिकायधम्मं	२८-२७	जो लोए बम्भणो वुत्तो	२५-१६	डोले भिगारी य	३६-१४७
जो इमो पंचसिक्खिओ	२३-१२, २३	जो बिज्जाहिं न जीवइ स भिक्खू	१५-७	ड	
जो इमो सन्तवत्तरो	२३-१३, २६	जोम्भणेण य संपल्ले	२१-६	डंकिगइ हिण्णन्तसो	१६-५८
जोइया धम्मजाणम्मि	२७-८	जो संघवं न करइ स भिक्खू	१५-१०	डि	
जोइसंगिकि जे य	२५-७	जो सक्कं नाभिजाणामि	२-४२	डिणे	
जोइसंगिकि मुग्गे	२५-३६	जो सहस्सं सहस्साणं	६-३४, ४०	त	
जोइसंगिकि मुग्गे	३४-५१	जो सुत्तमहिज्जन्तो	२८-२१	तइए दस अट्ठहि चउत्ते	२६-१६
जोइसंगिकि मुग्गे	३६-२०४	जो सो इत्तरियवो	३०-१०	तइयं च पुणे पमज्जेजा	२६-२४
जोइसेसु जह्णिमा	३६-२२१	जो सोच्छा न बहिज्जई स भिक्खू	१५-१४	तइयम्मि जह्णेणं	३६-२३६
जो उल्लो सोल्लय लम्पई	२५-४०	भा			
जो एवं पडिउं भिक्खे	२-३१	भाएजा सुसमाहिण	३०-३५		
जोए बह्माणस्स	२७-२	भाणं च विउस्समा	३०-३०		
जो किरियाभाबवई	२८-२५	भाणं तं तु बुहा वए	३०-३५		

तद्यथा अह्मन्मयं	३६-१६२	ततो से दण्ड समारम्भे	५-८	तं कथं सम्बन्धो क्षिता	२३-४६
तद्यथा निर्दमोक्तं तु	२६-१८, ४३	ततो से पाथयं कम्भं	८-६	तं बयं वृष माह्वं	२५-१६ से २७, ३२
तद्यथा पोरिसीए	२६-३१	ततो से पुट्टे परिबूहे	७-२	तं सम्भं निगिष्ठासि	२३-५८
तद्यथा भिक्षाचार्यं	२६-१२	ततो से मरणान्तिमि	५-१६	तं सखं मरिसेहि मे	२०-३७
तद्यथा रायचिन्मि	६-५	ततो सो पृष्टिबो राया	२०-१०	तं छसतं पदगिज्ज	२१-३
तद्यथा समुगपनिस्वया	३६-१८	ततो हं एवमाहं तु	२०-३१	तंसा चवरसमायया	३६-२१
तद्यथा सीसयाणि य	१६-६८	तं इक्ष्मं तुच्छसरिणं से	१३-२५	तंति कल्लो से च उवैह दुक्खं	३२-२५, ३८, ५१, ६४, ७७, ८०
ततो आउपरिक्खीणे	७-१०	तं एवमेव लालयमाणं	१४-१५	तं ति ताहो अनाद्याणं	२०-५६
ततो उत्तरगुणे कुञ्जा	२६-११, १७	तं कायं तु अमुं चलो	३६-८१, ८६, १०३, ११४, १२३, १३३, १४२, १५२	तं पिच्छो य अणत्तसो	१६-६६
ततो ओराणिय-कम्माइ ०	२६ सू ७४	तं चोसि अन्धगदङ्गिहो	२२-४३	तणकासा अल्लमेव य	१६-३१
ततो कम्मगुक्क जन्तु	७-६	तं ठाणं सासयं बाधं	२३-८४	तणहारकट्टहारा	३६-१३७
ततो कल्ले पमायम्मि	२०-३४	तं तिसिक्खे पटीसहं	२-५, १४	तणेषु खयमाणस्स	२-३४
ततो काले भयिणेए	५-३१	तं देहं मिद्यापुत्ते	१६-६	तण्हाकिरुत्तो धावन्तो	१६-५६
ततो कीडपयंगो य	३-४	तं दोसहेउ अमणुलमाहु	३२, २२, ३५, ५८, ६१, ७४, ८७	तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो-	३२-३०, ४३, ५६, ६६, ८२, ८५
ततो कुन्नुपिडीसिया	३-४	तं न नस्ससि ? गोयया !	२३-६०	तण्हा हुया जस्स न होइ कोहो	३२-८
ततो केसि कुवंतं तु	२३-२१, २५, ३७	तं नाणं विणसासणे	१८-३२	ततो हं नाहो जाओ	२०-३५
ततो केसि अणुन्नाए	२३-२२	तं नेव भुओ वि समायरामो	१४-२०	ततं ततविणिच्छयं	२३-२५
ततो गच्छति सत्तिया !	६-१८, २४, २८, ३२, ३८, ४६	तं परिगिज्ज वायाए	१-४३	तत्ताइ तन्मलोहाहिं	१६-६८
ततो गुत्तीओ आहिया	२४-१	तं परिन्नाय पख्खए स भिक्खू	१५-८, ६	ततो ओमं तु जो करे	३०-१५
ततो चण्डालोक्कतो	३-४	तं पासिज्जनेज्जत्तं	१२-४	ततो य कीणमिडो उ	३३-५
ततो जले बीसमहे तथेव	३६-५४	तं पासिज्ज सविगो	१२-६	ततो य अम्मं अपरिगहं च	२१-२२
ततो बिए सधं होइ	७-१८	तं पासिया संजय हम्ममाणं	१२-२०	ततो य वगवणो उ	३०-११
ततो आएउअ एणो	१-१०	तं पुब्बनेहेण कयागुराणं	१३-१५	ततो वि य उवट्ठिता	८-१५
ततो तेणज्जिए दब्बे	१८-१६	तं बित्तं अम्मापियरो	१६-२४, ४४, ७५	तत्थ आल्लवणं नाणं	२४-५
*ततो नमिं रायचिन्मि	६-११, १७, २३, २७, ३१, ३७, ४१, ४५, ५०	तं मासओ मे पठिपुष्पाचित्ता	३२-१	तत्थ धासि पिया मज्ज	२०-१८
ततो ममी रायचिन्मि	६-८, १३, १६, २५, २६, ३३, ३६, ४३, ४७, ५२	तं भुज्जु अन्ध अणुगहट्ठा	१२-३५	तत्थ एणे म्हापन्ने	५-१
ततो पुट्टो आर्यकेणं	५-११	तं मे उदाहरिस्सामि	२-१	तत्थ कुब्बेज सासयं	६-२६
ततो पुट्टो पिबासाए	२-४	तंमि संवच्छरेकरे	३६-२५४	तत्थ गन्तुण सिज्जई	३६-५६
ततो बहूणि बासाणि	३६-२५०	तं मे एगमणो सुण	३०-४	तत्थ चित्ता समुपन्ना	२३-१०
ततो राया भयदुब्बो	१८-६	तं मे कहतु गोयमा !	२३-२८, ३४, ३६, ४४, ४६, ५४, ५६, ६४, ७४, ७६	तत्थ ठेजेज्ज भिक्खू अय्याणं	८-११, १६
ततो संवच्छदटं तु	३६-२४३, २५४	तं मे कित्तयो सुण	२४-६१, ६६-४८	तत्थ ठिप्पा जहाठाणं	३-१६
ततो संवच्छदटं	३२-१०५	तं रागहेउ तु मणुलमाहु	३२-२२, ३५, ४८, ६१, ७४, ८७	तत्थ चंपहिहं नाणं	२८-४
ततो से जायति पवीयणाइ	३२-१०५			तत्थ बाधमुवागए	२३-४, ८, २५-३

तत्प संकल्प बासं	३५-७	तम्हा विणयमेतेउजा	१-७	तबोवहाणमादाय	२-४३
तत्प सिद्धा महाभागा	३६-६३	तम्हा तसमुदाय पहाय कामे	४-१०	तबोसमायारिसमाहिसंवुडे	१-४७
तत्प से उववजई	३-१०, ७-२७	तम्हा मववईसं पस	६-१२	तसनामेहिं यावरहेहिं व	८-१०
तत्प से चिट्टेमागस्स	२-२१	तम्हा पुयमहिट्टेजा	११-३२	तसपाणबीयरहिए	२४-२८
तत्प सा पासई साहुं	२०-४	तम्हा हु एए निहवा कुमारा	१२-३२	तसपाणे विमाणेता	२४-२२
तत्पाठवि दुक्क न विमुक्कई से	३२-३०, ४३, ५६, ६६, ८२, ६५	तया गच्छइ गोयरं	१६-८०	तसाणं यावराणं व	३५-६
तत्पिमं पडमं ठाण	५-४	तयाणि आलाणि दलित्तु हंसा	१४-३६	तसाण यावराण य	२०-३५
तत्पबोमगे वि किलेसदुक्कं	३२-३२, ४५, ५८, ७१, ८४, ६७	तर कन्ने ! लहुं लहु	२२-३१	तसा य यावरा जेव	३६-६८
तत्पबोववाइयं ठाणं	५-१३	तरिता समुहं व महाभवीधं	२१-२४	तसेतु धावरंयु य	५-८१, १६-८६
तत्पुजं तणतजिया	२-३५	तरियव्को गुणोयही	१६-३६	तस्सज्जेतपमोक्क व	२५-१३
तणएसो तहेव य	३६-१०	तरिस्सन्ति अणागया	१८-५२	तस्सज्जतं गच्छइ बीयरामो	३२-१६
तणएसो य आहिए	३६-५, ६	तरिहिंति जे उ काहिन्ति	८-२०	तस्स कोसस्स छक्काए	३६-६२
तण्णयं उज्जमए य रागी	३२-१०५	तरुणाउक्कसन्निभा	३४-७	तस्स गेहस्स को वहु	१६-२२
तमंतेमणेव उ से असीले	२०-४६	तक्को सि अज्जो ! पव्वइजो	२०-८	तस्स पाए उ बन्दिता	२०-७
तमणुगाहं करेहज्जं	२५-३७	तवं कए तण्ड जस्स लोयो	१४-१६	तस्स भज्जा हुवे आसी	२२-२
तमा तवतमा तहा	३६-१५७	तवं खनिमहिमयं	३-८	तस्स भज्जा सिवा नाम	२२-४
तमाययस्तां ववहारं	१-४२	तवं पणिज्जइक्कखायं	१४-५०	तस्स मे अपडिक्कत्तस्स	१३-२६
तमुद्धरित्तु जहानायं	२३-४८	तवं संपडिक्कजेता	* २६-५१	तस्स राईमई कन्	२२-६
तमेगगमणो सुण	३०-१	तवनारायणजुत्तेण	६-२२	तस्स क्वं तु पासित्ता	२०-५
तमेगचित्तो निह्वोओ सुणेहि	२०-३८	तवमियमसंजमधरं	१६-५	तस्स क्कवदं भज्जं	२१-७
तम्मि आसि समागमे	२३-८८	तवयह्णं चरियं व उत्तमं	१६-६७	तस्स लोगपईक्कस्स	२३-२, ६
तम्मी तगरयण्डले	२३-४	तवर्णिणए सक्कतमिइगुत्तीसु	२८-२५	तस्सागए मिए पासं	१८-५
तम्मी नयरयण्डले	२३-८	तवसंवरमगलं	६-२०	तस्सावि संजमो सेजो	६-४०
तम्मूली तणुक्कारे	२४-८	तवसा धुयकम्मसे	३-२०	तस्सेस मणो गुरुविद्धसेवा	३२-३
तम्मेव न वक्खत्ते	२६-२०	तवसा निजिरजइ	३०-६	तहक्कारो य अट्ठमो	२६-३
तम्हा एएसि कम्माणं	३३-२५	तवस्स यापायकरं वयासी	१४-८	तहक्कारो य पडिस्सुए	२६-६
तम्हा एयाण लेखणं	३४-६१	तवस्सी भिक्खु यामवं	२-२, २२	तह दुक्कर करेउं जे	१६-३६
तम्हा गिहसमारम्मं	३४-६१	तवस्सी बीरियं लहुं	३-११	तह पाणवत्तिगाए	२६-३२
तम्हा जोइं न बीवए	३५-१२	तवेणं भत्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६-५०-२०	तहणगारसु मणं न कुजा	४-१२
तम्हा भिक्खू न पायए	३५-११	तवेणं होइ तावसो	२५-३०	तह य निमित्तमि होइ पडिसेवि	३६-२६६
तम्हा भिक्खू न संजले	२-२४	तवेण परिसुज्जई	२८-३५	तहा अनुवसन्तेण	१६-४३
तम्हा मुणी निण्णयुवेइ मोक्कं	४-८	तवेण परिसोसियं	१२-४	तहा अवसंजमम्मि य	३१-१३
		तवोक्कम्मसि उज्जुओ	१६-८८	तहा मोलंण गोयमे	१८-२२
		तवो जोइं जीवो जोइठाणं	१२-४४	तहा तेरिक्कमाणुसे	३१-५
		तवो य दुविहो वुत्तो	२८-३४	तहा दुक्कं करेउं जे	१६-४०

तद्वा निद्रयनीसकं	१६-४१	ताकणा तज्जगणा चैव	१६-३२	तिबिहो व नवबिहो वा	३४-२०
तद्वा पयण्वाइ य	३४-३०	ताबइयं चैव वित्तिपण्णा	३६-५८	तिवचचण्णपाठाओ	१६-७२
तद्वा मूएण अणणा	५-३०	ताब जीइइ से तुही	७-३	तिव्वाग्गमपरिणओ	३४-२१
तद्वा माणाबमाणओ	१६-६०	तासि इण्णयदरिसणं	१६-११	ती	
तद्वा लुक्खा य आहिया	३६-२०	तासि दोहं पि ओ पुत्ता	२२-२	तीसई कोडिकोडिओ	३३-१६
तद्वा वि एगत्तहियं ति नच्चा	३२-१६	ति		तीसई सागरोबमा	३६-२४२
तद्वा वि ते न इच्छामि	२२-४१	तिट्ठुणा तउत्तमिअणा	३६-१३८	तीसं तु सागराई	३६-२४१
तद्वा सत्तेव एणणा	३०-३५	तिक्खो जह् हुत्तिपिप्पलीए वा	३४-११	तीसे पुत्तो महामसो	२२-४
तद्वा मुचिणं तवसंजमं च	१४-५	'सिमुणो तस्सेव परिअओ'	३६-५८	तीसे य जाईइ उ पाबियाए	१३-१६
तद्वा गम्भोदयपुक्कमायं	१२-३६	तिगुत्तं पुण्यं सयं	६-२०	तीसे सो वयणं सोच्छा	२२-४६
तद्वा गायं तु भागामं	२०-२५	तिगुत्तिमुत्तो तिमक्खविरओ य	२०-६	तीहि अणुत्तो छुत्तुं अविरओ य	३४-२१
तद्वा कासीराया	१८-४८	तिण्णा संसारसागरं	२६-१,५,२,३१-१	तु	
तद्वा जं दंसणमावरेइ	३२-१०८	तिण्णदहो पालिओवम	३४-४१	तुगे सिम्मलि पायवे	१६-५२
तद्वा निन्नेसु य आससाए	१२-१२	तिण्णदहो पालिय	३४-४२	तुं दिक्खे चियलोहिए	७-७
तद्वा परिअट्ठणा	३०-३४	तिण्णदहो पालियमसंखभागमग्गमहिया	३४-३६	तुज्जं विवाहकज्जमि	२२-१७
तद्वा भत्तपाणेसु	३५-१०	तिण्णेव अहोत्ता	३६-११३	तुज्जं सुखं तु मणुत्तजम्भं	२०-५५
तद्वा य तुयट्ठणे	२४-२४	तिण्णेव उ सागरोबमा	३६-१२२	तुट्ठं य बिजयघोसे	२५-३५
तद्वा य नपंसगा	३६-४६	तिण्णेव सहस्साई	३६-१२२	तुट्ठो य सेणियो राया	२०-५४
तद्वा य वणत्सई	३६-६६	तिण्णेव सागरा ऊ	३६-१६१	तुक्खं तु पाए सरणं उवेओ	१२-३३
तद्वा य वराडगा	३६-१२२	तिण्णो तु ति अण्णं महं	१०-३४	तुक्खे जइया जन्नाणं	२५-३६
तद्वा विजओ राया	१८-४६	तिण्हमन्मयरं मुणो	५-३२	तुक्खेत्थ ओ ! भारधरा गिराणं	१२-१५
तद्वा हितं अलियं	३५-३	तिविक्खं परयं नच्चा	२-३६	तुक्खे वम्मणा पारग	२५-३६
तद्वा पासणदायणं	३०-३२	तिविक्खया वम्मभैरगुत्तीसु	२६-३४	तुक्खे न वि कुयह भूइपन्ना	१२-३३
तद्वा वृणं तवं किच्चा	१८-५०	तिक्कइयकसाया	३६-१८	तुक्खे वेयविकि विज	२५-३६
ता		तिन्दुयं नाम उज्जाणं	२३-४	तुक्खे सणाहा य सबन्धवा य	२०-५५
ताई सु खेताई सुवावयाई	१२-१४	तिन्दुयं वणमागओ	२३-१५	तुक्खे समत्ता उद्धत्तुं	२५-३७
ताई सु खेताई सुवेसळाई	१२-१३,१५	तिनि वि एय अणाइया	३६-८	तुक्खेहि अणुमनिओ	१६-२३
ताई पाठकरे बुद्धे	१८-३२	तिनि वि एयाओ अहम्मलेसाओ	३५-५६	तुक्खेहि अम्म ! णुन्नाओ	१६-८५
ताविओ कुट्टिओ निन्ने	१६-६७	तिनि वि एयाओ वम्मलेसाओ	३५-५७	तुमे राय विचिन्तिया	१३-८
ताणि जग्गाणि गण्णमित्ति	५-२८	तिपया हवइ पोरिसी	२६-१३	तुरियं वउयकुचिए	२२-२४
तायं उवाग्गम इमं उवाट्ठ	१४-६	तिभागहीणा तत्तो य	३६-६४	तुरिष्णा सन्निमाएण	२२-१२
ताया ! दीसन्ति वेयणा	१६-७३	तिपं मे अन्तरिच्छं च	२०-२१	तुरिक्काण बालमायं	७-३०
तात्तम्मि उवत्सए	३४-५	तिरिवणुत्ताण देवाणं	३५-५४	तुरिक्का बालं च वडियं	७-१६
तात्तासा गलिगइहा	२७-१६	तिरियाण मराण वा	३५-५४	तुरिक्का विसेसमादाय	५-३०
ताक्खे समणत्तणं	१६-३६	तिविहा ते बियाहिया	३६-१६६	तुक्कविट्ठस्स वावि आरिखओ	३५-१२

पुतिणीओ खवेहेजा	२-२५	तेगे जहा सन्धिमुहे गहीए	४-३	तेसि वुच्छं चउज्झिहं	३६-११, ७८, १११, १२०
पुतिणीओ न कयाइ वि	१-२०	तेगे यावि य मच्छरी	३४-२६	तेसि सोच्छा सपुज्जाणं	५-२६
पुहं पिमाइ मंसाइ	१६-६६	तेलीसं सागरा मुहुत्तज्झिवा	३४-३४, ३६	ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का ?	१४-३६
पुहं पिमा मुरा सीहू	१६-७०	तेलीसं सागरोबमा	३६-२४४	ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का ?	१४-३४
ते		तेलीसमुहुत्तज्झिवा	३४-५५	तेहिं आराहिया दुबे ओगे	८-२०
ते भज्ज परिपुंजानो	१३-६	तेलीससागराइ उक्कोसा	३४-४३	ते होन्ति परित्तसारी	३६-२६०
तेहन्दिमयाउठिई	३६-१४१	तेलीस सागराउ	३६-२४३	तो	
तेहन्दिमकायठिई	३६-१४२	तेलीस सागरा ऊ	३६-१६६	तोत्तओ य ते भज्जई	२७-३
तेहन्दिमकायमइओ	१०-११	तेलीस सागरोबमा	३३-२२	तो न नस्साहं मुणी	२३-६१
तेहन्दिम जीवाणं	३६-१४३	तेलीसासायणासु य	३१-२०	तो नागदंसणसम्मो	८-३
तेहन्दिमा उ जे जीवा	३६-१३६	ते परियन्ति समत्तओ	२७-१३	तो विइयं पफोडे	२६-२४
तेउक्कायमइओ	१०-७	ते पासिया लण्डियकट्टमूए	१२-३०	तो बविकण पाए	६-६०
तेउजीवाण अन्तरं	३६-११५	ते पासि सज्जसो खित्ता	२३-४१	तोसिया परिसा सम्भा	२३-८६
तेउल्लं तु परिणमे	३४-२८	ते पिज्जवोसाणुबया परज्झा	४-१३	तो होइ अचचन्तमुही कयत्थो	३२-११०
तेउल्लेया उ वणओ	३४-७	ते भिन्नेहे बहिरं बमत्ते	१२-२५	तो होहिंसि देवा इओ विउब्बी	१३-३२
तेउल्लेया जहा मुरगणाणं	३४-५१	ते माहणा जाइविजाक्खिणा	१२-१४	थ	
तेऊ पम्हा सहेब य	३४-३	ते मे कित्तयो मुण	३६-१७६, १६५, २०४	बणिया भवणवासिणो	३६-२०६
तेऊ पम्हा मुक्का	३४-५७	ते मे तिणिच्छं कुब्बन्ति	२०-२३	यडे लुडे अणियहे	११-२, १७-११
तेऊए ठिई जहन्मिया होइ	३४-५३	ते य ते अहिगच्छन्ति	२३-३५	यम्भा कोहा पमाएणं	११-३
तेऊ बाऊ य बोइब्बा	३६-१०७	तेबीसइ मुयगडे	३१-१६	यत्तिसेणाखम्भारे	३०-१७
तेऊवाऊणस्सइत्तसाणं	२६-३०	तेबीसं सागरोबमा	३६-२३५	यत्तेसु बीयाइ ववन्ति कासगा	१२-१२
ते कामभोगरसगिद्धा	८-१४	तेबीस सागराइ	३६-२३४	यक्कइमगलेणं भन्ते ! ओवे कि...२६ सू० १५	
ते कामभोगेसु असज्जमाणा	१४-६	ते समत्था उ उड्डतुं	२५-३३	या	
ते कित्तइत्तामि अहाणुपुत्तिं	३२-६	ते सज्जे उ वियाहिया	३६-१५८	यावरा तिबिहा तहिं	३६-६८
ते लुहुए ओविद्य पम्माणा	३२-२०	ते सज्जे परिकित्तिया	३६-१६६, २१७	यो	
तेणिच्छं नागिनयेजा	२-३३	ते सज्जे विइया मज्जं	२३-६१	यीकहं तु विज्जए	१६-२
ते मोरकूपा ठिय अत्तल्लिक्खे	१२-२५	ते सज्जे वि वियाहिया	३६-१६८	यीकहा य मणोरमा	१६-११
ते येव खिसई बाले	१७-४	ते अन्निमणं देयं	२५-८	थु	
ते येव थोचं पि कयाइ दुक्कं	३२-१००	तेसि इहलोअयफल्लट्ठा	१५-१०	थुइ मंगलं च का ऊणं	२६-४२
ते खिन्विउ जहानायं	२३-४३	तेसि पुणे दुल्लहा बीही	३६-२५७, २५६	थे	
ते जिणिपु जहानायं	२३-३८	तेसि पुत्ते बलसिरी	१६-२२	थो	
तेण कब्बे पुहा कए	२३-२६	तेसि फल्लविबारोण	१३-८	थो	
तेण कए बोच्छामि	३४-४४, ४७, ४८	तेसि जेए मुणेह मे	३६-६६, १७७, १७८	थो	
तेणाकि णं कयं कम्मं	१८-१७	तेसि जेए मुणेह मे	१२७, १३६, १४३, १४४	थो	
तेणाकि ते न संतुप्ते	८-१६	तेसि विओक्खणट्ठाए	३६-३, २३-६०	थो	

द	द	द	द	द	
दंसणं चरणं तद्वा	२४-५	दग्धे खेते काले	३०-२४	दिट्ठीए दिट्ठिसंत्तने	१८-३३
दंसणनाणचरिते	२८-२५	दस उदही पल्लिओवम	३४-४२	दिणभागेसु चउयु बि	२६-११
दंसणसम्पन्नाए ण भन्ते ! जीवे किं...	२६सू०६१	दस उदही पल्लिय	३४-४३	दित्तं च कामा समभिहवन्ति	३२-१०
दंसणावरणं तद्वा	३३-२	दस उ सागरोबमा	३४-३५	दिन्नं भुजेज्ज भोगणं	६-७
दंसणे उ भइयत्वं	२८-२६	दस खेव उ सागरोबमा	३६-२२७	दिन्ना मु रन्ना मणसा न भाया	१२-२१
दंसणे केवले य धावरणे	३३-६; ३६-६	दस खेव नपुंसेसुं	३६-५१	दिवा कामकमा इव	१४-४४
दंसणे चरणे तद्वा	३३-८	दस खेव सहस्साइं	३६-१०२	दिवसस्स चउरो भागे	२६-११
दंसणे तवेण य	१६-६४	दस खेव सागराईं	३६-२२६	दिवसस्स पोस्सीणं	३०-२०
दंसणेण य सट्ठे	२८-३५	दसणभट्ठी निक्खन्तो	१८-४४	दिक्कं च गहं गच्छन्ति	१८-२५
दंसणे तिबिहं वुत्तं	३३-८	दसणरणं मुद्धं	१८-४४	दिक्खजुल्लपरिहिओ	२२-६
दसमसगवैयाणा	१६-३१	दसमा उवसम्पदा	२६-४	दिक्खमाणुसतेरिच्छं	२५-२५
दच्चा भोच्चा य जट्ठा य	६-३८	दस वास सहस्साइं	३४-४१, ४५, ५३	दिक्खा तहिं वसुहारा य वुट्ठा	१२-३६
दट्ठं धन नाभिस्समीह तीरं	१३-३०	दसवाससहस्सिया	३६-१६०, २१६, २२०	दिक्खा मणुस्सा अट्ठा तिरिच्छा	२१-१६
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	३२-१४	दस सागरोबमा ऊ	३६-१६३	दिक्खा वरिससओवमा	१८-२८
दट्ठं नरवडं महिस्सिहं	१३-२८	दट्ठा उ जिणित्ताणं	२३-३६	दिक्खेण गगणं कुसे	२२-२०
दट्ठं ते कामाणे विरत्ता	१४-४	दट्ठा उ भवणासी	३६-२०५	दिक्खे य जे उवसमो	३१-५
दट्ठं रहन्तेमि तं	२२-३६	दस 'होन्ति सागरा मुद्धाहिया'	३४-३८	दिसाविचारो खेव	३६-२०८
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	१६-५०	दसारचक्केण य सो	२२-११	दिस्स पाणे पियायाए	६-६
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	१६-५७	दसारा य बहू जणा	२२-२७	दिस्स पाणे भयदनुए	२२-१४
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	२७-१६	दा		दी	
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	१६-६१	दाणे लाभे य भोगे य	३३-१५	दीर्घं च मन्सी ? मुणा !	२३-६५
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	३१-४	दायस्सन्तं अणुसंकमन्ति	१३-२५	दीर्घपणट्ठे व अणन्तमोहे	४-५
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	१२-१६	दारए से सुहोषए	२१-५	दीर्घे य इट्ठे के वुत्तं ?	२३-६७
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	१६-२७	दाराणि य मुया खेव	१८-१४	दीर्घोदहिंसा वाया	३६-२०६
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	१८-३५	दाहणा वायकष्टमा	२-२५	दीसन्ति बहवे लोए	२३-४०
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	५-३०	दारे य परिक्खिण	१८-१६	दीहाउया इडिदुमन्ता	५-२७
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	१४-४२	दासा दसणे खासी	१३-६	दीहामयवियमुक्को पत्तयो	३२-११०
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	१७-८	दाहामु पुज्जं किमिहं ठिओ सि ?	१२-११	दु	
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	३०-१४	दि		दुक्कडस्स य चोयणं	१-२८
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	२४-६; ३६-३	दिग्धिखापरिणए देहे	२-२	दुक्कडं खलु भो निक्खं	२-२८
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	२४-७	दिग्धिजाहिं मम कारणा	२०-२४	दुक्कडं चरितं तवो	१६-३७
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	२८-८	दिट्ठयुज्जं मए पुरा	१६-६	दुक्कडं जे करन्ति तं	१६-१६
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	२८-८	दिट्ठीए अणिमिसाए उ	१६-६	दुक्कडं दमसागरो	१६-४२
दट्ठं ववस्ते समणे तवस्सी	२८-८			दुक्कडं मंवरो गिरी	१६-४१

दुष्करं रयणागरो	१६-४२	दुल्हया काएण कासया	१०-२०	दे	
दुष्करं समगतं	१६-४१	दुल्हाणीह जन्तुणो	३-१	देह व पञ्चकस्याणं	२६-२६
दुष्कराहं निबारेउं	३४-५	दुल्हा तस्स उम्मज्जा	७-१८	देवकामाणं धत्तिए	७-१२, २३
दुक्कं तु भिक्षावरियाविहारो	१४-३३	दुवासलसं जिणक्खायं	२४-३	देवतं माणुसतं च	७-१७
दुक्कं च जाईमरणं वयस्सि	३२-७	दुविहं लबेऊणं य पुण्णपार्थ	२१-२४	देवदानं वगन्धवा	१६-१६, २३-२०
दुक्कं निपत्तिक्कमया	१६-७५	दुविहं तु विद्याहिं	३३-१०	देवमाणुसपरिवुडो	२२-२२
दुक्कं बम्भवयं योर	१६-३३	दुविहं दोमाहं गए	७-१८	देवायं चरत्थं तु	३३-१२
दुक्कं भिक्षावरिया	१६-३२	‘दुविहा अणसणा’ भवे	३०-६	देवा चउम्माए वृत्ता	३६-२०४
दुक्कं हय जस्स न होइ मोहो	३२-८	दुविहा आउजीवा उ	३६-८४	देवाणं तु विद्याहिमा	३६-२४५
दुक्कंकेसाण भायणं	१६-१२	दुविहा जीवा विद्याहिमा	३६-४८	देवाणं कुज्ज अत्तरं	३६-२४६
दुक्कमां ह पुणो पुणो	२०-३१	दुविहा तेउजीवा उ	३६-१०८	देवा भवित्ताण पुरे भवन्मी	१४-१
दुक्कस्सत्तगरेस्सिणो	१४-५१	दुविहा ते पत्तिटिया	३६-१२७, १३६, १४५	देवाभिमाणेण मिघोइएणं	१२-२१
दुक्कस्सत्तमुभायया	१४-५२	दुविहा ते विद्याहिमा	३६-१७, ६८, ७१, ६३,	देवा य जहोदसं समोइण्णा	२२-२१
दुक्कस्सत्त सपीलमुबैह बाले	३२-२६, ३६, ५२,		१७०, २०६, २१२	देवा य देवलोगमि	१३-७
	६५, ७८, ६१	दुविहा धलवरा भवे	३६-१७६	देविन्दं इणमब्बवी	६-८, १३, १६, २५, २६, ३३,
दुक्कस्सत्त हेउं मणुयस्स रागिणो	३२-१००	दुविहा पुडवीजीवा उ	३६-७०		३६, ४३, ७७, ५२
दुक्कसाणत्तको भवे	३५-१	दुविहा वणस्सईजीवा	३६-६२	देविन्दो इणमब्बवी	६-११, १७, २३, २७, ३१,
दुक्कलया बहुवेयणा	३-६	दुविहा वाउजीवा उ	३६-११७		३७, ४१, ५५, ५०
दुग्गं उववज्जई बहुलो	३४-५६	दुविहावि ते भवे तिबिहा	३६-१७१	देवो दोगुन्दो वेव	१६-३
दुज्जए काममोगे य	१६-१४	दुविहा वेमाणिया तहा	३६-२०५	देवे नेरइए य अइगलो	१०-१४
दुज्जयं वेव अण्णाणं	६-३६	दुविहा सा विद्याहिमा	३०-१२	देवे वा अणए महिड्डिए	१-४८
दुइस्सो परिवावई	२३-५५, ५८	दुसो तोलाको वा	३४-२०	देवे वावि महिड्डिए	५-२५
दुण्णदही पत्तिओवम	३४-५३	दुस्साहउं वणं हिच्चा	७-८	देवेसु उववज्जई	७-२६
दुइन्दोसेण सएण जन्तु	३२-२५, ३८, ५१, ६५,	दुस्सोळ परिवागयं	५-२१	देवो दोगुन्दो जहा	२१-७
	७७, ६०	दुस्सोले रमई मिए	१-५	देसिओ वइसाणेण	२३-१२, २३, २६
दुइत्तो अंजए जुगं	२७-७	दुस्सोसा बि ह्ठ तारिसा	२७-८	देसियं च अईयारं	२६-३६
दुइयहीविगईओ	१७-१५	दुइओ गई बालस्स	७-७	देसियं तु अईयारं	२६-४०
दुल्लि ऊ सागरोवमा	३६-२२४	दुइओ मलं वंणिणइ	५-१०	दो	
दुपट्ठिसुपट्ठिओ	२०-३७	दुइओ वि सभिए सया	२४-१४	दोउण्णी पळियमसंलभागममहििया	३४-३७
दुपरिण्णया इमे कामा	८-६	दुइओ वि से फिज्जइ तत्थ कोए	२०-४६	‘दोगुंछी अण्यो पाए’	६-७
दुसिगन्था तहेव य	३६-१७	दुइओ सम्मतसंजुया	१४-२६	दोगुंछी लज्जसंजए	२-४
दुसं जहा कीणफलं व पक्खी	१३-३१	दुहाण य सुहाण य	२०-३७	दो वेव सागराहं	३६-२२२
दुसं अहा साउफलं व पक्खी	३२-१०	दुहिएण वहिएण य	१६-७१	दोच्चाए अहल्लेणं	३६-१६१
दुसपत्तए पण्डुए अहा	१०-१	दुहिया असरणा अत्ता	६-१०	दोक्कं अल्लयरे सिया	५-२५
दुलहे कलु माणुसे भवे	१०-४			दोमासकयं कज्जं	८-१७
				दो वि वावडिया कुइहे	२५-४०

दोसपओहोहि मुचए भिक्खू	८-२	धम्मामम्मो य दोओए	३६-७	न इमं 'सल्लेसु भिक्खूसु'	५-१६
दोसमेव पकुब्बं	२७-११	धम्मामरियास संघसाहूणं	३६-२६५	नई भवे अवि गंगासमाणा	३२-१८
दोसम्म हेउं अमणुत्तमाहु	३२-२३, ३६, ४६, ६२, ७५, ८८	धम्मारायर एत्ते	१६-१५	न ऊ वयं एरिसमन्तपाणं	१२-११
ध		धम्माराये चरे भिक्खू	१६-१५	न ओकारेण धम्मणो	२५-२६
घणं आदाउमिच्छसि	१४-३८	धम्माराये निरारम्भे	२-१५	न कले पुत्तसंयवं	६-४
घणं पभूयं सह हसियमाहिं	१४-१६	धम्मो ठिओ सव्वपयाणकम्भी	१३-३२	न कज्जं मज्ज भिक्खेण	२५-३८
घणधनपेसवभेसु	१६-२६	धम्मो पुक्किहे मेहावि !	२३-२४	न कामभोगा समयं उवैत्ति	३२-१०१
घणियं तु पुणाईं अकुम्भमाणो	१३-२१	धम्मो संपडिवाइओ	२२-४६	न किंचि गन्थं अबरज्जईं से	३२-५१
घणुं परवकमं किरवा	६-२१	धम्मो हरए वम्मो सत्तित्तये	१२-४६	न किंचि फासं अबरज्जईं से	३२-७७
घणेण किं धम्मपूराहिणारे	१४-१७	धम्मो अहम्मो आगासं	२८-७, ८	न किंचि भावं अबरज्जईं से	३२-६०
धम्मं अकाऊण पटंसि लोए	१३-२१	धम्मो कित्ती तहा सुयं	११-१५	न किंचि रुवं अबरज्जईं से	३२-२५
धम्मं कल्लाण पावयं	२-४२	धम्मो दीवो 'पइट्ठा य'	२३-६८	न किंचि सद् अबरज्जईं से	३०-३८
धम्म च कुणमाणास्स	१४-२५	धम्मो मुदस्स चिट्ठई	३-१२	न कावए आयरियं	१-४०
धम्म च पेसलं नच्चा	८-१६	धा		नवत्तलं तमि नहचउडभाए	२६-११
धम्मं चर मुदुच्चरं	१८-३३	घारेउं अ महप्पणो	१६-३३	नक्खत्तपरिवारिए	११-२५
धम्मं पि ह सद्दहत्तया	१०-२०	घारेज्जा पियमणियं	१-१४	नक्खत्ताण मुहं चन्दो	२५-१६
धम्मं मुणित्ता विणओववन्ने	१७-१	घारेयव्वं मुदुक्करं	१६-२८	नक्खत्ताण मुहं जं च	२५-११
धम्मं सोऊण पव्वइओ	१३-२	घारेयव्वईं भिक्खुणो	१६-२४	नक्खत्ताण मुहं वृहि	२५-१४
धम्मं 'सोच्चा अणुत्तरं'	२५-४२	घारेह निव्वणगुणावहं महं	१६-६८	न गच्छईं सरणं तम्मि काले	२०-४५
धम्मकहाए णं भत्ते ! जीवे किं	२६सू०२४	धि		नगरस्स खेमं काऊणं	६-२८
धम्मजिज्जं च ववहारं	१-४२	धिईं च केयणं किच्चा	६-२१	न गेण्हइ अदत्तं जो	२५-२४
धम्मज्जाणं भिमायई	१८-४	धिइमं धम्मसारही	१६-१५	न चाइया सोमइउं तिगुत्ता	३२-१६
धम्मत्तियसरे जिणे	२३-१, ५	धिइमत्ता ववत्तिसया	२२-३०	न चिट्ठे गुणन्तिए	१-१६
धम्मत्तियकाए तद्देसे	३६-५	धिरत्थु ते जसोकासी !	२२-४२	न चित्ता तापए भासा	६-१०
धम्मल्लं मिमं काले	१६-८	धिरत्थु मम जीवियं	२२-२६	नच्चा उप्पइयं दुक्खं	२-३२
धम्मसदाए णं भत्ते ! जीवे किं	२६सू०४	धी		नच्चा कम्मविवाययं	२-४१
धम्मसाहणमिच्छियं	२३-३१	धीरस्स पस्स धीरत्तं	७-२६	नच्चा नमइ मेहावी	१-४५
धम्मसत्तिसाए कन्धयं	२३-५८	धीरा ह भिक्खायरियं चरन्ति	१४-३५	न छिन्दे न छिन्दावए	२-२
धम्मसुक्काईं भाणाईं	३०-३५	धु		न जंघियं इणियपेहिमं वा	३२-१४
धम्मसुक्काणि भावाए	३४-३१	धुत्ते व कल्लिना जिए	५-१६	न जीवियट्ठा पव्वहामि सोए	१४-३२
धम्मस्सिओ तस्स हिंयाणुपेही	१३-१५	धो		न जुंजे ऊणया ऊव	१-१८
धम्मणं कासवो मुहं	२५-१६	धोरेयसीला तवसा उदारा	१४-३५	नट्ठेहि गोएहि य बाइएहिं	१३-१४
धम्माम्भुरतो विमलेण वेयसा	२०-५८	न		न तं जरो कण्ठेत्ता करेइ	२०-४८
धम्माम्भाम्मागासा	३६-८	नज्जट्ठं पाणहेउं वा	२५-१०	न तं तापन्ति पुत्तीलं	२५-२८
		न इमं सल्लेसुज्जारितु	५-१६	न तं सुविट्ठं कुत्ता वयन्ति	१२-३८

न सं सुहं कामगुणेषु रायं	१३-१७	न बन्धवा बन्धवमं उवेति	४-४	नरएषु वि एगया	३-३
न तस्स दुक्खं विमयन्ति नाइओ	१३-२३	न बन्धवारिस्स लवो निवासो	३२-१३	नरएषु वेइया मए	१६-७२
न तस्स माया 'म पिपा व भाया'	१३-२२	न बन्धवारिस्स हियाय कस्सई	३२-११	नरएषु वेयणा उण्हा	१६-७७
न तस्स सुखे वि मणुण्यं वा	३२-१०६	न भिक्खुणो मयामणुब्बयाओ	१३-३०	नरएषु वेयणा सीया	१६-४८
न ताओ मणसीकरे	२-२५	न भिमि अभिणिकल्लस्तंमि	६-५	नरगतिरिक्खत्तणं बुधं	७-१६
न तुज्ज भोगे चइऊण बुद्धी	१३-३३	न मित्तवगा न मुया न बन्धवा	१३-२३	नरगाओ न मुच्चई	५-२२
न तुमं जाणे अणाहस्स	२०-१६	ममी नमेइ अपाणं	६-६१	नरनारि पज्जे सया तबस्सी	१५-६
न ते किंचि न अण्णिमो	१२-३४	[नमो नमेइ अपाणं]	१८	न रसट्ठाणं भुंजिज्जा	३५-१७
न ते तुमं वियाणासि	२५-१२	नमी राया विदेहेसु	१८-४५	नरस्सज्जपवेसिस्स	१६-१३
न ते पीला नबिस्सई	२२-३७	न मुच्चई किंचि अणंसजिज्जं	२०-४७	नरस्स लुट्ठस्स न तेहि किंचि	६-४८
न तेसि पडिंसज्जे	२-२४	न मुणी रण्णवायेणं	२५-२६	न रागसत्तु धरिसेइ चित्तं	३२-१२
न तेसि पीहए मणी	२-३८	न मूकओ छिन्दइ वण्णं से	२०-३६	नराहिं कामगुणेषु मिद्धं	१३-१५
न तेसु भावं नित्तिरे कयाइ	३२-२१	न मुसागाणं बसही पसत्था	३२-१३	नरिंदं जाई अहमा नराणं	१३-१८
न तेसु भिक्खू मणसा पउस्से	४-११	न मे एयं तु निस्सेसं	२२-१६	नरियदेविण्डमिबदिणं	१२-२१
नत्थि अमोक्खस्स निज्जाणं	२८-३०	न मे कण्णइ उरममं	२७-१६	न रुवलावण्णविलासहासं	३२-२४
नत्थि किंचि अजाइयं	२-२८	न मे इज्जइ किंचण	६-१४	न लक्खेज पुट्ठो सावज्जं	१-२५
नत्थि किंचि वि दुक्करं	१६-४४	न मे विट्ठे परो लोए	५-५	न लिण्णई तेण मुणी विरागो	३२-२६, ३६, ५२, ६५, ७८, ८१
नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं	२८-२६	न मे निवारणं अत्थि	२-७	न लिण्णई भवमज्जे वि सन्तो	३२-६०, ७३, ८६, ८६
नत्थि जीवस्स नामु त्ति	२-२७	नमो ते संसयाय !	२३-८५	न लिण्णई भवमज्जे वि सन्तो	३२-३४, ४७
नत्थि ओइसमे सत्थे	३५-१२	न य ओहारिणि वाए	१-२४	नवणीयस्स न सिरिसकुमुमाणं	३४-१६
नत्थि नूणं परो लोए	२-४४	न य कोउहल उवेइ स भिक्खू	१५-६	नवममि जह्मोणं	३६-२४२
न दीसई जाइविसेस कोई	१२-३७	न य णं दाहामु तुमं निमण्ठा !	१२-१६	नवरं पुण सामणे	१६-७५
न निक्कसिज्जइ कण्णई	१-७	न य दुक्खा विमोएइ	२०-२४, २५, ३०	नवहि वरिसेइ ऊणा	३४-४६
न निण्णविज्ज कयाइ वि	१-११	न य दुक्खा विमोयत्ति	२०-२३, २६, २७	न बा लेज्जा निवणं सहायं	३२-५
न निरट्ठं न मम्मं	१-२५	न य पावपरिक्खेवी	११-१२	'न वि कस्सवि उववाओ'	३४-५८, ५६
न निज्जज्जन्ति संसारे	३-५	न य मम्ममुदाहरे	११-४	नवि ज्ञानाणं जं मुहं	२५-११
न निसीएज्ज कयाइ वि	१-२१	न य मित्तेसु कुण्णई	११-१२	नवि जाणसि वेयमुहं	१५-११
नवणे सो उ पासाए	१६-३	न य वित्तासए परं	२-२०	न विज्जई अन्नमिहेह किंचि	२४-४०
नव्वावत्ते य विच्छिए	३६-१४७	न यामणुत्तेसु मणं पि कुज्जा	३२-२१	न वि निव्वाहणाय वा	२५-१०
ननेसि चक्खुकासओ	१-३३	न यावि पूयं गरहं च संजए	२१-२५, २०	न वि मुण्णिणए समणो	२५-२६
न पए न पयावए	२-२	न यावि भोगा पुरिसाण निज्जा	११-३१	न वि हट्ठो न वि तुट्ठो	२५-६
न पक्खओ न पुओ	१-१८	न यावि भोगा विगइ उवेत्ति	३२-१०१	न वि सा मज्ज दाहिई	२७-१२
न पये न पयावए	३५-१०	नरए उववज्जई	७-२८	न वीएज्जा य अय्यं	२-६
न पारए होइ हु संपराए	२०-४१	नरएषु दुक्खं च तिरिक्खओणिगु	१६-१०		
नपुंसकेयं विविहे य भावे	३२-१०२	नरएषु दुक्खवेयणा	१६-७३		

उत्तरउक्तयणं (उत्तराच्ययन)

३२

न बीरयामस्त करेति किंचि	३२-१००	नागो ब्य बन्धनं खिला	१४-४८	नापुट्रो बागरे किंचि	१-१४
न बीरबायं अणुजाइ भगं	२०-४०	नागी संघामसीसे बा	२-१०	नायं कम्मं तु बुद्धिं	३३-१३
न वीससे पणिए आसुपन्ने	४-६	नायं च दंसणं खेव	२३-३३; २८-२, ३, ११	नायकम्मं च नायं च	३३-३
न संतसन्ति मरयन्ते	५-२६	नायं नाणीहि देसियं	२८-५	नामगीत्ताणं उक्कोसा	३३-२३
न संससे न वारेज्जा	२-११	नायमि दंसणंमी	२६-५७	नामाई तु जह्मकम्मं	३४-३
न सयं मिहाडं कुज्जा	३५-८	नाणदंसणलक्षणं	२८-१	नामाई बणारसगन्ध-	३४-२
न सम्बत्थ विवाहिया	३६-१३०, १३६, १७३,	नाणदंसणसन्धिया	३६-६६, ६७	नायेणं संखए नाम	१८-१
	१८२, १८६	नाणसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं		नायएज्ज तणामवि	६-७
न सम्ब सम्बत्थजिरीयएज्जा	२१-१५	नाणस्त केवलीणं	२६६-६०	नायए परिनिब्बुए	३६-२६८
न सा पडिनिपत्तई	१४-२४, २५	नाणस्त सत्त्वस्त पमासणाए	३६-२६५	नायए परिनिब्बुडे	१८-२४
न सा पारसस घामिणी	२३-७१	नाणस्ताबरणिज्जं	३२-२	नायव्वं दंसणवरणं	३३-६
न सा ममं बियाणाइ	२७-१२	नाणाकुमुयसंछन्नं	३३-२	नायव्वा अमोस्ताओ	२६-१५
न तिणेहं कहिचि कुब्जेजा	८-२	नाणाकुमुयसंछन्नं	२०-३	नायव्वा काउलेसाए	३४-३६
न तिया अइल्लोसुए	११-५	नाणागोत्तासु आइसु	३-२	नायव्वा किण्हेसाए	३४-३४
न तिया तोत्तपवेत्तए	१-४०	नाणादुमलयाइज्जं	२०-३	नायव्वा नेउलेसाए	३४-३७
न से इहं नेब परव्व लोए	१७-२०	नाणाधनपडिपुणो	११-२६	नायव्वा नील्लेसाए	३४-३५
न सो मुयवत्तायधम्मस्त	६-४४	नाणापक्खित्तिसियं	२०-३	नायव्वा पम्हेसाए	३४-३८
न सो होइ पसंतिओ	१४-३८	नाणारयणपडिपुणो	११-३०	नायव्वा मुक्कलेसाए	३४-३६, ४६
नहं ओगाहल्लक्षणं	२८-६	नाणारहं च छन्दं च	१८-३०	नायव्वा होइ इत्तरिओ	३०-११
'न हूणे पाणिणो पाणे'	६-६	नाणाबंजणसंजुयं	१२-३४	नारीज्जाई परिवारयन्तो	१३-१४
न हू जिणे अज्ज दिस्सई	१०-३१	नाणावरणं पंचविहं	३३-४	नारीसु नोपणिज्जेज्जा	८-१६
न हू ते समणा बुच्चन्ति	८-१३	नाणाविह्विगमयणं	२३-३२	नालं ते मम ताणाए	६-३
न हू दाहामि ते भिक्खं	२५-६	नाणासीसा धारात्था	५-१६	नायकले कयाइ वि	६-१३
न हू पाणवहं अणुजाणे	८-८	नाणी नो परिदेवए	२-१३	नावा य इह का तुत्ता ?	२३-७२
न हू मुणी कोवपरा हवन्ति	१२-३१	नाणुचित्ते कयाइ वि	१६-६	नावा विपरिधावई	२३-७०
न हू सी पभू पुमं पुत्ता !	१६-३४	'नाणुत्तयेज्ज पल्लव'	२-३६	नासन्ने नाइहूरओ	१-३४
नह्वेव कुंवा समदक्कमन्ता	१४-३६	नाणुत्तयेज्ज संखए	२-३०	नासन्ने बिलमज्जिए	२४-१८
ना		नाणेणं दंसणं च	२२-२६; २८-१०	नाओले न विसोले	११-५
नाइज्ज्वे व नीए बा	१-३४	नाणेण जाणई भावे	२८-३५	माहं रमे पक्खणि पंजरे बा	१४-४१
नाइहूरमणासन्ने	१-३३; २०-७	नाणेण य मुणी होइ	२५-३०	नाहो मज्ज न विज्जई	२०-६
नाइमत्तं तु भुंजेज्जा	१६-८	नाणेण विणा न हुत्ति चरणगुणा	२८-३०	नि	
नाइमिण्डुं तव्भं चरे	३६-२५३	नाणे दंसणे खेव	२६-३६	निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोमं	३२-४
नाइवेलं मुणी गच्छे	२-६	नाणोत्तपिज्जलिए	११-२६	निककसिज्जमइ सम्बो	१-४
नाइवेलं विह्वेज्जा	२-२२	नादंसणस्सि नाणं	२८-३०	निक्खन्ता जिणसासणे	१८-४६
नागो जहा पंक्कलायसन्तो	१३-३०	नानमन्ति नराहिवा !	६-३२	निक्खन्तो जिणसासणे	१८-१६

निष्कसमं तस्स काठं जे	२२-२१	निष्कसलं मुदुवकरं	१६-२६	निसग्गुवएसर्ह	२८-१६
निष्कसमि बाणगाओ	२२-२२	निष्कसो निरहंकारो	१६-८६; ३५-२१	निसन्ने सिवाग्गुहुरी	१-८
निष्कसित्ताणं भायणं	२६-३६	निष्कोयणि हिष्ण पलेइ मुत्तो	१४-३४	निसम्मं रक्खमूलचिम्	२०-४
निगमे य आगरे पल्ली	३०-१६	निगगाओ भवणाओ	२२-१३	निर्सीएज्जपुकुण्ण	१-३०
निगमे वा रायहाणिए	२-१८	निगहिल्ले अणुज्जुए	३४-२५	नित्तेज्जं पायकम्बलं	१७-७
निगान्धो वि न करेज्ज छहिं बेव	२६-३३	निगळ्ळं धम्मं लहियाण वी जहा	२०-३८	नित्सकिंय निष्कसिय	२८-३१
निगान्धे पावयणे	२१-२	नियत्तेज्ज जयं जई	२४-२१, २३, २५	नित्संगो वल्लगारवो	१६-८६
निगान्धो चिइमन्तो	२६-३३	नियत्तो हाससोगाओ	१६-६१	नित्संता अजिइनिओ	३४-२२
निगयां होहिं मन्ने	२७-१२	निगामसमुहं कडं	१३-२८	निहन्नुण उवायओ	२३-४१
निष्कं भीएण तत्थेण	१६-७१	निरंगो सव्वओ विप्पमुक्के	२१-२४	निहियं दुइओ वि विरायइ	११-१५
निष्कं मुदवमाणसो	१६-३	निरट्ठगम्मि विरओ	१-४२	नो	
निष्कहालप्यमत्तेण	१६-२६	निरट्ठोया परिवावमेइ	२०-५०	नीया तत्तवगाविय	३६-१४८
निष्कवत्तो परिबज्जए	१६-१, ७, १०, १४	निरट्ठणि उ वजए	१-८	नीयावत्तो अवबले	११-१०
निष्काउत्तंण दुक्करं	१६-२६	निरट्ठिया नगगई उ तस्स	२०-४६	नीयावित्तो अवबले	३४-२७
निज्जाइ उठयं व थलाओ	८-६	निरवकळा 'इज्जिया	३०-६	नील्लेसं तु परिणमे	३४-२४
निजाओ वण्हिगुंगओ	२२-१३	निरवेक्खो परिज्जए	६-१५	नील्लेसा उ वण्णओ	३४-५
निजाणं पावगं इमं	२१-६	निरस्साए उ संजमे	१६-३७	नीलाज्जोगंकासा	३४-५
निज्जुह्किण आहारं	३५-२०	निरासवे संलविवाण कम्मं	२०-५२	नीहरति मयं पुत्ता	१८-१५
निहा तहेव पयला	३३-५	निरावलेवाइ असंबडाइ	२१-२२	नीहारमणीहारी	३०-१३
निहानिदा य पयलपयला य	३५-५	निराड राअगणाण अचवए	१०-१	नीहासा य निराणन्दा	२२-२८
निहासीले पगामसो	१७-३	नित्तेसइ निवज्जई	२७-५	ने	
निदन्तमलपावणं	२५-२१	निव्वलं जस्स कएण दुक्कलं	३२-३२, ४५, ५८, ७१, ८४, ९७	नेच्छई सामुदाणियं	१७-१६
निदन्तसपरिणाओ	३४-२२	निव्वलवन्तो अमणुल्लं वा	३२-१०६	नेयाउयं दट्ठमुदट्ठुमेव	४-५
निदुणित्ताण निगओ	१६-८७	निव्वानं च न गच्छइ	११-६	नेयारिंसं दुत्तरमथिय लोए	३२-१७
निन्दणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६५०७	निव्वानां ति अवाहं ति	२३-८३	नेरइयतिरिक्खताउ	३३-१२
निन्नेहा निप्परिग्गहा	१४-४६	निव्वानां परमं जाइ	३१-२२	नेरइयाणं तु अत्तरं	३६-१५४
निम्मेरियच्छे रहिरं वमन्ते	१२-२६	निव्वानमणं बिरए उवेइ	२१-२०	नेरइयाणं विद्याहिया	३६-१६७
निमंतवस्सं च मुए घणेणं	१४-११	निव्वानावरस्स भिक्खुणो	६-१५	नेरइया सत्तविहा	३६-१५६
निमज्जितं मोहमहणवस्मि	३२-१०५	निव्विणकाओ मि सहणुवओ	१६-१०	नेव किच्चाण पिट्ठओ	१-१८
निमन्तिओ य भोगेहिं	२०-५०	निव्विणसंसारमया जहाय	१४-२	नेव कुज्जा कयाइ वि	१-१७
निमित्तं कोऊल्ल संपगाडे	२०-४५	निव्वित्तिणिक्खा अमूढविट्ठो य	२८-३१	नेव कुज्जा परिगहं	२-१६
निमित्तेण य बवहरई	१७-१८	निव्वित्तया निरामिसा	१४-४६	नेव चिट्ठे न संलब्धे	१-२६
निमिस्सग्गरिमित्तं पि	१६-७४	निव्वेएणं भन्ते ! जीवे किं	२६५०३	नेव ताणाय तं तव	१४-३६
निम्बरसो कडुवरोहिणीरसो वा	३४-१०	निसगगइ ति नायव्वो	२८-१८	नेव पत्तहिययं कुज्जा	१-१६

उत्तरउभययनं (उत्तराच्ययन)

३४

नेव सेजावगो कया	१-२२	पवोगकाले य मुहो दुरन्ते	३२-३१,४४,५७,	पंचेव समिहजो	२४-१
नेहपासा भयंकरा	२३-४३		७०,८३,९६	पंजली पविपुच्छई	२०-७
नो		पंचभूया उ इत्थिजो	२-१७	पंडिया पविपकल्या	९-६२
नो अहमाया पाणभोयनं आहरेता हवइ...		पंचमा भूमाभा	३६-१५७	पहपमि तहेव य	३१-१८
	१६सू०१०	पंकेण व रणण व	२-३६	पककविट्टेस वावि आरिसजो	३४-१३
नो इत्थीणं इन्दिपाइं...	१६ सू० ६	पंसाविहूणो व्व जहेह पक्खी	१४-३०	पकपुज्जो अणत्तलो	१८-४९
नो इत्थीणं कहं कहिता हवइ...	१६ सू० ४	पंच जिए जिया दस	२३-३६	पककमन्ति दिरोपिंति	२७-१४
नो इत्थीणं कुहुत्तरंसि वा...	१६ सू० ७	पंचमं कुसतणाणि य	२३-१७	पककमन्ति महेसिणो	२८-३६
नो इत्थीहिं सडि...	१६ सू० ५	पंचममि जहन्नेणं	३६-२३८	पक्खपिण्डं व संजए	१-१९
नो इन्दिमोज्ज अमुत्तमावा	१४-१९	पंचमहज्जयजुत्तो	१९-८८	पक्खिणो य चउव्विहा	३६-१८८
नो एणं पठिबउजए	३-१०	पचमहज्जयधम्मं	२३-८७	पक्खी पत्तं समादाया	६-१५
नोकसायं तहेव य	३३-१०	पचमाए जहन्नेणं	३६-१६४	पक्खेण य पुणंगलं	२६-१४
नो ताहिं विणिहन्नेजा	२-१७	पंचमा छदणा नाम	२६-३	पगाठा जत्थ वेयणा	५-१२
नो तेसि बयइ सिलोमयुयं	१५-९	पचमा होइ नायब्बा	३३-५	पगामदुक्खा अणिगामसोकखा	१४-१३
नो तेसिमारत्ते दंडं	८-१०	पंचमुट्ठोहिं समाहिजो	२२-२४	पचकक्खाणेणं भत्ते ! जीवे कि...	२९सू०१४
नो निगमे पुब्बरयं पुब्बकीलियं अणुसत्ता		पंचमो छट्ठजो पण्हणत्तो	३०-११	पचकय्यं व लोमस्स	२३-३२
	हवइ... १६ सू० ८	पंचलक्खणं तुम	१९-४३	पचवागा छट्ठा	३०-१९
नो पणीयं ब्राह्मं आहरिता हवइ...	१६सू०९	पंचविहमन्तरायं	३३-१५	पचुप्पन्नपरायणे	७-९
नो रक्खसीमु गिउक्केजा	८-१८	पंचविहा जोइसिया	३६-२०५	पच्छा कहुयविवागा	१९-११
नो बलिपइ वारिणा	२५-२६	पचविहे कामगणे	१६-१०	पच्छा गमिस्सामु पहाणमयं	१४-३१
नो विमुसाणुवाई हवइ, ते निगमे	१६सू०११	पंचसमिजो निमुत्तिपुत्तो य	१९-८८	पच्छा जाया ! गमिस्सामो	१४-२६
नो वि य वन्दनं कुजो पसंसं	१५-५	पंचसमिजो तिगुत्तो	३०-३	पच्छाणुतावेण दयाविहूणो	२०-४८
नो सक्किमपिच्छई न पुयं	१५-५	पंचहाउत्तुरा सुरा	३६-२१६	पच्छाणुतावेय तवपमाव	३२-१०४
नो सट्ठकवरसगम्भकसाणुवाई हवइ...	१६सू०१२	पंचहा जलयराहिया	३६-१७२	पच्छा दिट्ठो य तोइ वि	२२-३४
नो सुअहा अथोपुरिसेहिं	८-६	पंचहा जोइसालया	३६-२०८	पच्छा धम्मं चरिस्ससि	१९-४३
नो होलए नो वि य खिसएजा	१९-८३	पंचहा ते पक्कितिया	३६-१६-८,२१,८५,	पच्छा पच्छाणुतावए	१०-३३
नो होलए पिण्डं मीरसं तु	१५-१३		११८	पच्छा परिन्नाय मलावचसी	४-७
प		पंचालराया ! वयणं सुणाहि	१३-२६	पच्छा पुरा व चइयजे	१९-१३
पइण्णं विट्ठिवाजो य	२८-२३	पंचालराया वि य बम्भदत्तो	१३-३४	पच्छायादत्ता नियमं सरोरं	१२-८
पइण्ण वार्इ दुहिले	११-९	पंचालेसु य दुम्भुही	१८-५५	पउअत्तपपज्जत्ता	३६-७०,८४,९२,१०८,
पइरिक्कुवस्सयं लद्धं	२-२३	पंचासवप्पवत्तो	३४-२१	पउअत्तपपज्जत्ता	११७,१२७,१३६,१४५
पइरिक्के-परक्के वा	३५-६	पंचिन्दियकामइगजो	१०-१३	पउअत्तपपज्जत्ता	३०-२४
पउंजज इमं विहिं	२४-१३	पंचिन्दियतिरिक्काजो	३६-१७०	पउअत्तपपज्जत्ता	२८-५
पइसमं खेतकाले य	३३-१६	पंचिन्दिया उ जे जीवा	३६-१५५	पउअत्तपपज्जत्ता	२८-१३
प वसगवणत्तयं	३३-१७	पंचिन्दियाणि कोहं	९-३६	पट्टणमव्वन्सवाहे	३०-१६

पडति नरए घोरे	१८-२५	पडमि कहनेणं	३६-२३४	पलरस तीसइ विहा	३६-१६७
पडिक्खं को कुणई	१६-७६	पडमा आवसिया नाम	२६-२	पला समिक्खए वम्मं	२३-२५
पडिक्खइ अभिक्खणं	२७-११	पडमाए कहनेणं	३६-१६०	पम्मे अभिभूय सम्बदंसी	१५-२, १५
पडिक्खणेणं भन्ते ! जीवे किं...	१६सू०१२	पडमे वए महाराया !	२०-१६	पयोति मच्चुं पुरिसे जरं च	१४-१४
पडिक्खमणि पसिणाणं	१८-३१	पडमे बासचउक्कमि	३६-२५२	पयोडणा चउत्थी	२६-२६
पडिक्खित्ता कालस्स	२६-३७	पडमे समयम्मि परिणयाहि तु	३४-५८	पवन्थ च न कुड्ढई	११-११
पडिक्खित्तु कालस्स	२६-४५	पणणीवाण अन्तरं	३६-१०४	पवन्थं च पकुब्बई	११-७
पडिक्खित्तु निस्सङ्गो	२६-४१, ४६	पणयालसवसहसा	३६-५८	पवभट्टा समाहिणोएहि	८-१४
पडिवाहेज्ज संजए	१-३४	पणवीसभाबवाहिं	३१-१७	पभाससे किनु सगासि अम्हं	१२-१६
पडिक्खन्मि संबुद्धे	१-३५	पणवीस साराराई	३६-२३६	पभीओ परलोगस्स	५-११
पडिणीए वंसंबुद्धे	१-३	पणीयं पाणनीयणं	३०-२६	पभूयचणसंचओ	२०-१८
पडिणीयं च बुद्धार्णं	१-१७	पणीयं भत्तपाणं च	१६-१२	पभूयगणो राया	२०-२
पडिउच्छ्रणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		पणीयं भत्तपाणं तु	१६-७	पमज्जेज्ज जयं जई	२४-१४
	२६सू०२१	पडिडायं सकाम तु	५-३	पमत्तं य अभिक्खणं	१७-८
पडिगुण दलेज्ज इक्कस्स	८-१६	पडिडायं सुणेह से	५-१७	पमत्तं रसलोहू स्याय गवेसए य	३४-२३
पडिगुणं नालमेयास्स	६-४६	पडिडया पविक्खलणा	१६-६६; २२-४६	पमत्तल्लं तु परिणमे	३४-३०
पडिगुणे पुणमासीए	११-२५	पणुपणमासट्टिया	३६-७२	पमहेसा उ वण्णओ	३४-८
पडिगं पडिबज्जओ	२-४३	पण्डरा निम्मला मुह्हा	३६-६१	पमओ तं पडिम्मुणे	१-२७
पडिक्खं पडिबसि	२३-१६	पत्तं हुक्खं अणत्तसो	१६-६१	पयण पयावणेमु य	३५-१०
पडिक्खवयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		पत्तपुक्कफलोवेए	६-६	पयणुकोडमाणे य	३४-२६
	२६सू०४३	पत्तिणए पसायए	१-४१	पयाहत्तु महाजसो	१८-४६
पडिक्खेण एसिता	१-३२	पत्तीइ महाइ मुह्हासियाई	१२-२४	पयाई जो पसरई उ सम्मतं	२८-२२
पडिलेहणं कुणन्तो	२६-२६	पत्तेगसरीरा उ	३६-६४	पयाहिण करेन्तो	६-१४
पडिलेहणाअणाउत्ते	१७-६	पत्तेगा य तहेव य	३६-६३	परं अपाणसेव य	२५-८, १२, १५, ३१, ३७
पडिलेहणापमतो	२६-३०	पत्तेगा इति आहिवा	३६-६५	परं भवं सुंदर पावणं वा	१३-२४
पडिलेहिज्ज गोच्छं	२६-२३	पत्ते बाणारसि पुरि	२५-२	परं संवेगमागओ	२१-१०
पडिलेहिज्ज जयं जई	२६-३८	पत्तो पडमणुत्तरं	१८-३८, ४०, ४२, ४३, ४७	परं करो पडिपुच्छणा	२६-५
पडिलेहिल्लाण भण्डं	२६-२१	पत्तो वेयरणि तदि	१६-५६	परगेहंति वाड	१७-१८
पडिलेहिल्ला सुणी कुज्जा	२६-२०	पत्तं सयणासणं भट्ठा	१५-४	परपासण्ड सेवए	१७-१७
पडिलेहेइ पमत्ते	१७-६, १०	पत्तकुलाइ परिक्खए स भिक्खू	१५-१३	परपातल्लस उ निक्कलकाले	१२-६
पडिबज्ज भवभाओ	२३-८७	पत्ताणि चैव सवेज्जा	८-१२	परमदुपएहि चिट्ठई	२१-२१
पडिबज्जया पंच महब्बयाणि	२१-१२	पत्तावहिट्ठववरणं	१२-४	परमत्थसंयओ वा	२८-२८
पडितोओ च्च दुत्तरो	१६-३६	पटुडित्तो य चिवाइ कम्मं	३२-३३, ४६, ५६	परमद्विजोयाओ	२६-३१
पडम पवं पसत्थं	२६-२८		७२, ८५, ८८	परमत्तेहि वा पुणे	१८-३१
पडमं पोरिसि सज्जायं	२६-१२, १८, ४३	पयावत्तं निगिहामि	२३-५६	परमाणुओ य बोडब्बा	३६-१०

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

३६

परमा दुहसंबदा	१६-७१	परिहारविमुद्धीयं	२८-३२	पसन्नं ते तथा मयो	१८-२०
परमाहमिषयु य	३१-१२	पक्वणा तेसि भवे	३६-३	पसन्ना लाभस्सन्ति	१-४६
परमोए अणस्सिओ	१६-६२	परे भवे अतिथ जीवस्स	३४-५८, ५६	पसवो दासपोसं	३-१७, ६-५
परलोमे भविस्सई	२२-१६	परेनु वासमेसेजा	२-३०	पसायए ते ण्ण दुरासयं पि	१-१३
परस्सज्जुवाइए	२४-१७	पल्लूस्सणकन्दे य	३६-६७	पसायपेही निपापट्ठी	१-२०
पराइओ बाहिरिओसहेहि	३२-१२	पलालं फामुयं तत्थ	२३-१७	पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे	१२-२६
परिणाहं इत्थिओ मागमायं	१२-४१	पल्लवंचम ओवहिए	३४-२५	पसाहि पंचाल गुणोववेयं	१३-१३
परिमाह्विबज्जणं	१६-२६	पल्लोवमज्जुभाओ	३६-२२१	एसिदिलपलम्बलोला	२६-२७
परिमाहासमनियत्तदोसा	१४-४१	पल्लोवमं जहन्ना	३४-५२	पमुतो मि नराहिवा !	२०-३३
परिजुण्णेहि बत्थेहि	२-१२	पल्लोवमं तु एगं	३६-२२१	पमुबन्धा सख्येवा	२५-२८
परिजूरद ते सरीरयं	१०-२१, २२, २३, २४, २५, २६	पल्लोवमस्स भाओ	३६-१६१	पहणे कम्ममहाणवं	१८-४८
परिणामो तेसि पंचहा	३६-१५	पल्लोवमसाई तिण्ण उ	३६-२००, २०१	पहयाओ दुट्ठहीओ सुरेहि	१२-३६
परिणामो न सुन्दरो	१६-१७	पल्लोवमाता तिण्ण उ	३६-१८५, १८५	पहा छायातेव इ वा	२८-१२
परिदाहेण तज्जिण	२-८	पल्लोवममेगं तु	३६-२२०	पहाय ते पास पयट्टिए नरे	४-२
परिमोनेसणा य आ	२४-११	पल्लिमसंखं उ उक्कोसा	३४-५०	पहाय रागं च तहेव दोसं	२१-१६
परिमोयमि चत्थकं	२४-१२	पल्लिमसंखं तु उक्कोसा	३४-४६	पहीणपुत्तस्स ण्ण नत्थि वासो	१४-२६
परिमंडलसंठागे	३६-४२	पल्लिमसंखिज्ज इमो	३४-४८	पहीणपुत्तो मि तथा अहं पि	१४-३०
परिमण्डना य बट्ठा	३६-२१	पल्लिमसंखेज्जोणं	३४-५२	पहीयए कामगुणु तु लण्हा	३२-१७
परिमियं वेव आयायम	३६-२५४	पलेत्ति पुत्ता य पई य मज्जं	१४-३६	पहु दुक्खे विमुक्कई	३५-२०
परियट्ठणयाए णं भन्ते ! जीवे किं...	२६०२२	पल्लोपाणुल्लया वेव	३६-१२६	पा	
परियट्ठणीए राईए	२०-३३	पवज्जंअस्सिओ मूणी	३५-२	पाइओ कलकलताए	१६-६८
परियायधम्मं च भरोयएजा	२१-११	पवेइया आबसहा य रम्मा	१३-१३	पाइओ मि जल्लोओ	१६-७०
परिवज्जणं रसाणं तु	३०-२६	पवेसेज्ज अरी कुडो	२०-२०	पावं होई सुत्तकं	१६-३६
परिवज्जितु संजए	२४-१०	पव्वइओणगारियं	२०-३४	पाए पसारिए बाबि	१-१६
परिवज्जेज्जु संजए	१८-३०	पव्वइओ हि सि अणगारियं	१०-२६	पागारं कारइत्ताणं	६-१८
परिवाडीए न चिट्ठेजा	१-३२	पव्वए अणगारिय	२०-३२, १-१०	पाडिओ फालियो छिन्तो	१६-५४
परिवृत्तं परंमे	७-६	पव्वज्जं सा जिणस्स उ	२२-२८	पाडव सरीरं हिक्वा	३-१३
परिव्ययन्ते अणियत्तकामे	१४-१४	पव्वज्जममुववाओ	१८-३६	पाणभूयदयट्टाए	३५-१०
परितया दुविहा भवे	३६-१८१	पव्वज्जशाठानमुत्तमं	६-६	पाणयम्मि अहन्तेणं	३६-२३१
परिसहाणं पविमत्तो	२-१	पव्वयत्तो न सोयइ	२५-२०	पाणवह मिवा अयाणन्ता	८-७
परिसहा दुव्विसहा अणेगे	२१-१७	पव्वयत्तो न सोयइ	२२-३२	पाणवहमुसत्ताया	३०-२
परिसहे आयुत्ते सहेजा	२१-१६	पव्वयत्तो न सोयइ	१६-६३	पाणवहमुसत्ताया	१२-२६
परिपुक्कमुहेज्जिगे	२-५	पव्वयत्तो न सोयइ	३४-१७, १६	पाणाइ वाय विरइ	१६-२५
परिहायन्ति चरिभन्ते	३६-५६	पव्वयत्तो न सोयइ	३४-६१	पाणिणो कम्मकिअस्सा	३-५
		पव्वयत्तो न सोयइ	३४-२६, ३१	पाणिदया तवहेठं	२६-३४

पाभी नु मुण्डवारए	२-२६	पासा य हह के मुषा ?	१३-४२	पुच्छई तं महापुणि	२५-१३
पाभीपाणविबोहणं	२६-२५	पासायालोयणट्टिओ	१६-४	पुच्छ पत्ते ! जहिण्हं ते	२५-२२
पाणे य माइवाएज्जा	८-६	पासायालोयणे ठिओ	२१-८	पुच्छमागस्स सीस्स	१०-२३
पायं रसा वित्तिकरा नराणं	३२-१०	पासित्ता ते महापप्पे	२२-१५	पुच्छामि ते महाभाग !	२५-११
पायच्छित्तं तमाहिंयं	३०-३१	पासित्तु महा हणमाहु मुज्जो	१२-२५	पुच्छिउण मए तुभं	२०-१७
पायच्छित्तं तु वसविहं	३०-३१	पासेण य महाजसा	२३-२६	पुच्छिज्जा पंजलिउओ	१०-२२
पायच्छित्तं विणओ	३०-३०	पासेण य महामुणी	२३-१२, २३	पुच्छेज्जा पंजलिउओ	२६-६
पायच्छित्तकरणेणं भन्ते ! जीवे किं...		पासे समियदंसेणे	६-४	पुज्जा जस्स पसीमन्ति	१-४६
	२६सू०१७	पासेहिं कूय्वातेहिं	१६-६३	पुटो केणइ कण्हई	२४-०, ४६
पायसाणीए महभा	१८-२		पि	पुटो तत्पहिंयासए	२-३२
पारिवकाउत्तथो	२६-४०, ४२, ४८, ५१	पिठणा सयं कोसलएण रत्ता	१२-२२	पुटो य दंसमसएहिं	२-१०
पारेवमगीवनिभा	३४-६	पिण्डबायं गवेसए	६-१६	पुटो वा नावियं वए	१-१४
पावं पुरा कम्मयकासि मोहा	१४-२०	पिण्डबायं वरे मुणी	३५-१६	पुडविक्कायमइगओ	१०-५
पावकम्मनिरासवे	३०-६	पिण्डोमाहुपडिमासु	३१-६	पुडवीआउक्काए	२६-३०
पावकम्मपवत्तणे	३१-३	पिण्डोत्तए व दुत्सोले	५-२२	पुडवी आउजीवा य	३६-६६
पावकम्मोहिं पाविओ	१६-५७	पियंकरे पियंवाई	११-१४	पुडवी कट्टमिस्सिवा	३५-११
पावकम्मो अणत्तसो	१६-५३	पियं तं विज्जई किंवि	६-१५	पुडवी छत्तसंठिया	३६-५७
पावयं परिकज्जए	१-१२	पियधम्मे दवधम्मे	३४-२८	पुडवीजीवाण अत्तरं	३६-८२
पावविट्ठिं त्ति मन्नाई	१-३८	पियपुत्तगा दोलिं वि माहुयस्स	१४-५	पुडवी य सकरा बाहुया य	३६-७३
पावविट्ठो उ अण्णाणं	१-३६	पियमपियं सव्व तित्तिक्खएज्जा	२१-१५	पुडवी साली जवा वेव	६-४६
पावविट्ठो विहन्नाई	२-२२	पियरं परमुत्तिलया	१८-१५	पुडवीसु सत्तसु भवे	३६-१५६
पावसमाणं त्ति पुच्छई	१७-३ ते १६ तक	पियरो वि तहा पुत्ते	१८-१५	पुत्तो विस्संभिया पया	३-२
पावसुयपसंगेसु	३१-१६	पिया आणेइ रुविणिं	२१-७	पुत्तो वरलीए सज्जायं	२६-१२
पावाइ कम्माइ पुणोत्तयामो ?	१२-४०	पिया मे सव्वसारं पि	२०-२४	पुत्तो पुत्तो वन्दाई सक्को	६-५६
पावेसु तं दमीसरा !	२२-२५	पियायसूय जक्खा य	३६-२०७	पुत्तं पावासो तहा	२८-१४
पासइ समण संजयं	१६-५	पिण्डुहं नगरमागए	२१-२	पुत्तं ठेवतु रज्जे	६-२
पासजाईपहे बहू	६-२	पिण्डुहं ववहरत्तस्स	२१-३	पुत्तं दारं व नायओ	१६-८७
पासया कोउगा विणा	२३-१६		पी	पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं	१८-३७, ४६
पासबद्धा सरीरिणी	२३-४०	पीणिणं विउले वेहे	७-२	पुत्तदारं व बंधवा	१६-१६
पासमाणी न कण्हईं साई	८-४	पीलीओ मि सक्कमेहिं	१६-५३	पुत्तसोगपुहुट्टिया	२०-२५
पासवपुच्छारपूभिं व	२६-३८	पीलेइ अत्तगुक्क किळिट्ठे	३२-२७, ४०, ५३, ६६, ७६, ६२	पुत्तं पठिठय गिहंति बावा !	१४-६
पासाए कारइलाणं	६-२४			पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं	१८-४६
पासाए कीलए रम्मे	२१-७		पु	पुत्तो मे भाय नाइ त्ति	१-३६
पासाएयु गिहेसु य ?	६-७	पुत्तलाणं तु लक्कणं	२८-१२	पुत्तमायम्म कुमार दो वी	१४-३
पासाओ वि न पिण्डई	२०-३०	पुत्तला समुदायिया	३६-२०	पुत्तं अत्तेउरं व मे	२०-१४

पुष्यपुरमेयणी	२०-१८	पोल्ले व मुट्टी जह ते असाये	२०-४२	फे	
पुरिमल पण्डितमी	२३-८७	पोसहं वुडुगो पल्लं	४-२३	फेजमुजुयसन्निमे	१६-१३
पुरिमा उज्जुजडा उ	२३-२६	पोसेज्जा बि सयंगणे	७-१	ब	
परिमाणं पुम्वितोम्मी उ	२३-२७	पोसे माते चउपय्या	२६-१३	बज्जमं मण्डिया व लेलंमि	८-५
पुरित्तसु व अट्टसयं	३६-५१	फ		बज्जमार्ग निरामिहं	१४-४६
पुरीए तल्य माहणे	२५-४	कम्पणवडसाहेसु य	२६-१५	बज्जमार्गाना पाणिणं	२३-८०
पुरे पुगणे उमुयारत्तामे	१४-१	कप्पं पि अणुसासणं	१-२६	बज्जो तवो होइ	३०-८
पुरोहिओ तस्स जत्ता य पत्ती	१४-३	फलेइ विसम्भवीणि	२३-४५	बन्धो हि बहेहि य	१-१६
पुरोहिहं तं कमसोऽणुक्कं	१४-११	फा		बन्धोक्कपहणिणो	६-६
पुरोहिहं तं ससुयं सवारं	१४-३७	कासओ उहए जे उ	३६-३६	बन्धु रायं ! तवं चरे	१८-१५
पुल्ल सोगणिए य बोडब्बे	३६-७६	कासओ कक्कजे जे उ	३६-३४	बम्भेरेरओ धीणं	१६-४५, ६
पुब्बं ता कल्पयेव पडिलेहे	२६-२४	कासओ गुए जे उ	३६-३६	बम्भेरेरओ मीमलू	१६-२, ३, ७, ९
पुब्बं विमुदसदम्भे	३-१६	कासओ निदए जे उ	३६-४०	बम्भेरेरओ सया	१६-८
पुब्बकम्मलपट्टाए	६-१३	कासओ परिणया जे उ	३६-१६	बम्भेरेरसमाहिए	१६-१५
पुब्बकोटीपुहलं तु	३६-१७६	कासओ मटए जे उ	३६-३५	बम्भेरेरस्स रक्कट्टा	१६-१
पुब्बकोटीपुहलेणं	३६-१८५, १६२, २०१	कासओ लहए जे उ	३६-३७	बम्भेरेरओ बम्भणो	२५-३०
पुब्बाइं बासाइं वरप्पमत्तो	४-८	कासओ लुक्कए जे उ	३६-४१	बम्भदत्तो महायसो	१३-४
पुब्बा वाससया बहू	३-१५	कासओ सीयए जे उ	३६-३८	बम्भम्मि नायउक्कयणेसु	३१-१४
‘पुम्बि व इण्हि व अणागयं व’	१२-३२	कासपरिणामलक्कणं	३४-२	बम्भयारि नमंसन्ति	१६-१६
पुम्बि भावणभाविआ	१४-५२	फासस्स कायं गहणं वयंति	३२-७५	बम्भलोए जह्मेणं	३६-२२६
पुम्बिल्लंमि व उक्कमाए	२६-८, २१	कासाणुमासाणुए य जीवे	३२-७६	बम्भलोया व लत्तमा	३६-२१०
पुहुत्तेण अणाईया	३६-६५	कासाणुरत्तस्स नरस्स एवं	३२-८४	बलमोरोहं व परियणंसब्बं	६-४
पू		कासाणुवाएण परिग्गहेण	३२-८०	बलबन्ते अण्डिहए	११-१८
पूदहेहनिरोहेणं	७-२६	कासा कुसली असमंजसं व	४-११	बलाबलं ज्ञाणिय अण्णो य	२१-१४
पे		कासिदिम निग्गहेणं भन्ते ! जीवे	२६५०६७	बला संहासमुज्जेहि	१६-५८
पेचवयं नावडुज्जमे	१८-१३	कासुए सिज्जसंघारे	२३-४८	बहवे दमुया मिलक्कय्या	१०-१६
पेच्चा होहिंसि उत्तमो	६-५८	कासुए सेज्जसंघारे	२५-३	बहवे परिभस्सई	३-६
पेज्जोसक्कियादंसणविजएणं भन्ते !	२६५०७२	कासुयं परकडं पिण्डं	१-३४	बहवे रोयमाणा वि	३-१०
पेडा य झट्टपेडा	३०-१६	कासुयम्मि अणावाहे	३५-७	बहिमिहारा अभिगम भिक्खं	१४-१७
पेतिया पल्लवन्ति	२७-१३	कासे अत्तिस्स परिग्गहे य	३२-८२	बहिमिहाराभि निविट्टचित्ता	१४-४
पो		कासे अत्तिने य परिग्गहे य	३२-८१	बहिया उड्डमादाय	६-१३
पोएण बवहन्ते	२१-२	कासे अत्तिस्सो दृष्टिओ अणिस्सो	३२-८३	बहुअन्तरायं न य दोहमाउं	१४-७
पोरिसीए च उत्थोए	२६-४४	कासे विरत्तो मणुओ विसोयो	३२-८६	बहुआगमविन्नाणा	३६-२६२
पोरिसीए चउग्गमाए	२६-२२, ३७, ४५	कासेसु जो गिडिम्वेड तिब्बं	३२-७६	बहुं खं मुणिणो भई	६-१६

बहुसंविधियारयं	७-८	बाबीसहस्रार्ध	३६-८०	बो	
बहु कम्म लेब किल्लानं	८-१५	बाबीस सागरा क	३६-१६५	बोद्धव्या इन्द्रकाश्यपा	३६-१३८
बहुपाणविणासणे	३५-१२	बाबीसाए परीसेह	३१-१५	बोही होह मुदुल्ला तेत्ति	८-१५
बहुपाणिविणासयं	२२-१८	बाहाहि काउं संगोफं	२२-३५	भ	
बहुवए विस्सई मग्गदेहिए	१०-३१	बाहाहि सागरो चेव	१६-३६	भए फासओ वि य	३६-४२से४६
बहुमाई पमुहरे	१७-११	बाहिरअत्तरो तहा	२८-३४; ३०-७	भए संट्ठाणओ वि य	३६-२२से४१
बहुयं मा य जालये	१-१०	बाहिरौ छविहो वुत्तो	२८-३४; ३०-७	भए से उ मंघओ	३६-२२, २६
बहुयाणि उ वासाणि	१६-६५	बि		भए से उ मणओ	३६-२७से४६तक
बहुसो चेव विबाइओ	१६-६३	बिहए वासचउक्कम्मि	३६-२५२	भएणीओ मे सहाराय !	२०-२७
बहूणं बहुणो सया	६-६	बिइयम्मि जहल्लेणं	३६-२३५	भइयव्वा ते उ खेतओ	३६-११
बा		बिइया य निवीहिवा	२६-२	भगवं अरिट्ट नेमि त्ति	२२-४
बाळं ति पविच्छइ अत्तपाणं	१२-३५	बो		भगवं ! एय मे लमे	१८-८
बायरकाए मणिविहाणा	३६-७४	बीए तोहेज्ज एसणं	२४-१२	भगवं गोयमे नामं	२३-६
बायरा जे उ पउजत्ता ३६-७१, ८५, ८३, १०६		बीयं फाणं क्रियायई	२६-१२, १८, ४३	भगवं बढमाणो त्ति	२३-५
	११८	बीयाणि हरियाणि य	१७-६	भगवं ! बाहराहि मे	१८-१०
बारसं बिउ बुडे	२३-७	बु		भगवं वेसालिए विवाहिए	६-१७
बारसहि जोगणेहिं	३६-५७	बुद्धपुत्त मियागट्ठी	१-७	भग्गजोयपराइयं	२२-३६
बारसेउ उ वासाई	३६-२५१	बुद्धस्स तिसम्म भासियं	१०-३७	भज्जं जयइ केसवो	२२-६
बाल सम्मइ सासन्तो	१-३७	बुढाणं अत्तिए सया	१-८	भज्जन्ति विइदुब्बला	२७-८
बालगणोइसाओ य	६-२४	बुडे अभिजाइए	११-१३	भज्जा पुत्ता य ओरसा	६-३
बालमरणणि बहुसो	३६-२६१	बुडे परिनिब्बुडे चरे	१०-३४	भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य	१३-२५
बालस्स पस बालत्तं	७-२८	बुडेहायत्तियं सया	१-४२	भगन्ता अकरेन्ता य	६-६
बालाणं अकामं तु	५-३	बुढो भोगे परिक्खयई	६-३	भणियं रसविबउज्जणं	३०-२६
बालाणं कूरकम्माणं	५-१२	बुढोवघाई न सिया	१-४०	भणिया जिणवरेहिं	३६-६०
बालाणं तु पवेइयं	५-१७	बू		भण्णं दुविह मणी	२४-१३
बाला पंथियमाणो	६-१०	बूहि जल्लाणं जं मुहं	२५-१४	भण्णं पडिलेहिता	२६-८
बालापावियाहिं दिट्ठीहिं	८-७	बूहि धम्माण वा मुहं	२५-१४	भत्तं पाणं मवेमए	२६-३१
बालाभिरामेसु दुहावहेसु	१३-१७	बे		भत्तपण्णक्काणेणं भन्ते ! जीवे किं	२६सू४१
बाले मज्जमुहं पत्ते	५-१५	बेहन्दिअया उठिई	३६-१३२	भत्तपाणस्स अट्ठाए	१६-८०
बाले य मन्तिए मूडे	८-५	बेहन्दिअयायउठिई	३६-१३३	भत्तपाणेषु पोसिया	२७-१४
बाले सन्तस्सई भया	५-१६	बेहन्दिअयायउठिई	१०-१०	भत्त पा नामेण अणिच्चियंगी	१२-२०
बालेहिं मुहेहिं अयाणएहिं	१२-३१	बेहन्दिअयायउठिई	३६-१३४	भट्टए कतिए य पोसे य	२६-१५
बाबत्तरि कलाओ य	२१-६	बेहन्दिअयायउठिई	३६-१२६	भमरे कीडजयंगी य	३६-१४६
बाबीसं सागराई	३६-२३३	बेहन्दिअयायउठिई	३६-१२७	भयभेरा तत्थ उइत्ति जीमा	२१-१६
बाबीसं सागरोबमा	३६-१६६, २३४				

भयवं कलौठरं तेषं	६-१२	भावे कलितस्तस् परिराहे य	५-३३-६३	निम्ना ह न बहुति मे	५-३३-६३
भयवं केसिबोयमे	२३-८६	भावे कलितो य परिराहे य	५-३३-६४	निम्नं कुराह कुम्भ	५-३४
भयवेराजो उबार	३-६	भावे कलितो दुहिजो अगित्तो	३२-६६	मी	
भयवं बासं नरोखरो	१८-४०	भावेनं पञ्चवेहि य	३०-१४	भीष्टं संते विष्ट तस्य	१८-३
भयवेराजं कलित्तो	१८-३५	भावेनं संहृतस्तस्	२८-१५	भीमा भयमेरवा डराला	१५-१४
भयवे. वि. बासहं बासं	१८-३५	भावे निरस्तो-भयुजो विस्तो	३२-६६	भीमा भीमकलोदया	२३-४८
भयवेहि पल्लितेहि य	१६-५५	भावेयु जो निष्ठिमुवेह तिष्णं	३२-८६	भीयं पवेविणं दट्टुं	२२-३६
भयवेराजं कलित्तो	३०-६	भावेयु जो निष्ठिमुवेह तिष्णं	३०-२३	भीमा य सा तहि दट्टुं	२२-३५
भयवेराजं कलित्तो	३४-५१	भयवेरं मुणिवरो विगयमोहो	८-३	भु	
भयवेराजं कलित्तो	२३-४८	भयवं भयवेरं पत्नवं	२४-१०	भुजोरगपरितप्ता य	३६-१८१
भयवेराजं कलित्तो	३६-६३	भयवेराजं कलित्तो	२४-१८	भुजन्ते संसोयिणं	२-११
भयवेराजं कलित्तो	३६-६४	भयवेराजं कलित्तो	१-२४	भुजं मायुस्तए भो	१६-४३
भयवेराजं कलित्तो	३६-२६८	भयवेराजं कलित्तो	१६-२६	भुजमागे सुं सं	५-६३०-६
भयवेराजं कलित्तो	६-२२	भयवेराजं कलित्तो		भुजामि मायुले भो	२०-१४
भयवेराजं कलित्तो	६-४२	भयवेराजं कलित्तो	१२-३	भुजामि ता कामग्रे पणामं	१४-३१
भयवेराजं कलित्तो	१४-४५	भयवेराजं कलित्तो	१४-२६	भुजाहि भोगाह इमाह भिक्खु !	१३-१४
भयवेराजं कलित्तो	७-२६	भयवेराजं कलित्तो	५-२२, २८	भुजाहि भोगाह मए समानं	१४-३३
भयवेराजं कलित्तो	२३-८५	भयवेराजं कलित्तो	३०-२५	भुजाहि सात्तिमं कूरं	१२-३५
भयवेराजं कलित्तो		भयवेराजं कलित्तो	३०-८	भुजितु नमीराया	६-३
भयवेराजं कलित्तो	२३-७७	भयवेराजं कलित्तो	२७-१०	भुजो अत्थ मायुल्लिया	५-२७
भयवेराजं कलित्तो	२६-२२	भयवेराजं कलित्तो	३५-१५	भुजो जत्थ मायुल्लेसु	७-२७
भयवेराजं कलित्तो	२८-६	भयवेराजं कलित्तो	३५-१५	भुजो वि मन्दा ! पगरेह पावं	१२-३६
भयवेराजं कलित्तो	१३-४	भयवेराजं कलित्तो	३५-१५	भुजभोगा तजो पञ्चा	२२-३८
भयवेराजं कलित्तो	२०-२६	भयवेराजं कलित्तो	३५-१५	भुजभोगी तजो जाया	१६-४३
भयवेराजं कलित्तो	२०-२८	भयवेराजं कलित्तो	२-२६	भुजा विद्या भित्ति तमं तयेणं	१४-१२
भयवेराजं कलित्तो	४-६	भयवेराजं कलित्तो	३१-१०	भुजा रता मोह ! जहाह ने वजो	१४-३२
भयवेराजं कलित्तो	३२-१६	भयवेराजं कलित्तो	२६-११, १७	भुजा विस्फलोभमा	१६-११
भयवेराजं कलित्तो	१६-६४	भयवेराजं कलित्तो	२५-६	भुजभोगाहमन्तीले य	३६-७५
भयवेराजं कलित्तो	३०-२४	भयवेराजं कलित्तो	३१-११		
भयवेराजं कलित्तो		भयवेराजं कलित्तो	१-३२	भू	
भयवेराजं कलित्तो	२६-७५	भयवेराजं कलित्तो	३१-१०	भूकम्पं य ने पञ्चमि	३६-२६४
भयवेराजं कलित्तो	३२-८५	भयवेराजं कलित्तो	३५-१५	भूकम्पं विहिंसई	३-८
भयवेराजं कलित्तो	३२-८२	भयवेराजं कलित्तो	३५-७	भूकम्पेणाहिया	१८-१७
भयवेराजं कलित्तो	३२-८७	भयवेराजं कलित्तो	३५-७	भूकम्पं जगई जहा	१८-२५
भयवेराजं कलित्तो	३२-८३	भयवेराजं कलित्तो	३५-७	भूकम्पं कीर्णं जहा	३५-८

मेमो होइ आक्षिपो	३६-१६८	मगेण जयणाइ य	२-४-४	मणस्स भावं सहणं बधत्ति	३२-८७, ८८
मेत्तूणं कम्मकंथयं	६-२२	मगे तत्थ सुहावहे	२३-८७	मणियणकुट्टिमत्ते	१६-४
मेयं वेहस्स कप्पए	५-३१	मगे य इह के तुले ?	२३-१२	मणुया दुव्हिमेया उ	३६-१६५
मेया अट्ठवीसहं	३६-१६७	मयवं नाम महाजसो	१८-३६	मणुया देवा य आक्षिपा	३६-१५५
मेया छत्तीसमाहिया	३६-७७	मच्चुणाज्जमाहो लोयो	१४-२३	मणुस्साउ तहेव य	३३-१२
		मच्छ नरं तेइ ह्वं जत्तकाले	१३-२२	मणीयं वक्कणयं	१-४३
		मच्छा जहा कामणो पहाय	१४-३५	मणीःवे कामणो पहाय	१४-४०
मोहसा समणमाहणे	६-३८	मच्छा य कच्छमा य	३६-१७२	मणीरुं चिट्ठं कम्मसंयया	१-४७
मोए वयसि पत्थिवा	६-५१	मच्चियपत्ता तणुयरो	३६-५६	मणो साहसिओ भीमो	२३-८८
मोगकालमिं संयया !	२०-८	मच्छिया मसणा तहा	३६-१४६	मणोसिला सासराजणपत्ताले	३६-७४
मोगा इमे संगकरा हवन्ति	१३-२७	मच्छे जहा आ मिसमोगमिंदे	३२-६३	मणोहरं वित्तहरं	३५-४
मोगामिसदोसविसण्णे	८-५	मच्छो वा अवसो अहं	१६-४४	मण्णकुप्पिहिं वेइए	२०-२
मोगी भमइ संसारे	२५-३६	मच्चिमा उज्जुपन्ना य	२३-२६	मत्तं च गग्गहत्थिं	२२-१०
मोगे भुंवाहि संयया !	२०-११	मच्चिमाउवरिमा तहा	३६-२१४	महवमाए णं भत्ते ! जीवे किं...	२० ५०
मोगे भोच्चा वसित्ता य	१४-४४	मच्चिमाभमच्चिमा चेव	३६-२१४	मत्तं भूलं बिबिहं वेज्जुज्जितं	१५-८
मोच्चाण मोए सह इत्थियाहिं	१४-६	मच्चिमाहेट्ठिमा तहा	३६-२१३	मत्तमूलविताया	२०-२२
मोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ	१७-३	मज्जे च्छिट्ठिं गायमा ?	२३-३५	मत्ताजोगं काउं	३६-२६४
मोच्चा माणुस्स मोए	३-१६	मगइच्छियचित्तत्थो	३०-११	मत्ता निररं मच्छन्ति	८-७
मो भिक्खू सव्वकाभियं	२५-८	ममं पवत्तमाणं तु	२४-२१	मत्ता य फासा बहुलोहिज्जा	४-१२
		मणं पि न पओसि	२-११, २६	मत्तन्ता अणुणज्जबं	३-१४
मत्तर	३६-२०४	मणगुत्तमाए णं भत्ते ! जीवे किं	जणयइ ? २६ सू० ५४	मत्तं छिन्देइ सुयणू !	२२-३७
ममेणप्राणं जहन्नेणं	३६-२१६	मणगुत्ती बज्जिहा	२४-२०	मत्तवंचं च सहकमयाव	१६-८६
मोयमे परिणिट्ठए	२-३०	मणगुत्ती वयगुत्ती	२४-२	ममं रोयइ पव्वज्जा ह्वं दुक्खं	१६-६८
मोयावेउं बहु जणं	२२-१७	मणगुत्ती वयगुत्ती	१२-३; २२-४७	ममं लामे पि वेहाए	१-२७
		मणमाणं च केवलं	२८-४; ३३-४	ममं हज्जज्जमागया	१४-४५
मए उ मन्द पुण्णेणं	१८-७	मुणपरिणामे य कए	२२-२१	ममं नाणुज्जयन्ति य	१८-१४
मए नाय मणवं वा	२०-२६	मणपत्थायजणमि	१६-२	ममलक्खेण चिट्ठेइ	२७-७
मए सोढाओ भीमाओ	१६-४५	मणपत्तो न मे क्खि कोइ	१२-३२	ममेवु बन्धमगुत्तीनु	३१-१०
मए सोढाणि भीमाभि	१६-४६	मणपत्तो न मे क्खि कोइ	१५-१२	मरणमत्तारणत्ते	३६-७३
मसट्ठा भविस्सज्जए	२२-१५	मणसमाहारणमाए णं भत्ते ! जीवे किं...	२६ सू०-५७	मरणं पि सणुणाणं	५-१६
मसं कुत्तीलाण जहाय सव्वं	२०-५१	मणसा कायवक्केणं	६-११; २५-२५	मरणमसिं कोयइ	७-६
मसं च पव्वज्जइ	२३-४६	मणसा वयसा कायसा वेव	८-१०	मरणमिं विराहिया होत्ति	३६-२५६
मसं बुद्धेहिं देसिणं	३५-१	मणसा वि न पत्तए	३५-४, १३, १८	मरिहिति ते वराया	३६-२६१
मसं विराहेणु विणुत्तमाव	२०-५०				
मसमासी महागुणी	२५-२				
मसो जणहवज्जिए	२४-५				

मरिहिसि रायं ! जया तया बा	१४-४०	महासुक्ते जहन्नेणं	३६-२२	मायन्ने अलणपाणस्त	२-३
मरम्मि बइरवालाए	१६-५०	महि माणिसूरणो	१८-४२	माया गर्हपण्डिबाओ	६-५४
मल्लधूयेण बासियं	३५-४	महिदिक्खो पुण्णफलोववेओ	१३-२०	माया पिवा क्खुता माया	६-३
मसंत्तभागा जहन्नेण नीलठिई	३४-४२	महिदिक्खं पुण्णफलोववेयं	३३-११	मायामुसं बड्डहो लोभोसा	३२-३०, ४४, ५६
मसंत्तभागं जहन्निया होइ	३४-४३	महमेरगस्स व रसो	३४-१४		६६, ८२, ६५
महज्जुई पंचवयाई पालिया	१-४७	महोराया व गम्बळा	३६-२०७	माया य मे महाराया !	२०-२५
महत्पज्जव विणिज्जओ	२३-८८	मा		मायालोमे व पण्णुए	३४-२६
महत्त्वल्हा वयणपमूया	१३-१२	माइल्ले पिसुणे सडे	५-६	मायाविजएणं भन्ते ! जीवे किं...	२६सू०७०
महत्तमोहं कसिणं मयाबर्हं	२१-११	माई अक्खणमाई	३६-२६५	मायाबुद्ध्यमेयं तु	१८-२६
महापायाया इसिणो हवन्ति	१२-३१	माई कण्हुरे सडे	७-५	मारिजो य अणत्तसो	१६-६४, ६५
महत्तमायाओ भीमाओ	१६-७२	मा ई मुञ्जेण पबइ	२७-६	माखुया पत्तहारया	३६-१३७
मह्या संवेगनिज्यं	१८-१८	मा एयं होल्ल अहोलीणज्जं	१२-२३	मा वन्तं पुणो वि आइए	१०-२६
महाउदगवेगस्स	२३-६६	मा कासि कम्माई महाल्लमाई	१३-२६	मासक्खमणपाराणे	२५-५
महाउदग वेगेणं	२३-६५	मा कुले गम्बणा होमो	२२-४३	मासद्वमासिएणं तु	३६-२५५
महाजलेमु उच्छ्रं वा	१६-५३	मा गलियस्से व कसं	१-१२	मा सज्जे तेएण भे निह्हेज्जा	१०-२३
महाजयं जयई जलसिट्ठं	१२-४२	माणं मायं तहेव लोहं व	६-३६	मासस्स ऊ पारणए महप्पा	१२-३५
महाजको एस महाणुभागो	१२-२३	माणविजएणं भन्ते ! जीवे किं...	२६सू०६६	मासिएण उ भत्तेण	१६-६५
महावगिंसंकासे	१६-५०	माणुसं जोणिमैत्ति जे	७-१६	मासेणं चउरंगुलं	२६-१४
महानागो र३ कंचुयं	१६-८६	माणुसत्तं भवे मूलं	७-१६	मासे मासे गवं दए	६-४०
महानियण्ठाण वए पहेणं	२०-५१	माणुसत्तंमि आयाओ	३-११	मासे मसे तु जो बालो	६-४४
महानियण्ठिउजमिणं महासुयं	२०-५३	माणुसत्तं सुई सड्डा	३-१	माहं परेहि दम्मन्तो	१-१६
महापठमे तवं चरे	१८-४१	माणुसत्ते असारम्मि	१६-१४	माहणकुजत्तंभूओ	२५-१
महापसावस्स महाजसस्स	१६-६७	माणुसत्तएणं जे यावि दिक्खा	१४-६	माहणत्तं जहाभूयं	२५-३५
महाबलो रायसिओ	१८-५०	माणुस्सं लु मुदुल्लहं	२०-११, २२-३८	माहणभोदय विविहा 'य सिप्पिणो'	१५-६
महामूणो महापडन्ने महाजसे	२०-५३	माणुस्सं अवमागए	१८-२६	माहणो दारया वेव	१४-५३
महामेहत्थसूयाओ	२३-५१	माणुस्सं विगहं लद्धं	३-८	माहणेण परिकवत्तं	१४-३८
महारंमपरिग्गहे	७-६	माणेणं अहमा गई	६-५४	माहणो य पुरोहिओ	१४-५३
महारणम्मि जायई	१६-७८	मा तं विदयं गवेसए	१०-३०	माहिन्दम्मि जहन्नेणं	३६-२२५
महारिसि उत्तम ठाण पत्त	१२-४७	मा भमिहिसि भयावट्टे	२५-३८	मा हू तुमं सोययियाण सम्भरे	१४-३३
महाविघाण सज्जुं	३६-२४४	मा मगो विसमे वगाहिया	१०-३३	मा हू भन्ते ! मुसं वए	२०-१५
महाबीरस्स भगवओ	२१-१	मायं व वज्जए सया	१-२४	मि	
महावीरेण देसियं	५-४	मायं जल्य उ पवयणं	२४-३	मिउं पि वण्णं पकरंति सीसा	१-१३
महाविघाणं इसिणं पत्तस्सं	१२-४७	मायं न सेवे पयहेज्ज लोहं	४-१२	मिउ मइवत्तं पन्ने	२७-१७
महासुक्का व दीणत्ता	३-१४	मायं पिण्डस्स पाणस्स	६-१४	मिए खुमिसा हयगओ	१८-३
महासुक्का सहासारा	३६-२११	मा य ञ्जालियं कासी	१-१०	मिओ वा अवसो अहं	१६-६३

निगचारियं चरित्साण	१६-८१, ८२	मुत्तीए ण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	मोणं विराहितुं असाहक्ये	२०-४६
निगचारियं चरित्साणि	१६-८४		मोसं अदत्तं च असेवमाणा	१२-४१
निगच्छं उवणिग्गए	१८-१	मुसं ते एवमाहुं तु	मोसं अदत्तं च परिग्रहं च	१२-१४
निगच्छतिसेवए जणे	१०-१६	मुसं न वयई जो उ	मोसस्स पच्छा य पुरत्तयो य	३२-३१, ४४, ५७, ७०, ८३, ८६
निगच्छदिट्ठी अणारिए	३४-२५	मुसं परिहरे भिक्खू	मोहं कळो एत्ति उ विपपलावो	१३-३३
निगच्छा कारोय नित्ताए	१६-६	मुसाभासा निरत्थिया	मोहं गयस्स सत्तस्स	१६-७
निगच्छा दंडो पजुंजई	६-३०	मुसाभावविज्जणं	मोहं च तण्हायेयं बयस्ति	३२-६
निगच्छादंसणरत्ता	३६-२५७, २५६	मुसुब्धी य हल्लिहा य	मोहं च भिक्खू समयं वियक्खणो	२१-१६
निगच्छादिट्ठी अणारिया	१८-२७	मुहपोत्तियं पडिलेहिता	मोहं वा कसिण नियच्छई	१५-६
वित्तनार्इपरिवुडो	२०-११	मुहुरी निक्कसिज्जई	मोहट्ठागेसु वेव य	३१-१६
वित्तवं नायवं ढोइ	३-१८	मुहं मुह माहगुणे जयन्तं	मोहणिज्जं पि तुविहं	३३-८
विता य तह बवच्च	१८-१४	मुहत्तअहिमाइ च उक्कोसा	मोहणिज्जस्स उक्कोसा	३३-२१
वियं कालेण भक्खए	१-३२	मुहत्तइ तु जहत्ता	मोहणिज्जस्स दंसणे	३३-६
वियचारियं चरित्साणि	१६-८५		मोहाणिता पज्जलणाहिणं	१४-१०
मियाइ पुत्तस्स निवम्म भासियं	१६-६७	मू	मोहो हजो जस्स न होइ तण्हा	३२-८
मिया कालिजरे नेगे	१३-६	मूलं चेतुण निगमया	य	
मिया तत्सगमाहिमी	१६-१	मूलच्छेएण जीवाणं	य सम्मतसद्दहणा	२८-२८
मियापुत्ते जहारिखी	१६-६६	मूलिय ते अइच्छिया	र	
मियापुत्ते त्ति विस्सुए	१६-२	मूलियं ते पवेसन्ति		
मियापुत्ते महिहिउए	१६-८	मे	रई नोवलमामहं	१६-१३
मिहिलं सपुुरजणवयं	६-४	मेत्ति मूएसु कप्पए	रडयाए जहक्कमं	२२-१२
मिहिलाए वेडए बच्छे	६-६	मेत्तिज्जमाणी भयई	रक्खमाणी तयं वए	२२-४०
मिहिलाए डज्जमाणीए	६-१४	मेत्तिज्जमाणी बमइ	रक्खसा किंनराय कि पुरिसा	३६-२०७
मिहोक्कं कुणइ जणवक्कहं वा	२६-२६	मेयने कि पमासई ?	रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं	४-१२
मु		मेरओ य भट्ठिण य	रज्जं तु गुणसमिद्धं	१८-४६
मुक्कपासो लुब्भूओ	२३-४०, ४१	मेह अब वाएण अक्कमाणी	रज्जन्तो संजमम्मि य	१६-६
मुक्को वि विसवक्खणं	२३-४६	मेह्ठाओ सुसंवुडो	रत्ति पि चउरो भागे	२६-१७
मुणरेहिं मुसंडीहि	१६-९१	मो	रत्तो तहिं कोसलियस्स धूवा	१२-२०
मुचवइ कारोओ जणो	६-३०	मोक्खं गवो अणुत्तर	रमए अज्जवयणंमि	२४-२०
मुचवई छविपव्वाओ	५-२४	मोक्खमगमइं तच्चं	रमए पणिए सासं	१-३७
मुक्खेज्ज कयाइ सव्वपुक्खाणं	८-८	मोक्खसम्भूयसाहणे	रेवज्जा संजमे मुणी	३६-२४६
मुणी भासि विसारए	२७-१	मोक्खाभिकसिस्सवि माणवस्स	रयणाभ सक्कराभा	३६-१५६
मुणी करे लाडे निक्कमावगुत्ते	१४-१	मोक्खाभिकंखी वभिजायसज्ज्हा	रयहायरसंकासा	३४-६
मुणी विवयसंगामो	६-२२	मोणं चरित्तामि सविक्क वम्मं	रवाइ खेवेज्ज पुरेकडाइ	२१-१८

रसओ अथिल्लि जे उ	३६-३२	रा	रायवेष्टि व मल्ला	२७-१३	
रसओ कडुए जे उ	३६-३०	राइयो तम्मि संजाए	२०-५	रायार्णं न पश्चिमत्तेह	१८-६
रसओ कसाए जे उ	३६-३१	राइभाएसु चउउ कु वि	२६-१७	राया बलभट्टो ति	१६-१
रसओ तितए जे उ	३६-२६	राइयं च आईयारं	२६-४७	राया रज्जं तु हारए	७-११
रसओ परिणवा जे उ	३६-१८	राइयं तु आईयारं	२६-४८	राया सह वैबीए	१४-३
रसओ फासओ थैव	३६-२२ से २८	राईभोयणवज्जणा	१६-३०	रु	
रसओ फासओ तहा	३६-१५	राईभोयणविरओ	३०-२	रक्खमूले व एकओ	३५-६
रसओ मडुरए जे उ	३६-३३	राईमई असम्भन्ता	२२-३६	रक्खमूले व एगओ	२-२०
रसं न किंचि अवउअई से	३२-६४	राईमई विचित्तेह	२२-२४	रक्खा गुण्हा य गुम्मा य	३६-६४
रसगिडेण यन्तुणा	१८-७	राओवर्यं चरेज्ज लाडे	१५-२	रप्प सुवण्णे य वडरे य	३६-७३
रसगिडे न सिमा भिमलाए	८-११	रागं च दोसं च तहेव मोहं	३२-६	रू	
रसत्तो कंदुकुम्मीसु	१६-५१	रागं दोसं च छिन्धिया	१०-३७	रुक्कधरे मुणिवराण हेट्टिठ्ठे	१७-२०
रसत्स जिअं गहणं वयंति	३२-६२	रागदोससमजियं	३०-१	रुक्खत्स चक्कं गहणं वयंति	३२-२३
रसाणुासाणुवाए य जीवे	३२-६६	रागहोसमिणा जगं	१४-४३	रूवाणुासाणुवाए य जीवे	३२-७७
रसानुरत्तत्स नरत्स एवं	३२-७१	रागहोसभयाईयं	२५-२१	रूवाणुरत्तत्स नरत्स एवं	३२-३२
रसानुवाएण परिगहेण	३२-६७	रागहोसवसं यया	१४-४२	रूवाणुवाएण परिमाणेण	३२-२८
रसा पगामं न नितिविज्झा	३२-१०	रागाहोससमजियं	३०-४	रूवाहिएसु सुरेसु य	३१-१६
रसे अतिते य परिगाहे य	३२-६८	रागहोसावओ तिअा	२३-४३	रूविणो थैवअक्की य	३६-४, २८
रसे अतितो दुडिओ अणित्से	३२-७०	रागहोसे य दो पावे	३१-३	रूविणो य चउअिअहा	३६-१०
रसे अतितत्स परिगाहे य	३२-६६	रागत्स दोसत्स य संखएणं	३२-२	रूविणो वि चउअिअहा	३६-४
रसेण वण्णेण य भुजअमाणा	३२-२०	रागत्स हेउं समणुनमाहु	३२-२३, २६, ४६, ६२, ७५, ८८	रूवे अतितत्स परिगगाहे य	३२-३०
रसे फासे तहेव य	१६-१०			रूवे अतितं य परिगाहे य	३२-३६
रसे विरत्तो मणुओ विसोगो	३२-७३	रागाउरे बोसहिणंभगिअ	३२-५०	रूवे अतितो दुडिओ अणित्से	३२-३१
रसेसु ओ गिद्धिमुवेह तिअं	३२-६३	रागाउरे कामणुणेसु गिडे	३२-८६	रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो	३२-२४
रसेसु नाणुगिज्जेअा	२-३६	रागाउरे बडिसविभल्लाए	३२-६३	रूवेसु ओ गिद्धिमुवेह तिअं	३२-२४
रसो उ काउए नायओ	३४-१२	रागाउरे सीयअलाबल्ले	३२-७६	रे	
रसो उ किण्हाए नायओ	३४-१०	रागाउरे से जह वा पयं	३२-२४	रेणुयं च पडे लगं	१६-८७
रसो उ सेउए नायओ	३४-१३	रागाउरे हरिणमिणे व मुडे	३२-३७	रेवयंमिं ट्ठिओ भगं	२२-२२
रसो उ नीलाए नायओ	३४-११	रागो दोसो मोहो	२८-२०	रो	
रसो उ सुक्काए नायओ	३४-१५	रागो य दोसो वि य कम्मवीयं	३२-७	रोएह उ मल्ला	२८-१७
रहनेमी अहं भदे !	२२-३७	राडाभणी वेक्कियप्पयासे	२०-४२	रोगा य मरणाणि य	१६-१५
रहनेमी अमणित्तो	२२-३४	रायं अभिअं सणुवाय देवी	१४-३७	रोणेणाअस्सएण य	११-३
रहाणीए तहेव य	१८-२	रायत्त देवी कयाकावई य	१४-३	रोक्को वा जह पाविओ	१६-५६
रहियं पीजणेण य	१६-१	रायसिं उअसाए खडाए	६-५६	रोअ विचित्ते वित्तपत्तए	३६-१५
रहे कल्लाच भासई	११-१२	रायल्लखणजंजए	२२-१, ३	रोहिणी देवी उहा	२२-२
रहे भासइ पावयं	११-८				

लीबिया तं नक्षत्रमे	१-३३	लेसाणं तु मुणेह मे	३४-२	लोहं हुंछं भरहं रक्षं च	३२-१०२
लक्षणां पञ्चवाणं तु	२८-६	लेसाणं होह परिणामो	३४-२०	लोहमुपेहि पक्षिह	१६-५८
लक्षणात्सरसंजो	२२-५	लेसाणं ठिहं तु बोच्छामि	३४-४०	लोहा वा जह वा मया	२५-२३
लक्ष्म वि आरियत्तणं	१०-१७	लेसाणं ठिहं उ देवाणं	३४-४७	लोहि वीहू य वीहू य	३६-६८
लक्ष्म वि उत्तमं सुहं	१०-१६	लेसाणं ठिहं जहि बहि जा उ	३४-४५	लोहो हवो जस्त न किण्णाहं	३२-८
लक्ष्म वि माणुसत्तणं	१०-१६	लेसाणं हूति ठाणाहं	३४-३३	व	
लक्ष्म विपे अल्लो वा	२-३०	लेसासु छसु काएसु	३१-८	वहसुत्ती चउत्तिहा	२४-२२
लक्ष्म विपे अल्लो वा	२-३०	लेसाहि परिणयाहि	३४-६०	वहस्सो कम्मणा होह	२५-३१
लक्ष्म विपे अल्लो वा	२-३०	लेसाहि सव्वाहि	३४-५८, ५९	वएज्ज न पुणो त्ति य	१-४१
लया चिट्ठइ गोयसा !	२३-४५	लो		वए विओगे य कहि सुहं से ?	३२-२८, ४१, ५४, ६७, ८०, ९३
लया य इह का बुत्ता ?	२३-४७	लोए किस्ती से जायए	१-४५	वएसु इद्वियत्थेसु	३१-७
लयाचलय पब्बया कुलुणा	३६-६५	लोएणदेसे ते सव्वे	३६-६७, १३०, १३६, १७३	वंकजडा य पच्छिमा	२३-२६
लया वल्ली तणा तहा	३६-६४	लोएणदेसे लोए य	१८२, १८६	वंकं वंसमायारे	३४-२५
ललिण नलकवरो	२२-४१	लोएणदेसे लोए य	३६-११	वण्णल्ल पमावणे अट्ठ	२८-३१
ललिणचलकुंडलतिरीडी	६-६०	लोणं पि एसो कुविओ बहेज्जा	१२-२८	वज्जपाणी पुरन्दरे	११-२३
लक्ष्म विहारिणो	१४-४४	लोणदेसे य बायरा	३६-७८, ८६, १००, १११, १२०	वज्जभोक्क हिएसए	३४-२८
ला		लोणममि दुराहं	२३-८१, ८४	वज्जिता केवलं लेसं	३४-४५
लामं अलामं च मुहं च कुक्कं	१४-३२	लोणताहं दमीसरे	२२-४	वज्जेज्जा पणिहाणं	१६-१४
लामन्तरे जीविय बृहत्ता	४-७	लोणमिता विद्याहिया	३६-७	वज्जेयव्वा य मोसली तइया	२६-२६
लामालाममि संतुट्ठे	३५-१६	लोणस एण देसमि	३६-१४६, १५८, १६८, २१७	वज्जेयव्वा मुत्तुक्करो	१६-३०
लामालामे मुहे दुक्खे	१६-६०	लोणालोय य आगसे	३६-७	वज्जमं पासइ वज्जमं	२१-८
लामा सुल्ला य तुमे महेत्ती !	२०-५५	लोणमुत्तमं ठाणं	६-५८	वज्जममणसोभाणं	२१-८
लामो देवगई भवे	७-१६	लोणे लिणजोयणं	२३-३२	वट्ठमाणे उ संजए	११-६
लाहा लोहो पबट्ठई	८-१७	लोमविज्जणं अत्ते ! जीवे किं??	२६५०७१	वट्ठईहिं तुपो विव	१६-६६
लि		लोमाओ दुहवो मयं	६-५४	वट्ठइ हायए वावी	२६-१४
लिमे दुविहे मेहावि !	२३-३०	लोमाविले आययई अवत्तं	३२-२६, ४२, ५५, ६८, ८१, ९४	वट्ठइमाणे अवाहि य	२२-२६
लु		लोमे य उवउत्तया	२४-६	वणफईणं आउं तु	३६-१०२
लुत्तकसं जिद्वियं	२२-२५, ३१	लोयगमि पइट्ठिया	३६-६३	वणस्सइकायमइगवो	१०-६
लुत्तकसं सक्कमुणा	६-३	लोयमे य पइट्ठिया	३६-५६	वणजो गम्बजो चेव	३६-१५
लुत्तकसं ब्रह्मो मुडा	६-१	लोयलो उ विद्याहिवो	३६-६१	वणजो जे भवे किण्हे	३६-२२
ले		लोयलो उ विद्याहिवो	३६-६१	वणजो जे भवे नीले	३६-२३
लेप्पाहिं सज्जो विव	१६-६५	लोयलो उ विद्याहिवो	३६-६१	वणजो परिणया जे उ	३६-१६
लेयमायाए संवए	६-१५	लोयलो उ विद्याहिवो	३६-६१	वणजो पीए जे उ	३६-२४
लेयज्जणं पवक्खामि	३४-१	लोयलो उ विद्याहिवो	३६-६१		
लेसाणं अप्पसत्ताणं	१३४-१६, ८	लोयलो उ विद्याहिवो	३६-६१		

उत्तरङ्गयणं (उत्तराङ्गयन)

४६

बण्णो लोहिणं जे उ	३६-२४	बह्हराणि सराणि य	१६-८०	बावन्नुकुदंसणवज्जणा	२८-२८
बण्णो सुमिकले जे उ	३६-२६	बह्हरेहिं सरहेि वा	१६-८१	वासं तत्थंभिरोगेय	३५-६
बण्णं अरा हरइ मरस्स रायं	१३-२६	बवहारे उवया एसा	७-१५	बासन्ते अन्धवारंमि	२२-३३
बण्णरसगन्धकासा	२८-१२	बसहे जुहाहिबई	११-१६	बासलक्खणे साहिंयं	३६-२२१
बण्णेणं भावमणमुपन्ते उ	३०-२३	बसाओ हहिराणि य	१६-७०	बासाई बारसे व उ	३६-१३२
बण्णे रुवे य सव्वतो	६-११	बसासि हरियांमि य	१८-२६	बासाणुक्कोसियाय भवे	३६-८०, ८८, १०२
बत्तणालवळणो कालो	२८-१०	बसीय सोबागनिबेसणुसु	१३-१८	बासिण्टु ! भिक्खायरियाइ कालो	१४-२६
बत्थाई पडिहेहए	२६-२३	बसुवेवे ति नामेणं	२२-१	बासीचन्दणवप्पो य	१६-६२
बद्धमागगिहाणि य	६-२४	बसे गुहकुले निक्खं	११-१४	बासीमुहा य सिप्पीया	३६-१२८
बन्तं इच्छसि आवेउं	२२-४२	बसे ते ठावहत्ताणं	६-३२	बासुदेवं मङ्गिहियं	२२-८
बन्तराणं अहन्नेणं	३६-२२०	बहणे बहमाणस	२७-२	बासुदेवस जेठुणं	२२-१०
बन्तासी पुरिसो रायं !	१४-३८	बहवन्नवरीसहा	१६-३२	बासुदेवा य णं भणइ	२२-२५, ३१
बन्दइ क्षमित्थुणतो	६-५५	बहेइ रसमुच्छिणं	१८-३	बासिणुल्ला उ अन्तरा	२२-३३
बन्दई य तओ गुहं	२६-५०	बहेई से नराहिबे	१८-५	बा'हओ बद्धरुओ भ	१६-६३
बन्दणणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		वा		बाहिणो वेयणा तहा	२३-८१
	२६५०११	बाइया संगहिंया जेव	२७-१४	बाहीरोगण अलए	१६-१४
बन्दणं पुयणं तहा	३५-१८	बाउक्कायममगओ	१०-८	बाहीरोगेहि पीडिओ	१६-१६
बन्धमाणा नमंसन्ता	२५-१७	बाउजीवाण अन्तरं	३६-१२४	वि	
बन्दिऊग तओ गुहं	२६-४५	बाएइ तसं पच्छिइइ वा	२६-२६	विउलं अट्ठिग मुयं	१-४६
बन्दिउ तओ गुहं	२६-२२, ३७, ४०, ४१, ४२, ४८, ४६, ५१	बाएण हीरमाणंमि	६-१०	विउलं जेव वणोहंसंभयं	१०-३०
बन्दिता य तओ गुहं	२६-८	बागरेउज जहामुयं	१-२३	विउमिऊग इन्दत्तं	६-५५
बमणविरेयधूमणेत्तसिणाणं	१४-८	बाहेमु व रच्छामु व	३०-१८	विक्रिणन्तो य वाणिओ	३५-१४
वयं व सत्ता कामेसु	१४-४४	बाहेहिं पंजरेहिं व	२२-१४, १६	विक्खायकित्तो धिदमं	१८-३६
वयं पवत्तमाणं तु	२४-२३	बाणारसीए बहिंया	२४-३	विक्रिणन्ता वेइया छट्ठा	२६-२६
वयणुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		बाणिमो देह धूरं	२१-३	विणईनिज्जुहणं करे	३६-२५२
	२६५०५५	बादं बिबिहं समिक्ख लोए	१५-१५	विगलिन्दियया हु दीसइ	१०-१७
वपजोग मुच्चा न अवमममाहु	२१-१४	बावणाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६५०२०	विगहाकसायसन्माणं	३१-६
वयणं असुवपुव्वं	२०-१३	बायणा पुच्छणा जेव	३०-३४	विगहासु तहेइ व	२४-६
वयणमिच्छे पुणो पुणो	१-१२	बाया अणुव कम्मणा	१-१७	विगिं व कम्मणो हेउं	३१-१३
वय समाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?		बायाविओ वइ हओ	२२-४४	विगिट्ठं तु तवं वरे	३६-२५४
	२६५०५८	बायाविरियमेलेण	६-६	विचित्तं तु तवं वरे	३६-२५२
वयाणि सीलाणि परीसहे य	२१-११	बारिमज्जे महालओ	२३-६६	विज्जमंति तए काए	३६-८२, ६०, १०४, ११५, १२४, १३४, १३५, १६८, १७७, २४६
वरं मे अण्णादतो	१-१६	बालुयाकवले जेव	१६-३७	विजययोस्स जन्मि	२५-५
वरवाणीए व रतो	३४-१४	बालुमाभा य आहिवा	३६-१५६		

विजयघोसे त्ति मागेणं	२५-४	विषयमुपपन्नं पण्डितं	२४-२७; ३०-३७	विबिहाणं व आसवाणं जारिखो	३४-१४
विजयघोसे य माहो	२५-३४	विषयमुपपन्नं पण्डितो	३१-२१	विषयहिं अरउजन्तो	१६-६
विजया वैजयन्ता य	३६-२११	विषयसम्पन्नाधायं	५-१८	विस् तालउडं जहा	१६-१३
विजहिणुं उज्जसंभोगं	८-२	विषयसीणज्जं मेहावी	५-३०	विस् तु पीयं जहा कालकुडं	२०-४४
विजजमाणे परे लोए	१८-२७	विष्कुरतो अणेतो	१६-५४	विस्सन्ना पावकम्मोहि	६-१०
विजहावरणपारमा	१८-२२	विभूतं परिकज्जेजा	१६-६	विस्सये सज्जोघारे	३४-१२
विजहावरणसंपत्ते	२३-२,६	विमणो विसणो अह माहणो तो	१२-३०	विस्समं मग्गोअण्णो	५-१४
विजजामत्ततिगिच्छणा	१८-२४	विमहो विसणो य परं	३६-२६३	विस्समं सीला य भिक्खुणो	५-१६
विजजामाहणसम्पदा	२०-२२	विमहस्सेत्तणं चरे	२-४	विस्सालकिन्ती य तहोमुयारो	१४-३
विज्जुत्तं पायवचलं	२४-१८	विमयपक्खी य वोढव्या	३६-१८	विस्सालिसेहिं सोलेहिं	३-१४
विज्जुतोयामणिपत्ता	१८-१३	विमयिज्जहं सज्जहं मुज्जहं य	१२-१०	विस्सीयईं सिद्धिं धाउयमि	४-६
विज्जुतोयामणिपत्ता	२२-७	विमयिणिया दुक्खविद्वयं धणं	१६-६८	विस्से किणुं कारणं ?	२३-१३, २४, ३०
विज्जु अनी य आहिया	३६-२०६	विमयिणो जं समुच्चिक्खं सत्ता	३२-१११	विस्सेज्ज जय जई	२४-१२
विज्जुवैज्जं पंजलिउदी	१-४१	विमई अज्जमवैरस्स	१६-२८	विहगएव विष्णुमको	२०-६०
विज्जुं भुज्जं सूयरे	१-५	विमए आयरक्खिए	२-१५	विहग्गणो किलिस्सई	२७-३
विज्जएज्जं लोमहरिस्सं	५-३१	विमए आयरक्खिए	२-१५	विहरदं महिं महपा	२७-१७
विज्जए उवेज्जं अयाणं	१-६	विमए कयविह्वए	२४-१३	विहरदं वसुहं विषयमोहो	२०-६०
विज्जए ववए पाए	१८-८	विमए वैयवियाऽऽजरक्खिए	१४-२	विहरामि अहं मुणी !	२३-३८, ४१
विज्जो एव विद्याहो	३०-३२	विमो वणपयणपरिमाहाओ	१२-६	विहरामि जहासं	२३-४३
विज्जं पाउकरिस्सामि	१-१	विमज्जमाणस्स य इन्दियत्ता	३३-१०६	विहरामि जहानाय	२३-४६
विज्जिधावमानच्छदं ते विरं पि	२०-४३	विमत्तकामाणं ततोषणं	१३-१७	विहरामि महामुणी !	२३-४८
विज्जियट्ठगएणं भन्ते ! जीवे		विमत्ता उ न लगमि	२५-४१	विहरिस्सामि विरामि	१४-४६
	कि जणय ? २६ सु ३३	विमो अण्डिवेहा	३६-१४७	विहरेज्जं कामेसु जसज्जमाणो	३२-५
विज्जियट्ठि भोगेसु ६-६२; १६-६६; २२-४६		विमो विलवन्तो हं	१६-५८	विहरेज्जं पक्खा य जहामुहं तु	१७-१
विज्जिहम्मन्ति पाणिणो	३-६	विमज्जणा बालजणस्स दूरा	३२-३	विज्जिहाडं सहस्सो	३६-८३, ६१, १०५, ११६, १२५, १३५, १४४, १४५, १६६, १७८, १८७, १८८, २०३, २४७
विज्जोयविणए दत्ते	३४-२७	विमज्जहं विज्जिहं ते सरीरं	१०-२७		
विज्ज कामे य भुंजिया	७-८	विमज्जहारो वणिओ व पोए	१४-३०		
विज्जे अचोए निक्खं	१-४४	विमज्जहं उदीरेहं	१७-१२		
विज्जे मिट्ठे य दल्लिणु	५-१०	विमज्जहं कम्मणो हेउं	६-१४	विहारविहरए मुणी	२६-३५
विज्जेण ताणं न लमे पसले	४-५	विमज्जिस्सयाणं भयज्ज ताई	२१-२२	विहारजत्तं निज्जो	२०-२
विज्जहारदं त्ति नायव्वो	२८-२४	विमज्जिस्सयाणं वसव्वो	३२-१६	विह्वाराहि रयं पुरे कडं	१०-३
विज्जिणो हूस्सोगाडे	२४-१८	विमज्जिस्सयाणं वसव्वो	३०-२८		
विज्जिणो समागम	२३-३१	विमज्जिस्सयाणं वसव्वो			
विज्जिण पवित्तिकय	२३-२४	विमज्जिस्सयाणं वसव्वो			
विज्जिणो मुवागमा	१३-८	विमज्जिस्सयाणं वसव्वो			
विज्जिणो लहाविहं भिक्खु	८-४	विमज्जिस्सयाणं वसव्वो			

वी

वीवसएहिं जालेहिं १६-६५
वीवरागायाएणं भन्ते ! जीवे
कि जणय ? २६ सु ४६
वीवरागाओ अणसवो ३५-२१

वीरियं उबजोगो य	२८-११	वेयावज्जणेणं भत्ते ! जीवे कि	संखेवसह लि होह नायब्बो	२८-२६
वीरियं पुण कुल्लहं	३-१०	जणयइ ?	संगहे छहिंसागमं	३३-१८
वीसई कोठिकोठिओ	३३-२३	वेयावज्जणे मिउत्तेणं	संगहेण य भावरे	२५-२२
वीसई सागरोवमा	३६-२३२	वेयावज्जे व सज्जाए	संगामसीसे इव नागराया	२१-१७
वीसं इत्थियामु य	३६-५१	वेरत्थियं पि कालं	संगामे दुज्जए जिणे	६-३४
वीसं तु सागराई	३६-२३१	वेराणुबद्धा नरयं उवेत्ति	संगो एस मुणुस्साणं	२-१६
वु		वेरत्थियनिद्धसंकासा	संचिक्खत्तगवेसए	२-३३
		वेवमाणी निसीयई	संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं	१४-३२
		वेसं तं होइ भूडाणं	संजए इरियं रिए	२४-४
		वेसं होइ असाहुणो	संजओ अहमस्सीति	१८-१०
वुण्णं तेसि चउठिहं	३६-१५८, १७३, १८२, १८६, २१७	वो		
वुच्छामि अणुपुब्बसो	३०-२६; ३६-४७, १०६	वोच्छामि अणुपुब्बसो	संजओ नाम नामेणं	१८-२२
वुच्छामु सोवागनिवेसणुमु	१३-१६	वोछिन्द सिण्णेहमप्यणो	संजओ परिवज्जए	३५-३, ६
वुज्जमाणाण पाणिणं	२३-६५, ६८	वोटाणणं भत्ते ! जीवे कि.....	संजओ सुसमाहिओ	१२-२
वे		वोसट्टुकाए विहारेज्जा	संजमं निहुओ चर	२२-४३
		वोसट्टकाओ सुइचत्तवेहो	संजमं पडिबज्जिमा	३-२०
		स		
		सई च जइ मुच्चेज्जा	संजममि य बोरियं	३-१
वेएज्ज निज्जरापेही	२-३७	संजममाणो वि अहं	संजममाणो वि अहं	१८-२६
वेणेण य पहावई	२७-६	संजमेणं भत्ते ! जीवे कि जणयइ ?	संजमेणं भत्ते ! जीवे कि जणयइ ?	२६सू०२७
वेमाणिमा उ जे देवा	३६-२०६	संजमेण तवेण य	संजमेण तवेण य	१-१६; १६-७७; २५-४३;
वेमायाहिं सिक्खाहि	७-२०	संजमेण तवेण य	संजमेण तवेण य	२८-३६
वेयण वेयावज्जे	२६-३२	संजमेण य पवत्तणं	संजमेण य पवत्तणं	३१-२
वेयणा अणुभविउं जे	२०-३१	संजमेण सुसमाहियं	संजमेण सुसमाहियं	२०-४
वेयणाए दुह्हिण	२-३२	संजमेण तवत्तिस्सओ	संजमेण तवत्तिस्सओ	२-३४
वेयणाओ अणत्तसो	१६-४५	संजमेण सुमासियं	संजमेण सुमासियं	२२-४६
वेयणा परमदारणा	२०-२१	संजमेण च भावओ	संजमेण च भावओ	२३-१०
वेयणा मे लयं गवा	२०-३३	संजमेण तवत्तिस्सणं	संजमेण तवत्तिस्सणं	२३-१०
वेयणा विउल्ला इओ	२०-३२	संजमेण तुसीमओ	संजमेण तुसीमओ	५-१८, २६
वेयणा वेइया मए	१६-७१, ७४	संजमेण समयमुवट्ठियस्स	संजमेण समयमुवट्ठियस्स	३२-१०७
वेयणिज्जं तहा मोहं	३३-२	संजमेण य विभागा य	संजमेण य विभागा य	२८-१३
वेयणिज्जे तहेव य	३३-२०	संजमेण विमयमुक्कस्स	संजमेण विमयमुक्कस्स	१-१; ११-१
वेयणीयं पि य दुबिहं	३३-७	संजमेण भवे संसे	संजमेण भवे संसे	३६-४४
वेया कहीया न भवन्ति ताणं	१४-१२	संजमेण भवे बट्टे	संजमेण भवे बट्टे	३६-४३
वेयाणं च महं वृत्ति	२५-१४	संजमेण भवे चउरसे	संजमेण भवे चउरसे	३६-४५
वेयावज्जं तमाहियं	३०-३३	संजमेण भवे विन्नेओ	संजमेण भवे विन्नेओ	३६-१५
वेयावज्जं तहेव सज्जओ	३०-३०			
वेयावज्जमि दत्थिहे	३०-३३			

संवाचपरिणामा जे उ	३६-२१	संवच्छरं सञ्जिमिमा	३६-२५१	[सक्कं सक्केण बोद्धो]	१८
संठाणासैसमो भावि	३६-८३, १०५, ११६, १२५, १३५, १४५, १५६, १६६, १७८, १८७, १९४, २०३, २४७	संवट्टमवाते य	३६-११६	सगरो वि सागरमत्तं	१८-३५
संतर्हं पप्पज्जाईया	३६-७६, ८७, १०१, १०१, ११२, १२१, १३१, १४०, १५६, १७४, १८३, १९०, १९६, २०१	संवरो निज्जरा मीक्को	२१-५	सत्ता जेठुक्किण्डुगा	२०-२६, २७
संतर्हं पप्प जेज्जाई	३६-१२	संवुद्धं निदुणे रयं	२८-१५	सत्तेले यापि एयमा	२-१३
संतत्ताभावं परितप्पमागं	१४-१०	सन्नेयेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६५०२	सत्थो सोमा य	२४-२०, २२
संताणक्षिमा वरित्तामि मोणं	१४-४१	संसयं सल्लु सो कुणई	६-२६	सत्थो ये भासिमा बई	१८-५२
संथावं वहिज्ज अक्कामकामे	१४-१	संसरइ सुहासुहेहि कम्महि	१०-१५	सत्थो सोसा तहेव य	२४-२०, २२
संथवो चेव नारीणं	१६-११	संसारं बहु जणपरिग्रहन्ति	८-१५	सत्थेण पत्तिमन्थए	६-२१
संधारए अणाउत्ते	१७-१४	संसारंमि अणत्तए	६-१२	सत्थे सत्थवररक्कमे	१८-२४
संधारं फलमं पीडं	१७-७	संसारंमि अणत्तए	६-१	सज्जाएण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?	२६५०१६
संयुया ते पत्तीयन्तु	२३-८६	संसारंमि दुक्कपउत्ताए	८-१	सज्जाए वा निउत्तणं	२६-१०
संधावई नरातिरिक्खं बोणि	२०-४६	संसारमक्कत्तस विमोक्कणट्ठा	१४-४	सज्जाओ पंचहा सवे	३०-३४
संधे नेयाउए पहे	१०-३१	संसारत्था उ जे जीवा	३६-६८	सज्जायएगलत्तिवेवणा	३२-३
संपज्जलिया घोरा	२३-५०	संसारत्था य सिद्धाय य	३६-२४, २४८	सज्जायं चेव पंचहा	२४-८
संपत्ते विरमेज्जा	२६-१६	संसारपारिनिष्कम्मा	३६-६७	सज्जायं तवो कुज्जा	२६-३६, ५४
संपत्तो केवलं नाणं	३५-२१	संसारीणस्स उयस्स वच्चे	३२-१७	सज्जायं तु षट्ठिए	२६-४३
संपिण्डिया अणरसापभूया	१४-३१	संसारमक्कत्तस विपक्कसमूया	१४-११	सज्जायं पजोसकालम्मि	२६-१६
संबुद्धया य सम्बन्नु	२३-१	संसारमि अणत्तए	२०-३१	सज्जायं ज्जाणज्जुत्ते	१८-४
संबुद्धा पुब्बसंयुया	१-४६	संसारागारं घोरा	२२-३१	सज्जटी काएण फासए	५-२३
संबुद्धो सो तहिं भगवं	२१-१०	संसारा हेउं य वयन्ति वन्व	१४-१६	सज्जटी तालिसमत्तिए	५-३१
संयोगकालि य अतिप्पिआये	३२-२८, ४१, ५४, ६७, ८०, ८३	संसारे परिवत्तए	३३-१६	सज्जे बालगवी भए	२७-५
संयोग पक्कवत्ताणेणं भन्ते ! जीवे		संसारो अइवत्तई	२७-२	सज्जे कुमारमाहिंदा	३६-२१०
किं जणयइ ? २६५०३४		संसारो अण्णवो वुत्तो	२३-७३	सज्जे कुमारे जहन्ने	३६-२२४
संयुद्धं नासइ नावचिट्ठे	१४-१८	सकम्मसीलस्स पुरोहिस्स	१४-५	सज्जे कुमारो मणुस्सिन्दो	१८-३७
संयुद्धिमाग एसेव	३६-१६८	सकम्मसेसेण पुराकर्णं	१४-५	सज्जासणकुमुनिभा	३४-८
संयुद्धिमा य अणुया	३६-१६५	सकम्मणा किञ्चइ पावकारी	४-३	सज्जाहो वा नराहिंसा	२०-१६
संयुद्धसमारम्भे	२४-२१, २३, २५	सकवाडं पण्डुल्लोयं	३५-४	सज्जा लरा य बोद्धव्वा	३६-७१
सल्लेक्ककोसिया भवे	३६-२५१	सकाममरणं तहा	५-२	सज्जा सत्ताविहा तहिं	३६-७१
		सकाम मरणं मरई	५-३२	सत्त उ सागरोवमा	३६-२२६
		सक्के देवाहिंवाई	११-२३	सत्तट्ठभवमहणे	१०-१३
		सक्को माहणक्केणे	६-६	सत्तामि जहन्नेणं	३६-२४०
		सक्कं तु दीसइ तवो वित्तेसो	१२-३७	सत्तामा जहन्नेणं	३६-१६६
		सक्कं सक्केण बोद्धो	६-६१; १८-५४	सत्तामि मिच्छकारो य	२६-३

सत्तरस सागरादं	३६-२२८	सद्मुं सु गो गिद्धिमुवेह तिब्बं	३२-३७	समएणेण उ तिज्जम्हं उ	३६-५४
सत्तरस सागरा ऊ	३६-१६४	सद्वाक्खं मे विणहत्तु रागं	१४-२८	समएणेण तिज्जम्हं	३६-५१, ५२
सत्तरस सागरोवमा	३६-१६५, २२६	सद्वा परमदुल्लहा	३-६	समए वि सत्ताहं पप्प	३६-६
सत्तरि कोडिकोडिओ	३३-२१	सद्धं नगरं किण्वा	६-२०	समए समयसेतिए	३६-७
सत्तविहं नवविहं वा	३३-११	सतिमाणा कण्ठेसमोगाढा	३६-२५६	समं च संवथं बीहि	१६-३
सत्तहा परिक्रित्तिवा	३६-१५७	सतिमाणा हृ हित्तिवा	३६-२५७	समं हिचवा महापहं	५-१४
सत्तावीसहं विहेक्कसीओ वा	३४-२०	सति एणेहि भिक्खूहि	५-२०	समचउत्तरो क्कसीयरो	२२-६
सत्तु भित्तेसु वा ७णे	१६-२५	सतिममं च वृहए	१०-३६	समणं संजयं दत्तं	२-२७
सत्तु य इह के भुत्ते ?	२३-३७	सतिमं य दुवे ठाणा	५-२	समणा भविस्सामु गुणोह्वारी	१४-१७
सत्तेव उ सागरोवमा	३६-१६३	सत्ती सत्तिकरे लोए	१८-३८	समणा मु एणे वयमाणा	८-७
सत्तेव सहस्साहं	३६-८८	सत्तेए तहिया नव	२८-१४	समणो अहं संजओ वयमाणी	१२-६
सत्तेव सागरा ऊ	३६-१६२	सत्तीसु य महापहे	१-२६	समणं गोयम ! मा पमायए	१०-१ ते ३६
सत्तोवसतो न उवेह तुट्ठि	३२-२६, ४२, ५५, ६८, ८१, ६४	सत्ताइणिहं जेमेइ	१७-१६	समयं संजए भुंजे	१-३५
सत्थं जहा परमत्तिकं	२०-२०	सत्ताणनाओवगए महेसी	२१-२३	समयाए समणो होइ	२५-३०
सत्थगइणं विसमक्खणं च	३६-२६७	सत्तिरद्धंमि आउए	७-२४	समया सत्थ भूएसु	१६-२५
सत्थे संवट्टकोट्टे य	३०-१७	सत्तिरद्धा य अण्हहि ?	२२-१६	समरेव महाभुणी	२-१०
सदावरीय गुप्पी य	३६-१३८	सत्तिरद्धं जलायमे	३०-५	समरेसु अगारेसु	१-२६
स देवगन्धर्वमणुसनुइए	१-४८	सत्तिरद्धं सुट्टिक्खिए	२२-१४	समलेट्टुक्कंचो भिक्खु	३५-१३
सदेममहं पत्थिओ	२१-३	सत्तिरवेसे समायपोसे य	३०-१७	समाउण्णाहं जक्खेहि	५-२६
सहन्धपारउज्जोओ	२८-१२	सत्तिरहि च न कुल्लेज्जा	६-१५	समागमे कयमई	१३-१४
सहस्स सोयं गहणं वयन्ति	२२-३६	सत्तिरहोसं चओ येव	१६-३०	समागया त 'इसि तालयन्ति'	१२-१६
सहृद्ध जिणाभिहिं	२८-२७	सत्पज्जवसिए वि य	३६-६	समागया दो वि वित्तसम्भूया	१३-३
सहृद्धा पुनरावि दुल्लहा	१०-१६	सत्पज्जवसिया वि य	३६-१२, ७६, ८७, १०१, ११२, १२१, १३१, १४०, १५०, १५६, १७४, १८३, १६०, १६६, २१८	समागया बहु तत्थ	२३-१६
सहाय्या तावइयपगारा	३२-१०६	सवरिओ पंजली होउं	२५-१३	समागया सव्वजणेण अम्हे	१२-३३
सहाय्यासाणुगए य जीवे	३२-४०	सपाहेओ पवज्जई	१६-२०	समागया सव्वजणेण तुक्को	१२-२८
सहायुरत्तस नरत्स एव	३२-४४	स पुज्जसत्थे सुविणीयसंए	१६-७	समाययन्ती अमदं गहाय	४-२
सहायुराएण परिग्गहेण	३२-४१	स तुक्खमेवं न लमेउज पण्डा	४-६	समायन्ती मोयसमं उवेह	३२-११
सहा विविहा भवन्ति लोए	३१-५४	सत्थे विहाओ विव तिक्खमन्ते	३२-४०	समावन्ना संसारे	३-२
सद्दे अतिस्स परिग्गहे य	३२-४३	सत्थे विहाओ विव तिक्खमन्ते	३२-४०	समावन्तो मराहिओ	१८-१८
सद्दे अतिस्स परिग्गहे य	३२-४२	सत्थे विहाओ विव तिक्खमन्ते	३२-४०	समासासिनि अण्यं	६-६
सद्दे अतिस्स समुवेइ मण्णुं	३२-३७	सत्थे विहाओ विव तिक्खमन्ते	३२-४०	समासिण वियाहिओ	३०-२६
सद्दे अतिस्सो दुहिओ अणिस्सो	३२-४४	सत्थे विहाओ विव तिक्खमन्ते	३२-४०	समासिण वियाहिया	२४-३, १६, २६-५२, ३६-४७, १०६
सद्दे विरत्तो मण्णो विसोपो	३२-४७	सत्थे विहाओ विव तिक्खमन्ते	३२-४०	समासिण वियाहि्य	३०-१५, ३३-१५
सद्दे ख्वे य गन्थे य	१६-१०	सत्थे विहाओ विव तिक्खमन्ते	३२-४०	समासिण वियाहिया	३६-२६२

समाहि पडिसंबए	२७-१	सम्मासं तु विणवत्तायं	२३-६३	सत्तलं कामा विसं कामा	६-५३
समाहिकामे समये तबस्ती	३२-४, २१	सम्मायं समवटिट्ठया	२३-८६	सत्तलानं च तियं तियं	३१-४
समिई गुत्ती तहेव य	२४-१	सम्मात्तं वेव मिच्छत्तं	३३-६	सवियारजवियारा	३०-१२
समिई मु किरियामु य	३१-७	सम्मात्तं तं वियाहिय	२८-१५	स वीयरारो कयसव्वकिण्णो	३२-१०८
समिईहि मज्झं सुसमाहियस्स	१२-१७	सम्मात्तं चरित्ताइं	२८-२६	सव्वओ परिबारिए	१४-२१, १८-२
समिए गुत्ते य गुत्तिहि	३४-३१	सम्माद् सणरता	३६-२५८	सव्वओ परिबारिओ	२२-११
समिच्च पडिए तम्हा	६-२	सम्माद्दामा पाणाणि	१७-६	सव्वओ पिहियासवे	१६-६३
समिच्च लोयं समया महेसी	४-१०	सम्माभिच्छत्तमेव य	३३-६	सव्वओ विपमुक्कस्स	१६-१६
समिद्धा कामरुविणो	५-२७	सम्मुच्छिसत्तिस्सलो	३६-१७०	सव्वं अये जिए जियं	६-३६
समुदाय तयं तु	२४-३४	सयं गेह परिचज्ज	१७-१८	सव्वं कम्मं खवित्तानं	२२-४८
समुद्दिम पसवई	२१-४	सयं च अट्टत्तर तिरयलोए	३६-५४	सव्वं गयं कलहं च	८-४
समुद्गमभोरसमा बुरासया	११-३१	सयणं परियणं वेव	२२-३२	सव्वबभेसु य पत्थिवा	२०-१६
समुद्दपालि नामए	२१-४	सयणा तद्दा कामगुणा पमामा	१४-१६	सव्वं जगं जइ तुहुं	१४-३६
समुद्दपाले अनुगमगं मए	२१-२४	सयणासणठाणे वा	२०-३६	सव्वं तओ जाणइ पासए य	३२-१०६
समुद्दपालो इणमब्बवी	२१-६	सयणासणपाणभोगणं	१४-११	सव्वं धम्मं वियाणिता	१४-५०
समुद्दिम जलमि य	३६-५०	सयणासणसेवणया	३०-२८	सव्वं नट्टं विडम्बियं	१३-१६
समुद्दिजए नामं	२२-३	सयणेण वा कामगुणेहि चव	१४-१७	सव्वं पि ते अपज्जत्तं	१४-३६
समुद्दिजयगंओ	२२-३६	सयणे नो पडिस्सुणे	१-१८	सव्वं वावि घणं भवे	१३-१६
समुद्देण सयं मिणे	७-२३	सयमेव लुंछई केसे	२२-२४, ३०	सव्वं विलवियं गीयं	१३-१६
समुदायं उंछमेसिज्जा	३५-१६	सया कुसलसंदिट्ठं	२५-१६	सव्वं सव्वेण बद्धं	३६-१८
समुवट्टियं तहि सन्तं	२४-६	सया दुद्धी विपरियासुवेइ	२०-४६	सव्वं मुविणं सफलं नराणं	१३-१०
समे अज्झुसिरे यावि	२४-१७	सयइ पोरारणियं जाइं	६-१, १६-८	सव्वं से जाइयं होइ	२-२८
समो निव्वापनंसासु	१६-६०	सराणं गई पट्ठ्ठा य	२३-६५	सव्वकम्मविनिमुक्कं	२४-३२
समो य जो तेसु स वीयरारो	३२-२२, ३४, ४८, ६१, ७४, ८७	सराये वीयरारो वा	३४-३२	सव्वगणं सम्पन्नाए णं भन्ते !	
समो य सव्वभूएसु	१६-८६	सरित्तु पोरारणिय तत्थ जाइं	१४-५	जीवे कि जणयइ ?	२६५०५५
सम्मुक्ककावट्टाऽऽययगतुं	३०-१६	सरिओ होइ बालाणं	२-२४	सव्वजीवाण कम्मं तु	३३-१८
सम्मं नो कासवई पमामा	२०-३६	सरीर पचचक्खानेणं भन्ते !		सव्व जीवेसुऽहच्छियं	३३-२४
सम्मं जवइ संज्जे	३६-१	जीवे कि जणइ ?	२६५०३६	सव्वट्ठसिद्धगा वेव	३६-२१६
सम्मं ज्ञाणमि अपणं	१८-२७	सरीरपरिसाण्णं	१६-६	सव्वट्ठसुवदि भवे	३६-५७
सम्मं धम्मं वियाणिता	१४-५०	सरीरमाहु नाव त्ति	२३-७३	सव्वट्ठेण व खलिया	३-५
सम्मं नो पडित्तयइ	१७-५	सरीरविचरन्ते	२०-२०	सव्वट्ठोए सपरिसा	२२-२१
सम्मं भावेसु अपयं	१६-६४	सरीरकोज्जेयण्ठाए	३६-३४	सव्व दुक्खल्यहीणट्ठा	२८-३६
सम्मं संपडिबज्जई	२३-१६	सल्लिगे जल्लिगे य	३६-४६	सव्वदुक्खल्यहीणे वा	५-२५
सम्मं सुद्धेण वेयसा	१८-३२	सल्लिगेण य अट्ठसयं	३६-५२	सव्वदुक्खविभोक्खणं	२६-३८, ४१, ४६, ४६
		सल्लिगा सागरंगमा	११-२८	सव्वदुक्खविभोक्खणि	१६-८५, २६-१, ४६

सम्ब दुष्कविमोक्षणे	२६-१०, ५६	सम्बेसु वि पएसेसु	३३-१८	सागरोदयेनं तु	३६-१६०
सम्बपुरा विमुच्यई	६-८	सम्बेहि भूएहि दयाणुकम्भी	२१-१३	सायुक्कोसे विएहि उ	२२-१८
सम्बडं तु विवाहिया	३६-८	सम्बोसहीहि वृत्तिबो	२२-६	सा तैसि कायटिठई	३६-१६७, २५५
सम्बवम्भाणुवत्तिमो	७-२६	सवरत्तपाए सुवई	१७-१४	सा पम्बइया सत्ती	२२-३२
सम्बन्याण अणुमए	३६-२४६	सह संबुडो अणुसरे बन्ने	६-२	सा पुडवी निम्बला सहावेणं	३६-६०
सम्बन् विणमसकरो	२३-७८	सहसम्मइयासवसंवरो य	२८-१७	सा बाला मोक्षंजई	२०-२६
सम्बपमाणोहि अस्स उवलद्धा	२८-२४	सहसाज्जसासियाणि य	१६-६	सा मज्जमि विवाहिया	३६-५६
सम्बभेसु अस्ताया	१६-७४	सहस्सं हारए नरो	७-११	सामणं च पुराकयं	१६-८
सम्बमावविभावणं	२६-३६	सहस्सगुणिया भुज्जो	७-१२	सामणं निष्कसं फासे	२२-४७
सम्बन्याण संक्रया	२०-५६	सहसूरां जहन्नेणं	३६-२२६	सामणं पुत्त ! तुक्करं	१६-२४
सम्बमेयं चइत्ताणं	६-५	सहायपक्कसन्नाणेणं भन्ते !		सामणमणुपालिउं	१६-३६
सम्बलक्कणसंपुला	२२-७	जीवे किं जणयइ ?	२६सू०४०	सामणमणुपालिया	१६-६५; ३६-२५०
सम्बलोगमि पाणिणं	२३-७५, ७६	सहायमिच्छे निउणत्थ बुद्धि	३२-४	सामणस्स भविस्ससि	२२-४५
सम्बलोगमि विस्सुए	२३-५	सहिए आयणवेसए स भिक्खू	१५-५	सामणे पज्जुबटिउज्जो	६-६१
सम्बलोगप्पमंकोरो	२३-७६	सहिए उज्जुक्के निवाणछिल्ले	१५-१	सामणे पज्जुबटिउया	१८-४६
सम्बसंतणिमिम्भुक्के	१८-५३	सहिए सेवयाणुए य कोविपप्पा	१५-५५	सामाहएणं मत्ते ! जीवे किं०	२६सू०६
सम्बसत्तू विणामहं	२३-३६	सा		सामाइयत्थ पठमं	२८-३२
सम्बसुत्तमहोयही !	२३-८५	सा उ उट्टरिया क्हं ?	२३-४५	सामायाारि पक्कसामि	२६-१
सम्बस्स दुक्कस्स उ जो पयोक्खो	३२-१	सा उ पारस्स गामिणी	२३-७१	सामायाारी पवेइया	२६-४, ७
सम्बस्स दुक्कस्स पयोक्कसमयो	३२-१११	सागरत्तं जह्णित्ताणं	१८-४०	सामिंसं कुललं विस्स	१४-४६
सम्बस्स लोगस्स दुग्गुणिज्जा	१३-१६	सागरा अउणत्तीसई	३६-२४१	सामी कुज्जा निमत्तणं	२-३८
सम्बस्स लोगस्स सवैयगस्स	३२-१६	सागरा अउणत्तीसं तु	३६-२४०	सामेहि सवलेहि य	१६-५४
सम्बारम्भपरिष्वाओ	१६-२८	सागरा अउणत्तीसई	३६-२३१	सायं च पायं उदयं कुवत्ता	१२-३६
सम्बाहि मयविहिहि य	२८-२४	सागरा अउणत्तीसं तु	३६-२४०	सायं नो परिदेवए	२८-३६
सम्बे आमरण आरा	१३-१६	सागरा अट्टवीसई	३६-२४०	सायमसायं च आहियं	३३-७
सम्बे उम्मयापटिउया	२३-६३	सागरा अट्टवीसं तु	३६-२३६	सायरसइह्णुहेउं	३६-२६४
सम्बे कामा मुहावहा	१३-१६	सागरा इक्कत्तीसं तु	३६-२४२	सायस्स उ जह्ण येया	३३-७
सम्बे ते दुक्कसंभवा	६-१, ११	सागरा इक्कत्तीसई	३६-२३३	सायमागविए एगे	२७-६
सम्बे ते परिनिब्बुड	१४-५३	सागरा इक्कत्तीसं तु	३६-२३२	सारमण्णाणि नीणेइ	१६-२२
सम्बे ते विइया मज्जं	१८-२७	सागरा उ छवीसई	३६-२३८	सारहिं इमम्भवी	२२-१५
सम्बे धम्मपरायया	१४-५१	सागराणि य सलेव	३६-२२४	सारहिस्स पणामए	२२-२०
सम्बेसि जेव बम्माणं	३३-१७	सागरा पणुवीसई	३६-२३७	सारीर माणसा जेव	१६-४६
सम्बेसि जेव भूयाणं	२०-३५	सागरा सलवीसई	३६-२३६	सारीरमाणसे दुक्खे	२३-८०
सम्बेसु कामजाएसु	८-४	सागरा सलवीसं तु	३६-२३८	सावए भासि बाणिए	२१-१
सम्बेसु वि पएसयं	३३-२४	सागरा साहिया दुग्गि	३६-२२३	सावए बाणिए वरं	२१-५

सावए मे बिकोषिए	२१-२	सिज्जस्सत्ति तहापरे	१६-१७	सीया नीयवत्तपबहा	११-२८
सावज्जं वज्जए मुणी	१-३६	सिणार्णं नो वि पत्थए	२-६	सीयाए ओयणे तलो	३६-६१
सावज्जोणं परिवज्जयन्तो	२१-१३	सिता नो व बहन्ति मे	२३-५१	सीयारवणं तओ समास्सो	२२-२२
सावत्थि नगरिमागए	२३-३	सिद्धाण्णुणजोगेसु	३१-२०	‘सीस’ पडिल्ले जओ	१-७
सासए जिणवेसिए	१६-१७	सिद्धाण्णजन्तभाओ य	३३-४	सीलब्धं गुणभागर	१६-५
सासं दासं व मन्हं	१-३६	सिद्धाणं नमो किच्चा	२०-१	सीलभूएण अण्यथा	२७-१७
सासणे विगयमोहानं	१४-५२	सिद्धाणेगाविहा वृत्ता	३६-५८	सीलबन्ता वहुत्सुया	५-२६; २२-३२
सासयं परिमिब्बुए	३४-२१	सिद्धाणेगाहणा भवे	३६-६२, ६४	सीलयन्ता सबीसेसा	७-२१
साहवो संवमुत्तरा	५-२०	सिद्धा सिज्जस्सि चाणेण	१६-१७	सीलसहावहासविगहाहिं	३६-२६३
साहस्सीए परिपुओ	२२-२३	सिद्धिं गच्छसि तीरओ	६-५८	सीसं छेत्तुण सुज्जहं	७-३
साहस्सीओ समायया	२१-१६	सिद्धं गोयम ! लोयं गच्छसि	१०-३५	सीससंपसमाउले	२३-३, ७, १५
साहारणं जं व करेह कम्मं	४-४	सिद्धि पत्ता अणुत्तरं	२२-४८; २५-४३	सीसेण एयं सरणं उवेह	१२-२८
साहारण सरीरा उ	३६-६६	सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं	१६-६५	सीसे सो उ महण्णो	२१-१
साहारण सरीरा य	३६-६३	सिद्धिं बरारहं यया	३६-६३, ६७	सीहकण्णी तव्वे य	३६-६६
साहाहिं खल्लो लहए समाहिं	१४-२६	सिद्धिं संपाउणेज्जासि	११-३२	सीहे भियाण पवरे	११-२०
साहियं पजिओयमं	३६-२२३	सिद्धिगं गए गोयमे	१०-३७	सीहो व सहणे न संतसेज्जा	२१-१४
साहियं सागरं एक्कं	३६-२१६	सिद्धीं लोयगमेव य	२३-३३	सु	
साहिया दुग्गि सागरा	३६-२२५	सिद्धे वा हवह सासए	१-५८	सुहं व लद्धं सद्धं व	३-१०
साहिया सागरा सत्त	३६-२२५	सिद्धे हवह तीरए	१८-५३	सुहं वम्मस्स दुल्लहा	३-८
साहु गोयम ! पत्ता ते २३-२८, १४, ३६, ४४, ४६, ५४, ५६, ६४, ६६, ७४, ७६, ८५		सिद्धे हवह सासए	३-२०	सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं	२८-२१
साहुणा विम्भूयन्निओ	२०-१३	सिया तु केलाससमा असंलया	६-५८	सुंमुमारा य बोडव्वा	३६-१७२
साहुस्स तस वयणं अकाउ	१३-३४	सिरे चूडायणी जहा	२२-१०	सुहकं तस्स सामणं	२-१६
साहुस्स दरिणे तस्स	१६-७	सिसुणागुब्ब मट्ठियं	५-१०	सुहकं त्ति सुपक्के त्ति	१-३६
साहु अन्नोऽय वज्जव	२७-१२	सी		सुहकियमट्ठपओवसोहियं	१०-३७
साहु कल्लाग मन्हं	१-३६	सीउण्णं विविहं व दंसमसगं	१५-४	सुहुमालं सुहोदय	२०-४
साहु कहय पुण्डिओ	२५-१५	सीएण कसेण वा	१-२७	सुहुमालो सुमज्जओ	१६-३४
सि		सीओदमं न सेविज्जा	२-४	सुक्कभाणं भियाएज्जा	३४-१६
सिगवेरे तव्वे य	३६-६६	सीओसिणा दंसमसा य फासा	२१-१८	सुक्कलेसं तु परिणमे	३४-३२
सिगाररमं न वारए	१६-६	सीयं च सीवीरजबोदयं व	१५-१३	सुक्कलेसा उ वण्णओ	३४-६
सिबाणि सयमं वेहं	२३-५१	सीयं कुसह एगया	२-६	सुक्कलेसा य इट्ठा उ	३४-३
सिक्खए नीहकोषिए	२१-६	सीयज्जाए मणोरमे	६-६	सुगाई उववज्जई वहुतो	३४-५७
सिक्खाली लेति बुक्कई	११-४, ५	सीयन्ति एणे बहू कायरा नरा	२०-३८	सुमीवे नयरे रम्मे	१६-१
सिक्खिसा संभयं तव्वं	५-२८	सीयन्ति जत्थ्या बहुकायरा नरा	२१-१६	सुण्णन्ते सुहटे मडे	१-३६
सिज्जन्ते जुगवं पुणे	३६-५३	सीयपिणं उराणकुम्माव	८-१२	सुट्ठिया नियमब्बए	२२-४०
		सीया उब्बहा य सिद्धा य	३६-२०	सुट्ठं मे उववदसियं	२०-५४; २५-३५

मुणगमडगस्स व जहा अहिमडस्स	३४-१६	मुयसीलसमुक्करितो	२३-८८	मुहेण य दुहेण य	२८-१०
मुणिटिडए मुलट्टे ति	१-३६	मुयस्स आराहणयाए णं भन्ते !		मुहेसिणो मुक्कविणोयणट्ठा	३२-१०५
मुणिवाऽभावं साणस्स	१-६	जीवे किं जणवइ ?	२६५०२५	मुहोइयो मुमं पुत्ता !	१६-३४
मुणेह एगमहिंयं हियत्वं	३२-१	मुयस्स पुण्णा विठलस्स ताइणो	११-३१	सू	
मुणेह जिणभासियं	२८-१	मुयाणि पे वंच महव्वयाणि	१६-१०	सूवरस्स नरस्स य	१-६
मुणेह मे एगमणा दूओ	३६-१	मुया मे नएए ठाणा	५-१२	सूरा दडपरवकमा	१८-५१
मुणेह मेगममणा	३५-१	मुक्खे ? चाक्कासिणि	२२-३७	सूरे दडपरवकमे	११-१७
मुणेह मे महाराय !	२०-१७	मुक्खे पियदंसणे	२१-६	सूरो अभिहणे परं	२-१०
मुत्तं धत्तं च तमुभयं	१-२३	मुल्ला तेसि भवे बोही	३६-२५८	सूलेहिं मुसलेहि य	१६-६१
मुत्तमं च महायसो	२२-२०	मुवण्ण रुपस्स उ पथ्वया भवे	६-४८	से	
मुत्तणं चत्तिवत्तया विई य	३२-३	मुविणोए ति मुक्खई	११-१०, १३	सेओ अगारवा मु ति	२-२६
मुत्ते मु यावी पडिबुडजीवी	४-६	मुविसोज्जो मुपालो	२३-२७	सेओसच्चपरक्कमे	१८-४८
मुट्ठिउपरमत्तसेवणा वा वि	२८-२८	मुव्वए कम्मई दिवं	४-२२	सेकाहए महया वित्परेणं	२०-५३
मुट्ठल्लहं लहिउं बोहिलाभं	१७-१	मुव्वन्ति दाहणा सदा	६-७	से किंचि हू नितामिया	१७-१०
मुट्ठो हवइ कम्मणा	२५-३१	मुसंजुओ पंचहिं संवरहेहि	१२-४२	से खिणं सव्वसंसारो	२४-२७, ३०-३७
मुट्ठेसणाओ नच्चाणं	८-११	मुसंभिया काममुणा इमे ते	१४-३१	से धाणबले य हायई	१०-२३
मुट्ठोदए य वस्से	३६-८५	मुसंभतो मुविहिंओ	२०-१३	से चक्खुवले य हायई	१०-२२
मुपरिच्चाई दमं चरे	१८-४३	मुसाणे मुल्गारे वा	२-२०, ३५-६	से चुए बन्धलोगाओ	१८-२६
मुपियस्सावि मित्तस्स	११-८	मुसीइभूओ पज्जहामि ठासं	१२-४६	से जम्भवले य हायई	१०-२४
मुग्गिगवत्परिणामा	३६-१७	मुसीला चास्येहिणी	२२-७	सेज्जं तु पाडिलेहए	२६-३७
मुगहं मन्दरे गिरी	११-२६	मुहं वसामो जीवामो	६-१४	सेज्जं न पाडिलेहइ	१७-१४
मुणिणं लक्खणदण्डवत्सुविज्जं	१५-७	मुहं वा जइ वा दुहं	१८-७	सेज्जा दडा पाउरणं पे अत्थि	१७-२
मुयं आभिणिबोहिंयं	३३-४	मुहुदुक्खफलविवागं	१३-३	सेट्टिकुलमि विसाले	१३-२
मुयं आभिनिबोहिंयं	२८-४	मुहममुहं च आहिंयं	३३-१३	सेडित्तो पयरत्तवो	३०-१०
मुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एव	२८०१;	मुहसाएणं भन्ते ! जीवे किं		सेणिओ मगहाहिवा	२०-२, १०
	१६५०१; २६५०१	जणवइ ? २६ सू० ३०		सेणिया ! मगहाहिवा !	२०-१२
मुयं वड्ढं न मज्जई	११-११	मुहस्स उ वड्ढे येया	३३-१३	से तत्थे पत्ते न वड्ढिज्ज भिक्खु	२१-१७
मुयं लड्ढणं मज्जई	११-७	मुहावहं धम्मचुरं अणुत्तरं	१६-६८	से दंसणेऽभिजामई	३-१६
मुयं विजयं च गाहिण	१७-४	मुहुत्तरा केव भवन्ति तेसा	३२-१८	से न अक्खइ मण्डले	३१-३ से २० तक
मुयमुक्खरईबनिभा	३४-७	मुहुत्तं तह सम्परायं च	२८-३२	से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते	२०-८८
मुयमम्मं ललु चरित्तधम्मं च	२८-२७	मुहुत्तायं नायराणं य	३५-६	से नूनं मए पुब्बं	२-४०
मुयवाराभिहवा सत्ता	२३-५३	मुहुत्ता तत्थे विवाहिवा	३६-७७, ८६, १००	से फासबले य हायई	१०-२५
मुयनाणं जेण अत्थयो विट्ठं	२८-२३	मुहुत्ता ते विवाहिवा	३६-११०, ११६	सेयं ते मरणं भवे	२२-४२
मुयरस्सीसमाहिंयं	२३-४६	मुहुत्ता बायरा तथा	३६-७०, ८४, ६२, १०८, ११७	सेयं पण्डइउं मम	२२-२६
मुयसीलत्तवो जलं	२३-४३	मुहुत्ता सव्वलोगमि	३६-७८, ८६, १००, १११, १२०	सेयमेधंति मणई	५-६

से विणीए तित्त बुज्जई	१-३	सो देवलोमसरिसे	६-३	हम्मन्ति मत्तपाणेसु	३५-११
से वि य मुग्गुयाइत्ता	२७-७	सो धम्मठह तित्त नायब्बो	२८-२७	'हम्महंति बहु' अिया	२२-१६
से वि सावत्थिमागए	२३-७	मा पच्छा परित्तपई	५-१३	हयं भइ' व वाहए	१-३७
से संजए सुब्बए तवस्सी	१५-५	सो बोधरइ नायब्बो	२८-२३	हयमाइणीमाइ	३६-१८०
से समिए तित्त बुज्जई ताई	८-६	सोयमिअं विवज्जए	१६-५	हयाणीए गयाणीए	१८-२
से सव्वबले य हायई	१०-२६	सोयगिणा आयगुणिव्वणेणं	१४-१०	हरत्तणु महिया हिमे	३६-८५
से सव्वसिणेहवज्जए	१०-२८	सोयस्स सहं गहणं वयन्ति	३२-३५-३६	हरा हरन्ति तित्त कहं पमाए ?	१४-१५
सेसाणि उ अण्यसत्थाई	२६-२८	सोऽरिट्ठनेमिनामो उ	२२-५	हरिणमबलो नाम	१२-१
सेसासेसं लभउ तवस्सी	१२-१०	सोरियपुरंमि नवरे	२२-१,३	हरियाकाया य बोद्धव्वा	३६-६५
से सिक्खं लद्धुमरिइई	११-१४	सोलसविहसेगणं	३३-११	हरियालभेयसंकासा	३४-८
से सुब्बए होइ युणीण मज्जे	१७-२१	सोबागकुलसंभूओ	१२-१	हरियाले हित्तुलु	३६-७४
से सोयई सच्छुमुहोवणीए	१३-२१	सोबागभाई दुहुओ गयाणं	१३-१८	हरितेणो मणुस्सिन्दो	१८-४२
से सोयबले य हायई	१०-२१	सोबागपुत्तं हरिएससाहु	१२-३७	हल्लिहाभेयसनिभा	३४-८
सो		सोबागा कास्मिअ	१३-५	हवई किच्चाणं सरणं	१-४५
सो इन्दिय निगहोणं भन्ते ! जीवे कि		सो वित्तप्पापियरो !	१६-७६	हसियं धणियकन्थियं	१६-५
जणयइ ? २६सू-६३		सो वि अन्तरभासिल्लो	२७-११	हसियं मुत्तासियाणि य	१६-१२
सोअण तस्स वयणं	२२-१८	सो वि राया तवं चरे	१८-३७	हा	
सोअण तस्स सो धम्मं	१८-१८	सोबीररायवसभो	१८-४७	हाल्लिहा मुक्कल्ला लहा	३६-१६,७२
सोअण रायकन्ना	२२-२८	सो समासेण खब्बिहो	३०-१०	हासं किहु' रइ दणं	१६-६
सो एवं तय पठिसिद्धो	२५-६	सो मुत्तरइ तित्त नायब्बो	२८-२१	हासं कीहं च वज्जए	१-६
सो करिस्सइ उज्जोयं	२३-७६,७८	सोहम्ममि जहन्नेणं	३६-२२२	हासं भयं सोममुमिथिय वेयं	३२-१०२
सो कुण्डलाण जुवल	२२-२०	सोहम्मोसाणगा लहा	३६-२१०	हासे भए मोहरिए	२४-६
सो खल्ल आणारई नाम	२८-२०	सोही उज्जयभूयस्स	३-१२	हि	
सो खल्लु किरियाई नाम	२८-२५	सो हु कंथे मुए सिया	१४-२७	हित्तुयपाउसंकासा	३४-७
सोमेण उ समुत्थया	२२-२८	सो होइ अमिगमरई	२८-२३	हिसगा अविइन्दिया	१२-५
सोच्चाअमिनिक्खम पहाय भोए	१४-३७	ह		हित्ते बाले मुत्तावाई	५-६; ७-५
सोच्चाणं जिणसागणं	२-६	हए मिए उ पासित्ता	१८-६	हित्यं तं मन्तए पण्णो	१-२८
सोच्चाणं कल्ला भासा	२-२५	हओ न संजले भिक्खू	२-२६	हित्यं विगयमया बुद्धा	१-२६
सोच्चाण मेहावी मुभासियं इमं	२०-५१	हंसा मयगवीरे	१३-६	हित्यं सया बम्मवए रयाणं	३२-१५
सोच्चा नेजाउयं मयं	३-६; ७-५	हट्ठमुल्लकिया	१८-१६	हित्यमिस्सेयसनुद्धिबोक्कले	८-५
सोच्चा सद्विज्जण य	३६-२४६	हणोइ वेयाल इबाजिवल्लो	२०-४४	हित्यमिस्सेसाए सव्वजीवाणं	८-३
सो तवो दुविहो पुत्तो	३०-७	हणाइ सत्य जह कुण्णहीयं	२०-४४	हित्ठाणं जायकूबं च	३५-१३
सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को	३२-११०	हणेज्जा कोइ कत्थई	२-२७	हित्ठाणं पसुभिस्सह	६-४६
सो तेनु मोहा विगई खवेइ	३२-१०१	हत्थायाग इमे कामा	५-६	हित्ठाणं सुवण्णं मणिमुत्तं	६-४६
सो दाणि तित्त राय ! मह्हाणुभाओ	१३-२०	हत्थिणपुरन्मि चित्ता	१३-२८	हिरिमं पडिम्मलीणे	११-१३

उत्तराध्ययनं (उत्तराध्ययन)

५६

हिरिली सिरिली सिस्तिरिली	३६-६७	हे	हेडिमाहेडिमा वेब	३६-२१३
ही		हेऊकारणभोइमो	हो	
हीलं न निम्नं न लमाह भन्ते !	१२-३०	२५, २७, २८, ३१, ३३, ३७, ३८, ४१, ४३, ४५, ४७, ४८, ४९, ५०, ५२	होद किण्हाए	३४-४३
हु		हेऊहिं कारणेहि य	होद बायस्स कोत्पलो	१६-४०
हुऊमा गायबिराहया	२-३४	हेडिमा उवदिमा वेब	होई मागेण तेऊए	३४-५२
हुयाघणे जलन्तम्मि	१६-४६, ५७	हेडिमायजिकमा तहा	होस्वामि ति वचेऊए	२-१२
			होमं हुंणामी इत्तिणं पत्तयं	१२-४४
			होमि ताहो भयन्तायं	२०-११

शुद्धि-पत्रक : १

मूलपाठ, संस्कृत-छाया एवं हिन्दी-अनुबाध

पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
७ ४।३ मूलपाठ	दुस्तील-पडि	दुस्तीलपडि	२०८ १३।१ मूलपाठ	गत०	गत०
७ ४।१ ,,	कण-कु	कणकु	२१५ १।२ ,,	मुणित	मुणित
६ १४।३ ,,	अप्पा-दन्तो	अप्पा दन्तो	२२६ २१।२ सं० छाया	कस्मै	कस्मै
१२ ३२।२ सं० छाया	वत्ते	वत्ते	२२७ २७।४ ,,	सम्यग्	सम्यग्
१३ ३६ हि० अनु०	अच्छा छेदा है ।	वहुत अच्छा छेदा है ।	२४० ६।१ सं० छाया	विष्येष्	विष्येष्
१४ ४०।४ सं० छाया	त	न	२४० १०।४ ,,	अनुजानात	अनुजानीत
२७ ४।३ ,,	सेवेत्	सेवेत	२४५ ३६।३ ,,	बैव	बैव
२८ १०।१ मूलपाठ	दंस	दंस	२४५ ३८।३ ,,	बैव	बैव
४४ ६।१ सं० छाया	सङ्गः	सङ्गे	२४५ ३७।१ ,,	बैव	बैव
६७ ३।४ ,,	उरकपण	उरकपेण	२४६ ४१।१ ,,	था	यथा
७२ ३२।२ ,,	समुच्छयम्	समुच्छयम्	२४६ ६१ हि० अनु०	मुण्डियो	मुमुण्डियो
१०१ ११।१ ,,	शुद्धेयणा	शुद्धेयणा	२५२ ७६।४ मूलपाठ	आहरित	आहरितु
१०२ १८।२ ,,	वशास्त्वनेक०	वशास्त्वनेक०	२५५ ६४ हि० अनु०	ज्ञान, चारित्र	ज्ञान, दर्शन, चारित्र
१०२ १८।४ ,,	यये व	ययेव	२६३ १६।४ मूलपाठ	?	!
११० १०।१ ,,	ह्रियमाणे	ह्रियमाणे	२६३ १६।४ सं० छाया	?	!
१११ १६ हि० अनु०	देवेन्द्र ने तमि	देवेन्द्र ने तमि	२६४ १६।१ ,,	महाराज !	महाराज !
	राजपि से	राजपि ने	२६६ ३१।३ ,,	भवित	भवितुं
११२ २२।२ सं० छाया	मिलबा	मिलबा	२६७ ३६।३ ,,	काम-बुधा	कामबुधा
११२ २४।३ मूलपाठ	बालग	बालग	२७७ ४।१ मूलपाठ	घरणी	घरणी
११६ ४८।१ सं० छाया	थ	थु	२७६ १३।१ ,,	दयागुकम्पी	दयागुकम्पी
११८ ५८।१ मूलपाठ	उत्तमो	उत्तमो	२८१ २३ हि० अनु०	करन	करने
१२४ १० हि० अनु०	असंख्य-काल	संख्येय-काल	२८१ २३ ,,	सहलाभवन	सहलाभवन
१२७ ३०।१ मूलपाठ	अवउज्जिम	अवउज्जिम्य	२८२ २८।४ सं० छाया	समवस्तुता	समवस्तुता
१२८ ३६।३ ,,	बहए	बूहए	२८६ ४८ हि० अनु०	उग्र-तप का आच-	उग्र-तप का आचरण
१२६ पंक्ति २ ,,	बहुस्तुयपुत्रा	बहुस्तुयपुत्रं	रण कर तथा	कर वे दोनों (राजी-	
१३३ ,, ,,	"	"	सब कर्मों को	मती और रथनेमि)	
१३४ १०।१ सं० छाया	स्वानः	स्वाने:	छपा, वे दोनों	केबकी हुए और	
१३४ ११ हि० अनु०	बोच पल	बोचपल	(राजीमती और	सब कर्मों को छपा	
१४५ १६।४ मूलपाठ	वाहामु	वाहामु	रथनेमि) अनुत्तर	सिद्धि को	
१६२ ११ हि० अनु०	उसको	उसके	सिद्धि को प्राप्त	प्राप्त हुए ।	
१६६ सू०२ सं० छाया	स्वभिर-	स्वभिर	३०४ ६।२ सं० छाया	०च्छिव्यो	
२०३ सू०७ मूलपाठ	कुहुत्तरति	कुहुत्तरति	३०४ ६।४ ,,	गौतमी	गौतमी

पुष्ट दलोक	अशुद्ध	शुद्ध	पुष्ट दलोक	अशुद्ध	शुद्ध
३१६ ८०१२ सं० छाया	नाम	नाम्	४२३ १४ हि० अनु०	१४-अविचार	अवद्या
३२५ ११३ "	पंचैव	पंचैव		द्रव्य	१४-द्रव्य
३२७ १३११ "	ओद्यो	ओद्यो	४२५ २३ "	दद्या वर्ण	दद्या, वर्ण
३२८ २६१४ "	सबन्धः	सर्वेभ्यः	४४२ ७ "	कुःल को	कुःल का
३३७ १३१३ "	प्राञ्जलि	प्राञ्जलि	४४३ १४१४ मूलपाठ	दट्ठ	दट्ठुं
३५२ १५१४ मूलपाठ	ओमो	ओम	४४७ ३५ हि० अनु०	वीतराग	वीतराग
३५६ ३४११ सं० छाया	आवृत्त उपसर्ग	आतंके उपसर्ग	४४८ ४१ "	ध्यापार	व्यापार
३५८ ४५१३ "	लिलेत	लिलेतु	४४८ ४११३ सं० छाया	ध्यये	व्यये
३५८ ४७ हि० अनु०	दर्शय	दर्शन	४४९ ४६१४ "	दुःखं	दुःखं
३६५ ३१२ सं० छाया	विप्रन	विप्रन्	४५० ५११३ "	दान्त	दुर्दान्त-
३६६ ७१४ मूलपाठ	उज्ज्वलहिता	उज्ज्वलहिता	४५१ ५६१२ "	दुःखोप-	दुःखोप-
३६८ १६१४ "	गिष्कृद्	गिष्कृद्	४५१ ५६१४ "	यतस्य	यतस्य
३७८ २६१४ सं० छाया	पूर्वं	पूर्वं	४५५ ८१११ "	स्पश	स्पर्श
३७९ ३५१४ मूलपाठ	सञ्जर्ह	सञ्जर्ह	४५७ ८६१२ "	प्राप्नोति	प्राप्नोति स
३८३ सू० १५०३ सं० छा०	अमणन	अमणेत	४५७ ८६१३ "	बालः	बालः
३८३ सू० १५०३ हि० अनु०	उच्चारण	उच्चारण	४७० २१११ "	उदधि०	उदधि०
४०० सू० १२ "	उत्तरोत्तर बढ़ने वाले	×	४७० २२१२ "	उत्कर्षेण	उत्कर्षेण
४०० सू० १३ सं० छाया	निर्णय	निर्णय	४७१ २५११ "	कर्मणाम्	कर्मणाम्
४०२ सू० २२ मूलपाठ	घणिय	घणिय	४७९ १११४ मूलपाठ	नायबो	नायबो
४०२ सू० २२ हि० अनु०	अनुभव	अनुभव	४८२ ३१ हि० अनु०	धर्म	धर्म
४०४ सू० ३१ सं० छाया	निर्जयति	निर्जयति	४८३ ३८, ३९ "	मूर्हत	अन्तर्मुहूर्त
४०५ सू० ३४ "	संक्लिष्यति	संक्लिष्यति	४८६ ५६१४ सं० छाया	गतिमुपपद्यते	गतिमुपपद्यते बहुधाः
४०५ सू० ३२ मूलपाठ	विणियटु	विणियटु	४८७ ६० हि० अनु०	है	है और
४०६ सू० ४६ "	अणुस्तिष्ठते	अणुस्तिष्ठ	४८६ १६११ सं० छाया	ध्यायत्	ध्यायत्
४०६ सू० ४८ सं० छा०	जीबो	जीबो	५०७ ३६११ "	उण्यको	उण्यको
४०६ सू० ४९ "	अनुस्तिष्ठत्येव	अनुस्तिष्ठतो	५१० ५५११ "	कवः	कव
४१२ सू० ६१ हि० अनु०	और	और	५१० ५५१४ "	गु	×
४१२ सू० ६१ "	अन्त	अन्त	५१३ ७४१२ "	ऽजन्	ऽजन्
४१५ सू० ७१ सं० छा०	तावदेवार्थिकं कर्म	तावदेवार्थिकं कर्म	५१६ ८६ हि० अनु०	उसकी	उसो
४१५ सू० ७१ मूलपाठ	दण्डविषयणं	दण्डविषयणं	५१८ १०२१२ सं० छाया	मुक्तपिता	मुक्तपिता
४१६ सू० ७२ हि० अनु०	है, तब	है, तब	५१९ ११११२ "	लोक-वेसे	लोक-वेसो
४२२ १० "	धन तप	धन-तप	५२२ १२६१३ मूलपाठ	बे०	बे०
४२२ ८१३ मूलपाठ	य	×	५२२ १२८११ "	सोमपला	सोमपला
४२२ ८१४ "	बज्जो	य बज्जो	५२२ १२८१२ "	बैष	×
			५२३ १३६११ सं० छाया	श्रीनिवा	श्रीनिवा

शुद्धि-पत्रक : १-२

३

पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
५२५ १४३।४ सं० छाया	अन्तर०	अन्तर०	५३७ २१६।२ सं० छाया	स्थिति भवेत्	स्थिति भवेत्
५२६ १५१।२ ,,	उत्कर्षण	उत्कर्षण	५४० २३।३ ,,	चतुर्थ	चतुर्थ
५२६ १५३।४ ,,	०मेतद्	०मेतद्	५४१ २४३।१ ,,	त्रयस्त्रिंशत्	त्रयस्त्रिंशत्
५२८ १६६।२ ,,	उत्कर्षण	उत्कर्षण	५४२ २४५।४ ,,	भवेत्	भवेत्
५२६ १६६।१ ,,	वर्णतत्त्व	वर्णतत्त्व	५४४ २४८।१ ,,	सम्बन्ध०	सम्बन्ध०
५३० १७६ हि० अन्त०	पूर्व	करोड पूर्व	५४५ २६३।४ ,,	कान्दपा	कान्दपा
५३२ १८५ ,,	की है ।	की है—	५४५ २६५।३ ,,	०हेतो	०हेतोः
५३२ १८८ ,,	समुद्र	समुद्र	५४५ २६३।१ मूलपाठ	०इवाहं तह	०इवाहं
५३३ १८९ ,,	तव	तव	५४५ २६३।२ ,,	सील०	तह सील०
५३६ २१३ ,,	अर्थः	अर्थः	५४५ २६१ हि० अन्त०	के	से
५३६ २०८।१ मूलपाठ	नक्शात	नक्शात	५४५ २६३ ,,	की	की

शुद्धि-पत्रक : २

पाठान्तर

पृष्ठ पाठान्तर	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पाठान्तर	अशुद्ध	शुद्ध
क्रम			उ० ५	(सु०)	(स०)
६ ४	०दमे	०दमे	१०० ७	यावरे हि वा (बू०)	यावरे हि वा (बू०पा०)
६ ५	(अ, उ, म)	(अ, उ, ऋ)	१२५ १	कुत्तियं	कुत्तियं
१० श्लोक २०।१	बाहिन्तो	बाहिन्तो (अ, आ, इ, उ)	१२६ २	(उ, म, बू०)	(उ, ऋ, बू०)
१३ ३	(बू० पा०)	(बू० पा०) ।	२०७ ५	धम्मलब्ध	धम्मलब्ध
१४ २	(बू० पा०, बू०)	(बू० पा०, बू० पा०) ।	२७८ ४	परमसंवेग	परमसंवेग
१४ ३, ४	(बू० पा०)	(बू०) ।	३२६ ५	०मुबहि	०मुबहि
१४ ५	(अ, उ, बू०)	(अ, उ) ; किसी म (बू०) ।	३६८ सू०६	'पडिबन्ने ये' ५	'पडिबन्ने य ण' ५
४३ १	(बू०पा०, बू०पा०)	(बू०पा०, बू०) ।	४०६ २	अणुस्तिष्ठते	अणुस्तिष्ठ
५१ २	(बू०पा०, बू०पा०)	(ऋ, बू०पा०, बू० पा०)	४४१ २	(सु० आ)	(सु० पा०) ।
५१ ७	पीहाति	पीहति	४४१ ५	मुषिणो	मुषिणो
६६ २	अक्के भग्गमि (बू०पा०) ।	अक्के भग्गमि (बू०पा०) ।	५०६ २	०णविहा	०णविहा
७० २	अक्काय	अक्काय	५३१ १	०इ	०इ
७० २	(बू०पा०)	(बू०पा०)			
७७ २	(बू०पा०)	(बू०, बू०पा०) ।			

शुद्धि-पत्रक : ३

आमुख

पृष्ठ स्थल	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ स्थल	अशुद्ध	शुद्ध
३ टि० ४	३०८, ३०	३०३०	२७६ ,, ४	भौलिक	भौगोलिक
६० पंक्ति १४	तद्भव-मरण :— वर्तमान...	तद्भव-मरण :—वर्तमान- भव के समान जगले भव का आयुष्य जांच लेने के पश्चात् वर्तमान...	२८६ ,, २५	गई ।' उसी....	गई । राजीमती भी एक गुफा में गई । उसी...
६० ,, १५	सम्यक्कृष्टि	अविरत-सम्यक्कृष्टि	२८६ ,, २६	मुलने	मुलाने
६३ ,, १६	उपेक्षा	अपेक्षा	३०२ ,, ३	सामाजिक-	सामाजिक-
६४ ,, २२	समय में	×	३३४ ,, १६	(श्लोक ३१)	(श्लोक ३०)
१०५ ,, ७	नगति	नगति ^२	३४७ ,, १६	अपने	अपने वहाँ को
१३१ ,, १	बहुस्त्रुयपुञ्जा	बहुस्त्रुयपुञ्ज	४४० ,, १२	क	को
१३२ ,, २२	बाहिए ।	बाहिए । ^३	४६४ ,, १४	अथ,	अथ, शोक
२२१ ,, १७	(श्लोक २२, २३)	(श्लोक २२)	४६५ ,, ७	अग्रवास्त (ज्ञान)	अग्रवास्त धृत (ज्ञान)
२३७ ,, २०	अपरिग्रह	परिग्रह	४७५ ,, ११	गया है ।	गया है, और दूसरे निक को 'धर्म-लेख्य' कहा गया है ।
			४६२ ,, ६	(श्लोक १)	(श्लोक २१)

शुद्धिपत्रक : ४

पदानुक्रमणिका

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	२	२	१६	जौब लोगमि	जीबलोगमि
१	१	३	अदमाय	अदमायं	२	२	२०	अकिचये	अकिचये
१	१	६	अएव्य आगया एसे	अय अब आगयाएसे	२	३	२	नाबणाए	नाबणाए
१	१	१६	बाहिरें	बाहिरें	२	३	१८	अणेगछन्दाइह	अणेगछन्दाइह
१	१	१८	अकड	अकड	२	३	२६	अणेगाय	अणेगाय
१	२	५	अकोहणो	अकोहणे	२	३	३२	सिद्धमिहैग पक्क	सिद्धमिहैगपक्क
१	२	२४	सज्जमक्खी	सज्जमक्खी	३	१	३	परियावसे ?	परियावसे ?
१	२	२८	अचिरकालकर्ममि	अचिरकालकर्ममि य	३	१	६	टठार्ण	ठार्ण
१	३	३२	अटठं न	अटठं न	३	३	१३	मज्जं	मज्जं
२	१	६	अट्टमुहत्ता	अट्टं मुहत्ता	३	३	२०	अण्य	अण्य
२	१	१७	अट्टेव उ	अट्टेव उ	३	३	२७	अण्यसिह्मवके	अण्यसिह्मवके
२	२	२	अणमिमाहिजो	अणमिमाहिजो	४	२	३	मुची	मुचि

पृष्ठ कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४ २	२१	६-२	६-२	१२ ३	२६	कुम्भीसु	कुम्भीसु
४ २	२२	१०-३६	१०-३४	१३ २	१८	कस	कस
४ २	३१	हु	य	१४ १	१५	१२-३	१२-३; २२-४७
४ २	३४	णिच्चो	निच्चो	१५ २	७	के बाद	केसि गोयममन्त्रवी
४ ३	१०	अमयं	अमयं				२३-२२
४ ३	२०	अरदं	अरदं	१५ २	८	५२, ६२,	५२, ५७, ६२,
५ ३	३	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१५ २	१३	२२, ३७,	३७,
५ ३	१२	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१६ १	२४	लिख	लिख
५ ३	१५	ट्ठाणेहि	ठाणेहि	१७ २	६	१६-२१	२६-२१
५ ३	१६	घरणी	घरणी	१८ ३	१२	धारिमे... ३४-५६	×
५ ३	२४	ट्ठाणलक्खणो	ठाणलक्खणो	१६ १	१४	चिरकालेण वि	चिरकालेण वि
६ १	१४	जणाओ	जणाओ	१६ २	४	मन्ता	मन्ता
६ १	१३	अट्ठिण	उट्ठिण	१६ २	६	छण्ह	छण्ह
६ १	१७	निज्जओ	निज्जओ	२० ३	५	मं	मं
६ १	३२	१७-१६	११-१६	२३ १	११	जे सन्ति...	जे सन्ति... ५-२
६ २	४	आउकम्मं	आउकम्मं	२४ ३	४	के बाद	तं सव्व साहीणमिहेव
६ २	२७	अगमे गंगसोउ	अगमे गंग सोउ				सुक्कं १४-१६
६ ३	२८	वन्दिता	वन्दिता	२५ १	३	३-१०,	×
७ १	३२	जसंमिणो	जसंमिणो	२६ २	१२, १३, १४	पालि०	पालि०
७ २	२	आसणगओ	आसण गओ	३३ १	२०	३५-५	३३-५
७ २	८	महड्डिया	महिड्डिया	३५ १	४	१६	२६
८ १	१४	गजोग	गजोग	३६ ३	५	३६-२२, २६	३६-२२ से २६
८ १	१५	चित्तसि	चित्तसि	४३ १	६	३६-६	२६-६
८ २	३१	इहञ्जयन्ते	इहञ्जयन्ते	४४ ३	३०	रो-ए	रो-ए
९ १	११	नीय	नीय	४५ १	अन्तिम	१३४-१६, ८	३४-१६, १८
९ २	२१	समूलिय	समूलिय	४७ १	३४	२३-२४	२३-२४
९ २	२२	बहू	बहू	४७ २	२०	३३-१०६	३२-१०६
९ ३	३	घणे	घणे	५१ ३	१५	सव्वं धम्मं... १४-५०	×
९ ३	४	उल्लेखो	उल्लेखो	५१ ३	अन्तिम	बकणि २६-१, ४६	बकणि २६-१
९ ३	५	उल्लिओ	उल्लियो	५२ १	१३	७६	७६, ७८
१० १	१०	उत्सूलगसयम्भीओ	उत्सूलगसयम्भीओ	५२ १	२४	नयविहिहि	नयविहीहि
१० १	१२	धासमेसन्तो	धासमेसन्तो	५३ २	१	सिज्ज	सिज्ज
१० ३	१३	खसियो	खसियो	५३ ३	२६	हट्ठा	छट्ठा
११ ३	७	तव	तव	५३ ३	३०	बहुसो	बहुसो

पृष्ठ कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१	६	बूवो	५५	२	४	बीयवह
५४	२	२७	बहू	५५	२	७	बीयवह ति
५४	२	३१	नायराण	५५	२	७	३२-३५-३६
५४	३	१४	घाण०	५५	३	४	०गीण०
५४	३	१७	जवम०	५५	३	६	०गीण०
			जिज्जम०				हरिया०
							हरिय०

२६ वें अध्ययन का दूसरा सूत्र 'संयोगेण भन्ते !' पृ० ३६६ से आरम्भ होगा। अतः बाव के सूत्र क्रमशः एक संख्या से बढ़ते चले जायेंगे। इसलिए २६ वें अध्ययन के सभी प्रमाणों को एक-एक सूत्र बढ़ा कर पढ़ा जाए।

आमुखों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार, अनुबाधक आदि	संस्करण	प्रकाशक
अनमारधर्मानुसृतम्	पं० आशाधर	सं० १९७६	माणिकचंद दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति, बम्बई
अनुयोगद्वाराणि (वृत्ति सहित)	आयंरक्षित सूरि वृत्तिकार हेमचन्द्र सूरि (मलधारी) वृत्तिकार हरिभद्र	सन् १९२४ सन् १९२८	देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई आगमोदय समिति, मेसाणा श्री ऋषभदेवजी केसारीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम
अष्ट पाण्डु	कुन्दकुन्द भावावचनिका— पं० व्यसचन्द्र छाबड़ा, जयपुर	सन् १९५०	पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला, मारोठ (राजस्थान)
अष्टांगहृदय	वाग्भट	सन् १९५०	पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला, मारोठ (राजस्थान)
आचारार्ङ्ग सूत्रम् (निर्युक्ति, वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार शीलकाचार्य	सन् १९३५	सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई
आवश्यक सूत्रम् (निर्युक्ति, वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९२८	आगमोदय समिति, बम्बई
इति-भाविदाई सुत्ताई	अनु० सं० मुनि मनोहर	सन् १९६३	सुधर्मा ज्ञान मन्दिर, बम्बई
उत्तराध्ययनानि (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार जिनदास गणि महलर	सन् १९३३	ऋषभदेवजी केसारीमलजी श्री श्वेताम्बर संस्था, रत्नपुर (मालवा)
उत्तराध्ययनानि (निर्युक्ति, वृहद् वृत्ति सहित)	निर्युक्तिकार भद्रबाहु वृत्तिकार वादिवेताल शान्ति सूरि	सं० १९७२	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार भांडागर संस्था, बम्बई
उत्तराध्ययनानि (सुलबोधा वृत्ति सहित)	वृत्तिकार नेमिचन्द्राचार्य	सं० १९६३	कूलचन्द्र लीमचन्द, बल्लाद, अहमदाबाद
उपदेशमाला (भावास्वर)	धर्मदास गणि	सन् १९३३	मास्टर उमेशचन्द्र रामचन्द्र, अहमदाबाद
ओषनिर्युक्ति (भाष्य, वृत्ति सहित)	भद्रबाहु वृत्तिकार द्रोणाचार्य	सन् १९१९	आगमोदय समिति, मेसाणा
बौधपातिक सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अम्बयदेव सूरि	सं० १९६४	पं० भूरालाल कालीदास
गोम्पटसार (ओषकाण्ड)	नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती अनु० जे० एल० जैनी, एम० ए०	सन् १९२७	सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस, अजिताश्रम, लखनऊ
” (कर्मकाण्ड)	अनु० ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद	सन् १९३७	” ”
जातक	सं० भिमसू अगदीसकस्सपो हि०अनु० भदन्त आशम्भ	सन् १९५९	पाली पब्लिकेशन बोर्ड (बिहार गवर्नमेंट)
जातक	हि०अनु० भदन्त आशम्भ कौस्तुभायन	प्रथम संस्करण	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
बीबाजीबाभिमं सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार मलयगिरि	१९१९	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार अनुवाक आदि	संस्करण	प्रकाशक
तत्त्वानुशासन	रामसेन	प्रथम	माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई
तत्त्वार्थी घेगमनुत्र (सभाष्य)	उमास्वाति	सन् १९१२	परमश्रुतप्रभावक जैन मंडल, बम्बई
तत्त्वार्थ वृत्ति (श्रुतवागरीय)	अनु० लुबचन्द्र सिद्धांतशास्त्री श्रुतवागरी सूरि स० प्रो० महेन्द्रकुमार जैन स० मुनि कल्याण विजयजी	सन् १९४९	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
तत्त्वार्थ छंदः पट्टावलि दश स्मृति			
दशवेदालियं तद् उत्तरउभयपं दशवेदालिक (निर्युक्त. सहित)	वाचना प्रमुख : आचार्य तुलसी निर्युक्तिकार भद्रबाहु	सं० २०२३ सन् १९१८	जैन वेदाम्बर तैरापन्थी महासभा कलकत्ता देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार भण्डागार संस्था, बम्बई
दशवेदालिक (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार हरिभद्र	सन् १९१८	" " "
दीर्घनिकाय (मूल पालि)	गं० भिक्खु जगदीस कस्सपो	सन् १९५८	पाली पब्लिशिंग बोर्ड, बिहार गवर्नमेन्ट
दीर्घनिकाय	हि० अन० राहुल साहूवायन	सन् १९३६	महाबोधि समा, सारनाथ, बनारस
नंदी सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वाचक क्षमाश्रमण वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९२४	आगमोदय समिति, मेसाणा
नन्दी सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार जिनदास महत्तर वृत्तिकार हरिभद्र सूरि	सन् १९३१	रघुचन्द्र नवलमल पाई, सिरौही
नाभिनन्दोद्धार प्रबन्ध			
निक्षीप सूत्रम् (भाष्य, वृत्ति सहित)	प्रणेश विमरगणि महत्तर वृत्तिकार जिनदास महत्तर सम्पादक श्री अमरमुनि	सन् १९५७	सम्पत्ति ज्ञानपीठ, आगरा
Patanjali's yoga Sutras	Patanjali Eng. Tr. by Rama Prasad, M.A	1910	Panini Office, Bhuvanewari Asrama, Bahadurganj
पातञ्जल योगदर्शन	पतञ्जलि	सं० २०१७	गीताप्रेस, गोरखपुर
प्रज्ञापना (वृत्ति सहित)	श्यामाचार्य वृत्तिकार मलयगिरि	सन् १९१८	आगमोदय समिति, मेसाणा
प्रवचनसारोद्धार (पूर्व भाग)	नेमिचन्द्र सूरि टी० सिद्धसेन सूरि	१९२२ १९२६	सेठ देवचन्द्र लालभाई, जैन पुस्तकोद्धार संस्था (ग्रन्थांक ५८) " (ग्रन्थांक ६४)
,, (उत्तर भाग)	,,		
भगवती (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अमरदेव सूरि		
मनुस्मृति	सं० मनुनारायणरास आचार्य, काव्यतीर्थ	सन् १९४६	निर्ययसागर प्रेस, बम्बई
मूलाचार (स्टीक)	वेङ्कटेश्वर टीकाकार बसुनंदि	सं० १९७७	माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई

आगमों में प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

३

ग्रन्थ-नाम	लेखक-निर्युक्तिकार-वृत्तिकार- अनुवादक आदि	संस्करण	प्रकाशक
मूलाचार	कुन्दकुन्दाचार्य हि० अनु० जिनदास पार्श्वनाथ फडकले, शास्त्री, न्यायतीर्थ	वीर सं० २४८४	श्रुत भण्डार व ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलठण (उत्तर सितारा)
मूलराधना (विजयोदया टीका सहित)	शिष्याय टीकाकार अवरजित सूरि	सन् १९३५	गोलापुर
विविध तीर्थकल्प	जिनप्रभ सूरि	सन् १९३४	विधी जैन ज्ञानपीठ, शान्तिनिकेतन (बंगाल)
समरसिद्ध			
समधार्याय सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९१८	आगमोदय समिति, मेवाणा
सुत्तनिपात (पालि)	सं० भिषखू जगदीस कस्सपो	सन् १९५६	पाली पब्लिकेशन बोर्ड (बिहार गबन'मेट)
सुत्तनिपात	हि० अनु० भिक्षु धर्मरत्न, एम० ए०	सन् १९५१	महाबोधि सभा, सारनाथ (बनारस)
सुत्तनिपात	गु० अनु० अध्यापक धर्मानन्दन कोसम्बी	सन् १९३१	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
सूत्रकृताङ्ग (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९१७	आगमोदय समिति, मेवाणा
सूत्रकृताङ्ग चूर्ण	जिनदास गणि	सन् १९४१	श्री ऋषभदेवजी केदारीमलजी खेतान्धर संस्था, रतलाम (मालवा)
स्थानाङ्ग सूत्रम् (वृत्ति सहित)	वृत्तिकार अभयदेव सूरि	सन् १९३७	शेठ मणिकलाल चुनीलाल, शेठ कान्तिराल चुनीलाल, अहमदाबाद
The Uttaradhyayana Sutra	Jarl Charpentier, Ph.D.	1922	UPPSALA

बोर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल नं० २२ उमसी
लेखक तुलसी भाचार्य
शीर्षक उत्तरवर्मपणानी
खण्ड ४४६० क्रम संख्या